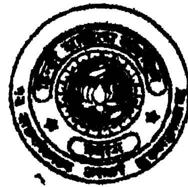
भोजपुरी लोक-संस्कृति

●

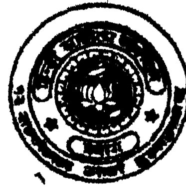
डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय
एम० ए० पी-एच० डी०



शक १९१३ : सन् १९९१
हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग
१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

भोजपुरी लोक-संस्कृति

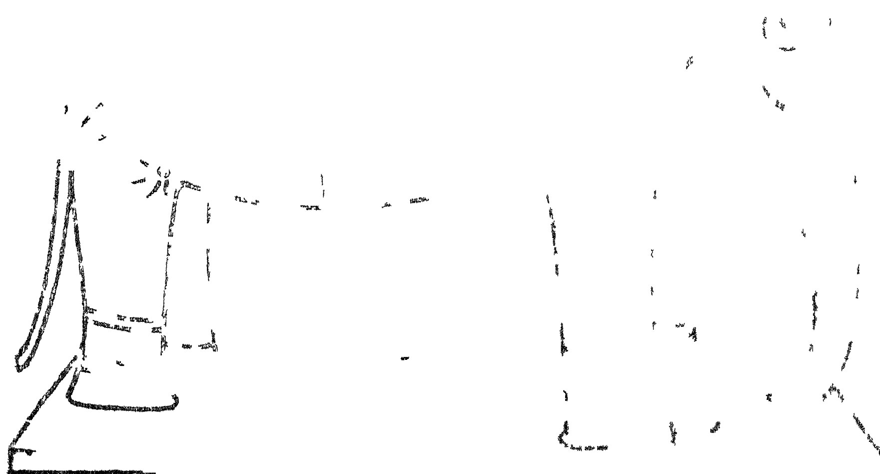
डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय
एम० ए० पी-एच० डी०



शक १९१३ : सन् १९९१
हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग
१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद



भोजपुरी लोक-संस्कृति



[illegible]

डॉ० [illegible]देव उपाध्याय

एम० ए०, पी-एच० डी०

निदेशक

लोक-सस्कृत शोध-सस्थान, वाराणसी

शुभाशसा

पद्म-भूषण आचार्य प० बलदेव उपाध्याय

भूमिका–लेखक

डॉ० विद्यानिवास मिश्र

कुलपति, काशी विद्यापीठ, वाराणसी



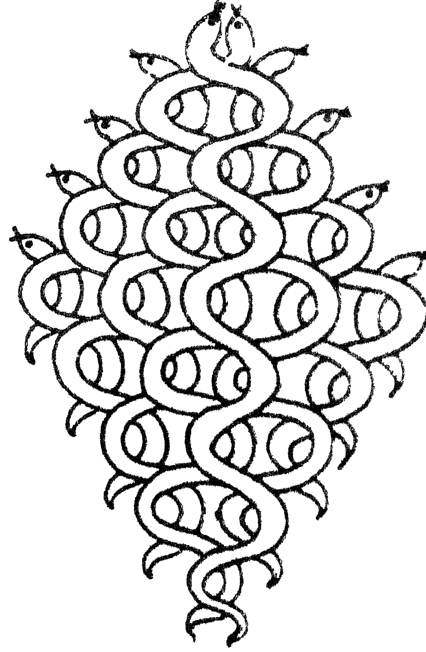
शक १९१३ सन् १९९१

हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

प्रकाशक
डॉ० प्रभात मिश्र शास्त्री
प्रधानमंत्री हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

प्रकाशन वर्ष सन् १९८९ ई०
प्रतियाँ ग्यारह सौ
संस्करण प्रथम
मूल्य दो सौ रुपये



रेखांकन सज्जा
डा० रामशब्द सिंह
आवरण सज्जा
श्री टी० के० मजूमदार

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

समर्पण-पत्र

जिनकी प्रेरणा तथा प्रोत्साहन ही मेरे जीवन का बल और सम्बल है, जिनके द्वारा प्रदत्त ज्ञान-राशि के बल पर ही मै अपने साहित्यिक जीवन के पथ पर अग्रसर होने मे समर्थ हो सका हूँ।

उन्ही

परम श्रद्धेय, पितृकल्प, ज्येष्ठ भ्राता,
पद्मभूषण, आचार्य, पण्डित

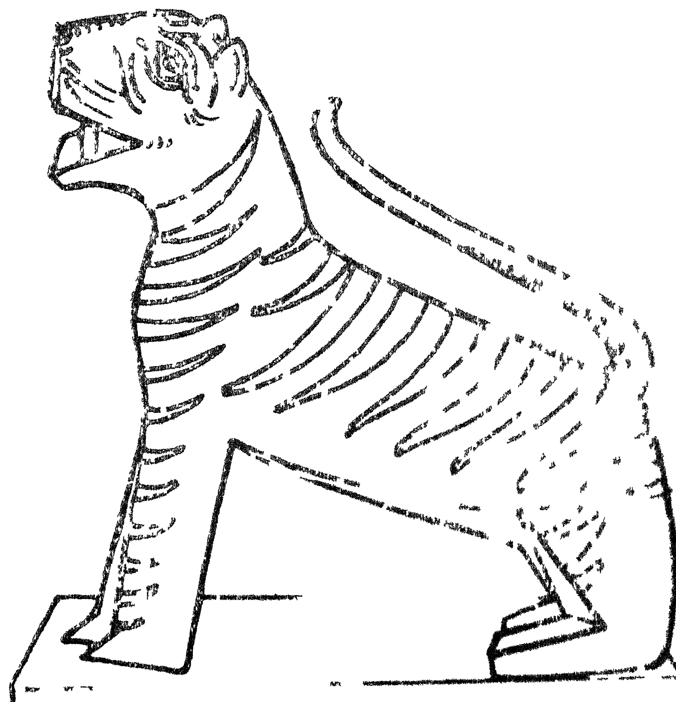
बलदेव उपाध्याय

के चरण - कमलो मे यह विनम्र कृति
सादर, सप्रेम, समर्पित।

"त्वदीय वस्तु गोविन्द!
तुभ्यमेव समर्पये"॥

—कृष्णदेव

• •



प्रकाशकीय

विविधता भारतीय धम, साधना और सस्कृति का मूल वैशिष्ट्य है। किन्तु इस विविधता मे भी सास्कृतिक समन्वय, उदात्त मूल्य एव वैदिक सन्देश 'एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' की अभिप्रेरणाएँ रही है। इस प्रकार भारतीय लोक-जीवन के सास्कृतिक अधिष्ठान बाह्यरूपेण तो प्राकृतिक एव भोगोलिक कारणो से विविधता के द्योतक हे, किन्तु भारत माता के प्रति समान श्रद्धा, भारतीय पूवजो के प्रति सहज आस्था ओर आर्ष परम्परा के प्रति उत्कट ससक्ति के कारण हमारे सास्कृतिक रिक्थ मे सूक्ष्म एकता-तन्तुओ का आभास मिलता है।

भारतीय सस्कृति का जो बहुरगी स्वरूप है, उसके निर्माण मे भारत की प्रकृति का विशेष योग है। उत्तुग पवतमालाएँ, गह्वर ओर उपत्यकाएँ, नद-नदी, सरोवरो से सिंचित मैदानी प्रदेशो, सैकत अचलो, सघन अरण्यो ओर उपवनो के कारण ही कहा गया है—

'गायन्ति देवा किलगीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभू ते, भवन्ति भूय पुरुष सुरत्वात्॥'

ऐसे नैसर्गिक वैविध्य से सम्पन्न भारत मे अनेक भाषाओ ओर बोलियो का जन्म हुआ। गगा के तटीय इलाको से सिंचित भोजपुरी क्षेत्र की कुछ अपनी विशेषताए हे। इसकी बोली मे कुछ ऐसी मिठास ओर करुणार्द्र झकृति हे कि यहा के जन-जीवन के उल्लास-विषाद, शोय ओर पराक्रम का आकषण अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक बना हुआ हे।

यह प्रसन्नता का विषय है कि भोजपुरी लोक-साहित्य के प्रख्यात विद्वान् और लोकगीतो के सग्राहक डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने 'भोजपुरी लोक-सस्कृति' के सम्बन्ध मे एक प्रामाणिक ग्रन्थ का प्रणयन किया है। भोजपुरी लोक-सस्कृति विराट् भारतीय सस्कृति के सामासिक स्वरूप का ही अग हे। इस दृष्टि से 'भोजपुरी लोक-सस्कृति' पुस्तक का अध्ययन उपयोगी होगा।

आज जब कि क्षेत्रीयता और भाषिक अभिनिवेश के कारण राष्ट्रीय एकता के सामने चुनौतियाँ आती जा रही हे, उस स्थिति मे भोजपुरी अचल के सास्कृतिक वृत्त का समेकित स्वरूप ग्रन्थ मे प्रस्तुत करना अपने मे एक चुनोती है। किन्तु इस अचल के लोक-विश्वास, रहन-सहन, खान-पान, पर्व-व्रत, उत्सव, परिवार, सस्कार, प्रथाएँ, लोक-कला, मनोरजन, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और दाशनिक स्वरूप के सम्बन्ध मे व्यापक जिज्ञासा-भाव रहा हे।

भोजपुरी फिल्मो की सफलता और भोजपुरी लोकधुनो की मादकता ने भारतीय जन-समाज को प्रभावित किया हे। जब से मारिशस आदि मे बसे भोजपुरी भाषा-भाषियो मे जागृति आयी है ओर भोजपुरी लोक-जीवन के माध्यम से भारतीय सस्कृति की पहचान विश्व मे बनती जा रही हे, उससे भोजपुरी लोक-सस्कृति के विविध आयामो के प्रति व्यापक जिज्ञासा बढती जा रही है।

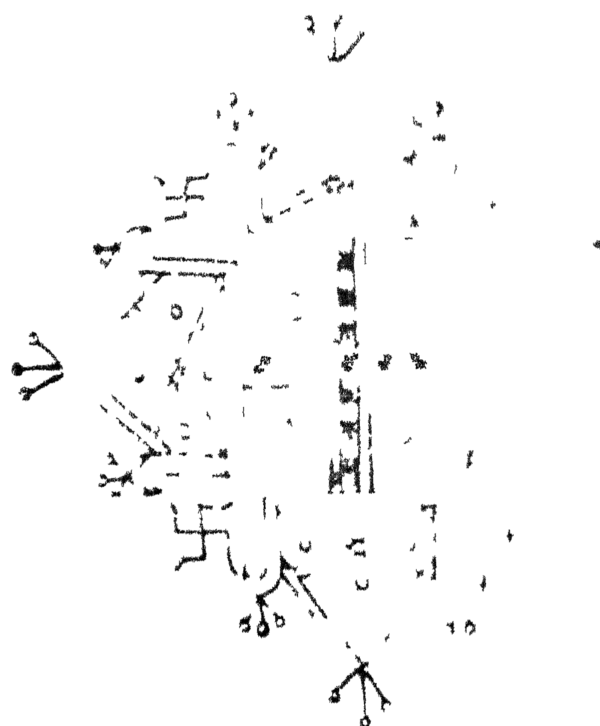
विश्वास है, डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय जैसे मनीषी ओर समथ भोजपुरी भाषा-साहित्य के नदीष्ण विद्वान् की इस कृति को सम्यक् परिप्रेक्ष्य मे देखा ओर परखा जायेगा। ग्रन्थ मे आए हुये सन्दर्भ कठोर वास्तविकताओ और नग्न यथार्थो से प्रभावित हे। कही-कही लेखक ने समाजशास्त्रीय अध्ययन-सरणि का अनुगमन किया हे। कही भी लेखक का भाव ऊँच-नीच, साधु-असाधु, श्लील-अश्लील के भावो से बोझिल नही है। जो कुछ भोजपुरी जीवन-प्रवाह मे व्यजित और चित्रित है, उसका सागोपाग विवरण ग्रन्थ मे प्रस्तुत किया गया हे। आशा है, 'भोजपुरी लोक सस्कृति' ग्रन्थ का उपयोग जिज्ञासुजन भली-भाति करेगे।

भोजपुरी लोक-सस्कृति ग्रथ मे दिये गये अधिकाश रेखाचित्र प्रोफेसर रामचन्द्र शुक्ल की प्रेरणा और विद्वान् कलाकार डॉ० रामशब्द सिंह के उदार सहयाग से प्राप्त हुए हे। इन रेखाचित्रो एव छायाचित्रो के कारण ग्रथ की सज्जा मे वृद्धि हुई है। मे उनके सहयोग के लिए आभार ज्ञापित करता हूँ।

पौष पूर्णिमा, सवत २०४७



डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल
साहित्य-मत्री



शुभाशंसा

○○

भोजपुरी भाषा के ममज्ञ विद्वान डा० कृष्णदेव उपाध्याय की "भोजपुरी लोक-सस्कृति" नामक नतन रचना को पढकर ाादित होने का मुझे शुभ अवसर प्राप्त हुआ है। यह पुस्तक अपनी ाागरिमा तथा निर्माण-कोशल से विज्ञ पुरुषो के ध्यान का बलात अपनी ओर आकृष्ट करेगी। ऐसा मेरा पूरा विश्वास ह।

भोजपुरी मण्डल अपने भीतर अत्यत प्राचीन काल की गौरवमयी सस्कृति के लिए पर्याप्तरूपेण प्रख्यात रहा है। मगध क प्रधान नगर पाटलिपुत्र, कोशल के मुख्य नगर श्रावस्ती और काशी के मुख्य नगर वाराणसी को मिलाने से जो त्रिकोणीय भूपि-खण्ड प्रस्तुत होता है, उसका अधिकाश भाग भोजपुर मण्डल का निर्माण करता हे। भगवान् बुद्ध के समय के जातक तथा सम्राट् पुष्यमित्र के समय का पातजल महाभाष्य भोजपुरी लोक-सस्कृति की अनेक अनमोल सामाजिक तथा आर्थिक-धरोहर का अपने पृष्ठो मे सजोये हुए हे। जिनक अध्ययन स ईसवी सन क आरम्भ से कई शताब्दी पूव का लोकवत्त अध्येतागण के सामने उपस्थित हो जाता हे।

आज से लगभग सो साल पहिले अग्रेज शासका न इस भोजपुर प्रदेश के अनेक खण्डो का, बहुमूल्य सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक विवरण अपने अग्रजी ग्रन्थो मे प्रस्तुत कर "लोक-सस्कृति' के अध्ययन एव मनन का श्री गणेश किया था। इसके लिए अ हमारे आदर ओर सम्मान के भाजन ह। सरकारी शासन म महत्त्वपूण अधिकारी होने के कारण उन्हे इस काय मे स्थानीय विद्वानो से विशेष सहायता प्राप्त हाती रही। उस युग म मिजापुर जनपद के प्रशासक श्री विलियम क्रुक न अपन सहयोगी विद्वान् प० रामगरीब चाबे की सहायता स तत्कालीन लाक-सस्कृति क तथ्यो के प्रकाशन का अपूव अवसर अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "पापुलर रिलिजन एण्ड फोकलोर आफ नार्दर्न इण्डिया" मे प्राप्त किया था। इस कारण यह ग्रन्थ आज भी तथ्यपूण हाने से नितान्त उपादेय है। दूसरे अग्रेज शासक डॉ० सर जाज एब्राहिम ग्रियसन मिथिला तथा काशी मण्डल के विद्वानो क सम्पक म आय ओर इसलिए मैथिली ओर भोजपुरी के व्याकरण तथा साहित्य पर इनकी रचनाए आज भी सन्दभ ग्रन्थ का काय करती ह। काशी क प्रसिद्ध ज्यातिर्विद एव हिन्दी भाषा क ममज्ञ विद्वान् महामहोपाध्याय प० सुधाकर द्विवेदी का बहुमूल्य सहयोग मिलन से डॉ० ग्रियसन की प्रतिभा इस काय मे चमक उठी थी।

परन्तु इधर बहुत दिनो से यह काय समाप्तप्राय था। इसे जाग्रत करने तथा लोक-सस्कृति के तथ्यो को उजागर करने के लिए इस ग्रन्थ के लेखक डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने अपने जीवन को ही समर्पित कर दिया है। वे इस समय अस्सी (८०) वष के हो रहे ह ओर विगत पचास (५०) वर्षों से भोजपुरी की सेवा एकनिष्ठ होकर नाना प्रकार से कर रहे ह। "भाजपुरी लाक-सस्कृति" नामक प्रस्तुत पुस्तक इस विषय का उनका सबस महत्त्वपूण, प्रमेय-बहुल एव प्रमाण-पेशल नूतन ग्रन्थ-रत्न हे जो लोक-सस्कृति क विद्वाना के समक्ष अपनी आभा बिखेर रहा ह।

यह ग्रन्थ एक सामान्य रचना न होकर 'भोजपुरी लोक-सस्कृति' का बहुमूल्य 'विश्वकोश' है। लेखक ने अनेक वर्षों क घोर परिश्रम, प्रगाढ अनुशीलन एव गम्भीर मनन के फलस्वरूप ऐसे ग्रन्थ का प्रणयन किया है जिसका प्रतिद्वन्द्वी खोजना कठिन है।

लोक-सस्कृति का क्षेत्र बडा विशाल है। उसमे नाना विषयो के विवरण का विन्यास प्रचुरता के साथ पाया जाता है। कृष्णदेवजी ने अपने दीघकालीन अनुभव के आधार पर इस ग्रन्थ मे ऐसे तथ्यो का सकलन किया है जो भोजपुरी विद्वाना की दृष्टि से भी ओझल होते जा रहे है। इन्होने अग्रेजी मे लिखे गये सस्कृति विषयक ग्रन्थो का भी यथेष्ट मनन किया है। लोक सस्कृति के सुप्रसिद्ध तथा माननीय विद्वान् डा० जेम्स फ्रेजर के द्वादश खण्डात्मक ग्रन्थ "गाल्डेन बाउ" का इन्होने जमकर अध्ययन किया है और उसका उपयोग इस ग्रन्थ के निर्माण मे बडे विवेक तथा मनन के साथ किया है। फलत यह ग्रन्थ सर्वांगीणता के गुण मे पूणतया मण्डित, समादृत तथा अलकृत किया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ के कुछ अध्याय बडे महत्वशाली

कलकतिया बगाली यह सुनकर हँसते-हँसते लोटपोट हो गया। परन्तु इस वर्णन के ठीक विपरीत लेखक ने जलेबी बनाने की विधि का जो वणन किया है वह इतना सजीव है कि उसकी सहायता से नि सन्देह जलेबी बनाई जा सकती है आर उसका आस्वादन भी किया जा सकता है।[1]

सत्त (सातू) को लेखक ने भोजपुरियो का जातीय भोज्य पदाथ बतलाया है। इस सम्बन्ध मे हमे यह स्मरण रखना चाहिए कि सत्तू पान-सातू पीना—की परम्परा अत्यत प्राचीन काल से चली आ रही हे। चलनी से चाले गये सत्तू का उल्लेख ऋग्वेद के इस प्रसिद्ध मत्र मे मिलता हे।

"सक्तुमिव तितउना पुनन्तो,
यत्र धीरा वाचमक्रत।
अत्रा सखाय सख्यानि जानते,
भद्रैषा लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि।।"

(ऋग्वेद, दशम मण्डल, सूक्त ७१।२)

'चलनी' का सूचक वैदिक शब्द 'तितउ' इस मत्र मे प्रयुक्त है। इस मत्र का तात्पय यह हे कि जिस प्रकार चलनी मे चालकर सातू को स्वच्छ तथा पवित्र किया जाता है उसी प्रकार विद्वान लोग अपनी प्रज्ञा से प्रकृति तथा प्रत्यय के द्वारा शब्दो को चालकर अलग कर देते है। सत्तू मेध्य है। यह यज्ञ-कर्म मे प्रयुक्त होता था। फलस्वरूप ऐसे पवित्र पदाथ पर अपनी जीविका चलाने वाला भोजपुर-निवासी नितान्त श्लाध्य है। वह पवित्र चरित्र वाला है।

सस्कारो भी वर्णन विस्तृत तथा आवर्जक है। जिसे विवाह कहते है वह अनेक विधि-विधानो का हृदयग्राही पुँज है। इन सस्कारो के अनेक अगो तथा उपागों का विधिवत्, प्रामाणिक एव सुन्दर वणन कर लेखक भूले-भटके सस्कारो को विद्वानो के सामने बडे कौशल से प्रस्तुत करता है।

इस ग्रन्थ मे लोकविश्वासो का प्रामाणिक तथा सजीव वर्णन विद्वान्ो के ध्यान को बलात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। इतने विविध तथा विचित्र लोक-विश्वासो का एकत्र प्रतिपादन मनोरम तथा ज्ञानवधक होने के साथ ही बडा रोचक एव आकषक है। लेखक ने 'टैबू' का वर्णन इसी प्रसग मे किया है।

टैबू (Taboo) शब्द अग्रेजी भाषा का नही है। प्रत्युत एशिया के पूर्वी समुद्र मे फैले हुए टापुओ मे से अन्यतम 'टोगो' टापू की भाषा का शब्द है। इस शब्द का अथ है—वर्जना। पवित्र तथा अपवित्र दोनो प्रकार की वस्तुओ को वर्जित करना, निषिद्ध मानना इस शब्द का अभिप्राय है। अनेक टैबुओ मे से पत्नी के लिए अपने पति का नाम लेना अन्यतम टैबू है।

यहाँ इस विषय के सम्बन्ध मे एक रोचक दृष्टात प्रस्तुत किया जाता है। पुत्र की कामना करने वाली किसी स्त्री को उसके गुरू जी ने जप करने के लिए एक मत्र बतलाया तथा कहा कि इसका विधिवत् जप करने से तुम्हारे मनोरथ की सिद्धि अवश्य होगी। एक वर्ष के अनन्तर जब से गुरुजी लौटकर आये और उस स्त्री से उस मत्र के फल के विषय मे पूछा। पत्नी ने उदास होकर उस मत्र की निष्फलता की बात कही जिसे सुनकर गुरुजी ने आश्चर्य प्रकट करते हुए उम मत्र के स्वरूप को जानना चाहा। उस स्त्री ने धडल्ले से मत्र कहा "चम्पो के चाचा तव शरणम्।" स पर गुरु जी ने कहा कि मैने तो तुम्हे "देवकीनन्दन तव शरणम्" यह मत्र दिया था। यह नया मत्र कहाँ से आ गया? तब उस स्त्री ने कहा महाराज! यह मेरे पति का नाम है। इसका उच्चारण मै कैसे करती? इसलिए मैने अपनी भतीजी का नाम इसमे डाल दिया। क्योकि इसी नाम से मै उन्हे पुकारती हूँ। यह सुनकर गुरुजी जोरो से हँसने लगे। इसी प्रकार से दूसरे अनेक रोचक टैबू प्राप्त होते हे जिनका उल्लेख मनोरजक सिद्ध हो सकता है।

प्रात काल, मागलिक वस्तुओ के दशन का विधान, समस्त दिवस को मगलमय बनाने का एकमात्र साधन माना जाता है। प्रस्तुत पुस्तक के विद्वान् लेखक ने इस विषय की अनेक वस्तुओ का विशिष्ट उल्लेख किया है। इस प्रसग मे 'नैष-धीय चरितम्' का वह भव्य श्लोक उद्धृत किया गया है, जिसमे राजा नल ने अपनी प्रियतमा के मगलमय मुख का प्रात काल दशन कर सुप्रभात का प्रारम्भ किया है।

प्रिय के लिए अपनी प्रियतमा के मुखारविन्द के दशन के समान ही, प्राचीन काल मे प्रजा के लिए राजा के मुख का दशन, भव्य, दिव्य तथा कल्याणकारी माना जाता था। यहाँ प्रासगिक होने के कारण निम्नाकित तथ्य का उल्लेख करना नितान्त आवश्यक तथा समीचीन है।

---

१ देखिए—भोजपुरी लोक-सस्कृति मे जलेबी का वर्णन।

इस मुख-दर्शन के प्रसग मे महाकवि कालिदास ने रघुवंश म [illegible] चरित्र का चित्रण किया है। वह राजा इतना विलासी था, रास रग म, [illegible] के विषयो स रहित, किसी भी क्षण का, सहन करने म नितान्त असमर्थ था। [illegible] के कारण उसके दर्शन के लिए विशेष रूप मे उत्सुक तथा लालायित [illegible] मत्रियो के दृढ आग्रह को वह टाल भी नही सकता था। तब [illegible] प्रजा को दर्शन देता था। अर्थात् वह अपना मुह न दिखला कर [illegible] को सम्पन्न करता था।

> "गौरवात् यदपि जातु मन्त्रिणा,
>
> दर्शन प्रकृति-काक्षित ददौ।
>
> तद् गवाक्षविवरावलम्बिना,
>
> केवलेन चरणेन कल्पितम्॥"
>
> रघुवंश १९।७

नाना प्रकार की व्यावहारिक वस्तुओ के रूप रग आकार प्रकार आदि [illegible] साहित्यिक सौन्दर्य स मण्डित है। विवरण की [illegible] के कारण यह नितान्त [illegible] भाषा सहज, सुन्दर तथा स्निग्ध है। भोजपुरी लोक-गीतो के प्रभूत उद्धरणो म [illegible] कमनीय है। स्थान स्थान पर सस्कृत कविता के उद्धरण के कारण इसकी [illegible] ही उदाहरण पर्याप्त होगा।

कोई नव विवाहिता वधू अपनी सास तथा ननद के व्यवहार की [illegible] सुन्दर शब्दो मे कर रही है।

> "श्वश्रू पश्यति नैव, पश्यति यदि भ्रूभगवक्रेक्षणा,
>
> मर्मच्छेदपटु प्रतिक्षणमसौ, ब्रूते ननान्दापि च।
>
> अन्यासामपि किं ब्रवीमि चरित, स्मृत्वा मनो वेपते,
>
> कान्त स्निग्धदृशा विलोकयति मामेतावदाग. स्मृति॥"

सक्षेप मे मेरी यह मान्यता है कि कृष्णदेव जी ने इस ग्रन्थ म अपनी सग्राहक [illegible] चिन्तन का भी स्वरूप इस ग्रन्थ मे भलीभाँति दर्शाया है। इस पुस्तक के सामाजिक, [illegible] चन मे अपने गभीर अध्ययन का प्रदर्शन पदे-पदे किया है। फलस्वरूप "भोजपुरी लोक सस्कृति" [illegible] प्रस्तुतकर्त्ता के रूप मे लोक-साहित्य तथा सस्कृति के विवेचक तथा मान्य विद्वान, उनका [illegible] पुरी लोक-सस्कृति', ऐसे विद्वत्तापूर्ण विश्वकोश के निर्माण के निमित्त उनका आभार [illegible] यही कामना है कि यह ग्रन्थ लेखक की कीर्ति को अमर बनाने म सहायक सिद्ध हो [illegible]।

> "ग्रन्थस्यैषा शुभाशसा,
>
> न्यूनता पूर्तिकारिणी।
>
> नूत्नतथ्यै समाकीर्णा,
>
> विद्वन्मोदाय जायताम्॥"

मौनी अमावस्या स० २०४५ वि०

६।२।१९८९ ई०, वाराणसी

—बलदेव उपाध्याय

(पद्मभूषण, आचार्य)

• •

भूमिका

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय लोक-वार्ता के क्षेत्र मे आजीवन निष्ठापूर्वक सेवा करते रहे ह और उनके जैसे तपोवृद्ध, ज्ञान-वृद्ध व्यक्ति मुझसे कहे कि भूमिका लिख दे, यह मेरे लिए बहुत ही सकोच की बात है। परन्तु वे बडे है, उनकी बात टाल भी नही सकता। उसमे कुछ पक्तियाँ उनकी नयी पुस्तक "भोजपुरी लोक-संस्कृति" के विषय मे लिख रहा हूँ।

स्व० सर जार्ज ग्रियर्सन ने 'बिहार पीजेण्ट लाइफ' मे भोजपुरी, मगही, मैथिली जीवन और उसमे प्रयुक्त समृद्ध शब्दावली का सर्वेक्षणात्मक अध्ययन करके बड़ा उपकार किया है कि भारतीय लोक-जीवन और विशेषत पूर्वी क्षेत्र के लोक-जीवन के विविध पक्षो की ओर विद्वानो का ध्यान गया और इसमे निहित सांस्कृतिक-भाषिक तत्त्वो की खोज को शोध के क्षेत्र मे प्रतिष्ठा मिली।

लोक-गीतो के सकलन के मार्ग-दर्शन का कार्य स्व० प० रामनरेश त्रिपाठी ने किया था। लोक-गीतो मे निहित सहज माधुर्य और सूक्ष्म मानवीय सवेदना की ओर उन्होने ध्यान आकृष्ट किया। इनके बाद तो लोकवार्ता के सकलन की लम्बी, अनवच्छिन्न परम्परा हिंदी मे चली, साथ ही लोक-भाषाओ मे वैज्ञानिक अध्ययन की भी। भोजपुरी क्षेत्र मे स्व० उदयनारायण तिवारी, स्व० महाराजकुमार दुर्गाशंकर सिंह, स्व० हस कुमार तिवारी, स्व० महापण्डित राहुल साकृत्यायन और स्व० स्वामी नाथ सिंह ने अलग-अलग ढग से इस कार्य को गरिमामय स्तर तक पहुँचाया। इसी शृखला मे आज श्री गणेश चौबे और डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय जैसे अध्येता इस लोक सजीवनी धारा को प्रगति प्रदान कर रहे है। भोजपुरी समाज इनका चिर ऋणी रहेगा।

"भोजपुरी लोक-संस्कृति" ग्रन्थ मे एक प्रकार से विश्वकोशात्मक विवरण है जिसमे जीवन के सभी पक्षो का—आस्थाओ, विश्वासो, रीति-रिवाजो, पर्वो-उत्सवो, दैनन्दिन और नैमित्तिक अनुष्ठानो, खान-पान, रहन-सहन, हास-परिहास, मनोरंजन के साधनो, शृगार-प्रसाधन, रिश्तो के तानो-बानो सामाजिक व्यवस्था की बुराइयो और अच्छाइयो—सब बात पर इतने सक्षेप मे और इतनी स्पष्टता के साथ निरूपण रोचक ढग से दिया गया है। यहा तक कि निषिद्ध या वर्जित वस्तुओ का विवरण और आसपास की प्रकृति के प्रति मानवीय प्रतिक्रिया का विवरण भी बड़े सटीक ढग से दिया गया है।

यह अवश्य है कि विवरण मे कुछ छूट गया हो। क्योकि यह एक व्यक्ति का किया गया काम है और सर्वोत्तम ही लक्ष्य हो सकता है। परन्तु सर्वोत्तम के पीछे उत्तम कार्य को टालना ठीक नही होता।

आदरणीय उपाध्याय जी ने उत्तम कार्य किया है। इन्होने तथ्यो को इस तरह से वर्गीकृत और सुसबद्ध रूप मे रखा है कि भोजपुरी लोक-संस्कृति का समग्र चित्र सामने उपस्थित हो जाता है। इस प्रकार यह बहुत बडा अवदान है लोकवार्ता के अध्ययन क्षेत्र मे।

संस्कृति की पहिचान समग्रता मे ही होती है। वह समग्रता खण्डो मे नही पहिचानी जाती। प्रस्तुत ग्रन्थ के अध्ययन से समग्र दृष्टि से लोक-संस्कृति को पहिचानने के लिए प्रामाणिक आधार मिलेगा। उपाध्याय जी ने देश की सांस्कृतिक परम्परा से बीच-बीच मे, अपने विवरणात्मक तथ्यो को जोडने का प्रयास भी किया है। परन्तु उनका अधिक ध्यान विवरण देने पर है। विवरण की प्रयोजन-मीमासा पर नही है। परन्तु एक ग्रन्थ मे यह सभव भी नही है।

मैने इस ग्रन्थ को आद्यन्त पढ कर बहुत-सी नयी बाते सीखी है। यह भी लगा है कि मेरे निजी अनुभव ससार की बहुत सारी चीजे छूट गयी है। पर लोक बड़ा विस्तृत है और भोजपुरी-लोक बड़ा विविध भी है। इसमे इतने सामाजिक और प्रतिष्ठित स्तरो की ससृष्टि है कि पूरा विवरण तैयार करने के लिए और विवरणो की साभिप्रायता का विवेचन करने के लिए, कम से कम बीसेक लोगो की टोली लगे और तब दस पन्द्रह वर्षो मे यह विश्वकोश तैयार होगा। अकेले एक आदमी ने, एक ऐसे कोश का प्रारूप, अपने अकेले बल पर तैयार किया है, यह आश्चर्य है और इस कारण इस ग्रन्थ की जितनी भी प्रशसा की जाय, कम होगी। ●

—विद्यानिवास मिश्र

वाराणसी जेष्ठ सुदी ३, २०४६ वि०, ६/६/१९८९ ई०

इस मुख दर्शन के प्रसग मे महाकवि कालिदास ने रघुवंश मे एक कामुक तथा विलासी राजा अग्निवर्ण के [illegible] चरित्र का चित्रण किया है। वह राजा इतना विलासी था, रास-रंग मे, नाच-गान मे [illegible] के विषयो से रहित, किसी भी क्षण को, सहन करने मे नितान्त असमर्थ था। [illegible] के कारण उसके दर्शन के लिए विशेष रूप से उत्सुक तथा लालायित अपनी प्रजा [illegible] मत्रियो के दृढ आग्रह को वह टाल भी नही सकता था। तब [illegible] प्रजा को दर्शन देता था। अर्थात् वह अपना मुंह न दिखला कर [illegible] को सम्पन्न करता था।

"गौरवात् यदपि जातु मन्त्रिणा,
दर्शन प्रकृति-कांक्षित ददौ।
तद् गवाक्षविवरावलम्बिना,
केवलेन चरणेन कल्पितम्॥"
रघुवंश १९।७

नाना प्रकार की व्यावहारिक वस्तुओ के रूप रग आकार प्रकार आदि का [illegible] साहित्यिक सौन्दर्य से मण्डित है। विवरण की सरसता के कारण यह नितान्त रोचक [illegible] है। [illegible] भाषा सहज, सुन्दर तथा स्निग्ध है। भोजपुरी लोक-गीतो के प्रभूत उद्धरणो से विभूषित होने के कारण [illegible] कमनीय है। स्थान स्थान पर सस्कृत कविता के उद्धरण के कारण इसकी रोचकता मे असाधारण वृद्धि हो गई है। [illegible] ही उदाहरण पर्याप्त होगा।

कोई नव विवाहिता बधू अपनी सास तथा ननद के व्यवहार की कटुता का वर्णन इस श्लोक मे बड़े ही व्यंग्यपूर्ण परन्तु सुन्दर शब्दो मे कर रही है।

"श्वश्रू पश्यति नैव, पश्यति यदि भ्रूभगवक्रेक्षणा,
मर्मच्छेदपटु प्रतिक्षणमसौ, ब्रूते ननान्दावच।
अन्यासामपि किं ब्रवीमि चरितं, स्मृत्वा मनो वेपते,
कान्त स्निग्धदृशा विलोकयति मामेतावदाग सखि॥"

सक्षेप मे मेरी यह मान्यता है कि कृष्णदेव जी ने इस ग्रन्थ मे अपनी संग्राहक वृत्ति के साथ ही साथ, अपने मौलिक चिन्तन का भी स्वरूप इस ग्रन्थ मे भलीभाँति दर्शाया है। इस पुस्तक के सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक विषयो के विवेचन मे अपने गभीर अध्ययन का प्रदर्शन पदे-पदे किया है। फलस्वरूप "भोजपुरी लोक-सस्कृति" के इस भव्य महाभारत के प्रस्तुतकर्त्ता के रूप मे लोक-साहित्य तथा सस्कृति के विवेचक तथा मान्य विद्वान्, इनका सदा स्मरण करते रहेंगे तथा 'भोजपुरी लोक-सस्कृति', ऐसे विद्वत्तापूर्ण विश्वकोश के निर्माण के निमित्त इनका आभार हृदय से स्वीकार करेंगे। अन्त मे मेरी यही कामना है कि यह ग्रन्थ लेखक की कीर्ति को अमर बनाने मे सहायक सिद्ध हो एवमस्तु। तथास्तु।

"ग्रन्थस्यैषा शुभाशसा,
न्यूनता पूर्तिकारिणी।
नूत्नतथ्यै समाकीर्णा,
विद्वन्मोदाय जायताम्॥"

मौनी अमावस्या स० २०४५ वि०
६।२।१९८९ ई०, वाराणसी

—बलदेव उपाध्याय
(पद्मभूषण, आचार्य)

• •

भूमिका

● ○

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय लोक-वार्ता के क्षेत्र मे आजीवन निष्ठापूर्वक सेवा करते रहे हे और उनके जैसे तपोवृद्ध, ज्ञान-वृद्ध व्यक्ति मुझसे कहे कि भूमिका लिख दू, यह मेरे लिए बहुत ही सकोच की बात हे। परतु वे बडे हे, उनकी बात टाल भी नही सकता। इसमे कुछ पक्तिया उनकी नयी पुस्तक "भोजपुरी लोक-सस्कृति" के विषय मे लिख रहा हूँ।

स्व० सर जाज ग्रियसन ने 'विहार पीजेण्ट लाइफ' मे भोजपुरी, मगही, मैथिली जीवन और उसमे प्रयुक्त समृद्ध शब्दा-वली का सर्वेक्षणात्मक अध्ययन करके बडा उपकार किया हे कि भारतीय लोक-जीवन ओर विशेषत पूर्वी क्षेत्र के लोक-जीवन के विविध पक्षो की ओर विद्वानो का ध्यान गया और इसमे निहित सास्कृतिक-भाषिक तत्त्वो की खोज को शोध के क्षेत्र म प्रतिष्ठा मिली।

लोक-गीतो के सकलन के मार्ग-दर्शन का कार्य स्व० प० रामनरेश त्रिपाठी ने किया था। लोक-गीतो मे निहित सहज माधुर्य और सूक्ष्म मानवीय सवेदना की ओर उन्होने ध्यान आकृष्ट किया। इनके बाद तो लोकवार्ता के सकलन की लम्बी, अनवच्छिन्न परम्परा हिन्दी मे चली, साथ ही लोक-भाषाओ मे वैज्ञानिक अध्ययन की भी। भोजपुरी क्षेत्र मे स्व० उदयनारायण तिवारी, स्व० महाराजकुमार दुर्गाशकर सिह, स्व० हस कुमार तिवारी, स्व० महापण्डित राहुल साकृत्यायन और स्व० स्वामी नाथ सिह ने अलग-अलग ढग से इस काम को गरिमामय स्तर तक पहुँचाया। इसी शृखला मे आज श्री गणेश चौबे और डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय जैसे अध्येता इस लोक सजीवनी धारा को प्रगति प्रदान कर रहे है। भोजपुरी समाज इनका चिर ऋणी रहेगा।

"भोजपुरी लोक-सस्कृति" ग्रन्थ मे एक प्रकार से विश्वकोशात्मक विवरण है जिसमे जीवन के सभी पक्षो का—आस्थाओ, विश्वासो, रीति-रिवाजो, पर्वो-उत्सवो, दैनन्दिन और नैमित्तिक अनुष्ठानो, खान-पान, रहन-सहन, हास-परिहास, मनोरजन के साधनो, शृगार-प्रसाधन, रिश्तो के ताने-बानो, सामाजिक व्यवस्था की बुराइयो और अच्छाइयो—सब बात पर इतने सक्षेप मे ओर इतनी स्पष्टता के साथ विवरण रोचक ढग से दिया गया है। यहाँ तक कि निषिद्ध या वर्जित वस्तुओ का विवरण और आसपास की प्रकृति के प्रति मानवीय प्रतिक्रिया का विवरण भी बडे सटीक ढग से दिया गया है।

यह अवश्य है कि विवरण मे कुछ छूट गया हो। क्योकि यह एक व्यक्ति का किया गया काम है और सर्वोत्तम ही लक्ष्य हो सकता है। परन्तु सर्वोत्तम के पीछे उत्तम कार्य को टालना ठीक नही होता।

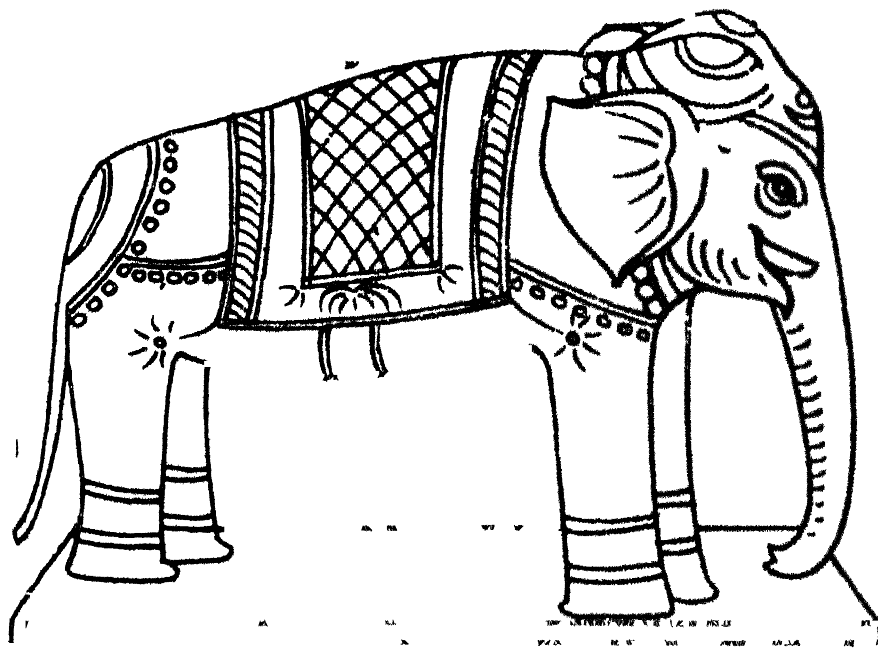
आदरणीय उपाध्याय जी ने उत्तम कार्य किया है। इन्होने तथ्यो को इस तरह से वर्गीकृत और सुसबद्ध रूप मे रखा है कि भोजपुरी लोक-सस्कृति का समग्र चित्र सामने उपस्थित हो जाता है। इस प्रकार यह बहुत बडा अवदान है लोकवार्ता के अध्ययन क्षेत्र मे।

सस्कृति की पहिचान समग्रता मे ही होती है। वह समग्रता खण्डो मे नही पहिचानी जाती। प्रस्तुत ग्रन्थ के अध्ययन से समग्र दृष्टि मे लोक-सस्कृति को पहिचानने के लिए प्रामाणिक आधार मिलेगा। उपाध्याय जी ने देश की सास्कृतिक परम्परा से, बीच-बीच मे, अपने विवरणात्मक तथ्यो को जोडने का प्रयास भी किया है। परन्तु उनका अधिक ध्यान विवरण देने पर है। विवरण की प्रयोजन-मीमासा पर नही है। परन्तु एक ग्रन्थ मे यह सभव भी नही है।

मैने इस ग्रन्थ को आद्यन्त पढ कर बहुत-सी नयी बाते सीखी है। यह भी लगा है कि मेरे निजी अनुभव-ससार की बहुत सारी चीजे छूट गयी है। पर लोक बडा विस्तृत हे और भोजपुरी-लोक बडा विविध भी है। इसमे इतने सामाजिक और प्रतिष्ठित स्तरो की ससृष्टि है कि पूरा विवरण तैयार करने के लिए और विवरणो की साभिप्रायता का विवेचन करने के लिए, कम से कम बीसेक लोगो की टोली लगे और तब दस पन्द्रह वर्षो मे यह विश्वकोश तैयार होगा। अकेले एक आदमी ने, एक ऐसे कोश का प्रारूप, अपने अकेले बल पर तैयार किया है, यह आश्चर्य है और इस कारण इस ग्रन्थ की जितनी भी प्रशसा की जाय, कम होगी। ●

—विद्यानिवास मिश्र

वाराणसी जेष्ठ सुदी ३, २०४६ वि०, ६/६/१९८९ ई०



लेखक का वक्तव्य

○○

(१) प्रस्तावना

आज से पचास वष पहिले जब मैने अपने साहित्यिक जीवन को भोजपुरी लोक-साहित्य की मे सेवा मे अर्पित कर देने का निश्चय किया था, तब मैने अपने मन मे यह योजना बनायी थी कि इस साहित्य की विविध विधाओ का सकलन, सम्पादन तथा प्रकाशन करूँगा। प्रस्तुत ग्रन्थ इसी दिशा मे एक विनम्र प्रयास है। भोजपुरी लोक-साहित्य की विभिन्न विधाओ मे लोक-गीत, लोक-गाथा, लोक-कथा, लोक-नाट्य, लोक-सगीत और लोक-सुभाषित का समावेश होता है। इनमे से भोजपुरी लोक गीतो के हजारो गीतो का सग्रह तथा सम्पादन दो वहत् भागे मे आज से अनेक वष पूव, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित हो चुका है। इसका तीसरा भाग भोजपुरी अकादमी, पटना (बिहार) से अभी कुछ वष हुए प्रकाशित हुआ है। इसी तीसरे भाग के साथ भोजपुरी की प्रधान लोक-गाथाये भी प्रकाश मे आ चुकी है।

लोक-सगीत, लोक-गीतो का प्राण-तत्त्व है। बिना इसके, गीतो के गाने की पद्धति का कुछ पता नही चलता। इसलिए 'भोजपुरी लोक-सगीत' के नाम से एक पुस्तक का मैंने सम्पादन किया है जिसमे पचास प्रकार (टाइप) के लोक-गीतो की स्वरलिपि (नोटेशन) प्रस्तुत की गई है।

लोक-कथाओ का विशाल सकलन मैने किया है जिनका एक भाग सुसम्पादित होकर प्रकाशन की प्रतीक्षा कर रहा है। लोक-सुभाषितो के अन्तगत लोकोक्तियो तथा पहेलियो का भी सम्पादन हो चुका है जिसमे वैदिक साहित्य से लेकर आजतक इन दोनो ही विधाओ की उत्पत्ति तथा विकास पर प्रचुर प्रकाश डाला गया है।

"भोजपुरी साहित्य का इतिहास" नामक पुस्तक—जिसका प्रकाशन १९७० ई० मे लोक-सस्कृति शोध-सस्थान वाराणसी से हुआ था—मे भोजपुरी के सन्तो तथा कवियो का कमबद्ध इतिहास प्रस्तुत किया गया है। इन कवियो के जन्म सवत्, जन्म स्थान तथा उनकी पुस्तको को प्राप्त करने मे विशेष प्रयास करना पडा है। भोजपुरी के आधुनिक-नवीन कवियो का वर्णन करके इस ग्रथ को यथासभव पूणता प्रदान की गई है। भोजपुरी लोकनाट्य विदेसिया का विशेष वर्णन "भोजपुरी और उसका साहित्य" नामक एक लघु पुस्तिका मे किया गया है। इस प्रकार भोजपुरी लोक-साहित्य-सबधी विविध विधाओ पर प्रामाणिक पुस्तको का निर्माण करके इस साहित्य को समृद्ध बनाने का प्रयास प्रस्तुत किया जा चुका है।

(२) इस ग्रन्थ की आवश्यकता

भोजपुरी लोक-साहित्य की प्राय प्रत्येक विधा पर ग्रन्थ लिखने के पश्चात्, भोजपुरी प्रदेश की विशाल तथा विराट् लोक सस्कृति के सम्बन्ध मे किसी पुस्तक का अभाव खटक रहा था। हिन्दी अथवा अँग्रेजी मे आज भी ऐसा कोई ग्रन्थ उपलब्ध नही है जिसमे जन-जीवन तथा लोक-सस्कृति का वणन किया गया हो। भोजपुरी लोगो के रहन-सहन, रीति-रिवाज, प्रथा, सस्कार, खान-पान, वेशभूषा, अलकार-प्रसाधन आदि बडे ही समृद्ध है। इसके साथ ही इनकी आर्थिक दशा मे बडा परिवतन दृष्टिगोचर होता है। इनका धार्मिक जीवन बडा ही सरल है जिसके अन्तगत अनेक देवी-देवताओ की पूजा की जाती है। इन लोगो का दाशनिक जीवन भी रोचक है जिसमे कमवाद और भाग्यवाद का अद्भुत सामजस्य उपलब्ध होता है। ऐसी दशा मे, एक ऐसी पुस्तक की आवश्यकता का नितान्त अनुभव हो रहा था जिसमे उपर्युक्त विषयो का विशिष्ट तथा प्रामाणिक वर्णन प्रस्तुत किया गया हो। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए इस ग्रन्थ का निर्माण किया गया है।

भोजपुरी लोक-सस्कृति का क्षेत्र बडा ही व्यापक तथा विशाल है। उत्तरप्रदेश तथा बिहार मे फैले हुए भोजपुरी भाइयो की रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा, खेल-कूद मे विविधता होते हुए भी एकता पायी जाती है। पुत्र-जन्म, जनेऊ, विवाह और मृत्यु सम्बन्धी सस्कारो के अवसर पर विविध प्रकार के अनेक विधि-विधानो का सम्पादन किया जाता है। परन्तु अद्यावधि इन विविध विधानो को लिपिबद्ध नही किया जा सका है। इनके सबध मे ऐसा कोई भी ग्रन्थ उपलब्ध नही है जिससे इनके विषय मे समुचित जानकारी प्राप्त की जा सके।

इसी प्रकार भोजपुरी समाज मे स्त्रियो की क्या दशा है, उनके अधिकार और [illegible] परिवार के सदस्यो का आपस मे कैसा सबध है आदि विषयो—जिनका सबध समाजशास्त्रीय अध्ययन [illegible] कुछ ज्ञान प्राप्त करना चाहे तो वहा भी केवल निराशा ही हाथ लगेगी। किम्बहुना, यदि भोजपुरी [illegible] वेशभूषा के विषय मे जानना, चाहे कुछ अध्ययन की आवश्यकता या इच्छा हो, तो [illegible]

ऐसी परिस्थिति मे इन सभी अभावो की पूर्ति के लिए विद्वानो तथा साधारण [illegible] से परिचित कराने के लिए ही इस ग्रन्थ के लिखने की आवश्यकता का अनुभव हुआ और [illegible] के सन्मुख उपस्थित है।

इस विशालकाय ग्रन्थ के प्रणयन के सम्बन्ध मे यही कहना चाहता है कि जिस प्रकार मधुमक्खियाँ [illegible] रस लेकर 'छाता' या मधु कोश (Bee hive) तैयार करती है और जिसका आस्वाद [illegible] है, उसी प्रकार हिन्दी अंग्रेजी और संस्कृत के ग्रन्थो का मन्थन करके, उनके अध्ययन तथा मनन [illegible] विन्दु प्राप्त हुए है उन्ही का इस ग्रन्थ मे 'सकलन' किया गया है। अत आशा है कि विद्वानो को, [illegible] को इस ग्रन्थ को पढकर ज्ञान की प्राप्ति होगी तथा साधारण जनता को भी आनन्द प्राप्त होगा।

बाणभट्ट के सुयोग्य पुत्र के समान मै भी यह कह सकता हूँ कि एक महान आवश्यकता [illegible] का निर्माण किया गया है। केवल अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन करने के लिए बिलकुल नही।

"प्रारब्ध एव हि मया, न कवित्व-दर्पात्।"

(३) प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखन की योजना

प्रस्तुत ग्रन्थ मे दो खण्ड तथा २० अध्याय है। प्रथम खण्ड मे १४ अध्याय है जो भोजपुरी प्रदेश के सामाजिक [illegible] सम्बन्ध रखते है। द्वितीय खण्ड—जो समाज से इतर विषयो से सम्बन्धित है—प्रथम खण्ड मे छ अध्याय है जिनमे भोजपुरी प्रदेश के आर्थिक, धार्मिक, तथा दार्शनिक जीवन की मीमासा की गई है। प्रत्येक अध्याय अनेक परिच्छेदो मे विभक्त किया गया तथा प्रत्येक परिच्छेद को भी अनेक अनुच्छेदो मे विभाजित कर उस विषय का सागोपाग विवेचन किया गया है। उदाहरण के लिए अध्याय ५ को लिया जा सकता है जिसमे छ परिच्छेद है। इनमे विभिन्न संस्कारो का विवेचन प्रस्तुत है। [illegible] अध्याय के चौथे परिच्छेद—विवाह को ५ अनुच्छेदो मे विभक्त कर विवाह के सम्बन्ध मे होने वाले विविध [illegible]—[illegible] के चौथे परिच्छेद—विवाह को ५ अनुच्छेदो मे विभक्त कर विवाह के सम्बन्ध मे होने वाले विविध [illegible]—[illegible] दहेज, विवाह की तैयारी, बारात का आना, सुमगली—आदि का प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार [illegible], २० अध्यायो, अनेक परिच्छेदो तथा अनुच्छेदो मे विभक्त इस ग्रन्थ को भोजपुरी लोक-संस्कृति का विश्वकोष ही समझना चाहिए। महाभारत की भाँति इस ग्रन्थ मे १८ प्रधान अध्याय है जिनमे भोजपुरी-सस्कृति का प्रचुर वर्णन प्रस्तुत है।

(४) ग्रन्थ का वर्ण्य विषय

इस ग्रन्थ की प्रस्तावना मे सस्कृति के स्वरूप पर विचार किया गया है। सस्कृति शब्द के अर्थ को स्पष्ट करते हुए शिष्ट-सस्कृति तथा लोक-सस्कृति के पार्थक्य को स्पष्ट किया गया है।

प्रथम अध्याय का वर्ण्य विषय वर्ण और आश्रम है। भोजपुरी प्रदेश मे प्राप्त विभिन्न प्रकार के ब्राह्मणो का वर्णन करने के पश्चात्, ब्राह्मणो की विशेषताओ तथा उनके चरित्र का भी परिचय दिया गया है। क्षत्रिय तथा वैश्यो की चर्चा के बाद इस क्षेत्र को छ हरिजन जातियो के भेद तथा उनके पृथक्-पृथक् कार्यों का उल्लेख किया गया है।

आश्रम के अन्तर्गत ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, बाणप्रस्थ तथा सन्यास आश्रमो का विवेचन कर अन्तिम दो आश्रमो के ह्रास की ओर प्रवृत्ति दिखलाई गई है।

अध्याय दो मे भोजपुरी लोक-साहित्य मे स्त्रियो की दशा का चित्रण प्रस्तुत है। पुत्री, पत्नी तथा माता के रूप मे स्त्री का चित्रण करने के पश्चात् वन्ध्या विधवा तथा कुलटा स्त्रियो के चरित्र पर भी प्रकाश डाला गया है। लबुकी, [illegible] लच्छनी तथा फूहड स्त्रियाँ भोजपुरी समाज की विशेषता हैं। अत इनके चरित्र की भी चर्चा की गई है। भोजपुरी क्षेत्र की पति-परायणा साध्वी स्त्री, "सीजर की स्त्री" की भाँति सन्देह से परे होती है तथा अपने आदर्श सतीत्व और पति-सेवा के लिए, ससार मे अपना सानी नही रखती। अत उसके पावन तथा आदर्श चरित्र को विशेष रूप से उजागर करने का प्रयत्न किया गया है।

तृतीय अध्याय मे "भोजपुरी परिवार का सगठन" विषय पर प्रकाश डाला गया है। भोजपुरी सयुक्त परिवार मे ४० (चालीस) सदस्य होते हे ओर रिश्तेदार या सम्बन्धियो की सख्या ३६ (छत्तीस) होती हे जिनका नाम्ना उल्लेख किया गया हे। सयुक्त परिवार के गुण-दोषो का विवेचन भी इस अध्याय मे उपलब्ध होता है।

चतुर्थ अध्याय का वर्ण्य विषय "सयुक्त परिवार के सदस्यो मे पारस्परिक सम्बन्ध" है जिसमे इस परिवार के सदस्यो के सम्बन्ध को मधुर तथा कटु इन दो श्रेणियो मे विभक्त किया गया हे। मधुर सम्बन्धो मे भाई-बहिन का स्वाभाविक तथा अकृत्रिम प्रेम अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ दिखाई पड़ता हे। यह आश्चर्य का विषय है कि भाई और बहिन का ऐसा दिव्य तथा स्वर्गीय प्रेम सस्कृत-साहित्य मे भी नही दिखाई पडता। कटु सम्बन्धो मे सास-पतोहू, ननद-भावज ओर सात-सोत का पारस्परिक सम्बन्ध कटुता की उच्चता पर दृष्टिगोचर होता है। इन सम्बन्धो के प्रतिपादन मे भोजपुरी लोकगीतो का उदाहरण देकर इनकी पुष्टि की गई हे।

पचम अध्याय मे सस्कारो का प्रतिपादन किया गया हे। यो तो सस्कारो की सख्या १६ मानी जाती हे परन्तु भोजपुरी समाज के केवल छ सस्कारो का वर्णन लोकगीतो मे उपलब्ध होता हे। इन सस्कारो मे पुत्र-जन्म तथा विवाह और मृत्यु अत्यन्त प्रसिद्ध हे। पुत्र-जन्म तथा विवाह के अवसर पर अनेक विधि-विधान किये जाते है जिनका प्रामाणिक वर्णन यहा किया गया है। विवाह के अन्तर्गत किये जाने वाले अनेक विधानो का विस्तृत वर्णन यहाँ सबसे प्रथम बार उपलब्ध होता है।

षष्ठ अध्याय का विषय प्रथाए हे जिनमे पर्दे की प्रथा, तिलक-दहेज, छूआ-छूत तथा अनमेल विवाह का वर्णन किया गया हे। इन प्रथाओ मे पर्दा की प्रथा भोजपुरी समाज मे विशेष रूप से प्रचलित है। सभवत इस सम्पूर्ण देश मे भोजपुरी प्रदेश अर्थात् पूर्वी उत्तरप्रदेश तथा पश्चिमी बिहार को छोडकर—पर्दा की प्रथा भारत मे किम्वा ससार मे इस रूप मे कही नही पायी जाती हे। यहा स्त्रिया पुरुषो की तो बात दूर रही, अपने घर की स्त्रियो से भी पर्दा करती हैं। यहा छुआछूत की प्रथा भी अपने उत्कर्ष पर दिखाई पडती हे। "तीन कनौजिया तेरह चूल्हा" की लोकोक्ति यहाँ ही पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है। गायढार की प्रथा का इस प्रदेश की विशेषता समझनी चाहिए। यह प्रथा सभवत अन्यत्र नही है। वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह तथा विधवा-विवाह पर प्रकाश डालकर इस अध्याय को समाप्त किया गया है।

सप्तम अध्याय मे इस प्रदेश म प्रचलित खान-पान का वर्णन किया गया है। पहिले खाद्य-पदार्थो को पाच श्रेणियो मे विभक्त कर प्रत्येक के अन्तर्गत आने वाले विविध भोज्य, चव्य, तथा पेय पदार्थो का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया गया है। भोज्य पदार्थों के अन्तर्गत चावल के प्रकार, भात बनाने, भात परोसने तथा भात खाने की विधि का रोचक वर्णन हे। अचार तथा चटनी के प्रसग म अचार के विविध प्रकारो तथा चटनियो का उल्लेख पाया जाता है। गेहूँ से बनने वाले विशिष्ट भोजपुरी भोजनो मे मकुनी, फूटेहरी, बाटी ओर लिट्टी का विवरण दिया गया हे। मिष्ठान्नो म टिकरी, जलेबी, गाटा और कुटकी का उल्लेख हुआ हे जो ठेठ भोजपुरी हें।

आठवें और नवे अध्याय का वर्ण्य-विषय क्रमश वेशभूषा तथा आभूषण हे। वेशभूषा के प्रसग मे स्त्री तथा पुरुषो के पहिनावे का वर्णन करने के अतिरिक्त, विवाह आदि विशेष अवसरो पर पहिने जाने वाले कपडो का भी विवरण दिया गया है। आभूषण वाले अध्याय मे स्त्रियो द्वारा सिर से पाव तक पहिनने के विविध गहनो का विवरण देने के पश्चात् आजकल के नये फैशन के गहनो पर भी प्रकाश डाला गया है। पुराने फैशन के आभूषण आजकल प्रयोग मे नही लाये जाते। उनका स्थान अब नये ढग (फैशन) के गहनो ने ले लिया है। इन दोनो ही प्रकार के आभूषणो का तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया गया है।

दशम अध्याय मे "अलकरण तथा प्रसाधन के साधनो" पर प्रकाश डालने का नम्र प्रयास किया गया हे। भोजपुरी क्षेत्र की स्त्रियो का जीवन बडा सरल तथा चाकचिक्य से रहित हे। अत यहाँ जो अलकरण तथा प्रसाधन की वस्तुएँ प्रयोग मे लाई जाती है वे सस्ती तथा सुलभ होती है। वे बडी आसानी से उपलब्ध हो जाती है।

एकादश अध्याय मे भोजपुरी लोककला की प्रस्तुति हुई है। इस अध्याय मे वास्तुकला, मूर्तिकला तथा चित्रकला का विशेष रूप से वर्णन है। भोजपुरी जीवन लोक-कला से विहीन नही है। विवाह के अवसर पर अल्पना बनाना तथा कोहबर-घर मे भित्तिचित्रो का निर्माण, इस विषय का प्रचुर प्रमाण है। किम्बहुना, महावर तथा मेहदी लगाने एव गोदना गोदवाने मे भी लोक-कला का दर्शन होता है। वास्तुकला के अन्तर्गत कच्चे, पक्के घरो की बनावट का वर्णन है। कच्चे घरो के बनाने म धरनि, खम्भा, लरही, फरठा आदि वस्तुओ का प्रयोग होता है। इस विषय का वर्णन इस पुस्तक मे पहिली बार ही किया गया है। यद्यपि डॉ० ग्रियर्सन ने अपने 'बिहार पीजेण्ट लाइफ' ग्रन्थ मे इन वस्तुओ का उल्लेख अवश्य किया हे परन्तु इनका क्या उपयोग होता है तथा इनका आकार-प्रकार कैसा होता है इस विषय का उल्लेख वहाँ नही पाया जाता। अत जिज्ञासुओ के लिए इस अध्याय म अनेक उपयोगी बाते प्राप्त हो सकती हैं।

इस ग्रन्थ का द्वादश अध्याय लोक-विश्वास से सम्बन्धित है। इस अध्याय को जम कर लिखा गया है। प्रथम [illegible] विश्वास को छ श्रेणियो मे विभाजित किया गया है। लोक-विश्वास का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि मानव [illegible] अग इससे अछूता नही है। मनुष्य के जीवन मे विभिन्न ग्रहो, राशिया का भी विशेष स्थान है। शनि, मगल तथा राहु आदि ग्रहा के विपरीत होने पर मनुष्य को कष्ट भोगना पडता है यह एक सामान्य विश्वास है। शनिग्रह की [illegible] ही है।

पशु और पक्षियो की गतिविधि से भी शकुन या अपशकुन का ज्ञान प्राप्त होता है। विभिन्न [illegible] दिखाई पडना शुभ तथा अशुभ का कारण होता है। जैसे दूध पिलाती गाय का दशन शुभ तथा गदहे का [illegible] अशुभ है।

इसी प्रकार से शरीर के विभिन्न अगो—जैसे हाथ और आख के सचालन तथा स्फुरण मे भी शुभाशुभ का अनुमान होता है। यात्रा और स्वप्न सम्बन्धी लोक-विश्वासो पर भी प्रकाश डाला गया है। यात्रा मे दिन, ग्रह, नक्षत्र तथा [illegible] शूल आदि का विचार किस प्रकार किया जाता है इसका भी उल्लेख हुआ है। कहने का आशय यह है कि [illegible] जितना सागोपाग तथा विस्तृत वणन यहाँ जिस प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत है उतना अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।

लोक विश्वास वाले अध्याय के आठवे परिच्छेद मे, निषेध (टैबू, Taboo) का जो वणन किया गया है वह [illegible] तथा मौलिक है।

त्रयोदश अध्याय मे मनोरजन के साधनो का विवेचन किया गया है। इस क्षेत्र म, घर म तथा बाहर मैदान म खेले जाने वाले अनेक खेल प्रचलित है। उन्ही का वणन कुछ विस्तार के साथ यहाँ प्राप्त है। भोजपुरी प्रदेश म प्रचलित खेल सस्ते तथा सुलभ है तथा इन्हे निधन मनुष्य भी आसानी से खेल सकता है। परन्तु दुख है कि पाश्चात्य देशो के खेल फुटबाल, क्रिकेट और हाकी के सामने इन खेलो का प्रचलन कम होता जा रहा है। ग्रामीण भजनमण्डली के द्वारा रामायण का गायन तथा दूरदशन के आगे अब रामलीला का प्रचार कम हो गया है।

चतुदश अध्याय का वण्य विषय लोक-औषधि है। ग्रामीण लोग डाक्टर की सहायता के बिना गावो म उपलब्ध औषधियो के द्वारा किस प्रकार आरोग्य लाभ करते हे इसका वणन इस अध्याय मे उपलब्ध है। गाँवो म होने वाले प्रधान रोगो की सख्या प्राय ३६ है जिनमे कुछ तो केवल विश्वास के बल से (Faith cure) ठीक हो जाते है परन्तु कुछ रोगो के लिए औषधि भी दी जाती है। यह दवा गाँवो मे मिलने वाली जडी-बूटी होती है। इस तरह यह लोक औषधि सस्ती तथा सवत्र सुलभ है।

पचदश अध्याय मे भोजपुरी जनता के आर्थिक जीवन का वर्णन उपलब्ध होता है। भोजपुरी क्षेत्र म (चालीस) प्रकार की पेशेवाली जातियाँ पायी जाती है जो विभिन्न प्रकार का व्यवसाय करके अपने उदर की पूर्ति करती है। इन जातियो के व्यवसाय पर प्रकाश डालकर इनके स्वभाव, चरित्र तथा जीवन के सम्बन्ध मे प्रचलित लोकोक्तियो का भी उल्लेख किया गया है। अहीरो के स्वभाव और चरित्र के सम्बन्ध मे ऐसी अनेक लोकोक्तियाँ उपलब्ध होती है, जिनसे उनके आचरण पर प्रचुर प्रकाश पडता है। इसके अतिरिक्त भूमि के प्रकार, गाँवो मे प्रचलित विभिन्न प्रकार के बाँट और मापो का उल्लेख है। स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् दसमलव प्रणाली के मापो, बाटो तथा सिक्को का अब प्रचलन हो गया है। ऐसी स्थिति म इन पुराने बाटो और सिक्को का वणन अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। कुछ दिनो के पश्चात् गाँवो मे कभी प्रचुर रूप मे प्रचलित सेर और छटाँक अतीत की वस्तु बन जायेगा।

षोडश अध्याय मे धार्मिक जीवन का विवेचन किया गया है। गाँवो मे अनेक लोक-देवी और लोक-देवता प्रचलित है जिनकी पूजा सवसाधारण जनता बडी श्रद्धा और भक्ति के साथ किया करती है। जैसे हनुमान्, गणेश, काली मइया आदि। इनके अतिरिक्त हिन्दू देवता-मण्डल (Pantheon) मे अनेक नवीन देवियो की उत्पत्ति हो गई है जिनकी पूजा का प्रचार आज सर्वाधिक है जैसे सतोषी माता, खोखी मइया तथा पिलेग मइया।

भोजपुरी प्रदेश मे अनेक प्रेत-योनिया भी उपलब्ध होती है जिनकी सत्ता तथा प्रभुता के सबंध मे लोगो का अटूट विश्वास है। जैसे भूत, प्रेत, पिशाच तथा राक्षस आदि। इन नीच योनियो (evil spirits) की कुल सख्या १६ है। ये क्रुद्ध होने पर मनुष्यो को कष्ट देने मे समर्थ है।

इस अध्याय मे इन योनियो का बडा ही विस्तृत, सागोपांग तथा प्रामाणिक वर्णन उपस्थित करने का सफल प्रयास किया गया है। जैसे भूतो का वर्णन करते समय भूतो के लक्षण, भूतो का भोजन तथा निवास, इनके भगाने के उपाय, इनके विभिन्न प्रकार आदि का वणन सबसे पहिली बार हिन्दी मे उपलब्ध है। जहाँ तक मुझे ज्ञात है सस्कृत मे भी इन प्रेत-योनियो

का विस्तृत वर्णन कही उपलब्ध नही है। ऐसी दशा मे हिन्दी मे इनके विषय मे कुछ सामग्री प्राप्त करना केवल मृग-मरीचिका ही नही, असभव सा प्रतीत होता है। इस परिस्थिति मे वतमान लेखक का यह दावा है कि इन प्रेत योनियो का यह प्रामाणिक वणन नितान्त मोलिक हे। यह वणन हिन्दी मे सवप्रथम ही उपलब्ध होता है। अत इस दिशा मे यह विस्तृत तथा प्रामाणिक विवेचन नवीन उपलब्धि ही समझनी चाहिए।

सप्तदश अध्याय मे दार्शनिक जीवन का वणन हुआ है। भोजपुरी जनता कमवाद, भाग्यवाद और जन्मान्तरवाद मे विश्वास रखती हे। भोजपुरिया व्यक्ति अत्यन्त कमठ होते हुए भी भाग्यवाद मे अटूट आस्था रखता है। उसके जीवन का महामत्र यह सूक्ति हे—

"होइहे जो राम रचि राखा।
को करि तर्क बढावै साखा॥"

इसी मत्र के आधार पर वह अपने दैनिक जीवन का परिचालन करता है।

अष्टादश अध्याय का विषय "भोजपुरी लोक-सस्कृति का बदलता स्वरूप" है। पाश्चात्य शिक्षा तथा सभ्यता के प्रभाव के कारण, भोजपुरी प्रदेश के जीवन मे महान् परिवतन आ गया है। यह परिवर्तन सामाजिक जीवन के अतिरिक्त धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक किम्बहुना दार्शनिक जीवन मे भी प्रवेश कर गया है। सामाजिक जीवन के अन्तगत वेशभूषा, भोजन-छाजन, रीतिरिवाज, अलकरण -प्रसाधन, खेलकूद, सस्कार आदि का समावेश होता है। इन सभी क्षेत्रो मे परिवतन हो गया है। उदाहरण के लिए खेलो को लिया जा सकता है। अब कबड्डी और गुल्ली डण्डा का स्थान क्रिकेट, फुटबाल और हाकी ने ले लिया है। धार्मिक जीवन मे विशेष परिवतन परिलक्षित होता है। नवयुवको की अब देवी-देवताओ मे न तो आस्था है और न भक्ति। दार्शनिक क्षेत्र मे भी इसका चचु-प्रवेश हो गया है। यह नितान्त परिताप का विषय है।

उनविंशति (उन्नीसवे) अध्याय मे भोजपुरी लोगो के स्वभाव और चरित्र का विवेचन प्रस्तुत है। भोजपुरिया स्वभाव से ही स्पष्टवादी होता है। वह लाग-लपेट वाली बाते करना नही जानता। वह केवल स्पष्ट बात करना जानता है। उसे बात बनाने नही आता। इसी स्पष्ट स्वभाव के कारण वह वन्चक नही है। वह किसी को धोखा नही दे सकता और न किसी से धोखा खाना वह जानता है। वह बल, पौरुष मे विश्वास करता है। इसीलिए लाठी मे उसकी अटूट आस्था विद्यमान है। डॉ० ग्रियसन ने अपनी पुस्तक 'भारत का भाषा सर्वे' मे इन भोजपुरियो के स्वभाव तथा चरित्र का बडा विशद तथा यथार्थ वर्णन प्रस्तुत किया है। भोजपुरी लोगो की इसी चारित्रिक विशेषताओ का वर्णन करना इस अध्याय का विषय हे। लोकोक्तियो तथा कथाओ का दृष्टात देकर इन लोगो के इस स्वभाव तथा चरित्र की विशेषता यहाँ वर्णित है जिससे पता चलता है कि भोजपुरिया कितना कमठ चरित्रवान् तथा साहसिक होता है।

बीसवे अध्याय मे उपसहार किया गया है। इस पुस्तक के अन्त मे तीन परिशिष्ट भी दिये गये है जो निम्न है—

(१) सशोधन तथा परिवर्धन।
(२) सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची।
(३) अनुक्रमणिका।

इस प्रकार दो खण्डो तथा बीस (२०) अध्यायो मे भी भोजपुरी लोक-सस्कृति का यह विश्वकोश अपनी परिपूर्णता को प्राप्त करता है।

(५) विशिष्ट निवेदन

इस ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय मे "भोजपुरी लोक-साहित्य मे स्त्रियो का चित्रण" किया गया है। इस सम्बन्ध मे भोजपुरी समाज मे पाये जाने वाली सती तथा कुलटा दोनो ही प्रकार की स्त्रियो का उल्लेख हुआ है। परन्तु इसमे कोई सन्देह नही कि भोजपुरी स्त्रियाँ गगा के जल के समान पावन तथा पवित्र एव हिम-राशि के समान निष्कलक तथा शुभ्र है।

इस अध्याय मे भोजपुरी लोक-साहित्य मे भोजपुरी स्त्रियो का जैसा स्वरूप उपलब्ध होता है उसी का चित्रण हू-ब-हू उसी रूप मे किया गया है। अपने प्रत्येक कथन को लोक-गीतो की पक्तियो को उद्धृत कर उसे प्रामाणिकता प्रदान करने का सफल प्रयास किया गया है। फिर भी किसी आलोचक को इसमे वर्णन की अतिरजना या अतिशयोक्ति की गध मिल सकती है। उन आलोचको की आलोचना के उत्तर मे मेरा यही नम्र निवेदन है कि मेरा जन्म भोजपुरी प्रदेश के ठेठ (अटट) गाँव मे हुआ है। भोजपुरी समाज मे मै पैदा हुआ हूँ और उसी मे मेरा पालन-पोषण हुआ है। भोजपुरी जन-जीवन मे मै रमा हूँ और इसी जीवन को जिया भी हूँ। अत मैंने अपने पचासो वर्षों के अनुभव के बल पर स्त्रियो की दशा का जो चित्रण

किया है वह बिल्कुल सत्य है, ठीक है। उसमे अतिरजना की मात्रा बिल्कुल भी नही है। लोकगीतो का प्रामाण्य [illegible] देने के पश्चात् मेरे अतिशयोक्तिपूण वणन के लिए अवकाश ही कहा रह जाता है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने भारतीय स्त्री समाज की दशा का वणन करते हुए जो लिखा है [illegible] —

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल मे है दूध और आँखो मे पानी॥"

परतु भोजपुरी समाज की स्त्रियो के विषय मे बिना किसी सन्देह तथा [illegible] के, निश्चित [illegible]।

"भोजपुरी अबला की है यह दुखद कहानी,
सिर पर है अपमान, और आँखो मे पानी॥"

लोकगीतो से प्रमाणित कर स्त्रियो का जो यह चित्रण किया है वह कुछ प्राचीन समाज [illegible]। इस कथन मे सन्देह नही। परन्तु यह सवथा सत्य है। आधुनिक शिक्षा के प्रचार के कारण [illegible] भोजपुरी [illegible] समाज मे भी महान परिवतन पाया जाता है। अब गावो मे स्त्री-शिक्षा का प्रचार होने लगा है। [illegible] पदो पर आसीन है। पुरुषो का दृष्टिकोण भी अब स्त्रियो के प्रति बदला है। [illegible] बहुत कुछ परिवतन हुआ है और वे अब पुरुषो के समान ही सम्मान पद की अधिकारिणी मानी जाने लगी है।

(६) प्रस्तुत ग्रन्थ की विशेषताएँ

(१) इस ग्रन्थ की सबसे बडी विशेषता यह है कि यह सवथा मौलिक ग्रन्थ है। इस पुस्तक मे जिन [illegible] का प्रतिपादन हुआ है उसका वणन हिन्दी अथवा अग्रेजी की किसी भी पुस्तक मे उपलब्ध नही है। [illegible] है वह लेखक के पचासो वर्षों के दीघकालीन पठन और मनन के आधार पर अकित है। [illegible] भोजपुरी समाज को जिस प्रकार देखा तथा परखा है, जिस प्रकार इसको जिया है तथा इस समाज मे रहकर उसका अनुभव प्राप्त किया है उसी को यहाँ लिपिबद्ध करने का प्रयास किया गया है। अत इस पुस्तक मे सुनी सुनाई बातो पर [illegible], अपने निरीक्षण एव परीक्षण मे जिन वस्तुओ को पाया गया है उन्ही का यथावत वणन प्रस्तुत करने का प्रयास [illegible] है। अनुभूति के निकष ग्रीवा पर कस कर जिन तथ्यो, प्रथाओ तथा विधि-विधानो को प्रचलित पाया गया है उन्ही का प्रतिपादन यहाँ प्रस्तुत है। अत पठन, मनन तथा अनुभव के आधार पर लिखा गया यह ग्रन्थ सवथा मौलिक तथा नवीन है।

(२) सस्कार सम्बन्धी विधि-विधानो का सवप्रथम वणन—

भोजपुरी प्रदेश मे प्रधानतया छ सस्कार प्रचलित है। इनमे पुत्र-जन्म, विवाह और मृत्यु ही प्रधान है। भोजपुरी प्रदेश मे पुत्र जन्म के अवसर पर अनेक विधि-निषेध प्रचलित है जिनका पालन करना अत्यन्त आवश्यक है। जैसे सौर-गृह (सूतिका गृह) मे किसी पुरुष का प्रवेश न करना। जूता पहिन कर नही जाना। इसके साथ ही अनेक विधि विधानो का भी किया जाता है—जैसे सूतिकागृह के द्वार पर सदा अग्नि प्रज्वलित रखना। धाय को छोडकर किसी भी व्यक्ति का प्रवेश निषिद्ध तथा ज्योतिषी के द्वारा शुभ मुहुर्त के बतलाने पर भी सूतिका-गृह से प्रसूता स्त्री को बाहर निकालकर स्नान आदि करना।

विवाह के अवसर पर भी अनेक विधि-निषेधो का विधान पाया जाता है, भावी वर का गाँव की सीमा को नही लाँघना कुँआँ नही झाकना तथा तालाब मे स्नान के लिए नही जाना आदि। इसी प्रकार के विवाह के लिए विधि विधानो की एक लम्बी सूची है जिसका पालन करना आवश्यक ही नही अनिवाय माना जाता है। इन विधानो मे निम्नाकित प्रधान है—जैसे — वर रक्षा, तिलक चढाना, बारात की तैयारी, बारात का प्रस्थान, माटी कोढ़ाई, हल्दी चढाई, मटकोर, परिछावन मण्डप निर्माण, लावा मेराई, कन्या निरीक्षण, सप्तपदी और सुमगली आदि। गृह्यसूत्रो मे इन विधि विधानो की एक लम्बी तालिका दी गई है।

इसी प्रकार मृत्यु सस्कार के अवसर पर भी अनेक विधि-विधान किये जाते है। दाही व्यक्ति के लिए विहित अनेक विधि-निषेधो का पालन करना पडता है। जैसे प्रतिदिन मृतात्मा की शान्ति के लिए घण्ट मे जल देना, पत्तल या मिट्टी के पात्र मे भोजन करना, दशाह के दिन पिण्डदान देना तथा ब्रह्मभोज आदि।

उपर्युक्त सस्कारो के अवसर पर किये जाने वाले इन विधि-विधानो का प्रचुर रूप मे प्रचार पाया जाता है। परन्तु

जहाँ तक मुझे ज्ञात है इन विधि निषेधो का वणन हिन्दी मे कही नही किया गया है। इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ मे इन विविध विधि-विधानो का वणन पहिली बार प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

३ **निषेध (टैबू)**—लोक-सस्कृति (फोकलोर) मे निषेध (टैबू) का अपना विशिष्ट स्थान है। अग्रेजी मे इस विषय का प्रतिपादन करने वाली अनेक पुस्तके उपलब्ध होती है। इन ग्रन्थो मे डॉ० सर जेम्स फ्रेजर का बारह भागो मे लिखा गया 'गोल्डेनबाऊ'' नामक ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध है। भोजपुरी समाज मे अनेक प्रकार के 'टैबू' (निषेध) प्रचलित है जिन्हे हम अपने जीवन मे प्रतिदिन व्यवहृत करते है। परन्तु इस विषय मे भी कोई पुस्तक हिन्दी मे उपलब्ध नही है। अत डॉ० फ्रेजर की उपर्युक्त पुस्तक का मनन तथा मन्थन करके इस अध्याय को लिखा गया है। इसके साथ ही भोजपुरी समाज मे उन निषेधो (टैबुओ) का पता लगाकर उनका विस्तृत विवेचन यहाँ प्रस्तुत है।

४ भोजपुरी क्षेत्र मे अनेक नीच योनियो (Evil spirits) की स्थिति पायी जाती है। सच तो यह है कि सवसाधारण जनता का इन योनियो मे अटूट विश्वास है। इनकी दिनचर्या अधिकाश रूप मे इनके द्वारा ही परिचालित होती है। भूत, प्रेत, राक्षस, पिशाच, दैत्य, दानव ऐसी ही योनिया है। यदि किसी व्यक्ति का रोग दवा के द्वारा अच्छा नही होता तो ऐसा विश्वास किया जाता है कि इसे किसी भूत, जिन या पिशाच ने ग्रस लिया है।

इन प्रेतयोनियो का प्रामाणिक किम्वा साधारण वणन भी हिन्दी मे उपलब्ध नही है। बहुत प्रयास करने पर सस्कृत मे कुछ सामग्री भले ही मिल जाय परन्तु हिन्दी मे इस विषय का अत्यन्ताभाव है। ऐसी परिस्थिति मे विलियम क्रुक का प्रसिद्ध (दो भागो मे) ग्रन्थ "पापुलर रिलिजन एण्ड फोकलोर आफ नादन इण्डिया" ही एकमात्र सहायक सिद्ध हुआ है। इसी ग्रन्थ का मनन तथा अनुशीलन करके इस अध्याय मे इस विषय का प्रामाणिक विवरण दिया गया है।

(५) लोक विश्वासो का प्रामाणिक वर्णन

भोजपुरी प्रदेश मे अनेक लोक-विश्वास प्रचलित है। सच तो यह है कि भोजपुरी लोगो का जीवन लोक-विश्वासो के द्वारा ही परिचालित होता है। पशु, पक्षी, वृक्ष, लता, पुष्प आदि के सम्बन्ध मे सैकडो विश्वास प्रचलित है। यही बात मानव शरीर के सम्बन्ध मे भी समझनी चाहिए। परन्तु यात्रा के सम्बन्ध जो विश्वास प्रचलित है उनका विशेष महत्त्व माना जाता है क्योकि इनका हमारे दैनिक जीवन से सम्बन्ध है।

किसी यात्रा पर प्रस्थान करने के पूर्व, दिन ग्रह नक्षत्र तथा दिशाशूल आदि का विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। जायसी ने 'पदमावत' मे इनका वर्णन करके लोक-जीवन मे इनके महत्त्व का प्रतिपादन किया है।

इस अध्याय को लिखते समय हिन्दी मे किसी पुस्तक के अत्यन्त अभाव का अनुभव हुआ। हाँ, सस्कृत मे डॉ० शर्मा की विद्वत्तापूर्ण पुस्तक 'सस्कृत काव्य मे शकुन' के अतिरिक्त वृहत-सहिता तथा महाभारत एव रामायण से अवश्य सहायता ली गयी है। अत हिन्दी मे लोक-विश्वासो का इतना सागोपाग तथा प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत करने का यह पहिला ही अवसर समझना चाहिए।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् दशमलव प्रणाली लागू करने के लिए इस देश के मापो, बाटो तथा सिक्को मे भी परिवर्तन हो गया है। भोजपुरी प्रदेश मे बाटो मे छटाँक, सेर, पसेरी और मन प्रचलित थे परन्तु अब इनके स्थान पर ग्राम और किलो का प्रयोग होने लगा है। इसी प्रकार मापो मे गज और गिरह का स्थान मीटर ने और दूध नापने के पैमाना को लीटर ने ले लिया है। रुपया, आना और पैसा मे 'आना' का स्थान अब नही रहा और अब 'पैसा-रुपया' से ही काम चलाना पडता है। धरती के माप के सम्बन्ध मे भी यही बात समझनी चाहिए। इस पुस्तक मे दशमलव प्रणाली के अनुसार आजकल जो माप, बाट और सिक्के प्रचलित है उनका विवरण दिया गया है।

अब गाँवो मे भी कच्चे मकान बहुत कम बन रहे है। इनका स्थान धीरे-धीरे पक्के मकान ले रहे है। कच्चे मकानो की दीवाल मिट्टी की होती थी और वे खपडा तथा नरिया से छाये जाते थे। इन मकानो के बनाने मे लरही, बाँस, फरठा, धरनि, घोडमुहा और खम्भा आदि का प्रयोग या उपयोग किया जाता था। परन्तु पक्के मकानो के बनने के कारण इस शब्दावली के प्रयोग का अब अभाव पाया जाता है। डॉ० सर जाज ग्रियर्सन ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "बिहार पीजेण्ट लाइफ" मे इस विषय का वर्णन किया है। अत इस ग्रन्थ के आधार पर इस विषय का विवेचन यहाँ प्रामाणिक रूप मे किया गया है।

(७) नामूल लिख्यते किंचित्

इस ग्रन्थ मे इस मल्लीनाथी प्रतिज्ञा को निभाने का पूर्ण प्रयास किया गया है कि—

"नामूल लिख्यते किंचित्,
नानपेक्षितमुच्यते ।"

अत इस पुस्तक मे कोई भी वस्तु ऐसी नही लिखी गई है जो निर्मूल हो और जिसकी पुष्टि किसी प्रमाण से न की गई हो। इसीलिए ग्रन्थ मे जो भी वस्तु लिपिबद्ध है उसकी पुष्टि लोक-गीतो तथा लोकोक्तियो को उद्धृत कर की गयी है। स्थान-स्थान पर अनेक विद्वानो के ग्रन्थो का भी उद्धरण दिया गया है। जिन अध्यायो मे किसी विशिष्ट ग्रन्थ से सहायता ली गई है उसका उल्लेख इस वक्तव्य मे किया गया है। इस प्रकार प्रत्येक कथन के लिए किसी विद्वान के ग्रन्थ का उल्लेख तथा लोक-गीता का उद्धरण प्रस्तुत है।

परन्तु जहाँ इन दोनो का अभाव है वहाँ निजी मनन, अध्ययन, पर्यवेक्षण एव अनुभव के आधार पर ही किसी वस्तु का वर्णन किया गया है। बहुत-सी बाते समाज मे प्रचलित प्रथाओ के निरीक्षण के बल पर कही गयी हैं। अत इस पुस्तक मे उपलब्ध सभी कथन प्रबल प्रमाणो के आधार पर आश्रित है। अतएव किसी भी वस्तु का कथन अमूल या निर्मूल नही समझना चाहिए।

(८) भोजपुरी लोक-सस्कृति का विश्वकोश

यह विशालकाय ग्रन्थ भोजपुरी लोक-सस्कृति का विश्वकोश है। इसमे भोजपुरी प्रदेश मे निवास करने वाली जनता के रहन-सहन, रीति-रिवाज, खान-पान, वेशभूषा, अलकार-प्रसाधन, सस्कार और प्रथाओ के वर्णन के अतिरिक्त उनकी आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा दार्शनिक अवस्था का भी सागोपाग विवेचन किया गया है।

जहाँ तक इन पक्तियो के लेखक को ज्ञात है आज तक (वसन्त पचमी स० २०४५ तदनुसार १०-२-८९ ई०) हिन्दी तथा अग्रेजी मे भी ऐसे किसी ग्रन्थ का अत्यन्त अभाव है जिसमे भोजपुरी जनता के जीवन के विभिन्न पक्षो का इतना सागोपाग तथा प्रामाणिक वर्णन प्रस्तुत किया गया हो। अत लेखक की विनम्र सम्मति मे प्रस्तुत पुस्तक का महत्व सास्कृतिक होने के अतिरिक्त ऐतिहासिक भी है। आज से पचास वर्षों के पश्चात् भोजपुरी समाज मे इतना परिवर्तन हो जायगा कि पुरानी परम्पराओ को जानने वाला तथा प्राचीन प्रथाओ का पालन करने वाला कोई पुरुष कदाचित् ही मिले। ऐसी दशा मे यह पुस्तक भोजपुरी समाज के इतिहास को प्रस्तुत करने मे सहायक सिद्ध होगी।

शत-साहस्री सहिता के रचयिता महर्षि व्यास ने अपने ग्रन्थ के विषय मे बड़े ही गर्व तथा अभिमान के साथ कहा है कि—

"अर्थे धर्मे च कामे च,
मोक्षे च भरतर्षभ।
यदि हास्ति, तदन्यत्र
यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्॥"

भगवान् व्यास के शब्दो मे थोडा परिवर्तन करके इस विनम्र लेखक का भी इस ग्रन्थ के सम्बन्ध मे यही निवेदन है कि—

"यदि हास्ति न तदन्यत्र
यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्॥"

कृतज्ञता ज्ञापन—

मै उन विद्वानो तथा सहायको के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करना चाहता हूँ जिनसे इस ग्रन्थ के निर्माण म दिशा-निर्देशन तथा सहायता प्राप्त हुई है। सर्वप्रथम मैं अपने पितृ-कल्प, ज्येष्ठ भ्राता, पद्मभूषण, आचार्य प० बलदेव उपाध्याय' के श्रीचरणो मे अपना कोटिश प्रणाम अर्पित करता हूँ जिन्होने इस पुस्तक के प्रति 'शुभाशसा' लिखकर मुझे तथा इस ग्रन्थ का गौरव प्रदान किया है। पूज्य ज्येष्ठ भ्राता की प्रेरणा और प्रोत्साहन ही मेरे साहित्यिक जीवन का बल और सम्बल है। आज मै जो कुछ भी हूँ उन्ही का निर्माण किया हुआ हूँ। उनके वरद हस्त तथा अजस्र आशीर्वाद के अभाव मे मेरे लिए कुछ कर पाना सभव नही है। अत ऋषिकल्प, पूज्य भ्राता को मैं पुन नतमस्तक हो अभिवादन करता हूँ।

सस्कृत साहित्य तथा भाषा शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् डॉ० विद्यानिवास मिश्र, कुलपति, काशी विद्यापीठ वाराणसी ने इस पुस्तक की विद्वत्तापूर्ण भूमिका लिखकर इस ग्रन्थ के महत्त्व को बढा दिया है। अनेक कार्यों मे सतत व्यस्त रहते हुए भी उन्होने अपना अमूल्य समय देकर इस भूमिका को लिखने की कृपा की इसके लिए मैं उनका हृदय से अत्यन्त आभारी हूँ

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के प्रधानमत्री डॉ० प्रभातशास्त्री का म आजीवन ऋणी हू जिनकी कृपा ने ही यह वृहत् ग्रन्थ प्रकाश मे आकर हिन्दी-साहित्य की वृद्धि करने मे समर्थ हो सका है। साहित्य-विभाग के अध्यक्ष प० हरिमोहन मालवीय का मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिनकी सहायता तथा कृपा के कारण ही यह विशालकाय ग्रन्थ प्रकाशित हो सका है। मालवीय जी ने इस पुस्तक को सुन्दर तथा सचित्र बनाने मे अथक प्रयास किया है। इनके सतत सहयोग तथा तत्परता के अभाव मे इस ग्रन्थ का प्रकाशन सभव नही था। इन्होने इस पुस्तक के शीघ्र प्रकाशन के लिए भी प्रयत्न किया है। अतएव मै उनका हृदय से आभार स्वीकार करता हूँ।

मेरे कनिष्ठ पुत्र डॉ० रविशकर उपाध्याय एम० ए०, पी० एच० डी०, डि०लिट् ने इस पुस्तक के निर्माण मे मुझे अनेक प्रकार की सहायता पहुँचाई है। अत वे मेरे आशीर्वाद के भाजन है।

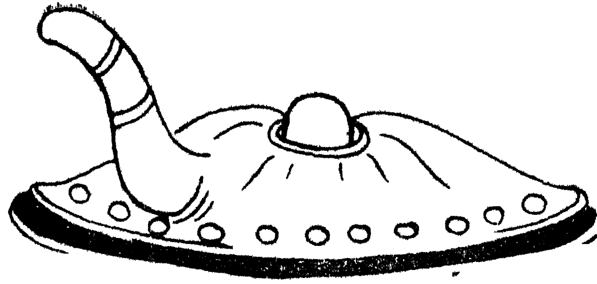
अन्त मे बाबा विश्वनाथ और भगवती अन्नपूर्णा से मै यही प्राथना करता हूँ कि वे सुन्दर स्वास्थ्य तथा लोक-साहित्य सम्बन्धी पुस्तक-रचना की मुझे शक्ति द जिससे मै आजीवन इसकी सेवा मे सलग्न रह सकू।

"देहि सौभाग्यमारोग्य,
देहि मे परम सुखम्।
वयो देहि, वल देहि,
यशो देहि, मद जहि।"

एवमस्तु। तथास्तु।

कृष्णदेव उपाध्याय
लोक सस्कृति शोध सस्थान,
वाराणसी

वसन्त पचमी, स० २०४५ वि०
तदनुसार १०।२।८९



भोजपुरी क्षेत्र का महत्त्व

भोजपुरी प्रदेश कोई राजनैतिक ईकाई नही है। बल्कि यह वह सास्कृतिक भूखण्ड है जिसने इस देश की राजनीति तथा सभ्यता के प्रचार मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। वैदिक काल से ही यह क्षेत्र अपनी राजनीतिक तथा सास्कृतिक महत्ता के लिए प्रसिद्ध रहा है।

भगवान् राम के विद्या गुरु महर्षि विश्वामित्र की तपोभूमि यही क्षेत्र रहा है। ऐसा कहा जाता है कि राम ने अपने गुरु के आदेश से ताडका का बध बक्सर नामक स्थान मे किया था, जो भोजपुर मे अवस्थित है।

ससार के दो महान धर्मो—बौद्ध धम तथा जैन धम—को जन्म देने का श्रेय इसी भूखण्ड को प्राप्त है। भगवान बुद्ध का जन्म कपिलवस्तु मे हुआ था और उन्होने महानिर्वाण कसिया नामक स्थान मे प्राप्त किया जो देवरिया जिले मे स्थित कुशीनगर के नाम से आज भी विख्यात है। बुद्ध ने बोधगया मे सम्बोधि प्राप्त कर अपने धम का सर्वप्रथम प्रचार, सारनाथ नामक स्थान से प्रारम्भ किया था, जो वाराणसी के पास है। इन्होने यही से अपने 'धम-चक्र' के प्रवतन का शुभारम्भ किया था जो बाद मे समस्त भारत किम्वा विश्व मे प्रचलित हो गया। जैन धम के प्रवतक महावीर की जन्मस्थली वैशाली नगरी मानी जाती है। "अहिसा परमोधम" इस उपदेश का शखनाद इसी भोजपुर की भूमि मे सबसे पहिले हुआ था।

राजनैतिक दृष्टि से तो इस प्रदेश का समधिक महत्त्व दिखाई पडता है। भगवान् बुद्ध के समय मे सोलह महाजनपदो का उल्लेख पाया जाता है जिनमे काशी, कोशल तथा मगध अत्यधिक प्रसिद्ध थे। इनमे से काशी और कोशल महाजनपदो का अधिकाश भाग आज के भोजपुरी जनपद मे अन्तर्भुक्त था। तत्कालीन राजनैतिक इतिहास मे इन तीनो जनपदो ने महत्त्व-पूर्ण भूमिका निभाई है।

भारत का प्रथम सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य्य पिप्पली वन के मोरिय जाति का क्षत्रिय था, जिसने समस्त उत्तरी भारत मे एकछत्र साम्राज्य की स्थापना की। इसी का पौत्र सम्राट अशोक था जिसने युद्ध विजय के स्थान पर धम्म विजय की स्थापना करके ससार मे बौद्धधम का प्रचार किया। अपनी प्रजा-वत्सलता तथा दयालुता के कारण अशोक की गणना ससार के प्रसिद्ध सम्राटो मे की जाती है। चन्द्रगुप्त तथा अशोक भोजपुरी जनपद मे ही उत्पन्न हुए थे। [illegible] पश्चिमी पिप्पली वन के मोरियो की सन्तान थे।

भारत के मध्ययुगीन इतिहास मे भी इस क्षेत्र का महत्व रहा है। बिहार राज्य मे सासाराम जनपद (भोजपुरी क्षेत्र) मे उत्पन्न बहादुर शेरशाह सूरि ने अपनी सेना के द्वारा चौसा (बिहार) नामक स्थान मे हुमायू को परास्त किया था। इतना ही नही उसने अपने वीर बाँकुडे भोजपुरी सैनिको को लेकर दिल्ली पर भी आक्रमण कर दिया था तथा मुगल समाट् हुमायू को भगाकर अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया। अपने अल्पकालीन राज्यकाल मे अनेक महत्त्वपूर्ण काय किये जो आज भी उसकी कीर्ति को उजागर किये हुए है।

भारतीय स्वतन्त्रता के प्रथम सग्राम मे, सन् १८५७ ई० मे, शाहाबाद (अब भोजपुर जिला) के निवासी बाबू कुवर सिह ने अपनी बुढापावस्था मे भी अग्रेजो से युद्ध कर उनके सैनिको के छक्के छुड़ा दिये थे। आज भी भोजपुरी लोकगीतो मे कुँवर सिह की वीरता के गीत गाये जाते है।

किम्बहुआ, आधुनिक स्वतत्रता सग्राम मे भी भोजपुरी क्षेत्र के लोगो ने प्रमुख भाग लिया है। सन् १९४२ ई० के 'भारत छोडो' आन्दोलन के समय, भोजपुरी क्षेत्र के प्रमुख नगर बलिया मे सवप्रथम स्वराज्य की स्थापना हुई थी। इस जन-पद के स्वतत्रता सेनानियो ने कुछ दिनो के लिए यहाँ अग्रेजी राज्य को समाप्त कर दिया था। स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्र-पति डा० राजेद्र प्रसाद की जन्मभूमि होने का श्रेय इसी प्रदेश के सारन जिले के जीरादेई गाँव को प्राप्त है। समाजवादी आन्दोलन के जन्मदाता लोकनायक जयप्रकाश नारायण की कमभूमि भले ही बिहार (पटना) रहा हो, परन्तु उनका भी जन्म इसी जनपद के बलिया जिले के सिताब दियरा गाव मे हुआ था जो आज उनकी स्मृति मे "जयप्रकाश नगर" के नाम से विख्यात है। कुछ वर्षों पूव इस देश की सर्वश्रेष्ठ न्यायपालिका—सुप्रीम कोर्ट—के प्रधान न्यायाधीश तथा व्यवस्थापिका—ससद के स्पीकर के पद को भोजपुरी प्रदेश के सपूतो ने ही सुशोभित किया था। यह किसी भी प्रदेश के लिए गौरव की वस्तु है।

ये सब बाते लिखने का मेरा एकमात्र उद्देश्य भोजपुरी-क्षेत्र की राजनैतिक तथा सास्कृतिक महत्ता का प्रतिपादन करना है। पाठको को यह बतलाना ही मेरा एकमात्र लक्ष्य है कि भोजपुरी प्रदेश (या भूखण्ड) ने इस देश के राजनैतिक तथा सास्कृतिक इतिहास मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। किसी जाति या किसी क्षेत्र के साथ पक्षपात नही।

भोजपुरी क्षेत्र मे सभी जातियो तथा धर्मों का निवास पाया जाता है। यहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सभी समान

भाव से सुखपूर्वक निवास करते है। हरिजनो के साथ समान रूप से व्यवहार किया जाता है तथा वे भी समान रूप से शिक्षा प्राप्त कर नौकरी करते है। किम्बहुना, इस क्षेत्र मे विशेषकर मिर्जापुर जिले मे अनेक आदिवासी, हरिजन तथा गिरिजन भी निवास करते है जो अपने जीवन को सुख के साथ बिताते है। प्राचीन रूढिया और परम्पराएँ धीरे-धीरे नष्ट हो रही है। स्पर्शास्पश की भावनाएँ भी अब नष्ट-सी हो गयी है। इन जातियो के सबध मे ऊँच-नीच के विचार मे अब बडा परिवतन आ गया है। इस प्रकार भाजपुरी प्रदेश मे सभी जातियो के लोग सद्भावपूवक रहते है और किसी से द्वेष या ईर्ष्या की भावना नही रखते।

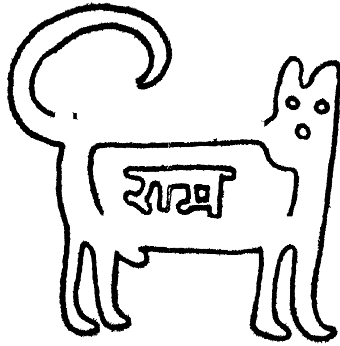
भोजपुरी प्रदेश के लोगो मे क्षेत्रीयता का अभाव पाया जाता है। ये देश के अनेक राज्यो मे फैले हुए है। उत्तरप्रदेश के पूर्वी नौ जिलो तथा बिहार राज्य के नौ-दस जिलो मे यह क्षेत्र फैला हुआ है। इसके अतिरिक्त बम्बई के अँधेरी मे, बगाल के चटकलो मे और आसाम के चाय बागानो मे लाखो की सख्या मे भोजपुरी लोग पाये जाते है। परन्तु इन लोगो मे क्षेत्रीयता की भावना का नितान्त अभाव पाया जाता है।

भोजपुरी जनता शत-प्रतिशत राष्ट्रीय है। वह समस्त भारत को अपना देश समझती है। इसीलिए यहाँ के निवासी प्रान्तीयता, क्षेत्रीयता या स्थानीयता के क्षुद्र बन्धनो से अपने को नही बाधना चाहते। इसी राष्ट्रीय भावना के कारण लगभग ६-७ करोड की सख्या मे विद्यमान होने पर भी भोजपुरियो ने कभी प्रान्तीयता के प्रश्न को नही उठाया। भोजपुरी लोगो का मूलमत्र है—"यह भारत देश हमारा है। मेरा देश महान्। हम भारत की है सन्तान।" इस प्रकार जब समस्त देश ही अपना है तब प्रान्तीयता अथवा जातीयता की भावना ही कहाँ से पैदा हो सकती है।

'भोजपुरी लोक-सस्कृति' पुस्तक को लिखकर किसी एक क्षेत्र या प्रदेश की लोक-सस्कृति को प्रचारित करने का प्रयास नही किया गया है। प्रत्युत यह उस असख्य जनता की सस्कृति को उजागर करने का विनम्र प्रयास है जो भारत मे करोडो की सख्या मे विराजमान है तथा इस देश के बाहर मारिशस, फीजी, सुरीनाम, गुआना, दक्षिण अफ्रीका आदि देशो मे भी लाखो की सख्या मे निवास करते है। इस ग्रन्थ के द्वारा राष्ट्रीय एकता (National Integration) तथा भावनात्मक एकता (Emotional Integration) को प्रचारित करने का लघु प्रयास किया गया है। इसमे जिस सस्कृति का वणन किया गया है, जिन सस्कारो तथा विधि-विधानो का विवरण दिया गया है वे केवल भोजपुरी प्रदेश मे ही नही बल्कि थोडे-बहुत अन्तर से सवत्र प्रचलित है।

इतना ही नही, विदेशो मे भी जो भारतीय—विशेषकर भोजपुरी भाषी लोग है उनसे भी भावनात्मक एकता स्थापित करने मे इस ग्रन्थ से सुविधा उत्पन्न होगी। उन प्रवासी भारतवासियो के हृदय मे अपने देश की सस्कृति को जानने की भावना उत्पन्न होगी। इस तथ्य का साक्षात्कार लेखक ने अपनी मारिशस यात्रा के दौरान स्वय किया है। अत मेरा यह दृढ विश्वास है कि इस पुस्तक के द्वारा राष्ट्रीय तथा भावनात्मक एकता की स्थापना होगी तथा इसकी सवृद्धि होगी।

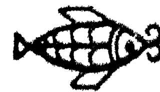
—कृष्णदेव उपाध्याय



संकेत-शब्द-सूची

⊙○

उपाध्याय	—कृष्णदेव उपाध्याय
ऋ० वे०	—ऋग्वेद
जे० आर० ए० एस०	—जनल आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी
दु० स०	—दुर्गा सप्तशती
द्वि० स०	—द्वितीय सस्करण
नै० च०	—नैषधीय चरितम्
बा० का०	—बालकाण्ड
बौ० ध० सू०	—बौधायन धम सूत्र
वि० ध० सू०	—विष्णु धम सूत्र
भो० लो० गी०	—भोजपुरी लोक गीत
भो० लो० गी० अ०	—भोजपुरी लोकगीतो का अध्ययन
भो० लो० गी० क० र०	—भोजपुरी लोकगीतो मे करुण रस
भो० लो० गी० वि० रू०	—भोजपुरी लाकगीतो के विविध रूप
भो० लो० गी० भा०	—भोजपुरी लाकगीत भाग १
भो० लो० सा० अ०	—भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन
भो० लो०	—भोजपुरी लाकोक्तियाँ
भो० लो० मु०	—भोजपुरी लाकोक्तियाँ तथा मुहावरे
भो० लो० सा०	—भोजपुरी लोक साहित्य
भो० लो० स०	—भोजपुरी लोक सस्कृति
रा० च० मा०	—राम चरित मानस
लिं० स० इ०	—लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया
श० शे० ति०	—शशि शेखर तिवारी
शु० यजु० स०	—शुक्ल यजुर्वेद सहिता

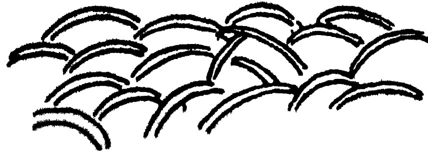


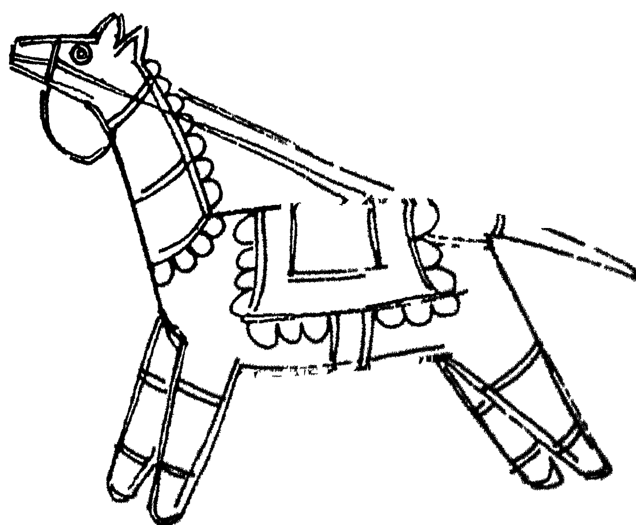
विषय-सूची

○○

परिशिष्ट (२)

परिशिष्ट (३)





प्रस्तावना

सस्कृति का स्वरूप

○○

सस्कृति शब्द का अर्थ

सस्कृति शब्द सम् उपसर्गक 'कृ' धातु से निष्पन्न होता है। सस्कृत व्याकरण के अनुसार सम् उपसग के आगे कृति अथवा कार शब्द के होने पर इसके फलस्वरूप सम् + कृति = सस्कृति तथा सम् + कार = सस्कार आदि शब्दो की निष्पत्ति होती है। आप्टे के सस्कृत-अग्रेजी कोश मे सस्कृत, सस्कार तथा सस्क्रिया आदि शब्दो की उपलब्धि होती है। सस्कृत शब्द का अर्थ है—सस्कार किया हुआ, पालिश किया हुआ, दोष अथवा त्रुटियो को निकालकर शुद्ध किया हुआ। इसी प्रकार से सस्कार शब्द का भी अथ है—किसी वस्तु का सशोधन करना, उत्तम बनाना तथा उसका परिष्कार करना। आप्टे के उपर्युक्त कोश मे 'सस्कृति' शब्द उपलब्ध नही होता। इससे सहज मे ही यह अनुमान किया जा सकता है कि आजकल जिस अथ मे सस्कृति शब्द का व्यवहार किया जा रहा है, प्राचीन काल मे उसका यह अथ नही था। सस्कृत साहित्य मे सस्कृति शब्द के प्रयोग के स्थान पर सस्कार और सस्क्रिया शब्द का ही व्यवहार पाया जाता है। यद्यपि कुछ विद्वानो ने प्राचीन भारतीय साहित्य मे भी सस्कृति शब्द के प्रयोग को खोजने का अथक प्रयास किया है परन्तु प्राचीन ग्रन्थो मे जो सस्कृति शब्द उपलब्ध होता है वह वर्तमान अथ को प्रकाशित करने मे नितान्त असमर्थ है।

सस्कृति और अग्रेजी का कल्चर शब्द

आजकल का सस्कृति शब्द अग्रेजी के 'कल्चर' का पर्यायवाची है। निरुक्ति की दृष्टि से 'कल्चर' शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा की कोलर (Colere) धातु से निष्पन्न 'कुल्टुरा' (Cultura) शब्द से हुई है जो सक्षेप मे क्रमश पूजा करना तथा कृषि सम्बन्धी कार्य का बोधक है। कुछ विद्वान् कल्चर तथा कल्टीवेशन (कृषि कार्य) मे साम्य की स्थापना करते है। अत इस समानता के आधार पर यह कहना कुछ असमीचीन न होगा कि कृषि-विद्या के नियमो के आधार पर जिस प्रकार पेड-पौधो को सुविकसित करके, अच्छी खेती तैयार की जाती है, ठीक उसी प्रकार मनुष्यो मे भी मानवता की भावना को पल्लवित करने के लिए जो पद्धति काम मे लायी जाती है उसे 'सस्कृति' कहा जा सकता है। अन्य विद्वानो के अनुसार किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन व्यापारो या सामाजिक सम्बन्धो मे मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले आदश। को ही सस्कृति कहते है। इस प्रकार समस्त सामाजिक जीवन की समाप्ति सस्कृति मे ही होती है। डा० बलदेव प्रसाद मिश्र का कथन है कि 'सस्कृति मानव जीवन के विचार तथा आचार का सशुद्धिकरण अथवा परिमार्जन है। वह मानव जीवन की सजी तथा संवारी हुयी अन्त स्थिति है।[1] वह मानव समाज की परिमार्जित मति, रुचि, और प्रवृत्ति-पुज का नाम है।'

सस्कृति तथा सभ्यता मे अन्तर

आजकल जिस प्रकार सस्कृति के लिये अग्रेजी मे 'कल्चर' शब्द का प्रयोग हो रहा है उसी प्रकार सभ्यता के लिये 'सिविलायिजेशन' शब्द का व्यवहार होता है। इन दोनो के अन्तर को समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है। सुप्रसिद्ध मानवविज्ञान-शास्त्री डा० डी० एन० मजूमदार के अनुसार सस्कृति के अन्तर्गत मनुष्यो की रीति-नीति, विश्वास, आदश, कलाए तथा मानव द्वारा उपलब्ध समस्त कौशल एव क्षमताओ को लिया जा सकता है।[2]

सभ्यता—जिसे अग्रेजी मे 'सिविलायिजेशन' की सज्ञा दी जाती है—मनुष्य के सामाजिक गुणो तथा बाह्य व्यवहारो की द्योतिका है। इसकी प्रारम्भिक स्थिति मे भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति तथा अन्य प्राकृतिक सघातो से सघर्ष करने के

१ डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र —भारतीय सस्कृति को गोस्वामी तुलसीदास का योगदान, पृ० ६ (१६५३)।

२. डॉ० डी० एन० मजुमदार तथा टी० एन० मदन—एन इनट्रोडक्शन टू सोशल एनथ्रोपोलाजी, पृ० १४ (प्रथम सस्करण, सन् १६६० ई०)।

अभियान मे मनुष्य मे सामूहिक भावना एव सहयोग की प्रवृत्तियो का विकास हुआ। डा० भगवतशरण उपाध्याय ने सम्यता और सस्कृति के अन्तर को स्पष्ट करते हुये लिखा है कि "सम्यता और सस्कृति मनुष्य की सामूहिक प्रेरणा और विकास के परिणाम है जिनमे प्रथम अर्थात् सम्यता आदिम जगली स्थिति से सामाजिक जीवन की ओर मनुष्य की प्रगति का नाम है। दूसरा उसी प्रगति की सत्य, शिव और रुचिर परम्परा का।"[1] सम्यता मे सामाजिक व्यवहारो तथा प्रगति का बाह्य रूप सन्निहित है। अतएव इन तत्वो को सद्य अपनाया जा सकता है जिसके परिणाम स्वरूप सम्यता की सद्य अनुकृति की जा सकती है। परन्तु सस्कृति अन्त चेतना तथा परम्परा द्वारा प्रतिष्ठित होने के कारण उसे अपनाने मे बहुत देर लगती है।

कुछ विद्वानो के मतानुसार सस्कृति जीवन का आन्तरिक सौन्दय है। जबकि सम्यता उसके बाह्य साधनो की सुविधा है। सस्कृति वह थाती है जिसे मनुष्य अपने सस्कार और वातावरण से प्राप्त करता है। परन्तु सम्यता मनुष्य की प्रगति के पथ की ओर ले जाने का सकेत करती हुयी उसके वाह्य क्रिया-कलापो की द्योतिका है।

सस्कृति तथा सम्यता के अन्तर को साध्य और साधन के विवेचन द्वारा भी स्पष्टतया समझा जा सकता है। सम्यता वह साधन है जिसके द्वारा सस्कृति रूपी साध्य की प्राप्ति की जाती है। सस्कृति के क्षेत्र मे आने वाले आदर्श, विश्वास और परम्पराए आदि जीवन के लक्ष्य अथवा साध्य बन जाते है। मानव जीवन को भौतिक प्रगति की दिशा मे अग्रसर कर उसे सुख, समृद्धि-सम्पन्न बनाने वाले सम्यता के उपकरण साधन रूप मे आते हैं।

सम्यता तथा सस्कृति के विकास क्रम के अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये दोनो ही मानव विकास के दो पहलू है। सस्कृति मानव की अन्तस् चेतना, सौन्दर्यानुभूति एवम् आनन्द तथा उल्लास के आभ्यन्तरिक तत्वो से सम्बन्धित है। सम्यता उसकी स्थूल तथा भौतिक सुख और सामग्री के सयोजन एव उसके लिये आवश्यक सगठित प्रयत्नो की ओर सकेत करती है। दूसरे शब्दो मे हम कह सकते है कि सस्कृति का सम्बन्ध मानव की आन्तरिक परिष्कृति तथा अन्तस चेतना से रहता है किन्तु सम्यता सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियो से बंधी रहती है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सम्यता को बाह्य प्रयोज. को सहज लभ्य बनाने का विधान तथा सस्कृति को अतिशय आनन्द की अभिव्यक्ति बताया है।

सस्कृति के अन्तर्गत जितने विषयो का समावेश होता है उनको हम दो श्रेणियो मे विभक्त कर सकते हैं। (१) आध्यात्मिक तत्व (२) लौकिक तत्व। आध्यात्मिक तत्व के अन्तर्गत (१) परलोक सम्बन्धी धारणा, (२) मोक्ष तथा स्वर्ग संबंधी विचार (३) साधना मार्ग (४) जीवन का आदर्श और (५) धार्मिक सिद्धान्तो का समावेश होता है। इसी प्रकार से लौकिक तत्व के अन्तगत—(१) मानव जीवन के विभिन्न सस्कार (२) सामाजिक उत्सव (३) पर्व तथा त्योहार (४) मनोरजन के साधन (५) रहन-सहन (६) वेश-भूषा (७) अलकरण तथा प्रसाधन (८) भोजन तथा पेय पदार्थ (९) सामाजिक रूढ़ियां (१०) लोक-विश्वास तथा मान्यताए एवं (११) कला आदि की परिगणना की जाती है। इस प्रकार किसी ग्रन्थ का सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत करते समय इन विषयो का वर्णन करना अत्यन्त आवश्यक है।

लोक-सस्कृति

सस्कृति को साधारणतया दो श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है। (१) शिष्ट-सस्कृति (२) लोक-सस्कृति। समाज के उच्च शिक्षा प्राप्त विद्वान्, दार्शनिक, पण्डित तथा मनीषी, वेद-शास्त्र, पुराण तथा स्मृतियों मे उल्लिखित विधि-विधानो का पालन करते हैं और उन नियमो के अनुसार अपनी जीवन-चर्या को परिचालित करते हैं। परन्तु सामान्य जनता की जो धारणाए, मान्यताए और लोक-विश्वास हैं, उनका जो रहन-सहन है, आचार-विचार है, वेश भूषा है, वह लोक संस्कृति के अन्तर्गत आती है। वेद और शास्त्र, आगम और निगम, शिष्ट सस्कृति के उत्स हैं परन्तु लोक-संस्कृति का स्रोत स्वयं लोक ही है, जनता जनार्दन है। लोक जीवन मे जो कुछ दीख पड़ता है और जो कुछ पाया जाता है वह सभी लोक-सस्कृति के अन्तर्गत समाविष्ट किया जा सकता है।

शिष्ट-सस्कृति और लोक-सस्कृति के अन्तर को स्पष्ट करते हुए उदाहरण स्वरूप हम यह कह सकते है कि वेद और पुराणो मे वर्णित इन्द्र और वरुण, उषा और विष्णु, राम और कृष्ण शिष्ट सस्कृति के उपास्य देव हैं। परन्तु डीह, डिहवार, भूत-दूत, प्रेत-पिशाच आदि की पूजा लोक सस्कृति के अन्तर्गत मानी जाती है।[3]

१ डॉ० भगवतशरण उपाध्याय —सांस्कृतिक भारत, पृ० ११ (प्रथम सस्करण)।

२ डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी —अशोक के फूल, पृ० ८१ (सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण)।

३ इस अध्याय को लिखने मे डॉ० मदनगोपाल गुप्त द्वारा लिखित "मध्ययुगीन हिन्दी काव्य में भारतीय सस्कृति" नामक ग्रन्थ से प्रचुर सहायता ली गयी है। अत' लेखक उनका हृदय से आभार स्वीकार करता है।

अध्याय–१

वर्ण तथा आश्रम

○○

प्राचीन भारतीय धर्मशास्त्रियो ने मनुष्यो के गुण, कम और स्वभाव के कारण उन्हे चार वर्णों मे विभक्त किया है। स्वय भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता मे लिखा है कि मैंने चातुर्वण की सृष्टि इसी आधार पर की है।[1] ये चार श्रेणियाँ है—(१) ब्राह्मण (२) क्षत्रिय (३) वैश्य और (४) शूद्र। मनु ने इन चारो वर्णों के कतव्य कम का बडा ही सुदर तथा विस्तृत वणन किया है। इस विवेचन से पता चलता है कि मानवो का इन चार श्रेणियो मे विभाजन कितना मनोवैज्ञानिक तथा वैज्ञानिक था। भारतीयो मे प्रचलित वण-धम का सबसे बडा महत्त्व यह है कि प्राचीन समाजशास्त्रियो ने समाज की सम्यक् व्यवस्था के लिए प्रत्येक मनुष्य का करणीय कम उसके गुण, कम, स्वभाव, योग्यता, वशानुक्रम, प्रशिक्षण आदि के आधार पर निश्चित कर दिया था। इस प्रकार इन ऋषियो ने श्रम का विभाजन (Division of labour) करके समाज मे होने वाली प्रतिस्पर्धा को सदा के लिए समाप्त कर दिया था। जो व्यक्ति जिस वश और परम्परा मे पैदा हुआ है वह वशानुकूल सुन्दर काय कर सकता है इसे आजकल के मनोवैज्ञानिक भी स्वीकार करते है। इस वशानुक्रम को दृष्टिपथ मे रखकर हमारे शास्त्रकारो ने बडी योग्यता से इस वर्ण व्यवस्था की स्थापना की थी जिसका प्राचीन काल मे अत्यधिक महत्त्व था और आज भी कुछ कम नही है।

(क) ब्राह्मण

(१) परिच्छेद

ब्राह्मण का धर्म

चारो वर्णों मे ब्राह्मण की गणना महत्त्व की दृष्टि से प्रथम है। मनु ने ब्राह्मणो के छ कर्मों का उल्लेख किया है—

'अध्यापन, अध्ययन, यजन, याजन तथा, दान, प्रतिग्रह चैव, ब्राह्मणानामकल्पयत्।' अर्थात् (१) अध्ययन करना (२) अध्यापन करना (३) यज्ञ करना और (४) यज्ञ कराना (५) दान लेना और (६) दान देना—ये ही ब्राह्मणो के छ कर्तव्य है। प्राचीन काल मे ब्राह्मणो का प्रधान काय विद्या का पढ़ना था। इसके पश्चात् वे गुरु से अधीत विद्या को अपने छात्रो को पढाया करते थे। ब्राह्मण का अधिकाश समय अध्ययन और अध्यापन मे ही व्यतीत होता था। इसीलिए यह कहा'त कही जाती है कि—

ब्राह्मण जब तक जीता है, ज्ञान की गुदरी को सीता है।

आजकल भी ब्राह्मणो का प्रधान काय अध्ययन और अध्यापन ही समझना चाहिए। ब्राह्मण एक बुद्धिजीवी वर्ग है। अत॰ अपनी बुद्धि से वह जीविकोपार्जन करता है। सस्कृत साहित्य मे ब्राह्मणो को 'भूसुर' कहा गया है जिसका अर्थ है पृथ्वी का देवता। चूकि प्राचीन काल मे ब्राह्मणो का चरित्र अत्यन्त पवित्र था, वे विद्वान् तथा आस्थावान् थे, वे समाज के अग्रणी थे इसीलिए उन्हे 'भूदेव' या 'भूसुर' की यदि सज्ञा प्रदान की गई थी तो इसमे कुछ आश्चर्य नही।

महत्त्व

प्राचीन काल मे ब्राह्मणो का बडा आदर तथा सम्मान था। इनका वचन भगवान् की वाणी समझी जाती थी।[2] विष्णु धर्म-सूत्र मे लिखा है कि ब्राह्मण की वाणी कभी झूठी हो ही नही सकती।[3] गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी लिखा है कि देवताओ

१ **चातुर्वर्णं मया सृष्ट गुणकर्मविभागश —गीता**

२ **विप्र-वाक्य जनार्दन।**

३ **ब्राह्मणाभिहित वाक्य न मिथ्या जायते क्वचित्। वि० ध० सू० १९।२०**

और ऋषियो (ब्राह्मणो) की वाणी सदा सत्य होती है।[1] भोजपुरी समाज मे ब्राह्मणो का आज भी वही महत्व है जो प्राचीन काल मे था। समाज के सभी वर्ग के लोग इनका आदर-सत्कार करते है। जहाँ भी कोई ब्राह्मण दिखाई पडा सभी लोग हाथ जोडकर उसे प्रणाम करते है। ब्राह्मण के एक छोटे बालक के प्रति भी दूसरी जाति के बडे लोग सम्मान प्रदान करते है।

ब्राह्मणो की उपयोगिता समाज के लिए अत्यन्त अधिक है। जब किसी के घर मे पुत्र का जन्म होता है तब उसकी जन्म कुण्डली बनाने के लिए ज्योतिषी को बुलाया जाता है। मुण्डन तथा यज्ञोपवीत के अवसर पर विविध क्रियाओ का सम्पादन करने के लिए वैदिक जी को निमत्रण दिया जाता है। विवाह आदि कृत्यो को सम्यक् रूप से सम्पादित करने के लिए भी वैदिक का बुलाना आवश्यक माना जाता है। भोजपुरी मे वैदिक को 'बेदुआ' कहते है। अत जब तक काशी का 'बेदुआ' विवाह मे वेद नही 'भनता' अर्थात वैदिक मन्त्रो का सस्वर उच्चारण नही करता तब तक विवाह का काम सफल नही समझा जाता। किम्बहुना, मानव जीवन के अन्तिम सस्कार मृत्यु पर भी अन्त्येष्टि क्रिया को सम्पादित करने के लिए किसी पण्डित का होना आवश्यक है।

इस प्रकार जीवन से लेकर मृत्यु पयन्त ब्राह्मण समाज की सेवा के लिए तत्पर रहता है। ऐसी परिस्थिति मे यदि समाज उसे उचित आदर तथा सन्मान प्रदान करता है तो इसमे कोई आश्चर्य की बात नही समझनी चाहिए। इसीलिए ब्राह्मण जो कुछ भी उपदेश देता है, जो कोई आदेश करता है उसे सभी लोग "सत्य वचन महाराज" कह कर स्वीकार करते है। भोज-पुरी की एक कहावत मे ब्राह्मण के वचन को प्रामाणिक बतलाया गया है।[2] यद्यपि "बाबा वाक्य प्रमाणम्" का प्रयोग किसी अन्य प्रसग मे किया जाता है परन्तु उसका भी आशय यही है कि जो प्राचीन, बडे बूढे, बुद्धिमान् ब्राह्मण है उनके वाक्य को प्रामाणिक मानना चाहिए। आज भी समाज मे विवाहादि मागलिक कार्य के सम्बन्ध मे पण्डित या ज्योतिषी जो निर्णय दे देते है उसे कोई टाल नही सकता।

(१) अनुच्छेद

ब्राह्मणो के भेद

यो तो ब्राह्मणो के अनेक भेद है परन्तु इनके प्रधान भेद निम्नांकित है। (१) सरयूपारीण (२) कान्यकुब्ज, (३) गौड (४) सनाढय (५) सारस्वत आदि। इनमे कान्यकुब्ज ब्राह्मण अधिक शिक्षित और प्रगतिशील है। इनका प्रधान केन्द्र अवध प्रदेश है। लखनऊ, सीतापुर, उन्नाव आदि जिलो मे इनकी सख्या अधिक पायी जाती है। ये बडे ही श्रेष्ठ ब्राह्मण समझे जाते हैं जैसा कि "कान्यकुब्जा द्विजा श्रेष्ठा" इस लोकोक्ति से प्रसिद्ध है। ये लोग भोजन आदि में स्पर्शास्पर्श का बहुत विचार रखते है। ब्राह्मणेतर के द्वारा बनाये गये भोजन के ग्रहण की चर्चा तो दूर रही, कान्यकुब्ज लोग अपने स्वजातीय ब्राह्मण के हाथ का बनाया हुआ भोजन भी नही करते हैं। "अपनी अपनी डफली, अपना अपना राग" के सिद्धान्त के ये परम पक्षपाती है। भोजन के सम्बन्ध मे इनकी छुआछूत की भावना चरम सीमा पर पहुँची हुई है। इनके सम्बन्ध मे यह कहावत ठीक ही कही जाती है कि —

"तीन कनौजिया, तेरह चूल्हा"

अर्थात् यदि तीन भी कनौजिया ब्राह्मण होगे तो उनकी रसोई तेरह चूल्हो पर बनायी जायेगी। भाव यह है कि स्पर्शास्पर्श की भावना के कारण ये एक दूसरे से बहुत दूर रहते हैं।

भोजपुरी प्रदेश मे सरयूपारीण ब्राह्मणो की ही प्रधानता है। ये उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलो मे तथा बिहार राज्य के पश्चिमी जिलो मे फैले हुए है। सरयू (घाघरा) नदी के पार के जिलो मे बसने के कारण ही इनका नाम सरयूपारीण पड गया है। जिस प्रकार पजाब की प्राचीन सरस्वती नदी के तट पर निवास करने वाले ब्राह्मणो का नाम सारस्वत पड गया, सरयूपारीण नामकरण का भी यही कारण समझना चाहिए। लोकभाषा मे ये ब्राह्मण 'सरजूपारी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। ऐसा ज्ञात होता है प्राचीन काल मे इनका प्रधान निवास सरयू नदी के किनारे ही रहा होगा। परन्तु आजकल ये गगा, जमुना, गोमती, गण्डक आदि अनेक नदियो के द्वारा सिंचित भूमि मे रहते हैं। इसके अतिरिक्त इन्होने छपरा, चम्पारन, राँची और पलामू की आरण्यक भूमि मे भी अपना निवास स्थान बना लिया है।

१ मृषा न होई देव, ऋषि बाणी। रा० च० मा०।
२ बराह्मन वचन परमान।

ऊँच-नीच की भावना

जिस प्रकार कान्यकुब्ज ब्राह्मणो मे जातीय श्रेष्ठता या नीचता का मापदड 'विस्वा' है उसी प्रकार से सरयूपारीण ब्राह्मणो मे कुलीनता का परिचायक 'तीन-तेरह' की कल्पना है। जो काव्यकुब्ज ब्राह्मण बीस बिस्वे का होता है वह समाज मे सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण बनने का दावा करता है। इसी प्रकार एक या दो 'विस्वा' का ब्राह्मण कुलीनता की अधम कोटि मे है। यही कारण है कि बीस वीस्वा वाले निधन, निरक्षर और निर्गुण वर से विवाह करने के लिए कम विस्वा वाले धनी, मानी ब्राह्मण भी लालायित रहते है। अपनी तथाकथित श्रेष्ठता का दुरुपयोग करते हुए ऐसे वरो के पिता मनमाना तिलक और दहेज माँगते है जिसका परिणाम बडा विषम होता है।

सरयूपारीण ब्राह्मणो मे ऊँचता और नीचता का यह निर्णायक तत्व 'तीन तेरह' की म ।ना है। ऐसी किम्बदन्ती है कि भगवान् रामचन्द्र ने जब राजसूय यज्ञ किया था कि उस समय यज्ञ मे सम्मिलित होने वाले ब्राह्मणो को उन्होने भूयसी दक्षिणा देनी चाही। परन्तु सभी ब्राह्मणो ने दक्षिणा लेने के काय को निकृष्ट समझ कर इस दान को अस्वीकार कर दिया। परन्तु बिना दक्षिणा दिये हुए यज्ञ सफल कही समझा जाता, अत भगवान् रामचन्द्र बडे ही असमजस मे पडे कि अब क्या करन चाहिए। उन्हे एक उपाय सूझा। उन्होने ब्राह्मणो को जो ताम्बूल खाने के लिए दिया उसमे उन ब्राह्मणो को दान रूप मे दातव्य धन राशि का उल्लेख कर दिया। विभिन्न गोत्रो के तेरह ब्राह्मणो ने उस ताम्बूल को खा लिया परन्तु तीन गोत्र के चालाक ब्राह्मणो ने उस पान को खोल कर देखा और उसमे उल्लिखित दान रूप मे देय धनराशि को देखकर उसे ग्रहण करने से अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार दान न लेने के कारण ये तीन गोत्र वाले ब्राह्मण अपने को श्रेष्ठ मानने लगे और जिन तेरह ब्राह्मणो ने छलपूवक दिये गये दान को स्वीकार कर लिया था वे इनकी दृष्टि मे नीच समझे जाने लगे। ये तीन गोत्र वाले ब्राह्मण है (१) गर्ग (२) गौतम और (३) शाडिल्य। गग गोत्रीय ब्राह्मणो की उपाधि शुक्ल है और गौतम और शाण्डिल्य वाले मिश्र आदि आस्पद से पुकारे जाते है। इन गोत्रो के अतिरिक्त काश्यप, भारद्वाज, घृतकौशिक, जमदग्नि, वशिष्ठ, आदि गोत्रो के ब्राह्मण तेरह की कोटि मे आते हैं। "तीन तेरह" का यही रहस्य है।

भोजपुरी मे यह लोकोक्ति प्रचलित है—"तीन मे ना तेरह मे" जिसका भाव यह है कि हम न तो विशिष्ट तीन गोत्रो वाले ब्राह्मणो की तरह श्रेष्ठ है और न इतर तेरह प्रकार के ब्राह्मणो की भाँति नीच है। उपेक्षा की भावना को द्योतित करने के लिए यह कहावत कही जाती है जिसका आधार "तीन तेरह" की वह भावना है जिसका उल्लेख पहिले किया जा चुका है।

पंक्ति-पावन ब्राह्मण

सरयूपारीणो मे एक प्रकार के अन्य ब्राह्मण भी पाये जाते है जो अपने को श्रेष्ठ मानते है। ये 'पक्ति पा न' ब्राह्मण के नाम से प्रसिद्ध है। 'पक्ति पावन' का शाब्दिक अर्थ होता है पक्ति को पवित्र करने वाला। सैकडो ब्राह्मण जब भोजन करने के लिए एक साथ बैठते है, तब उसे पक्ति या पाँत कहते हैं—जैसे—'बामन लोगन के पाँत बइठल बा।' ऐसा ज्ञात होता है कि अतीत काल मे अपने को "पावनमन्या" ये ब्राह्मण जिस पाँत मे भोजन करने बैठते थे, वह पवित्र मानी जाती थी। इसीलिए कदाचित् इनका नाम "पक्ति पावन" ब्राह्मण पड गया हो। मनु ने श्राद्ध के अवसर पर भोजन करने के लिए आमन्त्रित किये जाने वाले ब्राह्मणो मे "पक्ति पावनो" को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। डा० काणे ने अपने 'धर्मशास्त्र के इतिहास" मे इन ब्राह्मणों का उल्लेख किया है जिससे ज्ञात होता है कि इन ब्राह्मणो की परम्परा बहुत प्राचीन है। आजकल इन ब्राह्मणो का गढ़ गोरखपुर और देवरिया के जिले हैं। इसके अतिरिक्त बस्ती जिले की भूतपूव रियासतों मे पक्तिपावनो का निवास प्रचुर परिमाण मे पाया जाता है, जहाँ इनकी जीर्ण शीर्ण बस्तिया इनकी निधनता तथा दरिद्रता की साक्षी दे रही है।

"बीस बीस्वा" वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मणो की तरह "पक्ति पावन" ब्राह्मण भी—जो 'पतिहा' के नाम से अधिक प्रचलित है—उत्तम तथा पवित्र समझे जाते है। इतर ब्राह्मण अपनी लडकियो का विवाह इन "पक्ति पावनो" के घर मे करना अपना सौभाग्य समझते है। इसके लिए इन्हे मुहमाँगी दक्षिणा तिलक के रूप मे देनी पडती है। इ. पक्ति पावनो का निरक्षर पुत्र भी अन्य लडको की अपेक्षा उत्तम माना जाता है क्योंकि वह कुलीन वश मे पैदा हुआ है।

जो ब्राह्मण 'पक्ति पावनो' के नियमो तथा मर्यादाओ का पालन करने मे असमर्थ होते है अथवा उनका पालन करने से च्युत हो जाते है वे 'पक्ति टूट' के नाम से प्रसिद्ध है। **भोजपुरी मे ये टुटहा' कहे जाते है।** ऐसे ब्राह्मण पक्तिपावनो की पक्ति या श्रेणी से पृथक कर दिये जाते हैं।

पक्तिपावन ब्राह्मणो की क्या विशेषतायें है इन्हे स्पष्ट रूप से बतलाना बडा कठिन है क्योकि इनका कही कोई उल्लेख नही पाया जाता। हाँ, उनके व्यवहार से उनकी विशिष्टताओ का कुछ परिचय प्राप्त किया जा सकता है। पक्तिपावनो के

घर की स्त्रियाँ न तो अपने हाथ से कपडा सीती है और न आटा को ही चलनी से छानती है। सूप में [illegible] अन्न का फटक कर साफ करना भी इनके लिए निषिद्ध है। सभवत ये सब काय इनके यहाँ दाइयाँ या नौकरानियाँ [illegible] है। पंक्ति पावन ब्राह्मण स्वय हल चलाने को निषिद्ध समझते है और खेती करना इनके लिए पाप है। उसका परिणाम यह होता है कि स्वय खेती न करने के कारण इनका कृषि कम चौपट हो जाता है। घाघ ने लिखा है कि जो नौकरो के [illegible] पर खेती [illegible] है उसका नाश ही समझना चाहिए। इन पक्तिपावनो पर घाघ की यह उक्ति पूणतया चरितार्थ होता है। पंक्तिपावन ब्राह्मण पवित्रता की दृष्टि से छुआछूत मे अधिक विश्वास करते है। ये किसी का छुआ हुआ भोजन ग्रहण नही करते है। चौका म बैठकर खाते है और भोजन करते समय सिला हुआ वस्त्र शरीर पर धारण करना अपवित्र मानते है। ये लोग मांस भक्षण मे कोई दोष नही मानते। पक्तिपावनो का यह प्रासाद बडा जीण तथा जजर हो गया और वे दिन दूर नही है जब कि यह प्रासाद भूमिसात हो जायेगा।

(२) अनुच्छेद

ब्राह्मणो के अन्य भेद

(१) **अथीथ**---सरयूपारीण ब्राह्मणो के कुछ अन्य भी प्रकार है जिनकी गणना नीच कोटि के ब्राह्मणो म की जाती है। ऐसे ब्राह्मणो मे 'अथीथ' प्रधान है। इस शब्द की व्युत्पत्ति 'अतिथि' शब्द से मानी जाती है जिसका अथ होता है वह व्यक्ति जिसके आने की कोई तिथि न हो। अर्थात् वह जब चाहे तब किसी के घर भिक्षा भी याचना के लिए अपनी स्वतत्र इच्छा से चला जाये। भोजपुरी प्रदेश मे ये 'अथीथ' ब्राह्मण आदर की दृष्टि से देखे जाते है और जब ब्रह्मभोज किया जाता है उस समय ये सादर निमन्त्रित किये जाते हैं।

(२) गिर या गिरि---

एक दूसरे प्रकार के भी ब्राह्मण पाये जाते है जो प्राय 'गिर' की उपाधि से अभिहित किये जाते है जैसे आनन्द गिर, पूरन गिर। यह गिर शब्द गिरि का अपभ्रश रूप है। आद्य शकराचार्य ने संन्यासियो का जो सगठन किया वह दशनामी सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। इन सन्यासियो ने---सरस्वती, भारती, गिरि, पुरी, आदि इस प्रकार के आस्पदो को धारण किया। इसीलिये ये 'दशनामी' के नाम से पुकारे जाते हैं। भोजपुरी प्रदेश के 'गिर' उपाधिधारी माय इसी दशनामी 'गिरि' सम्प्रदाय के सन्यासी है। ये लोग गेरुआ वस्त्र तो पहिते हैं परन्तु दण्ड और कमण्डलु धारण नहीं करते।

(३) महाब्राह्मण---

सस्कृत के किसी कवि ने लिखा है कि ब्राह्मण, पात्र, निद्रा, यात्रा आदि शब्दो के पहिले 'महा' शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिये क्योकि इससे इनकी उत्कृष्टता द्योतित न होकर अपकृष्टता ही प्रकाशित होती है। इसीलिए भोजपुरी प्रदेश में महाब्राह्मण शब्द ब्राह्मणो की उस श्रेणी को द्योतित करता है जो अनादर की दृष्टि से देखी जाती है। 'महाब्राह्मण' को 'महा-पात्र' भी कहते हैं। ये 'करटहा' के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। महापात्र' का ही अपभ्रश रूप 'महापातर' है जो लोक म प्रचलित है।

जब किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो उसके तेरहवे दिन ब्राह्मण भोज किया जाता है। यह श्राद्ध संस्कार का अन्तिम दिन होता है और 'तेरही'---त्रयोदशाह---के नाम से प्रसिद्ध है। बा हवें दिन महाब्राह्मण को बुलाया जाता है और मृत आत्मा की शान्ति के लिए इसे शय्यादान, द्रव्यदान आदि दिया जाता है। लोगो की ऐसी धारणा है कि जब तक महाब्राह्मण भोजन न कर ले तब तक श्राद्ध का यज्ञ सम्पूण नही समझा जाता है। साधारण जनता की इस धारणा का ये महाब्राह्मण बड़ा ही दुरुपयोग करते हैं। मृत व्यक्ति जितना ही अधिक 'कमासुत' होता है उसके श्राद्ध मे ये उतना ही अधिक द्रव्य अपनी दक्षिणा के रूप मे माँगते हैं और जब तक मनवाछित धन नही मिल जाता तब तक भोजन नहीं करते।

ये महाब्राह्मण बडे ही कठोर, निदयी और क्रूरकर्मा होते हैं। मृत व्यक्ति के परिवारवाले तो दुःखी रहते है, फिर भी ये उनसे रुपया ऐठने मे तनिक भी बाज नही आते। श्राद्ध के अन्त मे एक कटोरी मे रखे गये दूध---जिसे 'तियाग' कहा जाता है---को पीने के लिए ये सैकडो रुपये फीस (दक्षिणा) के रूप मे लेते है। इन्ही सब निकृष्ट कर्मों के कारण समाज मे ये तिरस्कार की दृष्टि से देखे जाते हैं। किसी व्यक्ति को महाब्राह्मण या महापात्र कहना निन्दा का सूचक माना जाता है। इनके लिए प्रयुक्त 'करटहा' शब्द भी इनके प्रति समाज के आक्रोश तथा घृणा को सूचित करता है।

इन्ही घृणित कार्यों के कारण महाब्राह्मणो की एक पृथक् जाति ही बन गयी है। ये अपनी ही जाति म विवाह आदि कर सकते है, अन्यत्र नही। कोई भी ब्राह्मण इनका स्पृष्ट किया हुआ जल ग्रहण नहीं करता।

(४) करन्न—

ब्राह्मणो की ही एक अन्य भी श्रेणी है जो 'करन्न' के नाम से प्रसिद्ध है। यो ये लोग अपने को ब्राह्मण ही कहते है परन्तु कम, गुण और स्वभाव की नीचता के कारण इनकी गणना ब्राह्मण समुदाय मे नही करनी चाहिए। 'करन्न' शब्द की व्युत्पत्ति का निणय करना कठिन है। ये बडे ही भोजन भट्ट होते है और इनका एकमात्र पेशा मृतक के श्राद्ध मे भोजन करना है। जहाँ ये किसी व्यक्ति की मृत्यु का समाचार सुनते है उसकी 'तेरही' मे ये अनाहूत, अनिमन्त्रित, भोजन के लिए बिना बुलाये, अपनी उदर-दरी की पूर्ति के लिए प्रचुर सरया मे पहुँच जाते है। मृतक के परिवार वालो के द्वारा, इन्हे भोजन कराने मे अपनी असमथता प्रकट करने पर भी ये "मान न मान, मै तेरा मेहमान" की लोकोक्ति को चरिताथ करते है। ये कितना ही हटाने पर भी भरपेट भोजन किये बिना नही हटते। जब ये भोजन करने के लिये सैकडो की सख्या मे जमीन पर बैठकर डट जाते है तब ये लो ा बडे-बडे धनाढ्यो के भोजन-भाण्डार का दिवाला निकाल देते है। खिलाने वाले हाथ जोडकर इनसे पनाह माँगते है। अनियत्रित, पेटू, भोजन-भट्ट की उपमा प्राय 'करन्न' से दी जाती है जिन्हे कभी भी 'सुअन्न' खाने को नही मिलता।

(५) शकद्वीपीय ब्राह्मण—

इन ब्राह्मणो को भोजपुरी मे 'सकलदीपी' ब्राह्मण कहा जाता है परन्तु इनका शुद्ध नाम 'शाकद्वीपीय' है। ऐसा कहा जाता है कि प्राचीनकाल मे ये शकद्वीप से यहा आये या लाये गये थे। ये श्रेष्ठ ब्राह्मण है परन्तु भारत से बाहर शकद्वीप से आने के कारण ये सरयूपारियो से कुछ भिन्न समझे जाते है। वश परम्परा के अनुसार ये प्राय वैद्य का पेशा करते है। गाँवो मे जहाँ कोई सरकारी डाक्टर या वैद्य नही है ये लोग अपनी आयुर्वेदीय दवाओ से जनता की सेवा करते है। ये ज्योतिषी भी अच्छे होते है। अत ग्रामीण जनता अपने भविष्य को जानने के लिए इनके पास पहुचती है। इस प्रकार इनके एक हाथ मे पचाग और दूसरे हाथ मे दवा की पुडिया होती है।

ब्राह्मण जाति के अन्तर्गत शकद्वीपीय ब्राह्मणो का एक पृथक् समुदाय बन गया है जो आपस मे ही विवाहादि काय करते है। इनकी श्रेष्ठता, पवित्रता और विद्वत्ता सन्देह से परे की वस्तु है। ये सरयूपारीण ब्राह्मणो से पृथक् होने के कारण उनसे भोजन तथा विवाह का सबध स्थापित नही कर सकते।

(३) अनुच्छेद

ब्राह्मणों की विशेषतायें

भोजपुरी लोक साहित्य—विशेषकर लोकोक्तियो—मे ब्राह्मणो का जो उल्लेख पाया है उससे उनकी अनेक विशेषताओ का पता चलता है। ब्राह्मणो की सबसे बडी विशिष्टता यह है कि वे अपनी जाति के द्वेषी होते है। वे अपने ही भाइयो से घृणा करते हैं। इस सबध मे यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि ब्राह्मण, कुत्ता और नाऊ ये तीनो अपनी जाति को देखकर गुर्राते है।[1] इस विषय मे सस्कृत के एक कवि ने ठीक ही लिखा है कि एक ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मण को सामने आया दखकर कुत्ते की तरह गुरगुराता है —

"ब्राह्मण ब्राह्मण दृट्वा, श्वानवत् गुरगुरायते"

एक दूसरी कहावत मे कहा गया है कि ब्राह्मण, कुत्ता और हाथी अपनी जाति के साथी नही होते।[2] इतना ही नही बल्कि ब्राह्मण, कुक्कुर और भाट की तरह अपनी ही जाति वाले को काटते है अर्थात् अपनी ही बिरादरी का नुकसान करते है।[3] ब्राह्मण और हाथी ये कभी अपना साथी नही खोजते।[4] इन कहावतो का भाव यह है कि ब्राह्मण अपनी जाति का शत्रु होता है और दूसरे ब्राह्मण को टिकने देना नही चाहता।

ब्राह्मणो की दूसरी विशेषता यह है कि ये बडे ही भोजन-लोलुप और भोजन-भट्ट होते है। एक लोकोक्ति के अनुसार यदि ब्राह्मण को चिउडा और दही खाने को मिले तो वह बारह कोस अर्थात् चौबीस मील जा सकता है और कही लुचुई अर्थात्

१ बाभन, कुकुर, नाऊ, आपन जाति देखि गुर्राऊ।
२ बाभन, कुकुर, हाथी, आपन जाति के ये ना साथी।
३ बाभन, कुकुर, भाट, जाति जाति के काट।
४. बाभन, कुकुर, हाथी, ई ना जोहे आपन साथी। —लेखक का निजी सग्रह

पूडी पर हाथ साफ करने का निमत्रण मिल गया तो १८ कोस अर्थात छत्तीस मील भी पैदल चल कर जाना उसके लिए कठिन नही है।[1] परन्तु एक दूसरी कहावत के अनुसार यदि ब्राह्मण को चिउडा और दही खाने का तीव्र सुगन्ध भी मिल जाय तो वह अस्सी कोस अर्थात् एक सौ साठ मील तक झुक कर चला जा सकता है।[2] किम्बहुना सस्कृत मे तो यहाँ तक कह दिया गया है यदि ब्राह्मण के सामने पूडी (शष्कुली) का केवल नामोच्चारण कर दिया जाय तो उसके लिए सौ योजन अर्थात आठ सौ मील की यात्रा भी क्या दूर है?[3] इसमे सन्देह नही कि ये सब उक्तियाँ अतिशयोक्ति से पूर्ण है परन्तु ब्राह्मणों की भोजन प्रियता मे किसी को सन्देह नही हो सकता।

ब्राह्मण अपने घर का आटा गीला करना नही जानता बल्कि वह दूसरो के अन्न पर ही अपना पेट पालता है। जब जजमान का आटा और उसी का घी उसे पेट पूजा करने के लिए मिलता है तब वह बडे प्रेम से आकण्ठ भोजन करता है।[4] वह दूसरों के ही धन का उपभोग करना उचित समझता है।[5] ब्राह्मण तो केवल पेट भर खाना जानता है परन्तु अहीर दूसरों को लूटता है।[6]

ब्राह्मणो की तीसरी विशेषता उनकी सादगी, सीधापन, और निष्कपटता है जो कभी कभी मूर्खता की सीमा तक पहुँच जाती है। एक सूक्ति के अनुसार ब्राह्मण को पोंगा कहा गया है अर्थात वह छल-छद्म से रहित होता है।[7] यह ब्राह्मण की निन्दा नही बल्कि उसकी प्रशसा ही समझनी चाहिए।

आजकल बहुत से साधु, सन्त और बैरागी ललाट पर तीन रेखाओ वाला टीका लगाकर मीठी मीठी बाणी बोलते है। इस प्रकार वे जनता को ठगा करते है।[8] चाहे ये साधु, सन्त, ब्राह्मण जाति के न भी हो परन्तु जनता मे विश्वास उत्पन्न करने के लिये वे अपने को ब्राह्मण वशावतस ही बतलाते है। काशी के सन्यासियो से बचकर रहने का उपदेश एक सूक्ति मे दिया गया है और इनकी गणना राँड, साँड और सीढ़ी की श्रेणी मे की गई है।[9]

गत पृष्ठो मे प्रस्तुत किये विवरण से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि समाज के ब्राह्मणो का बडा ही महत्त्व है। भोजपुरी लोकोक्तियो मे उनकी चारित्रिक विशेषताओ का जो कुछ उल्लेख मिलता है उसमे सत्य का अश कुछ कम नही है परन्तु उनकी भोजन-भट्टता के सबध मे निश्चय ही अत्युक्ति का प्रयोग किया गया है।

गुरु का महत्त्व तथा भेद

ब्राह्मणो मे धार्मिक दृष्टि से सामान्यतया दो वर्ग उपलब्ध होते है। ये (१) गुरु और (२) पुरोहित के नाम से अभिहित किये जाते है। गुरु का शाब्दिक अर्थ है अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर करने वाला जब कि पुरोहित आगे आने वाली (पुर) भलाई (हित) की चिन्ता करने वाला होता है। गुरु और पुरोहित इन दोनो मे गुरु का स्थान श्रेष्ठ माना जाता है। गुरु अपने शिष्यो को ज्ञान का उपदेश देता है, उनको सन्मार्ग पर चलने का आदेश करता है। भक्तजन उसके उपदेशो का पालन कर अपने जीव को सुखमय बनाते हैं। धर्म और ज्ञान का प्रचार करना उसका परम कर्तव्य होता है।

कुछ गुरु अपने शिष्यो को दीक्षा देने के कारण 'दीक्षागुरु' कहलाते हैं। भोजपुरी में इन्हें "कानफुकवा गुरु" कहा जाता है। ये अपने शिष्यो के कर्ण कुहरो मे पंचाक्षर—"शिवाय नम"—अथवा द्वादशाक्षर—"ओम् नमो भगवते वासुदेवाय"—मत्र का उपदेश देते है। शिष्यो के कान मे इन मंत्रो के फूंकने अथवा कहने के कारण इनको 'कनफुकवा गुरु' की संज्ञा दी गई है। ये वर्ष मे कम से कम एक बार अपने शिष्यो के घर जाते हैं। उन्हे उपदेश देते हैं। बिदाई के समय शिष्य धन, धान्य, वस्त्र आदि दक्षिणा के रूप मे इन्हे देते हैं। इस वृत्ति को "चेलवाही" कहा जाता है जो इन गुरुओं की जीविका का एक मात्र साधन है।

१ चिउड़ा दही बारह कोस। लुचुई अठारह कोस।।
२ दही चिउडा के सुनगुन पाई। अस्सी कोस निहुरले जाई।।
३ शष्कुली नाम मात्रेण,कि दूर योजन शतम्।
४ अनकर आटा, अनकर घीव। चाबस, चाबस, बाबा जी।।
५ अनकर धन पर, लच्छमी नारायन।
६ बाभन पेटे, अहीर बकोटे।
७ बाभन पोंग ही पोंग।
८ तीन फँकिया टीका, मधुरी बानी। दगाबाज के, इहे निसानी।।
९ राँड, साँड, सीढ़ी, सन्यासी। इनसे बचे तो सेवै कासी।।

गुरु की महिमा का पता निम्नाकित सात बातो से चलता है।

(१) गुरु का आदर-सत्कार

(२) उसका चरणामृत लेना

(३) उसका उच्छिष्ठ भोजन करना

(४) 'सौ ठाकुरद्वारा ना एक गुरुद्वारा'

(५) 'मन लागल हमार गुरु चरनन से'

(६) मरने के पहिले गुरुमत्र लेना आवश्यक

(७) शास्त्रो मे गुरु की महिमा

पुरोहित

भोजपुरी मे पुरोहित को 'उपुरोहित' कहा जाता है। पुरोहित का स्थान गुरु की अपेक्षा कुछ नीचा समझा जाता है। समाज मे दोनो ही आदर और सत्कार के अधिकारी है परन्तु गुरु को विशेष सन्मान प्रदान किया जाता है।

जब किसी गृहस्थ के घर मे पुत्र का जन्म होता है अथवा उसका मुण्डन या यज्ञोपवीत सस्कार किया जाता है तब पुरोहित को बुलाया जाता है। विवाह और गवना के समय भी पुरोहित की आवश्यकता होती है। किम्बहुना, किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् जो श्राद्ध कम किया जाता है उसमे पुरोहित को शय्यादान, वस्त्रदान, पात्रदान दिया जाता है। सत्यनारायण की कथा कहनी हो अथवा त्रिलोकी बाबा की कहानी, या दुर्गा सप्तशती का पाठ करना हो अथवा महामृत्युन्जय का जप—इन सभी कृत्यो का सम्पादन पुरोहित जी के द्वारा ही किया जाता है। इस प्रकार पुरोहित अपने यजमान—जिसे भोजपुरी मे 'जजमान' कहते है—का सतत सहचर है। यह यजमान के सभी शुभ और अशुभ कर्मों मे सदा उपस्थित रहता है। सच तो यह है कि गृहस्थ का दैनिक जीवन सबधी तथा धर्म सबधी काय गुरु के बिना भले ही चल जाय परन्तु पुरोहित जी के बिना जजमान की गाडी एक डग भी आगे नही बढ़ सकती। इसी से पुरोहित का कुछ महत्त्व समझा जा सकता है।

जजमानी प्रथा

भोजपुरी मे प्रचलित जजमान शब्द सस्कृत के 'यजमान' का अपभ्रश रूप है जिसका अथ है यज्ञ करनेवाला। चूकि गृहस्थ सभी धार्मिक तथा "सेकुलर" कृत्यो को यज्ञ के रूप मे ही सम्पादित करता है, अत वह जजमान कहा जाता है। जब खेतो मे अन्न बोया जाता है तब गृहस्थ अपने पुरोहित को बुलाकर इसके लिए शुभ मुहूर्त पूछता है और उसी समय मे अन्न का बीजारोपण करता है। जब अन्न खेत मे पक कर तैयार हो जाता है और 'दँवरी' कर घर लाया जाता है तब उसका एक विशिष्ट अश जजमान अपने पुरोहित को देता है। इसी प्रकार से सभी मागलिक कृत्यो के अवसर पर पुरोहित को धन और वस्त्र दिया जाता है।

पुरोहित अपने जजमानो के घर जाकर उसके धार्मिक कृत्यो का सम्पादन करता है। इसके फलस्वरूप उसे दक्षिणा दी जाती है। पुरोहित की जीविका का यही एकमात्र साधन होता है। यही "जजमानी प्रथा" के नाम से प्रसिद्ध है। आधुनिक समाज-शास्त्रियो ने इस प्रथा का बडा ही सांगोपाग विवेचन किया है तथा पुरोहित और जजमान के कर्तव्यो पर प्रचुर प्रकाश डाला है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय मे "पौरोहित्य" परीक्षा हुआ करती है जिसे उत्तीण करने वाला व्यि त पुरोहित बनने का अधिकारी समझा जाता है। 'जजमानी प्रथा' समाज-शास्त्रियो के लिए अध्ययन का विस्तृत क्षेत्र है जिसके गभीर मीमासा की अत्यन्त आवश्यकता है।[१]

(ख) क्षत्रिय

(४) अनुच्छेद

बर्णों की गणना मे दूसरा स्थान क्षत्रिय का है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त मे इन्हे विराट् पुरुष के बाहुओ से उत्पन्न बतलाया गया है।[२] मनुष्य के शरीर मे भुजा शक्ति का प्रतीक है। अत विराट् की बाहुओ से उत्पन्न क्षत्रियो का वीर धर्मावलम्बी होना स्वाभाविक ही है। महाकवि कालिदास ने क्षत्रिय शब्द की उत्पत्ति को बतलाते हुए लिखा है कि जो गरीबो और निर्बलो की

१ इस प्रथा के विशेष विवरण के लिए देखिए—दि जजमानी सिस्टम।

२. ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्, बाहु राजन्य' कृत।

रक्षा करता है वही वास्तव मे क्षत्रिय है।[1] अत क्षत्रियो का एकमात्र धर्म समाज और देश की रक्षा करना था। इसमें सन्देह नही कि इन्होने अपने धर्म तथा देश की रक्षा अपने प्राणो की बाजी लगा कर की है।

क्षत्रियो की विभिन्न जातियाँ और उप—जातियाँ पायी जाती हैं। अधिकाश क्षत्रिय अपने को सूर्यवंश और चन्द्रवंश मे उत्पन्न मानते है। इन क्षत्रियो मे सिसोदिया, उज्जैनवशी, विसेन, हैहय वशी आदि अधिक प्रसिद्ध है। इन लोगो को अपने वंश पर बडा अभिमान है जो उचित ही है। ये लोग अपने आन के पक्के होते है। भोजपुरी प्रदेश मे अनेक क्षत्रियो के वंशज विद्यमान है जो बडे श्रेष्ठ है। समाज मे इनका बडा ही आदर है और सभी लोग इन्हे सन्मान की दृष्टि से देखते है। वास्तव मे ये प्रतिष्ठा और मान के समुचित अधिकारी है।

राजपूत—यह शब्द संस्कृत के 'राजपुत्र' का अपभ्रंश रूप है जिसका अर्थ है राजा का पुत्र या राजकुमार। मध्ययुग मे राजस्थान मे क्षत्रिय राजाओ का एकछत्र साम्राज्य स्थापित था जिसके कारण इस जनपद का नाम ही 'राजपूताना' पड गया। कर्नल टाड ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ—एनाल्स एण्ड एन्टीक्विटीज आफ राजस्थान—मे राजपूतो के शौर्य, पराक्रम, और वीरता का बडा ही सुन्दर तथा ओजस्वी वर्णन प्रस्तुत किया है। उसने लिखा है कि हल्दीघाटी राजस्थान की थर्मापाली है और दिवर उसका मेरेथान है। राजपूतो की आन तो प्रसिद्ध ही है। राजपूत अपनी आन का पक्का होता है और अपने प्राणो की बाजी लगाकर भी शरणागत की रक्षा करता है। महाराजा हम्मीर की प्रतिज्ञा तो प्रसिद्ध ही है जिन्होने शरण मे आये हुए एक मुसलमान शासक की रक्षा के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग कर दिया। इसीलिए उनके सबंध मे यह कहावत प्रचलित है कि—

"तिरिया, तेल, हमीर-हठ, चढ़े न दूजी बार।"

राजपूतो का यह स्वाभाविक गुण है कि वे किसी के सामने झुकना नही जानते। वे समूल नष्ट हो जाना पसन्द करते हैं परन्तु किसी के आगे गिडगिडाना नही जानते। उनकी इसी स्वभावगत विशेषता का वर्णन एक लोकोक्ति मे इस प्रकार किया गया है।

"राजपूत जाति मूसर के धनुही। टूटे त टूटे, नवे ना कबहीं॥"

अर्थात् राजपूत जाति मूसर[2] से बने हुए धनुष के समान है। इसलिए इनका टूटना तो संभव है परन्तु उसे झुकाया नही जा सकता। राजपूतो की अक्खडपन का इससे कुछ अनुमान किया जा सकता है। एक दूसरी कहावत है—"सूते रजपूत, उठे अजगूत।"—अर्थात् जब सोया हुआ व्यक्ति हो, तब उसे राजपूत समझना चाहिए और जब जगा हुआ हो तब 'अजगूत' मानना चाहिए। राजपूत लडने-भिडने और युद्ध की कला मे बडे प्रवीण होते है। कभी-कभी ये जोश मे आकर होश भी खो देते है। उपर्युक्त लोकोक्ति मे प्रयुक्त 'अजगूत' शब्द का संकेत राजपूतो की वीरता की ओर है।[3]

राजपूतो की अनेक जातियाँ और उपजातियाँ उपलब्ध होती हैं जिनका वर्णन करना कठिन है। 'राजपूत अउर धान के ओर ना मिले' इस लोकोक्ति मे इसी कथन की चरितार्थता का उल्लेख है। जिस प्रकार चावल की विभिन्न किस्मों—बासमती, आलू चीनी, लटेरा, मोहन भोग, अरवा, उसिना, आदि का अन्त नही है, उसी प्रकार से राजपूतों की भी विभिन्न जातियों को समझना चाहिए।

राजपूतो की उपाधि प्राय सिंह होती है। अत पराक्रम में इनकी उपमा जंगल के राजा सिंह से दी जाती है। अवधी की एक पहेली मे इनकी तुलना सिंह से की गई है—

"एक जाति अइसन अहै। घर, वन दुनो मां रहै॥"

कहने की आवश्यकता नही कि घर मे रहने वाली यह जाति क्षत्रिय है और वन मे निवास करने वाली जाति सिंह है।

(ग) वैश्य

(५) अनुच्छेद

वर्णो की गणना मे तीसरा स्थान वैश्यो का है। मनु ने लिखा है कि खेती करना, गायों की रक्षा तथा व्यवसाय करना ये वैश्यो के स्वाभाविक कर्म हैं। "कृषिगोरक्षवाणिज्य, वैश्य कर्म स्वभावजम्"। आजकल वैश्यो का प्रधान व्यवसाय व्यापार

१ क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्र', क्षत्रस्य शब्द भुवनेषु रूढ —रघुवंश
२ गोला और मोटा काष्ठ खण्ड जिससे ओखली मे चावल छाँटा जाता है।
३ डॉ० शशि शेखर तिवारी। —भो० लो०, पृ० १३४।

करना है। ये समाज के लोगो के लिए उनके जी न की उपयोगी वस्तुओ को सुलभ कर उनका पालन करते है। वैश्यो का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त मे इनका उल्लेख पाया जाता है, जहाँ इनकी उत्पत्ति विराट् पुरुष के उरू अर्थात् जघें से बतलाई गई है।

बनिया—वैश्यो की भी अनेक जातियाँ और उपजातिया पायी जाती है जिनमे अग्रवाल, बारहसेनी आदि प्रसिद्ध है। गाँवो मे वैश्य लोग खाद्य-पदार्थों का व्यापार करते है। ये अपनी दूकान पर चावल, दाल, आटा, सत्तू, गुड, नमक आदि सामग्री को बेचते है जो ग्रामीण जनो के लिए अत्यन्त उपयोगी है। ये बिसातखाना की दूकान भी करते है जहाँ अन्नादि को छोडकर अन्य आवश्यक वस्तुओ का भी विक्रय किया जाता है।

व्यापारी होने के कारण बनिया मितव्ययी, व्यवहार-कुशल, और चतुर होता है। लोक साहित्य मे ये अपनी कजूसी, चालाकी, और दब्बूपन के लिए प्रसिद्ध है। एक लोकोक्ति के अनुसार यह अत्यन्त कजूस होता है। यदि यह प्रसन्न होता है तौभी एक दमडी से अधिक का दान नही करता।

'बनिया के खुसी भइल, दमडी के दान कइलसि।'

बनिया का हृदय उदार नही होता। वह अत्यन्त सकुचित तथा सकीण हृदय वाला होता है। इसीलिए यह कहा गया है कि बनिया का जीव धनिया के बराबर होता है। 'बनिया के जीव धनिया बरोबर।' बनिया किसी को दान के रूप मे अपना धन नही देता है। परन्तु जब वह सकट मे पडता है तभी अपने धन को खच करता है। इसीलिए इसकी गणना आम और नीबू के साथ की गई है जो चाँपने अर्थात् दबाने से ही रस देते है —

'आमी, नीबू, बनिया, चाँपे से रस देय।

इसी अर्थ को द्योतित करने वाली एक दूसरी लोकोक्ति इस प्रकार है —

'माँगे बनियाँ गुड ना दे, मुँह मलला पर भेली दे।

अर्थात् माँगने पर बनिया गुड का एक टुकडा भी नही देता परन्तु उसका मुँह मल देने पर अर्थात् मारने पर वह 'भेली' देने के लिए तैयार हो जाता है।

बनिया बड़ा ही चालाक होता है। वह 'डण्डी मारने' (कम तौलना) की कला मे अत्यन्त निपुण होता है। वह कभी भी पूरा तौल कर नही देता है।[1] वह इस सफाई के साथ 'डण्डी मारता' है कि तीन पाव सामग्री को एक सेर तौल कर दिखला देता है।

"कुछ हाथ की सफाई, कुछ डण्डी के फेर।
बोसरा के तीन पाव, बनिया के सेर॥"

ठग लोग अनजान मे दूसरो को ठगते है परन्तु बनिया तो अपने ग्राहको को उनके सामने ही धोखा देता है।

"जान मारे बनिया, अन-जान मारे ठग।"

(घ) शूद्र

(६) अनुच्छेद

वर्णों मे अन्तिम वर्ण शूद्र माना जाता है। मनु ने इनके विषय मे लिखा है कि इनका कार्य इतर तीन वर्णों की सेवा करना है। यही इनका स्वाभाविक कार्य है —

'परिचर्य्यात्मक कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।"

यह अन्तिम वर्ण आज भी अपनी परम्परा के अनुसार अपने कार्य मे निरत है।

भोजपुरी प्रदेश मे शूद्रो की अनेक जातियाँ तथा उपजातियाँ उपलब्ध होती हैं। ये तथाकथित अस्पृश्य जातियाँ है। उच्चवर्ण के लोग इन जातियों के अन्न और जल को ग्रहण नही करते थे और आज भी नही करते हैं। यद्यपि भारतीय सविधान

१. बनियाँ बे ना पूरे तउल।

ने अस्पृश्यता को एक अपराध घोषित कर दिया है और कानून की दृष्टि से अस्पृश्यता अवैध करार दे दी गयी है। परन्तु व्यवहार के क्षेत्र मे यह आज भी जीवित है। आज सावजनिक जलाशयो—जैसे वापी, कूप, तडाग आदि तथा सार्वजनिक स्थानो—होटल, धर्मशाला, सराय आदि—मे इन अस्पृश्य कही जाने वाली जातियो का प्रवेश निषिद्ध नही है। ये लोग सभी स्थानो म नि शक विचरण कर सकते है।

इस क्षेत्र मे शूद्र वर्ण की अनेक जातियाँ निवास करती है जिनमे चमार, भगी, दुसाध, हलखोर एव बसफोर आदि प्रसिद्ध हैं। महात्मा गाँधी ने इन जातियो को 'हरिजन' का सुन्दर नाम प्रदान किया है। अत यहाँ इनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

हरिजन जातियाँ

(१) **चमार**—हरिजन कही जाने वाली जातियो मे चमार' सबसे अधिक प्रसिद्ध है। चमार शब्द संस्कृत के 'चम कार' का अपभ्रश रूप है जिसका अथ है चमडे को करने वाला अथवा बनाने वाला। जैसा कि इस शब्द से ही विदित होता है, चमार लोगो का प्रधान व्यवसाय चमडे का है। ये लोग मृत पशुओ की खाल से देशी जूता बनाने का काय करते है। इन चमार लोगो के द्वारा बनाये जाने के कारण ही इस जूते का नाम 'चमरौधा' पड गया है। ये लोग इन देशी जूतो को गाँव के बाजारो मे बेचने के लिए ले जाते है और इनका विक्रय करके अपनी जीविका चलाते है। ये जूते बिना कमाये हुए चमडे से बनाये जाते है, अत बडे ही सख्त तथा कठोर होते है।

गावो मे जो पशु—जैसे गाय, बैल, भैस आदि—मर जाते है उन्हे इन चमारो को नि शुल्क दे दिया जाता है जिनके चमडे से जूता बनाकर ये अपने परिवार का पालन-पोषण करते है। अत लोगो की यह धारणा है कि ये लोग सदा यह मनाते रहते है कि कोई जानवर मर जाय जिससे इनकी जीविका चालू रहे। इस सबध मे एक कहावत प्रचलित है कि—

"चमार के मनवला से डाँगर ना मुवे"

अर्थात् चमार के द्वारा मनौती करने से पशु नही मर जाते। इस लोकोक्ति के द्वारा इनके व्यवसाय पर भी किंचित् प्रकाश पडता है।

चमार लोगो का रूप-रग प्राय काला होता है। यही इनका स्वाभाविक रूप है। परन्तु यदि ब्राह्मण का रग काला हो और चमार गौर वर्ण का हो—अर्थात् अपनी जाति के रूप-रग से इनमे विपरीतता पायी जाय—तो ये बडे ही नीच तथा विश्वास घाती होते हैं। कहावत है[२]—

करिया बाम्हन, गोर चमार। कायर छत्री, बड़ हतियार॥"

एक लोकोक्ति के अनुसार भादो मे भैसा और चैत्र के महीने मे चमार बहुत ही प्रसन्न होता है—"भादो भैंइसा चैत चमार।" चैत मास मे चमारो के प्रसन्न होने का कारण यह है कि इस मास मे रबी की फसल होती है। इनको पीने के लिए ताड़ी मिलती है तथा फाल्गुन और चैत मास मे जो विवाह आदि होते हैं उनमे नेग के रूप मे इन्हें वस्त्र तथा द्रव्य मिलता है।

चमार लोग गाँव के बाहर मिट्टी का मकान बनाकर रहते हैं। इनके निवास-स्थान को 'चमरौटी' कहा जाता है। विवाह आदि मागलिक अवसरो पर ये लोग ढोल, तुरही, डफरा आदि बाजा बजाया करते हैं जो इनके नाम से 'चमरुआ बाजा' के अभिधान से प्रसिद्ध है। इनकी स्त्रियो को 'चमाइन' या 'चमइन' कहते हैं जो गाँवो मे किसान के घर बच्चा पैदा होने पर 'नस' का काम करती है।

(२) **डोम**—डोम जाति बडी प्रसिद्ध है। ये श्मशान के स्वामी माने जाते हैं। बिहार राज्य के पश्चिमी तथा उत्तर-प्रदेश के पूर्वी भागो मे 'मगहिया डोम' पाये जाते है जो अनेक कारणो से विख्यात हैं। इस जाति के लोग श्मशान घाट पर दाह-सस्कार के समय मृतक को जलाने के लिए 'आग देते' है। काशी मे मणिकर्णिका घाट पर शव को जलाने के लिए डोम ही अग्नि देता है जिसके लिये ये लोग बडी लम्बी दक्षिणा माँगते हैं। यह तो प्रसिद्ध ही है कि राजा सत्य हरिश्चन्द्र काशी मे किसी

१ ब्रिग्स (W. G Briggs) ने चमारों की जनसख्या, क्षेत्र विस्तार, व्यवसाय, रहन-सहन और सामाजिक प्रथाओं के के सबध में बहुत ही सुन्दर गवेषणात्मक तथा शोधपूर्ण पुस्तक—दि चमार्स—लिखी है जिसमें इस जाति का समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। विशेष विवरण के लिए इस पुस्तक को देखना चाहिए।

२. लेखक का निजी सग्रह।

डोम के हाथो बिके थे और उनका काय श्मशान घाट पर टैक्स वसूल करना था। परन्तु डोमो का यह व्यवसाय केवल शहरो मे ही सीमित है।

गावो मे ये लोग बाँस की डलिया, चगेली, छीट्टा और सीक से सूप आदि बनाकर अपनी जीविका उपाजन करते है। जब किसी धनी व्यक्ति के घर बारात आती है अथवा किसी प्रकार का भोज होता है तब बारातियो अथवा ब्राह्मणो के भोजन के पश्चात् ये जूठे पत्तलो को एकत्रित करते है और जो उच्छिष्ट अन्न भोजनोपरान्त बच जाता है उसे खाकर ये अपनी जिन्दगी बसर करते है। डोम लोग देशी शराब तथा ताडी पीने के आदी होते है। रात मे शराब पीकर जब ये मदमस्त हो जाते है तब बडा हल्ला तथा शोर-गुल मचाते है जिसे "डोम घॉउज" कहा जाता है। इसी मस्ती मे ये मार पीट भी कर बैठते है। भोजपुरी लोकसाहित्य मे इनके व्यवसाय की ओर सकेत किया गया है। कहावत है—**"मरला के पाछे डोम राजा।"** अर्थात् किसी व्यक्ति के मरने पर उसका स्वामी डोम हो जाता है। भाव यह है कि डोम की आज्ञा के बिना मृतक के दाह-सस्कार के लिए अग्नि कदापि नही मिल सकती। डोम स्वय नीच वग के सदस्य है परन्तु वे धोबी को अपने से भी नीच समझते है—

डोम के जनते धोबी नीच।"

अर्थात् डोमो के अनुसार धोबी सबसे नीच कम करने वाले है। इसीलिए डोम धोबी के हाथ का छुआ भोजन आदि ग्रहण नही करते। इससे ज्ञात होता है कि स्पृश्यास्पृश्य की प्रथा हरिजनो मे भी प्रचलित है। डोम अघोरी से हार जाता है—**"डोम हारे अघोरी से"** अर्थात् डोम अघोरी (औघड) से भी गन्दे रहते है।

ऐसा ज्ञात होता है कि मध्य युग मे डोम एक पराक्रमी जाति थी। डॉ० द्विवेदी ने लिखा है[1] कि "बगाल के डोम सहजिया बौद्ध थे और किसी जमाने मे प्रबल, पराक्रान्त राज्यो के अधीश्वर थे। अधिकार वचित होने पर ये लोग दुर्दान्त हो गये थे।" ब्रिटिश शासन काल मे डोमो की गणना 'क्रिमिनल ट्राइब्स' मे की जाती थी और पुलिस इनकी हरकतो पर कडी निगाह रखती थी। परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् इनके ऊपर से यह प्रतिबन्ध हटा लिया गया है और अब ये लोग स्वतत्र नागरिक है। दुसाधो के समान डोम भी अपनी शक्ति और साहस के लिए प्रसिद्ध है।

(३) **दुसाध**—दुसाध शब्द का सबध सस्कृत के 'दु साध्य' से ज्ञात होता है जिसका अथ है कठिनता के साथ साधन करने योग्य। इस शब्दार्थ से ही इस जाति की विशेषता का कुछ अनुमान किया जा सकता है। दुसाध एक अन्त्यज जाति है। अग्रेज लोग जब इस देश मे अपना राज्य स्थापन मे सलग्न थे तो उन्हे कुछ अत्यन्त दुर्दान्त जातियो का सामना क ना पडा था। उत्तर भारत के अहीर और दुसाध तथा बगाल के डोम बडे लडाके थे और कानून को मानने से सदा इन्कार करते थे। चतुर अग्रेजो ने इन जातियो से चौकीदारी का काम लेकर इन्हे अपने वश मे कर लिया।[2] दुसाधो के पुरातन इतिहास का पता लगाना कठिन है। परन्तु नि सन्देह ये किसी अधिकार-च्युत बडी जाति के भग्नावशेष होगे। अब ये लोग अपने को दु शासन के वशज बताते है।[3]

गाँवो मे दुसाध जाति के लोग प्राय चौकीदारी का काम करते है। ये गाँव के प्रहरी है और ग्रामीण जनता की रक्षा करना ही इनका प्रधान कार्य है। गाँव मे यदि कोई चोरी, डकैती, मार-पीट या खून-खच्चर होता है तो उसकी सूचना ये अति शीघ्र निकटतम पुलिस स्टेशन को देते है और इनकी सूचना पाते ही पुलिस वहाँ उपस्थित होकर शान्ति की स्थापना करती है। इस प्रकार चौकीदार—जो प्राय दुसाध जाति का सदस्य होता है—भारतीय शासन-सूत्र की सबसे छोटी ईकाई (unit) है। अतएव उसका एक विशेष स्थान है।

दुसाध की झोपडी गाँव से बाहर बनायी जाती है। यह भी एक अस्पृश्य जाति है। अत गाँव के भीतर इनका निवास उचित नही माना जाता। इस सबध मे एक कहावत प्रसिद्ध है।

"दुसाध के खोभाडि, कहीं गाँव बसेला"

अर्थात् दुसाध की झोपडी के पास कही गाँव बसाया जाता है? आशय यह है कि दुसाध का निवास-स्थान गाँव के बाहर होता है। इस जाति के सदस्य चोरी भी करते हैं जिसका सकेत निम्नाकित लोकोक्ति मे पाया जाता है।

१ डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी अशोक के फूल, पृ० ३४।
२ डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी . अशोक के फूल, पृष्ठ ३४।
३. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी : अशोक के फूल, पृ० ३४।

"दुसाध जाति खाये नीचे, ताके ऊँचे"[1]

इसका भाव यह है कि दुसाध जाति दूसरो के यहाँ नीचे बैठकर खाती है परन्तु उनकी नजर सदा ऊँची रहती है। अर्थात् उनकी नजर ऊँची जगहों पर दौडती रहती है। ये लोग चोरी करने के लिए दूसरो [illegible] भी लगे रहते है।

दुसाधो के देवता 'राहु' माने जाते है। ये लोग इनकी मिट्टी की प्रतिमा बनाकर पूजा करते है। इनमे 'गाँजा' का प्रयोग अधिक किया जाता है। गावो मे दुसाध लोग सूअर पालते है जिनके मास का सभवत ये लोग खाते है। ये लोग सूअर के बच्चो को बेचकर धन कमाते है। इस प्रकार इनका यह व्यवसाय आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद तथा उपयोगी है। सूअर और उनके बच्चो को एक छोटे से घर मे रखा जाता है जिसका दरवाजा बडा ही छोटा और तग होता है। यह 'खोभारि' के नाम से प्रसिद्ध है। इसीलिये गन्दे, छोट, तग, और बहुल-सकुल स्थान को 'खोभारि' की सज्ञा प्रदान की जाती है।

(४) **बँसफोर**—यह भी एक अस्पृश्य जाति है। जैसा कि इसके नाम से ही विदित होता है इसका व्यवसाय बाँस को फोरना या चीरना है। इसीलिए ये 'बाँसफोर' के नाम से अभिहित किये जाते है। इनका प्रधान व्यवसाय बाँस को चीरकर उसकी पतली पतली 'पत्तिया' बनाना है। इन्ही पत्तियो के द्वारा ये लोग दौरा, दौरी, डाली, झीट्टा, पखा बेनिया, आदि बाँस के पात्र बनाते हैं। दौरा-दौरी आदि बडे पात्र विवाह आदि मे पूडी और मिठाई रखने के काम लाया जाता है। बेनिया का उपयोग पखा झलने के काम मे होता है। इस प्रकार बँसफोर जाति के लोग किसानो के लिए जितने भी उपयोगी बाँस के पात्र हैं, उनका निर्माण करते हैं।

(५) **हलखोर**—शहरों मे जो काय भगी किया करते हैं गाँवों मे वही काम हलखोर का समझना चाहिए। इस शब्द की निरुक्ति के सबध मे कुछ कहना बडा कठिन कार्य है। क्या 'हलालखोर' से इसका कुछ संबंध तो नही है? ये लोग गाँव मे बने "उठऊवा पाखाना" को साफ करते या कमाते हैं जिसके लिए इन्हें स्वल्प द्रव्य प्रदान किया जाता है। इनकी स्त्रियो को 'हलखोरिन' कहते हैं जिनकी दूसरी सज्ञा 'हेलिन' भी है। ये लोग अपने परिश्रम के द्वारा गाँव की गन्दगी को दूर करने मे लगे रहते है। गन्दी नाली को साफ करना, घूर को 'बीगना', तथा कूडे-करकट और कतवार को फेंकना इनका ही काम है। इस प्रकार गाँवों के भीतर सफाई रखना इनका काम है।

(६) **घिरिकार**—यह भी एक अस्पृश्य जाति है जो गाँवो मे कहीं कहीं पायी जाती है। 'घिरिकार' शब्द घिक्कार से सबधित जान पडता है। चूकि इस जाति के सदस्यो को उच्चवर्ग के लोग घिक्कारते रहे होगे, इनको घृणा की दृष्टि स देखते रहे होगे, अतएव इनका नाम 'घिरिकार' पड गया होगा। हरिजनो मे भी यह जाति अत्यन्त निम्न समझी जाती है। इनका प्रधान व्यवसाय क्या है यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। मनु ने 'चाण्डाल' को पाँचवाँ वर्ण कहा है और इन्हें 'अधमाधम' की सज्ञा प्रदान की है। वर्तमान लेखक की विनम्र सम्मति मे मनु के द्वारा उल्लिखित 'चाण्डाल' के वंशज वर्तमान 'घिरिकार' जाति के लोग हैं। सभवत धर्मशास्त्रो मे इस जाति का कही उल्लेख नही पाया जाता। इसके सदस्यो की सख्या प्रतिदिन क्षीण होती जा रही है।

गत पृष्ठो मे हरिजन जातियो का जो वर्णन प्रस्तुत किया गया है उनके सबध में यह जान लेना आवश्यक है कि उच्च वर्ग के लोग इन्हे अस्पृश्य समझते है और इनके द्वारा स्पृष्ट अन्न और जल को ग्रहण नहीं करते। परन्तु यह बहुत ही आश्चर्य-जनक तथा मनोरजक विषय है कि हरिजन जातियो मे भी स्पर्शास्पर्श की भावना विद्यमान है। इनमे भी ऊँच-नीच का विचार पाया जाता है। उदाहरण के लिए चमार जाति के लोग डोम का छुआ हुआ पानी नहीं पी सकते और न दुसाध लोग हलखोर या घिरिकार के यहाँ भोजन ही कर सकते हैं। इस प्रकार तथाकथित अस्पृश्यो में भी स्पृश्यास्पृश्य की भावना अपने उग्र रूप मे पायी जाती है। जब अछूत ही आपस मे छुआछूत का विचार रखते हैं तब उच्च वर्ग के लोग इस भावना से भावित हो तो इसमे आश्चय ही क्या है।

परन्तु आधुनिक अग्रेजी शिक्षा के प्रचार से तथा केन्द्रीय और राज्य सरकारो के उद्योग से स्पृश्यास्पृश्य की भावना अब धीरे-धीरे नष्ट हो रही है और वे दिन अब दूर नही जब यह अतीत की वस्तु बन कर रह जायेगी। गाँवो मे अब हरि-जनो की दशा सुधर रही है। सार्वजनिक स्थानो मे जाने के लिए उन पर अब कोई प्रतिबन्ध नही है और वे स्वतन्त्र भारत के स्वतत्र नागरिक के रूप मे निवास कर रहे है। सरकारी नौकरियो मे उनका 'कोटा' निश्चित हो जाने के कारण उनकी आर्थिक दशा भी सुधरने लगी है और उनकी सर्वांगीण उन्नति होने लगी है।

१ डॉ० शशिशेखर तिवारी : भोजपुरी लोकोक्तियाँ, पृ० १३१।

आश्रम

(२) परिच्छेद

भारतीय धमशास्त्रकारो ने मनुष्य के जीवन की अवधि सामान्यतया एक सौ वष मानी है। इसी कारण वैदिक आय सदा सौ वष जीवित रहने की प्राथना किया करते थे। प्रतिदिन भगवान् से उनकी यही विनती रहती थी कि—

१ जीवेम शरद शतम्। ४ प्रब्रवाम शरद शतम्।
२ पश्येम शरद शतम्। ५ अदीना स्याम शरद शतम्।
३ श्रृणुयाम शरद शतम्। भूयश्च शरद शतात्।

अर्थात् हम लोग एक सौ वर्षो तक जीवित रहे। सौ वर्षो तक देखते, सुनते और बोलते रहे। हम सौ वर्षो तक सभी इन्द्रियो से समथ रहे। कभी दीन न बने और इस प्रकार अपने जीवन के सौ वर्षो को प्रसन्नता पूवक व्यतीत करे।

हमारे प्राचीन ऋषियो ने मानव जीवन के इन सौ वर्षों को चार आश्रमो अथवा अवस्थाओ मे विभक्त किया है —

(१) ब्रह्मचय (२) गाहस्थ (३) वानप्रस्थ तथा (४) सन्यास। ये जीवन की चार अवस्थाये हे। प्रत्येक आश्रम मे मनुष्य के लिए एक विशिष्ट काय करना निर्धारित किया गया है। इन चार आश्रमो मे से प्रत्येक को (२५) पचीस वर्षों मे विभक्त किया गया है। यथा—

(१) ब्रह्मचर्य आश्रम—१ वष से २५ वष तक (३) वानप्रस्थ आश्रम—५० वष से ७५ वष तक
(२) गृहस्थ आश्रम—२५ वष से ५० वर्ष तक (४) सन्यास आश्रम—७५ वष से १०० वर्ष तक

(१) ब्रह्मचर्य आश्रम

प्राचीन परम्परा के अनुसार मनुष्य को प्रथम पचीस वर्षो तक ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। उसका सबसे प्रधान कार्य अविवाहित रहकर वेद का अध्ययन करना है। यह कहना कुछ अनुचित न होगा कि भोजपुरी प्रदेश मे आश्रम-परम्परा का सर्वथा ह्रास हो गया है। वेदाध्ययन की प्राचीन प्रणाली—जिसके अनुसार यज्ञोपवीत सस्कार के पश्चात् बालक गुरुकुल मे जाकर वेदो का अध्ययन करता था—बिल्कुल लुप्त हो गई है। अब न तो ब्रह्मचय-व्रत धारण करने की कोई अवधि है और न तो अध्ययन के काल का कोई समय निश्चित है।

मनु ने ब्राह्मण और क्षत्रिय के बालको के यज्ञोपवीत का विधान क्रमश उनके जन्म के आठवे और बारहवे वष मे किया है। इसके पश्चात् वे गुरुकुल मे जाकर विद्याध्ययन किया करते थे। परन्तु आजकल इस प्रथा का सवथा लोप हो गया है। कदाचित् ही कोई ब्राह्मण अपने पुत्र का उपनयन सस्कार आठवे वष मे सम्पादित करता हो। यदि कोई पुराण-पन्थी इस नियम का पालन भी करें तो उसके पुत्र के गुरुकुल मे जाने की कोई व्यवस्था नही है। अत वह नियमपूर्वक पचीस वर्षों तक ब्रह्मचय व्रत का पालन करने मे असमर्थ है।

भोजपुरी प्रदेश मे क्षत्रिय और वैश्यो के यज्ञोपवीत की चर्चा तो दूर की बात है, ब्राह्मण-बालको के भी जनेऊ-सस्कार का कोई निश्चित समय नही है। "अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयीत" मनु का यह विधान उनकी स्मृति मे ही सुरक्षित रह गया है, अब उसका पालन कोई भी व्यक्ति नही करता।

अनेक ब्राह्मण अपने बालको का यज्ञोपवीत विवाह के अवसर पर ही किया करते है। उनके कुल मे विवाह से पहिले बालक का जनेऊ नही रहता। अत ये दोनो सस्कारो को एक ही मे मिला देते हैं। आर्थिक दृष्टि से यह व्यापार उनके लिए सस्ता और सरल पडता है। जहाँ यज्ञोपवीत सस्कार पृथक् रूप से सम्पादित किया जाता है वहाँ भी अक्षरारम, वेदाध्ययन और समावर्तन—ये तीनो ही सस्कार एक ही दिन मे, कुछ घटो के भीतर, समाप्त कर दिये जाते है। जहाँ जनेऊ के अवसर पर विवाह भी कर दिया जाता है, वहाँ पाँच सस्कारो का विधान दो या तीन दिनो के भीतर ही इतिश्री को प्राप्त करता है। इसे सस्कार-सकर कहे अथवा सस्कार-पचामृत इसका निर्णय करना कठिन है।

भोजपुरी-क्षेत्र मे बाल-विवाह की प्रथा प्रचलित है। आज से लगभग चालीस-पचास वर्षों पूव, आठ-दस वर्षों के बच्चो का विवाह होता था। यह प्रथा प्राय आज भी प्रचलित है। जिस समाज मे बालको का विवाह इतनी स्वल्प आयु मे किया जाता हो उस समाज के लोगो के द्वारा ब्रह्मचर्य आश्रम के पालन की आशा दुराशा मात्र है। सच तो यह है कि भोजपुरी बालक प्रथम आश्रम मे वर्तमान रहते हुए भी गृहस्थाश्रम के आनन्द का अनुभव करने लगता है। आश्रमो का यह व्यत्यय बडा ही शोचनीय है। अत इस प्रदेश मे ब्रह्मचर्य आश्रम का पालन कदाचित् ही कोई व्यक्ति करता हो। आश्रमो की यह सकरता हमारे ब्रह्मचर्य जीवन का सर्वथा नाश कर रही है और इसके फलस्वरूप हमारा बौद्धिक विकास भी समुचित रूप से नही हो रहा है।

(२) गृहस्थ आश्रम

अधिकाश भोजपुरी युवको का विवाह ब्रह्मचय आश्रम की समाप्ति के पहिले ही हो जाया करता है। अत गृहस्थ आश्रम मे उनके प्रवेश की अवधि की कोई रेखा नही खिंची जा सकती। भोजपुरी लोक साहित्य म ऐसे अनेक गीत उपलब्ध है जिनम बाल-विवाह की प्रतिध्वनि सुनाई पडती है। कोई युवती–जिसका विवाह किसी बालक पति मे हो गया है–अपने हृदय की मार्मिक पीडा को व्यक्त करती हुई भोला बाबा (शिवजी) से उलाहना देती हुई कहती है कि —

"सबके त देल भोला, अन, धन, सोनवा।
बनवारी हो, हमरा के लरिका भतार।"

"बनवारी" का यह गीत इस प्रदेश मे बडा लोक-प्रिय है। कहने का आशय यह है कि बाल विवाह के कारण ब्रह्मचय और गृहस्थ आश्रम मे जो अव्यवस्था उत्पन्न हो गई है, उसके कारण इस समाज का व्यक्ति किसी भी आश्रम के सम्यक परि-पालन मे असमथ है। विवाह के पश्चात् घर बसाने की चिन्ता होना स्वाभाविक ही है। इस प्रकार अपनी गृहस्थी के झझटो मे पडा हुआ भोजपुरी किसान अपना जीवन समाप्त कर देता है। कितने लोग वानप्रस्थ या सन्यास ग्रहण करने की बात तो दूर रही, अपने जीवन के अन्तिम घडियो तक अपने सदूक—जिसम उनकी कमाई रखी रहती है—की चाभी भी पुत्र, पौत्रो को नही देते और गृहस्थ आश्रम मे रहते हुए ही अपनी ऐहिक लीला समाप्त कर देते है।

(३) वानप्रस्थ आश्रम

प्राचीन काल मे पचास वर्ष बीत जाने के पश्चात मनुष्य गृहस्थी के भार को अपने पुत्र को समर्पित कर अपनी स्त्री के साथ वन मे निवास करता था। परन्तु आजकल इस आश्रम का सवथा लोप हो गया है। आज का गृहस्थ नाना प्रकार के घरेलू झझटो मे इतना अधिक फँसा रहता है कि उसे घर छोडकर इस आश्रम मे प्रवेश करने का अवकाश कहाँ? वह इस संसार को छोडकर भले ही चला जाय परन्तु वह यावत् जीवन अपनी गृहस्थी को नही छोड सकता। इसलिए अधुना कदाचित् ही कोई वानप्रस्थी मिल सके। वर्तमान काल मे जीवन की समस्या इतनी जटिल हो गई है, सामाजिक बुराइयो के कारण लडकियों के विवाह का सम्पादन इतना कठिन है तथा मँहगाई और बेरोजगारी से जीवन-यापन इतना दूभर हो गया है कि अपनी गृहस्थी को छोडकर वानप्रस्थ आश्रम मे प्रवेश करने की कोई बात सोच ही नही सकता। ऐसी दशा मे इस आश्रम का सर्वथा लोप ही समझना चाहिए।

(४) सन्यास आश्रम

प्राचीन समय मे "चौथेपन नृप कानन जाही" की परम्परा प्रचलित थी। साधारण मनुष्य भी गृहस्थी और वानप्रस्थ के झझटो को छोडकर सन्यास आश्रम मे प्रवेश करते थे। परन्तु अनेक कारणो से इस परम्परा का ह्रास होने लगा है। स्मृतिकारो ने भी कलियुग मे जिन पाँच कार्यों को न करने का आदेश दिया है उसमे सन्यास ग्रहण करना भी एक है। "कलौ पंच विवजयेत्" की सूची मे सन्यास की भी गणना होने के कारण इस आश्रम के प्रति सामान्य जनता की अभिरुचि कम होने लगी है।

गोस्वामी तुलसीदास ने कलियुग की महिमा का वर्णन करते हुए लिखा है कि—

"नारि मुई, गृह सम्पति नासी। मूड मुड़ाय भये सन्यासी।"

अर्थात् जब किसी व्यक्ति की स्त्री मर जाती है और घर की समस्त सम्पत्ति नष्ट हो जाती है तब वह अपने सिर को मुण्डित कराकर सन्यासी हो जाता है। गोस्वामी जी का यह कथन आधुनिक सन्यासियों पर अक्षरश चरितार्थ होता है। यदि आज कल के सन्यासियो के सन्यास ग्रहण करने के कारणो का अन्वेषण किया जाय तो निनानबे प्रतिशत ऐसे संन्यासी मिलेंगे जो घर-गृहस्थी के झझटो से ऊब कर अथवा सम्पत्ति के नष्ट हो जाने के कारण ही इस आश्रम में प्रविष्ट हुए हैं। वानप्रस्थ आश्रम के अभाव मे अब गृहस्थ आश्रम से सीधे (डाइरेक्ट) सन्यास को ही, लोग ग्रहण कर लेते हैं। काशी में इन संन्यासियो के निवास के लिए एक 'दण्डी आश्रम' बना हुआ है जहाँ इनको नि शुल्क आवास और भोजन प्रदान किया जाता है। परन्तु इनमें उस त्याग और तपस्या का अभाव पाया जाता है जो इनका आवश्यक धर्म है।

• • •

अध्याय—२

भोजपुरी लोक - साहित्य मे स्त्रियो का चित्रण

○○

महत्त्व—हिन्दू धमशास्त्रियो ने नारी के महत्त्व का प्रतिपादन अत्यन्त विशद शब्दो मे किया है। भगवान् मनु ने ना यहाँ तक लिखा है कि जहाँ स्त्रियो की पूजा होती है वहाँ साक्षात् देवता का निवास होता है —

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता"

इसके ठीक विपरीत जिस कुल मे स्त्रियाँ शोक करती है, उन्हे कष्ट प्राप्त होता है, वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है —

"नारयो यत्र शोचन्ति विनशत्याशु तत् कुलम्॥

वेदो के अध्ययन करने से पता चलता है वैदिक काल मे स्त्रियाँ अत्यन्त विदुषी होती थी। वे अनेक मन्त्रो की द्रष्टा थीं। उपनिषत् काल मे भी मैत्रेयी, अपाला, घोषा आदि शास्त्रा मे निष्णात स्त्रियो का पता चलता है। पुराणो के समय म भी स्त्रियो का महत्त्व कुछ कम नही था। पद्म-पुराण मे तो यहाँ तक लिखा है जो व्यक्ति स्त्रियो की पूजा करता है उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है। रामायण तथा महाभारत काल मे भी स्त्रियो का आदर समाज मे अधिक था। द्रौपदी के अपमान का बदला चुकाने के लिए महाभारत का युद्ध हुआ यह तो सर्वविदित ही है।

भोजपुरी समाज मे भी स्त्रियाँ समाज की आधारशिला समझी जाती है। वे परिवार तथा घर की स्वामिनी है। घर की मालकिन होने के कारण ही उन्हे 'घरिनी' की सज्ञा दी गई है। एक कहावत मे ऐसा उल्लेख मिलता है कि बिना स्त्री के घर को भूत का निवास ही समझना चाहिए

"बिन घरिनी घर भूत के डेरा।"

सस्कृत के एक पद्य में भी इसी प्रकार का भाव अभिव्यक्त किया गया है। कवि कहता है कि गृहिणी को ही गृह कहा जाता है "गृहिणी गृहमुच्यते।" जो गृह गृहिणी से विहीन है वह जगल से भी भयानक होता है —

"गृह तु गृहिणीहीनम्, कान्तारादतिरिच्यते।"

घर को भूत का डेरा कहे या जगल कहे दोनो का भाव एक ही है। तात्पर्य यह है कि स्त्री ही परिवार की आधारशिला है। इस प्रकार भार्या परिवार मे केन्द्र-बिन्दु के समान है। वह परिवार रूपी रथ-चक्र की वह धूरी है जिसपर गृहस्थी का चक्का चलता या नाचता रहता है। जिस प्रकार आकाश मे हजारो किम्वा लाखो ताराओ के विद्यमान होते हुए भी केवल एक चन्द्रमा के बिना प्रकाश नही होता, उसी प्रकार परिवार मे अनेक पुत्रो तथा पुत्रियो के होने पर भी स्त्री के अभाव मे कुटुम्ब का आनन्द नष्ट हो जाता है।

कर्म अथवा क्रियाशीलता से रहित बाचाल पुरुष के जीवन की निरर्थकता की उपमा उस घर से दी गई है जिसमे चारपाई तो है परन्तु उसको सुशोभित करनेवाली स्त्री का नितान्त अभाव है।[1] इस प्रकार नारी का महत्त्व कौटुम्बिक जीवन मे प्रचुर परिमाण मे पाया जाता है।

भोजपुरी लोक साहित्य—विशेषकर लोकोक्तियो—मे स्त्री को आदर प्रदान करने का उल्लेख पाया जाता है। कोई स्त्रैंण—स्त्री-भक्त-पति—कहता है कि मैं अपनी माता को मारूँगा, बहिन को गाली दूगा। परन्तु अपनी 'मेहरी' (स्त्री) को

१ बतिया बा करमतिया ना। खटिया बा, घर मेहरी ना॥

कन्धे पर चढाऊँगा अर्थात् उसे अत्यधिक सन्मान प्रदान करूँगा।[1] कोई पति सभवत माता या बहिन की चुगली के कारण क्रोधित होकर अपने झूठे क्रोध को दिखलाते हुए अपनी स्त्री को मारने चलता है, परन्तु अपनी प्रेयसी के प्रति, अतिशय प्रेम के कारण, घर की ड्योढी को ही लाठी से पीटने लगता है।[2]

शास्त्रो मे नारी महिमा का कितना भी डिडिम-घोष किया गया हो, परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से विचार किया जाय तो भोजपुरी समाज मे स्त्रियो का स्थान कुछ बहुत ऊँचा नही पाया जाता। प्रत्युत लोक-साहित्य मे स्त्रियो का जो चित्रण किया गया है उससे उनकी दीन तथा हीन दशा का ही पता चलता है। वर्णन की सुविधा के लिए नारी जीवन को हम तीन भागो मे विभक्त कर सकते है।

(१) नारी पुत्री के रूप मे। (२) नारी पत्नी के रूप मे। (३) नारी माता के रूप मे।

इसके अतिरिक्त नारी को विधवा, वन्ध्या, वेश्या आदि रूपो मे भी पाया जाता है। नारी के इन विभिन्न स्वरूपो का विवरण अगले पृष्ठो मे प्रस्तुत किया जाता है।

नारी पुत्री के रूप में

(१) अनुच्छेद

भोजपुरी समाज मे पुत्री का जन्म अभिनन्दनीय नही समझा जाता। जो उछाह और उत्सव पुत्र जन्म के अवसर पर दिखाई पडता है, उसका इस समय नितान्त अभाव पाया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि पुत्री के जन्म होने पर पृथ्वी तीन हाथ नीचे धँस जाती है और पुत्र जन्म पर तीन हाथ ऊँची उठ जाती है। पुत्र का जन्म 'अँजोरिया' (उजेली रात) के समान है तो पुत्री के जन्म से ससार मे अँधेरा छा जाता है। इसी एक उपमा से लडकी के जन्म की अवांछनीयता का अनुमान किया जा सकता है। यो तो पुत्री के जन्म का स्वागत कभी भी नही किया जाता परन्तु माता की प्रथम सन्तान के रूप मे यदि पुत्री पैदा हो जाय तो उसकी निराशा तथा उदासीनता का सहज मे ही अनुमान किया जा सकता है। ऐसी विषम परिस्थिति मे पुत्री की माता की यही अभिलाषा होती है कि या तो पुत्री पैदा ही न होती और यदि पैदा भी हो गई तो वह मर जाय तो अच्छा हो। एक भोजपुरी गीत मे कोई माता कहती है कि "यदि मैं यह जानती कि मुझे पुत्री पैदा होगी तो मैं काली मिर्च पीसकर पी लेती जिसकी तीक्ष्ण कटुता से यह लडकी मर जाती। इस प्रकार मैं पुत्री-जन्म के सन्ताप से मुक्त हो जाती।[3]

इतना ही नही, एक दूसरे गीत मे कोई स्त्री कहती है कि यदि पुत्री के जन्म होने की मुझे तनिक भी आशंका होती तो मै अपने पति के साथ सेज पर सोती ही नही और घर के दीपक को बुझा देती। पुत्री के जन्म का भय और आतक इससे अधिक और क्या हो सकता है कि उपर्युक्त गीत मे वर्णित नारी इसके कारण अपने दाम्पत्य सुख का ही परित्याग करने का सकल्प कर लेती है।

पुत्री के पैदा होते ही पास-पडोस की स्त्रियाँ आकर उसकी माता को तरह-तरह के व्यङ्ग्य बाणो से बेधने लगती है। कोई कहती है कि इस लडकी के पैदा होने की क्या आवश्यकता थी? तो कोई दूसरी बुढ़िया इस प्रकार ताना मारती है कि इसके बाप के रुपयो मे काई लग गयी थी। इसी को धोने के लिए अर्थात् खर्च कराने के लिए यह आई है।[4] कोई मुह बिजुकाती हुई कहती है—यह बेटियो की बाढ़ लगा देगी।[5] पुत्र तथा पुत्री के जन्म होने पर, इन अवसरो के समय, बड़ा

१. माई के मरबो, बहिन के गरिअइबों।
मेहरी के कान्हें चढ़इबों, गोविन्दे गोविन्द।।

२ मारे गइले मेहरी। ठेठावे लगले डेहरी।।

३ जाहु हम जनिती धियवा कोखी रे जनमिहे।
पिहितीं मे मरिच झराई रे।
मरिचि के झाकु झुके धिअवा मरि रे जाइति।
छुटि जइते गरुवा सताप रे।" —डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय · भोजपुरी लोक-गीत भाग २, पृ० १३१।

४ एकरा बाप के रुपया मे काई लागल
रहल हा, एही से ई पैदा भइलि हा।

५. इ बेटिनि के झुडि लगावे आइलि हा।।

भेद-भाव पाया जाता है। पुत्र के जन्म होने पर जहाँ नार काटनेवाली चमाइन को 'दो टका'—छ पैसा दिया जाता है वहाँ पुत्री के पैदा होने पर उसे केवल 'एक टका'—तीन पैसा—ही मिलता है। पुत्र जन्म का अभिनन्दन करने के लिए इस अवसर पर थाली बजाई जाती है परन्तु पुत्री पैदा होने पर विषाद का वातावरण उत्पन्न हो जाने के कारण, न तो थाली ही बजाई जाती है और न किसी प्रकार का उत्सव ही मनाया जाता है। लडका पैदा होने के छ दिनो के बाद 'छठी' और बारह दिनो के बीतने पर 'बरही' नामक उत्सव मनाया जाता है परन्तु पुत्री के जन्म पर इन उत्सवो का कही पता भी नही चलता। पुत्री का 'नामकरण' सस्कार भी नही किया जाता। लडका के पैदा होने पर ज्योतिषी या पुरोहित बुलाकर उसकी जन्मकुण्डली बनवायी जाती है। पौरिया का नाच कराया जाता है। परन्तु लडकी के जन्म पर कुण्डली बनवाने के लिए माता-पिता कुछ भी चिन्ता नही करते। हाँ, उसके विवाह के अवसर जब उसकी जन्मकुण्डली की आवश्यकता पडती है, तब उसकी झूठी 'जन्मपत्री' तैयार करा ली जाती है।

प्रसूता स्त्री का अनादर—पुत्री के जन्म के समय जच्चा को जो भोजन तथा वस्त्र दिया जाता है वह कुछ सुन्दर तथा समुचित नही होता। पुत्र पैदा होने पर उसके भोजन-छाजन की व्यवस्था मे विशेष सतकता रखी जाती है। परन्तु पुत्री होने पर जच्चा को मोटा अन्न खाने के लिए तथा मोटा वस्त्र पहिनने के लिए दिया जाता है। "ओछवानी" नामक पौष्टिक पदार्थ—जो अनेक सूखे मेवो को डालकर बनाया जाता है—ऐसी स्त्री को नसीब भी नही होता। उसके लिए दूध और घी की सम्यक् व्यवस्था नही रहती। हल्दी मे थोडा दूध मिला कर उसे पीने के लिए दे दिया जाता है। यही उसके लिए पौष्टिक पेय पदाथ समझा जाता है। खाने के लिए उसे 'काँची' (देहाती हलुवा) —जो आटा-गुड और पानी के मिश्रण से बनाई जाती है—मिलती है।

परन्तु उसके लिए वस्त्र और आच्छादन की व्यवस्था तो भोजन से भी बुरी होती है। पुत्र के जन्म पर जहाँ माता को ओढने के लिए शाल और दुशाला दिया जाता है[1] वहाँ पुत्री पैदा होने पर उसे कुश की घास पर ही अपना आसन लगाना पडता है। उसे ओढने के लिए 'गूदडी'—फटा पुराना वस्त्र–ही नसीब होती है। इस अवसर पर सौर गृह के समीप चन्दन की जगह उसे 'पँसगी' मे जलाने के लिए 'खुखुडी'—दानो से रहित सूखा भुट्टा—ही दी जाती है। इस कष्ट दायक व्यवहार की ओर सकेत करती हुई कोई स्त्री कहती है कि पुत्री के जन्म के अवसर पर मेरा तथा मेरे पति का हृदय उसी प्रकार काँपने लगता है जिस प्रकार तालाब के बीच पुरइन का पत्ता।[2] मेरे घर मे 'खुखुडी' की 'पसँगी' जलने के कारण मुझे नीद भी नही आती।[3] एक लोक गीत मे पुत्री को जन्म देने वाली माता की दुदशा का बडा ही दु खद चित्रण उपलब्ध होता है।' भोजपुरी समाज मे पुत्र और पुत्री के जन्म के अवसर पर जच्चा के साथ उसे खान-पान तथा वेश-भूषा प्रदान करने मे कितना भेद-भाव बरता जाता है इस विषय पर भी प्रचुर प्रकाश पडता है।

जिस दिन पुत्री पैदा होती है पिता को उसी दिन से उसके विवाह की चिन्ता सताने लगती है। कोई दु खी पिता कहता है कि ए पुत्री जिस दिन तुम पैदा हुई उसी दिन से मेरे लिए तुमने गाली 'बेसाहा' अर्थात क्रय किया। अब मुझे जीवन मे गाली सहनी पडेगी यह निश्चित हो गया —

"जाहि दिन बेटी हो तोहार जनमवा, हमरे सीरे बेसहलू गारि ए॥"

देहात के लोग प्राय बात-बात मे 'ससुर' कह कर गाली दिया करते है। पिता का सकेत इसी गाली की ओर समझना चाहिए।

१. साल ओढ़न, साल डालन,
मेवा फल भोजन रे।
ए ललना! चनन के जरेला पसँगिया,
निनरि भल आवेला रे॥

२ जइसन दह मे के पुरइन,
दह बीचे काँपेले रे
ए ललना! ओइसन काँपेले हमरो हरी जी,
धिया का रे जनम नु रे।

३ कुस ओढ़न, कुस डालन, बन फल भोजन रे।
ए ललना! खुखुड़ी के जरेला पँसगिया।
निनरियों ना आवेला रे।

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय . भोजपुरी लोक—गीत, भाग १, पृ० ७१।

पिता के लिए पुत्री का जन्म लेना ही कष्ट का कारण बन जाता है। ज्या-ज्यो लडकी की आयु बढने लगती है त्यो त्या पिता की चिंता भी गगा की बाढ की तरह बढने लगती है। पुत्री का विवाह कहाँ करना पडेगा इसकी चिन्ता मे उसे रात रात भर नीद नही आती। एक गीत मे कहा गया है कि जिसके घर मे कुँवारी कन्या विद्यमान हो वह पिता निश्चिन्त कैसे सो सकता है?[१]

"जाहि घर कनिया हो कुँवारी,
सो कइसे सोवे निरमेद हो"

सस्कृत के किसी कवि ने भी इसी भाव का बडे ही मार्मिक शब्दो मे इस प्रकार वर्णन किया है।

'पुत्रीति जाता महती हि चिन्ता,
कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्क।
दत्वा सुख प्राप्स्यति वा नवेति,
कन्या पितृत्व खलु नाम कष्टम्।।"

आजकल तिलक तथा दहेज के बढते हुए 'डिमाण्ड' के कारण यह चिन्ता और भी अधिक हो गई है। यदि परिवार मे दो या तीन से अधिक पुत्रियाँ पैदा हो गईं तो उस पिता का भगवान् ही रक्षक है।

कुछ लोगो की यह धारणा है कि पुत्री के विवाह मे कन्यादान दिये बिना पिता का जन्म पवित्र नही होता। अत प्राय सभी पिता यह चाहते हैं कि कम वे कम एक पुत्री उन्हे अवश्य पैदा हो जिसका 'कन्यादान' करके उनका जन्म पवित्र हो सके। जो पिता पुत्री के जन्म से बचित हैं वे अपने चचेरे भाई की पुत्री को कन्यादान मे देते हैं और इसके लिए उनके विवाह में बहुत धन खर्च करते है। कन्यादान करके पवित्र होने की यही भावना पुत्री के जन्म का स्वागत करती है।

सर्वसाधारण जनता की यह भी धारणा है कि यदि तीन पुत्रियो के बाद पुत्र पैदा हो तो वह भीख मँगाता है परन्तु तीन पुत्रो के पश्चात् जो बेटी जन्म लेती है वह 'राज रजाती' है अर्थात् घर मे ऐश्वर्य तथा वैभव को प्रदान करती है। लोकोक्ति है कि --

"तेंतर बेटी राज रजावे,
तेंतर बेटा भीख मँगावे।"

इस बद्धमूल दृढ धारणा के कारण लोग 'तेंतर बेटी' के जन्म का बड़ा स्वागत करते हैं। ऐसी पुत्री का घर मे उतना ही सन्मान तथा आदर किया जाता है जितना किसी पुत्र का। जिस व्यक्ति के घर में कोई पुत्र नहीं होता, बल्कि एकमात्र पुत्री ही उस कुल को उजागर करनेवाली होती है, उसके प्रति पिता-माता दोनों का प्रेम अत्यधिक होता है। उस लाडली लडकी का पालन-पोषण बडे लाड-प्यार से किया जाता है। उसकी सुख-सुविधा का सभी प्रकार से ध्यान रखा जाता है।

जब तक पुत्री का विवाह नही हो जाता तब तक उसके पिता का उससे 'पिण्ड' नही छूटता, उसकी मुक्ति नही होती। इसीलिए लडकी के विवाह की उपमा 'ग्रहण लगने' से दी गई है। कोई पुत्री पिता से पूछती है कि पिताजी कौन ग्रहण कहाँ लगता है? इस पर उसका पिता उत्तर देते हुए कहता है कि ए पुत्री! चन्द्र---ग्रहण सन्ध्या अर्थात् रात्रि में लगता है और सूर्य ग्रहण दिन मे लगता है। परन्तु पुत्री रूपी ग्रहण विवाह के मण्डप मे लगता है। इससे कब मोक्ष होगा इसका मुझे पता नही है।[२]

१ डॉ० उपाध्याय . भोजपुरी लोक—गीत भाग १।
२ चान गरहनवा बेटी साँझ ही लागेला,
सुरुज गरहनवा भिनुसार ए।
धियवा गरहनवा बेटी मँडवनि लागेला,
कब दोनी उगरह होई ए।
—डॉ० उपाध्याय · भोजपुरी लोक—गीत, भाग १, पृ० १५६

इन उल्लेखो से पता चलता है कि जन्म से लेकर विवाह तक पुत्री को अनादर, अपमान तथा अवमानना का आलिगन करना पडता है। जहाँ पुत्र के जन्म के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ तथा 'जीवित्पुत्रिका' व्रत किया जाता है वहाँ पुत्री के लिए न तो कोई यज्ञ-यागादि सम्पन्न किया जाता हे और न तो व्रत का अनुष्ठान ही। अत पुत्री हिन्दू परिवार की एक ऐसी अनभिलषित सदस्या है जिसके आविर्भाव होने पर स्वागत के लिए न तो शहनाई बजती है और न नफीरी। जिसके जन्म पर न तो सोहर गाया जाता है और न तो छठी और 'बरही' के सस्कार ही सम्पादित होते हैं।

नारी पत्नी के रूप में

(२) अनुच्छेद

धर्मशास्त्रो मे पत्नी की बडी प्रशसा की गई है। धर्मपत्नी से रहित पुरुष अपूर्ण कहा गया है। अत पूर्णता प्राप्त करने के लिये पत्नी का होना अत्यन्त आवश्यक है। प्राचीन काल मे स्त्रियाँ पुरुषो के साथ यज्ञ, यागादि मे समान रूप से भाग लेती थी और वैदिक मत्रो का सस्वर उच्चारण कर यज्ञ की प्रक्रिया मे योगदान करती थी। इसीलिए इन्हे "धमपत्नी" की सज्ञा प्राप्त थी। आजकल भी किसी भी मागलिक कार्य—जैसे सत्यनारायण की कथा, जनेऊ (यज्ञोपवीत) और विवाह आदि—मे पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य समझी जाती है। विवाह मे कन्या-दान के कृत्य को सम्पादित करने के लिए वह व्यक्ति अयोग्य समझा जाता है जो पत्नी से रहित है। अग्निहोत्र का कार्य तो भार्या के अभाव मे असमव की कोटि मे गिना जाता है। "दुर्गा सप्तशती" मे "स्त्रिय समस्ता सकला जगत्सु" कहकर स्त्रियो की प्रचुर प्रशसा की गई है।

भोजपुरी समाज मे भी सामान्यतया स्त्रियो का आदर पाया जाता है। वह "घरनी" के नाम से अभिहित की जाती है जिसका अर्थ होता है घरवाली अर्थात् गृहस्वामिनी। जिस प्रकार पुरुष घर के बाहरी क्रिया-कलापो का स्वामी माना जाता है उसी प्रकार स्त्री परिवार के गृहस्थी के मामलो की मालकिन है। कुशल तथा चतुर स्त्री पति के प्रेम की पूर्ण अधिकारिणी होती है। इसीलिए वह प्रिय तथा प्रेयसी कही जाती है।

पतिव्रता स्त्रियो—विशेषकर भोजपुरी स्त्रियो—का प्रधान गुण उनका पातिव्रत धम है। वे मन, वचन और कर्म से पति-परायणा होती हैं। पति कितना भी कुकर्मी, कदाचारी, दुष्ट तथा पतित क्यो न हो परन्तु वे अपने मुह से उसके कुकृत्यो का किसी से उल्लेख तक नही करती। पति जीविका के लिए परदेस चला जाता है, वहाँ किसी स्त्री के माया-जाल मे फँस जाता है। वह अपने बच्चो तथा स्त्री के पालन-पोषण के लिए रुपया भेजने की बात तो दूर रही, प्रत्युत उनकी खोज खबर लेने के लिए चिट्ठी भी नही भेजता। फिर भी जब वह दस-पन्द्रह वर्षों के बाद घर लौटता रे तब उसकी उपेक्षिता स्त्री उसका हृदय से स्वागत करती है। वह अपने अनुभूत कष्टो को भुलाकर, अपनी उपेक्षा करने के लिए पति को उलाहना तक नही देती। घर मे गरीबी के कष्टो को वह सहर्ष सहती रहती है। फिर भी वह पति-सेवा को ही अपना परम धर्म समझती है। इस प्रकार भोजपुरी नारी सहिष्णुता, सतीत्व तथा सदाचार का पूर्ण प्रतीक है।

परन्तु भोजपुरी लोक-साहित्य मे स्त्रियो का जो चित्रण किया गया है वह सुन्दर नही कहा जा सकता। नारी-जीवन की करुण-कहानी उसी दिन से प्रारम्भ होती है जिस दिन उसका माँग सिन्दूर से सुशोभित किया जाता है। इस दिन को उसके गार्हस्थ जीवन के श्रीगणेश के साथ ही, उसके भावी दु खमय जीवन का प्रारम्भ समझना चाहिए। विवाह के पश्चात् जब वह स्त्री अपनी ससुराल जाती है तब कुछ दिनो तक—प्राय छ मास तक—उसका बडा ही आदर-सत्कार किया जाता है। वह घर मे 'बहू' के नाम से पुकारी जाती है। परन्तु छ मास की अवधि के व्यतीत होते ही उसे 'चौका चूल्हा' 'छुआ' दिया जाता है तथा उसे भोजन बनाने का आदेश मिलता है। कुछ परिवारो मे यह प्रथा है कि घर मे जो सबसे छोटी बहू होती है उसे ही परिवार के सभी लोगो के लिए भोजन पकाना पडता है और भोजन के उपरान्त सब जूठे बतनो को भी 'माँजना (साफ करना) पडता है। उसे चावल 'छाँटना' (कूटना) और गेहूँ भी जाँत मे पीसना पडता है।

चूल्हा-चौका ही उस 'बहू' का अभिन्न सहचर होता है। परिवार के जितने पुरुप सदस्य है पहिले उन्हे ही भोजन कराना पडता है। इसके बाद सास का नम्बर आता है। पश्चात् घर की ननद और जेठानी की बारी होती है। सबके बाद, मध्याह्न के उपरान्त, बहू को भोजन करने के लिए मिलता है। परिवार के सभी सदस्यो के खाने के पश्चात् जो भोजन बच जाता है वही बहू को खाने को मिलता है। यदि 'चुहानी' (रसोई घर) मे रोटी अथवा भात का अभाव हुआ तो उस बिचारी को नवमी या दशमी के दिन भी एकादशी का ही व्रत करना पडता है। इस प्रकार से दिन भर घनघोर परिश्रम के उपरान्त भी उसे किसी-किसी दिन आधे पेट भोजन पर भी सन्तोष करना पडता है।

सन्ध्या होने पर फिर वही रसोई बनाने की चिन्ता। गाँवो मे प्राय उसिना (भुजिया) चावल खाया जाता है जो

ओखल मे 'छाँटने' पर ही पकाने लायक होता है। अत बहू को एक 'पसेरी'—पाँच किलो—चावल छाँटना पड़ता है। गेहूँ को जाँत में पीसकर रोटी 'पोनी' अर्थात पकानी पडती है। फिर परोसने और भोजन का वही क्रम चलता है। इस प्रकार कूटना, पीसना, बतन माँजना और रसोई बनाना भोजपुरी स्त्री की दैनिक-चर्या का अभिन्न कार्यक्रम होता है। यही उसका नैत्यिक कृत्य है। यही उसकी "आह्नि सूत्रावली" है।

भोजपुरी के एक लोक-गीत मे स्त्री के दैनिक-कार्यों की सूची दी गई है। उसे प्रतिदिन जो कष्ट उठाने पड़ते हैं उनका विवरण बडे ही मार्मिक तथा हृदय स्पर्शी शब्दो मे प्रस्तुत किया गया है। लम्बा होने पर भी इस गीत को यहाँ उद्धृत करने का लोभ सवरण करना सभव नही है, क्योकि इसमे नारी जीवन की करुण गाथा का बडा ही सुन्दर तथा सटीक वर्णन उपलब्ध होता है।[1]

पावती भी शिवजी के लिये दिन भर भाँग पीसते-पीसते ऊब जाती है और उनके लिए धतूर की गोलियाँ बनाते-बनाते उनका हाथ घिस जाता है।[2] इस कष्ट की शिकायत वे अपनी माता से करती है। इसी प्रकार से एक दूसरे लोकगीत मे पावती जी भाँग पीसने के अतिरिक्त वतन माजने, कूटने, पीसने तथा रसोई बनाने की करुण कहानी को अपनी जननी से कहती है।[3] जब देवी देवताओ की यह दशा है तब साधारण स्त्रियो की चर्चा ही व्यर्थ है।

अपमान मे ही सन्मान की भावना—लोक साहित्य मे अनेक ऐसे गीत, लोकोक्तियाँ और मुहावरे पाये जाते हैं, जिनके अध्ययन से स्त्रियो की दशा अथवा दुदशा पर प्रचुर प्रकाश पडता है। ऐसी बहुत सी लोकोक्तियाँ उपलब्ध होती है जिनमे समाज मे स्त्रियो की दशा की झाँकी पायी जाती है। कोई स्त्री कहती है कि मेरे प्रियतम ने मुझे 'पत्नी' (भोजपुरी गाली) कहकर सम्बोधित किया 'यह मेरा बहुत बडा भाग्य है।[4] किसी स्त्री का पति उसका सदा अनादर करता है, उसे कभी पूछता तक नही। फिर भी वह अपने को 'सोहागिन' (सौभाग्य शालिनी) कहती फिरती है।[5] किसी छोटे से अपराध के कारण पति ने अपनी स्त्री को एक 'चपत' रसीद कर दिया। परन्तु वह स्त्री इस पर प्रसन्न होकर कहती है कि यह 'चपत' तो मेरे लिए आभूषण के समान है।[6] इस प्रकार पति के द्वारा किये गये घोर अपमान का भी भोजपुरी स्त्रियाँ अपना सन्मान ही समझती है।

मार-पीट तथा ताडना—लोकगीतो मे स्त्रियो को पीटने का उल्लेख अनेक बार हुआ है। एक लोकोक्ति से पता चलता है कि पान तथा धान पानी देने से बढता है परन्तु दुष्ट नारी 'लात' से मारने से ही ठीक रहती है।[7] किसी स्त्री के हाथ की अँगूठी खो जाने के कारण सास और ननद तो उसे पीटती ही है उसका निर्दयी पति भी बबूल के डण्डे से उसकी पीठ-पूजा करता है।[8] इसी प्रकार से एक स्त्री की नाक की झुलनी कही खो जाती है। इस पर क्रोधित होकर उसकी दारुण सास गाली देती है ननद छडी से पीटती है और उसका स्वामी (पति) मोटी 'मुगरी'[9] से उसे मारता है। कोई स्त्री कहती है ससुराल मे 'लात, 'मूका (घूसा) खाने को मिलता है। अत मैं वहाँ नही जाऊँगी।[10]

१ त्रिपाठी कविता-कौमुदी भाग ५ (ग्राम-गीत)। परिशिष्ट १ देखिए

२ भगीआ पीसत ए आमा, जीयरा अकुलाई
धतुरा के गोलिया ए आमा, हाथवा रे खिआई।।　　—डॉ० उपाध्याय भोजपुरी लोकगीत, भाग १, पृ० ५४

३ डॉ० प्रणयी - शिव जी के गीत।

४ पियवा कहलसि पदनी, मोर बड भाग।

५ मोर पियवा बात ना पूछे, मोर सोहागिन नाँव।

६ पियवा के चटकन, मोरा लेखे लटकन।　　—लेखक का निजी संग्रह

७ धान-पान पनिअवला से,
नारि बुहुट लतिअवला से।

८ सासु मोरा मारे, ननद मोरा मारे,　सँइया मारे रे।
बबूर डडा तानि तानि, सँइया मारे रे।
　　डॉ० उपाध्याय भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन, पृ० २४०

९ सासु मारे हुबुका, ननदि मारे पटुका, सँइया मारे मुगरी के मारि हो।
तिन पतिया मोर झुलनिया।　　—वही,

१०. "ससुरा से मिलेला लात अवरु मूका,
ससुरवा मैं ना जाऊँ हो।"　　डॉ० उपाध्याय : वही, पृ० २४०

आर्थिक पराधीनता—भोजपुरी स्त्रियो के जीवन का सबसे बडा कष्ट उनकी आर्थिक पराधीनता हैं। इसी पराधीनता की चट्टान से टकरा कर उनकी जीवन-नैया चूर चूर हो जाती है। अर्थाभाव के कारण वे भोजन-छाजन, वस्त्र-आभूषण, साज-श्रृंगार आदि सभी कार्यों के लिए अपने पति पर आश्रित रहती है। यदि पति कमाने वाला हुआ तो तब तो किसी बात की चिन्ता नही, परन्तु यदि वह कही निखट्टू मिल गया तब तो उस स्त्री का ईश्वर ही मालिक है। कभी-कभी कोई खूसट पति धन कमाने पर भी अपनी स्त्री को एक पैसा भी नही देता। अत वह कष्ट का अनुभव करती है। जब किसी स्त्री का पति परदेस चला जाता है और वह अपनी पत्नी के पालन-पोषण के लिए द्रव्य नही भेजता तब उसकी सास, देवरानी तथा जेठानी आदि परिवार की स्त्रियाँ उसे ताना मारती हुई उससे कहती हैं कि तुम किसकी कमाई खावोगी? (तू केकर कमाई खइबू?)। तुम्हारा पति तो एक पैसा भी घर नही भेजता। घर मे अन्न के अभाव से पीडित किसी स्त्री से कोई लम्पट पुरुष पूछता है कि तुम कहाँ जा रही हो। इस पर वह स्त्री उत्तर देती है कि मेरे घर मे खर्ची' (खाद्यान्न) का अभाव हो गया है। अत मै अपने शरीर को बेचकर भोजन सामग्री की तलाश मे जा रही हूँ। इस पर वह कामी पुरुष कहता है कि आज मैं तुम्हारी खाद्य-सामग्री (खर्ची) का प्रबन्ध कर दूगा परन्तु तुम अपने यौवन के विक्रय मे मुझे भी साझीदार बनाओ।[1] बन्ध्या तथा विधवा स्त्रियो को, जिनके पास अथ-प्राप्ति का कोई साधन नही होता, इसी प्रकार की व्यगोक्ति, कटुवचन तथा 'ताना' सहना पडता है।

इस प्रकार से भोजपुरी लोक साहित्य मे स्त्रियो का जो चित्रण किया गया है, वह बडा ही दीन, हीन और अपमान-जनक है। राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त की यह उक्ति भोजपुरी समाज पर अक्षरश चरिताथ होती है कि —

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल मे है दूध और आँखो मे पानी॥"

○ ○

नारी माता के रूप मे

(३) अनुच्छेद

हमारे प्राचीन धमशास्त्रो मे माता की बडी महिमा गायी गयी है। माता और पिता को बहुत ऊँचा स्थान प्रदान किया गया है। परन्तु माता का जीवन तभी साथक माना जाता है जब वह पुत्रवती हो। यद्यपि शास्त्रीय तथा मानवीय दृष्टि से पुत्र और पुत्री मे कोई अन्तर नही है, क्योकि दोनो ही सन्ताने है परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से इनमे बडा अन्तर पाया जाता है।

प्राचीन काल मे जब किसी राजा को लडका नही पैदा होता था, तब 'पुत्रेष्टि यज्ञ' का विधान किया जाता था। किसी स्त्री के गर्भवती होने पर 'पुसवन' नामक सस्कार का आयोजन किया जाता था, जिसका अभिप्राय यह था कि जो सन्तान पैदा हो वह पुत्र ही हो। प्राचीन युग मे वृद्ध वशिष्ठ तथा श्रेष्ठजन किसी स्त्री को "पुत्रवती भव"—पुत्रवाली होवो—आशीर्वाद दिया करते थे। आजकल भी बूढ़े लोग किसी युवक या युवती पर प्रसन्न होकर आशीष के रूप मे "तोहरा बेटा होखो"—तुम्हे पुत्र रत्न उत्पन्न हो—ऐसा कहते हैं। 'पुत्र' का शाब्दिक अर्थ होता है 'पुम्' नामक नरक से रक्षा करने वाला।[2] इसीलिए शास्त्रकारो ने उच्च स्वर से उद्घोषित किया है कि "अपुत्रस्य गतिर्नास्ति" अर्थात् जो व्यक्ति पुत्र रहित है उसकी सद्गति नही हो सकती।

पुत्र ही घर की शोभा हैं। वह गृहान्धकार मे प्रकाश पुज है। वह बूढे माता-पिता के बुढापे की लकडी है और उनके जीवन की ज्योति है। इसीलिए जिस घर मे पुत्र नही होता वह सूना सूना तथा अन्धकारमय दिखाई पडता है। इसी कारण 'मृच्छकटिक' नाटक मे शूद्रक ने कहा है कि —

"अपुत्रस्य गृह शून्य, सर्वशून्या दरिद्रता।"

अर्थात् पुत्र से रहित पुरुष का घर सूना रहता है और दरिद्रता के कारण सब कुछ शून्य है।

१. बाट मे भेंटे रसिया कवन राम हो,
काहाँ रे जालु मोर रनिया।
आजु के खरचिया ओराइल बाटे हो,
जोबन बेंचे ओहि गलिया॥
आजु के खरचिया हम चलाइबि हो,
जोबनवा में हम सझिया॥ — डॉ० उपाध्याय भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन, पृ० २४१

२. पुनामकात् नरकात् त्रायते इति पुत्रः।

यदि तुलसीदास जी की निम्नांकित पंक्ति का थोड़ा बदल कर इस प्रकार कहा जाय तो कुछ अनुचित न होगा।

"जिय बिनु देह नदी बिनु बारी।
तइसहि—जान पुत्र बिनु नारी।"

पुत्र की महिमा की इसी पृष्ठभूमि मे, भोजपुरी समाज मे यदि किसी स्त्री का महत्त्व उसके पुत्रोत्पत्ति की क्षमता तथा पुत्रो की संख्या से किया जाता है, तो इसमे कुछ आश्चर्य नही समझना चाहिए। जिस स्त्री को जितने ही अधिक पुत्र उत्पन्न होते है उसका मूल्य उतना ही अधिक कूना जाता है। स्त्री जीवन के दो ही रत्न है—(१) पति और (२) पुत्र। जिस प्रकार से नारी पति की मंगल-कामना की कामना सदा करती है उसी प्रकार से वह पुत्र की प्राप्ति के लिए अभिलाषा करती हुई अनेक व्रतो का विधान करती है। वह सूर्यषष्ठी का व्रत करके सूर्य भगवान् से प्रार्थना करती है कि मुझे पुत्रवती होने का वरदान दीजिए। इसी प्रकार वह जीवितपुत्रिका व्रत के द्वारा, कष्ट से प्राप्त पुत्र की जीवन रक्षा के लिए, कठोर उपवास करती है। इतना ही नही, वह सात पुत्रो की माता बनने की अभिलाषा भी करती है—

"सात पुतर हमरा के दिहीं ए अदित मल"

नारी जीवन की सार्थकता मातृत्व मे ही है। जब तक नारी माता नही बनती तब तक उसका जीवन निरर्थक है। कोई स्त्री कहती है कि मैंने अपनी गोदी मे बालक नही खेलाया, अतः मेरा जीवन व्यर्थ ही है—

राम जी गोदिया बालक ना खेलवली,
मोर जनम अकारथ रे।

भोजपुरी समाज मे माता का बड़ा आदर किया जाता है। वह सम्मिलित परिवार की सर्वश्रेष्ठ सदस्या है। उसकी आज्ञा का पालन पुत्र, पुत्री, बहू, आदि सभी लोग करते है। घर का समस्त कार्य-कलाप उसी की आज्ञा से होता है। माता का हृदय गंगा जल के समान निर्मल और दूध के समान स्वच्छ होता है। वह पुत्र के लिए अनेक कष्टो को उठाती है। वह स्वयं उपवास रहकर अपने बच्चो के भोजन का प्रबन्ध करती है। वह पुत्र की मंगल कामना के लिए अनेक व्रत-उपवास का विधान करती है। साधु-सन्तो की कुटिया मे जाकर 'ताबीज' और 'गण्डा' लाती है और भैरव बाबा की विभूति अपने पुत्र के सिर में लगाती है। फलस्वरूप पुत्र भी माता का आज्ञाकारी और उसके चरणों का पुजारी होता है।

एक लोकगीत मे पार्वती जी शिवजी से अपना दर्शन देने के लिए प्रार्थना करती हैं। परन्तु शिवजी कहते है कि मेरे घर मे बूढ़ी माता है। मैं उसे छोड़कर तुम्हारे पास कैसे आऊँ? इस पर पार्वती कहती हैं कि अपनी बूढ़ी माता को गंगा में 'भसिआ' (फेंक) दीजिए। तब शिवजी कुछ क्रोधित होकर उत्तर देते हैं कि ए 'गउरा' (गौरी-पार्वती) तुम्हारी जैसी स्त्रियाँ तो बहुत सी मिलेंगी परन्तु संसार मे माता कहाँ मिलेंगी।[1] राम ने अपने प्रिय अनुज लक्ष्मण को 'शक्ति' लगने पर अपने हृदय के भावो को निम्नांकित शब्दो मे प्रकट किया था—

'देशे देशे कलत्राणि, देशे देशे च बान्धवाः।
तं तु देशं न पश्यामि, यत्र भ्राता सहोदरः॥

इस श्लोक के अन्तिम दो शब्दो को यदि इस प्रकार से बदल दिया जाय तब शिवजी की उक्ति पूर्णतया चरितार्थ हो जाती है—

"तं तु देशं न पश्यामि
यत्र माता प्रियम्वदा।"

१ हमरा के ए सिव! तनि एक दरसन दीहिं
कइसे के दरसन दीहीं ए गउरा,
हमरा घरे बाड़ी बूढ़ी महतारी।
बूढ़ी महतारी ए सिव! गंगा भसिआव।
तोहरा नियर ए गउरा मेहरारु अनेका परी।
बूढ़ी महतारी ए गोरा ससार मे कहवाँ मिली॥ —लेखक का निजी संग्रह, पृ० ३१०

पुत्र का स्नेह माता के लिए अविचल रहता है। परन्तु विवाह होते ही माता और पुत्र के स्वाभाविक प्रेम के बीच मे स्त्री दीवाल के रूप मे खडी हो जाती है। इस प्रकार पुत्र का मन माता की ओर से खिंचता चला जाता है। सास और बहू मे तो प्राय झगडा सुना जाता है परन्तु माता और पुत्र के बीच मे किसी प्रकार का मनोमालिन्य का कही पता नही लगता।

आदर्श सती के रूप मे

(४) अनुच्छेद

भोजपुरी प्रदेश मे नारी के सतीत्व का आदश बहुत ही ऊँचा है। पर-पुरुष से विवाह की कल्पना तो बहुत दूर की बात रही, किसी अन्य पुरुष से किसी प्रकार के सम्पर्क की भावना भी ये स्वप्न मे भी नही कर सकती। अग्रेजी मे एक कहावत है "सीजर की स्त्री सन्देह से परे है।"[1] इसी प्रकार से हम बिना किसी सकोच के, नि सन्देह कह सकते ह कि भोजपुरी नारी के चरित्र के विषय मे किसी प्रकार की भी आशका करना नितान्त निर्मूल है। उसका चरित्र हिम-राशि के समान स्वच्छ, गगा के समान पावन और अग्नि के समान पवित्र है। जिस प्रकार अग्नि और गगा-जल दूसरी वस्तुओ को पवित्र करने वाला समझा जाता है उसी प्रकार से सती स्त्री का चरित्र भी है। आज लाखो की सख्या मे, इस प्रदेश मे, ऐसी अक्षत योनि बाल-विधवाये विद्यमान है जिन्होने जीवन भर अपने पति का कभी मुख भी नही देखा। गवना होने के पहिले ही विधवापन के शाप से अभिशप्त हो गयी, परन्तु फिर भी वे अपने मृत पति की स्मृति मे, अपने अलौकिक सौन्दय तथा कान्चन काया को जल -जलाकर भस्म कर रही है। ये अपने बाल-वैधव्य के दु खद दिनो को तिल तिल करके काट रही है परन्तु ये पुन 'सप्तपदी' की कल्पना भी नही करती। यह बाल-विधवाओ का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए कि विधाता ने उनके भाग्य मे चिर वैधव्य के साथ ही दीर्घ आयुष्य भी लिख दिया है। इसका परिणाम यह होता है कि इन विधवाओ को अपने कष्टमय जीवन के अनेक वर्षो को बडे ही दु ख स काटना पडता है। भोजपुरी की एक लोकोक्ति है कि सबके दिन तो किसी प्रकार से 'कट' जाते हे परन्तु भोजपुरी विधवा-राँड का दिन कभी समाप्त ही नही होता।[2]

जो स्त्रियाँ सधवा हैं,—विधाता ने जिन्हे अपने पति के साथ ससार के सुखो को दोनो हाथो से लूटने के लिए बनाया है— वे भी चरित्र की दृष्टि से बडे ही उच्च स्थान की अधिकारिणी हैं। ऐसे अनेक पति होते है जो स्वभाव से ही दुराचारी, लम्पट, दु श्चरित्र, मद्यपी तथा परतिय-गामी है। वे अपनी स्त्रियो को निर्दयता के साथ पीटते हैं। उनके साथ अमानवीय व्यवहार करते है, परन्तु भोजपुरी पत्नी यह सब दु ख सहते हुए भी पति-परायणा बनी रहती हे। अनेक कामी पति "दाल की मण्डी" मे अटारी पर चढ़ने के अभ्यासी होते है, कुछ अपने घर मे ही किसी रक्षिता को रख लेते है परन्तु उनकी भी पत्नियाँ, इसके लिए तनिक भी दु ख प्रकट न करके, उनकी सेवा मे ही सदा तत्पर रहती है। कुछ वारुणी-सेवी पति मद्य के नशे मे आकर अनेक अनाचाार करते है परन्तु पत्नी की ओर से उसका कोई प्रतिकार नही किया जाता। विवाह के पश्चात् यदि कोई पति कुष्ठ अथवा क्षय रोग से पीडित हो जाय अथवा किसी दुर्घटना के कारण वह पगु या अपाहिज हो जाय फिर भी उसकी धर्मपत्नी उसका साथ नही छोडती और छाया की भाँति उसके साथ साथ लगी रहती है।

भोजपुरी पति परदेस चला जाता है। जहाँ जाकर वह किसी सुन्दरी युवती के प्रेम-पाश मे फस जाता है। वह अपनी स्त्री के भरण-पोषण के लिए धन भेजने की बात तो दूर रही, वह उसकी सुधि-बुधि भी नही लेता। फिर भी उसकी पत्नी अपने दु ख के दिनो को अत्यन्त कष्ट मे काटती है परन्तु उस दुष्ट पति के परित्याग की भावना को भी अपने हृदय मे स्थान नही देती। इसके ठीक विपरीत, जब वह पति अनेक वर्षों के बाद घर लौटता है तब वह उसका बडे प्रेम से स्वागत-सत्कार करती हैं। इसका कारण प्राचीन धर्मशास्त्र-कारो के सती-सबधी उपदेश भले ही हो, अथवा नारी-जीवन की आर्थिक परवशता ही क्यो न हो, फिर भी इन स्त्रियो के आदर्श चरित्र मे सतीत्व की भावना ही मूल-भूत कारण है।

भोजपुरी लोक साहित्य मे ऐसे अनेक उल्लेख प्राप्त होते है जिनसे भोजपुरी नारी के पावन चरित्र पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। लोक-गीतो मे ऐसे सन्दर्भ भरे पडे है जिनसे स्त्रियो के आदर्श सतीत्व का पता चलता है। कोई स्त्री नदी पार करने के लिए किसी मल्लाह से नाव माँगती है, परन्तु वह कामुक मल्लाह उस स्त्री से कहता है कि "मैं तुम्हे दूध पिलाऊँगा और मछली

१ Ceaser's wife is above suspicion

२. राँड़ के दिन कभी ना ओराला।

खिलाऊँगा। अत आज तुम मेरे पास ही रहो।" इस पर क्रोधित होकर वह सती स्त्री उत्तर देती है कि 'मै तुम्हारी मछली मे आग लगा दूँगी और तुम्हरे दूध मे वज्र पड जाय। मैं अब नदी के उस पार नही जाऊँगी।" प्रायः किसी स्त्री को देखकर कोई बटोही उस पर मोहित हो जाता है और उसे बहुमूल्य सोना, चाँदी, मोती देकर उसके मन को खरीदना चाहता है। परन्तु वह सती स्त्री इस प्रस्ताव के कारण क्रोध से उत्तेजित हो जाती है और कहती है कि तुम्हारे सोने मे आग लग जाय और मोतियो पर वज्र पड जाय। दुनियाँ मे 'सत' (सतीत्व) छोडने से 'पत' (प्रतिष्ठा) नही रह जाती।' इसी प्रकार जाँत के एक गीत मे एक अश्वारोही कामुक के द्वारा किसी स्त्री को सोना और मोती देने का उल्लेख मिलता है जिसे पति-परायणा वह स्त्री दृढतापूवक उसका तिरस्कार करती हुई अस्वीकार कर देती है।

पुत्र-जन्म (सोहर) के एक गीत मे किसी स्त्री का अलौकिक पराक्रम दिखलाई पडता है। नदी के पार जाने के लिए कोई स्त्री मल्लाह वे नाव मगाती है। परन्तु वह कामुक नाविक हार और अँगूठी देने का उसे लालच दिखाकर उससे व्यभिचार का प्रस्ताव करता है। वह सती स्त्री, इस दुष्ट के इस दूषित प्रस्ताव को, पैरो से ठुकरा देती है और उमडती हुई नदी को स्वय तैर कर पार कर जाती है। लौटती बार वह अपने भाई को यह आदेश देती है कि इस दुष्ट मल्लाह की खाल को खीच कर इसमे भूसा भर दो।[3]

लोक गीतो मे कुछ ऐसी भी वीर, साहसी तथा पराक्रमी स्त्रियो का वर्णन पाया जाता है जिन्होने अपने सतीत्व की रक्षा के लिये बडे अडे राजकुमारो के प्रलोभन को ठुकरा दिया, बडे-बडे कठोर शासको के चगुल से चतुरता से अपने को छुडा लिया, चाहे इसके लिए उन्हे जल समाधि ही क्यो न लेनी पडी हो। अपने प्राणो की तिलान्जलि देकर इन्होने अपने सतीत्व की रक्षा की।

कोई राजकुमार लचिया नामक किसी अलौकिक सौन्दर्यवती स्त्री के रूप का लालची बन जाता है। वह उसे अतुल वैभव तथा राजसी सुख देने का प्रलोभन प्रदान करता है। परन्तु पति परायणा लचिया का निश्चल प्रेम कभी विचलित नही होता। पति-गर्विता लचिया उस राजकुमार से कहती है कि "ए राजा के छोकडे तुम मुझे क्या लालच दे रहे हो। मेरा पति तुमसे कही अधिक सुन्दर है, उसका नया चमरौधा जूता 'चरर मरर' शब्द करता है और उसके पैरो की एडी लाल तथा दर्पण के समान स्वच्छ है।"[4]

इन प्रलोभनो के बावजूद, उस कामी राजकुमार का सम्पूर्ण राजसी वैभव गरीबनी लचिया के प्रेम को खरीदने में समर्थ नही हो सका। लचिया के निधन पति का 'चरर मरर' करनेवाला चमरौधा जूता, राजा के सिंहासन से कही अधिक बेशकीमती है। उसका साधारण तथ दरिद्र पति राजकुमार की तुलना मे कही अधिक सुन्दर तथा प्रिय है।

१ आगि लगइबो चाल्हावा महरिया,
बजर परसु तोरा दूध ए।
आरे बुनुकी फुटहुँ तोरा जाँत के करीयवा,
नउजी उतारि देबो पार ए।।
डॉ० उपाध्याय— भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन, पृ० २४७

२. डाल भर सोना लेहु, मोतिया से माँग भरु,
जात छोडि मोरे सग लागहु रे की।
आगि लागो सोनवा, बजर पडो मोतिया,
सत छोडे कइसे पत रहिहें नु रे की।।
—वही, पृ० २४७

३ अगिया लगावऊँ तोरी मुदरी बजर परे तिलरी
× × ×
जाते ही दइया अकेलिन, लौटत बिरन सग,
केवटा खलवा कढ़ाय, भूसा भरतेउँ जवन, मुख चाखेउँ
—लेखक का निजी संग्रह

४ जो हम चलीं राजा तोहरे गोहनवा रे ना।
राजा तोरे ले सुघर मोर बिअहुवा रे ना।।
जे के चरर मरर करें जूतवा रे ना।
जे के एडिया बरन दरपनवा रे ना।।
—रामनरेश त्रिपाठी—ग्राम गीत, पृ० १४१, ४७

निरवाही के एक गीत मे जय सिंह नामक कोई राजा किसी सुन्दरी स्त्री से व्यभिचार का प्रस्ताव करता है। इस पर क्रोधित होकर वह सती स्त्री अपनी कमर से कटार निकाल कर उस दुष्ट राजा का बध कर देती है। इस प्रकार वह अपने सतीत्व की रक्षा करती है। रेशमी नामक किसी तरुण युवती पर कोई कोतवाल आसक्त है। वह उससे पूछता है कि "तुमने यह अलौकिक रूप-सौन्दर्य कहाँ से प्राप्त किया है ? क्या विधाता ने तुम्हे किसी साँचे मे ढाल कर बनाया है अथवा किसी चतुर सोनार ने तुम्हे बडे परिश्रम से गढा है।" इस पर सती रेशमी उत्तर देती है कि "ए कोतवाल ! मै तुम्हारी दाढी मे आग लगा दूगी। कही मनुष्य के निर्माण करने की क्षमता सोनार के पास हो सकती है ?[1]"

मन चले नौजवान युवती तरुणियो को छेडने से कभी बाज नही आते। पनघट पर, नदी के किनारे, तालाब के तट पर, हाट-बाजार मे जहाँ भी कोई सुन्दरी मिल गई वहाँ ये छोकरे हँसी-ठिठोली करने तथा अनुचित प्रेम-प्रस्ताव पेश करने मे पीछे नही रहते। यह दशा पहिले भी थी और आज भी कुछ परिवर्तित रूप मे वर्तमान है। प्राचीन काल मे प्रेमी अपनी प्रेमिका की रक्षा करता था परन्तु आज का हताश प्रेमी अपनी प्रेमिका की हत्या कर डालता है।

कुसुमा देवी का चरित्र एक आदर्श सती के रूप मे हमारे सामने प्रस्तुत किया गया है। इस वीराङ्गना का साहस, धैय तथा अद्भुत पराक्रम लोक गीतो के इतिहास मे सदा अमर रहेगा। किस प्रकार कुसुमा ने आततायी मुगलो के जाल मे पड कर, छलपूर्वक उन्हे चकमा देकर, उनके पजे से अपना छुटकारा किया और किस प्रकार उसने अपने पिता के तालाब मे डूब कर मुगलो से अपने सतीत्व की रक्षा की यह भारतीय इतिहस की अमर कहानी रहेगी। कुसुमा देवी की यह पवित्र गाथा स्त्रियो के सतीत्व का अमर काव्य है। सच तो यह है कि आत्महत्या करके भी अपने सतीत्व की रक्षा करना भारतीय वीराङ्गनाओ का ही काम है। कुसुमा देवी की कथा हमे सती शिरोमणि पद्मिनी की स्मृति दिलाती है जिसने अपनी हजारो सहेलियो के साथ 'जौहर' का कठिन व्रत करके अल्लाउद्दीन के गर्हित प्रयास को मिट्टी मे मिला दिया था।[2]

युवती मैना के रूप-माधुर्य्य का पान करने के लिए गोपी नामक कोई कामुक पुरुष भ्रमर की भूमिका प्रस्तुत करना चाहता है। उसे वह अनेक प्रकार का आर्थिक प्रलोभन भी देता है। मैना का विवाह अन्यत्र हो जाने पर भी वह उसका पिण्ड नही छोडता और जोगी का वेश बनाकर उसकी ससुराल पहुँच जाता है। तब सती मैना उसे दुत्कारिती हुई कहती है कि तुम मेरे प्रेम की आशा को छोड कर चुल्लू भर पानी मे डूब मरो। तुम मेरे धर्म के भाई लगते हो, अत ऐसा कुकर्म मत करो।[3] कोई स्त्री पानी भरने के लिए पनघट पर गई हुई है। कोई राजपूत युवा उसके सौन्दय पर मोहित हो जाता है और प्रेम सबधी चिकनी-चुपडी बाते करके उसे अपने प्रेमजाल मे फँसाना चाहता है। वह कहता है कि यदि तुम अपना प्रेम-दान मुझे दो तो मै तुम्हे अपने हृदय मे रक्खूगा। इस पर रोष से उत्तेजित होकर वह सती स्त्री सिंहिनी की तरह गर्जती हुई उत्तर देती है कि "तुम्हारे जैसे राजपूत के छोकडे को मैं नौकर रक्खूगी और उसके सिर पर अपने पति का जूता रखकर उससे ढोलाऊँगी।"[4] इस उक्ति म कितना स्वाभिमान भरा हुआ है।

भोजपुरी स्त्रियो के लिए अन्य बाहरी व्यक्तियो से अपने सतीत्व की रक्षा करना तो आवश्यक है ही, कभी कभी घर-वालो से भी अपनी जान बचानी जरूरी हो जाती है। कोई देवर प्रोषितपतिका अपनी भाजज से अनुचित प्रस्ताव करता है और उससे निर्लज्ज होकर पूछता है कि तुम किसके लिए अपने यौवन की रक्षा कर रही है ? अपने देवर के इस दुष्ट प्रस्ताव पर आक्रोश प्रकट करती हुई उसकी भावज ठसाका सा उत्तर देती है कि "मैं अपने पति के लिए अपने यौवन को सुरक्षित रख रही हूँ। ए बदतमीज देवर ! यदि तुमने फिर कभी ऐसा अनुचित प्रस्ताव किया तो तुम्हारी लम्बी-लम्बी बाहो को

१ दढ़िया मे जारों धैया तोर कोतवालवा,
मनई का गढ़ेला सोनार बहुअरि रेसमी। —रामनरेश त्रिपाठी–ग्रामगीत, पृ० ३६१

२ त्रिपाठी—वही

३ तोहरो करमवा के कहो गोपी भासिक,
चुल्लू भरि पनिया मे डुबहू रे बी।
भासिक के आसा छोडि देहूँ गोपी भइया,
तुहूँ त धरम केरा भइया हू रे बी।। —डॉ० उपाध्याय–भो० लो० गी० भाग १ पृ० १३५

४ अस रजपुतवा जो पाइत चाकर हम राखित हो,
अपने प्रभु जी के पाँय के पनहिया तो तोसे ढोवाइत हो।।
—डॉ० उपाध्याय–भोजपुरी लोक-गीत, भाग १, पृ० ५६

मैं अपने पति के द्वारा जड से कटवा डालूगी।[1] पति-प्रेम-परायणा भावज का यह कितना करारा जवाब है। इसे सुनकर वह मन चला देवर फिर कभी प्रेम-प्रस्ताव करने की हिम्मत ही नही कर सका।

महाकवि भवभूति ने ठीक ही कहा है कि —[2]

यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जन ।"

अर्थात् स्त्री तथा कविता के निर्दोष होने मे सभी लोग सन्देह किया करते है। भवभूति का यह कथन भोजपुरी समाज की स्त्रियो पर जितना अधिक घटित होता है उतना सभवत अन्यत्र नही। स्त्री कितनी भी पति-परायणा सती, साध्वी और पवित्र क्यो न हो, पति को उसके आचरण पर सन्देह करने मे तनिक भी देर नही लगती।

किसी स्त्री का पति जीविकोपाजन के लिए परदेस गया हुआ है। वह बारह वर्षों के पश्चात् घर लौटता है। उसकी बहिन अपनी भावज के कल्पित दुश्चरित्र की कथा अपने भाई को सुनाकर, भावज की अग्नि परीक्षा लेने के लिए उससे कहती है। यह दुष्ट पति स्वय बारह वर्षों तक परदेस मे रहने के कारण अपने सच्चरित्र की कोई गारण्टी देने मे सर्वथा असमर्थ है, फिर भी वह अपनी दुखिया परन्तु सती स्त्री की अग्नि-परीक्षा लेता है। इस कठिन परीक्षा मे उत्तीर्ण होकर उसकी पत्नी अपने सतीत्व को प्रमाणित कर पति की आशका को सर्वथा निर्मूल सिद्ध कर देती है।[3]

आदर्श सतीत्व की यह भावना मानव जगत् को अतिक्रमण कर पशु जगत् में भी व्याप्त दिखाई पड़ती है। कोई हरिणी अपने पति—हिरन की खाल को कौशिल्या से माँगती हुई कहती है कि "मेरे पति को मार कर उनका मांस आपके रसोईघर मे पकाया जा रहा है—परन्तु उसकी खाल हमे अवश्य दे देने की कृपा करें। मृत पति के उस खाल को पेड़ पर टांग कर मैं अपने मन को सान्त्वना दूंगी मानो मेरा पति अभी भी जीवित है।"[4] पशु जगत् मे सतीत्व की ऐसी भावना अनसुनी तथा अनहोनी है।

भोजपुरी लोकोक्तियो मे भी ऐसे भाव अभिव्यक्त किये गये हैं जिनमे आदर्श सतीत्व के संबंध मे प्रचुर प्रकाश पड़ता है। भोजपुरी स्त्री अपने 'भतार' (भर्ता-पति) से सुन्दर किसी अन्य पुरुष को नहीं समझती चाहे उसका पति कितना ही कुरूप क्यो न हो। किसी पर-पुरुष की निन्दा करती हुई कोई पतिव्रता नारी कहती है उसका पेट (तोंन) आगे निकला हुआ है, वह तुन्दिल है और उसकी पीठ पर कूबर है। क्या यह मेरे पति से किसी भी प्रकार से सुन्दर हो सकता है? नहीं, कदापि नहीं।[5] कोई स्त्री पर-पुरुष की उपमा पानी की लहर-हिलकोरा-से दे रही है जो थोड़ी ही देर में नष्ट हो जाता है।[6]

"अनकर सुनर बर, पानी के हिलोरा।
आपन कुबुज बर, सुतबि भरि कोरा।।"

१ देवर! सँचिले जोबावावा बलमुआ लागि ना,
अइसन बोली जनि बोलु देवरवा हो,
काटाइ रे देबो ना, तोरी अलफी रे बहियाँ
काटाइ रे देबों ना।

—डॉ० उपाध्याय—भोजपुरी लोक-गीत, भाग १, पृ० २१७

२ उत्तर रामचरित अक १।

३ डॉ० उपाध्याय—भोजपुरी लोक-गीत, भाग १, पृ० १४१-४३।

४ पेड़वा से टाँगबि खलरिया
त मनवा समुझाइबि हो।
रानी हिरि फिरि देखबि खलरिया
जनुक हरिना जीयतहिं हो।।

—डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोक गीत, पृ० २६

५ आगे तोंन, पाछे कूबर,
हमरा भतार से, तू ही सुघर?

—लेखक का निजी संग्रह, पृ० ४०१

६ वही।

भाव यह है कि किसी दूसरी स्त्री का पति सुन्दर ही क्यो न हो परन्तु वह मेरे लिए पानी की लहर के समान क्षणिक है, परन्तु अपना पति यदि वह कुबडा ही क्यो न हो मै उसे गोदी मे लेकर सुखपूवक सोऊँगी। कुछ इसी प्रकार का भाव रहीम की इस कविता मे भी पाया जाता है।

'कहा करो वैकुण्ठ लै, कल्पवृक्ष की छाँह।
रहिमन बबुर सराहिये, जहँ प्रीतम गल-बाँह।।"

सती स्त्री के लिए पति और पुत्र दोनो ही प्राणो से भी प्रिय होते है। अत इसी पेशोपेश मे पडी हुई कोई स्त्री कहती है मेरे लिए दोनो ही मीठे (प्रिय) है। अत मै किसकी शपथ खाऊँ?[1] इसी प्रकार स्त्री के लिए पति और अपना भाई दोनो ही आदर के पात्र है। कोई स्त्री इसी भावना की अभिव्यक्ति करती हुई सन्देह के झूले मे झूल रही है। वह कहती है कि पति की बातो का समर्थन करूँ तो भाई से नाता छूट जायेगा और यदि भाई का कहना मानती हूँ तो पति से विरोध होने की सभावना है।[2] इसी आशय की एक दूसरी लोकोक्ति भी पायी जाती है।[3]

जिस स्त्री का पति परदेस चला जाता है वह अपने शरीर का प्रसाधन तथा शृगार नही करती। वह उसके वियोग मे अपने दिनो को किसी प्रकार से काटती है। जब सौन्दर्य का उपभोक्ता ही विद्यमान न हो तो यह सारा साज-शृगार किसके लिए किया जाय? एक लोकोक्ति का भाव यह है कि जिसकी जबान झूठी है उसकी प्रतिज्ञा या वादा का क्या मूल्य है? इसी प्रकार से जिस स्त्री का प्रियतम परदेस मे जा बसा हो उसका शृगार करना व्यर्थ है।[4] जब किसी युवती का विवाह बालक पति से हो जाता है—जो सभोग मे असमर्थ है—तो उसके सबध मे भी इसी प्रकार की उक्ति कही जाती है।[5]

भोजपुरी नारी अपने पति की सदा सहचारिणी होती है। परन्तु दुष्ट पति उसके साथ कितना भी कुत्सित व्यवहार क्यो न करे, वह चाहे उसे मारे अथवा काट ही क्यो न डाले परन्तु वह उसकी ही शरण मे रहना चाहती है।[6]

इसी प्रकार से भोजपुरी लोक-गीतो तथा लोकोक्तियो मे भी नारी के आदर्श चरित्र का चित्रण उपलब्ध होता है। शायद ही संसार के किसी साहित्य मे लोक-सस्कृति का ऐसा पावन तथा समुज्ज्वल स्वरूप उपलब्ध हो सके।

कुलटा के रूप मे

(५) अनुच्छेद

गत पृष्ठो मे भोजपुरी समाज तथा लोक साहित्य मे सती स्त्रियो का जैसा चित्रण उपलब्ध होता है उसे प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। परन्तु समाज मे कुछ ऐसी भी स्त्रियाँ होती है जिनका आचरण उचित नही कहा जा सकता। ये कुलटा स्त्रियाँ तीन प्रकार की होती है—(१) पहिली वे है जो अपने व्याहता पति को छोडकर दूसरे पति को स्वीकार कर लेती हैं और (२) दूसरी अपने प्रथम पति की मृत्यु के पश्चात् अनाचार कर्म मे प्रवृत होती हैं। (३) इनकी एक तीसरी कोटि भी है जो अपने व्याहता पति की आँख बचा कर पर-पुरुष से सबध स्थापित कर लेती है। इनमे से प्रथम तथा तृतीय कोटि की स्त्रियो की ही प्रधानता है।

कोई कुलटा स्त्री अपने पति को तो देखकर रोने लगती है परन्तु पर-पुरुष से सभोग की सभावना से प्रसन्न होकर हँसती

१ पुतरो मीठ, भतरो मीठ। किरिया केकर खाँई।।
—लेखक का निजी सग्रह

२ सँइयाँ अस कहीं, त नातावा टूटी।
भइया अस कहीं, त सेजिया छूटी।। —लेखक का निजी सग्रह

३ सँइयाँ से जनि बोल, सेजिया छूटी।
भइया से जनि बोल, नइहरवा छूटी।। —लेखक का निजी सग्रह

४. जेकर जबान झूठ, ओकर करार का?
जेकर पिया परदेस, ओकर सिंगार का? —लेखक का निजी सग्रह

५. कापर करा सिंगार, पुरुख मोर आल्हर। —लेखक का निजी सग्रह

६. मारु चाहे काटु पिया तोरे ओरिया। —लेखक का निजी सग्रह

है, प्रसन्नता प्रकट करती है।[1] दूसरी कुलटा पर-पुरुष को अपनाने के लिए, उसे अपनी ओर आकर्षित करने के लिए अपने भाल मे बडी बडी टिकुली (टिकुला) लगा रही है।[2] किसी स्त्री का पति कुछ काम नहीं करता दिन भर निठल्ला बैठा रहता। अत वह कहती है कि ऐसा बेकार पति मर भी नही जाता क्योकि इसके साथ सोते समय चित्त भी बुरा रहता है।[3] कोई पति अपनी स्त्री से कहता है कि यदि तुम अपना आचरण तथा व्यवहार अच्छा रखोगी तो तुम्हें मैं अपने घर में रखूंगा पर यदि तुमने अनुचित आचरण किया तो परिणामस्वरूप मुझे तुम्हे ताडना देनी पडेगी।[4] किसी कुलटा स्त्री ने अपने घर में 'कोठिला' मे अपने प्रेमी-जार-को छिपा रखा था। वह साधारणतया घर के बारे में बातचीत तो अपने व्याहता पति से करती थी पर अपने हृदय की बातें—प्रेमालाप—उस कोठिला मे छिपा कर रखे गये पर-पुरुष से किया करती थी।[5] जो कुलटा स्त्रियाँ कुटनी का काम करती है उनकी दशा के सबध मे यह लोकोक्ति चरितार्थ होती है कि "एक तो तितलौकी दूसरे नीम चढी।" एक तो कुलटा स्वत आचरण हीन होती है फिर यदि वह कुटनी (कुट्टनी) की भूमिका अदा करने लगे तो फिर उसका क्या पूछना। वह अपनी आँखो को घुमाकर सकेत करती रहती है, उसकी भौ और 'पपनी (बरौनी) भी चलती रहती है। इस प्रकार अनेक हाव-भाव से वह अनेक प्रकार की झूठी-सच्ची बातो को सकेत द्वारा प्रकाशित करती रहती है।[6] कोई दुश्चरित्र स्त्री अपने सकेत स्थल को जाना चाहती है परन्तु वह इस बात को छिपाने के लिए लोगो से पूछती है कि बाजार कहाँ लगता है और वहाँ जाने के लिए रास्ता कौन सा है ?[7]

× × ×   × × ×   × × ×   ×

शास्त्रकारा ने लिखा है कि —

"वृद्धस्य तरुणी भार्या, प्राणेभ्योऽपि गरीयसी।"

अर्थात् वृद्ध-पुरुष के लिए युवती स्त्री उसके प्राणो से भी प्रिय होती है। परन्तु तरुणी भार्या के लिए बूढा एवं जीर्ण-शीण पति विष के समान त्याज्य और घृणित होता है। ऐसी ही कोई युवती स्त्री किसी देवी से प्रार्थना करती है कि बूढे पति से मेरा पिण्ड किस प्रकार छूटेगा इसके लिए हे देवी कोई उपाय बतलाइए। तब यह आकाशवाणी होती है कि माघ के महीने मे घी से युक्त खिचडी खिलाने से तुम्हारा बूढा पति मर जायगा।[8] उस कुलटा ने वृद्ध-पति को घृत मिश्रित खिचडी खूब खिलायी परन्तु उसकी आशा की पूर्ति नहीं हो सकी। युवती स्त्रियाँ अपने बूढे 'भुरकुट' पतियो से प्रसन्न नहीं रहती। अत वे चाहती हैं कि यह बूढा किसी प्रकार से मर जय जिससे पर—पुरुष से उनके सुख-संभोग के मार्ग का कण्टक सदा के लिए दूर हो जाय। यद्यपि लोक-गीतो मे कुलटा स्त्रियो का वर्णन प्राय नहीं पाया जाता फिर भी इन गीतो मे इनकी झाँकी देखने को मिलती है। किसी कर्कशा स्त्री—जो कुलटा भी है—का वर्णन एक गीत में बडा ही सजीव भाषा में किया गया है। लोक कवि कहता है कि ए पुरुष! तुम धन्य हो क्योंकि तुम्हें कर्कशा स्त्री मिली है। वह अपने घर के दरवाजे पर बैठ कर अपने सिर मे तेल लगाती है और अपनी माँग को सिन्दूर से भरती है। वह प्रात काल उठकर अपना आँ

---

१ आपन भतार देखि रोवे बपुरी।
अन कर भतार देखि हँसे बपुरी॥ —लेखक का निजी स
२ आन का भतार पर टिकुला। —वही
३ अकरब पियवा मरियो न जाय।
सूते के बेरिया चित फरियाय॥ —लेखक का निजी स
४ मन करबू नेही तब घर मे रहबू तूहीं।
मन करबू सोटा, तब खइबू तू सोटा॥ —वही
५ अचन, बचन, पिय तोहरा से।
हिरदयवा के बात कोठिलवा से॥ —लेखक का निजी स
६ आँखि चले, भँहू चले, चले पपनी।
सात रग के बात कहे, ऊहे कुटनी॥ —लेखक का निजी सं
७ छउडी छिनारि छने गाहूता।
कहवाँ बाजार, कहवाँ रासता॥ —वही
८ माघ मास घिउ खीचड़ि खाय।
बुढ़वा छटकि छटकि मरि जाय॥ —लेखक का निजी स

फैलाकर भगवान् भास्कर से नित्य यही प्राथना करती है कि म कब राँड होऊँगी ? मुझे विधवा होने का वरदान कब मिलेगा ? सचमुच ऐसा वरदान माँगने का साहस ककशा तथा कुलटा स्त्री ही कर सकती है।[१]

वन्ध्या के रूप मे

(६) अनुच्छेद

जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है भोजपुरी समाज मे किसी स्त्री का महत्त्व उसके पुत्रो की सख्या से ही आँका जाता है। जिस स्त्री के जितने ही अधिक पुत्र होते हे उसका उतना ही अधिक आदर एव सन्मान घर मे किया जाता है। नारी जीवन का महत्त्व उसके पुत्रवती होने मे ही है। गोस्वामी जी ने भी पुत्रवती नारी की ही कल्पना अपने 'मानस' मे इस प्रकार की है —

पुत्रबती जुवती जग सोई,
रघुबर भगत जासु सुत होई।"

जिस स्त्री को पुत्र पैदा नही होता वह समाज मे घृणित दृष्टि से देखी जाती है। घर वाले उसे ताना मारते है। यदि विवाह के बाद अनेक वर्षों तक पत्नी को कोई सन्तान उत्पन्न नही हुई अथवा केवल लडकियो की ही 'बाढ' लगती गयी तो उसका पति दूसरा विवाह करने पर उतारू हो जाता है। पत्नी के बहुत मना कर भी वह नही मानता तथा उसकी सौत का घर मे लाकर बिठा देता है। इस प्रकार से प्रथम पत्नी को अनेक प्रकार का शारीरिक तथा मानसिक कष्ट उठाना पडता है। यदि समाज मे विधवा होना अभिशाप तथा पूर्वजन्म के पापो का कारण माना जाता है, तो बन्ध्या होना अदृष्ट का हेतु समझा जाता है। दोनो ही स्त्री के दुर्भाग्य का सूचक है जिसमे उसका कोई वश नही होता।

इसीलिए वन्ध्या स्त्री—जिसे भोजपुरी मे 'बाँझ' या 'बाँझिन' कह कर अपमानित किया जाता है—पुत्र-प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार का प्रयास करती है। वह कभी षष्ठी-व्रत का विधान कर भगवान् भास्कर से पुत्र देने की प्राथना करती है, तो कभी शीतला माता को प्रसन्न कर पुत्र की भिक्षा माँगती है। कभी काशी के लोलाक कुण्ड मे स्नान कर अपनी सूनी गोद को भरना चाहती है तो कभी किसी साधु, सन्त, औलिया अथवा पीर की शरण मे जाकर अपने बन्ध्यात्व को दूर करने का निवेदन करती है।

स्त्रियो के हृदय मे पुत्र-प्राप्ति की कामना का उदय होना स्वाभाविक है। वे जानती है कि पुत्र के बिना उनका जीवन निरर्थक है। इसीलिए वे गगा स्नान, व्रत, तप और पूजा-पाठ मे अपना मन लगाती है। एक सोहर मे पुत्र-प्राप्ति के लिए किसी स्त्री के द्वारा गगा-स्नान का उल्लेख उपलब्ध होता है। गगाजी जब उस स्त्री से पूछती है कि तुम क्यो स्नान कर रही हो तब वह उत्तर देती है कि मेरे पास सुवर्ण प्रचुर परिमाण मे है, चाँदी की तो कथा ही क्या है ? मुझे पुत्र प्राप्तिकी प्रबल कामना है। मैं केवल उसी को चाहती हूँ।[२]

'सोनवा ए गगा जी ढेर बाटे, रूपवा के पूछेला हो।
मोरा रे सनततिया के साध, सनतति हम चाहिले हो।।"

सन्तति (पुत्र) का अभाव दुर्दैव का कारण समझा जाता है। अत कोई स्त्री अपने भाग्य पर चार चार आँसू बहाती हुई कहती है कि —[३]

१ धनि धनि रे पुरुब तोर भागि,
करकसा नारि मिली।
डेहरी बैठे तेल लगावै,
सेनुर भरावै माँगि।
आँचर पसारि के सुरुज मनावै
कब होइबो मैं राडि।
करकसा नारि मिली।

—डॉ० उपाध्याय—भोजपुरी लोक-गीत, भाग १, पृ० ७१

२. डॉ० उपाध्याय भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन, पृ० २४२।

३. डॉ० उपाध्याय · भोजपुरी लोक-गीत, भाग १, पृ० ६२।

"ए रानी नाँही बिधि लिखले लिलार,
सतति नाहि मिलेला हो।"

सोहर के एक अन्य गीत मे सन्तानहीनता के लिए भाग्य को कोसा गया है।[1] कोई स्त्री सन्तान के लिए अनेक तीर्थों, नदियो और मन्दिरो की खाक छानती है। परन्तु फिर भी पुत्र से रहित होने के कारण उसका बाँझिन का नाम नही छूटता। इसी मनोवेदना की अभिव्यजना नीचे की पक्ति मे बडी सुन्दर रीति से की गई है।[2]

"आताना तीरिथि हम कहलीं,
बाँझिनि हम रहि गइलों हो।'

पुत्र की प्राप्ति ही नारी-जीवन की एकमात्र कामना होती है। उसके अभाव मे यदि वह अपने जीवन को निरर्थक समझती है तो इसमे आश्चय ही क्या? किसी वाँझिनि की हार्दिक व्यथा की यह अभिव्यक्ति कितनी मर्मस्पर्शी है।[3]

"लाल, पियर ना पहिरलीं, चउक ना बइठलीं हो।
ललना! गोदिया ना खेलवलीं बालकवा, मोर जनम अकारथ हो।।

पुत्र के अभाव मे, व्याहता पति भी अपनी पत्नी से 'मुह खोल कर' नही बोलता है, प्रत्युत व्यग बाणो से उसे सदा पीडित करता रहता है। इसी बात की शिकायत करती हुई कोई भावज अपने देवर से रो रो कर कहती है कि ए बबुआ! (प्यारा देवर) आपका बडा भाई केवल पुत्र न होने के कारण मुझे "कुबोली"—बुरी तथा कटु—बात बोलता रहता है।"[4]

"ए बबुआ! राउर भइया बोलेले कुबोलिया।
एक रे बालक बिनु ए राम।।"

बन्ध्या स्त्री कितनी अभागिनी होती है, कितनी उपेक्षिता तथा कितनी गर्हणीय समझी जाती है इसका अनुमान केवल इसी से लगाया जा सकता है कि उसकी पूजा-अर्चा को भगवान् सूर्य भी स्वीकार नही करते। इतना ही नही बल्कि शीतला देवी भी—जो स्वय मातृत्व की देवी है—किसी बन्ध्या की पूजा को इसलिए ग्रहण नही करती क्योंकि उसका जीवन पुत्र के बिना अपवित्र तथा घृणित है।[5]

किम्बहुना, स्त्रियो की बात तो दूर रही, पार्वती और सीता जैसी देवियाँ भी पुत्र की प्राप्ति के लिए अनेक उपायों में प्रवृत्त पायी जाती है। पावती भी पुत्र की कामना से सूर्य-षष्ठी का व्रत करती है।[6] सीता जी भी पुत्र को पाने के लिए रोती कलपती दिखाई पडती है। वह कहती है कि मैं पुत्र से वंचित हूँ, अत अब मेरे जीवन की मनोकामना कैसे पूर्ण होगी।[7]

"राजा मोरा गोदिया ना जनमल बलकवा।
अइकल कइसे पुजिहईं हो।।"

यहाँ पावती और सीता को भोजपुरी प्रदेश की एक सामान्य स्त्री का प्रतिनिधि समझना चाहिए। देवत्व की भावना से इन्हे अभिभूत करना उचित नहीं है।

गोस्वामी जी ने लिखा है कि—

"पति विहीन सब सोक समाजू।"

वास्तव मे यही बात पुत्र के विषय में भी कही जा सकती है। घर में सारी सम्पत्ति भरी पडी हो, भाई, भतीजा, देवर

१ डॉ० उपाध्याय भोजपुरी लोक गीत, पृ० ६२।
२ डॉ० उपाध्याय भोजपुरी लोक गीत, पृ० ७२।
३ डॉ० उपाध्याय भोजपुरी लोक गीत, पृ० ८२।
४. डॉ० उपाध्याय भोजपुरी लोक गीत, भाग १, पृ० २३६।
५ डॉ० उपाध्याय भोजपुरी लोक गीत, भाग २, पृ० २५७।
६. डॉ० उपाध्याय भोजपुरी लोक गीत, भाग १, पृ० २५३।
७ डॉ० उपाध्याय भोजपुरी लोक गीत, भाग २, पृ० २७२।

और जेठ सैंकडों की सख्या मे भले ही विद्यमान हो, परन्तु एक बालक के बिना माता की गोद सूनी दिखाई पडती है। जतसार की कुछ कडियो मे किसी बन्ध्या स्त्री की दुःखी आत्मा तडप रही है, उसके हृदय का करुणक्रन्दन पाषाण-हृदय को भी द्रवीभूत करने मे समर्थ है' —

रामा एक सई आमावा लगवलीं, सवा सई जामुन हो।
आहो राम, तबहूँ ना बगिया सोहावन, एक रे कोइलि बिनु हो राम ॥१॥
नइहर मे पाँच गो भइया, अवरू सात गो भतिजा बाडे हो।
आहो रामा, तबहूँ ना नइहर सोहावन, एक रे मयरिया बिनु हो राम ॥२॥
एक कोरा लिहलो मैं भइया, दूसरे कोरा भतिजवा हो राम।
आहो रामा, तबहूँ ना गोदिया सोहावन, एक रे बालक बिनु हो राम ॥३॥"

बाँझ-बन्ध्या स्त्री भोजपुरी समाज की अत्यन्त उपेक्षिता नारी है। उसे कोई भी व्यक्ति अपनी वस्तु को देना नही चाहता। कोई रानी अपनी पुत्रेच्छा की पूर्ति के लिए, किसी दूसरी स्त्री से अपनी गोद मे खिलाने के लिए उसके बालक को माँगती है, परन्तु वह यह कहते हुए उसकी प्राथना को स्पष्ट ही अस्वीकार करते हुए कहती है कि मैं तुमको अपना बालक नही दूगी, क्योकि तुम्हे 'बाँझिन' के नाम से सम्बोधित किया जाता है —

ए रानी ! आपन बालकवा नाहीं देबों।
तोर मइयाँ बझिनियाँ के हो॥"

एक अन्य गीत मे बन्ध्या स्त्री की यह पुत्र-कामना अपनी सीमा को पार करती हुई दिखाई पडती है। जब उसे अस्थि-चर्म-सम्पन्न किसी पुत्र की प्राप्ति नही होती, तब वह अपनी अभिलाषा की पूर्ति के लिए काष्ठ-खण्ड से निर्मित लकडी के निर्जीव बालक को ही लेकर अपनी सूनी गोद को सुशोभित करना चाहती है। वह किसी बढई से काठ का लडका गढ देने की प्रार्थना करती है और उस निर्जीव बालक मे प्राण सञ्चार करने के लिए भगवान् से निवेदन करती है' जिससे उसके बाँझ होने का कलक मिट जाय। इस पर वह निर्जीव बालक कहता है कि ए रानी बढई के द्वारा गढा हुआ बालक सजीव की भाँति आचरण करने मे असमथ होता है। यदि मुझे भगवान् ने गढा होता, तो मैं तुम्हारी अभिलाषा की पूर्ति अवश्य करता।'

बाँझ स्त्री को अपनी सास और ननद के तीक्ष्ण वाक्-बाणो का सदा शिकार बनना पडता है। गाँव की सभी स्त्रियाँ उसे 'बाँझिन' के नाम से सम्बोधित करती हैं। ऐसे विषम वातावरण मे रहने के कारण तथा घर के लोगो के सतत दुर्व्यवहार से ऊब कर, कोई स्त्री कहती है कि मेरे मन मे यह विचार आता है कि मैं या तो विष खाकर मृत्यु का आलिंगन कर लूँ अथवा भगवान् अग्निदेव को अपने शरीर को अर्पित कर दूँ। मृत्यु के बाद मेरी वन्ध्यात्व रूपी कलक की कालिमा तो मिट जायेगी।'

स्त्री के बन्ध्या होने के कारण पति का मन भी पत्नी से उचाट खाने लगता है। वह उसका उचित आदर-सत्कार नही करता। इसी अपमान के कारण कोई स्त्री घर से निकल कर, जगल मे जाकर, 'जोगिनी' का वेष धारण कर अपना कलकित जीवन बिताना चाहती है। अपनी दुखिया जीवन-गाथा की व्यथा का सदा के लिए अन्त कर देने के लिए, वह किसी बाघिन को अपने शरीर को भक्षण कर लेने के लिए अर्पित करती है, नागिन से डँसने की प्रार्थना करती है और धरती माता से अपने भीतर उसे स्थान देने के लिए हाथ जोडती है, परन्तु कोई भी उसकी बिनती को स्वीकार नही करता। सभी यही उत्तर देती है कि ए बाँझिन !

१ लेखक का निजी सग्रह, पृ० १०५।
२ रानी बढ़ई के गढ़ल होरिलवा,
रोवन नाहीं जानइ हो॥
दैव गढ़ल जो मैं होइतों,
तो रोइ के सुनइतेऊँ हो॥
त्रिपाठी ग्राम-गीत, पृ० ७।
३. अस मन करे मइया, जहरवा खाइ मरितों हो।
एक मन करे मइया, अगिनिया मे जरि हो जाऊँ॥ —डॉ० उपाध्याय भोजपुरी लोक गीत, भाग १, पृ० ३५४

यदि हम तुमको खा लें, डँस लें, अथवा अपने भीतर (पृथ्वी मे) स्थान दे दें, तो तुम्हारी भूख हम भी लग जायगी और हम स्वय भी बन्ध्या बन जायेंगी।[1]

पृथ्वी, माता कहलाती है। वह अपने गर्भ मे सब को स्थान देती है, परन्तु वह भी एक दुखिया बाँझ स्त्री को अपने हृदय मे स्थान देने से डरती है कि कही वह भी वन्ध्या न बन जाय। उसका उर्वरात्व कही नष्ट न हो जाय और वह ऊसर भूमि के रूप मे परिणत न हो जाय। किमाश्चर्यमत परम्।

गत पृष्ठो मे भोजपुरी लोक साहित्य मे वन्ध्या स्त्रियो का जैसा चित्रण किया गया है, उसकी केवल एक झाँकी यहाँ प्रस्तुत है। यदि समाज की वास्तविक दशा पर दृष्टिपात किया जाय, तो पूर्वोक्त वर्णन अत्यन्त सत्य तथा सटीक दिखाई पड़ता है। आज समाज मे लाखो की सख्या मे बन्ध्याएँ मौजूद हैं, जो नारकीय यन्त्रणा को सहते हुए अपने जीवन के शेष दिनों को बड़े ही दुख मे काट रही है।

बाँझपन एक बीमारी है, जो स्त्री या पुरुष किसी मे भी हो सकती है। परन्तु भोजपुरी समाज की यह विशेषता है कि वह इस रोग से केवल स्त्रियो के ही पीडित होने की सम्भावना समझता है, पुरुषो मे कदापि नही। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि विवाह के आठ दस वर्षों तक यदि कोई सन्तान पैदा नही होती अथवा केवल पुत्री ही पैदा होती जाती है, तब स्वेच्छाचारी पुरुष अपना दूसरा विवाह कर लेता है। और यदि इस स्त्री से भी पुत्र की उत्पत्ति नही हुई, तब तीसरे और चौथे विवाह की तैयारी करता है। बाद की परिणीता स्त्रियो से, ओझा-औलिया के झाड़-फूँक की मदद से, यदि पुत्र उत्पन्न हो जाता है, तो पहिली स्त्री को रौरव नरक की यातना भुगतनी पडती है। ऐसे अनेक प्रत्यक्ष प्रमाण दिये जा सकते है, जिनमे ऐसी परिस्थिति मे अनेक स्त्रियो को आज भी मार्मिक कष्ट तथा मानसिक पीड़ा भुगतनी पड़ रही है।

विधवा के रूप में

(७) अनुच्छेद

भारतीय समाज—विशेषकर भोजपुरी समाज—मे विधवाओ की दशा बड़ी ही दयनीय है। विधवापन हिन्दू समाज मे अभिशाप समझा जाता है। कोई स्त्री धन, रूप, सौन्दर्य, शील और विद्या आदि गुणो से कितनी भी सम्पन्न क्यो न हो, परन्तु यदि विधाता ने उसे विधवापन का शाप दे दिया, तो वह अत्यन्त पापिनी, अभागिनी और गरीबनी समझी जाती है। बिना किसी अपराध के वह अपराधिनी है और किसी पाप कर्म किये बिना ही वह 'महापापिनी' की संज्ञा से विभूषित की जाती है। जहाँ सधवापन सौभाग्य का लक्षण माना जाता है, वहाँ विधवापन दुर्भाग्य का प्रतीक है। यदि यह कहा जाय कि हिन्दू विधवा समाज मे सबसे अधिक घृणित, उपेक्षिता, तिरस्कृता तथा पीडिता नारी है, तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

हिन्दू धर्मशास्त्रकारो ने भी विधवाओ के साथ न्याय नही किया है। जहाँ सधवा स्त्रियों के लिए भोजन-छाजन, भोग-विलास के लिए उन्होने सर्वत्र छूट दी है, वहाँ विधवा की आचरण-संहिता को बनाने में उन्होंने काफी कठोरता से काम लिया है। उन्होने अपनी सारी शक्ति स्त्री-समाज की इस उपेक्षित सदस्या के दुखमय जीवन को शास्त्र-वचनों की कठोर-शृंखला मे बाँध कर, उन्हे प्रताडित तथा प्रपीडित करने मे कुछ उठा नहीं रखा है। मानों उनकी सारी ज्ञान और विचार-शक्ति इसी कार्य के लिए विधाता ने बनायी हो। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी विधवाओं के लिए सुन्दर आभूषण आदि पहिनने का निषेध किया है। कलियुग का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं कि—

'सौभागिनी विभूषन हीना।
विधवन के सिंगार नवीना॥"

१ बाघिन हम का जों तू खाइ लेतिउ, विपतिया से छूटित हो।
बाँझिन! तुमका जो हम खाइ लेबि, हमहूँ बाझिन होइब हो॥१॥
नागिन, हमका जो तुम डँसि लेतिउ, बिपति से हम छूटित हो।
बाँझिन! तुमका जो हम डँसि लेबि, हमहूँ बाँझिन होइब हो॥२॥
धरती! तुम ही सरन अब देहु, बाँझिन नाम छूटइ हो।
बाँझिन! तोहका जो हम राखि लेबि, हमहूँ होइबि ऊसर हो॥३॥
डॉ० उपाध्याय . भो० लो० गी० भाग १, पृ० ३५४।

जो स्त्री सन्तान से वचित होती है, उसे "बाँझ" की सज्ञा प्रदान की जाती है और जो पति से रहित होती है वह "विधवा" कही जाती है। इन दोनो मे कौन अधिक दु खिता और पीडिता है, यह कहना कठिन है। दोनो के ही दु खो का वणन करना वाणी के परे का विषय है। परन्तु जो स्त्री "बन्ध्या" भी हो और इसके साथ ही उसे "विधवा" होने का भी कलक लगा हो, उसके दु खो के विषय मे जो कुछ कहना ही व्यथ है। उसके सम्बन्ध मे इतना ही कहना पर्याप्त है कि —

'दुखवा अमित न कहि सकहिं,
सहस, सारदा, सेस।"

हिन्दू विधवा का जीवन करुण रस का एक महाकाव्य है, जिसे पढकर वज्रहृदय भी शतधा विदीर्ण हो जाता है। इसके विषय मे महाकवि भवभूति की यह उक्ति नितान्त अक्षरश चरिताथ होती है कि—

"अपि ग्रावा रोदति, अपि दलति वज्रस्य हृदयम्।"

भोजपुरी विधवा की दुर्दशा का प्रधान कारण उसकी आर्थिक परिस्थिति है। पति जब तक जीवित है और अर्थोपाजन कर घरवालो को देता है, तब तक ही स्त्री की घर मे पूछ होती है। परन्तु पति की मृत्यु के पश्चात्, विधवा के लिए, आर्थिक सहायता का एकमात्र आश्रय तथा स्रोत सदा के लिए सूख जाता है। ऐसी दुर्दशा मे उसी घर मे—जिसमे पहिले उसका इतना आदर था—उसे कोई पूछनेवाला भी नही रहता। यदि वह अभागिनी विधवा पुत्र के सुख से भी वचित है, तो उसका भगवान् ही मालिक है। जो स्त्री कुछ दिनो पूव 'वधू' के नाम से पुकारी जाती थी, उसे लोग 'मुसम्मात' के घृणित नाम से सम्बोधित करते है। 'कमासुत' (द्रव्य उपार्जन करने वाला) पति की मृत्यु के पश्चात् घर की स्त्रियाँ उस विधवा के दु खिया मन तथा कान्तिहीन शरीर को कटुबाणो से बेधने लगती है। वे उसे ताना मार कर पूछती है कि "अब तू केकर कमाई खइबू" अर्थात् तुम किसकी कमायी खावोगी ? इतना ही नही, घरवाले उसके दिवगत पति का, बडी घृणा से नाम लेकर कहते है कि अमुक (मँगरुआ या फेंकरुआ) तो मर गया, परन्तु इस डाइन (विधवा) को हम लोगो को दु ख देने के लिए छोड गया। इन कटु उक्तियो तथा विष भरे वचनो से बिंधकर विधवा की छाती 'चलनी' हो जाती है और वह अपने जीवन के दिनो को किसी प्रकार से काटती है।

इसीलिए एक कहावत मे कहा गया है कि सभी लोगो का दिन तो किसी प्रकार बीत जाता है, परन्तु विधवा का दिन किसी भाँति काटे भी नही कटता।

बड्डी घर रुपया ओरा जाला
लेकिन राँड़ के दिन ना ओराला।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने पति-विहीन (अर्थात् विधवा) स्त्री का जो चित्रण किया है, वह बहुत ही सटीक और समीचीन है। सीताजी कहती हैं कि —

"जिय बिनु देह नदी बिनु बारी,
तैसिहिं नाथ पुरुष बिनु नारी।"

पति के बिना ससार की सभी वस्तुएँ कष्ट-दायक मालूम होती है—[1]

"भोग रोग सम, भूषण भारू,
जम जातना सरिस ससारू।
प्राणनाथ! तुम्ह बिनु जग माँहीं,
मो कहुँ सुखद कतहु कछु नाहीं।"

ससार में जो कुछ नेह और नाता है, वह सभी कुछ पति के ही कारण है। पति के बिना सारा समाज शोक का समुदाय है।[2]

१. रामचरित मानस : बालकाण्ड।
२. वही।

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते,
पिय बिनु तियहिं तरनिहु ते ताते।
तन, धन, धाम, धरनि पुरराजू,
पति बिहीन सब सोक समाजू॥"

पत्नी का शृंगार पति ही है। उसके अभाव मे सारे ससार मे उसे दुख ही दुख दिखाई पडे, तो इसमे कोई आश्चर्य ही क्या है।

'कमासुत' पति के अभाव मे उसकी पत्नी को घरवाले कभी भर-पेट भोजन भी नही देते। इसके लिए उस विधवा को कुटुम्बियो से प्रार्थना करनी पडती है। पचायत घर का दरवाजा खटखटाना पड़ता है। गाँव के मुखिया के घर की खाक छाननी पडती है। परन्तु जब इतना प्रपच करने पर भी उसके भर-पेट भोजन का प्रबन्ध नही हो पाता, तब अन्ततोगत्वा उसे कचहरी की शरण लेनी पडती है। न्यायालय विधवा के कुटुम्बियो को एक निश्चित धन राशि इस अभागिनी को प्रति माह देने के लिए बाध्य करता है, जिसे विधवा को देना उनके लिए अनिवार्य हो जाता है। उदरपूर्ति के लिए दिये जानेवाले इस धन को "खोरिस" कहा जाता है। 'खोरिस" पानेवाली विधवा घृणित दृष्टि से देखी जाती है। क्योकि जिन परिस्थितियो मे उसे 'खोरिस' मिलती है, वे बडी दुखद और दयनीय है।

आर्थिक दृष्टि से विधवा की दशा दयनीय होने के साथ ही, सामाजिक दृष्टि से वह घृणित है। विधवापन अमगल का मूल माना जाता है। अत विधवा किसी मागलिक कार्य—विवाह, यज्ञ-यागादि—मे भाग नही ले सकती। किम्बहुना, विवाह के लिए जाते हुए अपने औरस पुत्र का "परीछावन" करने के लिए भी वह अयोग्य समझी जाती है। इसी प्रकार से वह यज्ञ का विधान नही कर सकती। विधवा का मुख देखना ही अशुभ माना जाता है। किसी शुभ कार्य के लिए प्रस्थान करते समय यदि उसका मुह दिखाई पड गया, तो कार्य मे असफलता की प्राप्ति निश्चित है।

लोक-साहित्य मे विधवा का जो चित्रण उपलब्ध होता है, वह बडा ही दयनीय तथा हृदय-द्रावक है। कोई बाल विधवा पुत्री अपने पिता से कहती है कि ए पिता जी! मेरी माँग सिन्दूर के बिना रो रही है। आँखें काजल के अभाव मे रो रही हैं। मेरी गोद बालक के बिना और सेज पति के न रहने से रो रही है।[1]

"बाबा! सिर मोरा रोवेला सेंनुर बिनु,
नयना काजरवा बिनु ए राम।
बाबा! गोद मोरा रोवेला बालक बिनु,
सेजिया कन्हैया बिनु ए राम॥"

उपर्युक्त गीत मे किसी बाल विधवा का हृदय फूट-फूट कर रोता दिखाई पड़ता है। इस गीत की अतिम पक्ति तो बड़ी ही हृदयद्रावक है।

कोई स्त्री अपने पति से जीविकोपार्जन के लिए पूर्व देश-बगाल-न जाने के लिए प्रार्थना करती हुई कहती है कि बंगाल का 'पानी' विष के समान खराब होता है, वह पेट मे खराबी पैदा कर देता है। यदि वहाँ "पानी लगने" से कदाचित् तुम्हारी मृत्यु हो गयी, तो मैं अनाथ हो जाऊँगी।[2]

'पुरुब के पनिया जहर, बिख, महुरा,
लागे करेजवा में बाव।
पनिया पियत सामी जो मरि जइब,
हम बनि होइबों अनाथ॥"

कोई विधवा विलाप करती हुई कहती है कि ए पति! तुम्हारे बिना मेरा जीवन व्यर्थ है। यदि मायके मे मेरा भाई होता और ससुराल मे देवर होता तो, मैं उसकी आशा करती, परन्तु अब मैं किसका आश्रय ग्रहण करूँगी, किसकी शरण मे जाऊँगी?[3] इस निराश्रिता विधवा की दशा कितनी दयनीय है। भगवान् को छोड़कर कोई इसे पूछनेवाला तक नहीं है। क्या

१ डॉ० उपाध्याय भोजपुरी लोक गीत, भाग १। पृ० २११
२ डॉ० उपाध्याय वही —पृ० १०३।
३. डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोक गीत, भाग १, पृ० ३६६।

देवी नामक स्त्री अटारी पर चढकर अपने लम्बे-लम्बे बालो को सँवार रही है। इतने मे ही उसकी माता आकर उसे यह दुखद सूचना देती है कि ए बेटी! अब क्या बाल सँवार रही हो। तुम्हारा पति गायो की रक्षा करते समय आततायियो के द्वारा मार डाला गया है। इतना सुनते ही रूपा की हाथ की कघी हाथ मे ही रह जाती है। वह मूछित होकर गिर पडती है और उसके सिर का सिन्दूर सदा के लिए नष्ट हो जाता है।[1]

जिस स्त्री का पति मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, उसे भोजपुरी मे "राँड" की सज्ञा दी जाती है। ऐसी स्त्री घृणा की दृष्टि से देखी जाती है। वह अकारण स्वेच्छाचारिणी समझी जाती है। इसीलिए यह कहावत प्रचलित है कि—

'राँड भइली कि साँड भइली।"

अर्थात् यह स्त्री राँड क्या हुई साँड के समान आचरण करनेवाली हो गयी है। काशी के सम्बन्ध मे एक कहावत प्रचलित है, जिसमे राँड और साँड दोनो ही एक ही कोटि मे रखे गये है। दोनो एक ही ब्रेकेट (कोष्ठ) के भीतर स्थापित है।

'राँड, साँड, सीढ़ी, सन्यासी।
इनसे बचे तो सेवे कासी।।"

विधवा स्त्री के लिए अपने अगो का शृगार करना निषिद्ध है। वह न तो अपने लम्बे बालो मे, तेल लगाकर, उनका प्रसाधन ही कर सकती है और न आँखो मे काजल अथवा अजन का ही प्रयोग कर सकती है। उसके लिए माँग मे सिन्दूर लगाना अत्यन्त निषिद्ध है, क्योकि सिन्दूर सौभाग्य का प्रतीक समझा जाता है। यही कारण है कि भोजपुरी प्रदेश मे ज्यो ही किसी स्त्री के पति की मृत्यु की सूचना मिलती है, त्यो ही उसके घर की स्त्रियाँ उसके माग के सिन्दूर को मिटाना अथवा धोना प्रारम्भ कल देती है। इसी कुत्सित प्रथा के कारण भोजपुरी मे यह गाली प्रचलित है कि "तोर माँग धोवो।" पति की मृत्यु के सात दिनो के पश्चात् एक विधान या कर्म किया जाता है, जिसे "सतनहयना" कहते है। इस दिन विधवा स्त्री के माँग मे पानी या तेल मे भिगोयी गयी सरसो की 'खली' मली जाती है, जिससे उसके माँग का सिन्दूर-यदि उसके परमाणु भी अवशेष रह गये हो तो वे—सदा के लिए मिट जायँ। इसी कृत्य की ओर सकेत करती हुई एक दूसरी गाली भी प्रचलित है, जो इस प्रकार है —

"तोरा माँग मे बरी बरों।"

स्त्रियाँ जब आपस मे झगडा करती हैं, तब इस गाली का बहुधा प्रयोग किया करती है। विधवा के माँग मे सिन्दूर के अभाव की कल्पना माँग के रोने से की गयी है। कोई स्त्री कहती है कि—

"माँग मोर रोवेला सेनुर बिनु।
गोदिया बालकवा बिनु ए राम।।

पति के मरने के बाद, स्त्रियो के शृगार स्वरूप हाथो की चूडियो से भी विधवा वचित कर दी जाती है। माँग के सिन्दूर को धोने के साथ ही उनके हाथो की चूडियाँ भी बडी निष्ठुरता से फोड दी जाती है। इधर सद्य विधवापन के अभिशाप से अभिशप्त अभागिनी स्त्री रोती, कलपती तथा चिल्लाती रहती है, उधर घर की पाषाण हृदया देवरानी या जेठानी उसकी चूडियो को 'ताबड-तोड' फोडती जाती है। क्योकि उनका यह विश्वास है कि इस अशुभ कार्य को जितनी ही जल्दी सम्पन्न कर दिया जाय, उतना ही अच्छा है। इसी कर्म के कारण "तोरा हाथ के चूरी फोरो"—भोजपुरी समाज मे गाली के रूप मे प्रसिद्ध हो गया है।

माँग धोने तथा चूडी फोडने के साथ ही एक तीसरा कर्म तत्काल ही सम्पादित किया जाता है—वह है विधवा की कमर से रगीन साडी उतरवा कर उसे सफेद लुगरी (फटी, पुरानी सारी) पहिनने को दे देना। इस प्रकार पति की

१. "का तुहु रूपा बेटी झारेलू लामी केसिया,
तोरा सामी जूझेले, गइया के रे गोहारि।
हाथ के रही ककही, हाथहि रहि गइली,
माथा के सेनुरवा दइया हर ले रे जाइ।।"
डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोक गीत, भाग १, पृ० ४७०।

मृत्यु के कुछ घंटो के भीतर ही भोजपुरी विधवा, भीषण हिमपात से प्रताडित उस सूखी लता के समान हो जाती है, जो प्रसून और पल्लव से रहित है। संसार मे हिन्दू विधवा के समान दीन, हीन, अनाथ, दुःखी, दरिद्र और निराश्रित कोई भी प्राणी नही है।

कानून की दृष्टि से भी विधवा को कोई आर्थिक अधिकार प्राप्त नही है। न तो वह अपने पति की सम्पत्ति की अधिकारिणी हो सकती है और न किसी बालक को गोद लेने का ही अधिकार उसे प्राप्त है। वह परिवार वालो पर पूर्णतया आश्रित होकर, केवल अपनी पेट-पूजा मात्र कर सकती है। इस प्रकार दाय-भाग के अधिकारो से वंचित, आर्थिक साधनो से रहित, शारीरिक प्रसाधनो से अपहृत, हिन्दू विधवा दीनता, दरिद्रता और दयनीयता की साक्षात् प्रतिमूर्ति है, जिसे देखकर पाषाण का हृदय भी पिघल कर पानी-पानी हो जाता है। धन्य है यह नारी, जो इतने कष्टो तथा इतनी यन्त्रणाओ को उठाते हुए भी, मौन होकर इनको सहन करती है और समाज के इस अन्याय के प्रति तनिक चूं भी नही करती।

बाल-विधवा

भोजपुरी समाज मे बाल-विवाह प्रचलित है। अत इसके फलस्वरूप बाल-विधवाओ की संख्या बढ़ती जा रही है। कुछ ऐसी भी अक्षतयोनि बाल विधवाएँ पायी जाती है, जिन्होने अपने पति का मुख भी कभी नही देखा है। विवाह होने के बाद उनका अभी गवना भी नही आया था कि इसी बीच उनका बाल पति इस संसार से सदा के लिए कूच कर गया। ऐसी अक्षतयोनि विधवाओ के लिए कुछ प्राचीन धर्मशास्त्री पुनर्विवाह का विधान बतलाते हैं। परन्तु भोजपुरी समाज इस कार्य की आज्ञा नही देता और इसे अत्यन्त गर्हित तथा निषिद्ध बतलाता है। आश्चर्य तो इस बात से होता है कि जो समाज पुरुषो के लिए एक दो नही, बल्कि अनेको विवाह की अनुमति ही नही देता, बल्कि उसका स्वागत करता है, वही समाज इन अक्षतयोनि बाल-विधवाओ के पुनर्विवाह को अत्यन्त घृणित तथा अधार्मिक बतलाता है। वृद्ध विवाह का अनुमोदन करनेवाला यह समाज, दुधमुही विधवा बच्चियो का भी पुनर्विवाह करने का प्रबल विरोधी है। इससे हिन्दू समाज की जो क्षति हो रही, उसका प्रतिदिन जो ह्रास हो रहा है, वह प्रत्यक्ष है। फलस्वरूप कुछ बाल-विधवाएँ 'दालमण्डी' की अटारी की शोभा बढ़ाती हैं, तो कुछ गंगा मइया को अपने को समर्पित कर जल समाधि ले लेती हैं। कुछ को विधर्मी उड़ा ले जाते हैं, तो कुछ नारकीय जीवन बिताती हुई समाज को कोसती रहती हैं। यही इन विधवाओ की दयनीय दशा है।

लुबुकी के रूप में

(८) अनुच्छेद

भोजपुरी प्रदेश मे कुछ स्त्रियाँ ऐसी पायी जाती हैं, जिन्हें आसानी से "लुबुकी" की संज्ञा दी जा सकती है। ऐसी स्त्रियो के पेट मे कोई बात नही पचती। वे जो कोई बात किसी से सुनती है, उसे कुटुम्ब तथा गाँव के अन्य लोगो से सुनाती फिरती है। इनकी बुद्धि अत्यन्त अल्प तथा साधारण होती है। सम्भवत ऐसी ही स्त्रियो के लिए गोस्वामी जी ने "अधर बुद्धि" का प्रयोग किया है।[1] लुबुकी स्त्री के हृदय में न तो गम्भीरता होती है और न उसकी वाणी मे संयम ही। वह अपने 'पेट मे पानी' को भी नही पचा सकती, फिर रहस्यमय तथ्यो को छिपाने की बात तो दूर रही। उसके क्षुद्र हृदय मे जो कुछ बात आती है, उसे वह सहज रूप मे कह डालती है। परन्तु उसे कुलटा कहना उसके साथ अन्याय करना होगा अथवा उसे सती-साध्वी की संज्ञा प्रदान करना, उसके प्रकृत स्वरूप से बहुत दूर जा पड़ेगा।

लुबुकी स्त्री को 'लबरलच्छनी' भी कहा जाता है, क्योंकि वह सभी बातों मे 'लब, लब' किया करती है। बिना पूछे ही प्रत्येक बात में हस्तक्षेप करती रहती हैं। चूंकि उसकी बातों में सत्य की अपेक्षा असत्य की ही मात्रा अधिक होती है, अत वह कभी-कभी "लबजी" (झूठी) के नाम से भी अभिहित की जाती है। ऐसी स्त्री के स्वभाव की उच्छृंखलता को देखकर कभी-कभी उसे 'छुछुन्दर' की भी उपाधि से विभूषित किया जाता है। कहने का आशय यह है कि लुबुकी के स्वभाव, गुण और शील के अनुसार उसको विभिन्न नामो से पुकारा जाता है।

लुबुकी स्त्रियो का स्वभाव स्थिर नही रहता। वह सदा चंचलता के झूले पर झूलता रहता है। ऐसी स्त्री सदा यह

१ तीय अधर-बुधि रानि—रा० च० मा०।

सोचती रहती है कि मैं ससुराल कब जाऊँगी और घीव कब खाऊँगी।[1] ऐसी स्त्रियो की अपने पति से कभी 'पटरी' नही खाती। वह सदा उनसे उदासीन तथा 'फिरन्ट' रहती है। परन्तु कदाचित् दैव योग से वह गर्भवती हो गई और छ महीने का गर्भ हो गया, तो वह सारे नगर मे ढिढोरा पीट आती है। वह चमार के घर जाकर उसे 'साई' (अग्रिम मूल्य) या एडवान्स रुपया देती है और कहती है कि मुझे शीघ्र ही पुत्र होनेवाला है। तुम आकर उस समय शहनाई अवश्य बजाना।[2] भविष्य मे लडका पैदा होगा या लड़की, इसका अभी कोई ठिकाना नही है, परन्तु इस लुबुकी स्त्री ने चमार को बाजा बजाने का न्यौता अभी से दे दिया। इस सम्बन्ध मे यह कहना कुछ अनुचित न होगा कि भोजपुरी समाज मे पुत्री-जन्म के अवसर पर बाजा नही बजाया जाता, अत इस सन्दर्भ मे 'साई' देने का औचित्य सदिग्धपूर्ण है। ठीक ही कहा है कि—"पेडे कटहर ओठे तेल।"

ऐसी लुबुकी स्त्रियाँ प्रत्येक बात मे दखल देती है। उन्हे कोई पूछता भी नही, फिर भी विवाह के अवसर पर वह कहती हैं कि मैं दूल्हे की चाची हूँ।[3] ऐसी स्त्रियाँ अपने मायके जाने के लिए बडी इच्छुक रहती हैं। क्योकि वहाँ उन्हे अपनी इच्छा के अनुसार भरपेट भोजन और स्वच्छन्द विचरण का अवसर मिलता है।[4] लुबुकी स्त्री कुलटा तथा कुटनी से कही अच्छी होती है। जहाँ कुलटा का आचरण समाज के लिए बाधक है, वहाँ लुबुकी का आचरण समाज के सदस्यो के लिए साधक सिद्ध होता है। लुबुकी किसी का कोई नुकसान नही करती, किसी को क्षति नही पहुँचाती, बल्कि सहज स्वभाव और परोपकारिता की वृत्ति के कारण दूसरो का उपकार ही करती है। उसकी यही वृत्ति उसका प्रधान गुण है। प्रत्यक्ष रूप मे भले ही कोई उसकी निन्दा करे, परन्तु सभी उसकी भलाई का लोहा मानते है।



१ लब लब करे, लबजसिया' के जीव।
कब जाइबि ससुरा, कब खाइबि घीव॥
—लेखक का निजी सग्रह'

२ छ महीना का पेट रहल, चमार के दिहली साई"।
हमरा होइहें बबुआ, बजइहें सहनाई॥
—लेखक का निजी सग्रह।

३ पूछे ना आछे, हम दूलह के चाची।

४ अस मन करे कि नइहर जाईं।
छीपा छोड़ि कठवती मे खाईं॥
—लेखक का निजी सग्रह।

अध्याय ३

भोजपुरी परिवार का संगठन

(१) अनुच्छेद

○○

परिवार की श्रेणियाँ—समाज-शास्त्रियो ने परिवार को दो मुख्य श्रेणियो मे विभक्त किया है।

(१) पितृ सत्तात्मक परिवार (Patriorchal Family)

(२) मातृ सत्तात्मक परिवार (Matriorchal Family)

पितृ सत्तात्मक परिवार से हमारा आशय उस परिवार से है, जिसमे पिता की सत्ता प्रधान होती है। वही समस्त परिवार का मुखिया और मालिक होता है। पिता से ही उस वश की परम्परा चलती है अर्थात् पिता की मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र घर का मालिक होता है और उसके पश्चात् उसका पुत्र। ज्येष्ठ पुत्र के अभाव म कोई भी पुत्र गृह का स्वामी बन सकता है। इस प्रकार के परिवार मे पिता के बाद पुत्र और उसके बाद पौत्र एव प्रपौत्र उस मूल व्यक्ति की चल तथा अचल सम्पत्ति के उत्तराधिकारी स्वत होते जाते है। अत जिस परिवार मे उत्तराधिकार की परम्परा पिता-पुत्र-पौत्र एव प्रपौत्र के रूप मे आगे चलती रहती है, उसे पितृसत्तात्मक परिवार कहा जाता है। परन्तु जिस परिवार मे यह परम्परा माता-पुत्री-पौत्री और प्रपौत्री के रूप मे प्रचलित है, उसे मातृसत्तात्मक परिवार की सज्ञा दी जाती है।

कहने की यह आवश्यकता नही, समस्त भारत मे, केवल केरल राज्य को छोडकर, पितृसत्तात्मक परिवार की प्रणाली प्रचलित है। भोजपुरी प्रदेश भी इसका अपवाद नही है, जहाँ यही परम्परा अनादि काल म प्रतिष्ठित है। हमारे सामाजिक सगठन मे परिवार का केन्द्रीय स्थान है। व्यक्तियो से पहिले परिवार बनता है और इसके पश्चात् परिवार से समाज का सगठन होता है।

परिवार का सगठन—भोजपुरी परिवार मे सयुक्त परिवार-प्रणाली आज भी प्रचलित है। एक ही परिवार मे माता, पिता, भाई, बहिन, पुत्र, वधू, पौत्र, पौत्रियाँ तथा चाचा-चाची, और ताऊ समान रूप से एक साथ रहते हैं। एक ही साथ खाते-पीते है और एक ही छत के नीचे सोते हैं। इस सयुक्त परिवार का स्वामी पिता होता है। इसकी आज्ञा सभी लोग समान रूप से शिरोधार्य करते है। क्या मजाल कि परिवार का कोई भी व्यक्ति इसकी आज्ञा का उल्लघन कर सके? सामाजिक तथा धार्मिक सभी कृत्य पिता की आज्ञा से ही सम्पन्न किये जाते हैं। मुण्डन, यज्ञोपवीत और विवाह आदि सभी मागलिक कार्यों का श्रीगणेश गृहस्वामी के द्वारा ही किया जाता है। सत्यनारायण की कथा और जितने भी यज्ञ-यागादि है, उनका सम्पादन घर का मालिक ही करता है। लडकी के विवाह के लिए योग्य वर का चयन पिता ही करता है और पुत्र के विवाह के अवसर पर अपने पुत्र के तिलक और दहेज के लिए कन्या पक्षवालो से मोल-तोल करना इसी का कार्य है। अपने पुत्र के विवाह मे, वर का पिता कन्या मण्डप मे जब तक भोजन नही करता, तब तक वह मण्डप पवित्र नही समझा जाता। इस समय उसकी आज्ञा अनिवार्य मानी जाती है। इसी से मांगलिक कार्यों मे पिता का महत्त्व आँका जा सकता है।

आर्थिक मामलो मे भी पिता अर्थात् गृहस्वामी का अधिकार सर्वाधिक माना जाता है। परिवार के समस्त सदस्यो का भरण-पोषण करना उसका आवश्यक कर्त्तव्य है। वह परिवार के बालको की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करता है, उनके भोजन-छाजन तथा वस्त्र-आच्छादन की चिन्ता मे सलग्न रहता है। घर के सभी 'कमासुत' (कमानेवाले) सदस्य इसी गृह-स्वामी को अपनी कमाई समर्पित करते हैं, जिसके द्वारा वह परिवार का खर्चा चलाता है। परिवार की आर्थिक वृद्धि के लिए यदि कोई अचल सम्पत्ति-भूमि या मकान का क्रय करना हो, तो यह इसके एकाधिकार के अन्तर्गत आता है। पिता के जीवित रहते समय पुत्र या पौत्र का उसकी सम्पत्ति पर कोई अधिकार नही समझा जाता। इस प्रकार पिता सच्चे अर्थों मे प्रजापति है। उसकी आज्ञा अनुलघनीय है और उसका आदेश अवश्यमेव पालनीय है।

भोजपुरी परिवार का सबसे बडा बूढा चाहे वह पिता हो अथवा बाबा या दादा, अपने जनेऊ मे तालियो का झोझ (गुच्छा) बाँधे रहता है। यह गुच्छा उसके गृहस्वामी होने का प्रतीक है। ये तालियाँ उन लोहे अथवा काठ के बने सन्दूको मे लगे तालो की होती है, जिनमे समस्त परिवार की स्त्रियो का सुवर्ण तथा रजत-आभूषण सुरक्षित रखा रहता है। इसके अतिरिक्त कीमती जरी की साडियाँ तथा बहुमूल्य बर्तन भी इन सन्दूको मे पाये जाते है। इसके साथ ही इन लौह मजूषाओ मे कचहरी के जरूरी कागजात—जिनमे रेहन या बय (कबाला) के रूप मे खरीदी गयी भूमि या खेत का विक्रय-पत्र (Sale Deed) और कज के रूप मे दिये गये रूपयो की सरखत (हैण्डनोट) सम्मिलित है—बडी सावधानी के साथ सँजोया गया रहता है। इस प्रकार ये तालियाँ, ताली पीट कर उस व्यक्ति के स्वामित्व की घोषणा करती हैं। ये उसके सर्वाधिकार की सूचना देती है। यही कारण है कि भोजपुरी सयुक्त परिवार का स्वामी तब तक उन तालियो को अपने पुत्र को भी नही देता, जब तक उसका श्वास चलता रहता है। ऊर्ध्वश्वास के समय भी वह अपनी 'थाती' को सँजोकर रखता है, चाहे कुछ घटो के बाद उसके प्राण पखेरू भले ही उड जायँ। इस 'मालिक' के जीवन मे उसकी सबसे अधिक प्रिय, प्रेय और बहुमूल्य वस्तु चाभियो का यही गुच्छा है, जिसे वह आजीवन पृथक् करना नही चाहता।

परिवार के मालिक को भोजपुरी मे 'मलिकार' कहते है। यह व्यक्ति घर के सभी सदस्यो के आदर और सन्मान का भाजन होता है। परन्तु व्यक्तिगत रूप मे यह बडा ही कजूस होता है। धन के अपव्यय करने की बात तो दूर रही, यह सदुपयोग के लिए भी द्रव्य खर्च करने मे बद्ध-मुष्ठिता दिखलाता है। इसका कुछ कारण तो यह हो सकता है कि इसे एक बडे परिवार का भरण-पोषण करना पडता है, परन्तु इसका अधिकाश श्रेय उसके कृपण स्वभाव को ही दिया जा सकता है। घर के स्वामित्व का अधिकार प्राप्त करते ही, उसके व्यवहार मे कृपणता का प्रवेश हो जाता है। वह अतिथियो के स्वागत-सत्कार मे किये गये खर्चे को भी फिजूलखर्ची समझता है। किम्बहुना, वह परिवार के सदस्यो के सुखपूर्वक भोजन करने तथा ठाट-बाट से रहने को भी अनुचित समझता है। ऐसे ही भोजपुरी परिवार के किसी स्वामी के मुख से यह लोकोक्ति कहलवायी गयी है कि —

'नून, तेल, मरिचाई,
ई घर रही कि जाई।"

अर्थात् जिस घर मे नमक, तेल और मिर्चा यदि इन सभी वस्तुओ का खर्चा हो, तो वह घर अवश्य नष्ट हो जायेगा। अत यह 'मलिकार' अपनी काया को कृपणता की आग मे जलाता हुआ घरवालो के 'अपव्यय" पर सदा चिन्तित रहता है।

(२) अनुच्छेद

(क) भोजपुरी परिवार के सदस्य

भोजपुरी सयुक्त परिवार मे विभिन्न सदस्य एक साथ ही निवास करते है, जो विभिन्न नामो से पुकारे जाते है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी सदस्य हैं, जो एक साथ तो नही रहते, परन्तु उनसे पारिवारिक सम्बन्ध (रिश्तेदारी) इतना घनिष्ठ है कि वे परिवार के सदस्य के रूप मे ही परिगणित किये जाते है। इस प्रकार इनको दो श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है —

(क) परिवार के सदस्य।
(ख) सम्बन्धी या रिश्तेदार।

(क) परिवार के सदस्य

परिवार के विभिन्न सदस्यो के नाम इस प्रकार हैं —

(१) पिता—जनक-यह परिवार का स्वामी तथा मालिक होता है।
(२) माता—पिता की स्त्री।
(३) पुत्र—पिता का लडका।
(४) पुत्री—पिता की लडकी।
(५) भाई—पिता के विभिन्न पुत्र आपस मे भाई लगते हैं।
(६) बहिन—पिता की पुत्रियाँ आपस मे बहिन हैं।
(७) पतोहू—पुत्र की स्त्री।

(८) भावज—बडे भाई की स्त्री।
(९) ननद—भावज के लिए उसके पति की बहिन ननद लगती है।
(१०) ताऊ—पिता का बडा भाई।
(११) चाचा या काका—पिता का छोटा भाई।
(१२) चाची या काकी—पिता के छोटे भाई की स्त्री।
(१३) ससुर—पुत्रवधू के पति का पिता।
(१४) सासु—पुत्रवधू के पति की माता।
(१५) देवर—पति का छोटा भाई।
(१६) सौत—पति की दूसरी स्त्री।
(१७) सौतेली माँ—पिता की दूसरी स्त्री।
(१८) सौतेला पिता—माता का दूसरा पति।
(१९) दादा, बाबा आजा या पितामह—पिता का पिता।
(२०) दादी, आजी या पितामही—पिता की माता।
(२१) पौत्र—(पिता के) पुत्र का पुत्र।
(२२) प्रपौत्र—पौत्र का पुत्र।
(२३) नाती (या धेवता)—पुत्री का पुत्र।
(२४) परदादा (प्रपितामह)—दादा का पिता।
(२५) परदादी—दादा की माता।
(२६) चाची या काकी—पिता के छोटे भाई की स्त्री।
(२७) बडकी माई (ताई)—पिता के बडे भाई की पत्नी।
(२८) भतीजा—बडे या छोटे भाई का पुत्र।
(२९) भतीजी—बडे या छोटे भाई की पुत्री।
(३०) सौतेला भाई—सौतेली माता का पुत्र।
(३१) सौतेली बहिन—सौतेली माता की पुत्री।
(३२) देवरानी—देवर की स्त्री।
(३३) जेठ या भसुर—पति का बडा भाई।
(३४) जेठानी—पति के बडे भाई की स्त्री।
(३५) पति—स्त्री का व्याहता पुरुष।
(३६) पत्नी—व्याहता स्त्री।
(३७) नातिन पतोहू—पौत्र की स्त्री।
(३८) नातिन दामाद—पौत्र की पुत्री का पति।
(३९) भसुर—पति का बडा भाई।
(४०) भवहि (भयहु)—छोटे भाई की पत्नी।

(ख) सम्बन्धी या रिश्तेदार

भोजपुरी परिवार मे जो विभिन्न सम्बन्धी या रिश्तेदार हैं, उनकी गणना इस प्रकार से की जा सकती है। —

(१) फूफा—पिता के बहिन का पति।
(२) फूआ—पिता की बहिन।
(३) मौसा—माता की बहिन का पति।
(४) मौसी—माता की सगी बहिन।
(५) बहनोई—बहिन का पति।
(६) साला—पत्नी का भाई।

(७) साली—पत्नी की बहिन।
(८) सरहज—पत्नी के भाई (साला) की स्त्री।
(९) दामाद—पुत्री का पति।
(१०) समधी—विवाह मे वर और कन्या के पिता।
(११) मामा—माता का भाई।
(१२) मामी—माता के भाई की पत्नी।
(१३) सास—पत्नी की माता।
(१४) ससुर—पत्नी का पिता।
(१५) नाना—माता का पिता।
(१६) नानी—माता की माता।
(१७) ममेरा भाई—मामा का लडका।
(१८) भानजा (भगिना)—बहिन का पुत्र।
(१९) भानजी (भगिनी)—बहिन की पुत्री।
(२०) नाती—पुत्री का पुत्र।
(२१) नतिनी—पुत्री की पुत्री।
(२२) फुफेरा भाई—फुआ का लडका।
(२३) फुफेरी बहिन—फुआ की लडकी।
(२४) ममेरी बहिन—मा T की लडकी।
(२५) मौसेरा भाई—मौसा का पुत्र।
(२६) मौसेरी बहिन—मौसा की पुत्री।
(२७) चचिया ससुर—पत्नी का चाचा।
(२८) चचिया सास—पत्नी की चाची।
(२९) ममिया ससुर—पति का मामा।
(३०) ममिया सास—पति के मामा की स्त्री।
(३१) सरपुत—साला का लडका।
(३२) साढू—सगी बहिनो के पति आपस में साढू लगते हैं।
(३३) सढ़ुआइनि—साढू की स्त्री।
(३४) फुफुआ ससुर—पति का फूफा।
(३५) फुफुआ सास—पति की फूआ।
(३६) ननदोई—ननद का पति।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भोजपुरी समाज के सयुक्त परिवार के सदस्यो की सख्या चालिस तथा इस परिवार के सम्बन्धियों की सख्या पैंतीस से भी अधिक है। ससार के किसी भी देश के समाज का पारिवारिक सगठन शायद ही इतना विस्तृत और सुसगठित हो, जितना भोजपुरी प्रदेश मे पाया जाता है। भोजपुरी लोग "सघे शक्ति कलौ युगे", इस सिद्धान्त के पक्षपाती हैं। अतएव वे लोग सघ बनाकर रहना ही अधिक पसन्द करते है। अत ये लोग एक ही सयुक्त परिवार के सदस्यो के रूप में बड़े ही सुख और शान्तिपूर्वक निवास करते हैं। यद्यपि पाश्चात्य शिक्षा तथा सभ्यता के विध्वसकारी प्रभाव के कारण, यह सयुक्त परिवार की परम्परा क्रमश क्षीणता को प्राप्त होती जा रही है। फिर भी आज भोजपुरी प्रदेश मे कुछ सयुक्त परिवार ऐसे पाये जाते हैं, जिनके सदस्यो की सम्मिलित सख्या—पुरुष, स्त्री तथा बच्चो को मिलाकर—एक शतक को भी अतिक्रमण कर जाती है। ये सभी लोग बडी प्रसन्नता से एक साथ निवास और भोजन करते हैं। सम्मिलित परिवार मे रहने का जो सुख और सौन्दर्य है, उसे वे ही लोग जान सकते हैं, जिन्होने इसका अनुभव किया है।

संयुक्त परिवार के गुण

आज जब कि सयुक्त परिवार की प्रथा अकाल काल के गाल मे प्रवेश करने का प्रयास कर रही है, ऐसी स्थिति

मे इसके गुण-दोषो का सक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत करना कुछ अनुचित न होगा। सयुक्त परिवार की सबसे बडी विशेषता इसके सदस्यो की निश्चिन्तता है। इस परिवार के सभी सदस्य अपने को निश्चिन्त और सुखी समझते है। दुख, चिन्ता और कष्ट को गृहस्वामी को समर्पित कर, सभी लोग सुख की नीद सोते और चैन की वशी बजाते है। परिवार के 'कमासुत' सदस्य अपना मासिक वेतन 'मलिकार' को सुपुर्द कर, सुख और शान्ति की रोटी खाते है। उन्हे "घृत, लवण, तैल, तन्दुल" की चिन्ता नही सताती। यह सिर दर्द घर के मालिक का होता है कि वह उनके भोजन और वस्त्र —सभी सामग्री को उनके लिए 'मुहय्या' करे।

इस प्रथा से दूसरा लाभ यह है कि जो सदस्य अनपढ़ होने के कारण, अथवा शारीरिक दुबलता के हेतु, अर्थ का अर्जन नही कर सकते, उनके दिन भी इस परिवार के सदस्य होने के कारण, सुख पूर्वक कट जाते है। यदि परिवार के दूसरे व्यक्ति उनका भरण पोषण न करें, तो उनका जीवन दूभर हो जाय। सम्मिलित परिवार मे शरीर से समर्थ व्यक्ति खेती-बारी का काम करते है। शिक्षित युवक नौकरी करके अर्थ का उपार्जन करते हैं। खेती के कारण घर शस्य-सम्पदा से भरा रहता है। इस प्रकार परिवार के कुछ सदस्य भोजन के लिए अन्न का उत्पादन करते हैं और दूसरे सदस्य नौकरी के द्वारा धन कमा कर, परिवार की अन्य आवश्यकताओ की पूर्ति मे संलग्न रहते हैं। इस प्रकार सभी सदस्यो को भरपेट भोजन मिल जाता है और वे शान्ति से अपना जीवन बिताते हैं।

इस प्रथा की तीसरी विशेषता शारीरिक शक्ति का सचयन है। गाँवो मे "जिसकी लाठी उसकी भैंस" का सिद्धान्त आज भी प्रचलित है। खेत जोतते समय, या नहर का पानी खेतो मे ले जाने के अवसर पर तथा धान की रोपनी के समय, जन शक्ति की आवश्यकता पडती है। गाँवो मे जिसके घर दस 'जवान (युवा पुरुष) नही हैं, वह खेती का काम नही कर सकता। जिसके पास शारीरिक शक्ति का अभाव है, वह पगु तथा बेकार है। ऐसी परिस्थिति मे घरमे अधिक से-अधिक जवानो का होना अत्यन्त आवश्यक है। तभी खेती हो सकती है अन्यथा नहीं, कदापि नही।

सयुक्त परिवार की चौथी विशेषता उस अलौकिक आनन्द का अनुभव है, जो केवल ऐसे ही परिवार मे प्राप्त हो सकता है। घर मे माता, पिता, भाई, बहिन, पति, पत्नी, पतोहू, पौत्र और पौत्री सब एक साथ रहे, इससे बड़ा सुख और क्या हो सकता है। जीवन के सुखो का वर्णन करते हुए किसी कवि ने लिखा है कि --

'यदि रामा, यदि च रमा,
यदि तनयो विनय-श्री-गुणोपेत'।
तनयात् तनयोत्पत्ति',
सुरवर-नगरे किमाधिक्यम्॥

अत स्वर्ग का सुख यदि कहीं पृथ्वी पर मिल सकता है, तो वह केवल संयुक्त परिवार मे ही सम्भव है।

सयुक्त परिवार के दोष

सयुक्त परिवार का सबसे बडा दोष यह है कि यह परिवार के प्राय सभी सदस्यो को आलसी, निरुद्योगी और कर्त्तव्य-हीन तथा उत्तरदायित्व से रहित बना देता है। परिवार मे कमानेवाले एक ही दो सदस्य होते हैं। उन्हीं की 'कमाई' (अर्थोपार्जन) से घर का सारा खर्चा चलता है। परन्तु इन 'कमासुत' सदस्यो को छोड़कर, परिवार के अन्य सदस्य घर का कुछ काम नही करते है और दूसरो के अर्थोपार्जन पर आश्रित रहकर, घर मे सुख की नीद सोते हैं। इससे इनमें अकर्मण्यता बढती जाती है। ये निरुद्यमी हो जाते हैं। इनकी क्रिया-शीलता नष्ट हो जाती है और इस प्रकार वे पराश्रयी पौधो (Parasite) की तरह घरवालो को चूस कर अपना जीवन-यापन करते हैं। यदि बिना हाथ पैर डुलाये ही भरपेट भोजन आसानी से मिल जाया करे, तो कौन ऐसा मूर्ख होगा, जो काम करने का नाम लेगा?

सयुक्त परिवार का दूसरा दोष पारिवारिक कलह है। अंग्रेजी की एक कहावत है कि "खाली दिमाग में शैतान का डेरा होता है"।[१] सम्मिलित परिवार के अधिकाश सदस्य बेकार बैठे रहते हैं। वे काम करना भी नहीं चाहते। ऐसी स्थिति मे वे व्यर्थ की उल्टी सीधी बातें सोचा करते हैं। धन कमाने का नाम तो वे जानते ही नहीं, परन्तु चाहते वे यह हैं कि "कमासुत पूत" की ही भाँति घर मे मेरा आदर-सत्कार हो, जो असम्भव है। उनके स्वागत में तनिक भी कमी आयी कि

१ Empty mind is a devils worksohp

वे कलह का बीज बोने लगते हैं। कभी-कभी तो मार-पीट की नौबत आ जाती है और एक भाई दूसरे भाई की कपाल-क्रिया तक कर बैठते है।

दूसरा दोष स्त्रियो का पारस्परिक कलह है। पारिवारिक सघष तथा कलह की जड घर की स्त्रियो को ही समझना चाहिए। इसलिए सस्कृत के किसी कवि ने ठीक ही कहा है कि

बद्धमूलस्य मूल हि, महद् वैरतरो स्त्रिय

अर्थात् स्त्रियाँ वैर रूपी वृक्ष की दृढ जड (मूल) हैं। यह सूक्ति भोजपुरी स्त्रियो के विषय मे पूणतया चरितार्थ होती है। इन स्त्रियो को सयुक्त परिवार मे भोजन बनाने के अतिरिक्त कोई काम नही रहता। अत वे आपस मे लडती-झगडती रहती है और कभी-कभी तो 'झोटाझोटी भी कर बैठती है। वे अपने पति को 'फुटका' कर दूसरे भाई से अलग हो जाने का प्रयास करती है और इसमे प्राय सफलता प्राप्त कर लेती है। छोटी-छोटी बातो को लेकर वे घर मे सदा कुहराम मचाया करती है, जिससे परिवार की शान्ति भग हो जाती है। इन गृहलक्ष्मियो के सतत कलह के कारण, घर की लक्ष्मी (ऐश्वय) रूठकर चली जाती है। इस प्रकार चिरकालिक अशान्ति, कलह, झगडा और वैमनस्य के कारण, यह सयुक्त परिवार रौरव नरक के समान बनता जा रहा है।

सयुक्त परिवार का तीसरा दोष गृहस्वामी की पक्षपात-प्रियता है। गोस्वामी जी ने लिखा है कि —

'मुखिया मुख सो चाहिए,
खान पान सब एक।

अर्थात् घर का मालिक—मुखिया मुख के समान होना चाहिए, जो परिवार रूपी शरीर के सभी अगों-सदस्यो का समान रूप से पालन-पोषण करे। प्राचीन काल मे घर का स्वामी—मलिकार—इसी सिद्धान्त का पालन करता था, जिससे घर मे शान्ति और व्यवस्था बनी रहती थी। परन्तु आधुनिक सयुक्त परिवार का स्वामी पक्षपात की नीति का पालन करने लगा है। वह अपने पुत्रो को अधिक स्नेह, आदर और सन्मान प्रदान करता है, परन्तु अन्य भाइयो के पुत्रो को उसी दृष्टि से नही देखता। कभी-कभी वह परिवार के दूसरे सदस्यो के द्वारा अर्जित धन को अपने नाम से हडप लेता है और कभी समस्त चल-अचल सम्पत्ति का एक मात्र स्वामी अपने को घोषित कर देता है। ऐसी परिस्थिति मे वह मुखिया के धर्म से च्युत हो जाता है और गृहस्वामी के कर्त्तव्य का पालन करने मे अपने को नितान्त असमर्थ सिद्ध करता है। घर के मालिक की इसी पक्षपात प्रियता तथा कर्त्तव्यहीनता के कारण, सयुक्त परिवार का विशाल प्रासाद क्रमश भूमिसात् होता जा रहा है और इसमे आश्चर्य नही कि निकट भविष्य मे यह अतीत की वस्तु बन जाय।

(३) अनुच्छेद

सम्बोधन के विभिन्न प्रकार

सयुक्त परिवार के विभिन्न सदस्यो को भिन्न-भिन्न सम्बोधनो से पुकारा जाता है। इनमे से प्रधान सदस्यो के सम्बोधन के प्रकार का यहाँ उल्लेख किया जाता है।

पिता को प्रधानतया पिता जी, बाबूजी आदि कहकर पुकारा जाता है। कुछ लोग उसे चाचा या काका भी कहते हैं। उत्तरप्रदेश के पश्चिमी जिलो मे पिता को 'लाला' की सज्ञा दी जाती है।

भोजपुरी माता 'माँ' अथवा 'माई' के प्रिय नाम से पुकारी जाती है। उसे 'मतारी' (महतारी) भी कहा जाता है। परन्तु 'माँ' इस एकाक्षर अभिधान मे जो प्रेम, ममता और स्नेह भरा हुआ है, वह भला अन्यत्र कहाँ उपलब्ध हो सकता है।

घर का छोटा लडका (पुत्र) मुन्ना, लल्ला, बच्चा आदि सज्ञाओ से अभिहित किया जाता है। कुछ बडा होने पर उसे 'बबुआ' कहा जाता है। शास्त्रकारो ने लिखा है—बडे पुत्र के नाम का उच्चारण नही करना चाहिए। अत माता-पिता अपने ज्येष्ठपुत्र को 'नन्हकूराम', 'भइया' आदि नामो से पुकारते है। छोटा लडका 'छोटे बाबू' कहा जाता है। घर के माता-पिता तथा गुरुजन पुत्र का वास्तविक नाम लेकर उसे नही पुकारते, बल्कि इसके लिए वे किसी कल्पित नाम का सहारा लेते हैं जैसे—मालन जी, मूलन जी, बलदाऊ, कन्हैया, कन्हैयालाल आदि आदि।

इसी प्रकार से छोटी पुत्री मुन्नी, बच्चीं, लाली, लल्ली, ललिया, बबुई, बुचिया आदि नामो से पुकारी जाती है।

बडी होने पर उसे 'बेटी' कहा जाता है। भाई अपनी बडी बहिन को बहिनियाँ या दीदी और छोटी बहिन को 'बुचिया' कहकर बुलाता है। इसी प्रकार से बहिन अपने बडे भाई को 'भइया जी' और छोटे भाई को बबुआ कहती है।

भाई भाई भी आपस मे बडी शिष्टता से बाते करते है तथा उनका सम्बोधन शिष्टाचार से परिपूर्ण होता है। भाई अपने बडे भाई को 'भइया जी' और मझले भाई को 'भाई जी' कहकर पुकारता है। बडा भाई अपने छोटे भ्राता को 'बबुआ' कहता है। कभी-कभी उसे 'बच्चा' नाम से भी पुकारता है। ज्येष्ठ भ्राता को 'बडका भइया' मझले को 'मझला भइया' और कनिष्ठ को 'छोटका भइया' कहने की परम्परा भी पायी जाती है। किसी सामान्य जन को भी आदरार्थ 'भाई जी' के नाम से अभिहित किया जाता है।

पुत्र-बधू या पतोहू को घर की सास तथा जेठानी 'बहू' नाम से सम्बोधित करती है। ससुर अर्थात पति का पिता उसे 'बेटी' कहकर पुकारता है। नव विवाहिता स्त्री अपनी ससुराल मे जाने पर 'बधू' की संज्ञा प्राप्त करती है, परन्तु कुछ वर्षों के उपरान्त जब वह पुत्रवती हो जाती है, तब अन्य स्त्रियाँ उसके पुत्र का नाम लेकर 'अमुक की मां' कहकर उसे सम्बोधित करती है—जैसे ए जमुना के माई। चूकि माता अपने पुत्र को प्राय बबुआ कहकर पुकारती है। अत बहू को बुलाने के लिए वह इस शब्द मे 'ब' (हु) प्रत्यय लगा देती है, जो सम्भवत 'बधू' शब्द का अपभ्रंश रूप है--जैसे—ए बबुआ ब (हु)। कभी-कभी माता अपने पुत्र के नाम मे यह प्रत्यय (ब) लगाकर बधू का आह्वान करती है। यदि पुत्र का नाम जमुना हो, तो वह कहेगी—ए जमुना ब (हु) अर्थात् ए जमुना की स्त्री। परन्तु यह अधिकार बहू की सास, चचिया सास और जेठानी आदि—जो उससे पद मे बडी हैं—को ही प्राप्त है। घर की छोटी स्त्रियाँ उसे 'बहू' की ही उपाधि देगी।

बहू अपने पति के छोटे भाई को देवर जी कहती है और देवर अपने ज्येष्ठ भाई की पत्नी को भावज' 'भउजी' या भाभी कहकर पुकारता है। भावज और देवर का सम्बन्ध कुछ ऐसा है, जिसमे हास-परिहास, हँसी मजाक की भी थोडी गुजाइश होती है। अत देवर अपनी भावज को परिहास मे 'ए बडकी' कहकर पुकारते है। 'भाभी जी' मे भी कुछ विनोद की मात्रा छिपी हुई है। 'देवर' शब्द का अथ भाषाशास्त्रियो ने 'द्वितीयवर' अर्थात् दूसरा पति स्वीकार किया है। अत इस सन्दभ मे देवर को अपनी भाभी से परिहास करने का कुछ अधिकार मिल जाता है। भावज अपने देवर को 'बबुआ जी' कहकर पुकारती है, परन्तु यदि वह समानवयस्का हुई, तो 'देवर जी' के सम्मानित नाम से अभिहित करती है।

पतोहू अपने ससुर (पति के पिता) को बाबू जी या 'पिता जी' कहकर सम्बोधित करती है तथा सास को 'बाबूजीव' कहती है। कही-कही 'मइया जी' भी कहने की प्रथा है।

परिवार का स्वामी पिता होता है। अत पिता के पिता को 'बाबा' या 'दादा' कहते हैं। सम्मान के लिए इन शब्दो मे 'जी' प्रत्यय भी जोड दिया जाता है। दादा की स्त्री को 'दादी' कहा जाता है। कुछ लोग अपने जेठे भाई को भी 'दादा' की सज्ञा प्रदान करते हैं, परन्तु यह बँगला की नकल है। भोजपुरी प्रदेश में केवल पितामह को ही 'दादा' कहते हैं।

पिता का जेठा भाई 'बडका बाबू जी' के नाम से प्रसिद्ध है। उत्तरप्रदेश के पश्चिमी जिलो मे उसे 'ताऊ' कहते है और उसकी स्त्री 'ताई' कहलाती है। बड़का बाबू जी की पत्नी 'बड़की माई' है। इसी प्रकार से पिता का छोटा भाई 'चाचा जी' या 'काका जी' के नाम पुकारा जाता है और उसकी स्त्री 'चाची' या 'काकी' के नाम से प्रसिद्ध है। कोई-कोई इसे 'छोटकी माई' की सज्ञा प्रदान करते हैं।

बडे या छोटे भाई का लडका भतीजा और उसकी लडकी भतीजी कहलाती है। चूँकि ये पुत्र और पुत्री के ही समान है, अत बबुआ और बबुनी के नाम से भी अभिहित किये जाते हैं।

परिवार मे पति-पत्नी का आपस मे सबसे अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। अत आपस मे दैनिक वार्तालाप के लिए अन्य लोगो की अपेक्षा इन्हे सम्बोधनो की अधिक अपेक्षा रहती है। परन्तु धर्मशास्त्र का वचन यह है कि स्त्री को अपने पति का नाम कदापि नही लेना चाहिए। अत भोजपुरी पत्नी के सामने यह एक जटिल समस्या है कि वह अपने प्राणनाथ को किन शब्दो से सम्बोधित करे। इसके लिए वह अनेक प्रकार का उपाय करती है। कभी वह अपने पति को 'रउरा' या 'रउरा लोग' (आप लोग) शब्दो से सम्बोधित करती है और कभी 'सुनतानी जी' (क्या आप सुन रहे है?) से। कभी वह अपने पति का अभिप्राय 'उ लोग' कहकर प्रकट करती है और कभी 'मरद लोग' (पुरुष वर्ग), से। यदि सयोग से उसका पति घर का स्वामी भी है, तो 'मलिकार' (मालिक) शब्द से वह उनकी अभिव्यञ्जना करती है। सौभाग्यवश यदि वह स्त्री सन्तानवती है, तो अपने पुत्र या पुत्री का नाम लेकर अमुक का पिता कहकर पति के अभिधेयार्थ तक पहुँचती है। यदि पुत्र का नाम रामप्रसाद है, तो वह अपने पति को "रामू के बाबू जी" कहती है। कभी-कभी 'हमरा

बबुआ के बाबू जी' से भी इसी अभिप्राय की अभिव्यक्ति होती है। 'उनुकरा से' (उन लोगो से) भी पति का ही द्योतन होता है। वृद्धा स्त्रियाँ, अपने पति को 'बूढऊ' कहा करती है। परन्तु अपने इसी बूढे पति पर उसे इतना नाज होता है, जितना क्या किसी युवती को अपने नौजवान पति पर हो सकता है। नीचे के इस 'विरहा' मे पति के लिए 'बुढऊ' शब्द का प्रयोग पाया जाता है। सास और पतोहू मे भयकर युद्ध हो रहा है और वे आपस मे मूशलो (मूसर) के द्वारा एक दूसरे का सिर फोड रही है। इस पर क्रुद्ध होकर बूढी सास कहती है कि यदि आज मेरे 'बुढऊ' (बूढा पति) जीते रहते, तो मै इस पतोहू को घर से निकालकर जगल मे खदेड देती।

सासु पतोहिया मे लागल बा झगरवा,
कहली मुसरवा के मार।
आजु पतोहिया के हम बन दिहितीं,
जो जियत रहिते बुढऊ' हमार।।"

दूसरो के द्वारा, द्वार पर बैठे हुए पति के पास सन्देश पहुँचाना तो पत्नी के लिए अत्यन्त सरल काय है, क्योकि इस स्थिति मे 'पति' के अभिप्राय को द्योतित करनेवाले शब्दो की उसके पास कोई कमी या 'टोटा' नही रहता। परन्तु जब वह पति से आमने सामने, साक्षात् रूप से, वार्तालाप करने लगती है, तब वह सम्बोधनो के अत्यन्त अभाव के कारण "पके गौरिव सीदति" की दशा का अनुभव करने लगती है।

जिस प्रकार पत्नी के द्वारा पति का नाम लेना शास्त्रीय आदेश से निषिद्ध है, उसी प्रकार पति के द्वारा पत्नी का नामोच्चारण शिष्टाचार की दृष्टि से अशोभन तथा अनुचित माना जाता है। अत पत्नी जब सामने है तब पति उसे 'ए जी' कहकर सम्बोधित करता है। "सुनतारू जी" (क्या तुम सुन रही हो ?) के द्वारा भी प्रियतमा को पुकारा जाता है। परन्तु लडके जब बडे हो जाते है, तब इन स्नेह–वाची सम्बोधनोका प्रयोग नही किया जाता। उस समय पति अपनी पत्नी को 'ए बबुआ के माई' कहकर बुलाता है। कभी-कभी पुत्र का नामोच्चारण कर, उसकी माता को बुलवाता है— जैसे "गगा के मतारी के इहवाँ भेजिद।"

परन्तु आजकल की नयी रोशनी मे पैदा हुए एव पले मनचले छोकरे अपनी 'वाइफ' (पत्नी) का नाम लेकर उसे पुकारते है, जैसे विद्या, मजू या सुशीला जरा इधर आना। परन्तु कभी-कभी ये नवयुवक अपने हृदय के प्रेम-प्रवाह को प्रकट करने के लिए स्नेहवाची कल्पित नामो से अपनी पत्नियो का आवाहन (या आह्वान ?) करते है, जैसे प्रेम, शकुन, राधे, मनोज आदि। कहने की आवश्यकता नही कि यह प्रथा भारतीय शिष्टाचार के विरुद्ध है और हमारी सस्कृति के प्रतिकूल भी है।

दामाद का भोजपुरी समाज मे बडा आदर है। वह ससुर के लिए पुत्र के समान ही प्रिय होता है। अत उसे 'बबुआ जी', 'बच्चा जी' या 'पाहुन जी' के नामो से अभिहित किया जाता है। दामाद भी अपने ससुर को पिता के समान ही सन्मान प्रदान करता है। अत वह भी उन्हे 'बाबू जी' या 'पिता जी' कहकर और सास को 'माता जी' कह कर सम्बोधित करता है।

बहिन के पति को बहनोई कहते है। वह 'जीजा जी' या 'पाहुन जी' के नाम से भी पुकारा जाता है। बहनोई अपने बडे साले को 'भाई साहब' कहता है और छोटे साले का नाम लेकर पुकारता है। साले भी अपने जीजा से इसी तरह का बर्ताव करते है।

ननद के पति को 'ननदोई' की सज्ञा प्राप्त है। ननद की छोटी बहिने अपने 'ननदोई' की चुटकी लेती हैं और उनसे हास परिहास भी करती हैं।

एक सौत अपनी दूसरी सौत (सपत्नी) को बहिन कहती है, यद्यपि इनके हृदय मे सौत के प्रति स्नेह तथा सौहार्द्र का नितान्त अभाव होता है। इसी प्रकार से सौतेले भाई एक दूसरे को 'भाई' या 'भइया' कह कर पुकारते हैं। फूफा, मौसा और मामा के पुत्र रिश्ते मे सभी भाई-भाई लगते हैं। अत वे आपस मे 'भइया' कहकर व्यवहार करते है। परन्तु इनके सन्दर्भ मे यह शब्द औपचारिक ही समझना चाहिए। इससे उनके हृदय का स्नेह द्योतित नही होता।

(४) अनुच्छेद

अभिवादन की पद्धति

भोजपुरी सयुक्त परिवार मे परदादा, परदादी, दादा, दादी, पिता, माता, ताऊ, ताई, चाचा, चाची, काका, काकी, बडा भाई और भावज सभी श्रेष्ठ व्यक्ति हैं तथा यथोचित आदर तथा सन्मान के अधिकारी माने जाते है। अत इस परिवार के

छोटे सदस्यो—भाई, बहिन, पुत्र, पुत्री, पौत्र, पौत्री—का यह परम कर्त्तव्य है कि इन श्रेष्ठ पुरुषो का चरण-स्पर्श कर, प्रणाम करें। यह शुभ लक्षण है कि अभिवादन की यह परम्परा आज भी भोजपुरी समाज मे अक्षुण्ण रीति से चली आ रही है। जब कोई परिवार का व्यक्ति घर से बाहर जाता है अथवा परदेस से घर लौटता है तब वह अपने से बड़े परिवार के समस्त सदस्यो का पैर छूकर प्रणाम करता है। इसी प्रकार से उस व्यक्ति से छोटे सदस्य उसका चरणस्पर्श करते है। प्रणाम के उत्तर मे घर के बडे बूढे 'बेटा खुश रहो', 'तुम्हे पुत्ररत्न उत्पन्न हो' 'खूब विद्या पढो' ऐसा आशीर्वाद देते हैं। बूढी स्त्रियो को अपने बच्चो के विवाह की बडी चिन्ता रहती है। अत उन्हे 'बच्चा तोर बिआह होखा' (तुम्हारा विवाह हो) यही आशीस देती है। जीवन मे विद्या का अध्ययन तथा धन का उपार्जन करना इन वृद्धाओ के लिए विवाह से आगे कुछ भी प्रयोजन नही रखता। अत वे बच्चो को पढ़ने और कमाने का आशीर्वाद न देकर, विवाह का ही आशीष देती है, मानो जीवन मे विवाह के अतिरिक्त और कुछ है ही नही।

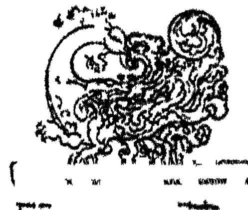
परन्तु, गाँव मे जो बूढे बन्धु-बान्धव है, जो स्ववर्गीय पडोसी हैं तथा पद मे जो बडे हैं उन्हे लोग हाथ जोड़कर "गोड लागत बानी बाबा" अथवा "पाव लागत बानी दादा" कहकर दूर से ही प्रणाम करते है। इनके चरण-स्पर्श की आवश्यकता नही समझी जाती, क्योकि ये लोग पद मे बडे होते हुए भी निजी परिवार के व्यक्ति नही है। दूर के रिश्ते-दारो से भी प्रणाम की यही पद्धति व्यवहार मे लायी जाती है। गाँव के पण्डित, पुरोहित तथा गुरु को 'प्रणाम पुरोहित जी' अथवा "प्रणाम पण्डित जी" कहा जाता है। घर मे आये हुए समान वयस्क वाले ननदोई, बहनोई और दामाद को घर के लडके 'नमस्कार जीजा जी' कहकर अभिवादन करते हैं। कहने का आशय यह है कि अपने परिवार के श्रेष्ठ जनो का चरण स्पर्श, गाँव के गुरु-पुरोहित को प्रणाम और समान आयु वाले सम्बन्धियो और मित्रो को नमस्कार करने की परम्परा प्रचलित है। तथाकथित नीच वर्ग के लोग जब आपस मे मिलते हैं तो 'जै राम जी की' अथवा 'राम राम जी' कहकर एक दूसरे का अभिवादन करते है। कुछ लोग 'नमस्ते' और 'जयहिन्द' के द्वारा भी अपने हृदयगत भावो को प्रकट करते हैं। सन्यासियो को 'नमो नारायणाय' कहकर अभिवादन किया जाता है। देव मन्दिरो मे देव-प्रतिमाओ के सामने, हाथ जोड़कर और सिर झुकाकर प्रणाम करते है। कुछ भक्त जन मन्दिर की फर्श पर लेट कर 'साष्टाङ्ग दण्डवत' करते हैं, परन्तु यह परम्परा केवल मन्दिरो तक ही सीमित है।

जब घर की कोई बहू अपनी सास, जेठानी अथवा गाँव की कोई श्रेष्ठ वृद्धा के प्रति अपना सम्मान प्रकट करना चाहती है, तो अभिवादन के रूप मे वह अपने आँचल से उसके चरणो को पाँच बार स्पर्श कर प्रणाम करती है। आशीर्वाद के रूप मे सास या जेठानी उसे "माँगि, कोखी भरल रहू", "पूते, भतारे नीके रहू" अर्थात् तुम पति और पुत्र से सम्पन्न होकर सुखपूवक रहो—का वरदान देती है। नारी जीवन मे पति और पुत्र का बडा ही महत्त्व है। इसीलिए, जब कभी बहू प्रणाम करती है, तब उसे वृद्धा स्त्रियाँ यही आशीर्वाद देती हैं। जिस प्रकार श्रेष्ठ स्त्रियाँ बच्चो को "बेटा जीय, जाग अम्मर होख" के अतिरिक्त उनके विवाह होने का आशीस देती हैं, उसी प्रकार वे बहू को पुत्रवती होने का वर देती हैं।

पण्डित, साधु और सन्यासी प्रणाम करने पर "मगल हो" "कल्याण हो", 'भगवान् सुखी बनाये रखें' की कामना करते हैं। प्रणाम और आशीर्वाद की यह पद्धति केवल इसी देश मे, और विशेषकर भोजपुरी प्रदेश मे ही पायी जाती है, जो भारतीय सभ्यता और सस्कृति के अनुरूप है। हमारे शास्त्रकारो ने लिखा है कि जो व्यक्ति श्रेष्ठ जनों का अभि-वादन करता है, उसकी आयु, बुद्धि, यश और शक्ति दिनोदिन बढ़ती जाती है।

"अभिवादनशीलस्य, नित्य वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते, आयुर्प्रज्ञा यशो बलम्।।

भोजपुरी समाज मे इस सिद्धान्त का पालन नियमित रूप से किया जाता है।



अध्याय ४

संयुक्त परिवार के सदस्यो मे पारस्परिक सम्बन्ध

○○

भोजपुरी परिवार, सयुक्त परिवार का ज्वलन्त उदाहरण है। यद्यपि आधुनिक युग मे अनेक परिवर्तनो के कारण, इसकी शृखला की कडियाँ टूट-टूट कर बिखरने लगी है, फिर भी, गाँवो मे आज भी दादा-दादी, माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-बहिन, पुत्र-पौत्र आदि सभी एक ही घर मे सम्मिलित रूप से रहते और सुखपूर्वक अपना जीवन बिताते है। ये अपने सुख और दु ख के दिनो को एक साथ बाँट कर, उसका आनन्द लेते अथवा कष्ट उठाते है।

सस्कृत की एक सूक्ति के अनुसार, जहाँ बहुत से लोग रहते है, वहाँ झगडा होना स्वाभाविक है और यदि दो व्यक्ति भी रहे, तो कुछ (कटु) बातचीत तो होती ही रहती है —

'वादे बहूना कलह, भवेत् वार्ता द्वयोरपि'

इसी नियम के अनुसार सयुक्त परिवार मे कुछ झगडा अवश्य होता है, परन्तु सयुक्त रूप से एक साथ रहने का जो अलौकिक आनन्द है, वह उस विवाद के विषाद को नष्ट कर देता है।

भोजपुरी सयुक्त परिवार पितृमूलक प्रधान समाज है। अर्थात् इस समाज मे पिता ही घर का मालिक और कर्त्ता-धर्ता है। उसकी ही आज्ञा सर्वोपरि माना जाती है और घर के अन्य सभी प्राणी, उसकी आज्ञा का बडे ही आदर के साथ पालन करते है। भोजपुरी सयुक्त परिवार मे साधारणतया पाँच पीढी तक के व्यक्ति एक साथ घर मे निवास करते है, जिनमे दादा-दादी, माता-पिता, भाई-बहिन, पुत्र-पौत्र, सास-ससुर, ननद-भावज, आदि प्रधान है। सयुक्त परिवार के इन सदस्यो मे, कुछ लोगो का सम्बन्ध तो आपस मे बडा मधुर होता है परन्तु कुछ व्यक्तियो का आपसी व्यवहार बडा कटु होता है। अत इन सम्बन्धो के आधार पर, परिवार के इन सदस्यो को दो श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है। यह दु ख का विषय है कि मधुर सम्बन्ध की अपेक्षा कटु सम्बन्धवाले सदस्यो की सख्या ही अधिक है।

(क) मधुर सम्बन्ध

(१) माता-पुत्र
(२) माता-पुत्री
(३) पिता-पुत्र
(४) भाई-बहिन
(५) पति-पत्नी

(ख) कटु सम्बन्ध

(१) सास और पतोहू
(२) ननद और भावज
(३) देवर और भावज
(४) भसुर और भवहि (भयहु)
(५) ससुर और पुत्रवधू
(६) सौत और सौत

प्रथम परिच्छेद

(क) मधुर सम्बन्ध

(१) अनुच्छेद—माता और पुत्र

पुत्र-जन्म के अवसर पर माता और पिता को कितने अधिक आनन्द का अनुभव होता है, इसका वर्णन करना कठिन है। सोहर के गीत ऐसे विषयो से भरे पडे है। भोजपुरी प्रदेश मे पुत्र, घर का दीपक अथवा प्रकाश माना जाता है। सस्कृत के एक नाटककार ने तो यहाँ तक लिखा है कि पुत्र से हीन व्यक्ति का घर शून्य तथा अन्धकारमय होता है—"अपुत्रस्य गृह शून्यम्।" ऐसी दशा मे, पुत्र के प्रति माता और पिता का प्रगाढ प्रेम होना स्वाभाविक ही है। यह ध्यान देने की बात है कि लोकगीतो

मे पिता और पुत्र के प्रेम की चर्चा बहुत ही कम पायी जाती है, परन्तु माता और पुत्र के स्वाभाविक प्रेम का वर्णन इन लोकगीतो मे अनेकश उपलब्ध होता है।

शीतला माता से प्रार्थना—शीतला माता के गीतो मे पुत्र के प्रति माता का अकृत्रिम प्रेम उमडता हुआ दिखलाई पडता है। जब कोई छोटा बच्चा चेचक के रोग से पीडित होकर बेचैन होता है, तब उसकी माता व्याकुल होकर इस रोग की अधिष्ठात्री देवी शीतला माता का आवाहन करती है। वह उनसे करुण-स्वरो मे प्रार्थना करती हुई अपने प्राण प्यारे पुत्र के जीवन की भिक्षा माँगती है। नीचे की इन पक्तियो मे पुत्र के प्रति माता की कितनी ममता, कितनी वेदना और कितनी व्याकुलता छिपी हुई है।[1]

> "आँचरा पसारि भीखी माँगिले बालाकावा के माई,
> हमारा के बालाकावा भीखीं दी।
> मोरी दुलारी हो मइया,
> हमरा के बालाकवा भीखीं दी।"

कोई व्यक्ति देवी-देवताओ से अन्न, धन, सोना-चाँदी, धन-वैभव तथा सुख-सम्पत्ति की याचना करता है परन्तु यह दु खिया माता, अपने रोगी बालक के स्वास्थ्य-लाभ के लिए प्रार्थना करती है—"मोरी मन गर्बार्नि हो मइया, हमरा के बालाकावा भीखी दी"—केवल इस एक पक्ति मे कितनी ममता, कितना व्यामोह, कितना स्नेह दिखाई पड़ता है। इस गीत मे माता की ममता लिपटी पडी है।

शीतला माता शीघ्र आकर बालक को नीरोग करने मे जब विलम्ब करती है, तब माता अत्यन्त व्याकुल हो जाती है और वह आतुरता के साथ किसी राही से पूछती है कि क्या तुम ने शीतला माता का आते हुए देखा है।[2] परन्तु जब वह राही नकारात्मक उत्तर देता है, तब माता अत्यन्त अधीर हो उठती है, पुत्र के कष्ट से उसका हृदय पिघलने लगता है और वह शीतला से निवेदन करती है कि ए माता! मेरे पुत्र को आरोग्य प्रदान कर, मेरे ऊपर कृपा करो —'मइया दाया ना [illegible]"

कौशिल्या का राम के प्रति अकृत्रिम स्नेह

राम के प्रति कौशिल्या का अनन्य प्रेम प्रसिद्ध ही है, जिसे आदि कवि वाल्मीकि ने आदर्श रूप मे चित्रित किया है। इस अलौकिक प्रेम की झाँकी इन गीतो मे भी प्राप्त होती है। राम वन जाने के लिए तैयार हैं। वे अपनी माता के पास वन जाने की आज्ञा माँगने के लिए जाते है। परन्तु पुत्रवत्सला कौशिल्या बड़े असमजस मे पड जाती हैं। वह कहती है कि "बेटा! तुम मेरे हृदय मे निवास करते हो और लक्ष्मण मेरे आँखो की पुतली हैं। अत वन जाने के लिए मैं तुम्हे कैसे आज्ञा दे सकती हूँ।"[3]

> "राम त मोर करेजवा, लखन मोरी पुतरिय हो।
> आरे रामा, सीता रानी केरा चुरिया,
> मैं कइसे बन भाखे हो।।"

माता की ममता ने इस सोहर मे मूर्तिमान् रूप प्राप्त किया है। वन मे निवास करनेवाले राम को भोजन कराने के लिए माता कौशिल्या पूडी और दूध की बनी खीर को लेकर, उनके पास जाती हैं। परन्तु राम का कुछ पता नही चलता। वह लता, पुष्पो, और वृक्षो से राम का पता पूछती फिरती हैं, परन्तु कुछ पता नही चलता। कितनी व्याकुलता है। लोककवि कहता है कि[4]—

> 'घिउवा के काढ़ेली पुड़िया,
> त दूधवा के जाउरि कइली हो।

१ डॉ० उपाध्याय भोजपुरी लोक गीत, भाग १, पृ० २६०।
२ वही, पृ० २६२।
३ वही, भाग १, ।
४. वही, भाग १

लिहली आँचर तर ढाँकि,
रमइया हेरइ निकसेली हो।।"

राम के वन जाते समय कौशिल्या को जो हार्दिक दु ख हुआ, उसकी अभिव्यक्ति इन पक्तियो मे बडे ही सुन्दर रूप से हुई है। कौशिल्या कहती है कि ए कैकेयी ! तुमने यह अच्छा काम नही किया। राम को वन भेजकर तुमने मेरे बसे बसाये हुए घर को उजाड दिया।

"आछा काम ना कइलू ए कैकेयी।
आछा काम ना कइलू।
हमार बसल भवनवा उजरलू ए कैकेयी,
आछा काम ना कइलू।।"

सस्कृत के एक स्तोत्र मे लिखा है कि पुत्र भले ही कुपुत्र हो जाय, परन्तु माता कभी कुमाता नही होती —

"कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति"

माता का पुत्र के प्रति स्वाभाविक प्रेम होता है। यह प्रेम स्फटिक के समान स्वच्छ और गगा जल के समान निमल है। इसमे कृत्रिमता का कोई स्थान नही होता। पत्नी भी पति से प्रेम करती है, परन्तु उसका प्रेम स्वाथ की आधार-शिला पर अवस्थित रहता है। परन्तु माता का दिव्य स्नेह वह प्रेम है, जिसमे कृत्रिमता का प्रवश लेश मात्र तक नही होता। भोजपुरी मे एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि माता पुत्र के स्वास्थ्य की ओर सदा दृष्टि रखती है, परन्तु स्त्री स्वाथ से प्रेरित होकर सदा उसकी मोटरी (धन अथवा अन्न की गठरी) की ओर देखती है।

"मइया निहारे पोटरी।
कि जइया निहारे मोटरी।"

पुत्र के प्रति माता की ममता वह दिव्य और अलौकिक विभूति है, जो ससार मे मिलना कठिन है।

(२) अनुच्छेद—माता और पुत्री

यद्यपि माता का प्रेम पुत्र के प्रति अगाध होता है, परन्तु पुत्री के प्रति भी उसका प्रेम कुछ कम नही होता। पुत्री के जन्म के समय उसकी माता को बडा अपमान सहन करना पडता है, विवाह के अवसर पर वर को ढूढने की परेशानी के साथ ही धन की बरबादी भी करनी पडती है। फिर भी पुत्री के प्रति माता का प्रेम अत्यन्त प्रगाढ होता है।

पुत्री के प्रति माता का प्रेम

गवना के गीतो मे पुत्री के प्रति माता का प्रेमरूपी पारावार उमडता हुआ दिखलाई पडता है। जब पुत्री अपनी ससुराल जाने को उद्यत होती है, तब उसके वियोग मे माता, पिता और भाई सभी करुण क्रन्दन करने लगते है। पिता के अनवरत अश्रुपात से गगा मे बाढ आ जाती है, और माता के कारुणिक प्रलाप से चारो दिशाओ मे अधेरा छा जाता है। बिचारे भाई की आँखो से आँसुओ के लगातार गिरने से धोती तक भीग जाती है[1] —

"बाबा के रोवले, गगा बढ़ि अइली,
आमा रोवले अन्होर ए।।
भइया के रोवले चरन-धोती भीजे,
भऊजी नयनवो ना लोर ए।।"

इस गीत से पुत्री के प्रति माता की अगाध ममता, पिता का अलौकिक प्रेम तथा भाई का अकृत्रिम स्नेह प्रकट होता है। यह गीत क्या है—करुणा तथा प्रेम की पयस्विनी है, जिसमे माता, पिता और भाई—सभी बहे चले जा रहे है।

१ डॉ० उपाध्याय भोजपुरी लोक गीत, भाग १, पृ० २७१ (द्वि० स०)।

पुत्री जब ससुराल चली जाती है, तब उसकी माता सदा इस बात का ध्यान रखती है कि मेरी पुत्री सदा सुखपूर्वक जीवन बितावे। वह नौकरानी से अपनी समधिन के पास सन्देश भिजवाती है कि "वह न तो मेरी पुत्री को गाली दें और न उसकी ताडना करे। जब मेरी पुत्री कच्ची नीद अर्थात् गाढ निद्रा मे सो रही हो, तो उसे कभी भी न जगावे।"[1] इस सन्देश से माता का अपनी पुत्री के प्रति प्रगाढ प्रेम का पता चलता है। भोजपुरी माता का यह सन्देश कुछ-कुछ वैसा ही है जैसा सन्देश यशोदा माता ने कृष्ण के लिए देवकी के पास भेजा था।

जब कोई भोजपुरी भाई अपनी बहिन को ससुराल पहुँचा कर, अपने घर लौटकर आता है तब उसकी माता व्याकुल होकर उससे पूछती है कि तुम मेरी प्राणप्यारी पुत्री को कहाँ छोड आये? इस पर पुत्र उत्तर देता है कि हे माता! जिसकी वह स्त्री थी, वही उसे ले गया है।

"आरे काहाँ छोडलऽ काहाँ ए बबुआ।
बाबावा रे हमारी।।
आरे जेकर घरनी ए आमा,
से हो ले ले जाई।।"

जब पुत्री को ससुराल मे कष्ट होने लगता है, जब उसे भोजन तक के लाले पडने लगते है, तब वह अपने हृदय की आधि और व्याधि को अपनी प्रेमी माता को छोडकर, किसी दूसरे व्यक्ति से नही कहना चाहती और इसीलिए बार-बार अपने को मायका बुला लेने के लिए उससे प्रार्थना करती है।

कोई भाई अपनी बहिन की ससुराल गया है। माता को आशा थी कि उसका पुत्र उसकी प्यारी पुत्री को वापस लेकर लौट आवेगा। अत वह मकान के सबसे ऊँचे भाग-छत पर चढ कर, अपनी पुत्री के आने की प्रतीक्षा बडी आतुरता से कर रही है।[3] परन्तु पुत्र बहिन को बिना लिये अकेले घर लौट आता है। इस पर उसकी माता क्रुद्ध होकर कहती है कि तुम तो बहुत ही बडे कपूत निकले, जो ससुराल मे रोती हुई बहिन को छोडकर चले आये। आज मेरे पति यदि जीवित होते तो उसे हँसते-खेलते घर ले आते।[4]

"पूत हो तुम भयउ कपूते,
रोअत बहिना आये छाडि रे।
जो मोरी धियवा के बाबल होई तें,
हँसत खेलत लेइ अवते रे।।"

पार्वती का कष्ट

साधारण भोजपुरी बेटी की ही नही, बल्कि पार्वती भी जब अपनी ससुराल जाती हैं, तब उनकी भी यही दुर्गति होती है। वे अपनी ससुराल के कष्टों को माता मैना से निवेदन करती हुई कहती है कि ए माता! भँगेडी शिव के लिए सील पर भाँग पीसते-पीसते मेरा हाथ घिस गया है और धतूरा को मलते-मलते मेरा हृदय व्याकुल हो उठा है —

"भँगिया पीसत ए आमा, हाथवा खिआइले।
धतूरा मलत ए आमा, जियरा अकुलइले।।"

१ लाते जनि मरिहे, पाराते जनि गारी।
काँचे निंदियाँ मत जगइह मोरी दुलारी।।
—डॉ० उपाध्याय- भोजपुरी लोक गीत, भाग १, पृ० १६०।

२ सदेसो देवकी सो कहियो।
हौं तो धाय तुम्हारे सुत की,
कृपा करत ही रहियो। सक्षिप्त सूरसागर

३ ऊँचवा चढ़ि चढ़ि माता निरेखे,
मोरी धिया हौ केति दूरि रे।।
प० रामनरेश त्रिपाठी - ग्राम गीत, पृ० ४१५।

४ दुर्गाशकर सिंह . भो० लो० गी० क० र०, पृ० ३०७।

ससुराल के इन दारुण दु खो को पुत्री अपने माता से न कहे, तो और किससे कहे ? ससार मे उससे प्यारा भला उसके लिए कौन व्यक्ति है ?

पुत्री का दु ख

कोई बहिन अपने भाई से ससुराल के अतिशय कष्टो का निवेदन करती हुई कहती है कि ए भइया ! मुझे 'खाँची भर बतन मलना पडता है, बीसो आदमियो का भोजन बनाने के लिए दिया जाता है, प्रतिदिन कई पसेरी (पाँच किलो) गेहूँ पीसना पडता है। रसोई बनाकर घर के सभी लोगो को पहिले भोजन कराना पडता है। अन्त मे सब प्राणियो के भोजन करने के पश्चात् ही मुझे भोजन मिलता है। तिस पर भी अन्त मे केवल दो-तीन लिट्टी—मोटी रोटी। परन्तु ए भइया ! इस दु ख को मेरी माता से कभी मत कहना, नही तो मेरे दु खो को सुनकर उसकी छाती फट जायेगी।[1]

"इ दु ख जनि कहिय, माई के अगवा हो ना।
माई छतिया बिहरि मरि जइहे हो ना।।

यह गीत क्या है, पुत्री के प्रति माता की प्रगाढ ममता की मार्मिक कथा है, जिसे पढकर पाठको का भी हृदय द्रवीभूत हो जाता है।

(३) अनुच्छेद—पिता और पुत्र

लोकगीतो मे पिता और पुत्र के प्रेम का उल्लेख बहुत ही कम मिलता है। विवाह के लिए जानेवाला कोई पुत्र, अपनी माता से कहता है कि मै तो पिता जी का आज्ञाकारी सेवक बनूगा और मेरी स्त्री तुम्हारी दासी बनेगी।[2] आदश पुत्र की चर्चा करते हुए एक गीत मे कहा गया है कि सुपुत्र तो वही है, जो पिता की सेवा करे।[3] शास्त्रो मे जीवन मे प्राप्त होनेवाले छ सुखो का वर्णन करते हुए पुत्र का आज्ञाकारी होना आवश्यक सुख बतलाया गया है।[4] एक अन्य गीत मे तो यहाँ तक उल्लेख मिलता है कि पिता की सेवा मे सलग्न पुत्र ही वास्तविक पुत्र है, अन्यथा दुष्ट पुत्र के उत्पन्न होने से क्या लाभ है।[5] महाभारत मे तो यहाँ तक लिखा है कि पिता ही धर्म है, पिता ही स्वर्ग है और पिता की सेवा ही परम तपस्या है। पिता के प्रसन्न रहने पर समस्त देवता प्रसन्न रहते है तथा आशीर्वाद और मगल प्रदान करते है।[6]

(४) अनुच्छेद—भाई और बहिन

भाई और बहिन के दिव्य प्रेम का जो भव्य रूप इन गीतो मे प्राप्त होता है, वह अन्यत्र देखने को नही मिलता। सच तो यह है कि माता और पुत्र के विशुद्ध प्रेम के अनन्तर भाई और बहिन के प्रेम को ही आदर्श की कोटि मे रखा जा सकता है। बहिन के हृदय मे अपने भाई के प्रति अगाध प्रेम भरा पडा है और भाई भी अपनी बहिन को प्राणो से भी अधिक प्यार करता है।

१ रामनरेश त्रिपाठी—ग्राम गीत, पृ० ४१५।

२ हमहूँ होखबि ए आमा बाप के सेवइत,
धनि होइहे दासी तोहार ए। डॉ० उपाध्याय—भोजपुरी लोक गीत, भाग १, पृ० १४०।

३. रामनरेश त्रिपाठी ग्राम गीत, पृ० ४८३।

४ अर्थागमो नित्य मरोगिता च,
प्रिया च भार्या प्रिय वादिनी च।
वश्यश्च पुत्रो र्थकरी च विद्या,
षट् जीव लोकस्य सुखानि राजन्।।

५ पूत त उ ह जो पिता को सेवें,
नाहीं त पाजी के जनमे से का भा।

६. पिता धर्मः, पिता स्वर्गः, पितैव परम सुखम्।
पितरि प्रीतिमापन्ने, प्रियन्ते सर्वदेवता ।।

यह कुछ कम आश्चर्य की बात नही है कि जहाँ सस्कृत साहित्य मे भाई और बहिन के पारस्परिक प्रेम का प्राय अभाव पाया जाता है, वहाँ लोक साहित्य मे इस नैसर्गिक प्रेम की प्रबल तरगिणी प्रवाहित होती है, जिसमे अवगाहन कर मानवा का मन पवित्र तथा निमल हो जाता है। सस्कृत वाङमय मे यम और यमी के एक अपवाद को छोडकर भाई और बहिन के प्रेम का दूसरा उदाहरण सम्भवत उपलब्ध नही होता। परन्तु लोक साहित्य ऐसे सैकडो दृष्टान्तो से भरा पडा है जिसमे भाई ने अपनी बहिन की इज्जत तथा प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए अपने प्राणो की भी आहुति दे डाली और बहिन ने भी भाई के प्रेम के लिए अपना सर्वस्व त्याग दिया।

गवना के गीतो मे—बहिन की बिदाई के अवसर पर—भाई अपनी प्राण प्यारी बहिन के कारण बिलखता हुआ दिखाई पडता है। उसके करुण क्रन्दन से, आँखो से आँसुओ की अनवरत झडी से धोती तक भीग जाती है।[1]

भाई का प्रेम

सोहर के एक गीत मे कोई बहिन भावज के द्वारा दिये गये कष्टो का उल्लेख अपने भाई से करती है, जिसे सुनकर वह अत्यन्त कष्ट को प्राप्त करता है। भाई ससुराल जानेवाली अपनी बहिन की पालकी को रोककर, उसके पहिनने के लिए रेशमी वस्त्र प्रदान करता है और उसके 'खोइछा' मे मुहर रख देता है। परन्तु दुष्टा भावज अपनी ननद का फटही लुगरी–पुराना वस्त्र पहिनने के लिए देती है और खोइछा मे बनउर (बेनउर)—कपास का बीज—देकर उसे बिदा करती है। अत प्रेमी भाई अपनी बहिन से आग्रह करता है कि पुराने वस्त्र का परित्याग कर, रेशमी साडी को ही पहिन कर अपनी ससुराल जावो—

"ए बहिनी खोलिद तू फटही लुगरिया,
बनउर केरा खोइँछा हो।
ए बहिनी पहिरहु लहँगा पटोरवा,
मोहर भरि खोंइछा हो।"

इस गीत मे जहाँ भावज की दुष्टता दिखाई पडती है वहाँ भाई के स्वाभाविक प्रेम का पारावार हिलोर मारता हुआ दृष्टिगोचर होता है।

रोपनी के एक गीत मे कोई भाई, बहिन से ससुराल के कष्टो को सुनकर अत्यन्त दु खी दिखाई पडता है। वह कहता है कि मैंने सूर्य के समान प्रकाशमान और चन्द्रमा के समान सुन्दरी अपनी बहिन को विवाह मे दिया था। परन्तु आज वह ससुराल के कष्टो के कारण, जलकर कोयला के समान काली पड गयी है।[2]

"चाँद सुरुज अस बहिनी सकलपो हो ना।
बहिनि जरि जरि भइली कोइलिया हो ना॥
जरि जरि भइली कोइलिया हो ना।"

इस पक्ति के "जरि जरि भइली" शब्दो मे कितनी व्यञ्जना भरी पडी है, कितनी विषम वेदना की अभिव्यक्ति हुई है। 'जरि जरि' शब्द की पुनरावृत्ति से पता चलता है कि वह (बहिन) घर के कठोर श्रम और पारिवारिक कष्टों से जलाकर काली कर दी गयी है।

एक दूसरे गीत मे बहिन के प्रति भाई के प्रेम की गहरी अभिव्यञ्जना हुई है। भाई बहिन का सन्देशवाहक है। वह अपनी बहिन के कष्टो को माता से कहता है, जो उसके कष्टो को सुनकर उसे ससुराल से बुला लेती है तथा उसे आराम से अपने घर मे रखती है। भाई ही बहिन का बल और सम्बल है। वह उसकी सर्वदा तथा सर्वथा सहायता करने को उद्यत है और उसकी समस्त आवश्यकताओ की पूर्ति करने का प्रयास करता है। बहिन के दु खी जीवन में उसकी माता और भाई ही उसके अवलम्बन हैं। ये ऐसे ध्रुवतारा के समान हैं, जिनकी ओर वह सदा निश्चिन्तता और निश्चितता के साथ सहायता के लिए देखा करती है। भोजपुरी मे एक कहावत प्रसिद्ध है कि "फूटल बर्तन ठठेरा के घर जाला, अवरु दु:खिया बिटिया नैहर जाले।" वास्तव मे मायका ही किसी दु खी बेटी का आश्रय तथा अवलम्ब है।

१ डॉ० उपाध्याय—भोजपुरी लोक गीत, भाग १, पृ० ५६-६०।
२ वही, भाग १, पृ० ४४५।

बहिन का अकृत्रिम प्रेम

यद्यपि भाई और बहिन का पारस्परिक प्रेम अत्यन्त शुद्ध, निमल, अकृत्रिम और समानरूप से उभयनिष्ठ होता है, फिर भी भाई के प्रति बहिन के प्रेम की तुला कुछ झुकती हुई दृष्टिगोचर होती है। बहिन की प्रगाढ तथा प्रखर प्रेम की धारा मे भाई का प्रेम तिनके के समान बहता हुआ दिखाई पडता है। भाई के ऊपर जब कोई विपत्ति आ पडती है, तब उसकी चिर सहचरी धमपत्नी भी ससुराल मे उसे आश्रय नही देती। उसे पहिचानती तक नही। ऐसी दशा मे वह अपनी बहिन के पास जाता है, जो उसे आश्रय और अवलम्बन प्रदान करती है। जीवन की विषम परिस्थितियो मे, गाढे दिनो मे, विपत्ति की अवस्था मे, बहिन ही काम आती है और वह उसे सहायता प्रदान करती है।

भाई के दर्शन मात्र से प्रसन्नता

बहिन अपने भाई को केवल देखने से ही कितनी आह्लादित और कितनी प्रसन्न होती है, इसका उल्लेख एक गीत मे बडी ही सुन्दर रीति से हुआ है। कोई भाई अपनी बहिन से मिलने के लिए उसकी ससुराल आ रहा है। बहिन अपने घर की अटारी पर चढकर उसे दूर से ही आते हुए देखती है। उसे देखते ही बहिन के हृदय का पारावार उमड पडता है। उसमे आनन्द की हिलोरे आने लगती है। जब गाँव-घर की स्त्रिया उससे पूछती है कि आज तुम्हारे यहाँ कौन आया है, तब वह अत्यन्त उल्लास तथा प्रसन्नता के साथ कहती है कि [1]—

"कहेली कवन बहिनी हुलसी के ना।
आजु मोर भइया अइले हा।।
आजु मोर हवलदार अइले हा।
आजु मोर सुबिदार अइले हा।।
आजु मोर भइया अइले हा।
आजु मोर भइया अइले हा।।"

उपर्युक्त लोक-गीत मे "आजु मोर भइया अइले हा" इस पक्ति की एक बार ही नही बल्कि तीन-चार बार आवृत्ति से ही बहिन के हृदय के हुलास तथा आनन्द का पता चलता है। वह अपने अन्तरतम मे निहित अतिशय प्रसन्नता को प्रकट करने के लिए बार-बार कहती है कि आज मेरा भाई आया है। गाँवो मे पहिले और आज भी, हवलदार और सूबेदार के पद को सुशोभित करना सम्मान का कारण माना जाता था। अत बहिन अपने प्राणप्रिय भाई को गौरव प्रदान करने के लिए, उसकी तुलना सूबेदार और हवलदार से करती है।

इतना ही नही, वह अपनी पडोसी स्त्रियो से तथा जोगिन और भाटिन से कहती है कि तुम लोग आज आनन्द के गीत गावो। आज मेरा हृदय प्रसन्नता से फूला नही समाता, क्योकि आज मेरा भाई मेरे घर आया हुआ है। गीत इस प्रकार है [2]—

"आरे आरे गोतिनि, भाटिनि सब केहु गावहु हो।
मोरा जियरा भइल बा हुलास, बीरन मोर आइल हो।
आरे आरे सासु गोसाईं, करहिया चढ़ावहु हो।
आजु मोरा जियरा हिलोरे, बीरन मोर आइल हो।"

इस गीत की "मोरा जियरा भइल बा हुलास" पक्ति मे प्रसन्नता का सागर उमडता दिखाई पडता है।

बहिन अपने भाई के आगमन पर उसे सबसे सुन्दर तथा स्वादिष्ट भोजन कराना चाहती है। वह 'चलनी' से आटा 'चाल' कर, उसके लिए पूडी (लुचुई) पकाती है। मूग की दाल बनाती है और 'पालकी' का साग तैयार करती है। बासमती चावल—जो चावलो मे सबसे स्वादिष्ट होता है—का भात पकाती है। इन सभी भोज्यपदार्थो को वह अपने भाई के लिए सोने की थाली मे परोस कर खाने के लिए देती है। इतना ही नही, वह इसके बाद गर्म घी की धारा को प्रभूतमात्रा मे उसकी दाल

१. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोक गीत, भाग १।
२ वही, भाग १।

मे डालती है। इसमे सन्देह नही कि बहिन के इस अतिशय सम्मान तथा आदर से उस भोजन का स्वाद शतांधिक हो गया होगा। गीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है[1]—

"आटावा जे चालि चालि, लुचुई पकवली हो ना।
बहुअरि खोटि लिहली पालकी के सागवा हो ना।
बहुअरि रीन्ही लिहली मुगिया के दलिया हो ना।
बहुअरि बासमती चाउर के भातवा हो ना।
सोने के थरियवा मे जेवना परोसली हो ना।
रामा ऊपर से तातल घीव के धारवा हो ना॥"

मायका से भाई जब अपनी बहिन के पास कुछ दिनो तक नही जाता, तब उसकी सास और ननद यह ताना मारती है कि तुम्हे कोई पूछता नही। तुम उपेक्षिता हो। इतने ही मे भाई 'बँहगी' पर अपन बहिन के लिए सामान लाद कर और घडे मे घी भर कर के लिये चला आता है। अपने भाई से मिलने के लिए बहिन इस प्रकार उसके पास दौडती है, जिस प्रकार से गाय अपने बछडे के लिए दौडकर जाती है।

"आगे आगे आवे बँहगिया, पीछे घीव गागर हो।
ओहि पीछे भइया असवारवा, बहिनी के देस जाले हो।
जइसे धउरे गइया त अपना बछरुआ खातिर हो।
ओइसे धउरली बहिनियाँ त अपना भइयवा खातिर हो॥"

इस गीत मे भाई-बहिन के अकृत्रिम प्रेम की तुलना गाय और बछडे के प्रेम से की गयी है।

आदर्श प्रेम—लोकगीतो मे बहिन और भाई के प्रेम का चित्रण आदर्श रूप मे किया गया है। कोई व्यक्ति संसार से विरक्त होकर, अपनी स्त्री के दुष्ट व्यवहार से ऊबकर, सन्यासी हो जाता है। वह देशाटन तथा भिक्षाटन करता हुआ अपनी बहिन के यहाँ भिक्षा के लिए जाता है। बहिन अपने भाई की इस दुर्दशा को देखकर अत्यन्त दुःखित होती है और रोने लगती है। वह उससे आग्रहपूर्वक सविनय प्रार्थना करती हुई कहती है कि ए भइया! अब तुम इस जोगी के वेश—सारंगी और गूदडी—को छोड दो। तुम मेरे घर पर ही स्थायी रूप से रहो और यही धूनी रमाओ। इस गीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है —

"रोवेली बहिनी पटोरवे पोंछि लोरवा,
आरे ई त हउएँ बीरना हमार ए जदुबंसी।
× × ×
छोडि देहु भइया हो सरंगी, गुदड़िया,
आरे हमरी दुअरिया, धुनिया रमाव, ए जदुबंसी॥"

जिस प्रकार पुत्र भले ही कुपूत हो, परन्तु माता कुमाता नहीं हो सकती, उसी प्रकार भाई अपनी बहिन को भले ही भूल जाय, उसके प्रति अनुचित व्यवहार करे, परन्तु बहिन अपने भाई को कभी भूल नही सकती। वह उसके सुख और दुःख में सदा साथ देनेवाली है। पति के प्रति पत्नी का जो प्रेम होता है, उसमे स्वार्थ का अंश थोडा हो सकता है परन्तु बहिन का प्रेम, निःस्वार्थ, निश्छल और गंगा की धारा के समान पवित्र होता है।

गोपीचन्द का उदाहरण

राजा गोपीचन्द जब संसार को छोड कर जोगी बन जाते हैं, तब अपनी माता के निषेध करने पर भी वे बहिन से मिलने के लिए उसके घर जाते है। भिक्षा माँगने पर घर की दासी उनका तिरस्कार करती है। परन्तु उनकी बहिन उन्हे पहिचान लेती है और वह दौडकर सोने की थाली ले आती है और उसमे उनका पाँव पखारती है —

१ डॉ० उपाध्याय—भोजपुरी लोकगीत भाग १ पृ० ४४४।

"आतना वचन बहिना सुनही ना पवली।
सोने के थरियवा गोडवा धोवेली हो राम।"

इतना ही नही, वह अपने भाई के भोजन के लिए "आरावा" (बासमती) चावल का भात और अरहर की दाल को बनाकर वडे प्रेम से गोपीचन्द को भोजन कराती है।

"आरावा चउरवा अवरु रहुरी के वलिया,
अमृत भोजन करवली हो राम।"

वास्तव मे यदि भोजन सुस्वाद हो और भोजन को प्रेम से परोस कर स्नेहपूर्वक खिलाया जाय, तो घाघ के अनुसार इस मत्यलोक मे ही ससार मे ही स्वग का सुख मिल सकता है।

बहिन अपने भाई के कष्टो को कथमपि सहन नही कर सकती। उसके दु खो को देखकर, उसका हृदय विदीण हो जाता है। भोजपुरी मे एक कहावत प्रसिद्ध है कि **"भाई अवरू केहुनी के घाव ना सहाला"** अर्थात् भाई का कष्ट और 'केहुनी' (हाथ का मध्य भाग) की चोट असहनीय होती है। इसी एक लोकोक्ति मे बहिन का भ्रातृस्नेह उमडता हुआ दिखलाई पडता है। यो तो बहिन के लिए सभी भाई समान रूप से प्रिय है, परन्तु छोटा भाई सर्वाधिक प्रिय होता है।

बहिन और भाई के अकृत्रिम, नि स्वाथ और स्वाभाविक प्रेम की गाथा—अलौकिक तथा दिव्य है। आधुनिक स्वाथ-परता के इस युग मे, ऐसे स्वर्गीय प्रेम का प्राप्त करना तो कठिन है ही, उसका दशन भी नितान्त दुलभ है।

(५) अनुच्छेद—पति और पत्नी

भारतीय सस्कृति मे पति और पत्नी का सम्बन्ध अटूट माना जाता है। हमारे देश मे विदेशो की भाँति, विवाह एक सामाजिक ठेका (सोशल कान्ट्रेक्ट) नही है, प्रत्युत यह परमपवित्र धार्मिक कृत्य है और दो हृदयो का मिलन समझा जाता है। भारत म पति अपनी पत्नी के बिना अपूण है और पत्नी के जीवन मे, पति के अभाव मे, सुखद परिवार की कोई कल्पना नही की जा सकती। अत पति और पत्नी का सम्बन्ध अभिन्न तथा अविच्छेद्य है।

पत्नी का पति प्रेम

लोक-गीतो मे पति और पत्नी के सम्बन्ध का जो चित्रण हुआ है, वह अत्यन्त सुन्दर तथा मनोरम है। इन गीतो मे आदश गार्हस्थ्य जीवन की बाँकी झाँकी हमे देखने को मिलती है। आधुनिक जीवन की विषमता का प्रवेश, इसमे बहुत कम पाया जाता है। दाम्पत्य जीवन का मधुर तथा मधुमय स्वरूप, झूमर के गीतो मे उपलब्ध होता है। कोई पति परदेस जाने के लिए, जीविकोपार्जन के हेतु, पूर्व देश को प्रस्थान करने के लिए उद्यत है। परन्तु उसके वियोग को सहने मे असमर्थ उसकी स्त्री, इन्द्रदेव से प्रार्थना करती है कि हे देव! बरसो। खूब बरसो। एक प्रहर रात्रि से ही जल बरसाना प्रारम्भ कर दो, जिससे मेरे पति के प्रस्थान करने का समय वर्षा के कारण बीत जाय और वह परदेस न जा सके। झूमर की पक्ति है [1]—

"बरिसहु ए देव! आरे घरी रे पहर राति।
आरे पिया के पायेतवा घरे बेलमावहु रे की॥"

किसी स्त्री का पति खेती के कामो मे इतना व्यस्त रहता है कि खेत और खलिहान मे ही वह अपना डेर डाले रहता है। घर पर आने का उसे अवकाश ही नही मिलता। वह तेली की बैल की तरह सदा काम मे जुटा ही नही रहता, बल्कि इन बैलो को कोल्हू मे जोतकर वह तेल पेरने का काम भी करता है। अत उनकी दु खी स्त्री, कोल्हू के बैल से निवेदन करती है कि हे कोल्हू के देवता! तुम जुआठ (काष्ठ दण्ड) तोड दो, जिससे मेरे पति के सिर मे गहरी चोट लग जाय। तब वह अपनी चोट की दवा कराने के लिए, उस पर हलदी और चूना लगवाने के लिए तो घर अवश्य ही आयेगा। इस प्रकार उससे मिलने का अवसर प्राप्त हो सकेगा। गीत है—

"गोड तोरा लागीले सोरही के बछवा,
जुअठिया तुरि घरवा आव हो राम।
जुअठिया के टूटले कपरो नु फूटिहे,
घइया लठावे घरवा अइहे हो राम॥"

---

१. डॉ० उपाध्याय 'भोजपुरी लोक गीत, भाग १, पृ० ३२१।

उपर्युक्त गीत मे पत्नी की पति-समागम की प्रबल लालसा स्पष्टतया प्रतीत होती है। उसकी यह अभिलाषा कितनी उत्कट है। प्रेमी पति के साहचय की कामना स्त्रियो के हृदय मे सन्निहित रहती है। कोई नायिका तो यहाँ तक कहती है कि मेरे घर मे आज आग लग गयी और घर जलकर नष्ट हो गया। यह बहुत ही अच्छा हुआ। इसी बहाने से, आग बुझाने के लिए, मुझे कुएँ से पानी भरकर, प्रियतम के हाथो मे पानी से भरा घडा देने का अवसर तो मिला।

"आगि लागि घर जरिगा, बड़ सुख कीन।
पिय के हाथ घरिलवा, भरि भरि दीन॥"

इसी प्रकार अपने प्रियतम के सतत साहचय की कामना करनेवाली कोई प्रियतमा कहती है कि अहीर की जाति सबसे अच्छी होती है, क्योकि उसकी स्त्री को अपने पति के साथ खेत मे घास निराने का सदा अवसर तो मिलता है। यह कल्पना कितना मनोरम है।

"नीक जाति अहिरिन की, खुरपी हाथ।
आपन खेत निरावे, पतिके साथ॥"

पत्नी का उत्कट प्रेम

कोई पति व्यापार करने के लिए 'पुरुबी बनिजिया' के लिए जाने को उद्यत है। परन्तु उसकी स्त्री, उसके साथ चलने के लिए आग्रह करती है। पति रेल से रहित मार्ग के कष्टो को उसे बतलाता है और साथ मे चलने के लिए निषेध करता है। परन्तु वह पतिपरायणा स्त्री, कहती है कि मै मार्ग के सभी कष्टो को झेल लूँगी। मैं भूख और प्यास—सभी कुछ सह लूगी। मै अपने भाई और बाप को भी छोड दूँगी और आपके साथ जोगिनी बन कर चलूँगी।[1]

"भूख मैं सहबों, पियास मैं सहबों,
पान डारबि बिसराई।
तोहरे संगे पिया जोगिनि होइबों,
ना संग बाप न भाई॥"

भोजपुरी नारी का उपर्युक्त कथन, सीता के वचनो का स्मरण कराता है, जो वन-गमन के समय उन्होने राम से कहा था।[2]

"कुस किसलय साथरी सुहाई, प्रभु सग मंजु मनोज तुराई।
कन्द, मूल, फल, अमिय, अहारू, अवध-सौध-सत सरिस पहारू।
छिन छिन प्रभु पद कमल बिलोकी, रहिहौं मुदित, दिवस जिमि कोकी।
पाँय पखारि बैठि तरु छाँहीं, करिहउँ बाउ, मुदित मन-माहीं॥
सम महि तृन-तरु पल्लव डासी, पाँय पलोटिहि सब निसि दासी।
मोहि मग चलत, न होइहि हारी, छिन छिन चरन - सरोज निहारी॥"

पति का पत्नी के प्रति प्रेम

लोक-गीतो मे पत्नी के प्रति पति का भी प्रेम कुछ कम नहीं दिखाई पड़ता। भोजपुरी स्त्री का पति-प्रेम, आदर्श कोटि मे पहुँचा हुआ है। परन्तु इसके साथ ही पति का स्नेह भी कुछ कम नहीं है। पति-पत्नी, परिवार रूपी रथ के दो पहिये है, जिसके सहयोग से ही यह गाडी सुचारु रूप से चल सकती है।

सस्कृत साहित्य तथा लोक-साहित्य मे पति की मृत्यु पर, पत्नी के करुण प्रलाप का वर्णन अनेक काव्यो मे हुआ है। परन्तु स्त्री के मरने पर पति का करुण रुदन, सम्भवत अज-विलाप के एक अपवाद को छोड़कर, अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता। परन्तु भोजपुरी लोकगीतो मे भी ऐसा वर्णन पाया जाता है। किसी परदेसी पति की पत्नी गगा मे डूबकर, जलसमाधि को प्राप्त

१ लेखक का निजी सग्रह।
२. अयोध्याकाण्ड, दोहा ६६-६७।

हो गयी है। परदेस से लोटने पर जब पति को इस दुखद समाचार का पता चलता है, तब वह विह्वल होकर रोने लगता है और कहता है कि [1]—

"कहवाँ गइलू सत के तिरियवा।
बिहरे मोरे छतिया नु रे की।।"

पत्नी की मृत्यु पर प्रियतम के हृदय का विदीण होना स्वाभाविक ही है। किसी स्त्री के द्वारा अँगूठी खो जाती है। पहिले तो उसका पति उसे भला-बुरा कहता है, परन्तु बाद मे अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करता हुआ रोने लगता है।[2]

राम—जो भोजपुरी प्रदेश मे पति के आदश रूप मे चित्रित किये गये है—को सीता के बिना समस्त ससार सूना दिखाई पडता है। क्योकि उनके द्वारा प्रवर्तित राजसूय यज्ञ मे पत्नी का प्रतिनिधित्व अब कौन करेगा? एक सोहर मे राम को सीता के अभाव मे अपना जीवन ही व्यथ जान पडता है। वे कहते है कि[3] —

"सीता तोरे बिना जग अँधियार,
त मोर जीवन अकारथ हो।।"

झूमर के एक गीत से पति-पत्नी के प्रगाढ प्रेम का परिचय प्राप्त होता है। एक दूसरे गीत मे पत्नी के प्रति स्वाभाविक प्रेम के कारण, पति अपने माता-पिता के निषेध करने पर भी, अपनी नौकरी को छोडकर, परदेस से लौट आता है। कोई नव विवाहिता पत्नी अपनी ससुराल आकर माता और पिता का स्मरण कर उदासीन तथा दुखी हो जाती है। इस पर उसका पति सान्त्वना देते हुए उससे कहता है कि मै भूख लगने पर भोजन, प्यास लगने पर पानी दूगा। तुम्हे अपने हृदय मे लगा कर रखूँगा। तुम अपने माता-पिता को अब भूल जावो।[4]

"भुखिया में भोजन खिअइबो,
पिअसिया में पानी देबो हो।
धनिया रखबो में हियरा लगाई,
बबैया के बिसरावहु हो।।"

पत्नी के मायके जाते समय, उसके वियोग से दुखी पति, उससे निवेदन करता है कि तुम अपने आभूषणो को मेरे पास छोड जावो, जिन्हे देखकर मैं अपने हृदय को सान्त्वना दूगा। इस प्रकार, इन गीतो मे पति-पत्नी के पारस्परिक प्रेम का बडा ही सुन्दर चित्रण उपलब्ध होता है।

(ख) कटु सम्बन्ध

(२) परिच्छेद

भोजपुरी परिवार मे कुछ ऐसे भी सदस्य होते हैं, जिनका पारस्परिक सम्बन्ध मधुर न होकर अत्यन्त कटु होता है। इसका मुख्य तथा सबसे प्रधान कारण सयुक्त परिवार है। चूकि भोजपुरी परिवारो—विशेषकर गावो—मे सयुक्त परिवार के सभी सदस्य एक ही घर मे रहते है, अत उनमे पारस्परिक कटुता का होना स्वाभाविक ही है। जहाँ सास-पतोहू, ननद-भावज, सौत-सौत के स्वार्थों मे टक्कर लगता है, जब उनकी आर्थिक स्थिति आपस मे टकराने लगती है, जब पारस्परिक प्रेम का अभाव दीखने लगता है, तब झगडा और झझट का होना कोई असम्भव नही है। यही कारण है कि परिवार के विभिन्न सदस्यो मे कटु सम्बन्ध स्थायी रूप से स्थापित हो जाता है। इन सदस्यो को निम्नाकित श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है—

(१) सास और पतोहू, (२) ननद और भावज, (३) देवर और भावज, (४) भसुर और भवहि, (५) ससुर और पतोहू, (६) सौत और सौत।

अगले पृष्ठो मे इन सभी कटु सम्बन्धो का सक्षिप्त वणन प्रस्तुत किया जाता है।

१. लेखक का निजी सग्रह।
२ लेखक का निजी सग्रह।
३ डॉ० उपाध्याय भोजपुरी लोक गीत, भाग १, पृ० ३४।
४. वही, पृ० ४०१।

(१) अनुच्छेद—सास और पतोहू

लोक-गीतो मे सास और पुत्रवधू—जिसे भोजपुरी मे पतोहि या पतोह कहते है—[illegible] और दुष्ट दिखलाया गया है। इसके प्रधानतया तीन कारण है—(क) माता के प्रति पुत्र [illegible] आंशिक रूप मे ही सही—अपकर्षण या अपहरण। (ख) गृहस्वामिनी के रूप मे माता के अधिकार [illegible] देना। (ग) माता के आर्थिक अधिकार मे कमी।

(क) माता पुत्र को जन्म देती है। उसे अपने गर्भ मे नौ मास तक रख कर, [illegible] सहती हुई पुत्र को पैदा करती है। गॉवो मे जहाँ न तो 'मिडवाइफ' की कोई व्यवस्था है और न किसी प्रसूतिगृह (मैटर्निटी होम) का प्रबन्ध है, वहाँ बच्चो का प्रसव कितना कष्टकारक होता है, इसे भुक्तभोगी माता ही अनुभव कर सकती है। इस प्रकार जो माता तक आशा और निराशा की दोला मे दोलायमान होते हुए तथा असीम प्रसव वेदना को [illegible] अपने पुत्र का मुह देखती है, तब हृदय मे आनन्द और उल्लास की कल्लोले के उठने [illegible] आशाओ के प्रासाद—चाहे अन्त मे वे हवाई महल ही क्यो न सिद्ध हो जायँ—निर्मित होने लगते है। अमेरिका [illegible] की भाँति न तो वृद्धा स्त्रियो के लिए भारत मे कोई 'सोशल सेक्योरिटी एक्ट' है और न तो 'ओल्ड एज पेंशन' अथवा बुढापे मे आर्थिक सहायता।

अत ऐसी दशा मे माता अपने इसी नवजात शिशु (पुत्र) को अपना 'सोशल सेक्योरिटी' समझती है और इसे ही अपने बुढापे की लकडी (सहारा) मानती है। वह अपना सम्पूर्ण स्नेह और ममता इस बालक को प्रदान करती है। भोजपुरी प्रदेश मे निर्धनता का साम्राज्य होने के कारण, गरीब माता बडे ही कष्टो से अपने बालक को पालती है। वह अपना स्तनपान करा कर, नही नही, अपना खून पिलाकर उसका पालन-पोषण करती है। निर्धन पिता जो भी घर कमाकर ले आता है माता उसी मे गुजर-बसर करती है। जाडे के दिनो मे जब छोटा बालक चारपाई पर बिछायी गयी गुदडी को मलमूत्र से [illegible] और गीला कर देता है, तब माता अपनी साडी के आँचल पर उसे सुलाती है कि कही मेरे बच्चे को सर्दी न लग जाय। जब वह अन्न खाने योग्य हो जाता है, तब वह अपना पेट काट कर अपने बालक का पेट भरती है।

जब बालक कुछ बडा होकर पढने के लिए स्कूल जाने लगता है तब वहाँ खाने के लिए [illegible] 'भुजना' (भूना अन्न) देती है, जिससे वह अपनी क्षुधा को शान्त कर सके। वह बालक को चावल का भात खिलाती है पर [illegible] 'माँड' पीकर भूखे पेट रात काट देती है। कभी-कभी तो अपने बालक को स्कूल मे पढाने के लिए उसे अपना गहना भी बेचना अथवा 'गिरवी' रखना पडता है। कहने का साराश इतना ही है कि भोजपुरी माता बच्चे के जन्म से लेकर उसकी शिक्षा की समाप्ति तक, उसे अत्यन्त कष्ट से पालती-पोसती, खिलाती-पिलाती और पढाती-लिखाती है।

ऐसी दशा मे जब उसका शिक्षित पुत्र, नौकरी करके अर्थ की प्राप्ति करने लगता है तब माता की यह इच्छा अत्यन्त स्वाभाविक है तथा उसकी यह आशा अतिशय उचित ही है कि मेरा सुयोग्य पुत्र, अब मेरा भरण पोषण करेगा, मुझे सुखपूर्वक रखेगा और मुझे जीवन मे खाने-पीने का कष्ट नही देगा। माता की समस्त ममता, उसका सारा स्नेह, उसका पूरा प्रेम, उसका सम्पूर्ण व्यामोह अपने पुत्र के प्रति होता है।

इसी समय माता के जीवन मे एक जोर का झटका लगता है, उसके हृदय को एक गभीर चोट पहुँचती है। जिस काल मे वह स्वय को अपने पुत्र के सम्पूर्ण प्रेम, भक्ति तथा श्रद्धा की अधिकारिणी समझती है—और उचित रूप मे ही समझती है—उसी समय उसके योग्य तथा 'कमासुत' पुत्र का विवाह हो जाता है और उसके घर मे एक नव विवाहिता पुत्रवधू का प्रवेश हो जाता है। ऐसी परिस्थिति मे पुत्र का यह धर्म होना चाहिए कि वह अपनी पत्नी को प्रेम प्रदान करता हुआ अपनी माता के चरणो मे श्रद्धा और भक्ति के प्रसून अर्पित करे। परन्तु वह नव परिणीता सुन्दरी के तथाकथित रूप-लावण्य—चाहे वह काली-कलूटी ही क्यो न हो—पर मोहित होकर, उसके 'गुणो' पर लट्टू हो जाता है। उससे अगाध प्रेम करने लगता है और अपनी माता—उस माता की, जिसने अपना खून पिलाकर उसे पाला पोसा है—की उपेक्षा करना प्रारम्भ कर देता है। उस ''लायक'' लडके को इस बात की चिन्ता अब बिलकुल नही रहती कि माता के प्रति भी उसका कोई कर्त्तव्य होता है।

भोजपुरी मे एक कहावत प्रचलित है, जिसमे कोई ''सपूत'' या कपूत कहता है कि मैं अपनी माता को मारूँगा, अपनी बहिन को गाली दूगा, परन्तु अपनी प्राणप्रिया पत्नी को अपने कन्धो पर चढाकर घुमाऊँगा, उसका आदर करूँगा —

''माई के मरबों, बहिनि गरिअइबों,
मेहरी के कान्हे चढ़इबों, गोबिन्दे, गोबिन्दे।।''

इसी सूक्ति से आधुनिक "सपूतो" की मनोवृत्ति का कुछ अनुमान किया जा सकता है। विवाह होते ही, पुत्र के द्वारा माता का अनादर तथा उपेक्षा प्रारम्भ हो जाती है। अब वह अपनी प्रेयसी को कण्ठहार बना लेता है। चूकि पतोहू के घर मे आने के कारण ही, माता की उपेक्षा प्रारम्भ होती है, अत सास (पुत्र की माता) अपनी पुत्रवधू से द्वेष करने लगती है और उसका तिरस्कार करने एव उपेक्षा करने के अतिरिक्त उसकी भर्त्सना करना, उसे प्रताडित करना, भोजन, वस्त्रादि का कष्ट देना, किम्बहुना मुष्ठिप्रहार तथा दण्डप्रहार से उसको आघात पहुँचाना, उसके दैनिक जीवन की चर्या बन जाती है।

(ख) सास और पुत्रवधू मे कटु व्यवहार का दूसरा कारण है—वधू के द्वारा सास के अधिकारो को चुनौती देना। पुत्रवधू के आने के पहिले, माता ही गृहस्वामिनी होती है। वह घर के सभी काम-काज को स्वय देखती है। यदि घर मे नौकर हो, तो उनको उचित आदेश देकर उन्हे विभिन्न कामो मे लगाती है। माता रसोईघर का प्रबन्ध देखती है, घर की दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति करती या करवाती है। कहने का आशय यह है कि गृहस्वामिनी होने के नाते, घर मे उसका ही प्रभुत्व विराजमान रहता है।

परन्तु पुत्रवधू के गृह मे प्रवेश करते ही, वह गृहस्वामिनी के महनीय पद से क्रमश च्युत होने लगती है और अन्त मे उसका यह पद पतोहू के द्वारा छीन लिया जाता है। घर के छोटे-छोटे बालक तथा नौकर-चाकर, जो आज्ञा 'माताजी' से लिया करते थे, अब 'बहूजी' से माँगने लगते है। घर के लोग तथा पास-पडोस की स्त्रियाँ भी अब नयी बहू से मिलना तथा बातचीत करना अधिक पसन्द करती है। अत बूढी 'माताजी' की घर और बाहर—दोनो स्थानो मे, उपेक्षा प्रारम्भ हो जाती है। अब तक माता (सास) गृहस्वामिनी थी। परन्तु अब पतोहू घर की मालकिन बन जाती है। इस प्रकार सास के अधिकारो को पतोहू चुनौती देने लगती है। यही कारण है कि सास अपनी बहू से चिढने लगती है और उसे अपने अधिकारो का अपकर्षण करनेवाली समझने लगती है।

(ग) सास और पतोहू के झगडे का तीसरा कारण आर्थिक है। विवाह के पहिले पुत्र जो कुछ धन अर्जित करता है, उसे वह पिता अथवा माता के चरणो मे अर्पित कर देता है। माता अपनी इच्छा के अनुसार उसे खच करती है। उसके इस अधिकार मे कोई बाधा पहुँचानेवाला नही होता। परन्तु विवाह के पश्चात् पुत्र अपनी कमाई का, यदि सर्वस्व नही तो अधिकाश भाग, अपनी प्रियतमा के चरणो मे समर्पित कर देता है। ऐसी दशा मे, माता को आर्थिक कठिनाइयो का सामना करना पडता है। वह 'कमासुत' पुत्र माता को इतना रुपया भी नही देता, जिससे वह घर का खर्चा सुचारु रूप से चला सके। कभी-कभी उसे भोजन तथा वस्त्र के भी लाले पडने लगते है।

अपनी क्रमश गिरनेवाली आर्थिक दशा के कारण, तथा अर्थाभाव से उत्पन्न होनेवाले शारीरिक कष्टो के कारण, सास का हृदय अपने पतोहू से 'फटने' लगता है। दोनो के प्रेम मे दरार पडने लगती है और धीरे-धीरे यह मनमोटाव वीभत्स रूप धारण कर लेता है।

सास यह निश्चित रूप से समझ बैठती है—और उसका यह समझना कुछ अश तक उचित भी है—कि पतोहू ही मेरे आर्थिक कष्टो का एकमात्र कारण है। वह अपने पुत्र के आचरण पर ध्यान तक नही देती, बल्कि पतोहू को ही कोसती है। आजकल सास और पुत्रवधू मे जो सघष है, जो झगडा है, उसके ये ही तीन प्रधान कारण है। इन कारणो का उदाहरण सहित सक्षिप्त वर्णन आगे प्रस्तुत किया जायेगा।

सास तथा बहू मे पारस्परिक सम्बन्ध

लोक-गीतो मे सास और पतोहू के सम्बन्धो का जो चित्रण किया गया है, वह अत्यन्त, कटु, विषम और क्रूरतापूण है। इसीलिए भोजपुरी गीतो मे सास को 'दरुनिया' (दारुण अर्थात् कष्ट देनेवाली) की उपाधि से विभूषित किया गया है। नवागत वधू को कष्ट देना, उसको दिनरात कोल्हू के बैल की तरह कामों मे जोते रहना, सास अपना धम समझती है। इन्ही दु खो का वर्णन करती हुई कोई पुत्री अपने पिता से कहती है कि ए पिता जी ! पूव देश के लोग अर्थात् उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिलो के निवासी, बडे ही निर्दयी और क्रूर होते है। वे उलट-पुलट कर अर्थात् सभी प्रकार से अपनी स्त्रियो को दु ख देते है। रात मे मुझे जौ और गेहूँ को जाँत मे पीसना पडता है और दिन मे चर्खा चलाकर बारीक सूत कातना पडता है। जब मै रात मे सोयी रहती हूँ, तभी मुझे कच्ची नीद मे ही, सास के द्वारा जगा दिया जाता है। चाहे घर मे कोई काम करने को रहे अथवा न रहे।[१]

१ डॉ० उपाध्याय भोजपुरी लोक गीत, भाग १, पृ० २१४।

"पूरब के लोगवा निरमोहिया ए बाबा,
उलटी, पुलटी दुख देई।
रतिया पिसावे जव, गेहुँआ ए बाबा,
दिनवा कतावे झीन सूत।।
सूतलि सेजिया उठावे ए बाबा,
आँगाना घरेले मब छूछ।।"

कहने की यह आवश्यकता नही कि उपयुक्त गीत मे वर्णित विभिन्न दुखो का देनेवाले लोगो से अभिप्राय, प्रधानतया सास तथा पति से है।

सास के द्वारा बहू को दिये गये कष्टो का एक दूसरा चित्रण देखिये, जिसका वर्णन लोक कवि ने बड़े ही मार्मिक रीति से किया है। बहिन, ससुराल मे उससे मिलने के लिए आये हुए अपने भाई से, अपने दारुण दुखो का वर्णन करती हुई कहती है कि ए भइया! मुझे यहाँ कई मन अन्न ओखली मे कूटना पडता है। कई मन गहूँ और चना भी पीसना पड़ता है। कई मन चावल और आटा से भोजन बनाना पडता है। इसके बाद सास मुझसे एक 'खाँची' (एक टोकरी भर) बर्तन मँजवाती है। इतना ही नही, वह घर से बाहर स्थित कुएँ से पानी भरने के लिए भेजती है जो अत्यन्त गहरा है।

"कई मन कूटी भइया, कई मन पीसीला हो ना।
भइया कई रे मन रीन्हीं ला रसोइया हो ना।।
सासु खाँची भर बासना मँजावेली हो ना।
सासु पनिया पाताल से भरावेली हो ना।।"

यह गीत क्या है करुण रस का महाकाव्य है, जिसमे सास की दुष्टता, निर्दयता तथा कठोरता का बड़े ही मार्मिक शब्दो मे हृदयस्पर्शी वर्णन किया गया है।

'दरुनिया' सास अपनी बहू के हृदय को, अपने व्यग्य बाणो से ही केवल नही बेधती बल्कि डण्डे से उसकी पीठ-पूजा भी करती है। छोटे छोटे अपराधो के लिए भी वधू को सास की ताडना का पात्र बनना पड़ता है। किसी वधू ने अपनी सास से बिना पूछे ही भाड मे चना भुना लिया है। दुष्टा ननद ने इस छोटी-सी बात की शिकायत अपनी माता से कर दी। इसका विषम परिणाम यह हुआ कि सास ने बहू को मुक्का और थप्पड मारना प्रारम्भ कर दिया, ननद गाली देने लगी और देवर ने भी कोई कर्म बाकी नही रखा।[२]

"सासु मारे हुबुका, ननदिया पारे गारी हो ना।
ए चवरिया के अलोतवा, देवरवा हमरो ना।।"

माता को अपनी पुत्री के सुख-दुख की चिन्ता सदा बनी रहती है। अपनी पुत्री के ससुराल जाते हुए अपने पुत्र से वह कहती है कि मेरी समधिन से तुम जाकर कह देना कि मेरी पुत्री को न तो वह मारेगी और न गाली देगी। और प्रातःकाल मे जब वह सुखपूर्वक सो रही होगी, तब उसे कच्ची नीद मे मत जगायेगी। जब भाई ने समधिन से ये बातें कहीं तब वह दुष्टा सास तडप कर कहती है कि मैं उसे (बहू को) अवश्य अपने पैरो से मारूँगी, प्रातःकाल उसे गाली दूँगी और कच्ची नीद मे जब वह सोती होगी, तभी मैं उसे जगा दूँगी।[३]

"लाते हम मरबो, पाराते देबों गारी।
काँच ही निदिये, हम जगइबो पूत बहुआरी।।"

दुष्टा सास की यह हेकडीबाजी उसके निर्मम तथा निर्दयी स्वभाव की परिचायिका है।

कोई परदेसी पति घर आने पर अपनी स्त्री को उदास, दुखी तथा मलिन देखकर उससे इसका कारण पूछता है। तब

१ दुर्गाशकर सिंह भोजपुरी लोक गीत क० २०, पृ० ४४५।
२ डॉ० उपाध्याय भोजपुरी लोक गीत, भाग १, पृ० २१६।
३ वही, पृ० १६०।

वह दु खिया स्त्री उत्तर देती है कि तुम्हारी माता मुझे गाली देती तथा मारती है, ननद व्यग्य वचन बोलती है और तुम्हारा छोटा भाई लाल छडी से मुझे पीटता है। इसी कारण मेरा मन दु खी है।'

"माई तोहरा प्रभु मारे, गरिआवे,
बहिनी बोले बिरह बोल हो।
लहुरा देवरवा मारे लाली छडिया,
ओही गुने बदन मलीन हो।।"

सास और पतोहू का झगडा प्रसिद्ध है। परन्तु एक विरहा मे इसका जैसा सुन्दर चित्रण उपलब्ध होता है, वैसा अन्यत्र नही। लोक कवि कहता है—सास और पतोहू मे ऐसा घनघोर युद्ध हो रहा है कि दोनो एक दूसरे को मूसल से मार रही है। बूढी सास—जिसका पति परलोक को चला गया है—अपनी गवभरी उक्ति मे, जोश मे आकर, कहती है कि अगर आज मेरा बूढा पति (बूढऊ) जीवित होता, तो मैं इस पतोहू को वनवास दे देती अर्थात् घर से निकाल कर बाहर कर देती [२]

"सासु पतोहिया मे लागल बा झगडवा,
कइली मुसरवा के मार।
आजु पतोहिया के हम बन दिहतीं,
जो जियत रहिते बूढ़ऊ हमार।।"

जब भोजपुरी 'राँड' सास ऐसा गव भरा, दुष्ट वचन कह सकती है, तब 'एहवाती' (सधवा) सास का क्या कहना है? इस विरहे मे 'दरुनिया सास' का जो चित्रण है, वह यथाथ है।

सास के अत्याचारो के कारण वधू अपने शरीर का शृगार-प्रसाधन भी नही कर सकती। एक दूसरे विरहे मे कोई दु खिया पतोहू, बडे ही करुण स्वर मे कहती है कि जिस घर मे हीग की मँहक भी नही है, वहाँ 'जीरा' की 'बघार' कहाँ मिलेगी। इसी प्रकार से जिस घर मे कर्कशा सास विद्यमान है, दरुनिया सास जीवित है, उस घर मे भला बहू का शृगार कहा सम्भव है? [३]

"जाहि रे घरे हिंगुआ ना मँहके,
जिवरा के कवन बघार।
जाहि रे घरे सासु दरुनिया,
बहुआ के कवन सिंगार।।"

दारुनिया सास अपनी बहू को केवल शारीरिक ताडना और मानसिक कष्ट ही प्रदान नही करती, बल्कि उसके चरित्र पर भी सन्देह प्रकट कर, उसे नैतिक दृष्टि से भी पतित सिद्ध करना चाहती है। गर्मी के दिन मे कोई बहू पखा झल रही थी। पखे की शीतल वायु के कारण उसे नीद आ गयी। इतने मे उसकी सास ने बहू के हाथ मे पखा देख लिया, जिसके कारण उसके क्रोध का पारा इतना ऊँचा चढ गया कि वह बहू के भाई और बाप को गाली देने लगी और उसके चरित्र को आशका की दृष्टि से देखती हुई कहने लगी कि —

"बेनिया डोलावत अइले सुख निंदिया।
आरे परि गहले सासु के नजरिया हो राम।।
बाबा खाँऊ, भइया खाँउ, तोहरी बहुअवा।
आरे कवने रसिकवा बेनिया भेजेंले हो राम।।"

किसी व्यक्ति का चरित्र-हनन करना, उसको प्राणदण्ड देने से भी अधिक पाप-पूण समझा जाता है। भोजपुरी सास की सदा यह 'टैक्टिक्स' (कोशिश) रहती है कि वह अपने पुत्र की दृष्टि मे, उसकी स्त्री को कुलटा या चरित्रहीन सिद्ध कर दे, जिससे पति उसका परित्याग कर दे। उपर्युक्त गीत मे भी सास इस बात का प्रयत्न करती दिखाई पडती है।

१. दुर्गाशकर सिंह भो० लो० गी० क० र०, पृ० ४११।
२. डॉ० उपाध्याय · भोजपुरी लोक गीत, भाग २, पृ० ३२६।
३ दुर्गाशकर सिंह भो० लो० गी० क० र०, पृ० २१६।

(२) अनुच्छेद—ननद और भावज

सास और बहू के कटु सम्बन्धो के समान ही ननद और भावज का पारस्परिक सम्बन्ध भी उसी प्रकार विषम और विषाक्त चित्रित किया गया है। जिस प्रकार संस्कृत साहित्य मे 'अहि नकुलम्' (सर्प और नकुल) [illegible] उपमान है, उसी प्रकार ननद और भावज मे सदा विरोध, झगडा पाया जाता है। जिस प्रकार माता पुत्र के प्रेम और आदर की अधिकारिणी स्वय को समझती है—जो उचित ही है—उसी प्रकार बहिन भी अपने को भाई के अकृत्रिम प्रेम का पात्र मानती है। परन्तु भाई के विवाह के पश्चात, भावज के घर मे आने पर, यह स्थिति बिल्कुल बदल जाती है। भाई का प्रेम पुत्र के नाते अपनी माता मे, भ्राता के नाते अपनी बहिन मे और पति होने के कारण अपनी पत्नी मे त्रिधा विभक्त हो जाता है। सम्भवत प्रेम का यह विभाजन—जो अत्यन्त स्वाभाविक ही है—नवागत वधू के प्रति राग और [illegible] जाता है। इसीलिए ननद और भावज मे परस्पर विरोध पैदा हो जाता है। वधू घर मे पदार्पण [illegible], मन और धन पर अधिकार जमाने का प्रयास करने लगती है और कुछ वर्षों मे उसे अपने प्रयत्न मे सफलता भी प्राप्त होती दिखाई पडने लगती है। यह बात सास के समान ही ननद के लिए भी असह्य हो उठती है। भावज [illegible] 'पाहुन' या 'अतिथि' समझकर, उसका तिरस्कार भी करने लगती है। यही दोनो के पारस्परिक मनोमालिन्य [illegible] कारण है।

ननद और भावज के पारस्परिक विरोध ने पारम्परिक विवाद का रूप धारण कर लिया है। इन दोनो का झगडा कुछ नया नही, प्रत्युत प्राचीन काल से चला आ रहा है। संस्कृत के किसी कवि ने सास और ननद भावज के आपसी झगडे का बडी ही सुन्दर रीति से चित्रण किया है, जिससे इन तीनो का पारस्परिक विषम सम्बन्ध उजागर होता है। कोई पीडिता पुत्रवधू अपनी सखी से कहती है कि "मेरी सास तो मेरी ओर सीधी नजर से कभी देखती ही नही और कभी देखती भी है तो अपने तीक्ष्ण कटाक्ष और टेढी भौहो को तान कर देखने का प्रयास करती है। मेरी यह 'कलमुँही' ननद प्रत्येक क्षण [illegible] कटुवचन बोलती है जिससे मेरा हृदय विदीर्ण हो जाता है। वह हृदयभेदी कटु वाक्यो को बोलने मे पटु है। इनके अतिरिक्त भी घर मे जो अन्य प्राणी है, उनके चरित्र (दुश्चरित्र) का मैं क्या वर्णन करूँ? उनका स्मरण करते ही मेरा मन और शरीर काँपने लगता है। परन्तु हे सखी! तुम से सच कहती हूँ कि मेरा अपराध केवल इतना ही है कि मेरा प्रियतम मुझे अपनी प्रेम भरी, मधुर दृष्टि से देखता है। अर्थात् मुझसे प्रेम करता है और मुझे स्नेह प्रदान करता है।" श्लोक यह है —

> 'श्वश्रूः पश्यति नैव, पश्यति यदि भ्रूभंग वक्रेक्षणा,
> मर्मच्छेदपटु प्रतिक्षणमसौ ब्रूते ननान्दा वचः।
> अन्यासामपि किं ब्रवीमि चरितं स्मृत्वा मनो वेपते,
> कान्तः स्निग्धदृशा विलोकयति मामेतावदागः सखि।"

दरुनिया सास और दुष्टा ननद के चरित्र की इससे अधिक कटु आलोचना और क्या हो सकती है।

भोजपुरी लोक-गीतो मे भावज और ननद का जो चित्रण किया गया है, वह बडा ही कटु विषम और वीभत्स है। सास के समान ही ननद भी एक "हार्ड टास्क मास्टर' (कठोर शासक) के रूप मे चित्रित की गयी है। जँतसार के एक गीत मे कोई सास बहू को पीसने के लिए गेहूँ देती है, तो उसकी ननद उसके लिए एक बहुत बड़ी 'चगेंगे (डलरी) लाकर रख देती है, जिसमे अधिक गेहूँ समा सके और भावज को इतना अधिक गेहूँ पीसने मे कष्ट हो। परन्तु कोमल सुकुमार बहू से इतना भारी जाँत चलता ही नही, पत्थर की मोटी चक्की (चकरी) डोलती ही नहीं। वह टस से मस होने का नाम ही नहीं लेती। अत वह जाँत के घर मे, हाथ से जाँत को पकड कर, बैठी रो रही है।[1]

> "सासु देली कोहुँआ हो रामा, ननदी चँगेरिया,
> गोतिनि बइरिनिया हो रामा, भेजेली जँतसरिया।
> जँतवा चलइ हो रामा, चकरी न डोलई।
> जँतवा के धइले हो रामा, रोइला जँतसरिया॥"

ननद, भावज को शारीरिक कष्ट प्रदान करने के साथ ही, उसकी पीठ-पूजा करने की भी धमकी देती है। किसी भावज ने पुत्र होने पर अपनी ननद से नेग के रूप मे कोई आभूषण देने का वादा किया था। परन्तु पुत्र-प्राप्ति के पश्चात् उसने आभू

१ दुर्गाशंकर सिंह · भोजपुरी लोक गीत, क० ८०, पृ० १६३।

षण प्रदान करना अस्वीकार कर दिया। इस पर क्रुद्ध होकर ननद कहती है कि ए भावज! जिस वस्तु को तुमने मुझे देने की प्रतिज्ञा की थी, उसे मुझे दे दो, अन्यथा मै तुम्हारी पीठ पर सात 'लात' (पैर) मारूँगी और तुम्हारे गालो पर दो थप्पड जड-कर लाल कर दूँगी —[1]

"भउजी! जवन बोली बोललू ऽ ओसरवा, उहे बोल राखौ।
मारबि सात लात पीठि पर, गाले दुइ थप्पड रे।
भउजी! कँगना के जोट पछेलवा, दूनो हम लेबो रे॥"

इस प्रकार भावज के प्रति ननद का व्यवहार बडा बुरा दिखलाया गया है।

जब नवविवाहिता बधू प्रथमबार अपनी ससुराल जाती है, तब उसकी ननद अपनी माता से कहती है कि यह हल जोतने-वाले किसान की लडकी है। अत इसे रहने के लिए ए मा, वह घर दो, जिसमे जानवरो के खाने के लिए भूसा रखा जाता है और जो 'भुसहुल' के नाम से प्रसिद्ध है। गीत की पक्ति इस प्रकार है —

"भइया तो न बोले पावे, ननद उठि बोलै,
अम्मा एहि हरजोतवा के बिटिया दिहौ घर भुसहुल॥"

भोजपुरी ननद इतनी दुष्ट है कि भावज के पावन चरित्र पर किसी-न-किसी काज से सन्देह ही नही प्रकट करती, प्रत्युत अपने भाई से इसकी शिकायत भी करती है। भावज किसी कुएँ से पानी भरने के लिए गयी हुई है। वहाँ पर किसी देवता के मन्दिर मे दशन करने के कारण घर लौटने मे कुछ विलम्ब हो जाता है। बस, फिर क्या है! ननद को भावज के चरित्र की शुद्धता मे आशका की भावना उत्पन्न हो जाती है। भावज के द्वारा विलम्ब के कारण की हजारो सफाई देने पर भी ननद अपने भाई से कहती है कि ए भाई, तुम्हारी ठकुराई (कुलीनता) मे आग लग जाय। तुम्हारी स्त्री तो योगी (जोगी) के मन्दिर मे जाकर देर तक घूमा करती है।[2]

भावज की निर्दयता

भावज और ननद के चरित्र का यदि तुलनात्मक अध्ययन किया जाय, तो भावज का पलडा कुछ भारी ही दिखाई पडता है। ननद तो अपने भाई से भावज के चरित्र की केवल शिकायत ही करती है, परन्तु भावज तो अपनी ननद को केवल विष की गाँठ खाने के लिए ही नही भेजती, बल्कि उसकी छाती मे खजर घुसेड कर उसकी जीवन-लीला ही समाप्त कर देती है। भावज की कठोरता, निर्दयता तथा निर्ममता के अनेक वर्णन लोकगीतो मे पाये जाते है। इसकी हृदय-हीनता का यह दृश्य कितना निर्मम है।

कोई पुत्री विवाह के पश्चात् पिता के घर से बिदा होकर अपनी ससुराल जा रही है। पुत्री के वियोग से अत्यन्त दु खी पिता के सतत अश्रुपात से गगा मे बाढ आ गयी है। पुत्री के विछोह से पीडित माता के रोने से सवत्र अँधेरा छा गया है। प्रिय बहिन के जाने से उदास भाई के रोने से उसकी धोती पैर तक भीग गयी है। माता, पिता, भाई सब बिलख-बिलखकर रो रहे है, परन्तु भावज की आँखो मे आँसू का एक बूद भी नही दिखाई पडता। गीत की पक्तियाँ है —[3]

"बाबा के रोवले गगा बढ़ि अइली,
आमा के रोवले अनोर।
भइया के रोवले चरन धोती भीजे,
भऊजी नयनवो ना लोर॥"

---

१ प० रामनरेश त्रिपाठी ग्राम गीत, पृष्ठ ६०।

२ आगि लागे भइया तोहरी ठकुरइया।
भउजी जाली जोगी के मिढ़ुलिया हो ना॥
—लेखक का निजी सग्रह।

३. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय भोजपुरी लोक गीत, भाग १, पृष्ठ २७१ (द्वि० स०)।

घर के प्राणियो मे भावज अपनी ननद को भारस्वरूप समझती है। वह सोचती है कि यह व्यर्थ में बैठ कर घर का आटा गीला कर रही है। वह चाहती है कि इसका विवाह जल्दी से करके घर से इसे हटा दिया जाय। इसी दुष्ट भावना से प्रेरित होकर एक गीत मे भावज अपने सास, ससुर और पति से अपनी ननद के विवाह के लिये प्रार्थना करती है।[1] विवाह हो जाने पर पुत्री के बिदा होते समय उसके माता और पिता वस्त्र, आभूषण धन तथा गाय आदि तथा अन्य पदार्थ दहेज के रूप मे देते है। परन्तु उसकी दुष्टा भावज अफीम का एक टुकडा उसे उपहार रूप मे प्रदान करती है। गीत है '—

"आमा जे देली राम लहर पटोरवा,
बाबा देले धेनु गाई।
भइया जे देले राम चढ़न के घोड़वा,
भऊजी महुरवा के गाँठि।।"

भावज की बोली विष के समान कटु तथा कडवी होती है। वह जब भी बोलती है तो उसमे व्यंग्य भरा रहता है। जिस प्रकार ननद भावज के चरित्र पर सन्देह करती है, (जिसका उल्लेख पहिले किया जा चुका है) उसी प्रकार भावज भी ननद के चरित्र पर व्यर्थ का कलक लगाती है। कुएँ से पानी भरने के लिए गयी ननद से भावज पूछती है कि तुम्हारा आँचल (साडी) मैला क्यो है? तुम कहाँ गयी हुई थी? भावज ननद के चरित्र पर ही सन्देह नहीं करती, प्रत्युत उसे भोजन छाजन का भी कष्ट देती है। इसका दुःखद वर्णन इस सोहर के गीत मे हुआ है —

"कोठिला से कढ़लों खुखुड़िया, त धामावा सुखावेलो हो,
ए ननदी! खुखुड़ी के रोटिया पकवलों,
बपुआ केरा संगिया नू हो।"

सावन मास मे बहुएँ प्राय अपने मायके जाना चाहती है। ससुराल के कष्टो से ऊबी हुई कोई बहू, मायके आने के लिए अपनी भावज के पास सन्देश भिजवाती है। परन्तु निर्दयी भावज, इस सन्देश के उत्तर में उसके पास अफीम की गाँठ भिजवा देती है और कहती है 'मायके आने की अपेक्षा तुम इसे खाकर सो जाना।'³

"भउजी जे पठवेले सनेसवा, माहुरवा के गाँठि।
खाई न एहेऊ मोरी ननदी तो सावन मास।।"

अपनी भावज की दुष्टता से परिचित कोई बहिन अपने भाई से ससुराल के अनेक विषम दुःखो का निवेदन करने के पश्चात कहती है कि ए भाई! मेरे इन दुःखो को मेरी भावज से मत कहना। अन्यथा वह इन कष्टो को सुनकर प्रसन्न होगी और इन्हे बढा-चढाकर दूसरे लोगों से कहती फिरेगी।[4]

"इ दुःख जनि कहिहऽ, भइया भउजी के अगवा हो ना।
भऊजी हुईं चारि घर कहि अइहें हो ना।।"

इसके अतिरिक्त भावज एक निर्दयी, निर्मम तथा खूखार जीव के रूप मे भी चित्रित की गयी है। उसकी क्रूरता तथा हिंसा-वृत्ति, स्त्रियोचित मर्यादा का उल्लघन करती हुई दिखलाई पडती है। एक सोहर के गीत मे भावज एक प्रतिक्रियावादी स्त्री के साथ ही हिंसात्मक जानवर के रूप मे प्रदर्शित की गयी है।

पुत्र-जन्म के अवसर पर उसे प्रचुर सहायता न पहुँचाने के कारण भावज अपनी ननद को धमकी देती हुई कहती है कि यदि मै प्रसव-कार्य से सकुशल निवृत्त हो गयी, तो अपनी 'गोतिनी' अर्थात् 'दायादिनों'—घर की अन्य स्त्रियों—के बालों को खीच कर उन्हे मिट्टी मे मिला दूंगी और तेज छूरी को अपनी ननद की छाती में घुसेड कर उसे मार डालूंगी।

---

१ लेखक का निजी सग्रह।
२ लेखक का निजी सग्रह।
३ लेखक का निजी सग्रह।
४· डॉ० उपाध्याय भोजपुरी लोक गीत, भाग १, पृष्ठ ४४५।

"गोतिनी के झोटा धइ लसार देबो ललना।
अबकी बरहिया के ऊपर होइबो,
ननदी के छुरी लेके छाती फारबो ललना।"

क्रूरकर्मा तथा हिंस्रक इस भावज के कुकम पर कुछ टीका-टिप्पणी करना व्यर्थ है।

इस प्रकार लोकगीतो मे यदि ननद क्रूर तथा निर्मम दिखलायी गयी है, तो भावज क्रूरतर तथा हृदयहीन व्यक्ति होने के साथ ही हिंस्रक जीव के रूप मे भी चित्रित की गयी है।

(३) अनुच्छेद—देवर और भावज

प्राचीन भारत मे देवर और भावज का सम्बन्ध अत्यन्त पवित्र तथा आदश रूप मे चित्रित किया गया है। आदि कवि वाल्मीकि ने लिखा है कि दुष्ट रावण के द्वारा सीताहरण के पश्चात्, मार्ग मे गिरे हुए उनके गहनो को देखकर रामचन्द्र ने जब लक्ष्मण से उन गहनो को पहिचानने के लिए कहा, तब लक्ष्मण ने जो उत्तर दिया, वह भारतीय सस्कृति के आदश का प्रतीक है। लक्ष्मण कहते है कि—

"केयूर नैव जानामि, नैव जानामि कुण्डले।
नूपुरावेव जानामि, नित्य पादाभिवन्दनात्।।"

अर्थात्, मैं जगत्‌जननी सीता के द्वारा हाथ मे पहिने जानेवाले आभूषण—केयूर को नही पहिचानता और न कानो मे पहिने जानेवाले कुण्डलो को ही जानता हूँ। हाँ, मैं पैर मे धारण किये जानेवाले नूपुरो को अवश्य पहिचानता हूँ, क्योकि मैं प्रतिदिन सीता जी के चरणो को प्रणाम किया करता था। लक्ष्मण के कहने का आशय यह है कि मैंने कभी अपनी दृष्टि को ऊपर उठाकर, सीता के शरीर के ऊपरी भाग को नही देखा। नित्यप्रति उनके पैरो को प्रणाम करने के कारण, मैं केवल नूपुरो को ही पहिचान सकता हूँ।

एक अन्य प्रसग के अवसर पर आदि कवि ने भावज की समता माता से की है। उसे माता के समान ही आदर की अधिकारिणी माना है। पिता के आदेश से भगवान् रामचन्द्र जगल को जाने के लिए तैयार हैं। लक्ष्मण भी उनके साथ जाने के लिए उद्यत हैं। अत जब लक्ष्मण अपनी पूजनीया माता से इसके लिए आज्ञा माँगने के लिए जाते हैं, तब सुमित्रा उनसे कहती हैं कि—

"राम दशरथ विद्धि, मा विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि, गच्छ तात! यथासुखम्।।"

अर्थात्, ए बेटा! तुम अपने ज्येष्ठ भ्राता—राम को पिता के तुल्य—दशरथ—समझना। और जानकी को मेरे (सुमित्रा) समान अपनी माता मानना। जगल को अयोध्या के समान जानना। तुम सुखपूर्वक बन को जावो।

वाल्मीकि ने इस श्लोक मे भावज को माता का स्थान प्रदान किया है और जननी के समान सन्मान प्रदान करने का सकेत किया है।

महाभारत मे नियोग प्रथा का प्रचुर उल्लेख प्राप्त होता है। मनु ने तो स्पष्ट ही लिखा है कि पति की मृत्यु पर नियोग के द्वारा देवर को भावज से विवाह कर लेना चाहिए।[1] प्राचीन ग्रन्थो, धर्मशास्त्रो तथा निबन्धो से इस प्रकार के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते है।[2]

१ यस्याः म्रियेत कन्यायाः, वाचा सत्ये कृते पति।
तामनेन विधानेन निजो विन्देत् देवर।।
—मनुस्मृति ९।६९।

२. नियोग प्रथा के विशेष के लिए देखिये डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय : हिन्दू विवाह की उत्पत्ति और विकास, पृष्ठ ३२४-३४२।

भोजपुरी लोकगीतो मे देवर और भावज का जो सम्बन्ध चित्रित किया गया है वह प्राचीन भारतीय आदर्श के अनुरूप उपलब्ध नही होता। इन गीतो मे कही तो देवर और भावज के अनुचित प्रेम प्रस्ताव का प्रसंग प्राप्त होता है तो कही दुष्ट व्यवहार का चित्रण है। प्राचीनकाल मे जब भावज का स्थान माता के समान आदर का पात्र था। इन लोकगीतो मे भावज के प्राचीन उच्च तथा सन्मानित स्थान का अवमूल्यन क्यो हो गया, इसके मूल कारण पर कुछ विचार करना अनुचित न होगा।

देवर शब्द की व्युत्पत्ति

'देवर' शब्द की निरुक्ति 'द्वितीयो वर' (दूसरा पति) शब्द से मानी जाती है। इसका अर्थ यह है कि देवर द्वितीय पति के समान है। प्राचीन धर्मशास्त्रकारो ने नियोग की प्रथा को समुचित बतलाया था। उनके मतानुसार किसी स्त्री के पति की मृत्यु हो जाने के पश्चात्, उस व्यक्ति का छोटा भाई अपनी विधवा भावज से नियोग की प्रथा के अनुसार विवाह कर उससे सन्तान की उत्पत्ति कर सकता था। यह विधान शास्त्रसम्मत माना जाता था। भारतीय इतिहास के स्वर्णयुग -गुप्तकाल-मे भी इस प्रकार के अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं।[1]

नियोग प्रथा का ह्रास

ऐसा ज्ञात होता है कि मनु आदि धर्मशास्त्रकारो ने जिन विशेष परिस्थितियो मे नियोग के लिए अनुमति प्रदान की थी, उसमे कालक्रम के अनुसार परिवर्तन होने लगा। उन विशेष परिस्थितियो—जैसे किसी सन्तान का अभाव—के अभाव मे भी देवरो ने अपनी विधवा भातृजाया—भावज—से काम-वासना से प्रेरित होकर वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार जो नियोग की प्रथा एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए विहित की गयी थी उसका दुरुपयोग होने लगा। कुछ लोग अपनी भोग-वासना की पूर्ति के लिए अपने बड़े भाई की स्त्री से विवाह करने लगे। सम्भवत कुछ काल के पश्चात् इस प्रथा मे इतनी अधिक बुराई आगयी कि बाद के धर्मशास्त्रियो को इस प्रथा का निषेध करना पड़ा। कलियुग मे जिन पाँच वस्तुओ के विधान का निषेध किया गया है, उसमे नियोग की भी गणना की गयी है।[2] यद्यपि इसके शास्त्र विरुद्ध होने पर भी कुछ तथाकथित निम्नवर्ग की जातियो मे इसकी प्रथा आज भी विद्यमान है, परन्तु सवर्ण हिन्दू उच्चवर्ग मे इस प्रथा का अब नितान्त अभाव पाया जाता है तथा यह निन्दनीय समझा जाने लगा है।

देवर की दुश्चरित्रता

इसी नियोग प्रथा की पृष्ठभूमि मे, इसके अभाव हो जाने पर भी आज भी भोजपुरी लोकगीतो मे, देवर और भावज के दूषित प्रेम-सम्बन्ध की झाँकी देखने को प्राप्त होती है। किसी स्त्री का पति जीविकोपार्जन के लिए परदेस चला गया है और अनेक वर्षों तक घर लौट कर नही आता। इस परिस्थिति का लाभ उठाने के लिए कोई देवर, अपनी भावज से कहता है कि जब तक मेरा बडा भाई परदेस से लौटकर नहीं आता, तब तक तुम मुझसे प्रेम करो —[3]

"जब तक भउजी, भइया हमार अइहैं हो।
कि तब लागि ना, भउजी और ना सनेहिया।
कि तब लागि ना।"

एक दूसरे गीत मे कोई देवर अपनी भावज से कहता है कि मेरा भाई तो आजकल परदेस गया हुआ है। अत ए भावज! तुम मेरे लिए सेज सजावो और उस सेज पर फूलो को बिखेर दो। तुम मेरी सेवा (काम-वासना की तृप्ति) करके अपने पति-प्रवास के दु खो को भूल जावो।[4]

"हमरेहि सेजिया बिछावहु, फूल छितरावहु हो।
भउजी! हमरेहि लागहु टहलिया, त दुःख बिसरावहु हो॥"

१ डॉ० वासुदेव उपाध्याय गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग १।
२ सन्यास च, नियोग च, कलौ पंच विवर्जयेत्।
३. लेखक का निजी संग्रह।
४. दुर्गाशंकर सिंह : भोजपुरी लोकगीतों में करुण रस, पृष्ठ ४१।

यह देवर कितना दुष्ट तथा कामी है, यह कहने की आवश्यकता नही है।

हसराज नामक कोई देवर घोडे पर चढा हुआ कही से आ रहा है। उसकी भावज रास्ते के किसी कुएँ पर पानी भर रही है। देवर को देखकर बहुत प्रसन्न होती है और पानी से भरा घडा सिर पर उठाने के लिए कहती है। कामासक्त हसराज, एक हाथ से तो घडा उठाता है और दूसरे हाथ से अपनी भावज के आँचल को पकडकर उसे घर जाने से रोकता है —

"एक हाथ देवरु घइला अलगावै,
कि दूसर हाथे ना, धइ अँचरा बिलमावै।
कि दूसर हाथे ना।।"

एक अन्य गीत मे ऐसा वणन मिलता है कि कोई मल्लाह की स्त्री—मल्लाहिन—अपने देवर से विवाह कर लेती है। परन्तु जब उसे अपने पूव (प्रथम) पति से उत्पन्न बालक की सुधि आती है, तब वह रोने लगती है। जब देवर उसके रोने का कारण पूछता है, तब वह पुत्र-वत्सला-माता उत्तर देती है कि न तो मुझे अपने माता-पिता के सुख का स्मरण हो रहा है और न प्रथम पति की ही याद आती हे , परन्तु पूव पति से उत्पन्न मेरी गोदी का छोटा बालक, घर पर रोता होगा, उसी का स्मरण कर मेरी आँखो से आँसू गिर रहे है।[1]

देवर ओर भावज मे आदर्श प्रेम

परन्तु अनेक गीतो मे देवर और भावज का सम्बन्ध मधुर तथा उचित दिखाई पडता है। देवर भावज के सहायक के रूप मे चित्रित किया गया है। एक गीत मे कोई विरहिणी स्त्री, अपने देवर को बुलाकर अपने पति के पास भेजने के लिए उससे पत्र लिखवाती है—

"देवरा के बदिहे कयथवा नु ए राम।
चिठिया जे लिखिहे, समुझाइ के नु ए राम।।"

गाँवो मे निरक्षर व्यक्तियो के लिए चिट्ठी (पत्र) लिखने का काम प्राय कायस्थ जाति के लोग किया करते थे। इसी कारण उपर्युक्त गीत मे देवर को कायस्थ की भूमिका प्रदान की गयी है।

प्रिय देवर अपनी भावज की विरह-वेदना को पत्र मे अकित करके, उसे स्वय लेकर अपने भाई के पास जाता है और उससे घर लौट चलने की प्रार्थना करता है। भाई अपने अनुज के आग्रह को मानकर घर लौट आता है, जिससे उसकी स्त्री का विरहजन्य समस्त कष्ट दूर हो जाता है। गीत की पक्तियाँ है —[2]

मोरी रानी लहुरा देवरवा के हाथे,
जो पाती लिखि भेजेउ हो।"

भावज इस प्रकार देवर से प्रार्थना करती है—[3]

"देवरा हो मोरे देवरा, आरे तू मोरे देवरा हो।
मोरा देवरा, जो हरि होंय अकेले, तो बाँचि सुनायउ हो।।"

इस प्रकार कुछ गीतो मे देवर केवल सहायक के रूप मे ही नही, बल्कि पत्रवाहक की भूमिका मे भी चित्रित किया गया है।

१ "नाहीं मन परे देवर, माई-बाप सुखवा हो,
नाहीं मन परे देवर, पहिला बिअहुवा।
एक त जे मन परे गोदी के बालकवा हो,
रोवत होइहैं घरवा गोदी के बालकवा हो।।"
—दुर्गाशकर सिंह भोजपुरी लोकगीत में करुण रस, पृष्ठ १७४।

२. रामनरेश त्रिपाठी · ग्राम गीत, पृष्ठ ३२।

३. वही।

(४) अनुच्छेद—भसुर और भवहि

भोजपुरी भाषा मे पति के बडे भाई को 'भसुर' कहा जाता है और छोटे भाई (अनुज) की पत्नी 'भवहि' के नाम से प्रसिद्ध है। भोजपुरी समाज मे भसुर और भवहि का सम्बन्ध बडा ही गर्हित माना जाता है। भसुर के द्वारा अपनी भवहि को स्पर्श करने की तो कथा ही दूर रही, उसके ऊपर दृष्टिपात करना भी उचित नहीं समझा जाता। पति के अग्रज होने के कारण भसुर पूज्य तथा आदरणीय व्यक्ति माना जाता है। अत उसके छोटे भाई की पत्नी का उसके समक्ष आना, उससे वार्तालाप करना अथवा उसके शरीर को स्पर्श करना अत्यन्त निषिद्ध है। हिन्दू समाज मे भसुर प्रायः पिता तुल्य है। चूकि पर्दा की कुत्सित प्रथा के कारण ससुर का अपनी पुत्रवधू से वार्तालाप करना वर्जित है, सम्भवत इसीलिए भसुर के लिए भी अपनी भवहि से बोलना निषिद्ध है। हाँ, भसुर अपनी भवहि के अगो का केवल एक अवसर पर ही स्पर्श कर सकता है और वह अवसर है विवाह के समय 'कन्या निरीक्षण'। उस समय वैवाहिक मण्डप मे, भसुर भावी वधू के लिए लाये गये आभूषणों को लेकर भवहि के अगो से स्पर्श कराकर रख देता है। यही उसका भवहि के अगो का प्रथम तथा अन्तिम स्पर्श है।

भसुर की कामुकता

भोजपुरी लोकगीतो मे भसुर और भवहि का जो सम्बन्ध चित्रित किया गया है वह अत्यन्त अशोभनीय और अनुचित है। उसे किसी भी प्रकार शालीन तथा सुन्दर नही कहा जा सकता। प्रत्युत यह सम्बन्ध कामुक, कुत्सित और गर्हित है।

इन्द्रसिह नामक कोई पुरुष टिकुली नामक अपनी भवहि के रूप-सौन्दर्य पर मोहित हो जाता है। वह अपने छोटे भाई को जगल मे ले जाकर जान से मार डालता है। वह घर लौटकर अपनी भवहि (टिकुली) से अनुचित प्रस्ताव करता है परन्तु टिकुली सती और साध्वी होने के साथ ही बहुत चतुर स्त्री है। वह अपने भसुर को प्रेम का झूठा आश्वासन देती है और अपने पति की लाश को जला देने की उससे प्रार्थना करती है। कामुक इन्द्रसिह उसकी बातो पर विश्वास करके जब भाई के शव को जलाने के लिए आग लाने के लिए जाता है, इतने मे ही वह अपने पति के शव के साथ जलकर सती हो जाती है। लौटकर आने पर नीच इन्द्रसिह यह दृश्य देखकर हाथ मलता हुआ पछताता रह जाता है। गीत है—[1]

"जब लगि भसुर अगिया ले आवे गइलनि रे ना।
रामा फुफुतिनि अगिया धधकवली हो राम॥
रामा सुनो रे बेकति करिखरवा भइले हो ना।
जहूँ हम जनिती 'टिकुली' मोरि बुधि छोरबू रे ना।
ए रामा डँड़िया पइसि सतवा नसिती हो राम॥"

इस गीत की अन्तिम दो पंक्तियो मे जहाँ भसुर की कामुकता, निर्दयता और नीचता की पराकाष्ठा दिखलाई पडती है, वहाँ इसके साथ ही 'टिकुली' नामक भवहि का दिव्य सतीत्व और आदर्श चरित्र चित्रित किया गया है।

एक अन्य भोजपुरी लोकगीत मे कोई भसुर अपने अनुज की स्त्री से छेडखानी करता है। भवहि पानी भरने के लिए कुएँ पर गयी हुई है। भसुर उसका रास्ता रोक लेता है। जब वह उससे मार्ग देने के लिए कहती है और निवेदन करती है कि मेरी चुनरी भीग रही है, अत तुम मेरे रास्ते से हट जाओ, तब वह कामुक भसुर उसे पहिनने के लिए अपनी चादर देता है। परन्तु वह सती, मनस्विनी 'जिरवा' नामक स्त्री (भवहि) उसकी चादर को लेने से अस्वीकार करती है और कहती है कि रे दुष्ट! मैं तेरी चादर मे आग लगा दूँगी। मेरे लिए यह भीगी चुनरी ही अच्छी है। उस मनस्विनी 'जिरवा' की ये पंक्तियाँ कितनी ओजपूर्ण है।[2]

"पानी के पियासल जिरवा, गइली पनिघटवा रे।
घर के भसुरवा, बटिया रोके के मू रे की॥१॥

१ दुर्गाशकर सिह : भोजपुरी लोकगीत में करुण रस, पृष्ठ ८५।
२. वही, पृष्ठ १००।

छोड, छोड, भसुरा रे! मोर पनिघटवा रे।
बरसेला पनिया भीजेला मोर चुनरिया नु रे जी॥२॥
जउँ तोरा 'जिरवा' रे भीजेले चुनरिया रे,
हमरो दुपटवा ओढि लेवहु रे जी॥३॥
तोहरा दुपटवा भसुर! आगि लगाइबि,
हमरी चुनरिया सीतल बयरिया नु रे जी॥४॥

रोपनी के एक गीत मे भसुर की दुष्टता, निदयता तथा कामुकता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची हुई दिखलाई पडती है। कोई भवहि चित्रकला मे प्रवीण है। उसने घर की भीत पर जो सुन्दर चित्रकारी की है, उसे देखकर उसका भसुर उसके प्रेम-जाल मे फँस जाता है। वह इतना मूख है कि अपनी इस काम-वासना को अपनी माता के सामने प्रकट कर देता है। इस पर माता निषेध करती हुई उससे कहती है कि मेरी 'लहुरी पतोहिया' (छोटी पुत्र-वधू) तुम्हारी 'भवहि' लगेगी। वह 'तिलगाना' नामक मेरे पुत्र की स्त्री है। परन्तु यह दुष्ट ज्येष्ठ पुत्र अपनी माता के निषेध करने से अपनी नीच वासना की पूर्ति न देखकर, अपने छोट भाई तिलगाना को छलपूवक जगल मे ले जाता है और वहा विश्वासघात करके, उसकी निमम हत्या कर देता है। फिर भी 'सतवन्ती' वह विधवा तथा दुखी भवहि अपने भसुर के गर्हित काम-प्रस्ताव का अत्यन्त तिरस्कार करती हुई, अपने मृत पति के शव के साथ जलकर सती होकर दिव्य लोक को प्राप्त कर लेती है। इधर कामपीडित, पशु-तुल्य भसुर पछताता ही रह जाता है।[1]

(५) अनुच्छेद—ससुर और पतोहू

ससुर शब्द की व्युत्पत्ति सस्कृत के 'श्वसुर' शब्द से हुई है, जिसका अथ होता है किसी स्त्री के पति का पिता। इसी प्रकार 'पतोहू' शब्द सस्कृत 'पुत्रवधू' का अपभ्रश रूप है, जिसका आशय है पुत्र की स्त्री। भोजपुरी समाज मे ससुर पिता के समान सन्मान का अधिकारी माना जाता है और पतोहू बेटी के समान समझी जाती है।

लोकगीतो मे पिता और पुत्र के बीच मे बडा ही मधुर सम्बन्ध पाया जाता है। अत स्वाभाविक रूप से ससुर तथा पुत्र की वधू मे भी मधुर तथा सुन्दर सम्बन्ध होना चाहिए था। परन्तु लोकगीतो मे इन सम्बन्धो का जो चित्रण हुआ है, वह अनुचित और असुन्दर है।

एक गीत मे ससुर और पतोहू के बीच मे अनुचित प्रेम-सम्बन्ध का वणन उपलब्ध होता है। पतोहू लोक-लज्जा का परित्याग कर, अपने ससुर से, गर्मी मे प्रयोग करने के लिए पखा माँग रही है। एक दूसरे गीत मे पुत्रवधू की बाहो पर गोदे गये गोदना को, ससुर के द्वारा, कामुकताभरी दृष्टि से देखने का उल्लेख पाया जाता है। ससुर जब भोजन करने के लिए घर मे आता है, तब वह वासनापूर्ण दृष्टि से अपनी पतोहू के गोदने को ही देखता रहता है। भोजन के काज से वह अपनी पुत्रवधू की सुन्दरता को ही निहारता है। चतुर पतोहू ससुर के कुत्सित आशय को ताड जाती है और कहने लगती है कि यदि मैं यह जानती कि ससुर मेरे गोदना को देखकर मुझपर अनुरक्त हो जायेगा, तो मै गोदना ही नही गोदवाती। गीत है—[2]

"सासु दाँत के बतीसी, बहू का बाँही गोदना।
ससुर जेंवना ना जेवेंले, नीहारे मोरे गोदना॥
जाहु हम जनितीं ससुर, नीहरबऽ तू गोदना।
ससुर नाहीं रे गोवइतीं, आपन बाँही गोदना॥"

---

१ रामा जो हम होइतीं सतवन्ती हो ना।
मोरे अँचरा भभकि उठे अगिया हो ना।
बरे लगली लकडी, भसम भइली छोटका हो ना।
रामा जेठवा मले दूनो हाथावा हो ना॥
दुर्गाशकर सिंह—भोजपुरी लोकगीतों मे करुण रस, पृष्ठ ३४६।

२. डॉ० उपाध्याय—भोजपुरी लोकगीत, भाग १ पृष्ठ, ३३५।

इसी प्रकार एक झूमर के गीत मे, पानी मे खोई हुई पताहू की झुलनी को उसका बूढ़ा ससुर बड़ी तन्मयता के साथ खोजता हुआ चित्रित किया गया है। इस कार्य मे उसकी कर्तव्य-परायणता का अंश कम और कामुक भावना का आशय ही प्रबल पाया जाता है।

(६) अनुच्छेद—सौत और मौन

सौतो का पारस्परिक सम्बन्ध

प्राचीन भारत मे बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी। एक ही पुरुष अनेक पत्नियो से विवाह कर सकता था जो आपस मे सह-पत्नी (साथ की स्त्री) कहलाती थी। 'सपत्नी' शब्द की निरुक्ति इसी सह-पत्नी शब्द से ज्ञात होती है। भोजपुरी मे सपत्नी को 'सवति' या 'सौत' कहते है, जो सपत्नी शब्द का ही अपभ्रंश रूप है। एक ही पति की समान पत्नियाँ होने के कारण, इन स्त्रियो मे आपस मे प्रेम भाव तथा सौहार्द की भावना रहनी चाहिए परन्तु पति के द्वारा सभी पत्नियो के साथ एक समान व्यवहार न रखने के कारण, तथा पति के प्रेम की समान रूप से अधिकारिणी न होने के कारण, इन सपत्नियों में द्वेष की चरम सीमा का उल्लेख पाया जाता है। यह सीमा यहाँ तक पहुँच गया है कि आपस मे सपत्नियो का कलह—जिसे भोजपुरी मे 'सौतियाडाह' कहते है—द्वेष का उपमान बन गया है।

लोकगीतो मे इस सौतियाडाह का इतना कटु, भीषण, बीभत्स तथा कलहपूर्ण एवं भयंकर रूप का वर्णन किया गया है, जो लेखनी से परे है। भोजपुरी सौतो मे केवल वाक्-युद्ध ही नही होता, बल्कि झगड़ा-झाटी तथा मार पीट की भी नौबत आये दिन आयी ही रहती है।

भोजपुरी मे एक कहावत प्रसिद्ध है कि "लकड़ी या चून के भी सवति ना भावेला" अर्थात् रुधिर और मांस से निर्मित मानव सौत की तो कथा ही दूर रही, लकड़ी अथवा आटा जैसे निर्जीव पदार्थ की बनी हुई सौत भी अच्छी नहीं लगती। इसी लोकोक्ति से कुछ अनुमान किया जा सकता है कि सपत्नी-द्वेष कितना भयंकर होता है।

प्रथम स्त्री की मृत्यु के पश्चात् यदि पुरुष किसी दूसरी स्त्री से विवाह कर लेता है तब प्रथम स्त्री की प्रेतात्मा उसकी द्वितीय पत्नी के शरीर पर आकर उसे सताती है। उसे अनेक प्रकार का कष्ट देती है। इस प्रकार भोजपुरी 'सवति' अपनी जीवितावस्था मे तो आपस मे भयंकर झगड़ा करती ही है, मर जाने पर भी अपनी सौत का पीछा नही छोड़ती और स्वप्न मे अपने विकट रूप का प्रदर्शन करती हुई अपनी जीवित सौत को अनेक प्रकार का दु ख पहुँचाती है। इसीलिए भोजपुरी प्रदेश मे जब कोई पुरुष अपना दूसरा विवाह करने के लिए जाता है, तब अपनी प्रथम मृत पत्नी की सुवर्णमयी छोटी-सी प्रतिमा बनाकर ले जाता है। प्रथम पत्नी (सौत) की दुष्ट प्रेतात्मा के दु खो से त्राण पाने के लिए द्वितीय पत्नी के लिए उस प्रतिमा की पूजा करना अत्यन्त आवश्यक है। कहने का आशय यह है कि भोजपुरी सौत अपने जीवन मे तथा मृत्यु के बाद भी अपनी जीवित 'सवति' का पिण्ड नही छोड़ती।

सौत का भय

कोई पति अपनी स्त्री से 'मधुपीपरि' (एक प्रकार का कटु पेय द्रव) पीने के लिए कहता है। परन्तु पत्नी उसके प्रस्ताव को, उसके दूषित परिणाम के कारण, अस्वीकार करती है। इस छोटे-से अपराध के कारण पति अपना दूसरा विवाह कर लेने की, उसे धमकी देता है। इस धमकी से भयभीत होकर उसकी स्त्री कहती है कि कटु होने पर भी मै 'मधुपीपरि' भले ही पी लू, परन्तु सौत का दु ख ('जार' या 'झार') मुझसे नहीं सहा जायेगा।

"सवति के झार हम ना सहबि,
पियबि मधु पीपरि हो।"

परदेस से सौत को ले आना

कोई पुरुष जीविकोपार्जन के लिए परदेस गया हुआ है। जहाँ वह लगातार बारह वर्षों तक नौकरी करता रहता है। इस बीच वह अपनी पत्नी के पास न तो खाने के लिए रुपया भेजता है और न अपने कुशल वृत्तान्त का पत्र। उसकी पति-परायणा स्त्री इतने दीर्घ वर्षों तक उसके आगमन की प्रतीक्षा करती रहती है। परन्तु अन्त मे जब वह घर लौटकर आता है तब वह अपने साथ एक सौत को भी लिये आता है। इस पर उसकी विरहिणी तथा दु खिया स्त्री कहती है कि "तुम मेरे हृदय के दु खो को क्या समझ सकते हो? आज तुम बारह वर्षों के बाद तो घर पर लौट कर आये हो और उस पर भी मानों मेरी छाती पर कोदो दलने के लिए एक सवति (सौत) भी लेते आये हो।"

"आरे बारहो बरिस पर आना,
सवतिन लिये साथ
दिल का दरद ना जाना।"

एक झूमर के गीत मे सौत की कटु वाणी का उल्लेख हुआ है। कोई स्त्री अपने पति से पूछती है कि तुम्हारी आँखे मेरे ऊपर लाल क्यो हो रही है? तुम जो परदेश से मेरी सौत लाये हो, यह घटना मेरे कलेजे को बेध रही है और तिसके ऊपर तुम्हारा क्रोध। इससे मेरा हृदय काँप रहा है। ऐसा मैने कौन-सा अपराध किया है, जिसके कारण तुम मुझसे इतने नाराज हो?

'कवन गुनहिए चुकलो ए बालम,
तोर नयना रतनार।
सवती के बतिया करेजवा मे साले,
काँपेला जियरा हमार।।"

बहुविवाह की दूषित प्रथा के कारण, पति को अनेक विवाह करने का स्वच्छन्द अधिकार प्राप्त है। भोजपुरी प्रदेश के लोग नौकरी की खोज मे 'पुरुब देस' की ओर जाते है। वहा की किसी सुन्दरी के प्रेम-जाल मे फँसकर वे उससे विवाह कर' उस कुलटा को अपने घर लेकर आते हे। ऐसे ही किसी पति से उसकी पहिली पाणिगृहीती भार्या कहती है कि "ए पति! यदि मे 'बाँझ' (वन्ध्या) होती, अथवा लँगडी-लूली होती, या कोयल के समान काली होती, तब तो किसी अश मे तुम्हारे द्वारा इस सौत का लाना कुछ अश मे उचित कहा जा सकता था। परन्तु मैं तो पुत्रवती हूँ और इसके अतिरिक्त सर्वाङ्ग सुन्दरी हूँ, फिर तुम यह सौत क्यो ले आये? तुम तो मुझे अपने गले के हार के समान मानते थे, फिर तुमने यह अनुचित आचरण क्यो किया?"[1] इस गीत मे किसी रूप-गर्विता स्त्री की, सौत के आने पर, कितनी मार्मिक वेदना अन्तर्निहित है, जिसका वणन करना कठिन है। अपने पति को उसने जो उपालम्भ दिया है, वह कितना हृदय-स्पर्शी है।

वशी मे सपत्नी भाव—

सौत की कल्पनामात्र से ही स्त्रियो को इतनी चिढ़ (द्वेष) हो जाती है कि पति का मनोविनोद करनेवाली, परन्तु उसके अधर को चूमनेवाली (स्पर्श करनेवाली) वशी भी उन्हे सौत के प्रतीक के रूप मे ही दिखाई पडने लगती है। कोई पुरुष पलँग पर बैठकर वशी बजा रहा है। इतने मे उसकी स्त्री उससे आकर कहती है कि मैं सौत बनकर आपके वशी-वादन को सुनूँगी। वह गोपियो की भाँति वशी को भी अपनी सौत समझ रही है।

"राजा के बसी सेजरिया पर बाजे,
सवतिया हो के सुनबि राउर बसी।"

झूमर के एक गीत मे अपनी सौत की सत्ता के कारण किसी स्त्री को रात मे नीद नही आती। उसकी सौत उसके पति के साथ सो रही है, अत चिन्ता एव दुख के कारण उसकी नीद हराम हो गयी है।[2]

---

१ "मै तो तोरे गले का हार रजवा,
काहे को लायो सवतिया।
जाहु हम रहितीं बाँझ बझिनिया;
तब आइति सवतिनिया।।१।।
जब हम रहितीं काली कोईलिया,
तब आइति सवतिनिया।
रजवा हमरो सोटा अइसन देह;
काहे को लायो सवतिया।।२।।"
डॉ० उपाध्याय—भोजपुरी लोकगीत, भाग १, पृष्ठ ३०३।

२. लेखक का निजी सग्रह।

"लागति नाहीं निनिया ए राजा जी।
बायें सुतलि बा सवतिया ए राजा जी।
लागति नाहीं निनिया ए राजा जी॥"

सौतियाडाह का उग्र रूप

सौतियाडाह कभी-कभी उग्र रूप भी धारण कर लेता है। जब वाणी का [illegible] अथवा उससे जब काम नही चलता, तब हाथा-पायी तथा झोटा-झाटी की भी नौबत आ जाती है। [illegible] दो सौतो क आपस मे झोटा-झोटी करने—अर्थात् एक-दूसरे के बालो को पकडकर [illegible] है। इन दोनों के भयकर सग्राम को देखकर इनका अभागा पति द्वार पर बैठकर रो रहा है।[1]

"उढ़री, बियही दूनो करे, झोंटा झोंटवलि हो ना।
रामा राजा बइठि डेहरी पर झंखे हो ना॥"

सौत का 'जार' (द्वेष) इतना असह्य हो उठता है कि कभी-कभी स्त्रियाँ आत्महत्या तक कर डालती है। पति के साथ सोई हुई अपनी सौत को देखकर कोई स्त्री सास से आत्महत्या करने के लिए कटारी और छुरी माँग रही है, क्योकि सपत्नी का द्वेष उसके लिए असह्य हो रहा है।[2]

"देहु ना सासु हो छुरिया कटरिया।
कि हति हो मरबों ना हम आपन सवतिया॥"

इस प्रकार भोजपुरी लोकगीतो मे सौतो का आपसी सम्बन्ध अत्यन्त कटु, विषाक्त, भयकर और आत्मघाती पाया जाता है। भोजपुरी परिवार के सदस्यो मे जितना कटु और विषम सम्बन्ध इन सपत्नियो मे उपलब्ध होता है उतना अन्य किसी मे नही। इसीलिए किसी विषम तथा अत्यन्त कटु सम्बन्ध की उपमा 'सौतियाडाह' से दी जाती है। भोजपुरी 'सवति' एक ऐसी निरीह, दु खिया और उपेक्षित प्राणी है, जिसका उपमान संसार में खोज पाना अत्यन्त कठिन है। परन्तु जब उसका कष्ट उपेक्षा तथा अपमान की पराकाष्ठा की कोटि पर पहुँच जाता है तब वह भयकर और खूँखार प्राणी हो जाती है और वह आत्महत्याँ अथवा सौत की हत्या पर भी उतारू हो जाती है।

लोकगीतो मे सौतियाडाह का जो चित्रण किया गया है, वह सजीव, सटीक और नितान्त सत्य है। इसकी पुष्टि आज भी गाँवो मे होनेवाली 'आत्महत्या' से की जा सकती है। 'सौतियाडाह' वह विष है, जिसका परिणाम बड़ा ही भयंकर होता है।

(३) परिच्छेद
दिव्य की प्रथा

प्राचीन भारत मे दिव्य की प्रथा समधिक रूप में प्रचलित थी। चोरी करना, ऋण लेना, सीमा-विवाद-निर्णय, भूमि-हरण तथा पशुहरण आदि मामलो मे अपराधी का निर्णय करने के लिए 'दिव्य' का प्रयोग किया जाता था। जब अपराधी का पता लगाने मे साक्ष्य, लिखित प्रमाण आदि साधारण साधन असफल हो जाते थे, तब असाधारण और अलौकिक साधनों से काम लिया जाता था। इन साधनों के अलौकिक होने के कारण ही इस प्रथा को 'दिव्य' कहा जाता था।

भोजपुरी लोकगीतो मे 'दिव्य' के लिए 'किरिया लेना' शब्द का प्रयोग किया गया है। विष्णुधर्मसूत्र में अलौकिक प्रमाण को 'दैविकी क्रिया' कहा गया है।[3] अत 'किरिया लेना' शब्द इसी 'दैविकी क्रिया' का अपभ्रंश रूप ज्ञात होता है धीरे-धीरे 'दैविकी' शब्द का लोप हो गया और 'क्रिया' शब्द 'किरिया' के रूप मे परिवर्तित हो गया। भोजपुरी में शप

---

१. लेखक का निजी सग्रह।
२ दुर्गाशकर सिंह · भोजपुरी लोकगीतों में करुण रस, पृष्ठ १७७।
३. विष्णुधर्मसूत्र ९/१।

ब्राने को 'किरिया खाना' या 'किरिया लेना' कहा जाता है। अत 'किरिया लेना' शब्द शपथ लेना अथवा 'दिव्य' के लिए प्रयुक्त होता है। कही-कही 'किरिया लेना' के लिए 'विचरवा लेना' का भी प्रयोग पाया जाता है।[१]

दिव्य का प्रयोग

'दिव्य' का प्रयोग न्याय-सम्बन्धी विषयो के अतिरिक्त साधारण परिस्थितियो मे अपनी बात को प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए तथा अपने आचरण की विशुद्धता को सत्य सिद्ध करने के लिए भी किया जाता था। स्मृतिकार नारद ने लिखा है कि दिव्य का उपयोग उस समय भी किया जा सकता है, जब किसी स्त्री के सतीत्व के सम्बन्ध मे सन्देह उत्पन्न हो जाय।[२] परन्तु इस स्मृतिकार ने साधारणतया स्त्रियो के द्वारा दिव्य का प्रयोग निषिद्ध बतलाया है।[३] केवल विशेष अवस्थाओ मे ही स्त्रियो के द्वारा 'दिव्य' का प्रयोग किया जा सकता है।

भोजपुरी लोकगीतो मे 'दिव्य' की जो बहुश चर्चा उपलब्ध होती है, वह केवल स्त्रियो के लिए ही है और वह भी केवल उनके चरित्र की विशुद्धता की परीक्षा के लिए ही। यद्यपि पुरुषो मे भी चरित्र-सम्बन्धी दोष पाया जाता है और अनेक दुश्चरित्र पुरुषो का वणन भी इन गीतो मे उपलब्ध होता है, परन्तु शास्त्रकारो ने दिव्य का विधान केवल अबला जाति के लिए ही किया है, शक्ति-सम्पन्न पुरुष वर्ग के लिए नही। आगे के उदाहरणो से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

किसी स्त्री का पति परदेश गया है। वह अपनी स्त्री के भरण-पोषण के लिए धन भेजने की बात तो दूर रही, पत्र द्वारा अपना समाचार भी नही भेजता है। वह परदेस मे ही अपना दूसरा विवाह करके आनन्द की वशी बजाता है। परन्तु बारह वर्षों की दीर्घकालीन अवधि के पश्चात् जब वह घर लौटकर आता है, तब उसे अपनी पति-परायणा स्त्री के विशुद्ध चरित्र मे सन्देह उत्पन्न हो जाता है और वह उससे अपने चरित्र को शुद्ध प्रमाणित करने के लिए कहता है। अन्त मे वह दुःखिया अबला स्त्री 'दिव्य-प्रयोग' के द्वारा अपने आचरण को विशुद्ध प्रमाणित करती है, तभी वह उसे ग्रहण करता है, अन्यथा नही।

लोकगीतो मे स्त्री के अपने पिता और भाई तथा अन्य कुटुम्बियो के समक्ष दिव्य लेने का उल्लेख पाया जाता है। चन्दा नामक किसी स्त्री के सतीत्व पर उसका पति, सास एव ससुर अकारण सन्देह प्रकट करते हैं। तब चन्दा अपने पिता तथा भाई को बुलाती है एव ससुराल के सभी लोगो के सामने 'अग्नि-दिव्य' को लेती है। वह कडाही मे खौलते हुए तेल के पास खडी होकर अपने सतीत्व की परीक्षा देती है।[४]

गीतों में दिव्य के भेद

लोकगीतो मे छह प्रकार के 'दिव्यो' का उल्लेख पाया जाता है —(१) अग्नि, (२) आदित्य, (३) गगा (जल), (४) तुलसी, (५) तेल, और (६) सर्प-दिव्य। इनमे से आदित्य (सूर्य), तुलसी और सर्प-दिव्य बिल्कुल नये तथा मौलिक है। इनका उल्लेख स्मृतिकारो ने नही किया है। गगा-दिव्य—जिसे लोकगीतो मे 'गगा-विचार' कहा गया है—जल-दिव्य का ही दूसरा नाम है। गीतो मे वर्णित तैल-दिव्य धर्मशास्त्रो मे प्रतिपादित 'तप्तमाष दिव्य' मे अन्तर्भुक्त किया जा सकता है। सर्प-दिव्य को स्मृतिकारो ने 'घट-सर्प-दिव्य' बतलाया है।[५] परन्तु इसका विशेष उल्लेख नही मिलता। तुलसी-दिव्य और आदित्य-दिव्य का विधान स्मृतियो मे उपलब्ध नही होता।

१ डॉ० उपाध्याय भोजपुरी लोकगीत, भाग १, पृष्ठ १६७।
२ नारदस्मृति ४/२४२।
३ वही ४/२५६।
४ "रामा ऊँचे ऊँचे बइठे, मोरा ससुरा के लोगवा रे ना।
रामा खालावा बइठे, मोर भइया, बाबा रे ना॥
रामा बडे बडे पागा बान्धे, ससुरा के लोगवा रे ना।
रामा भइया, बाबा बान्धे, अँगवछिया रे ना॥
रामा तेहि बीच चढ़िहे करहिया रे ना।
रामा तेहि ढिग खाड़ा सती चन्दा रे ना॥"

—रामनरेश त्रिपाठी ग्राम गीत, पृष्ठ ३३४।

५. व्यवहार-तत्त्व, पृष्ठ ५७६।

दिव्य का अवसर

लोकगीतो मे दिव्य का वर्णन केवल एक ही अवसर पर पाया जाता है और वह है परदेश से घर लौटने पर। मध्यकाल मे जब यातायात का साधन नही था, जब न रेलगाड़ी थी और न पक्की सड़कें थी, तब ग्रामीण लोग अपनी जीविका के उपाजन के लिए परदेस जाते थे और दस-बारह वर्षों के पश्चात् ही घर लौटते थे। तब उनके मन में शंका होती थी कि उनकी पति-परायणा स्त्रियाँ, अपने 'सतीत्व' की रक्षा कर सकी है या नही इसकी परीक्षा वे घर लौटने पर लिया करते थे। इसी अवसर पर वे अपनी स्त्री को अपने सतीत्व को प्रमाणित करने के लिए 'दिव्य' के लिए बाध्य करते थे।

कोई पति बारह वर्षों के पश्चात् परदेश से घर लौटता है। उसकी चुगलखोर बहिन उसकी स्त्री के आचरण की निन्दा करती है। अतएव वह अपनी बहिन की बातो पर विश्वास कर अपनी स्त्री के आचरण की शुद्धता की परीक्षा करना चाहता है। बहिन अपने भाई से चुगली लगाती हुई कहती है कि 'भइया! तुम भौजी से सतीत्व की परीक्षा ले लो।'[1] वह दुखिया स्त्री बढई से प्रार्थना करके लकड़ी, लोहार से कड़ाही, तेली से तेल और कुम्हार से मिट्टी का घड़ा मँगवाती है। वह खौलते हुए तेल से भरी कड़ाही मे खड़ी होकर सूर्य से प्रार्थना करती है कि 'हे भगवान! यदि मै पतिव्रता होऊँ तो तुम मेरी प्रतिष्ठा की रक्षा करना।'[2] जब वह स्त्री 'गंगा किरिया' लेने के लिए जाती है तब घड़े का पानी सूख जाता है। 'सुरुज किरिया' लेते समय भगवान् सूर्य बादलो मे छिप जाते है। इसी प्रकार 'अगिनि किरिया' लेने की बेला पर कड़ाही का खौलता हुआ तेल पानी के समान ठण्डा पड़ जाता है। इस तरह से वह पतिव्रता स्त्री सतीत्व की अग्निपरीक्षा मे उत्तीर्ण हो जाती है।[3]

उपर्युक्त गीत मे तैल-दिव्य का सुन्दर चित्रण किया गया है। कोई स्त्री खौलते हुए तेल मे हाथ डालती है परन्तु उसके सतीत्व के प्रताप से वह गर्म तेल पानी की भाँति शीतल हो जाता है। स्मृतियो मे जल-दिव्य के वर्णन मे जल के भीतर कुछ देर तक तैरने का विधान बतलाया गया है। परन्तु इस गीत मे गंगा जी की शपथ खाने से घड़े के जल का सूखने का उल्लेख पाया जाता है। सूर्य-दिव्य मे सती के प्रताप से सूर्य के अस्त हो जाने अथवा छिप जाने का उल्लेख यहाँ किया गया है।[4]

भगवान् रामचन्द्र ने लंका की अशोक-वाटिका मे अनेक वर्षों तक निवास करनेवाली सती, साध्वी सीता की जिस प्रकार अग्नि-परीक्षा ली थी, उसी प्रकार कोई राजा अपनी स्त्री के सतीत्व पर सन्देह करता हुआ उसकी अग्नि-परीक्षा ले रहा है। पति-परायणा वह रानी धधकती हुई आग के बीच मे खड़ी होकर कहती है कि हे अग्निदेव! यदि मुझमे 'सत' (सतीत्व) हो, तो मेरी देह तनिक भी न जले। यह सुनते ही आग शान्त हो जाती है।[5]

१ "गोडावा धोवत बहिनी लागेली चुगुलिया,
भइया भऊजी से लेहु किरियवा हो राम।।" —डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोकगीत, भाग १।

२. "धरि गइली अगिया, औ भभकी करहिया रे,
बहिनी खड़ी किरिया देइ हो राम।
हे मोर सुरुज! हमार पति राखेऽ,
जो हम होई सतवन्ती हो राम।।" —दुर्गाशंकर सिंह : भो० लो० गी० क० र०, पृ० १४२-४३।

३ "जब बहिनी गइली अगिनि किरियवा हो।
खौलल तेल भइल जुड़ पनिया हो राम।।
एक डाँई डारै, दोसर डाँई डारै।
तीसरे उतरि गइली पारवा हो राम।।" —वही, पृष्ठ १४२-४३।

४ "जब बहिनी गइली गंगा किरियवा हो;
तब गगरी गइली झुराई हो राम।
जब बहिनी गइली सुरुज किरियवा हो,
उगल सुरुज गइले छिपाइ हो राम।।" —दुर्गाशंकर सिंह : भो० लो० गी० क० र०, पृष्ठ १४२-४३।

५ "जहुँ तुहुँ अगिया सत के होइबू रे ना।
आग! तिल नाहीं जरे मोर देहिया रे ना।।
लहकल अगिया बुताइल रे ना।
आ रे ताही बिच ठाढ़ी सती रनिया रे ना।।" —रामनरेश त्रिपाठी : ग्राम गीत, पृ० २५६।

केवल मनुष्य ही नही, देवतागण भी अपनी स्त्रियो की सतीत्व की परीक्षा करने मे सलग्न दिखाई पडते है। भोले-बाबा शिव जी भी पावती के विशुद्ध आचरण की परीक्षा करते हुए पाये जाते है। शिव के सतत आग्रह करने पर पार्वती गगा, अग्नि तथा सर्प-दिव्य के द्वारा अपनी निर्दोषता प्रमाणित करती है। जब पावती जलती हुई अग्नि मे अपना हाथ डालती है, तब आग ठण्डी पड जाती है। जब वे गगा मे डूबने जाती है, तब गगा जी का जल सूख जाता है। सप-दिव्य के अवसर पर जब वे सप को अपने हाथ से स्पश करती है, तब काटने के स्थान पर वह शान्त होकर बैठ जाता है।[1] एक अन्य गीत मे 'तुलसी-दिव्य' की चर्चा की गयी है। पार्वती ने अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए जब तुलसी को अपने हाथो मे उठाया, तब तुलसी जी सूख गयी और इस प्रकार पावती का सतीत्व प्रमाणित हो गया।

इन दिव्यो की आवृत्ति अनेक गीतो मे बराबर हुई है। इनके उल्लेख से हमे भारतीय नारी के अलौकिक सतीत्व का परिचय प्राप्त होता है। अपने पातिव्रत-धम को प्रमाणित करने के लिए हँसते-हँसते अग्नि का आलिगन करना—आग मे कूद पडना—भारतीय ललनाओ का ही काम है।

दिव्य लेने का समय

याज्ञवल्क्य[2] तथा नारद[3] आदि स्मृतिकारो का मत है कि प्रधान न्यायाधीश के द्वारा सभी प्रकार के दिव्य प्रात काल, सूर्योदय के समय अथवा पूर्वाह्न मे ही लेना चाहिए। याज्ञवल्क्य स्मृति की टीका मिताक्षरा के अनुसार रविवार का दिन इस काय के लिए शुभ एव उचित है।[4] विभिन्न दिव्यो के लिए विभिन्न ऋतुओ और मासो को उचित बतलाया गया है। लोक-गीतो मे दिव्य अथवा 'किरिया लेने' के लिए किसी विशेष ऋतु, मास अथवा दिन का उल्लेख नही मिलता। हाँ, एक गीत मे त्रयोदशी तिथि की चर्चा अवश्य उपलब्ध होती है। कोई स्त्री कहती है कि आज एकादशी है, कल द्वादशी तिथि होगी। अत मैं परसो त्रयोदशी के दिन 'किरिया' लूगी।[5] शास्त्रकारो ने लिखा है कि दिव्य लेनेवाले व्यक्ति को व्रती होना चाहिए। सम्भवत इसीलिए एकादशी और द्वादशी को व्रत रखकर त्रयोदशी के दिन दिव्य लेने का उल्लेख इस गीत मे किया गया है।

दिव्य लेने की विधि

लोकगीतो मे दिव्य लेने के समय किसी विशेष शास्त्रीय विधि-विधान का उल्लेख नही पाया जाता। एक लोकगीत मे दिव्य लेने के पहिले कोई स्त्री सूर्य भगवान् से प्रार्थना करती है कि ए भगवान्! यदि मै सती होऊँ, तो तुम मेरी प्रतिष्ठा को बचा लो अर्थात् मुझे निर्दोष प्रमाणित कर दो।[6] इसके अतिरिक्त किसी अन्य विधि-विधान का उल्लेख उपलब्ध नही होता।

●

१ "जब रे गउरा अगिनि हाथ लवली,
अगिनि गइली निझाई।।
जब रे गउरा गगा बीचे पइठली,
गगा जी गइली सुखाई।।
जब रे गउरा सरप हाथ लवली,
सरप बइठे फेंटा मारि।।"

—डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोकगीत, भाग १।

२ याज्ञवल्क्यस्मृति २/९७।

३ नारदस्मृति ४/२६८, ३१०।

४. याज्ञवल्क्यस्मृति २/९७ की टीका मे मिताक्षरा का उल्लेख।

५. "आजु एकादसिया, बिहान दुआदसिया,
तेरसिया के लेइबो किरियवा रे ना।"

—रामनरेश त्रिपाठी : ग्राम गीत, पृष्ठ २८७।

६. रामनरेश त्रिपाठी : ग्राम गीत, पृष्ठ २८७।

अध्याय—५

संस्कार

○ ◉

सस्कार के भेद

हिन्दू धमशास्त्रकारो ने षोडश सस्कारो का विधान किया है जिनमे कुछ—पुसव आदि तो सन्तति के जन्म के पहिले किया जाता है और कुछ सस्कारो का सम्पादन जन्म के बाद होता है। भोजपुरी प्रदेश मे प्रधानतया छह सस्कार ही प्रसिद्ध है —(१) पुत्र-जन्म, (२) मुण्डन, (३) यज्ञोपवीत, (४) विवाह (५) गवना (६) मृत्यु। इन छह सस्कारो मे से केवल तीन ही सस्कार अत्यन्त प्रसिद्ध है, जिनका सभी जाति के लोग निश्चित रूप से करते है —(१) जन्म (२) विवाह, और (३) मृत्यु। ये तीन सस्कार ऐसे हैं, जिनकी सत्ता समाज की समस्त सभ्य तथा असभ्य जातियो मे पायी जाती है। सम्भवत ससार की कोई भी ऐसी जाति नही होगी, जिनमे इन उपर्युक्त अवसरो पर कोई सस्कार न किया जाता हो।

धर्मशास्त्रकारो द्वारा जन्म के पूर्व जिन सस्कारो का वर्णन किया गया है उनमे गर्भाधान और पुसवन प्रधान हैं। भोजपुरी क्षेत्र मे पर्दे की प्रथा अत्यन्त भयकर रूप मे प्रचलित है। जैसा कि पहिले अन्यत्र लिखा जा चुका है पति अपनी पत्नी से केवल रात्रि मे ही चोर की भाँति चुपके से आकर मिल सकता है जिससे घर के अन्य सदस्य इस बात को किसी प्रकार जानने न पावे। ऐसी परिस्थिति मे गर्भाधान सस्कार के विधान की कल्पना ही असम्भव है। सच तो यह है कि गर्भाधान हो जाने के अनेक महीनो बाद तक स्त्रियाँ इस रहस्य को छिपाये रहती है कि उनका बच्चा होनेवाला है। यदि उनके शारीरिक लक्षणो को देखकर कोई स्त्री उनसे इस बात की चर्चा करती है, तो उन्हे उसे वे बुरा भला कहने लगती है मानो उस स्त्री ने किसी अपराध का उद्‌घाटन कर दिया हो। गर्भवती स्त्री इस बात को अन्त तक छिपाये रहती है कि वह किसी बच्चे की माता बननेवाली है। सन्तति के जन्म तक 'श्रुत मे गोपाय' की भाँति उनका एकमात्र 'मोटो' रहता है "गर्भ में गोपाय।" बच्चे का पिता भी—यदि उसकी अवस्था छोटी है, तो इस बात को किसी से कहने मे लज्जा का अनुभव करता है।[1] कहने का आशय यह है कि पर्दे की प्रथा की कठोरता, लज्जा की अतिशयता और गोपनीयता के कारण इस क्षेत्र में गर्भाधान सस्कार का अत्यन्त अभाव है। शहरों मे—विशेषकर काशी नगरी मे, गर्भ के आठवें मास में 'अठमासा' अवश्य मनाया जाता है, जिस दिन स्त्रियाँ नाच और गान का आयोजन करती हैं।

प्राचीनकाल मे 'पुसवन' सस्कार का विधान किया जाता था, जिसका उद्देश्य यह था कि जो सन्तति उत्पन्न हो, वह पुत्र हो, कन्या नही। परन्तु गर्भाधान की गोपनीयता के कारण पुंसवन-संस्कार का विधान सम्भावना की परिधि के बाहर की बात है। परन्तु जिन स्त्रियो को कोई पुत्र पैदा नहीं होता, वे कार्तिक मास में 'षष्ठी' का व्रत करती हैं और भगवान् सूर्य की उपासना करके पुत्र-प्राप्ति की याचना करती हैं।

(१) परिच्छेद

पुत्र-जन्म

भोजपुरी-क्षेत्र मे सर्वप्रथम सस्कार, जिसका सम्पादन विधिवत् किया जाता है पुत्र-जन्म है। यह अवसर बडे ही उछाह और उत्साह का माना जाता है। भोजपुरी घर मे एक कक्ष बच्चा जनने के लिए 'रिजर्व' रहता

१ मेरे एक परिचित मित्र—जिनकी अवस्था अभी छोटी ही थी—को पुत्र पैदा हुआ। उनकी स्त्री अपने मायके में थी। अत घर के किसी व्यक्ति को इसकी सूचना नहीं दी गयी। जब उनका पुत्र छह मास का हो गया और उसके अन्नप्राशन सस्कार करने की तैयारी होने लगी, तब इस रहस्य का उद्‌घाटन उन्होंने अपने पिता-माता से किया। उन लोगों को यह जानकर बडा आश्चय हुआ कि उनके पौत्र का जन्म आज से छह मास पहिले हो गया था, परन्तु उनको इस घटना की सूचना तक नहीं दी गयी।

है। घर की स्त्रियो का विश्वास है कि उस घर मे बच्चा पैदा होना शुभ होगा। अत जब किसी स्त्री को बच्चा पैदा होनेवाला होता है, तब उसी घर मे रखा जाता है। गाँवो मे न तो 'मेटर्निटी हास्पिटल' होता है और न कोई 'ट्रेण्ड नर्स' ही उपलब्ध होती है। अत ऐसी स्थिति मे गाँव की चमाइन—चमार की स्त्री—ही नर्स या धाय का काम करती है। बच्चा पैदा हो जाने के पश्चात्, घर का कोई व्यक्ति चमाइन को बुलाने के लिए जाता है। जब चमाइन को यह मालूम हो जाता है कि पुत्र पैदा हुआ है, तब तो वह आने मे शीघ्रता करती है, परन्तु पुत्री-जन्म का नाम सुनते ही उसकी गति मे मन्थरता आ जाती है। इसका कारण यह है—कि पुत्र-जन्म के अवसर पर उसे 'नेग' अर्थात् दक्षिणा अधिक मिलती है, परन्तु पुत्री-जन्म पर दक्षिणा की मात्रा मे कमी हो जाती है।

जब गर्भवती स्त्री को प्रसव-पीडा होने लगती है, तब गाव की बूढी स्त्रियाँ बुलायी जाती है। वे समझ जाती है कि अब प्रसव-काल समीप आ गया है और वे इस पीडा को सहन करने के लिए उसे धैय प्रदान करती है। बच्चा पैदा हो जाने के पश्चात् चमाइन बुलायी जाती है। वह बालक के नाल को काटने के लिए नेग मे सोने की छूरी माँगती है। यदि घर मे साधारण छूरी उपलब्ध हो गयी तो ठीक, अन्यथा शाक चीरने के हँसुए से ही यह कार्य सम्पादित किया जाता है। चाकू या हँसुए के 'भोथर' होने के कारण कभी कभी नाल ठीक से नही कटता, अत उसमे विकार उत्पन्न हो जाता है। यदि चमाइन इस कार्य मे अनुभवी नही हुई, तो नाल को 'जियतार' काट देने के कारण खून निकलने लगता है। इस नाल (प्लेसेण्टा) तथा अन्य गन्दी वस्तुओ को लेकर वह किसी बाँस के झुरमुट अथवा झाडी मे फेक देती है। इस प्रक्रिया को 'खेढी सेराना' कहते है। चमाइन गभवती के शरीर को दबाती है तथा अन्य आवश्यक कार्यो का सम्पादन करती है। आज से लगभग तीस-चालीस वर्ष पहिले इस काय के लिए इस ग्रामीण धाय को एक आना (आधुनिक छह पैसे) नेग के रूप मे दिया जाता था, परन्तु पुत्री के जन्म पर यह दक्षिणा आधी ही दी जाती थी अर्थात् उसे केवल एक टका—दो पैसा—ही मिलता था।

सूतिका-गृह

जिस घर मे बच्चा पैदा होता है, उसे 'सूतिका-गृह' कहते है। भोजपुरी मे इसे 'सउरि' कहा जाता है। इस गृह मे चमाइन को छोडकर किसी अन्य व्यक्ति का प्रवेश निषिद्ध माना जाता है। चमाइन भी जब घर मे प्रवेश करती है, तब अपने पैरो को सदा धोती है, जिससे किसी प्रकार की गन्दगी भीतर न चली जाय। इस सूतिका-गृह के आगे दरवाजे पर मिट्टी की बनी अँगीठी, जिसे 'बोरसी' कहते है—मे निरन्तर आग जला करती है, जिससे बुरी प्रेतात्माएँ (Evil spirits) घर मे प्रवेश कर नवजात शिशु को किसी प्रकार से हानि न पहुँचा सके। इस बोरसी मे गोइठा (उपला), लकडी तथा धान की भूसी जलायी जाती है, जिससे कभी बुझने न पाये। आग मे जलाने के लिए जो वस्तुएँ डाली जाती है, उसे 'पाँसधि' कहते है। लोकगीतो मे चन्दन की लकड़ी को 'पाँसधि' मे जलाने का उल्लेख पाया जाता है। इससे ज्ञात होता है कि धनी लोगो के घरो मे सूतिका-गृह के द्वार पर उत्तम तथा सुगन्धित लकडी जलायी जाती थी, जिसके कारण सारा वातावरण सुगन्धित हो जाता था। कही-कही इस सूतिका-गृह के द्वार के ऊपरी भाग मे कोई पुराना जूता, सेहुँड का काँट आदि टाँग दिया जाता है। लोगो का ऐसा विश्वास है कि ये वस्तुएँ भूत-दूतो के लिए प्रतिबन्धक का कार्य करती है।

भोजपुरी मे जच्चा को 'अलवाँति' कहा जाता है। वह जब तक सूतिका-गृह मे रहती है, तब तक उसके स्वास्थ्य तथा भोजन पर बडा ध्यान रखा जाता है। उसे प्रतिदिन दूध मे पिसी हल्दी को मिलाकर पीने के लिए दिया जाता है, जिससे उसके शरीर का दर्द दूर हो जाय। अलवाँति को खाने के लिए प्राय हलुआ दिया जाता है, जिसे 'काँची' कहते है। यह काँची, कडाही मे आटे को भूनकर और उसमे गुड डालकर तैयार की जाती है, जो स्वाद मे बहुत अच्छी नही होती। पुत्र उत्पन्न होने पर जच्चा का बडा आदर किया जाता है। उसके लिए दूध, घी तथा फल खाने का भी प्रबन्ध किया जाता है। परन्तु पुत्री उत्पन्न होने पर उसके भोजन-प्रबन्ध मे कुछ शिथिलता आ जाती है। जगल की जडी-बूटियो को पीसकर उसे 'काँची' मे मिलाकर जच्चा को दिया जाता है, जिसे 'ओछवानी' की सज्ञा प्राप्त है। धनी लोग काजू, किशमिश डालकर स्वादिष्ट लड्डू भी इसके लिए तैयार करवाते है। काँची यद्यपि गरिष्ठ भोजन है, फिर भी प्रधानतया जच्चा को यही खाने के लिए दिया जाता है।

जच्चा और बच्चा की रक्षा के लिए सूतिका-गृह के बाहर—द्वार पर—एक बूढी औरत दिन-रात निगरानी करती रहती है। पहरेदार की भाँति वह चौबीस घण्टे वही पडी रहती है। इसे 'सउरी अगोरना' कहा जाता है। बूढी औरतो के द्वारा सदा चौकन्ना रहकर सूतिका-गृह की रक्षा करने के कारण ही 'सउरि अगोरना' भोजपुरी मे मुहावरे के रूप मे प्रचलित हो गया है, जिसका अर्थ है सतत सावधान रहते हुए, सतर्कता के साथ किसी वस्तु की रक्षा करना। सूतिका-गृह मे बिल्ली न घुसने पावे, इस बात का बड़ा ही ध्यान रखा जाता है। स्त्रियो का ऐसा विश्वास है कि कही बिल्ली के रूप मे यमराज ही सूतिका-गृह

प्रवेश कर बच्चे को न छू दें। यदि बच्चों की किसी कारण से 'सउरि' में ही मृत्यु हो गयी, तो उसे 'यम खाना' कहते हैं अर्थात् यमराज ने उसके शरीर को स्पर्श कर उसे मार डाला। कहने की आवश्यकता नहीं कि गन्दगी ही जिसकी सूतिका-गृह में प्रधानता रहती है, वह यमराज है, जिसके कारण बच्चे अकाल में ही काल-कवलित हो जाते हैं। जितने दिनों तक सूतिका गृह मे रहती है, उतने समय तक उसके शरीर का प्रसाधन तथा अलंकरण नहीं होता। वह बहुत से दिनों तक स्नान भी नही करती। उसके लम्बे बाल खुले रहते है, जिनमें तेल लगाना भी वर्जित है।

बच्चा के पैदा होने के दूसरे दिन पुरोहित जी, ज्योतिषी या कुल के पण्डित जी बुलाये जाते हैं जिनसे जच्चा के स्नान का शुभ मुहूर्त पूछा जाता है। यह दिन रविवार अथवा मंगलवार ही होना चाहिए। इस प्रकार जच्चा को कम से कम एक सप्ताह तक 'सउरि' में रहना पड़ता है। शुभ दिन को वह सूतिका गृह से बाहर निकलती है और स्नान करती है। इस दिन वह नवीन वस्त्र को धारण करती और अपने शरीर का प्रसाधन करती है। वह घर की सास, जेठानी तथा अन्य बड़ी स्त्रियों को, अपने आँचल को उनके पैरो पर रखकर प्रणाम करती है। वे उसकी माँग में सिन्दूर लगाकर उसे अहिवातिनी (सौभाग्यवती) होने का आशीर्वाद देती हैं। इस प्रकार जच्चा को सूतिका-गृह से मुक्ति मिलती है।

भोजपुरी घरो मे जब पुत्र पैदा होता है, तब उसके जन्म की प्रसन्नता में 'छीपा' (थाली) बजाया जाता है, जो प्रायः पीतल का होता है। गाँवो मे किसी अन्य वाद्य-यन्त्र की तत्काल उपलब्धि के अभाव में थाली ही बजाने की प्रथा है जो प्राचीन-काल मे इस अवसर पर गायन, वादन तथा नृत्य के रूप में किया जाता था। 'छीपा' बजाने से नवजात शिशु के कानों में शब्द प्रवेश करता है, जिससे उसकी श्रवण-शक्ति जागृत हो जाती है। इस कारण थाली बजाने का यह वैज्ञानिक रहस्य समझना चाहिए। इस प्रथा के कारण 'छीपा बजाना' आजकल भोजपुरी में मुहावरा के रूप में प्रचलित हो गया है, जिसका अर्थ है किसी अवसर पर अपनी हृद्गत प्रसन्नता को प्रकट करना।

बालक जब 'सतइसा'[1] मे 'पड़ जाता' है, तब यह बुरा माना जाता है। पिता सत्ताइस दिनों तक उसका मुँह नही देख सकता। ठीक सत्ताइसवें दिन सत्ताइस वृक्षों की लकड़ी मँगायी जाती है। इसी लकड़ी से हवन सम्पन्न होता है। पण्डित लोग आवश्यक पूजा का विधान करते हैं। इसके उपरान्त बालक का पिता, अपने बच्चे के प्रतिबिम्ब को, थाली में रखे गये तेल मे देखता है। इस प्रक्रिया के बाद ही वह अपने पुत्र के मुख को साक्षात् देखने में समर्थ होता है। यदि किसी विशेष कारणवश सत्ताइसवें दिन पूजा-पाठ का विधान न हो सका, तो दूसरे या तीसरे सत्ताइसवें दिन इस कार्य को सम्पादित किया जाता है।

परन्तु यदि बालक का जन्म अभुक्त मूल नक्षत्र[2] मे हो, तो यह अत्यन्त अशुभ माना जाता है। लोगों का यह दृढ़ विश्वास है कि ऐसी स्थिति मे माता या पिता की अवश्य मृत्यु हो जाती है अथवा बालक ही स्वयं मर जाता है। इसी कारण मूल नक्षत्र मे उत्पन्न बालक को अमंगलकारक मानकर, उसका परित्याग कर दिया जाता है। गोस्वामी तुलसीदास के सम्बन्ध मे यह किम्वदन्ती प्रसिद्ध है कि उनका जन्म इसी मूल नक्षत्र में हुआ था। अतः इनके माता पिता ने इनको छोड़ दिया था। इनका लालन-पालन इनके गुरु नरहरिदास ने किया था। मूल नक्षत्र में उत्पन्न बालक की अशुभ ग्रहों की शान्ति के लिए विशेष पूजा पाठ का विधान पाया जाता है। यदि ग्रह-शान्ति के लिए उचित उपचार नहीं किया गया, तो माता पिता--दोनों में किसी एक की मृत्यु निश्चित ही समझनी चाहिए।

(१) अनुच्छेद—गायन, वादन तथा नृत्य

लड़का पैदा होने पर घर की स्त्रियाँ एकत्रित होकर पुत्र-जन्म के सम्बन्ध में गीत गाती हैं, जिन्हें 'सोहर' कहा जाता है। इन सोहर के गीतो में आनन्द और उछाह का वर्णन पाया जाता है। इन गीतों को दो भागो में विभक्त किया जा सकता है—(१) पूर्व पीठिका, और (२) उत्तर पीठिका। प्रथम प्रकार के गीतो में जहाँ गर्भिणी स्त्री की शरीर यष्टि का वर्णन होता है, वहाँ उत्तर पीठिका के गीतो मे माता-पिता के आनन्द का उल्लेख होता है। सोहर गाने का यह क्रम दस-बारह दिनों तक चलता रहता है। चूंकि पुत्री का जन्म अभिनन्दनीय नहीं समझा जाता, अतः इस अवसर पर 'सोहर' के गीत नहीं गाये जाते।

१ सत्त इसा।
२ मूल नक्षत्र।

धनी तथा समृद्ध लोग पुत्र-जन्म के शुभ अवसर पर नाच-गान का आयोजन करते है। उनके घर 'पौरियाँ' आकर नाचते हे। ये 'पौरियाँ' लोग प्राय मुसलमान होते हैं, जो ऐसे अवसरो पर नाचने का काम करते है। ये एक गीत भी गाते है, जिसकी पहिली कडी है —

"सिरि रामचन्द्र जनम लिहले चहुत रामनवमी।"

ये नृत्य करते समय ढोल और झाल भी बजाते जाते है। इस प्रकार पौरियो का यह नाच गायन, वादन और नृत्य की वह त्रिवेणी है, जिसमे अवगाहन कर मन को बडा आनन्द प्राप्त होता है। वाल्मीकीय रामायण मे भगवान् रामचन्द्र के जन्म के शुभ अवसर पर नृत्य और गायन का वणन पाया जाता है।[1] अत भोजपुरी प्रदेश मे प्रचलित यह प्रथा प्राचीन परम्परा की कडी समझनी चाहिए।

(२) अनुच्छेद—छठी और बरही-सस्कार

जच्चा को प्राय छह दिनो के पश्चात् सूतिका गृह से मुक्ति मिलती है। उस समय जो विधि-विधान किया जाता है, उसे 'छठी' कहते है। परतु यह 'छठियार' के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। जब नवजात शिशु बारह दिनो का हो जाता है, उस दिन जो सस्कार किया जाता है, उसको 'बरही' की सज्ञा प्रदान की गयी है। इस दिन पुरोहित या गुरु जी आकर बालक का नामकरण-सस्कार सम्पादित करते है, उसकी जन्म कुण्डली बनाते और घर के बडे-बूढे उस शिशु के दीघ आयुष्य की कामना करते है। इस दिन ब्राह्मणो को भोजन कराया जाता है और गरीबो मे अन्न और धन का वितरण होता है।

(३) अनुच्छेद—गर्भिणी स्त्री के लिए विहित तथा निषिद्ध कर्म

गाँवो मे गर्भिणी स्त्रियो के लिए अनेक विधि-निषेधो का प्रतिपादन किया गया है। घर के लोगो का यह कतव्य है कि गर्भिणी को उन सभी भोज्य-पदार्थों को देवें, जिसको खाने की वह इच्छा प्रकट करे। ऐसा नही करने से नवजात शिशु के मुँह से लार सदा टपकता रहता है, जो उसकी माता की भोजन-सम्बन्धी इच्छा की पूर्ति न करने का प्रतीक समझा जाता है। गर्भिणी जिस गृह मे शयन करे, उसको देवी-देवताओ के चित्रो से सजाना आवश्यक है, क्योकि इन देवताओ का प्रभाव गर्भस्थ शिशु के जीवन पर पडता है।

परन्तु विधि की अपेक्षा निषेधो की सख्या कही अधिक है। गर्भिणी स्त्री के लिए ग्रहण देखना निषिद्ध है। उसे वर्षा ऋतु मे बिजली की चमक तथा बादलो की गडगडाहट नही सुननी चाहिए, क्योकि इससे गभपात का भय बना रहता है। इसी प्रकार से उसे किसी नदी, नाले को पार नही करना चाहिए, क्योकि इससे डूबने का भय रहता है। प्राचीनकाल मे पति की मृत्यु के पश्चात् सती होना धर्म समझा जाता था। परन्तु गर्भवती स्त्री के लिए सह-मरण शास्त्रकारो ने भी निषिद्ध बतलाया था। यद्यपि वर्तमानकाल मे सती-प्रथा का लोप हो गया है, फिर भी पति के निधन के पश्चात् दुख की अतिशयता से अथवा निर्धनता के कष्ट से गर्भिणी स्त्री का सह-मरण समाज के द्वारा वर्जित है। ऐसी स्त्री को ऊँचे पहाड पर नही चढ़ना चाहिए और न नीचे किसी गत मे ही उतरना चाहिए, क्योकि इससे गभपात का भय बना रहता है।

गर्भिणी स्त्री को बरें नही खाना चाहिए। क्योकि स्त्रियो का यह विश्वास है कि जो लडका पैदा होगा, वह अधिक बडबडायेगा अर्थात् व्यथ मे बकवास करेगा। इसलिए जो लडका अधिक बरबराता है, उसके सम्बन्ध मे घर की स्त्रियाँ कहती है कि इसकी माँ ने अपनी गर्भावस्था मे बरें अधिक खाया होगा। इसी प्रकार से सूरन खाना भी उनके लिए वर्जित है, क्योकि ऐसा करने से खुजली उत्पन्न होती है। ऐसी स्त्री के लिए किसी कठोर, अपाच्य वस्तु का भोजन निषिद्ध है, जो आयुर्वेद की दृष्टि से सर्वथा उचित है।

(२) परिच्छेद

मुण्डन-सस्कार

बालक जब कुछ बडा हो जाता है, तब उसके बालो को काटा जाता है। इस प्रकार इस प्रथम बार केश-कर्तन के कार्य को मुण्डन-सस्कार कहते है। सस्कृत मे इसे 'चूडाकम' सस्कार कहा जाता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस

१ वाल्मीकि रामायण (बालकाण्ड) १८/१६।

मे गुरु वशिष्ठ के द्वारा राम के चूडाकर्म-सस्कार करने का उल्लेख किया है।' यह हमारे षोडश सस्कारो मे से एक संस्कार है। इस सस्कार के पहिले बालक के बालो का काटना निषिद्ध समझा जाता है। [illegible] बालो का साफ करने के लिए कघी का भी प्रयोग नही किया जाता। इस प्रकार बच्चो के बालो मे '[illegible]' [illegible] जटा बन जाती है, जो उनके लिए बडी ही कष्टदायक होती है।

मुण्डन सस्कार बालक के जन्म के प्रथम, तृतीय, पचम या सप्तम अर्थात् विषम वर्षो मे सम्पादित किया जाता है। इससे अधिक वर्षों तक इस सस्कार को टालना अनुचित है। कोई स्त्री, जिसके पुत्र का मुण्डन बारह वर्षो तक नही हुआ है, अपने पति से इस कार्य के अनौचित्य के प्रति सकेत करती हुई कहती है कि —

"आरे आरे स्वामी कवन राजा,
कहल कुछु मानहु हो।
बारह बरिस के लाल भये,
तुहू मुण्डन करावहु हो।।'

अर्थात हे पति! मेरा कहना मानो। मेरा बालक बारह वर्ष का हो गया है। अब तो इसका मुण्डन कराओ।

भोजपुरी स्त्रियाँ पुत्र की प्राप्ति के लिए भिन्न-भिन्न देवी और देवताओ की मनौती मानती है और उनसे प्रार्थना करती है कि यदि मुझे पुत्र उत्पन्न होगा, तो हे देव! मैं तुम्हारे ही स्थान पर उसका मुण्डन सस्कार सम्पादित कराऊँगी। इस प्रकार बालक का मुण्डन किसी पवित्र देव-स्थान अथवा तीर्थ-स्थान मे होता है। इस कार्य के लिए भोजपुरी प्रदेश के अधिकांश लोग मिर्जापुर जिले मे स्थित विन्ध्याचल जाते हैं और वहाँ विन्ध्यवासिनी देवी के मन्दिर मे अपनी मनौती को पूरा करते है। परन्तु साधारणतया लोग किसी स्थानीय मन्दिर अथवा किसी पवित्र नदी के किनारे इस सस्कार का विधान करते हैं। आश्विन—कुवार और नवरात्र के दिनो मे विन्ध्यवासिनी देवी के मन्दिर के प्राङ्गण मे ऐसे बालको की भीड़ देखी जा सकती है, जो इसी कार्य के लिए वहाँ आते हैं। एक ही पक्ति मे वहाँ बीसियों बालक एक साथ बैठा दिए जाते है और हजाम—नाई—बारी बारी से प्रत्येक बालक को मूड़ता जाता है। भोजपुरी प्रदेश के बलिया और आरा (अब भोजपुर) जिलों में यह प्रथा है कि बालक का जब तक यज्ञोपवीत सस्कार नहीं हो जाता, तब तक उसके बालो को छूरे (उस्तरा) से काटना निषिद्ध है, परन्तु अन्य जिलो मे इस प्रथा का पालन नहीं किया जाता।

कुछ स्त्रियाँ इस अवसर पर गंगा जी को नाव से आर-पार करने की भी मनौती मानती है, जिसे 'गगा ओहारना' कहा जाता है। गाँव की बड़ी तथा बूढ़ी स्त्रियाँ बालक की माता के साथ गगा के किनारे पहुँचती है। उनके साथ रास्ते में बाजा बजता चलता है। बालक की माता गंगा में स्नान करके, अपने भीगे कपड़े के साथ गंगा के इस पार बैठी रहती है और दूसरी स्त्रियाँ बालक को नाव पर बैठाकर गंगा के दूसरे पार ले जाती हैं। इस पार एक खूँटा गाड़कर उसमे नयी मूँज की रस्सी बाँध देते हैं, जिसमे बीच-बीच में आम के पत्ते लगे रहते हैं। इस रस्सी—जो बहुत लम्बी होती है—को पकड़कर नाव पर बैठी स्त्रियाँ गंगा के उस पार तक ले जाती हैं। इस प्रकार वे गंगा की पूरी चौड़ाई को रस्सी से नापती हैं। यह प्रक्रिया 'गगा ओहारने' के नाम से प्रसिद्ध है। जब स्त्रियाँ बालक को लेकर उस पार से लौटकर आती हैं, तब नाई उस बालक के बालो को कैंची से काटने की तैयारी करता है। वह इसके लिए 'नेग' मांगता है, जिसकी प्राप्ति होने पर ही वह इस कार्य को करने मे सलग्न होता है। जब हजाम बाल काटने लगता है, तब बालक की बहिन अथवा उसकी फूआ (बुआ) उन बालों को अपने फांड (आँचल) मे 'ओड़ती' (रोपती) जाती है। इस कार्य को 'झाकर परीछना' कहते हैं। इसके लिए वह अपना नेग—दक्षिणा—माँगती है। लड़के का पिता प्रसन्न होकर उसे समुचित दक्षिणा प्रदान करता है।

चूँकि बालक के बाल पवित्र माने जाते हैं, अत उनका जमीन पर गिरना अनुचित है। इसीलिए उसकी बहिन उन बालो को अपने आँचर मे एकत्रित करती है। मुण्डन-सस्कार सम्पादित हो जाने के बाद ब्राह्मणों को भोज दिया जाता है, जो आनन्दपूर्वक भोजन करके, बालक को आशीर्वाद प्रदान करते हैं।

१. 'चूडा कर्म कीन्ह गुरु आई।'
—रामचरितमानस, बालकाण्ड।

२ डॉ० उपाध्याय : भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ १६७।

मुण्डन-सम्बन्धी जो लोकगीत उपलब्ध होते हैं, उनमे इस अवसर पर किये जानेवाले अनेक विधि-विधानो का उल्लेख पाया जाता है। उदाहरण के लिए 'झालर परीछने' का उल्लेख इस गीत मे हुआ है।[1]

"दादी के जनमल कवन फुआ,
फुआ झालरि परीछहु हो।
आजु हमार मुण्डन नेग रउरा माँगहु हो।"

(३) परिच्छेद

यज्ञोपवीत-सस्कार

भोजपुरी समाज मे जनेऊ और विवाह दो प्रधान सस्कार समझे जाते है। जनेऊ शब्द यज्ञोपवीत का अपभ्रश रूप है। इसे 'उपनयन' भी कहते हैं। उपनयन शब्द का अर्थ है वह सस्कार या विधि, जिसके द्वारा शिष्य गुरु के समीप लाया जाता है। 'उपनीयते गुरो समीप प्राप्यते अनेनेति उपनयनम्।' प्राचीनकाल मे यज्ञोपवीत-सस्कार के पश्चात् ब्रह्मचारी बालक को गुरु के आश्रम अथवा गुरुकुल मे पढने के लिए भेज दिया जाता था। इसलिए इस सस्कार को उपनयन कहते थे। यज्ञोपवीत धारण करने के समय ब्रह्मचारी को कुछ व्रतो तथा नियमो का पालन करना पडता है। अत इसे 'व्रतबन्ध' भी कहा जाता है। जिस ब्रह्मचारी का उपनयन-सस्कार सम्पन्न हो जाता है, उसे 'उपवीती' कहते है। प्राचीन समय मे यज्ञोपवीत-सस्कार के समय ही 'अक्षरारम्भ' सस्कार भी सम्पादित किया जाता था। इसीलिए इसका यथाशीघ्र विधान आवश्यक माना जाता था।

द्विजातियो—अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—के लिए उपनयन-सस्कार अत्यन्त आवश्यक है। मनु ने लिखा है कि जन्म से मनुष्य शूद्र उत्पन्न होता है, परन्तु सस्कार के द्वारा ही द्विजत्व को प्राप्त करता है —

"जन्मना जायते शूद्र सस्कारात् द्विज उच्यते।"

मनु के आदेशानुसार ब्राह्मण ब्रह्मचारी का यज्ञोपवीत उसके जन्म के आठवे वर्ष मे, क्षत्रिय बालक का ग्यारहवे वर्ष मे और वैश्य के पुत्र का जनेऊ बारहवें वष मे होना चाहिए।[2] उपनयन सस्कार के लिए उचित समय के सम्बन्ध मे शतपथ ब्राह्मण का यह मत है कि ब्राह्मण का यज्ञोपवीत-सस्कार वसन्त-ऋतु मे, क्षत्रिय का ग्रीष्म-ऋतु मे और वैश्य का शरद-ऋतु मे करना समुचित है।[3] इसीलिए ब्राह्मणो के बालको का यज्ञोपवीत फाल्गुन और चैत्र के महीनो मे किया जाता है।

गाँवो मे यज्ञोपवीत-सस्कार का सम्पादन कुल के गुरु अथवा पुरोहित करते है। धनी-मानी लोग काशी के किसी कर्मकाण्डी अथवा वैदिक को इस कार्य के लिए आमन्त्रित करते हैं, जिसे 'बेदुआ' कहते है। यही 'बेदुआ' इस कार्य को विधिवत् कराता है। जनेऊ होने के एक दिन पहिले बालक के अभ्यास के लिए उसे कच्चे सूत का धागा इसलिए पहिना दिया जाता है, जिससे वह शौचादि के समय जनेऊ को प्रयोग मे लाना सीख जाय। इस सूत्र को 'गोबर जनेऊ' कहा जाता है। यज्ञोपवीत-सस्कार की पूर्व-रात्रि को बालक को व्रत रखना पडता है। दूसरे दिन पुरोहित अथवा वैदिक जी आते है तथा सस्कार-कार्य प्रारम्भ कर दिया जाता है।

यज्ञस्थान के पास एक वेदी बनायी जाती है। इस वेदी पर कच्ची मिट्टी के बने हुए सोलह पुरवो अथवा चुक्कडो मे चने की दाल भर देते हैं और प्रत्येक 'पुरवा' के ऊपर एक जोडा जनेऊ रख दिया जाता है। अनेक प्रारम्भिक विधि-विधानो को सम्पादित करने के पश्चात् ब्रह्मचारी की शिखा को तीन भागो मे 'साही' के काँटे से विभक्त कर देते है। प्रत्येक भाग मे कुश का एक छोटा टुकडा बाँध दिया जाता है। इसके पश्चात् गाँव का 'हजाम' (नाई) बालक के बालो को छूरे से प्रथम-बार काटने की तैयारी करता है। वह इस कार्य को सम्पादित करने के पूर्व नयी कटोरी अथवा कटोरा तथा नया छूरा पाने की माँग करता है। इसके लिए यथोचित धन प्राप्त होने के बाद, वह बाल काटना प्रारम्भ करता है। ब्रह्मचारी बालक की बहिन अथवा फूआ—मुण्डन-सस्कार की ही भाँति इन कटे हुए बालो को अपने फाँड (आँचल) मे 'ओडती' है, जिसके लिए

१ डॉ० उपाध्याय · भोजपुरी लोक गीत, पृष्ठ, १३७।
२ "अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत्, गर्भाष्टमे वा।
एकादशे क्षत्रिय, द्वादशे वैश्यम्॥"
३. "वसन्ते ब्राह्मणमुपनयेत्। ग्रीष्मे राजन्यम्।
शरदि वैश्यम्। सर्व कालमेके॥" —शतपथ ब्राह्मण

उसे प्रचुर 'नेग' दिया जाता है। नाई की दक्षिणा सवा रुपय (एक रुपया पचीस पैसा) से कम नहीं होनी चाहिए। परन्तु बहिन अथवा फूआ को नेग के रूप मे स्वण आभूषण तथा साड़ी दी जाती है। भोजपुरी [illegible] यज्ञोपवीत के अवसर पर ही सवप्रथम बार छूरे से मूँडा जाता है। अत इस संस्कार का विशेष महत्त्व है। इसके पश्चात् बालक के शरीर मे हल्दी लगाकर 'हरिस' पर खडा करके स्नान कराया जाता है। इस समय घर की स्त्रियाँ [illegible] निम्नांकित गीत गाती है —

"पाँच सखी आहो मीलिके
हरदी चढ़ावहु हमरा लाल के।
बारहो बाजन बजाई के
हरदी चढ़ावहु हमरा लाल के।।"

स्नान करने के पश्चात् बालक का यज्ञोपवीत-संस्कार प्रारम्भ होता है। पहिले उसे मूँज की बनी करधनी (डोरा) पहिनायी जाती है, फिर मृगचम का वस्त्र और पलाश का दण्ड धारण करने के लिए दिया जाता है। जहाँ मृगचम पहिनने के लिए उपलब्ध नही होता, वहाँ मृग के चर्म से बना यज्ञोपवीत ही पहिनना पड़ता है। इसके बाद अनेक विधि विधानों को करके ब्रह्मचारी को सूत का असली जनेऊ पहिनाया जाता है।

यज्ञोपवीत धारण करने के पश्चात् बालक का अक्षरारम्भ संस्कार प्रारम्भ होता है। आम की लकड़ी से बनी हुई 'पटरी' पर गुरु जी लाल स्याही अथवा खड़िया से निम्नांकित वाक्य लिखते है —

'राम गति देहु सुमति'

और इस वाक्य के प्रत्येक अक्षर का उच्चारण बालक से कराते है। गुरु जी इसके स्थान पर 'श्री गणेशाय नमः' भी पटरी पर लिखकर पढ़ाते है। कभी कभी हिन्दी वर्णमाला भी पढ़ायी जाती है। इस प्रकार अक्षरारम्भ संस्कार समाप्त होता है।

प्राचीनकाल मे यह प्रथा थी कि यज्ञोपवीत-संस्कार के पश्चात ब्रह्मचारी गुरुकुल मे विद्या-अध्ययन करने के लिए चला जाता था। इस परम्परा का अनुसरण आज भी किया जाता है। परन्तु यह केवल अनुकरण मात्र है, वास्तविक नहीं। गुरुकुल मे जाने के पहिले ब्रह्मचारी द्रव्य की याचना करता है जिसे 'भीख माँगना' कहते है। बालक तीन बार भिक्षा माँगता है। वह भिक्षा की झोली को लेकर अपने कुटुम्बियो, सम्बन्धियो और घरवालो से धन की याचना करता है। वह पहिली भिक्षा गुरु को, दूसरी पुरोहित को और तीसरी बार की भिक्षा के धन को माता के चरणों मे समर्पित करता है। जिस बालक को जितनी ही अधिक धनराशि भिक्षा मे प्राप्त होती है, उसका पिता उतना ही प्रतिष्ठित तथा धनी माना जाता है। धनी घरानों मे ब्रह्मचारी को हजारो रुपये भिक्षा मे मिलते हैं, जो आदर और प्रतिष्ठा का सूचक माना-समझा जाता है। यह प्रथा उस प्राचीन परम्परा का स्मरण दिलाती है, जब प्रत्येक गृहस्थ का पुत्र ब्रह्मचारी बनकर गुरुकुल मे रहता था और भिक्षा की याचना कर, अपना निर्वाह करता था।

भिक्षा माँगने की विधि की समाप्ति के पश्चात् ब्रह्मचारी अपने हाथ मे पलाश का दण्ड, कटि मे कौपीन और पैरों में खडाऊँ धारण करके विद्या-अध्ययन के लिए काशी अथवा कश्मीर जाने का अभिनय करता है। वह घर के आँगन में ज्योंही दो-चार पग आगे चलता है, त्योही घरवाले उसे वापस बुला लेते हैं और कहते हैं कि अब तुम्हारा विद्याध्ययन समाप्त हो गया, घर चले आओ। लौटि आ बऽ बबुआ। इस प्रकार ब्रह्मचारी रहकर पन्द्रह-सोलह वर्षों तक विद्याध्ययन का कार्य, केवल पाँच-सात मिनटो मे समाप्त हो जाता है।

प्राचीन भारत मे गुरुकुल से लौटने के पश्चात् ब्रह्मचारी का समावर्तन-संस्कार सम्पन्न होता था। वह ब्रह्मचारी के वेश का परित्याग कर, गृहस्थ की वेश भूषा को धारण करता था। वह पादुका, कौपीन और मृगचर्म को तिलाञ्जलि देकर गृहस्थाश्रम के उचित परिधान को पहिनता था। वह अपने शरीर का प्रसाधन और अलंकरण करता था। जब भोजपुरी प्रदेश का ब्रह्मचारी काशी से विद्या पढ़कर घर लौटता है, तब उसका समावर्तन-संस्कार इसी प्रकार से सम्पन्न किया जाता है। वह ब्रह्मचारी की वेशभूषा को हटाकर नूतन वस्त्रों से अपने शरीर को सुसज्जित करता है। उसे नयी धोती, नया कुर्ता, नयी पगड़ी, चादर तथा जूता पहिनाया जाता है। वह नवीन छत्र को धारण करता है। उसके शरीर में सुगन्धित तैल, इत्र आदि लगाया जाता है। इसके बाद वह अपने माता-पिता, गुरु, पुरोहित तथा अन्य वरिष्ठ लोगों का विनयपूर्वक पाद-स्पर्श करता है। इस प्रकार इस समावर्तन-संस्कार की समाप्ति होती है।

प्राचीनकाल मे चूडा-कर्म, यज्ञोपवीत, अक्षरारम्भ, समावर्तन ये पृथक्-पृथक् सस्कार थे और इनका विधान अलग-अलग समय पर किया जाता था। परन्तु आजकल ये सभी सस्कार केवल चार-पाँच घण्टो के भीतर समाप्त कर दिये जाते हैं। परन्तु इस प्रथा से—चाहे वह अब अनुकृतिमात्र ही क्यो न रह गयी हो—हमे प्राचीन परम्परा तथा सस्कृति की झाँकी देखने को मिलती है। अत इस दृष्टि से आज भी इस प्रथा का कुछ कम मूल्य नही है।

(४) परिच्छेद

विवाह

विवाह हमारा सबसे प्रधान तथा प्रसिद्ध सस्कार है। भोजपुरी समाज मे, जहाँ मुण्डन और यज्ञोपवीत-सस्कारो का विधान नही किया जाता, वहाँ भी विवाह-सस्कार बडे धूम धाम से होता है। मनु ने आठ प्रकार के विवाहो का वणन किया है--(१) ब्राह्म, (२) दैव, (३) आष, (४) प्राजापत्य, (५) आसुर, (६) गान्धर्व, (७) राक्षस, तथा (८) पैशाच। इनमे से प्रथम चार प्रशस्त तथा अन्तिम चार अप्रशस्त विवाह माने जाते है। भोजपुरी मे जो विवाह सम्पन्न होते हैं, उन्हे ब्राह्म और दैव का मिश्रण कहा जा सकता है।

(१) अनुच्छेद--वर की खोज

भोजपुरी समाज मे लडकियो का विवाह एक विषम समस्या बन गयी है, जिसका प्रधान कारण तिलक और दहेज की कुत्सित प्रथा है। इस क्षेत्र मे बाल-विवाह की प्रथा प्रचलित होने के कारण, जब कन्या दस अथवा ग्यारह वर्ष की हो जाती है, तभी उसका पिता विवाह के लिए वर की खोज मे लग जाता है। उसे जहाँ इस बात का पता लगता है कि अमुक गाँव मे कोई कुँवारा लडका है, वहाँ वह पहुँच जाता है। धनी-मानी लोगो के यहाँ वर के अन्वेषण का कार्य नाई और ब्राह्मण करते हैं, परन्तु साधारण व्यक्ति स्वय इस काय को करता है। वर को खोजने के लिए जानेवाले व्यक्ति को 'तिल-कहरू' कहते हैं। चूकि भोजपुरी क्षेत्र मे विवाह प्राय गर्मियो के दिनो मे हुआ करता है, अत ग्रीष्मऋतु विवाह का 'सीजन' माना जाता है।

वर की खोज

जब कन्या का पिता, भाई अथवा अभिभावक वर खोजने के लिए किसी के घर पहुँचता है, तब उसका बडा आदर-सत्कार किया जाता है। उसे गुड का शर्बत पिलाया जाता है अथवा मिष्ठान्न दिया जाता है। पुरानी परम्परा के लोग वर के घर जलपान करना निषिद्ध मानते है। वे वर के पिता से अपने आने का प्रयोजन बतलाते हुए, सबसे पहिले उससे बालक की जन्म-कुण्डली माँगते हैं, जिसे 'टीपन' कहा जाता है। वर का पिता पहिले 'टीपन' देने में बडा हीला हवाला करता है, परन्तु बहुत प्रार्थना करने पर उसकी इच्छा की पूर्ति करता है। लडकी का पिता इस जन्म-कुण्डली को लेकर अपनी पुत्री की कुण्डली का मिलान करवाता है। इस कार्य को गाँव का ज्योतिषी करता है। वर-कन्या की कुण्डली के मिलान मे तीन वस्तुओ का विशेष ध्यान रखा जाता है। (१) वर्ण, (२) नाडी, और (३) गुण। वर और कन्या का वर्ण और नाडी समान ही होनी चाहिए। गुणो की सख्या चालीस होती है। यदि बीस गुण भी मिल जायँ, तो विवाह प्रशस्त होता है। इससे अधिक गुण मिल जायँ, तो बहुत ही अच्छा माना जाता है।[१] यदि कन्या 'मगली' होती है, तो उसके लिए मगला लडका खोजना पडता है, अन्यथा वैधव्य योग की सम्भावना होती है। अतएव 'मगली' लडकी के लिए वर खोजना बडा ही कठिन तथा दुष्कर काय माना जाता है। यदि दोनो की कुण्डली का मिलान ठीक हो गया, तब विवाह निश्चित हो जाता है। कन्या पक्षवाले कुछ लोग वर की कुण्डली से ठीक मिलान करने के लिए लडकी की 'बोगस' कुण्डली भी बनवा लेते हैं। सगोत्र मे विवाह करना निषिद्ध है। अत वर और कन्यावालो की एक उपाधि (दुबे, पाण्डेय, तिवारी आदि) होने पर भी उनके गोत्रो का भिन्न-भिन्न होना नितान्त आवश्यक है। जन्म-कुण्डली के मिल जाने पर विवाह की सम्भावना बढ जाती है और कन्या का पिता चैन की नीद सोत है। भोजपुरी के एक गीत मे कहा गया है कि जिसके घर मे कन्या कुँवारी पडी है, उसका पिता निश्चिन्त कैसे सो सकता है?

१ 'विवाह मे ज्योतिष का स्थान' के विशेष विवरण के लिए देखिए—डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय हिन्दू विवाह की उत्पत्ति तथा विकास।

"जाही घर कनिया हो कुँआरी।
से कइसे सोवे निरभेद हो॥"

तिलक-दहेज की प्रथा

कुण्डली के ठीक 'मिल' जाने पर अब लेन-देन की बात शुरू होती है। वर का पिता कन्या के अभिभावक से विवाह करने के लिए मनमाना तिलक माँगता है। भोजपुरी मे एक कहावत प्रचलित है कि "बिना हजारा के बजार ना लागी।" अर्थात् बिना एक हजार रूपये के विवाह का बाजार नही लग सकता। इससे वर वालो की मनोवृत्ति का पता लगता है। कहने की यह आवश्यकता नही कि आजकल दस हजार रुपये से कम मे साधारण व्यक्ति की भी कन्या का विवाह सम्भव नही है। आज कल विवाह के बाजार मे वर का 'रेट' क्या है, इसका उल्लेख तिलक-दहेज की प्रथा के सम्बन्ध मे विस्तारपूर्वक अन्यत्र किया जा चुका है। यहाँ इतन ही कहना पर्याप्त है कि तिलक की राशि की संख्या पाँच हजार रुपया से एक लाख बल्कि और अधिक, तक की हो सकती है।

तिलक की देय राशि को तय करने मे बडा झंझट उठाना पडता है। कन्यावाला अपने अनेक सम्बंधियों, मित्रो तथा परिचितो के द्वारा वर के पिता पर दबाव डलवाता है, अनेक लोगो से सिफारिश करवाता है जिससे तिलक की धनराशि मे कुछ कमी हो जाय। परन्तु वरवाला टस से-मस नही होता। अंगद के पाँव की तरह वह अपनी बात पर अटल रहता है। वह कन्या के पिता से कुछ इस तरह की बातें भोजपुरी मे करता है—

"हमार लरिका बडा पढ़ले बा। ई मिड्डिल पहिला दरजा मे पास कइले बा। एकरा बाद इंटरन्स, इण्टर मे भी फस्ट आइल बा। अब ई विसविदालय मे पढ़े जाई। इसन तेज लरिका रउरा के ना मिली। हम एकरा पढ़ाई मे बाडा रोपेया खरचा कइले बानी। आपन खेत बेचि के एकरा के कासी जी मे पढ़वले बानी। अब रउरा अपना लड़की खातिर अइसन जोग्य लरिका चाहत बानी, त कुछ खरचा करी। मुफुती मे काम ना फरिआई। दिल खोलि के रउरा खरचा करीं। मूठी खोली। बादी अवरु सादी मे खरचा करही के परेला। एसे हम अतना तिलका मांगत बानी आताना रुपया देबे के परी। एमे हम रचिको भरि कमी ना करबि। मन माने त आताना रुपेया दिल खोलि के दीहीं, ना त आपाना घर के रास्ता लिहीं।" कन्या का पिता इस रूखी-सूखी बात को सुनकर दुखी हो जाता है और वह उससे प्रार्थना करता हुआ अत्यन्त विनम्र भाव से कहता है कि —

"हमार धियवा बडा बड हो गइ बिया। एह साल ओकर बिआह हम जरूर कर देबे के चाहत बानीं। रउरा पास हम आपन जानि के आइल बानी। रउरा हमार कवनो तरे से उधार करीं। हम आताना रुपेया ना दे सकी ले। हमार आताना बडा अवकात नइखे, ना त हम आताना रोपेया जरूर दे दिहतीं। हमरा पर कुछ किरिपा करीं, जवना से हमार उधार होई जाय। लडिकी के बिआह से हम बड़ा चिन्ता में पड़ल बानी। एहि से रउरा से बिनती करत बानी कि कवनो तरह से एह पाप से हमार उधार करीं। हमरा जाताना सकति होई, ओताना देबे मे हम पीछे ना हटबि। हमरा त रउरा के जिनिगी भरि देबही के बाटे। एह से तिलक मे कुछ कमी करीं अवरु हमार अब उधार करी।"

कन्या का पिता वर के पिता के सामने अपने को पापी समझता है और एक अभियुक्त की भाँति उससे बातें करता है, मानो अपनी कन्या के विवाह के प्रस्ताव के रूप में उसने कोई बडा अपराध किया हो। चाहे वरवाला तीन कौड़ी का आदमी हो और 'विद्या विहीन पशु' क्यो न हो, फिर भी कन्यावाला उसके सामने गिड़गिड़ाता रहता है। वह अपने उद्धार करने की बात बार-बार कहता है, जैसे उसने कोई बहुत बडा पाप किया हो। वरवाला अपने को महान्, विद्वान्, धनवान् तथा ऐश्वर्य-वान् समझता है और कन्या के पिता को पापी, नीच, निर्धन और गँवार मानता है। यही कारण है कि वह बड़ी ऐंठ, शान तथा आन के साथ उससे बातें करता है।

वर-रक्षा तथा तिलक

किसी प्रकार से, बडे प्रयत्न के पश्चात् तिलक के रूप मे देय द्रव्य की राशि निश्चित हो जाने पर 'वर रक्षा' का दिन तय किया जाता है। इसे भोजपुरी मे 'बरइछा' कहा जाता है। वर का चुनाव हो जाने पर लड़की का पिता 'वर रक्षा' के दिन वर के हाथो मे कुछ रुपया, फल और एक जोडा जनेऊ देता है। इस विधि के द्वारा वर की रक्षा हो जाती है अर्थात् वर का पिता अब किसी दूसरे व्यक्ति से विवाह की चर्चा नहीं करता और जिसने यह 'वर रक्षा' दी है, उसके लिए वह वर 'रिजर्व' समझा जाता है। कहीं-कहीं इस विधि को 'फलदान' भी कहते हैं।

वर-रक्षा के दिन ही तिलक की तिथि भी निश्चित की जाती है। इस दिन कन्या का पिता, उसका भाई तथा कुटुम्ब के अन्य सदस्य—जिनकी सख्या दस-पन्द्रह से कम नही होती—वर के घर जाते है। वे अपने साथ तिलक के लिए निश्चित धन, फल, मिष्ठान्न, बर्तन तथा वस्त्र आदि ले जाते है। इस दिन वर-पक्ष वाले के घर बडा उत्सव मनाया जाता है। धनी लोगो के यहाँ नाच-गान का भी प्रबन्ध होता है। निश्चित समय पर वर को किसी पवित्र आसन पर बिठाया जाता है। लडकी का भाई अथवा उसके अभाव मे उसका पिता वर के हाथो मे तिलक का द्रव्य, फल, मिष्ठान्न, सुपारी और एक जोडा जनेऊ प्रदान करता है। इसके पश्चात् वह विभिन्न वस्त्रो—धोती, रेशम का थान, मलमल का कपडा आदि—को तथा गृहस्थी के समस्त बर्तनो को उसके हाथो से स्पश कराकर रख देता है। कन्या का भाई वर के ललाट मे तिलक या टीका लगाता है। तिलक लगाने की इसी प्रथा के कारण इस विधि को 'तिलक चढाना' कहा जाता है। तिलक चढाते समय स्त्रियाँ अपने कलकण्ठ से सुन्दर गीत गाती है, जिनमे आनन्द और उछाह का वणन होता है। तिलक मे आये हुए व्यक्तियो को रात्रि मे सुस्वादु भोजन कराया जाता है, जिसमे पूडी, कचौडी, पापड और मिष्ठान्न की प्रधानता होती है।

तिलक के दूसरे दिन कन्या का पिता वर-पक्ष से 'लगन-पत्री' माँगता है। इस 'लगन-पत्री' मे विवाह की तिथि तथा समय का निर्देश रहता है। यदि तिलक मे चढाया गया धन तथा अन्य सामग्री सन्तोषजनक होती है, तब तो 'लगन-पत्री' शीघ्र ही दे दी जाती है, परन्तु तिलक की निश्चित धनराशि मे यदि किसी प्रकार की कमी हुई, तो तिलक लौटा दिया जाता है और फलस्वरूप 'लगन-पत्री' नही दी जाती। कुछ चालाक वर-पक्षवाले तिलक के उत्सव मे खर्च हुए रुपयो को काटकर अर्थात् घटाकर शेष धन को ही लौटाते है। तिलक के लौटाये जाने पर कन्या का पिता बडे चक्कर मे पड जाता है। वह तिलक की धनराशि मे जितनी कमी होती है, उसे शीघ्र ही किसी-न-किसी प्रकार से पूरा करता है अथवा विवाह के अवसर पर उस कमी की पूर्ति का वादा करता है। कुछ काइयाँ कन्या-पक्षवाले जानबूझकर निश्चित धनराशि से बहुत कम रुपया तिलक मे चढाते है। अत इस धोखा से बचने के लिए वर का चतुर पिता तिलक की राशि को तिलक चढाने के एक सप्ताह पूर्व ही अपने पास मँगाकर रख लेता है। इस प्रकार वह धोखा की सम्भावना को समूल नष्ट कर देता है।

मण्डप की तैयारी

अब कन्या-पक्ष की ओर आइये। जिस दिन से तिलक चढ जाता है, उसी दिन से लडकी के घर मे 'सगुन' गाया जाने लगता है। यह शब्द सस्कृत 'शकुन' का अपभ्रश रूप है, जिसका अर्थ है शुभ लक्षण। विवाह की निश्चित तिथि से एक-दो दिन पूर्व 'मण्डप' बनाने की तैयारी की जाती है जिसे 'माँडो' कहते है। यह मण्डप घर के प्रागण के बीच मे हरे तथा कच्चे बाँसो से तैयार किया जाता है, जिनकी सख्या आठ अथवा नौ होती है। मण्डप का निर्माण वर्गाकार रूप मे किया जाता है, जिसकी लम्बाई कन्या के हाथ से सात हाथ की होती है। गाँव के लोगो को मण्डप बनाने के लिए आमन्त्रित किया जाता है, जिसको 'माँडो गाडना' कहा जाता है। बिरादरी के लोग आकर बाँसो को जमीन मे गड्ढा खोदकर गाडते है। फिर इसे 'फूस' से छाया जाता है, जो 'माँडो छवाना' के नाम से प्रसिद्ध है। 'माँडो' शब्द 'मण्डप' का ही अपभ्रश रूप है। इस समय कुछ गीत गाये जाते हैं, जो 'माँडो के गीत' कहलाते है।

मण्डप-निर्माण के लिए जितने बाँसो की आवश्यकता पडती है, उसे गाँव के लोग अपनी 'बँसवारि' से काट करके प्रदान करते है। इससे ग्रामीण जनता मे सहकारिता की भावना सूचित होती है। 'माँडो छाने' की समाप्ति हो जाने के पश्चात् सभी आये हुए गाँववालो को गुड का शरबत पिलाया जाता है। सभी लोग भरपेट इस शरबत को पीते हैं। आजकल धनी लोग चीनी का शरबत पीने के लिए देते हैं। इस प्रकार मण्डप-निर्माण का काय समाप्त हो जाता है।

(२) अनुच्छेद—बारात का प्रस्थान

तिलक की समाप्ति के पश्चात् बारात की तैयारी की जाती है। बारात मे चलने के लिए गाँव-जवार, सगे सम्बन्धियो, रिश्तेदारो तथा कुटुम्बियो को निमन्त्रण भेजा जाता है, जिसे 'नेवता' कहते है। उस दिन सभी रिश्तेदार तथा गाँव के लोग वर के घर पर उपस्थित होते हैं। बारात की यात्रा की पूर्व-रात्रि को, इन सभी लोगो को भात खिलाने की प्रथा है, जिसे 'मतवानि' कहा जाता है। जो लोग इस 'मतवानि' मे सम्मिलित होकर भात खाते है, उनके लिए बारात मे चलना आवश्यक माना जाता है। 'मतवानि' के गीतो मे विभिन्न भोज्य-पदार्थों का उल्लेख पाया जाता है। मतवानि के दूसरे दिन बारात के प्रस्थान होने के कुछ देर पूर्व 'मातृपूजा' होती है, जो ग्रामीण लोगो मे 'मन्त्रिपूजा' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमे गाँव तथा परिवार के सभी वृद्ध तथा ज्येष्ठ स्त्री और पुरुषो की पैर-पूजा धोती, साडी तथा नकद रुपया देकर की जाती है। इसके पश्चात्

गाँव तथा परिवार की कुछ स्त्रियाँ पवित्र स्थान से मिट्टी खोदने के लिए जाती है जिसे 'माटी मटकोड़', कहते हैं। वे किसी भडभूजे की भाड मे धान की खील भुनवाती है, जो 'लावा भुजाई' कहा जाता है। उसके पश्चात् 'इमली घोटाई' की विधि सम्पादित की जाती है। इस अवसर पर लडके का मामा अपनी बहिन को जल पिलाता है। उसकी बहिन आम की पत्तियो के डण्ठल को अपने दाँतो से काटकर फेंकती जाती है। उसका भाई लोटे से जल गिराता है और बहिन अपनी दोनों अजुलियों से जल पीती है। इस विधि मे इमली का प्रयोग बिलकुल नही किया जाता, फिर भी इस क्रिया को इमली घोटाई का नाम क्यो दिया जाता है, इसका कारण ज्ञात नही है। इस अवसर पर वर के मामा की उपस्थिति आवश्यक समझी जाती है। गाँव की स्त्रिया इस मामा के मुँह मे काजल लपेट देती है, उसके गालो मे दही लगा देती है तथा उसके सिर पर फटा-पुराना कपडा डाल देती है। कहने का आशय यह है कि उससे अनेक प्रकार का हास परिहास करती है। मामा अपने भानजे तथा बहिन को नवीन वस्त्र देता है। इस प्रकार 'इमली घोटाई' की मनोरंजक विधि समाप्त होती है।

इन सभी विधि-विधानो के बाद गाँव तथा परिवार की स्त्रियाँ वर के आँखो मे काजल लगाती हैं और उसके ललाट मे दही, अक्षत तथा रोरी से युक्त तिलक लगाती है। यह सम्भवत वर की मंगलमय यात्रा के लिए किया जाता है। बारात के प्रस्थान के समय जब वर पालकी मे बैठता है, तब सभी स्त्रियाँ बारी-बारी से उसके सिर के चारो ओर लोढा घुमाती हैं और अपने कलकण्ठ से यह गीत गाती जाती है —

"परीछिना लेहु मोरे राम रे ललनवा।"

इस विधि को 'परिछावन' की सज्ञा दी गयी है। यदि वर की अवस्था छोटी हुई, तो इस अवसर पर उसकी माता अपना स्तनपान भी कराती है और अपने लाडिले को सचेत करती हुई कहती है कि तुम मेरे दूध की 'नीरिख' देना। कभी मुझे भूल मत जाना। इस प्रकार गाजे-बाजे के साथ, घर की बड़ी स्त्रियो का आशीर्वाद प्राप्त कर वर विवाह के लिए बारात के साथ प्रस्थान करता है।

(३) अनुच्छेद—वर की वेश-भूषा

भोजपुरी वर की वेश-भूषा बडी सुन्दर होती है। धोती के स्थान पर वह एक वस्त्र को अपनी कमर में बाँधता है, जिसे 'जामा' कहते हैं। यह जामा 'घाघरा' नुमा होता है, जो उसकी कमर के चारों ओर लटकता रहता है। उसके शरीर मे कुर्ता का स्थान 'अँगरखा' लेता है, जो सुन्दर कपड़े का बना हुआ होता है। 'अँगरखा' शब्द सस्कृत के 'अगरक्षा' का अपभ्रंश रूप है, जिसे प्राय पण्डित लोग पहिना करते हैं। यह अपने पैरों में लाल जूता पहिनता है, जो 'सलेमसाही जूता' के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ लोग कामदार जूता भी पहिनते है, जिसमें जरी का काम किया गया रहता है। वर के सिर पर कामदार गोल टोपी होती है, जिसमें सलमे-सितारे जड़े रहते हैं। छोटी अवस्थावाले वर अपने कानो मे कुण्डल—जिसे 'बाला' कहते हैं, हाथ में 'बेरा' और पैर में 'गोड़ाउ' पहिनते हैं। वे अपने गले मे हार भी लगाते हैं। गाँव के धनी तथा समृद्ध लोग विवाह के लिए जामा, जोड़ा, टोपी बनवाकर अपने घर रखते हैं और गाँव के सर्वसाधारण लोग विवाह के समय उनसे 'मँगनी' (उधार) माँगकर इन वस्तुओ को लाते हैं।

वर विवाह के लिए जाते समय सिर पर मौर या 'मईउरि' पहिनता है, जिसे सेहरा भी कहा जाता है। इस 'मउरि' को गाँव का माली बनाता है, जिसके लिए वह मुँहमाँगा 'नेग' लेता है। भोजपुरी में वर को 'दूलहा' कहा जाता है। इसकी दूसरी सज्ञा 'नौशे' भी है, जिसका अर्थ 'नया बादशाह' होता है।

(४) अनुच्छेद—बारात का प्रस्थान

भोजपुरी बारात का दृश्य बडा ही भव्य तथा सुन्दर होता है। बारात के आगे हाथियों की पंक्तियाँ चलती हैं, जिन पर वर-पक्ष के प्रतिष्ठित लोग बैठते हैं। इन हाथियों के ललाट पर अनेक प्रकार की चित्रकारी की गयी रहती है, जो नेत्राकर्षक होती है। उनकी पीठ पर लम्बे-लम्बे झूल, दोनों ओर लटकते रहते हैं। कुछ वर्ष पहिले बारात मे हाथियो का आना अत्यन्त आवश्यक माना जाता था। किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा तथा वैवाहिक ऐश्वर्य का

मापदण्ड बारात मे आये हुए हाथियो की सख्या समझी जाती थी। हाथियो के पश्चात् घोडो की पक्तियाँ चलती है, जिनकी पीठ पर बैठे हुए घुडसवार बडी अदा के साथ 'मुरेठा' (पगडी) बाँधकर अपने घोडो को 'कदम' की चाल से 'जमाते' उन्हे ले चलते है। घोडो के पीछे समधी (वर का पिता) की 'पालकी' और उसके पश्चात् वर की 'नालकी' चलती है। इस नालकी मे चार से लेकर सोलह कहार तक लगे रहते है। इस नालकी मे कहारो की सख्या जितनी अधिक होगी, वर के वैभव तथा प्रतिष्ठा की मात्रा उतनी अधिक मानी जाती है। नालकी के पीछे लट्ठधारी भोजपुरियो की जमात चलती है, जो अपनी ऊँचाई को भी अतिक्रमण करनेवाली लम्बी लाठियो को हाथ मे लिये रहते है। बारात के रक्षक अहीर आदि लोग अपने हाथो मे भाला, बरछा और गडासा लेकर चलते है, जिससे आवश्यकता पडने पर इन अस्त्र-शस्त्रो का उपयोग किया जा सके। बारात के बीच मे कही 'बैण्ड' बाजा बजता है, तो कही 'रोसन चौकी' की मधुर आवाज सुनाई पडती है। परन्तु भोजपुरी बारात का सबसे प्रसिद्ध और विशिष्ट बाजा 'सीगा' है जो 'घुत्तुक' के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध है। यह सीग के आकार का टेढा तथा लम्बा होता है, जिससे 'धूतू'-'धूतू' की आवाज निकलती है। इसीलिए सम्भवत इसे 'घुत्तुक' की सज्ञा प्राप्त है।

लडकीवालो का मनोरजन करने के लिए बारात मे नाच का भी आयोजन आवश्यक समझा जाता है। आज से तीस-चालीस वष पहिले बारात मे 'वेश्या' का नाच अत्यन्त आवश्यक समझा जाता था। अत साधारण लोग भी बहुत खच करके 'रण्डी' का नाच ले जाया करते थे। परन्तु अब बाजारू 'लौडो' ने रण्डी का स्थान ले लिया है। ये 'लौडे' नाचते भी है और गाते भी हे। ये अपनी नाटकीय कला तथा अभिनेयता से जन-मन का अनुरजन करने मे अत्यन्त सफल होते है। भोजपुरी क्षेत्र मे भिखरिया का नाच बडा प्रसिद्ध था। जिस बारात मे भिखरिया जाता था, वहाँ उसके नाच को देखने के लिए जन-समुद्र उमड पडता था। अत बारात मे नाच ले जाना आवश्यकीय है। कही-कही इसके अभाव मे झगडा भी हो जाता है और कन्या-पक्ष के देहाती लोग बारातियो पर पथराव भी करने लगते है।

इस प्रकार भोजपुरी बारात चतुरगिणी सेना का दृश्य उपस्थित करती है, जिसमे 'हाथी', 'घोडे', 'पदाति', 'लठैत', 'शस्त्रधारी' सभी लोग सम्मिलित रहते है। आजकल कुछ लोग बन्दूक लेकर बारात मे चलते है। अत इस प्रकार आग्नेयास्त्रो की कमी की भी पूर्ति हो जाती है।

जब यह बारात अपने निर्दिष्ट पर पहुँचती है, तब कन्या-पक्षवाले लोग बारातियो के स्वागत के लिए आगे आते है, जिसे 'अगवानी' कहते है। फिर बारात कन्या के घर पर पहुँचती है। इसे 'बारात का लगना' कहा जाता है। कन्या का पिता अपने निवास के प्रधान द्वार के आगे जमीन को गोबर से लिपवाकर उस पर अल्पना की डिजाइन बनवाता है, जिसे 'चौक पूरना' की सज्ञा प्राप्न है। यह कार्य गाँव की 'नाइन' करती है, जो सूखे आटे तथा पिसे हुए चावल के द्रव से चौका पूरने की प्रक्रिया का सम्पादन करती है। इसी चौके पर आसन बिछाकर वर को बैठाया जाता है। यहाँ कन्या का पिता शास्त्रीय विधियो से वर की पूजा करता है। यह विधि 'द्वार-पूजा' के नाम से प्रसिद्ध है। इधर वर की पूजा का विधान होता है और उधर पण्डित तथा विद्वान् लोग द्वार-पूजा शब्द मे कौन समास है, इस विषय को लेकर आपस मे उलझ पडते है। "द्वारपूजा इत्यत्र क समास । द्वारस्य पूजा अथवा द्वारस्थाना जनाना पूजा। उच्यताम्।" इस प्रकार तार स्वर से वे शास्त्राथ करने लगते है तथा एक पण्डित दूसरे पक्षवालो को निरुत्तर करने के लिए प्रयास करता है। प्रत्येक बारात मे पण्डितो के शास्त्राथ का यही विषय रहता है। पता नही 'द्वारपूजा' मे समास का कौन सा रहस्य छिपा है, जिसका उद्घाटन पण्डित लोग आज तक नही कर पाये। द्वारपूजा के समय कन्या का पिता वर के ललाट मे तिलक लगाता है। इस समय पर घर की स्त्रिया गीत गाती है, जो बडे ही मनोरम होते है। द्वारपूजा पर हाथी और घोडावाले भी अपना नेग माँगते है, जिसे देना आवश्यक होता है। गाँवो मे बारात प्राय किसी खेत अथवा मैदान मे शामियाने के नीचे ठहरायी जाती है। इस स्थान को 'जनवासा' कहते है, जो 'जनावास' शब्द का अपभ्रश रूप है। इस 'जनवासे' मे आने पर बारातियो को जलपान कराया जाता है। कुछ वर्षों पूर्व बारातियो का जलपान पूडी का आधा टुकडा और चीनी थी। परन्तु अब चाय, नमकीन और मिष्ठान्न भी मिलने लगा है। जलपान करने के पश्चात्, 'मैदान' से निवृत्त होकर, बाराती अपनी 'घराऊ' पगडी, चादर और 'अँगरखा' पहिनकर शामियाने के तीन ओर, पक्तिबद्ध रूप मे, 'पालथी' मारकर और कुछ लोग अपने दोनो घुटनो को मोडकर बडी अदा से, बडे ठाट से बैठते है। इस समय प्रत्येक बाराती की शान देखते ही बनती है। वर शामियाने के नीचे तने हुए 'चँदवा' के नीचे बैठता है और 'समधी' जी उसकी बगल मे स्थान ग्रहण करते है। इस प्रकार बैठने को 'महफिल लगना' कहते हैं। यही महफिल भोजपुरी मे 'मोहफिल' के नाम से जाना जाता है। जब बारातियो की सारी सभा अपना-अपना आसन ग्रहण कर लेती है, तब कन्या पक्ष के कुछ व्यक्ति 'अइगा माँगने' की रस्म को पूरा करने के लिए जनवासा मे आते है। लडकी का भाई लोटा लेकर समधी के पास जाता है, जिसे समधी अपने कर-कमलो से स्पर्श कर देता है। इस प्रकार वह रात्रि-भोजन का निमन्त्रण स्वीकार करता है। इसी प्रकार से सभी बाराती उस पात्र को

स्पशकर अपनी स्वीकृति प्रदान करते है। भोजन के निमन्त्रण के [illegible] इस प्रकार 'अइगा माँगने' की विधि सम्पन्न की जाती है।

(५) अनुच्छेद—विभिन्न वैवाहिक विधि-विधान।

(१) कन्या-निरीक्षण

भोजन के निमन्त्रण के पश्चात् वर का बड़ा भाई (भसुर) मण्डप मे आकर [illegible] वस्त्र प्रदान करता है। वह वधू के हाथ से इन वस्त्रो तथा गहना को स्पर्श कराकर उसे कन्या के [illegible] 'कन्या निरीक्षण' कहते है। भोजपुरी मे इसे 'गुरहत्थी' कहा जाता है। इस अवसर पर जो आभूषण दिया जाता है [illegible] पक्षवाला के वैभव, धन तथा प्रतिष्ठा का मापदण्ड है। इसीलिए कुछ निर्धन व्यक्ति [illegible] (उधार) के रूप मे गहना माँगकर 'गुरहत्थी' के लिए ले जाते है जिससे वे कन्या पक्षवालो पर अपना [illegible] झूठा गौरव दिखला सकें। वर के पिता ने तिलक मे जितना रुपया लिया है यदि उसके अनुसार आभूषण उसने गुरहत्थी मे नहीं दिया तो झगड़ा भी हो जाता है। कन्या के घरवाले वर-पक्षवालो को भला बुरा कहने लगते है और कभी कभी [illegible] भी अवसर उपस्थित हो जाता है। भोजपुरी विवाह मे झगड़े के तीन अवसर होते है —

(१) कन्या-पक्षवालो के द्वारा निश्चित धनराशि से तिलक कम देना।

(२) गुरहत्थी के अवसर पर वर-पक्षवालो के द्वारा बहुत कम आभूषण लाना।

(३) कन्या के पिता के द्वारा विदाई अथवा गवना के समय उचित मात्रा मे दहेज का न देना।

इनमे से दूसरा अवसर बडा महत्त्वपूर्ण होता है, क्योंकि इस समय कन्या के पिता को भी वरवालों के अनौचित्य को प्रदर्शित करने का मौका मिलता है।

(२) कन्यादान

गुरहत्थी के पश्चात् वर विवाह मण्डप मे लाया जाता है। यहाँ पर वैदिक जी वैदिक मन्त्रो द्वारा विवाह का सम्पादन कराना प्रारम्भ करते है। इस अवसर पर अनेक वैदिक तथा लौकिक विधि-विधान किये जाते है। स्थान-भेद से लौकिक विधियो मे बडी विभिन्नता पायी जाती है। धर्मशास्त्रकारो ने लिखा है कि इस अवसर पर वृद्ध स्त्रियों के वचन तथा 'ग्रामवचन' को करना चाहिए। विवाह के अवसर पर जो भिन्न-भिन्न क्रियाकलाप किये जाते है, उनमे 'कन्यादान' प्रधान है। हिन्दू धर्म शास्त्रकारो ने कन्या को दान की वस्तु माना है। अत विवाह के अवसर पर उसका पिता उस दान मे वर को समर्पित कर देता है। इस विधि को करते समय पिता अपनी पुत्री को गोदी मे बैठाता है। वह वर के पैर की पूजा करता है और इसके पश्चात् अपनी कन्या को दान के रूप मे उसे देता है। इसी को 'कन्यादान' कहते है जो भोजपुरी मे 'कनिया-दान' कहा जाता है। चूंकि दान की गयी वस्तु का पुन ग्रहण नही किया जाता, अत पिता आजीवन अपनी पुत्री के द्वारा दी गयी किसी वस्तु को नही लेता। वह विवाह के पश्चात् पुत्री के घर जाने पर भी उसके घर भोजन नही करता। फिरबहुना, कुछ लोग ऐसे भी होते है, जो उस गाँव का जल भी नही पीते, जिस गाँव मे उनकी कन्या का विवाह हुआ है। पिता के अभाव मे यदि बडे भाई ने कन्यादान किया है, तो वह भी अपनी बहन के घर मे भोजन नही करता और न उसकी किसी वस्तु को ही लेता है।

(३) सुमगली तथा सप्तपदी

कन्यादान के पश्चात् वर कन्या के माँग मे सिन्दूर लगाता है, जिसे 'सुमगली' कहा जाता है। पर्दे की प्रथा के कारण वर अपनी भावी पत्नी के मुख को देखने मे असमर्थ होता है। अत गाँव की नाइन वर के हाथ को पकड़कर इस कार्य का सम्पादन कराती है। इस समय जो वैदिक मन्त्र पढे जाते हैं, उनमे सुमगली शब्द का प्रयोग किया गया है।

"सुमगलीरियं वधू समेत पश्यत।"

इसके पश्चात् 'लाजा होम' का विधान किया जाता है, अर्थात् अग्नि को प्रज्वलित करके उसमे हवन होता है। चूँकि इस अवसर पर लाजा—धान की खील—का भी प्रयोग विहित है, अत इस विधि को 'लाजाहोम' कहते है।

अन्त मे विवाह की सबसे प्रधान तथा महत्त्वपूर्ण विधि सम्पादित की जाती है जिसे 'सप्तपदी' कहते है। विवाह होने

के पश्चात् वर और वधू दोनो एक साथ प्रज्वलित अग्नि की सात बार प्रदक्षिणा करते हैं और प्रत्येक प्रदक्षिणा के अवसर पर वे बारी बारी से सात बातो की प्रतिज्ञा करते है।

सप्तपदी को भोजपुरी मे 'भाँवर पडना' या 'भाँवर घूमना' कहते है। 'भाँवर घूमना' मुहावरा के रूप मे भी प्रयुक्त होता है। जब कोई दो व्यक्ति साथ-ही साथ किसी देवमन्दिर की प्रदक्षिणा करते है, तब कहा जाता है ये 'भाँवर घूम' रहे है। सप्तपदी के बाद विवाह पक्का माना जाता है, अर्थात् इस विधि के पश्चात कन्या वर के घर की हो जाती है। मनु ने लिखा है कि सप्तपदी के बाद कन्या अपने पिता के कुल से स्खलित होकर दूसरे कुल मे चली जाती है। इसलिए सप्तपदी विवाह की अन्तिम तथा सबसे महत्त्वपूर्ण विधि है।

इसके पश्चात् परिवार की स्त्रिया वर को चूमने के लिए आती है, जिसे 'वर चुमावन' कहा जाता है। प्रत्येक स्त्री चावल के कुछ दानो को अपने हाथो मे लेकर वर के शरीर के पाँच अगो का स्पर्श करती है। इस समय वे गीत भी गाती रहती है। यहाँ चूमने का अर्थ स्पर्श करना समझना चाहिए।

(४) कोहबर

इसके बाद स्त्रियाँ वर को एक सुसज्जित घर मे ले जाती हैं, जिसे 'कोहबर' कहते है। घर तथा गाँव की स्त्रियाँ वर से यहाँ पर अनेक प्रकार से हँसी-मजाक करती है। वे हास-परिहास के अनेक प्रसगो की उद्भावना करके वर को प्रसन्न करने का प्रयास करती है। जब वर 'कोहबर' मे घुसने लगता है, तब वे उसे दरवाजे पर रोक लेती है और वे उसे कुछ कविता या श्लोक कहने के लिए बाध्य करती है, जिसे 'रोका पढना' अथवा 'दुआरि पढना' कहा जाता है। यह विधि वर की बुद्धि की परीक्षा के लिए की जाती है। यदि वर पढनेवाला लडका हुआ, तो वह हिन्दी की कोई कविता पढकर घर के भीतर प्रवेश प्राप्त कर लेता है।[१] परन्तु वर यदि 'निरक्षर भट्टाचार्य' हुआ, तो मौन धारण करता है, अथवा किसी निन्दित शब्दावली को कहता है। किसी मूर्ख तथा गँवार वर के 'रोका पढने' का एक उदाहरण इस प्रकार है —

"एह घरे गोइठा, ओह घरे काठी।
छोड़ऽ दुआरि नातऽ करबि लाठी।।"

यहाँ रातभर हँसी-मजाक का वातावरण रहता है। बिचारा वर स्त्रियो के मजाक का उत्तर देते-देते परेशान हो जाता है और उसे रात भर जागरण करना पडता है।

(५) भात खाना, खिचड़ी खाना तथा 'माँडो हिलाई'

साधारणतया जिस दिन बारात आती है, उसके दूसरे ही दिन बारातियो की विदाई कर दी जाती है। परन्तु जो लोग धनी और वैभव-सम्पन्न है, वे लोग दो-तीन दिनो तक बारातियो को ठहराते है, जिसे 'मरजाद रखना' कहा जाता है। यह 'मरजाद' शब्द मर्यादा का अपभ्रंश रूप है, जिसका अर्थ प्रतिष्ठा है। वास्तव मे बारात को 'मरजाद रखना' प्रतिष्ठा तथा वैभव का कारण माना जाता है। विवाह के दूसरे दिन वर के पिता द्वारा मण्डप मे भात खाना बडी आवश्यक विधि मानी जाती है। जब तक 'समधी' इस मण्डप मे भोजन नही करता, तब तक माँडो पवित्र नही माना जाता। समधी (वर का पिता) इस मण्डप मे भात खाने के लिए बडी लम्बी दक्षिणा माँगता है, जिसे कन्या के पिता को देना ही पडता है। सामान्यतया समधी के भात खाने की फीस पूडी खाने की 'फीस' से प्राय दुगुना हुआ करती है। इसके बाद ही वह मण्डप मे दहेज अलग

१ प्रस्तुत लेखक को विवाह के अवसर पर कोहबर मे जाने के पहिले स्त्रियो ने रोककर 'रोका पढने' के लिए कहा। मैं इसके लिए बिल्कुल तैयार नही था। समझ मे नहीं आया कि क्या करूँ। मुझे कालिदास के मेघदूत के प्रथम श्लोक—"कश्चित् कान्ता विरह गुरुणा स्वाधिकारात प्रमत्त" याद था, जिसे मैंने प्रथमा परीक्षा मे पढ़ा था। मैंने उसी श्लोक को पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। इसकी समाप्ति पर जब दूसरा श्लोक पढ़ना प्रारम्भ किया ही था कि स्त्रियो ने कहा कि "बस, बस, बस अब रहे द बबुआ।" उन्होने समझा कि वर बहुत बडा 'विद्वान्' (विदमान) है, यद्यपि मैंने अभी प्रथमा परीक्षा भी उत्तीर्ण नहीं की थी। परन्तु मैं स्त्रियो द्वारा ली गयी इस मौखिक परीक्षा से उत्तीर्ण हो गया और कोहबर के भीतर प्रवेश पाने मे सफलता प्राप्त कर लिया। परन्तु आज पचास वर्षों के बाद जब यह सोचता हूँ कि अपने ही विवाह मे आनन्द के अवसर पर मुझे विरह का गीत (श्लोक) नहीं सुनाना चाहिए था, तब मुझे अपनी मूर्खता पर हँसी आती है और उन स्त्रियो की बुद्धि पर तरस खाता हूँ, जिन्होंने मुझे 'पढ़निहार वर' समझ लिया था।

से माँगता है। इस माडो मे भात खानेवाले वर के सभी परिवारवालो की थाली में भोजन परोसा जाता है जिसके बाद मे लोटा तथा गिलास के साथ उन्हे दे दिया जाता है। भोजपुरी क्षेत्र मे कुछ जिलो मे वर के द्वारा खिचड़ी खाने की भी प्रथा प्रचलित है। उस समय वर को सुस्वादु भोजन तथा मिष्ठान्न खाने के लिए दिया जाता है। वर उस समय अपने लिए साइकिल, घडी और अँगूठी आदि नेग के रूप मे माँगता है। मण्डप से कोहबर की समाप्ति के पश्चात समधी मौडो मे बाँधी गयी रस्सी को खोलता है, जिसे 'मॉडो खोलाई' कहते है। इसके लिए भी वह अपना नेग माँगता है।

(६) बारात की विदाई

'मरजाद' के दूसरे या तीसरे दिन बारात की विदाई होती है। इस समय कन्या पक्ष के प्राय सभी लोग 'जनवासा' मे आते है और वर-पक्षवालो से मिलते है। इस विधि को 'मिलनी' कहा जाता है। कन्या का पिता वर के पिता के चरणो पर नयी पीली धोती और कुछ रुपयो को अर्पितकर उसे आलिंगन करता है, उसके गले मिलता है जिसे 'अँकवार भेंट' कहते है। इसी प्रकार से वर को भी पीली धोती दी जाती है, जो 'कन्हावर' के नाम से प्रसिद्ध है। परिवार के अन्य लोगो—वर के चाचा, बडे भाई, मामा आदि—को भी धोती और रुपया दिया जाता है। इस 'मिलनी' मे समधी कन्या के पिता से अधिक से-अधिक रुपया ऐठना चाहता है और न देने पर अपनी अप्रसन्नता प्रकट करता है।

मिलनी के पश्चात् बारात विदा होती है। इस समय कन्या का पिता बारातियो के पाथेय के निमित्त कुछ पूडी, मिठाई, बुनिया और लकठो आदि देता है, जिसे 'कलेवा' कहते हैं। यदि गन्तव्य स्थान दूर हुआ तो बारात के नीची जाति के लोगो के लिए सत्तू भी दिया जाता है। इस प्रकार कलेवा लेकर बारात चली जाती है। यदि कन्या पक्षवाले वर पक्ष वालो के व्यवहार से प्रसन्न रहते है, तब तो उन्हे पहुँचाने के लिए उनके साथ कुछ दूर तक जाते है परन्तु यदि वे अप्रसन्न रहे, तो 'जनवासा' मे उन्हे हरी झण्डी दिखा देते है और बाराती अपना रास्ता नापने लगते है। इस प्रकार भोजपुरी विवाह सस्कार की समाप्ति होती है।

भोजपुरी विवाह के सम्बन्ध मे एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि —

"तीन टेढे टेढे, नालकी टेढ़, धुत्तुक टेढ़ अवरु समधी टेढ़।" अर्थात् भोजपुरी बारात मे तीन वस्तुए टेढ़ी होती है। वर के चलने की नालकी—पालकी का ही एक रूप, जिसमे टेढ़े बाँस लगाये गये रहते हैं—और बजानेवाला का शीशा (धुत्तुक) टेढा होता है। इन दोनो के साथ समधी—वर का पिता—भी टेढा होता है। इस प्रकार समधी के रुष्ट तथा लालची होने की कल्पना पहिले से कर ली जाती है। यह समधी बात-बात पर रुष्ट हो जाता है। उससे जितनी ही नम्रता से बातें की जाय, उसका पारा उतना ही चढ़ता जाता है। यदि बारात के स्वागत-सत्कार मे तनिक भी कमी आ गयी, यदि 'अड़गा माँगने' तथा 'भात खाने' के समय उसे मूयसी-दक्षिणा नही दी गयी, यदि उसकी मरकटही घोड़ी को खाने के लिए चना नही दिया गया, यदि उसके 'बजनिया' और 'नचनिया' के सामने खिचड़ी पूडी नहीं परोसी गयी, किम्बहुना यदि कटहल की तरकारी मे थोडा नमक अधिक हो गया, तब उसके क्रोध का पारा १२५ डिग्री सेण्टीग्रेड तक पहुँच जाता है। वह अपने क्रोध का प्रदर्शन दो रूपो मे करता है —(१) भोजन न करना, (२) बारात को लौटा ले जाने की धमकी देना। यही कारण है कि शायद ही कोई भोजपुरी बारात हो, जिसमे झगडा न होता हो। छोटी सी बात पर भी झगड़ा करने के लिए उतारू हो जाना, ऊटपटाँग वस्तुओ को देने के लिए 'फर्माइश' करना भोजपुरी समधी की प्रकृति है जिसके कारण झगड़ा होना स्वाभाविक है। इसीलिए बारात के विदा हो जाने पर कन्या का पिता राहत की साँस लेता है और महर्षि कण्व की भाँति वह भी 'परायी धरोहर' को लौटाकर चैन की नीद सोता है।

(५) परिच्छेद

गवना

'गवना' शब्द सस्कृत के 'गमन' का अपभ्रंश रूप है, जिसका अर्थ 'जाना' है। विवाह के पश्चात् यह सस्कार सम्पादित किया जाता है। सस्कृत मे इसे 'द्विरागमन' कहते हैं, जिसका आशय है दूसरी बार आना। बहुत से लोग विवाह के पश्चात् ही वधू की विदाई कराकर उसे अपने घर लिवा लाते हैं, परन्तु कुछ लोगो के यहाँ विवाह के साथ ही कन्या की विदाई नहीं 'सहती'। अत वे गवना करना या कराना ही उचित समझते हैं।

गवना का समय—गवना विवाह के प्रथम, तृतीय, पञ्चम अथवा सप्तम वर्ष मे होता है अर्थात् इसका विधान विषम वर्षों मे किया जाता है। जब बाल-विवाह की दूषित प्रथा अपनी पराकाष्ठा पर थी, जब पाँच और सात वर्ष के बच्चो तथा बच्चियो का विवाह करना आवश्यक समझा जाता था, उस समय गवना पाँच अथवा सात वर्षों के बाद किया जाता था। विवाह के इतने वर्षों के बाद इस सस्कार के सम्पादन करने का एक अभिप्राय यह भी था कि इस सुदीर्घ अन्तराल में विवा-

हित बच्चो की आयु मे थोडी वृद्धि हो जाती थी और वे इस सस्कार के महत्त्व को समझने लग जाते थे। परन्तु आजकल अब जवान ालक ओर बालिकाओ का विवाह होने लगा है, अत अब गवना प्राय एक वर्ष के भीतर ही होता है।

गवना के लिए शुभ मास अगहन और चैत्र है। इनमे भी प्रधानतया वसन्त मास मे ही इस शुभ सस्कार का सम्पादन किया जाता है। चैत्र के महीने मे 'वायुरुद्ध' पालकी मे बैठी हुई किसी कन्या की रोने की आवाज सुनाई पडे, तो यह समझ लेना चाहिए कि इसकी विदाई हो गयी है और यह अपनी ससुराल जा रही है।

गवना कराने के लिए वर का आना अत्यन्त आवश्यक है। उसके साथ उसके छोटे, बडे भाई, और बन्धु-बान्धव भी जाते हे जिनकी सख्या प्राय बीस-पच्चीस से अधिक नही है। वर का पिता इस अवसर पर नही जाता क्योकि अपनी पुत्र-वधू का रोदन सुनना उसके लिए निषिद्ध है। गवना के समय भी गाजा-बाजा, नालकी-पालकी आदि सभी जाता है, परन्तु इनकी सख्या थोडी होती है।

वर का पिता कन्या के अभिभावक के पास गवना का दिन, गाव के 'नाई' के द्वारा, चिट्ठी लिखकर भिजवाता है, जिसे 'नियार' कहते है। यह शब्द सस्कृत के 'निमन्त्रण' का अपभ्रश रूप जान पडता है। गॉवो मे 'नियार आना' का अर्थ होता है, कन्या की विदाई का सन्देश आना। एक गीत मे इसका उल्लेख इस प्रकार से हुआ है —

"खेलत रहलीं हम सुपुली मउनियाँ, कि आइ रे गइले ना,
मोरा गवना का नियारवा कि आइ रे गइले ना।"

कोई बच्ची कहती हे कि मै अपनी सखियो के साथ 'सुपुली-मउनी' का खेल खेल रही थी, इतने ही मे मेरे गवने का सन्देश आ पहुँचा। गाँवो मे यह प्रथा है कि गवना करने के सन्देश या सूचना को तीन बार लौटा देना चाहिए। किसी पिता ने प्रथम बार गवना की तिथि की सूचना मिलते ही यदि उसे स्वीकार कर लिया, तो यह कार्य निन्दनीय समझा जाता है। चौथी बार सूचना आने पर ही पुत्री का पिता गवने की तिथि को स्वीकार करता है। जिस दिन पुत्री को यह सूचना मिलती है कि उसकी विदाई का दिन तय हो गया है, उसी दिन से वह रोना-पीटना शुरू कर देती है। जो लडकी जितना ही अधिक इस अवसर पर रोती है, उसकी उतनी ही अधिक प्रशसा की जाती है। लडकी के रोने का यदि कोई कारण पूछता है, तो उसकी माँ अथवा घर की अन्य स्त्रियाँ कहती है कि —

"रउरा नइखी जानत, हमरा बबुनी के निआर नु आइल बा, एही से आताना रोअत बाडी। का कही, अब तीन चार दिन मे बबुनी के बिदाई होइ जाई।"

गवना की निश्चित तिथि पर वर तथा उसके कुटुम्बी आते है। इनके स्वागत-सत्कार तथा भोजन के लिए बडा प्रबन्ध किया जाता है। दूसरे दिन पिता अपनी पुत्री के लिए दहेज के रूप मे चारपाई (पलँग), तोसक, तकिया, रजाई, भोजन पकाने तथा खाने के सभी बर्तन, तेल, मसाला, सूखा फल तथा मिष्ठान्न देता है। वह अपने दामाद के लिए अपनी शक्ति के अनुसार साइकिल, घडी, अँगूठी उसके व्यक्तिगत उपभोग के लिए प्रदान करता है। अब के दामाद तो 'रेडियो', 'ट्राञ्जिस्टर' तथा 'मोटर साइकिल' की भी माँग करने लगे है। कहने का आशय यह है कि अपनी पुत्री तथा दामाद के लिए जो उपयोगी तथा आवश्यक वस्तुएँ है, उन सभी को इस 'दशमोग्रह' की प्रसन्नता के लिए समर्पित करता है।

(१) अनुच्छेद—पुत्री की विदाई

भोजपुरी समाज मे पुत्री की विदाई का दृश्य बडा ही कारुणिक होता है। इस अवसर पर गाँव भर की स्त्रियाँ कन्या के घर एकत्रित होती है। इन सभी स्त्रियो से बारी-बारी से उस कन्या को 'भेट करना' पडता है, अर्थात् उनसे गले मिलकर रोना पडता है। फिर घर की स्त्रियो से 'भेट करने' की बारी आती है। उनका आलिंगनकर—जिसे 'भेट-अँकवार' देना कहा जाता है—वह कन्या फिर रोना प्रारम्भ करती है। जब माता से 'भेट करने' की बारी आती है, तब पुत्री का 'करुण-क्रन्दन' अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है। वह बडे ही हृदय-विदारक शब्दो मे करुण क्रन्दन करने लगती है। दोनो एक-दूसरे को पकडकर लिपट जाती हैं और कारुणिक प्रलाप करने लगती है। पुत्री, प्रलाप करने के साथ ही नये स्थान मे वह कैसे रहेगी, इसे रो-रोकर कहती है। उसकी माता उसके वियोग से उत्पन्न कष्टो का उल्लेख आसुओ के ताना-बाना मे करती है। सवत्र रोना-ही-रोना सुनाई पडता है। घर का वातावरण इस करुणक्रन्दन से ग्ज उठता है और सवत्र विषाद-ही-विषाद दृष्टिगोचर होता है।

"कन्या की विदाई की बेला बडी हृदय-विदारक होती है। जहाँ वर-पक्षवालो मे आनन्द और उल्लास छाया रहता

है, वहाँ कन्या पक्ष के लोगो मे विषाद की अमिट रेखा दिखाई पडती है। इस अवसर पर माता पिता भाई बहिन कुटुम्बी और सम्बन्धी तथा गाव की स्त्रियो का करुण क्रन्दन सुनकर कलेजा [illegible] है। कही कन्या की माता अपनी प्राणप्यारी पुत्री को गले से लगाकर रोती दीख पडती है [illegible] आर्तस्वर होता है। कही कन्या के छोटे छोटे भाई और बहिन 'पूका फार' कर रहे है [illegible] आँसुओ की झडी झडती रहती हे। कही कुटुम्बियो के नेत्रो मे आँसू छलक [illegible] माता का रोना तो पत्थर को भी पिघलाये देता हे।"[1] सम्भवत भवभूति की यह उक्ति [illegible] सिद्ध [illegible] जान पडती है —

"अपि ग्रावा रोदति, अपि दलति वज्रस्य हृदयम।"[2]

भोजपुरी के गवना के एक गीत मे माता, पिता तथा भाई के रोने का बडा ही कारुणिक तथा सजीव [illegible] पाया जाता है।[3]

"बाबा के रोवले गगा बढि अइली,
आमा के रोवले अनोर।
भइया के रोवले चरन धोती भीजे,
भउजी नयनवो ना लोर॥"

पुत्री की वास्तविक विदाई की बेला तथा उसे पालकी मे बैठाकर विदा करने का समय बडा [illegible] तथा हृदय द्रावक होता है। इधर वर-पक्षवाले वधू को पालकी मे बिठाने के लिए जल्दी मचाते रहते है उधर पुत्री की माता उसकी भावज उससे चिपटकर रोती रहती है और उसे छोडने का नाम ही नही लेती। उस समय [illegible] धैर्य की सीमा नष्ट हो जाती है और सब लोग फूट फूटकर रोने लगते है। [illegible] और करुण [illegible] कुहराम घर मे मचता है, जिसका वणन करना कठिन है।[4]

अन्त मे गॉव की नाइन कन्या को पालकी मे लाकर बिठा देती है। वर पक्षवाले [illegible] तत्काल बन्द कर देते है और उस पर 'ओहार' भी डाल देते है जिससे कोई पुरुष नयी वधू को देख न सके। रोती-कलपती कन्या पालकी मे बैठी हुई, अनजान स्थान के लिए चली जाती है। पालकी के पीछे नाइन अथवा कन्या का भाई उसका अनुगमन करता है। जब वर वधू को लेकर अपने घर पहुँच जाता है, तब घर तथा गाँव की स्त्रियाँ वर का 'परिछावन' करती है। इसके पश्चात् वर तथा वधू दोनो को जमीन पर पैर न रखकर, बाँस की बनी छबडी मे पैर रखना पडता है। इस विधि का 'दौरा मे डेग डालना' कहते हैं। दोनो भी बारी-बारी से 'दौरा' मे पैर रखकर धीरे धीरे चलते हैं। अत 'दौरा मे डग डालना' भोजपुरी मे मुहावरे के रूप मे प्रचलित हो गया है, जिसका अर्थ है अत्यन्त धीरे धीरे चलना। बाँस वंश का प्रतीक माना जाता है अत दौरा मे पैर रखने का आशय है भविष्य मे सन्तान की प्राप्ति। घर के भीतर कन्या के पहुँचने पर उसके हाथो से अन्न के भाण्डार का स्पर्श कराते है, जिसका अर्थ धन धान्य की प्राप्ति है। कुछ देर के पश्चात् उसकी गोदी मे एक बालक रख दिया जाता है जो उसकी भावी पुत्रोत्पत्ति का प्रतीक समझा जाता है।

दूसरे दिन गाँव की स्त्रियाँ नयी वधू का मुख देखने के लिए आती हैं और उसका मुख देखकर नेग के रूप मे उसे रुपया अथवा गहना देती हे, जिसे 'मुह देखाई' कहते है। सम्भवत यह प्रथा महाकवि बिहारीलाल के समय मे भी प्रचलित थी। उन्होने इस प्रथा का उल्लेख नीचे के दोहे मे किया है —

"मानहुँ मुख दिखरावनी करि अनुराग।
सास सदन, मन ललन हूँ, सौतिन दियो सुहाग॥"

भोजपुरी क्षेत्र मे पर्दे की प्रथा कठोर रूप मे होने के कारण 'बहू' की 'सास' अथवा उसकी 'जेठानी' उसके सारे शरीर को ढँककर उसके घूँघट को खोलकर उसका मुँह दिखलाती है। इस समय नवेली बहू अपनी आँखो को बन्द किये रहती है।

१ डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन, पृष्ठ १८१-८२।
२ उत्तररामचरित।
३ डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय भोजपुरी लोकगीत भाग १।
४ इस सम्बन्ध मे लेखक का निजी अनुभव है।

इस प्रकार 'नेग' देने के पश्चात् यह विधि समाप्त हो जाती है, परन्तु मुँह देखनेवाली स्त्रियो का ताँता कुछ दिनो तक लगा ही रहता है।

कुछ दिनो तक बहू को पूण विश्राम दिया जाता है। उससे कोई भी काम करने के लिए नही कहा जाता। जितने दिनो अथवा महीनो तक वह काम नही करती, उतने दिनो को 'बैठाना' कहा जाता है। फिर किसी दिन शुभ मुहूर्त मे उसे प्रथम बार भोजन बनाने के लिए कहा जाता है, जिसे 'रसोई छुआना' कहते है। इस दिन बहू स्वय भोजन बनाती है और बडे प्रेम से वह अपने 'ससुर' तथा 'जेठ' को भोजन करने के लिए परोसती है। वह अपनी सास के माध्यम से इसके लिए अपना नेग माँगती है, जिसे उसका ससुर रुपये अथवा गहने के रूप मे उसे प्रदान करता है। विवाह के चौथे दिन 'चौथारी' का कृत्य सम्पन्न किया जाता है। इस दिन घर तथा गाँव की स्त्रिया वर के साथ किसी नदी के किनारे जाती है और उसके हाथ मे बाधे गये 'ककण' को खोलकर फेक देती है। इसके उपलक्ष्य मे रात्रि मे समस्त कुटुम्बियो को दाल-भरी पूरी, कोहडा की तरकारी आर 'रसियाव' (देहाती खीर) खिलाया जाता है। इस प्रकार तिलक के दिन विवाह-सम्बन्धी जो विधि-विधान प्रारम्भ होता हे, उसकी समाप्ति 'चौथारी' के साथ हो जाती है।

(६) परिच्छेद

मृत्यु-सस्कार

मृत्यु मानव-जीवन का स्वाभाविक पयवसान है। महाकवि 'कालिदास' ने लिखा है कि मृत्यु मनुष्य की प्रकृति हे और जीवन को विकृति समझना चाहिए।

"मरण प्रकृति शरीरिणाम्।
विकृति जीवनमुच्यते बुधैं ॥"

इस प्रकार मृत्यु मानव का धर्म है। यह उसके जीवन की अवश्यभावी परिणति है।

ससार के सभी देशो मे मृत्यु के अवसर पर सस्कार सम्पादित किये जाते है। भारत मे षोडश सस्कारो मे अन्त्येष्टि—जो किसी व्यक्ति की मृत्यु के बाद की जाती है—अन्तिम सस्कार माना जाता है। अत इस अवसर पर विभिन्न विधि-विधानो का सम्पादन करना स्वाभाविक है।

(१) अनुच्छेद

भोजपुरी क्षेत्र मे भी इस समय अनेक क्रिया-कलापो को किया जाता है। इस क्षेत्र मे जब किसी व्यक्ति की मृत्यु आसन्न मालूम होने लगती है, तब उसके घरवाले उसके मुह मे गगाजल और तुलसीदल डालते है। चूकि ये दोनो वस्तुएँ पवित्र मानी जाती है, अत लोगो का यह विश्वास है कि ऐसा करने से मृतात्मा को सदगति प्राप्त होती है। जब रोगी के जीवित रहने की आशा समाप्त हो जाती है, तब लोग उससे 'गोदान' कराते है, जिसे 'बाछी छुआना' कहा जाता है। धनी लोग किसी दुधारू गाय को ही दान मे देते है, परन्तु निर्धन व्यक्ति गाय की बछिया या बाछी दान कराके ही सन्तोष लाभ करते है। हिन्दुओ का यह विश्वास है कि मृतात्मा के माग मे वैतरणी नामक नदी पडती है, जिसे पार करना अत्यन्त कठिन होता है। दान मे दी गयी यह गाय, उस वैतरणी को पार कराने मे सहायक होती है। इसीलिए मरनेवाले व्यक्ति के द्वारा 'गोदान' अथवा 'बछिया-दान' कराना अत्यन्त आवश्यक माना जाता है। इस अवसर पर अन्न तथा वस्त्र का भी दान किया जाता है, जिससे रोगी के कष्टो का शमन हो सके।

भू-सेज देना—जब यह आशका होने लगती है कि रोगी अब कुछ ही घण्टे का अतिथि है, तब उसके परिवारवाले जमीन पर कुश की 'आसनी' बिछा देते है और रोगी को चारपाई पर से उठाकर इसी आसन पर जमीन पर 'लिटा' (सुला) देते है। इस प्रक्रिया को 'भुँइ सेज देना' कहते है। 'भुइ सेज' का अथ है 'भूमि शय्या'। चूकि मनुष्य पैदा होने पर जमीन पर ही 'गिरता' (आता) है, अत मृत्यु के समय भी उसे पृथ्वी माता की शरण मे ही रहना या जाना चाहिए। इसी भावना से प्रेरित होकर उसे 'भुँइ सेज' दिया जाता है। इसके पश्चात् उसके परिवार के लोग तथा निकट-कुटुम्बी उसके चारो ओर बैठ जाते है और तुलसीकृत रामायण तथा गीता का पाठ करने लगते है। कुछ लोग 'रामधुन' करने मे प्रवृत्त हो जाते है। ऐसा विश्वास है कि राम का नाम कानो मे पडने से प्रेतात्मा को सद्गति प्राप्त होती है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है कि —

"कोटि कोटि मुनि जतन कराही।
अन्त राम कहि आवत नाहीं॥"

अर्थात् मुनि लोग भी करोडो प्रयास करते है परन्तु अन्त समय में राम का नाम [illegible] मुँह से नहीं निकलता। इसी लिए घरवाले, रोगी से राम-नाम का उच्चारण करने के लिए बार बार आग्रह [illegible] किसी कारण वह राम, राम के उच्चारण मे समथ नही है तब अन्य लोग राम-धुन लगाकर उसके कर्ण कुहरों में राम [illegible] ध्वनि को पहुँचाने का प्रयास करते है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता मे कहा है कि मनुष्य अन्त में जिस भावना से भावित होकर अपना शरीर [illegible] छोडता है वह उसी भाव को प्राप्त करता है —

"य य वापि स्मरन् भाव, त्यजन्त्ये ते कलेवरम्।
त तमेवेति कोन्तेय! सदा तद् भाव भावित ॥"

इसी भावना से प्रेरित होकर मृत्यु को प्राप्त होनेवाले उस व्यक्ति को राम राम की भावना से भावित [illegible] जाता हे।

कुछ लोगो का विश्वास है कि रामायण का पाठ रोगी को आयुष्य प्रदान करता है और इसके ठीक विपरीत गीता का पाठ उसके जीवन का अवसान करने मे सहायक होता है। अत किसी वृद्ध की बीमारी में गीता का पाठ [illegible] समझा जाता है।[१]

मृत व्यक्ति यदि युवक और 'कमासुत' हुआ, तो उसके निधन पर घर के लोग रोना-पीटना शुरू करते है। वे चिल्ला चिल्लाकर रोने लगते है जिससे घर मे कुहराम मच जाता है। रोने धोने और चिल्लाने का यह क्रम कई दिनों तक चलता रहता है। दुर्भाग्यवश मृतात्मा यदि विवाहित हुआ, तो यह करुण क्रन्दन अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है। उसकी तरुण पत्नी का रोना सुनकर पाषाण-हृदय भी टूक टूक हो जाता है। उस विधवा का आर्त्तनाद बड़ा ही कारुणिक तथा हृदय-विदारक होता है। वह रोती नही, बल्कि 'घिघियाती' है। कुटुम्ब तथा गाँव की नयी तथा बूढ़ी सभी स्त्रियाँ वहाँ एकत्रित हो जाती है और उस विधवा को इस दारुण दुःख को सहने के लिए धीरज बँधाती है। इस सम्बन्ध में यह उक्ति प्रसिद्ध है कि —

"नयी राड़ रोवेली, पुरानी समुझावेली।
कठिन करऽ जियरा ए भोरी . ॥"

गाँव की स्त्रियाँ भी उसकी सहानुभूति मे अनवरत अश्रुपात करती हैं और उसके भाग्य पर तरस खाती और विधाता को कोसती है। कितनी युवती स्त्रियाँ अपने सिर को जमीन पर पटककर अपना प्राण देने लगती हैं।[२]

पति के मरने के कुछ घण्टो के भीतर ही गाँव तथा पड़ोस की स्त्रियाँ उस विधवा के माँग का सिन्दूर पानी से धोने लगती है अथवा तेल लगाकर उसे मिटाना प्रारम्भ कर देती है। वे उसके हाथ की काँच की चूड़ियाँ—जो सौभाग्य का प्रतीक समझी जाती है—अतिशीघ्र फोडने मे तत्पर हो जाती है और कुछ ही मिनटो में उस युवती की कोमल कलाई सौभाग्य के चिह्न से सूनी और उदासीन हो जाती है। इतना ही नही, बल्कि उस विधवा को अपनी रंगीन साड़ी का परित्यागकर, सफेद मारकीन का 'लूगा' (सारी) पहिनने के लिए बाध्य किया जाता है। इसके माथे की लाल बिन्दी—जो सौभाग्य का

१ एक सज्जन ने लेखक को बताया कि उनके पिता की आयु एक शताब्दी की सीमा का स्पर्श कर रही थी। सीढ़ी से गिर जाने से उनकी हड्डी टूट गयी थी, जिससे उनको अत्यन्त कष्ट था। इस कष्ट से मुक्ति के लिए उन्होंने गीता का पाठ करना प्रारम्भ किया। ज्योंही उन्होंने गीता के पारायण की समाप्ति की, ठीक उसी समय उनके पिता की जीवन-लीला भी समाप्त हो गयी।

२ प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक ने अपने बचपन में एक ऐसे ही कारुणिक दृश्य को देखा था। उसके पड़ोस की एक युवती स्त्री का पति, जो 'कमासुत' था ओर घर का एकमात्र भरण-पोषण करनेवाला था, की मृत्यु हो गयी थी। उसकी पत्नी उसके वियोग को न सहकर अपनी छाती को पत्थर से पीटने लगी। जब घर के लोगों ने उसके हाथ से पत्थर को छीन लिया, तब वह जमीन पर अपने सिर को पटकने लगी, जिससे उसके सिर से खून की धारा बहने लगी। बहुत समझाने पर भी वह किसी का कहना नहीं सुनती थी। अन्त मे घर की दो-तीन स्त्रियों ने उसके हाथ तथा सिर को पकड़ लिया, जिससे वह उसे जमीन पर न पटक सके। कई दिनो तक यह क्रम चलता रहा। आज भी उस हृदय विदारक दृश्य को स्मरणकर मेरा हृदय काँप उठता है और उस विधवा की दुर्दशा को देखकर आँखों से आँसुओं की धारा अनायास प्रवाहित होने लगती है।

तिलक है—और टिकुली भी मिटाकर नष्ट कर दी जाती हे। यदि कही उसने महावर अथवा किसी रग का प्रयोग अपने शरीर के प्रसाघन के लिए किया हो, तो उसे भी धोकर साफ कर दिया जाता है। इस प्रकार पति की मृत्यु के कुछ मिनटो के भीतर ही वह सधवा विधवा हो जाती है और उसका कोमल कलेवर तथा काञ्चन काया उस ठूठ (स्थाणु) पेड के समान दिखाई पडने लगती हे जो पत्र-पुष्प से विरहित होने के साथ ही नीरस तथा शुष्क खडा होता है। इस प्रकार भोजपुरी प्रदेश की बाल अथवा युवती विधवा ससार की सबसे दयनीय, दु खी तथा अभिशप्त प्राणी है, जिसका मुख देखना भी पाप समझा जाता है। वह ऐसा लावारिस जानवर है, जिसको पूछनेवाला कोई नही है और न जिसकी किसी को चिन्ता ही रहती है।

परन्तु यदि किसी वृद्ध-वरिष्ठ की मृत्यु होती है, यदि कोई बूढा-ठूढा मर जाता है, तब उसके परिवार वालो को कोई कष्ट नही होता। यदि वह बूढा रोग से पीडित हो, पीडा तथा कष्ट पा रहा हो, तो घरवाले यही मनाते है कि उसकी जल्दी मृत्यु हो जाय और उस बूढे की सेवा करने से उनका पिण्ड छूट जाय। अत ऐसे बूढे के मरने से दु ख के बदले सुख ही होता है? इच्छा न रहने पर भी बूढे के मरने पर भी घरवालो को लोक-लज्जा के कारण रोना ही पडता है। भोजपुरी समाज मे ऐसे व्यक्ति को निन्दित समझा जाता है, जिसके मरने पर कोई रोनेवाला न हो। लोग घृणा की दृष्टि से यह कहते है कि "ए बूढवा के मरला पर केहू रोवे वाला भी नइखे", अर्थात् इस वृद्ध के मरने पर कोई रोनेवाला भी नही है। अत औपचारिक रूप से सही, बूढे व्यक्ति के भी मरने पर उसके परिवारवाले रोना अपना धम समझते है और अनिच्छया आँसू के दो-चार कतरे बहाते ही हे।

अरथी—वृद्ध व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् हरे तथा कच्चे बाँस को मँगाकर उसकी 'अरथी' बनायी जाती है। इसे 'टिकठी' भी कहते है। इस अरथी पर मृतात्मा को लिटा दिया जाता है। परन्तु उस अरथी पर सुलाने के पूव उसके शरीर को नहलाया जाता है और उसे नवीन वस्त्र पहिनाया जाता है, जो 'कफन' के नाम से प्रसिद्ध है। 'कफन' का कपडा सभी दूकानो पर नही मिलता। शहरो मे इसके लिए एक निश्चित दूकान होती है, वही यह कपडा उपलब्ध होता है। कफन का कपडा 'खस्टा' और पतला सूती वस्त्र है, जो बडा सस्ता बिकता है। इसीलिए भोजपुरी समाज मे गरीब तथा निर्धन व्यक्ति के लिए कहा जाता है कि "एकरा मरला पर कफनो ना जूरी", अर्थात् इसके मर जाने पर इसे कफन भी नही मिलेगा। धनी तथा समृद्ध लोग कफन के ऊपर शाल-दुशाला ओढाते है तथा उस अरथी को फूल-माला से सजाते है। जब अरथी तैयार हो जाती है, तब मृत व्यक्ति के चार पुत्र उस अरथी को अपने कन्धो पर उठाकर उसे श्मशान घाट ले चलते है। यदि उस व्यक्ति के चार पुत्र न हो, तो घर के निकटतम सदस्य—भाई, भतीजा-आदि—उस अरथी मे अपना कन्धा लगाते है। इसके साथ ही गाजा-बाजा का भी प्रबन्ध रहता है। अरथी के आगे बैण्ड बाजा बजता चलता है। परन्तु इसके अभाव मे 'चमरुआ' बाजा भी प्रयोग मे लाया जाता है। इसके पश्चात् अरथी चलती है, जिसे चार व्यक्ति अपने कन्धो पर ढोते है। अरथी का ढोना पुण्य का कार्य समझा जाता है। अत परिवार के, कुटुम्ब के तथा गाँव के सभी लोग बारी-बारी से इसमे कन्धा लगाते है।

इस श्मशान-यात्रा मे पैसा लुटाया जाता है। परिवार का कोई व्यक्ति खील, मखाना, कौडी तथा पैसा, सबको मिलाकर, इन्हे एक झोला मे रखकर अरथी के ऊपर फेकता जाता है। माग मे गिरी हुई वस्तुओ को गरीब लोग लूटते है। इस प्रकार 'पैसा लुटाना' बडा ही सम्मान और आदर की वस्तु समझी जाती है। धनी लोग रुपयो को भी लुटाते है, जिनके लूटनेवालो की सख्या बहुत अधिक होती है।

अरथी को कन्धे पर ढोनेवाले लोग 'राम नाम सत्त है, राम नाम सत्त है' का उच्चारण करते जाते है और उनके बाद समस्त श्मशान-यात्री इसी की पुनरावृत्ति करते है। यद्यपि इस मन्त्र का अथ बडा सुन्दर है तथा यह एक शाश्वतिक सत्य का प्रतिपादन करता है, परन्तु श्मशान-यात्रा के अतिरिक्त इस मन्त्र का उच्चारण करना बुरा तथा अशुभ माना जाता है। रास्ते मे शव को पाँच स्थानो पर जमीन पर रखना आवश्यक माना जाता है और इस समय पिण्डदान भी किया जाता है। इस श्मशान-यात्रा मे भाग लेनेवाले सभी व्यक्तियो को नगे सिर और नगे पैर होना चाहिए। अरथी को ढोनेवाले व्यक्तियो के लिए तो जूता पहिनना अत्यन्त निषिद्ध है। चाहे कितनी भी 'भूभुरि' क्यो न हो, परन्तु इस यात्रा के यात्री पदाति और नगे पैर ही चलते है।[1]

१ इस सम्बन्ध में एक निजी अनुभूत घटना का उल्लेख करना कुछ अनुचित न होगा। राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय ज्ञानपुर (वाराणसी) के एक प्राध्यापक की स्त्री का देहावसान हो गया था, जिनकी अरथी को कन्धे पर उठाकर रामघाट ले जाने का सौभाग्य इस लेखक को भी प्राप्त हुआ था। गर्मी के दिन थे। सूर्य की प्रखर किरणें ऊपर से पड रही थीं, जिससे सड़क की तारकोल भी पिघलने लगी थी। ऐसी सडक पर अरथी लेकर चलना बडा ही कठिन कार्य था। पैरो में गर्म तारकोल चिपक जाती थी, जिससे बडा कष्ट होता था। सडक का मार्ग समाप्त होने पर भूभुरि (गर्म बालू) से पाला पडा। ऐसा मालूम

श्मशान घाट पहुँचने पर शव को जलाने के लिए चिता बनायी जाती है। चन्दन की चिता प्रशस्त पवित्र मानी जाती है अत धनी तथा समृद्ध लोग चन्दन की पावन लकड़ी से ही चिता को सजाते है। परन्तु साधारण व्यक्ति जो ऐसा करने मे असमथ है, इस कार्य के लिए बेल, पलाश अथवा आम की लकडी का ही प्रयोग करते है परन्तु वे भी पवित्रता की भावना से चिता के निर्माण मे चन्दन के एक-आध टुकडो को अवश्य ही काम मे लाते है। निर्धन मनुष्य आम के अभाव मे किसी भी लकडी तथा उपले (गोइठा) की सहायता से इस काय का सम्पादन करते है। चिता तैयार हो जाने पर शव को उस पर सुला दिया जाता है। परन्तु इस बात का ध्यान रखा जाता है कि शव का पैर दक्षिण दिशा की ओर हो क्योकि यही यमराज की दिशा है।

अब दाह-सस्कार का काय प्रारम्भ किया जाता है, जिसे 'मुंह मे आग देना' कहते है। काशी मे इस काय के लिए अग्नि स्थानीय डोम से माँगी जाती है, जो इसके लिए मनमानी फीस वसूल करता है। गाँवो मे जहाँ ऐसी व्यवस्था नही है, घरवाले ही आग को प्रज्ज्वलित करते है। वृद्ध व्यक्ति का पुत्र या पौत्र अथवा उसके परिवार का कोई निकट व्यक्ति दाह सस्कार का काय करता है। वह जलती हुई आग को लेकर चिता की तीन या पाँच बार प्रदक्षिणा करता है और प्रत्येक उस अग्नि का मृत व्यक्ति के सिर से स्पर्श कराता है। इसी प्रक्रिया को 'मुह मे आग देना' कहा जाता है।

दाह-सस्कार

पिता की मृत्यु पर दाह-सस्कार का अधिकार उसके ज्येष्ठ पुत्र को प्राप्त है, परन्तु उसकी अनुपस्थिति मे छोटा पुत्र भी इस काय को कर सकता है। भोजपुरी प्रदेश के कुछ जिलो मे 'दाही'—दाह-सस्कार करनेवाला व्यक्ति—के लिए मुह मे आग देने के पहिले ही सिर के बालो को श्मशान मे ही मुंडवाना आवश्यक है परन्तु कुछ जिलो मे यह काय 'दशाह' के दिन किया जाता है। चिता मे आग लगाने के पहिले पिण्डदान आदि की विधि का सम्पादन होता है। फिर उसमे आग लगा दी जाती है। जब चिता धाँय-धाँयकर जलने लगती है, तब सभी श्मशान यात्री चिता से कुछ दूरी पर बैठ जाते है। कुछ देर मे 'दाही' एक लम्बा सा बाँस लेकर जलते हुए शव के सिर पर उससे प्रहार करता है। इस विधि को 'कपाल क्रिया' कहते है। आजकल यह शब्द हिन्दी मे मुहावरे के रूप मे प्रयुक्त होने लगा है, जिसका अथ है लाठी से किसी का सिर फाड़ना। सभी लोग श्मशान मे तब तक बैठे रहते हैं, जब तक लाश अच्छी तरह से जल न जाय। अन्त मे घरवाले चिता मे से मृतात्मा की अस्थि का चयन करते हैं, जिसे 'फूला' कहा जाता है। इस 'फूला' को वे मिट्टी के किसी नवीन पात्र मे रखते है और काशी, प्रयाग अथवा हरिद्वार मे उसे ले जाकर गगा की पावन धारा मे प्रवाहित कर देते है। शव के जल जाने पर उसकी राख को नदी मे फेंक देते है। चिता के स्थान को जल से धोकर वहाँ ३६ (छत्तीस) का अंक लिख दिया जाता है जिसका भाव यह है कि इस व्यक्ति का अब इस ससार से सदा के लिए नाता टूट गया। इसके बाद सभी लोग घर लौट आते हैं। परन्तु अपने गृह के भीतर प्रवेश करने के पहिले वे पैरो को धोते हैं, पत्थर को छूते और नीम की पत्तियो को स्पर्श करते है जिससे प्रेत व्यक्ति की आत्मा घर के भीतर घुसने न पाये।

दूसरे दिन प्रात काल नाई और ब्राह्मण (पुरोहित) बुलाये जाते हैं। दाही' उनके साथ जाकर किसी पीपल के पेड़ की शाखा मे मिट्टी के घडे (घण्ट) को बाँधता है, जिसे 'घण्ट बाँधना' कहते हैं। स्नान करने के पश्चात् 'दाही इसी 'घण्ट' मे तिल और कुश से युक्त जलाञ्जलि देता है और उस पीपल की पाँच बार प्रदक्षिणाकर उस वृक्ष की जड मे भी जल 'चढ़ाता' है। लोगो का यह विश्वास है कि 'घण्ट' मे दिया गया जल परलोक मे प्रेतात्मा को प्राप्त होता है। सन्ध्याकाल मे भी पुन इसी प्रक्रिया की पुनरावृत्ति की जाती है। घण्ट टाँगने या बाँधने के दिन कुटुम्ब के सभी व्यक्तियो को भोजन के लिए निमन्त्रित किया जाता है। इस दिन दाल मे हल्दी नही डाली जाती और न भोजन के लिए शाक ही बनाया जाता है। अन्य लोगो के लिए तो पत्तल मे भात और दाल परोसी जाती है, परन्तु 'दाही' मिट्टी की नयी कड़ाही अथवा मिट्टी के ही किसी दूसरे पात्र मे भोजन करता है। भोजन के पहिले थोडा-सा कच्चा दूध पीना सभी के लिए आवश्यक माना जाता है। इस विधि-विधान को 'दूध लगाना' की सज्ञा प्राप्त है। भोजपुरी प्रदेश की कर्कशा स्त्रियाँ किसी को गाली देते समय चिल्ला-चिल्ला कर कहती हैं "तोहार दूध लगावो", इस गाली मे उसी प्रथा की ओर संकेत किया गया है, जो अशुभ मानी जाती है।

होता था कि पैर जलकर 'भुभुना' हो जायेगा। किसी प्रकार 'राम नाम सत्त है' कहते हुए रामघाट पहुँचे। उन श्मशान-यात्रियों में कितने ही अध्यापक नगे पैर—वह भी भूभूरि में—चलने के बिलकुल ही अभ्यासी नहीं थे। अत उनके पैरों में फफोले पड़ गये, जिसके कारण उन्हें 'कैजुअल लीव' लेनी पड़ी। परन्तु रामघाट जाकर भी राम की कृपा से अपने राम आराम से घर लौट आये।

भोजन के पश्चात् 'दाही' उस भोजन-पात्र को किसी खेत मे ले जाकर रख देता है। इस प्रकार 'दूध-लगाना' की विधि समाप्त हो जाती हे।

दाही सन्ध्या के समय पुन पीपल के 'घण्ट' मे जलाञ्जलि प्रदान करता है तथा पुन इस वृक्ष की प्रदक्षिणा करता है। घर लौटकर आने पर उसे कुछ विधि-विधान करना पडता है। वह सरकण्डे की तीन पतली लकडी, जो 'टिकठी' कहलाती हैं, के ऊपर एक दोना रखता है। फिर इसी दोने मे वह तिल और जल को स्थापित करता है। पुरोहित जी मन्त्रो द्वारा कुछ पूजा कराते है। इसके पश्चात् 'टिकठी' तथा 'दोने' को उठाकर फेक देते है।

(२) अनुच्छेद—दाही की वेश-भूषा, दैनिक चर्या तथा विधि-निषेध

जो व्यक्ति शव का दाह-सस्कार करता है, उसे 'दाही' कहा जाता है। दाह-सस्कार को सम्पादित करने के पहिले ही वह अपने पुराने वस्त्रो का परित्याग कर नवीन वस्त्रो को धारण करता है। वह अपने कमर मे दो हाथ की लुगी पहिनता है और शरीर के ऊपरी भाग को डेढ या दो हाथ की गम्छी (तौलिया) से आच्छादित किये रहता है। श्राद्ध-काल के अन्त तक उसके लिए निम्नाकित वस्तुओ को धारण करना अथवा उन्हे उपयोग मे लाना निषिद्ध है —

निषेध

(१) उसे जूता नही पहिनना चाहिए।
(२) सिर पर छाता नही लगाना चाहिए।
(३) किसी सिले हुए वस्त्र को पहिनना उसके लिए निषिद्ध है।
(४) उसे किसी प्रकार का प्रसाधन करना मना है।
(५) तेल लगाना वर्जित है।
(६) न तो दाही किसी अन्य व्यक्ति को स्पर्श करे और न दूसरे व्यक्ति ही उसे छुवे।
(७) दाही पलँग, चारपाई या खाट पर कदापि शयन न करे।
(८) वह किसी को प्रणाम न करे और न किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा प्रणाम किये जाने पर उसका कोई उत्तर दे।
(९) वह मिट्टी के पात्र को छोडकर किसी अन्य पात्र मे भोजन न करे।
(१०) ग्राम की सीमा को छोडकर कही अन्यत्र कदापि न जाय।

(३) अनुच्छेद—विधि

दाही के लिए अनेक विधियो का भी विधान किया गया है, जिनको पालन करना उसका परम कर्तव्य है —

(१) दाही को सदा जमीन अथवा काठ की बनी चौकी (तखत) पर सोना चाहिए।
(२) उसे अपने साथ बाँस की छडी, जिसमे लोहा बाँधा गया हो, रखना चाहिए।
(३) उसे दिन मे प्रात तथा सन्ध्या-काल—दो बार—स्नान करना चाहिए।
(४) नियमित रूप से 'गरुड-पुराण' की कथा सुनना उसके लिए आवश्यक है।
(५) श्राद्ध काल मे उसे जितेन्द्रिय, सदाचारी, तथा आचार-विचार से रहना चाहिए।
(६) उसे केवल कम्बल ही बिछाना और उसी को ही ओढना चाहिए। क्योकि अन्य आच्छादन अशुद्ध होने के कारण उसके लिए वर्जित है।

दाही प्रात तथा साय—दो बार स्नान कर घट मे तिलाञ्जलि देता है। शाम को कुछ पूजा-पाठ भी करता है। वह दोनो 'जून' (समय) मिट्टी के पात्र मे भोजन करता है। दिन मे गुरु अथवा पुरोहित जी उसे 'गरुड-पुराण' पढकर सुनाते है, जिसमे स्वर्ग और नरक का विस्तृत वर्णन पाया जाता है। मृत्यु के पश्चात् प्रेत मनुष्य की आत्मा कहाँ-कहाँ विचरती है, इसका भी इसमे विशेष विवरण है। दाही अपने घर या गाँव की सीमा का अतिक्रमण नही कर सकता। अत लगभग १३ दिनो तक वह घर पर ही रहता और दैनिक कार्यों का सम्पादन करता है।

(४) अनुच्छेद—महाब्राह्मण को दान-दक्षिणा

घण्ट मे प्रतिदिन तिलाञ्जलि देने की यह प्रक्रिया लगातार नौ दिनो तक चलती रहती है। दसवे दिन—जिसे 'दशाह' कहा जाता है—दाही अपने सिर, दाढी और मूछ के बालो को उस्तरे (छूरे) से मुँडवाता है। इसके पश्चात् परिवार, कुटुम्ब

तथा गाव के अन्य व्यक्ति क्षौर-कर्म करवाते है। इस दिन पिण्डदान भी किया जाता है। चावल को दूध मे पकाकर उसमे चीनी या गुड, घी तथा मधु डालते है। इस प्रकार जो 'हविष्य' तैयार होता है [illegible] आकृति मे बनाकर पिण्ड के रूप मे उसका दान करते है। गाँव के पुरोहित या कुल गुरु वैदिक रीति से '[illegible]' के [illegible] पिण्डदान की समस्त प्रक्रिया को विधिवत् सम्पादित कराते है।

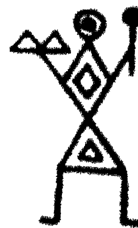
इसी दिन दान देने के लिए महाब्राह्मण बुलाया जाता है। इस जाति के लोग भी ब्राह्मण ही होते है परन्तु प्रेत का दान लेने के कारण ये कुछ अपमान तथा घृणा की दृष्टि से देखे जाते है। पिण्डदान की [illegible] के पश्चात् [illegible] मे कच्चा दूध रखा रहता है, जिसको महाब्राह्मण—जो 'महापात्र' के नाम से भी प्रसिद्ध है—को [illegible] पीना आवश्यक है। इस [illegible] को 'तियाग पीना' कहा जाता है। इस थोडे से दूध को पीने के लिए ये मनमानी दक्षिणा मांगते है जो [illegible] पाँच सौ रुपयो तक हो सकती है। धनी तथा समृद्ध लोगो से ये इस काम के लिए हजारो रुपये [illegible] है। मृत व्यक्ति जितना ही अधिक 'कमासुत' होता है, इनकी माग उतनी ही अधिक होती है। ये लोग बडे ही कठोर [illegible] तथा निर्दयी होते हैं। किसी के घर एकमात्र कमासुत व्यक्ति की मृत्यु हो गयी है इस घटना से [illegible] और सहानुभूति दिखलाने के ठीक विपरीत ये लोग अनार्य आचरण करते है। लोगो की यह धारणा है कि जब तक महाब्राह्मण 'तियाग' नही पीता, तब तक श्राद्ध का कार्य समाप्त नही समझा जाता। जनता के इस अन्धविश्वास से ये लोग नाजायज फायदा उठाते है और गरीब तथा धनी सभी लोगो को समान रूप से परेशान करते है और [illegible] है। मुँहमाँगी फीस मिलने पर ही ये 'तियाग' पीने के लिए तैयार होते है। यदि ले-देकर किसी प्रकार यह कार्य पूरा भी हो गया, तो '[illegible]' [illegible] के लिए भी ये दक्षिणा चाहते है। इसके लिए भी अधिक रुपयो का 'डिमाण्ड' करते है। अपनी मुँहमाँगी फीस मिलने पर ही ये [illegible] को फोडने के लिए तैयार होते है।

इन दोनो कृत्यो की समाप्ति के पश्चात् महाब्राह्मण को भी भोजन कराया जाता है तथा शय्या दान दिया जाता है, जिसे 'सेजिया-दान' कहते हैं। शय्या-दान मे चारपाई, तोसक, तकिया, रजाई, कम्बल आदि सभी वस्तुएं होती है। महाब्राह्मण जब जाने लगते है, तब उनके पीछे आग की 'लुकाडी' भाँजी जाती है जिसका अभिप्राय यह है कि इन महापात्रो को पुन आने का न अवसर मिले।

(५) अनुच्छेद—तेरही तथा ब्रह्मभोज

दाह सस्कार के तेरहवें दिन श्राद्ध-सम्बन्धी अन्तिम कृत्य सम्पादित किया जाता है जिसे 'तेरही' कहते है। इस दिन ब्राह्मणो को भोजन कराया जाता है। श्राद्ध मे उडद (माष) का खिलाना आवश्यक माना जाता है। अत उडद की दाल का 'फुलवरा' ब्रह्मभोज का एक आवश्यक अग है। निमन्त्रित ब्राह्मणो के अतिरिक्त इस दिन कुछ अनिमन्त्रित ब्राह्मण भी भोजन के लिए आ धमकते है जिन्हे 'करम' कहा जाता है। ये बडे ही भोजनभट्ट होते हैं। इन्हे प्राय दही चिउडा अथवा माट्ठा और दही खिलाया जाता है। इन करमो के अतिरिक्त कुछ तथाकथित अस्पृश्य जाति के लोग—जिनमे डोम प्रधान है—भी भोजन के लिए बिना बुलाये ही आ जाते हैं जिन्हें खिलाना ही पडता है। जनता की यह दृढ धारणा है कि जब तक ये लोग गले भर तक भोजन करके 'जय हो', 'जय हो' न चिल्लाने लगें, तब तक इनकी तृप्ति नहीं समझनी चाहिए। अत इनको ठूँस-ठूँसकर खिलाया जाता है।

ब्रह्मभोज के दिन जितने ही अधिक ब्राह्मणो को भोजन कराया जाय उतना ही अधिक गौरव तथा सम्मान की बात समझी जाती है। अतएव कुछ लोग अपनी शक्ति से भी अधिक द्रव्य इस कार्य में खर्च करते हैं। श्राद्ध सस्कार का अन्तिम 'आइटम' यही ब्रह्मभोज है, जिसकी तेरही के दिन समाप्ति के साथ श्राद्ध-कर्म भी समाप्त समझा जाता है।



अध्याय—६

प्रथाएँ

○ ○

भोजपुरी क्षेत्र मे ऐसी अनेक प्रथाएँ प्रचलित है, जिनका अन्य राज्यो मे प्राय अभाव है। इन प्रथाओ मे प्रधानतया निम्नलिखित की गणना की जा सकती है—

(१) परदा की प्रथा	(२) छुआछूत की प्रथा
(३) तिलक-दहेज की प्रथा	(४) बाल-विवाह
(५) वृद्ध-विवाह	(६) अनमेल विवाह
(७) विधवा-विवाह	(८) बहुविवाह
(९) मृत्यु-भोज तथा	(१०) गायढार की प्रथा

यदि उपयुक्त प्रथाओ को कुप्रथा की सज्ञा दी जाय, तो कुछ अनुचित न होगा, क्योकि इन प्रथाओ के प्रचलन के कारण भोजपुरी समाज का नैतिक पतन तथा सामूहिक ह्रास हो रहा है। इन प्रथाओ के कारण जन-जीवन कितना दु खी, अव्यवस्थित तथा विशीण हो गया है, इसके वर्णन की आवश्यकता नही है। इन प्रथाओ का जितना ही शीघ्र नाश हो जाय, समाज के लिए उतना ही कल्याणकारी होगा।

(१) अनुच्छेद—परदा की प्रथा

भोजपुरी क्षेत्र को यदि पर्दे की प्रथा का गढ कहे, तो कुछ अनुचित नही होगा। भारतवर्ष के किसी भी राज्य मे पर्दे की प्रथा नही पायी जाती। बगाल, असम, पजाब, गुजरात, महाराष्ट्र किम्बहुना तमिलनाडु, कर्नाटक और केरल राज्यो मे इस प्रथा का अत्यन्ताभाव है। वहाँ की स्त्रिया स्वतन्त्र रूप से पर-पुरुषो से बातचीत कर सकती है और जहाँ चाहे, वहाँ आ-जा सकती है। अधिक तो क्या, उत्तरप्रदेश के भी उत्तरी, पश्चिमी तथा दक्षिणी भागो मे इस प्रथा को 'अदर्शन लोप' की सज्ञा दी जा सकती है। इस राज्य के पर्वतीय क्षेत्रो (गढवाल और कुमायूँ) की स्त्रियाँ खेतो मे जाकर काम करती है। मेरठ जनपद की जाट स्त्रियाँ भी पुरुषो के कन्धे-से-कन्धा मिलाकर काम करती है। बुन्देलखण्ड तथा बघेलखण्ड मे भी इस प्रथा का सर्वत्र अभाव है। परन्तु यह बडे कुतूहल तथा आश्चर्य का विषय है कि उत्तरप्रदेश के पूर्वी भागो तथा बिहार राज्य के पश्चिमी जिलो मे यह प्रथा अब तक कैसे सुरक्षित बच गयी। समाजशास्त्रियो के लिए निश्चय ही यह उनके अध्ययन का विषय है। जिस प्रथा का अस्तित्व भारत मे ही नही, ससार के किसी भी भू-भाग मे नही पाया जाता, उसका एकच्छत्र साम्राज्य भोजपुरी क्षेत्र मे आज भी किस प्रकार बना हुआ है, यह कुछ कम आश्चय का विषय नही है।

भोजपुरी क्षेत्र की स्त्रियाँ पर्दे की प्रथा का बडी कठोरता के साथ पालन करती है। पर-पुरुष से बाते करना उनके लिए निषिद्ध है। वे अपने घर के भी भसुर, ससुर और अन्य पुरुषो से बात-चीत नही कर सकती। किम्बहुना, पुरुष की बात तो दूर रही, स्त्रियाँ अन्य स्त्रियो से भी पर्दा करती है। नव-विवाहिता वधू पर्दे की साक्षात प्रतिमूर्ति है। वह अपने सिर के ऊपर से एक हाथ लम्बा 'घूघट' निकालकर चलती है, जिससे उसके मुख को कोई देख न ले। इसीलिए भोजपुरी लोकगीतो की नायिका 'साँवर-गोरिया' के चन्द्रवदन का दर्शन करना कोई हँसी-खेल नही है। किसी-किसी पुण्यात्मा पुरुष को ही उसका दर्शन प्राप्त होता है। नवेली वधू अपनी सास, जेठानी तथा घर की अन्य स्त्रियो से भी घूँघट काढ कर ही बाते करती है।

भोजपुरी स्त्रियाँ अपने पति से भी पर्दा करती है। वे दिन मे अपने प्राणनाथ से, सास और ननद के सामने बात नही कर सकती हैं। सयुक्त परिवार मे पति के लिए दिन मे अपनी पत्नी का दशन करना असम्भव ही समझना चाहिए।

रात्रि मे भी वह चोर की भाँति ही उसके शयनकक्ष मे धीरे धीरे प्रवेश करता है जिससे घर के अन्य सदस्य कही जाग न जायँ।[१]

भोजपुरी क्षेत्र मे पर्दे की इस प्रथा ने अपनी सीमा का अतिक्रमण कर दिया है, जिससे अनेक हानियाँ हो रही है। भीषण गर्मी के दिनो मे भी पालकी मे बैठकर अपनी ससुराल जानेवाली वधू को कोई देख न ले, इसीलिए उसकी पालकी के दरवाजे अच्छी तरह से बन्द कर दिये जाते है। इतना ही नही, उस पालकी को एक कपड़े से ढक दिया जाता है जिसे 'ओहार' कहते है। इस प्रकार उस बन्द पालकी के बन्द कमरे मे हवा का भी प्रवेश होना कठिन है। ऐसी परिस्थिति मे गर्मी से तड़फड़ाती हुई बेचारी वधू के प्राण पखेरू उड जाते है और इस प्रकार वह पर्दे की प्रथा पर अपने प्राणो का बलिदान कर देती है।

विवाह के दिनो मे रेलगाडियो मे चलनेवाली वधुओं का खो जाना अथवा उस से किसी दूसरी वधू के साथ बदल जाने की भी घटनाएँ प्राय सुनने मे आती है।[२] यह पर्दे की कुप्रथा का ही परिणाम समझना चाहिए।

भोजपुरी लोक-साहित्य मे भी पर्दे की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। इस प्रथा के अनुसार बहू अपने भसुर (पति के बडे भाई) से बाते नही कर सकती। कोई भसुर काम-वासना से पीड़ित होकर अपनी भवहि (छोटे भाई की स्त्री) से सुरत-सम्भोग करने लगता है। भवहि लज्जा के आधिक्य से अपने भसुर से इस अनौचित्य के प्रति अपना विरोध प्रकट करने मे अस-मथ हे। इसी भाव को द्योतित करनेवाली यह लोकोक्ति समाज मे प्रचलित है।

"लाजे भवहि बोलसु ना।
सवादे भसुर छोड़सु ना।।"

यह अनुचित तथा अनथ काय केवल पर्दा-प्रथा तथा लज्जा के कारण ही सम्भव है। अन्यथा ऐसे कामी भसुर की 'कपालक्रिया करने मे भी कोई दोष नही है। लोकगीतो मे भी पर्दे की प्रथा का उल्लेख पाया जाता है। नवेली बहू के पालकी मे बैठकर जाने का उल्लेख अनेक गीतो मे पाया जाता है।

(२) अनुच्छेद—छुआछूत की प्रथा

स्पृश्यास्पृश्य की प्रथा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। यो तो सम्पूण देश मे छुआछूत की प्रथा किसी-न किसी रूप मे विद्यमान है, परन्तु इस क्षेत्र मे इसका अखण्ड साम्राज्य पाया जाता है। भोजपुरी क्षेत्र के उच्चवर्ग के लोग शूद्रो के हाथ का छुआ हुआ जल ग्रहण नही कर सकते। इसके अतिरिक्त कुछ पेशेवाली ऐसी जातियाँ (Occupational Castes) भी हैं जिनके द्वारा प्रदत्त भोजन तथा जल स्वीकार नही किया जाता।

स्पृश्यास्पृश्य की आधारशिला भोजन है। भोजपुरी क्षेत्र मे यह (भोजन) दो प्रकार का माना जाता है। (१) पक्का भोजन तथा (२) कच्चा भोजन। घी मे पकायी गयी पूडी और कचौड़ी पक्का भोजन माना जाता है। इसे ब्राह्मणलोग क्षत्रिय तथा वैश्य के घर मे कर सकते है। शास्त्रो के अनुसार केवल घी, दूध और आग के पकाये गये भोजन मे किसी प्रकार का दोष नही होता।

"घृत पक्व, पय पक्व, पक्व केवल वह्निना।
तत्र दोषो न विद्यते।।"

१ भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने अपनी 'आत्मकथा' में भोजपुरी क्षेत्र में प्रचलित पर्दे की प्रथा के सम्बन्ध में अपनी आप-बीती का बडा सजीव तथा रोचक वर्णन प्रस्तुत किया है। अत इस विषय के लिए उस पुस्तक को पढ़ना चाहिए।

२ प्रस्तुत पक्तियों का लेखक अपने मित्र के गवने में बगाल गया था। गवना के बाद बहू को विदा कराकर के सभी बाराती सोनपुर आये, जहाँ गाडी बदलनी थी। वहाँ नयी बहू को एक स्थान पर बैठा दिया गया और अन्य पुरुष भोजनादि के लिए अन्यत्र चले गये। लौटकर आने पर देखा गया कि बहू अपने स्थान पर नहीं है। यह देखते ही सब के होश हिरन हो गये। बहू की खोज होने लगी। पति को अपनी बहू को पहिचानने के लिए कहा गया, परन्तु उन्होंने अपनी स्त्री को पहिले कभी देखा ही नहीं था, अत. उन्होने उसे पहिचानने में अपनी असमर्थता प्रकट की। हम लोगों के लिए वधू का पता लगाना एक समस्या बन गयी। इतने में ही हम लोगों ने देखा कि एक स्थान पर कुछ स्त्रियाँ घूँघट काढ़े हुए बैठी हुई हैं, जिसमें एक स्त्री के पैर में महावर लगाया गया है। फिर हम लोगों ने एक अन्य स्त्री के माध्यम से उसका नाम गाँव पूछा। जब उसने बताया कि मेरा गाँव अमुक है, तब हम लोगों की जान-में-जान आयी, अन्यथा हम लोगों की सारी चतुराई उस दिन मिट्टी में मिल जाती।

चूकि पूडी और कचौडी, घी मे पकायी जाती है, खीर दूध मे बनायी जाती है और चना तथा मक्का के बुझुना को भाड मे आग मे) भूना जाता है। अत इन पदार्थो के खाने मे दोष नही माना जाता। अतएव पुराणपन्थी पण्डित भी पक्का भोजन करने से कभी इन्कार नही करते। कुछ विशिष्ट पाखण्डी लोग दूध (जल मे नही) मे साने गये आटे से घी मे पकायी गयी पूडी को ही पवित्र मानते है।

स्पृश्यास्पृश्य का विशाल प्रासाद कच्चे भोजन की कच्ची नीव पर ही निर्मित है। कच्चा भोजन मे भात और रोटी—दोनो ही की गणना की जाती है। उत्तरप्रदेश के पवतीय जिलो मे किसी दूसरे के घर रोटी खाना अपवित्र नही माना जाता, परन्तु भात खाना अत्यन्त निषिद्ध है। भोजपुरी क्षेत्र मे ब्राह्मण भी आपस मे एक-दूसरे का छुआ हुआ भोजन ग्रहण नही कर सकते। किसी सरयूपारीण ब्राह्मण का कान्यकुब्ज ब्राह्मण के घर 'कच्चा भोजन' करने की बात तो दूर रही, सरयूपारीण भी एक-दूसरे का पकाया हुआ भोजन ग्रहण नही करते। कान्यकुब्जो की भी यही दशा है। इसी लिए उनके विषय मे यह कहावत प्रसिद्ध हो गयी है कि "तीन कनौजिया तेरह चूल्हा'। सरयू के पार रहनेवाले ब्राह्मणो की भी यही दशा समझनी चाहिए। इन ब्राह्मणो मे भी "तीन और तेरह" का बडा विचार किया जाता है। गर्ग, गौतम और शाण्डिल्य गोत्रवाले ब्राह्मण अपने को श्रेष्ठ समझते है और वे अपने गोत्र से इतर ब्राह्मणो को, भोजन के विषय मे, अस्पृश्यवत् मानते है। ग्रामीण लोगो की यह दृढ धारणा है कि चूकि छुआछूत का आधार कच्चा भोजन, विशेषकर भात, है। अत भात खाने के लिए ब्राह्मण की भी उपजाति का जानना आवश्यक है। इस भात का इतना महत्त्व है कि पुत्री के विवाह के अवसर पर वर का पिता जब तक विवाह-मण्डप मे भात नही खाता, तब तक वैवाहिक विधि-विधान सम्पूण नही माना जाता। विवाह-सम्बन्ध भी उसी व्यक्ति से स्थापित किया जाता है, जिसके यहाँ भात खाने मे कोई आपत्ति नही ज्ञात होती।

इस प्रदेश मे उच्चवग के लोग तथाकथित अस्पृश्यो को अछूत समझते है। वे उनके स्पर्श से ही अपवित्र हो जाने की मिथ्या भावना को अपने हृदय मे सँजोये रहते है। इसलिए अस्पृश्यो का गाँव के बीच मे रहना इनके लिए अभीष्ट नही है। हरिजन लोग अपना घर गाँव के बाहर बनाते है और उसी के आसपास स्थित कुओ से ही पानी ले सकते है, अन्य से नही। यद्यपि ये अस्पृश्य जातियाँ उच्चवग के लोगो की सेवा पर तत्पर रहती है, फिर भी ये लोग इनके साथ मानवोचित व्यवहार नही करते।

स्पृश्यास्पृश्य की यह भावना इतनी अधिक व्याप्त हो गयी है कि अछूत जातियो मे भी ऊँच-नीच की भावना विद्यमान है और एक अस्पृश्य जाति का सदस्य दूसरे से अपने को श्रेष्ठ समझता है, तथा उसके हाथ का भोजन ग्रहण नही कर सकता।

कुछ ब्राह्मण ऐसे भी पाये जाते है, जो अपने को छोडकर किसी भी दूसरे ब्राह्मण—चाहे वह अपने परिवार ही का सदस्य क्यो न हो—के हाथ का छुआ भोजन कदापि ग्रहण नही कर सकते। ये 'स्वयपाकी' के नाम से प्रसिद्ध है। सम्भवत ये लोग अपनी स्त्री के द्वारा पकाये गये भोजन को भी अशुद्ध मानते है। इसे स्पृश्यास्पृश्य की भावना की चरम सीमा ही समझना चाहिए।

रामानुजाचार्य के अनुयायी रामानुजी वैष्णव तब तक किसी ब्राह्मण के द्वारा स्पृष्ट भोजन नही कर सकते, जब तक उसने अपने शरीर को तप्त मुद्रा—अर्थात् विष्णु के चिह्न—शख और चक्र—से अकित न कराया हो। इस सम्प्रदाय के अनुयायी दृष्टिदोष को भी मानते है। अर्थात् किसी व्यक्ति ने उनके भोजन को केवल देख लिया, तो वह दृष्टिदोष से दूषित हो जाता है और वह उनके लिए उच्छिष्ट भोजन के समान है।[1] अत त्याज्य है। कहने की आवश्यकता नही कि यह पाखण्ड और ढोग की पराकाष्ठा है। इन ब्राह्मणो ने भोजन मे स्पृश्यास्पृश्य की भावना को ही अपना परम धर्म समझ लिया। चाहे उनका चरित्र कितना भी पतित क्यो न हो, आचरण कितना भी भ्रष्ट क्यो न हो, परन्तु वे इसकी तनिक भी चिन्ता नही करते। उन्हे केवल एक बात की ही चिन्ता रहती है कि "मुझे छुओ मत।"

(३) अनुच्छेद—तिलक-दहेज की प्रथा

प्राचीन भारत मे धर्मशास्त्रकारो के द्वारा कन्या-शुल्क का उल्लेख पाया जाता है। अर्थात् वर-पक्ष के द्वारा कन्या के

१ प्रस्तुत लेखक को एक रामानुजी वैष्णव की एक बारात में सम्मिलित होने का सौभाग्य या दुर्भाग्य प्राप्त हुआ है, जो दृष्टिदोष के अनुयायी हैं। विवाह के मण्डप में केवल उनके सम्बन्धी ही भात खाने के लिए बैठे थे। परन्तु उन लोगो की दृष्टि से उनका भोजन दूषित न हो जाय, अत. वे लोग दूर एक घिरे हुए स्थान में भोजन के लिए बैठे, जहाँ दूसरो की दृष्टि नहीं जा सकती थी। इस प्रकार उन्होंने अपने धर्म की रक्षा की।

पिता को धन तथा आभूषण देने की प्रथा थी। परन्तु आजकल भी भोजपुरी प्रदेश में [illegible] दूसरी प्रथा प्रचलित है, जो तिलक-दहेज के नाम से प्रसिद्ध है। इसे वर-शुल्क की संज्ञा दी जाय तो कुछ अनुचित न होगा। [illegible] जब कन्या विवाह की अवस्था को प्राप्त हो जाती है, तब उसका पिता किसी योग्य वर [illegible] उस व्यक्ति के घर जाता है, जिसका पुत्र विवाह करने के योग्य है। वर का पिता [illegible] 'डिमाण्ड' करता है। यदि कन्या का पिता इस अभीष्ट धनराशि को देने में समर्थ होता है तभी यह विवाह सम्पन्न हो सकता है, अन्यथा नही।

तिलक की धनराशि जिन आवश्यक तत्वो (Factors) पर आश्रित रहता है उनमें प्रधान [illegible] निम्नांकित है।

(१) वर के पिता की अचल सम्पत्ति।

(२) वर के पिता का पद तथा आमदनी।

(३) चल सम्पत्ति तथा वैभव।

(४) कुल और वंश की उच्चता।

(५) वर की शिक्षा, योग्यता, रूप-रंग तथा आय।

इन पाँचो तत्त्वो के कारण वर का बाजारू मूल्य (Market value) बहुत अधिक बढ़ जाता है।

(१) वर का पिता अपने पुत्र के विवाह में जब तिलक का डिमाण्ड करता है तब उसे अपनी अचल सम्पत्ति का गर्व रहता है। इस सम्पत्ति के अन्तर्गत खेत और मकान की गणना की जाती है। जिस व्यक्ति के पास जितना ही अधिक खेत होगा, वह उतना ही अधिक तिलक माँगता है। लोग यह बडे गर्व से कहते है कि मेरे पास १०० बीघा अथवा [illegible]०० बीघा खेत है और मेरे घर हजारो मन अन्न की राशि उत्पन्न होती है। इन लोगो को अपने मकान का भी कुछ कम अहंकार नही होता। यदि मकान मिट्टी का बना हुआ है, तो ये लोग उसमे बाहर से आधे ईंटे की 'झर्री' जोड़वा देते है, जिससे नये आगन्तुक को कच्चा मकान भी पक्का के रूप मे दिखायी पडे। परन्तु वास्तव मे ईंटे का बना हुआ पक्का मकान है तो फिर क्या पूछना। इसे सोने मे सुगन्ध ही समझना चाहिए। जिसके पास सौ-दो सौ 'बिगहा' [illegible] हो और संयोग से मकान भी पक्का हो तो उसकी सम्पत्ति की प्रशंसा करते हुए लोग नही अघाते।

गाँवो मे किसी की अचल सम्पत्ति—खेती—का अनुमान उसके घर चलनेवाले हलो की संख्या से की जाती है। यदि किसी के यहाँ एक दो हल चलता हो, तो साधारण गृहस्थ माना जाता है। परन्तु जिसके यहाँ दस या पन्द्रह हल चलते हैं, उसकी खेती सैकडो बीघो से अधिक की समझनी चाहिए। इस प्रकार घर के बाहर बाँधे गये गाय, बैल और भैंसो की संख्या से भी किसी व्यक्ति की सम्पत्ति का कुछ अन्दाजा लगाया जा सकता है।

(२) दूसरा तत्त्व वर के पिता का पद और उसकी आय है। यदि वर का पिता किसी ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित है और उसकी आमदनी भी साधारणतया अधिक है, तब वह अपने पुत्र का तिलक बहुत अधिक माँगता है और अपने डिमाण्ड के समर्थन मे अपनी अचल सम्पत्ति, अपने उच्च पद और आय की राशि का प्रमाण प्रस्तुत करता है। उसका उच्च पद उसकी श्रेष्ठता का द्योतक होता है।

(३) इस कार्य मे चल सम्पत्ति और सांसारिक वैभव भी कुछ कम योगदान नही करते। चल सम्पत्ति का अभिप्राय यहाँ 'बैंक बैलेन्स' से समझना चाहिए। जिसका मोटा वेतन होता है उसकी बैंक मे जमा की गयी धनराशि भी उसी अनुपात मे अधिक होती है। बाहरी वैभव मे घोडा गाडी, फिटिन, मोटरकार का अन्तर्भाव किया जा सकता है। यदि किसी के पास खेत और मकान के रूप मे अचल सम्पत्ति हो और उसकी मासिक आय भी अच्छी हो, तथा इसके साथ ही बाहरी वैभव और ठाट-बाट भी हो, तो इसे सोने में सुगन्ध ही समझना चाहिए।

(४) कुछ लोगो को अपने उच्च वंश और कुल का भी बडा अभिमान होता है। सरयूपारीण ब्राह्मणो मे तीन और तेरह की क्रमिक उच्चता और नीचता का उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है। गर्ग, गौतम और शाण्डिल्य गोत्रवाले तीन के ब्राह्मण अपने को उत्तम तथा श्रेष्ठ मानते है और दूसरे ब्राह्मणो को हीन दृष्टि से देखते हैं। इसी प्रकार से गोरखपुर तथा देवरिया जिले मे पाये जाने वाले तथाकथित 'पंक्तिपावन' ब्राह्मण अपने को पावन तथा पवित्र मानते हैं। इनकी पवित्रता अब इनके केवल इसी कार्य मे सीमित रह गयी है कि स्वयं मांस-भक्षण मे दोष न मानते हुए भी वे किसी ब्राह्मण के हाथ का छुआ हुआ भोजन ग्रहण करने मे पाप समझते हैं।

कान्यकुब्ज ब्राह्मणो मे श्रेष्ठता का मापदण्ड 'बिस्वा' माना जाता है। ये ब्राह्मण आठ से लेकर बीस 'बिस्वा' तक वाले होते हैं। आठ बिस्वावाला कान्यकुब्ज धनी होते हुए भी जाति वालो की दृष्टि में नीच और बीस बिस्वा वाला निर्धन

होते हुए भी अपने को उत्तम तथा श्रेष्ठ समझता है। क्षत्रियो मे उज्जैनवशी, सूयवशी, चन्द्रवशी, शिशोदियावशी अपने को उत्तम मानते है।

कभी जमाना था, जब सरयूपारीण ब्राह्मण पक्तिपावनो के यहाँ अपनी कन्याओ का विवाह करना अपना सौभाग्य समझते थे। तीन गोत्र वाले ब्राह्मण 'तेरह' वालो के यहाँ विवाह करने के लिए अत्यधिक तिलक का 'माँग' करते है। इसी प्रकार से कान्यकुब्जो मे निर्धन 'बीसबिस्वा' वाला भी एक बिस्वा' वाले से विवाह के लिए अधिक धनराशि माँगता है। कहने का आशय केवल इतना ही है कि वश की उच्चता और कुलीनता भी तिलक के 'ऊँची दर' का प्रधान कारण है।

(५) वर की योग्यता, शिक्षा तथा आय

तिलक की राशि का निर्णायक तत्त्व वर की शिक्षा, योग्यता और आय भी मानी जाती है। आज से चालीस और पचास वर्ष पहिले वर की योग्यता पर तनिक भी ध्यान नही दिया जाता था। उन दिनो तिलक तथा विवाह के निर्णायक तत्त्व वर के पिता की अचल सम्पत्ति, पिता का पद और उसकी आय समझी जाती थी। उन दिनो विवाह, वर की योग्यता को न देखकर पिता के पद और उसकी योग्यता का ध्यान रखकर किया जाता था। आशय यह है कि उन दिनो विवाह वर के पिता को देखकर किया जाता था न कि वर को।

परन्तु अब समय के परिवतन के साथ इस मापदण्ड मे भी परिवतन हो गया है। पिता के स्थान पर अब उसका पुत्र ही विवाह का केन्द्रबिन्दु हो गया है। अब कन्या का पिता अपनी पुत्री के विवाह के लिए वर की शिक्षा, उसकी योग्यता, उसकी आमदनी पर ही विशेष ध्यान देता है। इस प्रकार पिता की सम्पत्ति और उसके पद की महत्ता अब कम हो गयी और उसके स्थान पर वर की योग्यता को ही प्रधान स्थान दिया जाने लगा है, जो उचित ही है। अब लोग निधन पिता के भी होनहार तथा तीक्ष्ण बुद्धिवाले पुत्र से विवाह करना उचित समझते है। पहिले विवाह के समय लोग पूछते थे, वर का पिता क्या करता है? अब लोग पूछते है, वर की योग्यता क्या है? इन्ही दोनो प्रश्नो से इन लोगो के मनोभावो का अन्तर समझा जा सकता है।

आज से लगभग पचास वर्ष पूर्व तिलक-दहेज की प्रथा अधिक नही थी। उन दिनो मे तिलक की माँग गत पृष्ठ मे परिगणित प्रथम चार तत्त्वो के ऊपर ही की जाती थी। किसान लोग—जिनके यहा खेती अच्छी होती थी और रुपयो का लेन-देन भी किया करते थे—वे भी अपने लडको का तिलक पाँच सौ से एक हजार रुपयो तक लेते थे। भोजपुरी मे एक कहावत प्रचलित है कि —

"बिना हजारा के बाजारा ना लागी।"

अर्थात् एक हजार रूपया तिलक मे बिना दिये हुए विवाहरूपी बाजार नही लग सकता। इस लोकोक्ति से ज्ञात होता है कि उन दिनो साधारण गृहस्थ का तिलक लेने का स्तर एक हजार रुपये था। कोई भी लडकी का पिता अपनी लडकी का विवाह एक-डेढ़ हजार रुपये खच करके आसानी से कर सकता था। उन दिनो कुलीनता तथा वश की श्रेष्ठता पर भी ध्यान दिया जाता था। यम ने लिखा है कि विवाह के समय कन्या के पिता को निम्नाकित सात बातो पर अवश्य ध्यान देना चाहिए —

"कुल च शील च वपुर्यशश्च,
विद्या च वित्त च सनाथता च।
एतान् गुणान् सप्त परीक्ष्य देया,
कन्या बुधै शेषमचिन्तनीयम्।।"

परन्तु तिलक की इस दूषित प्रथा के प्रचार के कारण कन्या का पिता वर के पिता की आर्थिक माँग को पूरा करने मे ही परेशान रहता है। उसे अन्य गुणो को सोचने की न तो चिन्ता ही रहती है और न अवकाश ही।

तिलक का बाजार-भाव

जब से विवाह-सम्बन्ध की स्थापना मे पिता के स्थान मे उसका पुत्र अर्थात वर केन्द्रबिन्दु बन गया है, तब से तिलक का 'भाव' बढ़ने लगा है। वर की शिक्षा, योग्यता तथा वेतन के अनुसार उसके तिलक के 'भाव' मे भी वृद्धि हो चली है। यदि पिता साधारण वित्त का व्यक्ति हो, तो उसके पुत्र की योग्यता के अनुसार तिलक का 'भाव' साधारणतया अग्राकित है —

वर की योग्यता	तिलक के धन की राशि
(१) आठवी कक्षा उत्तीण	५०००) रुपये
(२) हाई स्कूल उत्तीर्ण	१०,०००) ,,
(३) इण्टर उत्तीण	१५,०००) ,,
(४) बी० ए० उत्तीर्ण	२०,०००) ,,
(५) ओवरसियर	२५,०००) ,,
(६) एम० ए० उत्तीर्ण	३०,०००) ,,
(७) पी० सी० एस०	३५,०००) ,,
(८) डॉक्टर	४०,०००) ,,
(९) इन्जीनियर	५०,०००) ,,
(१०) आई० पी० एस०	६०,०००) ,,
(११) आई० ए० एस०	७०,०००) से १,००,०००) (रुपया ११)

तिलक की धन-राशि का जो विवरण यहाँ प्रस्तुत किया गया है उसे लगभग ही समझना चाहिए। इस राशि मे दो-चार हजार रुपये कम भी हो सकते है तथा अधिक भी। विवाह योग्य वरो का जो इस समय (सन् १९७८ ई० मे) 'बाजार-भाव' है वही यहाँ दिया गया है। आधुनिक कमरतोड मँहगाई के साथ इस 'दर' मे, भविष्य मे, अवश्य ही वृद्धि होगी ऐसी सम्भावना है।

विवाह के दो अन्य निर्णायक तत्त्व

प्राचीन काल मे कन्याओ की सुन्दरता पर बल दिया जाता था। परन्तु बाह्यसौन्दर्य की अपेक्षा उनका आन्तरिक सौन्दय—शील, गुण—ही विशेष महत्त्वपूण माना जाता था। परन्तु आजकल उदीयमान युवा पीढ़ी रूप सौन्दय पर अत्यधिक जोर देने लगा है। वर स्वय रग मे 'तारकोल' को भी चुनौती देने की क्षमता भले ही रखता हो परन्तु वह भी अपनी पत्नी के रूप मे स्वग की अप्सरा 'मेनका' और रति को ही चाहता है। जहाँ वर का पिता रुपये का लालची है वहाँ उसका पुत्र रूप का लोभी है। ऐसी विषम परिस्थिति मे कन्या के पिता का कर्तव्य बड़ा कठिन हो जाता है। यदि उसकी कन्या रूप सौन्दय की प्रतियोगिता मे पुरस्कार पाने की अधिकारिणी नहीं है, तब उसका हाथ पीला होना कठिन ही समझना चाहिए। ऐसी श्यामवर्णं कन्या के विवाह के लिए उसके पिता को मुँहमाँगा तिलक देना पड़ता है अथवा वह किसी अयोग्य वर से अपनी कन्या का गठबन्धन करने के लिए बाध्य हो जाता है।

पहिले कन्या का पिता वर के पिता के कुल, सम्पत्ति और वैभव को देखकर उसके पुत्र से विवाह कर देता था। परन्तु अब वह वर की शिक्षा-दीक्षा और उसकी नौकरी पर विशेष ध्यान देता है। वह चाहता है कि मेरी कन्या का पति 'कमासुत' हो, जिससे उसे ससुराल मे किसी प्रकार का कष्ट न होने पाये। इस प्रकार योग्य तथा अर्जनकर्त्ता 'जामाता' को प्राप्त करने के लिए उसे 'उच्चदर' पर तिलक देना पडता है। वर तथा कन्या पक्षवालो के वैवाहिक दृष्टिकोण मे परिवर्तन होने के कारण तिलक का भाव' दिन दूना और रात चौगुना बढ़ता चला जा रहा है।

इस प्रथा के कुछ दोष

तिलक और दहेज की प्रथा से हिन्दू-समाज मे अनेक बुराइयाँ उत्पन्न हो गयी हैं। (१) इस कुत्सित प्रथा के कारण पुत्री का जन्म भारभूत हो गया है। जिस पिता की एक-दो पुत्रियाँ हो, वह उनका विवाह भले ही अच्छी तरह से कर ले, परन्तु जो पिता 'सप्त पुत्रिका' से सम्पन्न है, उसका भगवान् ही मालिक है। उसका समस्त जीवन अपनी पुत्रियो के विवाह की परेशानी मे ही बीत जायेगा।

(२) इस प्रथा की दूसरी बुराई है निर्धन कन्याओ के विवाह का न होना। जब इस घातक प्रथा का प्रचार नही था, तब कुलीन वश मे उत्पन्न निधन मनुष्य भी उच्चकुल के योग्य वरो से अपनी कन्या का विवाह कर सकता था। परन्तु अब यह सम्भव नही है। अब निर्धन मनुष्यो के लिए सुयोग्य वरो से विवाह सम्बन्ध स्थापित करने का द्वार बन्द हो गया है। इसका विषम परिणाम यह हो रहा है कि उच्च कुलो की कन्या धनाभाव के कारण नीच कुल के अयोग्य वरो से ब्याही जा रही हैं। निर्धन पिता लाचार होकर अपनी कन्या का विवाह गुणहीन तथा मूर्ख वर से करने के लिए बाध्य हो जाता है।

(३) विवाह के बाजार मे कन्या के रूप, शील, गुण आदि का कुछ भी मूल्य नही है। रुपये की माया ने सबको मोहित कर लिया है। वर-पक्षवालो के लिए टका ही धम है, टका ही उनका कर्म बन गया है। अत जिस कन्या के पिता के पास टका नही है, वह विवाह के इस बाजार मे टकटकी लगाकर देखता ही रह जाता है।

"टका धर्म, टका कर्म, टकैव परम सुखम्।
यस्य पार्श्वे टका नास्ति, हा टके टकटकायते ॥"

सस्कृत के कवि की यह उक्ति विवाह के सन्दर्भ मे भी पूणतया चरितार्थ होती है।

(४) अनुच्छेद—बाल-विवाह

भोजपुरी क्षेत्र मे आज से लगभग पचास वष पहिले बाल-विवाह की प्रथा का अत्यधिक प्रचार था। यद्यपि आजकल अनेक आर्थिक तथा सामाजिक कारणो से इस प्रथा का ह्रास होने लगा है, परन्तु इसके समूल नष्ट होने के लिए अभी अनेक दशक अपेक्षित है। लडकपन मे बच्चो का विवाह कर देना धनिक वग के लोगो के वैभव का मापदण्ड माना जाता है। जो जितना ही सम्पन्न है, उसके पुत्र का विवाह-सम्बन्ध उतनी ही अल्प आयु मे सम्पादित करना गौरव की वस्तु मानी जाती है। इसी भावना से भावित होकर समृद्ध व्यक्ति अपने बच्चो की शादी उनके लडकपन मे ही कर देते है।

गाँवो मे यदि किसी बालक का विवाह पन्द्रह-बीस वर्षो तक नही हो सका, तो लोग उसके पिता की कुलीनता के सम्बन्ध मे सशय करने लगते है और उसकी साधन-सम्पन्नता की ओर अँगुली उठाते हैं। यदि उनकी पुत्री का विवाह इतने वर्षों तक कदाचित् सम्पन्न न हो सका, तो यह समाज मे उसके लिए अपवाद का विषय बन जाता है। अत धनी-मानी लोग कुछ तो अपनी समृद्धि का मापदण्ड होने के कारण और कुछ "लोकापवादाद्भयम्" के हेतु अपने अपने पुत्र तथा पुत्रियो का विवाह बचपन मे ही कर देते है।

कभी-कभी तो दो-दो और तीन-तीन वष के दुधमुहे बच्चो तथा बच्चियो को भी विवाह के इस नागपाश मे बाँध दिया जाता है, जिसका दु परिणाम उन्हे आजीवन भुगतना पडता है। भोजपुरी लोक-साहित्य मे भी बाल-विवाह की प्रतिध्वनि सुनाई पडती है। भोजपुरी समाज मे यह प्रथा है कि जब लडका विवाह करने के लिए जाने लगता है, तब माँ उसे अपना दूध पिलाती है और उससे यह बिनती करती है कि तुम मेरे दूध को भुला मत देना और इसकी 'भीख' (निष्क्रय) अवश्य चुकाना।[1]

माता का दूध पीकर बच्चा बडी प्रसन्नता से विवाह करने के लिए जाता है। परन्तु ससुराल मे माता का दूध पीने के लिए न मिलने के कारण वह बुभुक्षित और दु खी हो जाता है तथा उदासीन होकर वहाँ से घर लौटता है। माता उसके उदासीन मुँह को देखकर कहती है कि —[2]

"हँसत खेलत मोर बाबू गइले,
मन बेदिल काहे अइले।
सासु छिनरिया जोग गइलसि,
मन बेदिल ओहि अइले॥"

बच्चे की माता कहती है, सासु ने मेरे बच्चे को 'जोग-टोन' कर दिया है, इसीलिए उदासीन होकर लौटा है। इस उल्लेख से भी वर के बालक होने का सकेत मिलता है, क्योकि छोटे बच्चो पर ही 'जोग-टोन' का प्रभाव अधिक पडता है।

कोई तरुणी स्त्री, जिसका विवाह किसी बालक पति से हो गया है, अपने हार्दिक दु खो का वर्णन करती हुई भोले बाबा (शिव जी) को उलाहना देती हुई कहती है कि —[3]

"सब के त देलऽ भोला अन, धन, सोनवा,
बनवारी हो, हमरा के लरिका भतार।

१. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय : भोजपुरी लोकगीत, भाग १।
२. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय : वही।
३. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय भोजपुरी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २३४।

"लरिका भतार लेके सूतली आँगनवा,
बनवारी हो, जरि गइले रूई से कपार।
खेतवा में सुनल जब मियना के बालिया,
बनवारी हो, रोवे लागल, लरिका भतार।
चुप होख, चुप होख ननदी के भइया,
बनवारी हो, रहरी में बोलेला हुँडार॥"

कहने की यह आवश्यकता नही कि जो बालक गाना में गीदड़ की बोली सुनकर डर के मारे रोने लगता है वह कितना छोटा बच्चा होगा? गावो मे ऐसे दुधमुहे बच्चो के विवाह के अनेक प्रत्यक्ष उदाहरण दिये जा सकते है कि जिन्हे यह भी याद नही है कि उनका विवाह हुआ भी है या नही।'

(५) अनुच्छेद—वृद्ध-विवाह

इस क्षेत्र मे वृद्ध विवाह की प्रथा थी, जिसका बड़ी द्रुतगति से नाश हो रहा है। फिर भी विवाह के 'मौसम' मे दो चार ऐसे बूढे पालकी मे बैठकर विवाह को जाते दिखाई पड़ते है जिनके मुँह मे दाँत नहीं है और न आँखो मे ज्योति। जिनके पोपले मुँह से ठीक से बात भी नही निकलती, जिनकी कमर मे सीधे खड़े होने की भी शक्ति नहीं है जो रथ मे अपना दोना पैर लटकाकर बैठे हुए है वे भी युवतियो से विवाह करने के लिए लालायित दिखाई पड़ते है। इन बूढ़ो की बुद्धि पर तरस आती है ओर उनके कुकृत्य से घृणा उत्पन्न हो जाती है। ये अपने विवाह के द्वारा समाज मे अनाचार का प्रचार करते है। भोजपुरी की एक कहावत है कि —

"बूढ़न के बियाह मे जवनकन के खुसी।"

अर्थात् वृद्ध लोगो के विवाह के कारण गाँव के मनचले युवको को प्रसन्नता होती है क्योकि वे जानते है कि बूढ़े बाबा के चल बसने पर उनकी सामग्री का उपयोग हम लोग मजे मे कर सकते है।

सस्कृत मे यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि —

"वृद्धस्य तरुणी भार्या प्राणेभ्यो पि गरीयसी।"

अर्थात् बूढे दादा की जवान स्त्री उसके लिए प्राणो से भी अधिक प्रिय होती है। अपनी युवती पुत्रवधू के घर मे रहते हुए भी ये बूढे कभी-कभी दुधमुही बच्चियो से भी विवाह करने से बाज नहीं आते। इस प्रकार वे गृह मे कलह का बीजारोपण करते है और घर की शान्ति को नष्ट कर देते हैं।

भोजपुरी के लोक-कवि भिखारी ठाकुर ने विवाह करने के लिए जानेवाले इन बूढ़ो की हुलिया का बड़ा ही सुन्दर चित्र खीचा है।

बाल-विवाह तथा वृद्ध विवाह ये दोनो ही भोजपुरी समाज के महान् कलक तथा पाप हैं। कुछ क्षणो के लिए बाल-विवाह को क्षन्तव्य भी मान लिया जाय, तो वृद्ध-विवाह के लिए तो कोई भी 'न्याय' नही है। इन दोनो ही कुत्सित प्रथाओ से विधवाओ की सख्या बढती जा रही है। और इस प्रकार समाज मे अनाचार तथा व्यभिचार की वृद्धि हो रही है। समाज का नैतिक स्तर पतन की ओर उन्मुख है। अत यदि नयी पीढ़ी के युवको ने इन कुप्रथाओ के विरुद्ध विद्रोह नही कर दिया, तो इस समाज की रक्षा करना कठिन ही नही असम्भव भी है। यह शुभ लक्षण है कि समय की गति के परिवर्तन के साथ ही इन प्रथाओ का ह्रास होने लगा है, परन्तु अभी भी 'दिल्ली दूर है।'

(६) अनुच्छेद—अनमेल विवाह

अनमेल विवाह उस विवाह-सम्बन्ध को कहते हैं, जिसमे पति और पत्नी की आयु, स्वभाव और योग्यता मे बड़ा अन्तर पाया जाता है। जहाँ दो दुधमुहे बच्चे और बच्चियो का विवाह हो, उसे बाल-विवाह की सज्ञा दी जाती है, परन्तु जहाँ किसी बच्चे का तरुणी से अथवा किसी वृद्ध का छोटी लडकी से विवाह सम्पन्न हो, उसे अनमेल विवाह कहा जा सकता है। इसी

१. प्रस्तुत लेखक को उनके एक परिचित व्यक्ति ने बतलाया कि मुझे अपने विवाह का स्मरण कुछ भी नहीं है। हाँ गवना की याद कुछ अवश्य है, जो विवाह के पाँच वर्षो के बाद हुआ था।

प्रकार से किसी धनी पिता की पुत्री का निधन वर से अथवा इसके विपरीत विवाह अनमेल की कोटि मे ही गिना जाता है। बौद्धिक स्तर मे विभिन्नता होने पर भी दोनो दम्पति मे मेल नही खा सकता। यदि पति पण्डित तथा विद्वान् हो और पत्नी मूर्खा हे अथवा धमपत्नी विदुषी हो और उसके पतिदेव 'निरक्षर भट्टाचाय' हो, तो इसे भी अनमेल विवाह ही समझना चाहिए। भोजपुरी क्षेत्र मे पण्डितो की स्त्रियाँ प्राय मूर्खा हुआ करती है, जिसका सकेत निम्नाकित लोकोक्ति मे किया गया है —

"पण्डित के घर मिली करकसा।
मूरुख के घर नारि॥"

यहाँ पर नारि का अथ चतुर स्त्री है और करकसा से तात्पय मूर्ख तथा झगडालू पत्नी है। एक दूसरी लोकोक्ति मे इसी विषमता की ओर सकेत किया गया है —

"सुन्दर नारि पुरुख बिनु झुरवे,
फुहरिनि के एहवात॥"

अर्थात् सुन्दर स्त्री पति के मर जाने अथवा परदेश चले जाने के कारण उसके वियोग मे सूखकर काँटा हो रही है, परन्तु फूहड स्त्री आनन्द से गुलछर्रे उडा रही है।

बाल-विवाह के प्रसग मे जिस "बनवारी हो हमरा के लरिका भतार" गीत का उल्लेख किया गया है, उसे अनमेल विवाह का भी उदाहरण समझना चाहिए। शिव जी अपने गले मे साँपो की माला पहिनकर विवाह करने के लिए जाते है। पावती की माता जब शिव के ललाट मे तीन आखे, गले मे फुफकारते हुए सर्पो के समूह और मुण्डो की माला को धारण किये हुए उनके भीषण तथा भयकर वेष को देखती है, तो वे घबरा उठती है। वे कहती है कि अपनी कोमल पुत्री गौरा को लेकर मै पाताल मे भागकर चली जाऊँगी, परन्तु इस पागल वर (शिव) से विवाह कदापि नही करूँगी।[1]

"धिया लेके उडबो धिया लेके बूडबो।
धिया लेके खिलबो पाताल॥
अइसन बउराह बर से गउरा ना बिअहबयो।
बलु गउरा रहिहे कुँआर॥"

'बउरहा' (पागल) तथा कुरूप शिव से कोमल कलेवरा पार्वती का विवाह अनमेल गठबन्धन का ज्वलन्त उदाहरण है। लोक-गीतो मे ऐसे विवाहो के अनेक उदाहरण भरे पडे है। लोक-कवि भिखारी ठाकुर ने ऐसे ही एक मूर्ख, कुरूप तथा अनाडी वर के विवाह का वर्णन किया है —[2]

"चलनी के चालल दुलहा सूप के फटकारल हे।
दिअका के लागल बर, दुआरे बाजा बाजल हे।
आम लेखा पाकल दुलहा, गाँव के निकालल हे।
अइसन बगलोल बर, चटक देवा के भावल हे॥"

कहने का भाव यह है कि अनमेल विवाह का ऐसा दृष्टान्त समाज तथा साहित्य मे प्रचुर परिमाण मे पाया जाता है।

(७) अनुच्छेद—बहु-विवाह

इस समाज मे जो दूसरी बुराई प्रचलित है, वह बहु-विवाह है। बहुत से लोग प्रथम स्त्री की मृत्यु हो जाने पर अपना दूसरा विवाह रचाते है और दूसरी के परलोक सिधारने पर तीसरे विवाह की तैयारी करते है। तीसरी के बाद चौथा और पाचवाँ विवाह करने मे भी वे नही हिचकते। इस प्रकार एक ही पुरुष सात-आठ स्त्रियो से बारी-बारी से विवाह करता जाता है। कालिदास ने विवाह का उद्देश्य "प्रजायै गृहमेधिनाम्" बतलाया है। परन्तु इन बूढो के विवाह का उद्देश्य अपनी धधकती हुई

१ डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय भोजपुरी लोकगीत, भाग १।
२ डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय भोजपुरी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २३४।

काम-वासना की अग्नि मे युवतियो के कोमल कलेवर को झोककर अपनी तृप्ति करता है। ऐसा गांवो मे यह भी देखा गया है कि अनेक पुत्रो और पौत्रो के जीवित रहते हुए ये 'बेहया' बूढ़े अपना चौथा या पाँचवा विवाह करने मे भी शर्मिन्दा नही होते और धर्म की ध्वजा फहराने का अपने को अधिकारी मानते है।[1]

कुछ लोग अपनी प्रथम स्त्री के जीवित रहते हुए भी अपना दूसरा, तीसरा और चौथा विवाह तक रचते जाते हैं। अपने इस कुकृत्य के समर्थन मे वे राजा दशरथ का उदाहरण प्रस्तुत करते है। ऐसे ढग के लोगो के सम्बन्ध मे अंग्रेजी की यह कहावत प्रस्तुत की जा सकती है कि —

"The devil can quote scripture"

अर्थात् शैतान भी अपने पक्ष के समर्थन मे शास्त्रो के वचन का उद्धरण दे सकता है। अनेक स्त्रियो के रहते हुए भी प्रथम पत्नी से जब कोई पुत्र उत्पन्न नही होता, तब ये लोग दूसरा विवाह करते है और दूसरे विवाह से भी पुत्रोत्पत्ति की सम्भावना नही दिखाई पडती, तब ये तीसरे विवाह की तैयारी करते है। इस प्रकार इनकी इस वासना की परम्परा बढ़ती जाती है।

भोजपुरी की एक कहावत है कि "काठ की सौत भी नही सुहाती। फिर जहाँ एक या दो नही चार या पाँच सौतें एक साथ हो, वहा गृहकलह की प्रचण्डता का कुछ अनुमान सहज मे ही किया जा सकता है। बहुविवाह की इस दुर्गत प्रथा से समाज का नैतिक स्तर गिरता जा रहा है, घरेलू झगडो की वृद्धि होती जा रही है और स्त्रियो का जीवन नारकीय बन गया है।

यह शुभ लक्षण है कि हमारी केन्द्रीय सरकार ने बहुविवाह की प्रथा की बुराइयो को समझकर इसे बन्द कर देने के लिए कानून बनाया है। परन्तु विशेष अवस्थाओ मे इसके लिए छूट दे दिये जाने के कारण इस कानून के उद्देश्य की सिद्धि नही हो रही है। इस प्रथा को बन्द करने के लिए जन-मत को जाग्रत करने की आवश्यकता है। बहुविवाह की प्रथा स्त्री-समाज के लिए अन्याय है। यह स्त्रीत्व का अपमान है, अत इसका परित्याग आवश्यक ही नही अनिवार्य है।

(८) अनुच्छेद—विधवा-विवाह

भोजपुरी क्षेत्र मे जहाँ बाल विवाह, वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह की प्रथा की सत्ता पायी जाती है वहाँ विधवा विवाह का अत्यन्त अभाव उपलब्ध होता है। शास्त्रो के अनुशीलन से पता चलता है कि प्राचीन काल मे विधवा विवाह की प्रथा विद्यमान थी।[2] भारत के राजनैतिक इतिहास से भी इस प्रथा का समर्थन होता है। ऐतिहासिको से यह बात अविदित नही है कि गुप्तवंशीय सम्राट् रामगुप्त की मृत्यु के पश्चात् उसके छोटे भाई चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने बड़े भाई की विधवा पत्नी से विवाह कर लिया था।[3] पराशर ने पाँच अवस्थाओ मे स्त्री के लिए पुनर्विवाह की आज्ञा प्रदान की है। इस प्रकार धर्म-शास्त्रो के द्वारा विधवा-विवाह का समर्थन किया गया है तथा इतिहास भी इसका साक्षी है।

परन्तु यह आश्चर्य का विषय है कि इस समाज मे विधवाओ के विवाह का अत्यन्त अभाव है। इनका विवाह समाज मे निन्दनीय और घृणित समझा जाता है। ऐसी अनेक अक्षतयोनि बाल विधवाएँ लाखो की संख्या मे विद्यमान हैं जिन्होंने अपने पति का मुँह भी नही देखा और उनका सौभाग्य-सूर्य सदा के लिए अस्त हो गया। ये बाल विधवाएँ घर मे नारकीय जीवन व्यतीत करती है। समाज इनके साथ किस प्रकार कुत्सित व्यवहार करता है, इसका उल्लेख पिछले प्रकरण मे किया जा चुका है। न्याय का यह तकाजा है, औचित्य का यही विधान है कि ऐसी अक्षतयोनि बाल विधवाओ को पुनर्विवाह की आज्ञा प्रदान की जाय, जिससे समाज मे वे भी सम्मानपूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सकें। परन्तु भोजपुरी-समाज उनको यह अधि-

१ प्रस्तुत लेखक को बलिया जिले के एक प्रसिद्ध पण्डित की जीवन-गाथा ज्ञात है, जिन्होंने अपने पहिले की तीन स्त्रियों से अनेक पुत्रो और पौत्रो के जीवित रहते हुए भी बुढ़ापे में अपना चौथा विवाह रचाया था। उनके पुत्रों ने बुढौती के इस विवाह का बडा विरोध किया, परन्तु उस 'बेहया' ने उनकी बातों पर कान तक नहीं किया। फलस्वरूप घर में कलह होने लगा और उनके लडको ने पिता को छोड दिया। पण्डित जी अपनी नवेली वधू को लेकर गाँव को छोड़कर शहर में रहने लगे थे। चौथी पत्नी से चौथी पुत्री उत्पन्न होने के बाद उनके प्राण पखेरू उड गये। उनकी तरुणी पत्नी अब गाँव में रहती है और अब नारकीय जीवन व्यतीत कर रही है।

२ इस विषय के विस्तृत विवरण के लिए देखिए डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय . हिन्दू विवाह की उत्पत्ति और विकास।

३. डॉ० वासुदेव उपाध्याय गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग ।

कार प्रदान न करके अन्याय का पोषण कर रहा है। सबसे बडी आश्चय की बात यह है कि सनातन धर्म के ठेकेदार पण्डित-मन्य, धमशास्त्री विद्वान् पुरुषो के बहुविवाह का मुक्तकण्ठ से समथन ही नही करते, बल्कि अवसर मिलने पर स्वय भी उसका आचरण करते है, ऐसे धमधुरीण भी विधवा-विवाह का विरोध बडे जोश तथा उत्साह से करते है और इस प्रथा को अनिष्टकारी तथा अधार्मिक बतलाते है। परन्तु इस विवाह का अभाव केवल ऊँची जातियो तक ही सीमित है। निम्नवग के लोग बडे भाई की मृत्यु हो जाने पर उसकी विधवा पत्नी (अपनी भावज) से विवाह कर लेते है। परन्तु उच्चवर्ण के लोगो मे प्रचलित इस प्रथा के अभाव का अनुकरण अब वे भी धीरे-धीरे करने लगे है। ये लोग ब्राह्मण-क्षत्रियो मे प्रचलित सभी कुप्रथाओ का अनुसरण करने लगे है। यह चिन्ता का विषय है। यद्यपि सरकार ने विधवा-विवाह को वैध स्वीकार कर लिया है तथा इसके लिए उपयुक्त कानून भी पास किया है, परन्तु समाज की स्वीकृति न मिलने के कारण विधवा-विवाह का प्रचार यथोचित रूप मे नही हो रहा है।

विधवा-विवाह की प्रथा के अभाव के कारण समाज मे अनेक बुराइयाँ उत्पन्न हो गयी है। सबसे बडा दुष्परिणाम विधवाओ की दुदशा है। भोजपुरी-विधवा ससार का सबसे दयनीय और दुदशाग्रस्त जीव है। उसका मुह देखना भी पाप समझा जाता है और उसकी सत्ता अमगल का मूल मानी जाती है। दूसरी बुराई समाज मे व्यभिचार का प्रचार है। जब वृद्ध व शिष्ट लोग, किम्बहुना हमारे देवता भी काम-वासना के वेग को रोकने मे असमथ है, तब विधवा तरुणी स्त्रियो से इसकी आशा करना आकाश-पुष्प के समान ही असम्भव है। ऐसी दशा मे अनाचार और व्यभिचार मे लिप्त होने के अतिरिक्त उनके लिए दूसरा कोई माग नही है। कभी कभी अवैध बच्चो को जन्म देने के लिए वे बाध्य हो जाती है, जिसके फलस्वरूप उन्हे समाज की ताडना और निन्दा सहनी पडती है। अपने दुखी जीवन से ऊबकर या तो वे आत्महत्या कर लेती है अथवा दूसरे धम को ग्रहणकर हिन्दू-समाज के क्रमिक ह्रास का कारण बनती है।

भगवान् मनु ने लिखा है कि --

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।" ३।५७

अर्थात् जिस कुल की बहू-बेटिया क्लेश भोगती है, उस कुल का शीघ्र नाश हो जाता है। हिन्दू-समाज मे विधवाएँ नारकीय जीवन व्यतीत कर रही है अत मनु की भविष्यवाणी के चरिताथ होने मे कुछ भी सन्देह नही है। यदि देश के नेता, हिन्दू-समाज के उद्धारक, और सनातन धम के धुरधर विद्वान् बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह तथा विधवा-विवाह की कुप्रथाओ को दूर नहीं किया, तो यह समाज प्रशान्त महासागर की गहराई मे दबकर रसातल मे पहुँच जायेगा, जहाँ से इसका उद्धार होना असम्भव है।

(९) अनुच्छेद—मृत्यु-भोज

भोजपुरी क्षेत्र मे 'मृत्यु-भोज' की भी प्रथा प्रचलित है। 'मृत्यु-भोज' से यहाँ तात्पय उस 'ब्राह्मण-भोजन' अथवा 'ब्रह्म-भोज' से है, जो मृत व्यक्ति की 'तेरही' के दिन कराया जाता है। जब किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है, तब उसके दाह-सस्कार से लेकर 'तेरही' तक अनेक क्रिया-कलाप करने पडते है। इन विधि-विधानो की शृखला मे अन्तिम विधान 'ब्रह्म-भोज' है। यदि किसी निधन अथवा युवा व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है, तो उसकी तेरही पर भी ब्राह्मणो को भोजन कराया जाता है। परन्तु इनकी सख्या कम होती है। परन्तु गाँवो मे यदि कोई धनी व्यक्ति का 'गगालाभ' हो गया और सयोग से यदि वह वृद्ध भी हो, तो फिर क्या पूछना ? जो जितना ही धनी होता है, उसकी तेरही पर 'ब्रह्म-भोज' उतना ही बडा किया जाता है। यदि मृत व्यक्ति के पुत्र 'कमासुत' हो, तो यह ब्रह्म-भोज अपना विशाल रूप धारण कर लेता है।

इस तेरही के दिन आसपास के गाँवो के सभी ब्राह्मण भोजन के लिए आमन्त्रित किये जाते है जिनकी सख्या हजारो तक पहुँच जाती है। गाँव का नाई एक दिन पहिले ही इन ब्राह्मणो को भोजन करने के लिए 'बुलाहट' दे आता है, जिसे 'अइगा' कहते है। निश्चित तिथि को ये 'भोजनभट्ट' ब्राह्मण पानी पीने के लिए अपना जलपात्र (लोटा) लेकर पहुँच जाते है। और अपने आतिथेय के घर आकर आसन ग्रहण कर लेते है।

उधर घर के भीतर ब्रह्मभोज के लिए पूरियाँ बनाने के लिए हलुवाई लगे रहते है। जब पूडी और शाक—जो प्राय कोहडा और कटहल का होता है—बनकर तैयार हो जाता है, तब इन ब्राह्मणो को बैठाकर इनके सामने पत्तल परोस दी जाती है। इन्ही पत्तलो मे इन्हे पूडी, कचौडी और शाक भोजन के लिए दिया जाता है। ये लोग बडे प्रेम से 'शष्कुली' का भोजन करते है। भोजन की समाप्ति की सूचक दही और चीनी इन्हे अन्त मे दी जाती है। जब सभी लोग भरपेट भोजन कर लेते है, तब सब लोग एक साथ उठ जाते है। भोजनोपरान्त इन्हे पान तथा दक्षिणा दी जाती है और इस प्रकार यह 'ब्रह्म-भोज' समाप्त हो जाता है।

चाहे कोई पुत्र अपने पिता की जीवितावस्था मे प्रतिदिन [illegible] परन्तु उनकी मृत्यु के उपरान्त वह उनकी तेरही के अवसर पर विशाल ब्रह्मभोज [illegible] परन्तु समाज के लाज से, लोक-लज्जा के भय से उसे ऐसा करना ही पडता है। अन्यथा समाज के [illegible] उस कपूत उपाधि से सुशोभित करते है। हिन्दी मे एक लोकोक्ति प्रचलित है [illegible] ब्रह्मभोज की इस प्रथा पर भी चरितार्थ होती है। पिता की जीवितावस्था मे [illegible] परन्तु उनकी तेरही के दिन वह ब्रह्मभोज अवश्य करता है।

यह प्रथा अब कुप्रथा के रूप मे परिणत हो गयी है। प्रथम तो यह [illegible] समाज के भय से की जाती है और दूसरी यह कि इसमे आवश्यकता से अधिक धन खर्च किया जाता है। अतएव यह प्रथा अब [illegible] बन गयी है।

(१०) अनुच्छेद—गायडार की प्रथा

दीपावली के एक दिन पहिले एक विचित्र प्रथा का सम्पादन किया जाता है जो गायडार के नाम से प्रसिद्ध है। इस दिन गाव के दुसाध जाति के किसी सूअर को पकड लाते है। वे उसके चारो पैर [illegible] बाँध देते हैं और जमीन पर उसे घसीटते है। किसान लोग अपनी गायो और भैंसो को वहाँ लाते हैं जो अपनी सींगो से इस सूअर को मारकर अध मरा या मृतप्राय कर देती है। यदि उसका जीवन अभी कुछ शेष बचा रहता है तब गाँव के लोग उसे लाठी से पीटकर दूसरे लोक मे पहुँचा देते है।

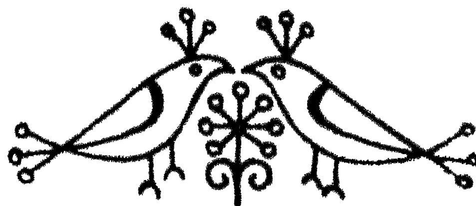
'गायडार' की प्रथा का क्या रहस्य है, इसका उद्देश्य क्या है इस पहेली का सुलझाना बडा कठिन है। इस प्रथा की उत्पत्ति क्यो और कैसे हुई, यह भी रहस्य के गर्भ मे छिपी हुई है। इस सम्बन्ध मे एक किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि पुराणो के अनुसार कोई ऋषि अथवा देवता जगल मे गायो की रक्षा कर रहे थे। इतने ही मे कोई राक्षस सूअर का रूप धारणकर वहाँ आया और उसने गायो को क्षति पहुचाना प्रारम्भ कर दिया। उसके इस कुकृत्य से ऋषि क्रोधित हो गये और उन्होने उसे शाप दिया कि तुम्हारी मृत्यु अथवा नाश इन्ही गायो के द्वारा प्रतिवर्ष हुआ करेगा। तभी से गायडार की प्रथा प्रचलित हो गयी।

बहुत-से विद्वानो का मत है कि प्राचीन काल मे लोगो का यह अन्धविश्वास था कि बलिदान से जमीन की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है, पृथ्वी की उवरा शक्ति मे वृद्धि होती है। अत वे सूअर का बलिदान इसीलिए किया करते थे, क्योकि इससे खेती की उपज अधिक होने की सम्भावना थी। आज भी बिहार के छोटा नागपुर की सन्थाल जातियो मे यह विश्वास प्रचलित है कि नर-बलि के देने से खेतो मे उपज बढ़ जाती है। सम्भवत इसी भावना से प्रेरित होकर 'गायडार' की प्रथा प्रचलित की गयी हो। परन्तु दीपावली के त्यौहार के अवसर पर ही इसे क्यो मनाया जाता है इसका सन्तोषजनक उत्तर देना कठिन है। समाज शास्त्रियो को इस प्रथा के सम्बन्ध मे अनुसन्धान करना चाहिए।

परन्तु प्रस्तुत लेखक का अभिमत इससे कुछ भिन्न है। लेखक की विनम्र सम्मति मे सूअर गन्दगी का प्रतीक है। अत दीपावली के अवसर पर इस प्रतीक को नष्ट करने का अभिप्राय हुआ स्वच्छता की स्थापना। चूँकि इस त्यौहार के समय घर की तथा गाँव की गन्दगी को दूरकर सफाई की जाती है, अत 'गायडार' मे सूअर के वध का अर्थ हुआ गन्दगी का विनाश। सम्भवत इसीलिए इस प्रथा का विधान दीपावली के समय किया जाता है। परन्तु सबल प्रमाणो के अभाव मे इस प्रथा के सम्बन्ध मे कुछ निश्चित रूप से कहना बडा कठिन है।

गायो के द्वारा सूअर के मारे जाने के पश्चात् दुसाध लोग उसके मांस को खाते है अथवा अपने कुटुम्बियो में बाँट देते है। इस प्रथा के सम्बन्ध मे अनेक लोकगीत बिहार राज्य के शाहाबाद (आधुनिक भोजपुर) जिले मे गाये जाते हैं।

इस प्रकार 'गायडार' की यह प्रथा बडी मनोरञ्जक है, जिसका सर्वांगीण अध्ययन समाजशास्त्रियो तथा मानव विज्ञान शास्त्रियो के शोध का विषय बन सकता है।



अध्याय—७

खान-पान

○ ○

महत्ता

मानव-जीवन के लिए भोजन अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना प्राण धारण करना कठिन है। किसी भी जाति के जीवन मे उसके भोजन की वस्तुओ का बडा महत्त्व है। उपनिषदो मे लिखा है कि—"अन्नमय हि सौम्य मन ।" अर्थात् मनुष्य जिस प्रकार का भोजन करता है, उसका मन भी उसी प्रकार का हो जाता है। तामसिक पदार्थो का भोजन करनेवाले व्यक्ति की बुद्धि कभी सात्विक नही हो सकती। इसीलिए हमारे प्राचीन ऋषि-महर्षियो ने भोजन के ऊपर बडा जोर दिया है। जिस प्रकार से भोज्य पदार्थों का प्रभाव हमारे शरीर की वृद्धि आदि पर पडता है, उसी प्रकार से हमारी बुद्धि के निर्माण पर उसका प्रभाव परिलक्षित होता है।

भोजन से किसी जातिविशेष की सस्कृति का भी पता चलता है। जो जाति कन्द, मूल, फल को खानेवाली तथा सात्विक भोजन करनेवाली होगी, निश्चय ही उसकी बुद्धि निमल और विचारधारा पवित्र होगी। परन्तु जो जाति मद्यपायी तथा मासाहारी होगी, उसके विचार उन्नत नही हो सकते।

भोज्य पदार्थों के अध्ययन से किसी जाति के आचार-विचार का भी पता लगता है, उसके रीति-रिवाज पर भी प्रकाश पडता है। भोजन-सम्बन्धी अनेक कहावतो के द्वारा इस विषय को अच्छी तरह से समझाया जा सकता है। अत किसी जाति के भोज्य पदार्थों का अध्ययन अनेक दृष्टियो से महत्त्वपूण है।

भोज्य पदार्थों के प्रकार अथवा श्रेणी-विभाजन

भोज्य पदार्थों का वर्गीकरण अनेक प्रकार से किया गया है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता मे आहार अर्थात् भोजन को तीन श्रेणियो मे विभक्त किया है—(१) सात्त्विक, (२) राजसिक और (३) तामसिक। इस विभाजन के अनुसार आयु, सत्त्व, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढानेवाला भोजन सात्त्विक कहलाता है। यह रस तथा स्नेह (घी-दूध) आदि से युक्त और मन को स्वादिष्ट या अच्छा लगनेवाला होता है। इसी प्रकार से उन्होने राजसिक और तामसिक भोजन की भी व्याख्या की है। भगवान् श्रीकृष्ण का यह वर्गीकरण भोज्य पदार्थों के गुण और प्रकृति के आधार पर किया गया है।[१]

धर्मशास्त्र तथा वैद्यक ग्रन्थो मे भोजन का श्रेणी-विभाजन निम्नाकित रूप से किया गया है —

(१) भोज्य
(२) चर्व्य
(३) चोष्य
(४) पेय्य
(५) लेह्य

इस विभाजन के अनुसार भोज्य वे पदाथ है, जो खाये जाते है, जैसे भात, रोटी आदि। चोष्य वे है, जो चूसे जाते है, जैसे ईख, आम आदि। पेय के अन्तगत वे पदाथ आते है, जो पीये जाते है, जैसे दूध, दही, शबत आदि। लेह्य उन पदार्थो की सज्ञा है, जो जीभ से चाटे जाते है, जैसे मधु या शहद। निश्चय ही यह वर्गीकरण किसी पदाथ को खाने की विधि के ऊपर आश्रित है और उपर्युक्त विभाजन से सर्वथा भिन्न है।

१. भगवद्गीता ?

भोजपुरी खाद्य पदार्थों के वर्गीकरण मे उपयुक्त श्रेणी विभाजन की पद्धति [illegible] एक दूसरी प्रणाली को अपनाया गया है, जो बहुत वैज्ञानिक तो नही कही जा सकती परन्तु [illegible] है। भोजपुरी क्षेत्र मे साधारणतया जो पदार्थ खाने-पीने मे प्रयोग मे लाये जाते है उनका विभाजन [illegible] किया जा सकता है —

(क) प्रधान भोज्य पदार्थ (दाल, भात, रोटी आदि)
(ख) शाक (आलू, कोहड़ा आदि)
(ग) { अचार (आम, नीबू आदि)
 चटनी (आम, इमली आदि)
(घ) मिठाई (टिकरी, गुलाबजामुन आदि)
(ङ) फल (आम, केला आदि)
(च) पेय पदार्थ (शरबत, अमझोरा आदि)।

प्रधान भोजन के अन्तर्गत भात, दाल, रोटी आदि के अतिरिक्त विविध प्रकार के भोज्य पदार्थ है जिनका व्यवहार दैनिक जीवन मे किया जाता है। इन विविध भोज्य पदार्थों के वर्णन मे वर्गीकरण के [illegible] के कारण केवल उनकी प्रधानता तथा व्यापक व्यवहार या प्रचार का ही ध्यान मे रखा गया है। [illegible] अचार, चटनी आदि का विवरण उपस्थित करते हुए भी यही क्रम अपनाया गया है। प्रत्येक भोज्य पदार्थ [illegible] है—निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है —

(१) विभिन्न प्रकार (श्रेणी-विभाजन)
(२) बनाने की विधि
(३) खाने की विधि

(१) परिच्छेद

प्रधान भोज्य पदार्थ

(१) अनुच्छेद—भात

महत्त्व

यदि भात को भोजपुरी भोज्य पदार्थों का राजा कहे, तो कुछ अत्युक्ति न होगी। यह सर्वश्रेष्ठ और सबसे अधिक प्रचलित भोजन की सामग्री है। यदि किसी विशिष्ट व्यक्ति या अतिथि को भात न खिलाया जाय तो वह अपना अपमान समझता है। विवाह-संस्कार के अवसर पर समधी को भात खिलाना अत्यन्त आवश्यक होता है। यदि समधी किसी कारण से रुष्ट होकर भात खाये बिना ही अपने घर लौट गया, तब विवाह की सकुशल समाप्ति नही समझी जाती। 'मॅड़वा' (विवाह मण्डप) मे समधी का भात खाना वैवाहिक सफलता का सूचक है। समधी से भात खाने की कृपा करने के लिए बड़ी प्रार्थना करनी पडती है और इसके लिए उसको न्यौता (निमन्त्रण) के रूप में अधिक रुपया भी देना पड़ता है। इसी से समधी द्वारा भात खाने की महत्ता का कुछ अनुमान किया जा सकता है।

विवाह के लिए बारात के प्रस्थान की पूर्वरात्रि को लड़केवाले के घर 'भतवानि' नामक 'भोज' (दावत) किया जाता है, जिसमे कुटुम्ब के भाई-बन्धु सभी उपस्थित होते हैं। इस 'भतवानि' के अवसर पर जो लोग भात खाते हैं, उनका बारात मे जाना आवश्यक माना जाता है। लडकी के घर विवाह-मण्डप मे भात खाने के लिए वे ही लोग आमन्त्रित किये जाते है, जो विशिष्ट व्यक्ति होते हैं अथवा जो सगे-सम्बन्धी या निकट-कुटुम्बी होते हैं।

भात वैवाहिक सम्बन्ध का मेरुदण्ड है अर्थात् विवाह-सम्बन्ध उसी व्यक्ति से स्थापित किया जाता है जिसके यहाँ भात खाने मे कोई आपत्ति न हो। अत्यन्त निकट-कुटुम्बियो तथा दायादो के घर ही भात का प्रसाद पाया जाता है दूसरे के यहाँ नही। अत वैवाहिक सम्बन्ध को करने मे भात का खाना एक निर्णयात्मक वस्तु (deciding factor) है।

भात स्पर्शास्पर्श की दृढ़ 'आधारशिला' है। इसी की मजबूत नींव पर 'छूआछूत' का विशाल प्रासाद खड़ा है। यदि किसी व्यक्ति के यहाँ यह 'महाप्रसाद' ग्रहण कर लिया गया, तो अस्पृश्यता का 'प्रासाद' स्वयं धराशायी हो जाता है। अत भात खाने मे बडे विचार से काम लिया जाता है।

भोजपुरी समाज मे साधारणतया भोजन के दो भेद हैं—(१) कच्चा और (२) पक्का। घी में पकायी गयी

पूडी पक्की मानी जाती है और पानी मे बनाया गया भात कच्चे भोजन की सज्ञा प्राप्त करता है। पक्का भोजन तो बिना विशेष विचार किये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य किसी के घर खाया जा सकता है परन्तु कच्चा भोजन अर्थात् भात खाने मे बडे विवेक से काम लेना पडता है। किसी व्यक्ति की जाति, कुल, गोत्र, कुटुम्ब आदि को ठीक से जाने बिना उसके घर का भात कदापि नही खाया जा सकता। "तीन कन्नौजिया, तेरह चूल्हा" की लोकोक्ति इसी प्रथा के ऊपर आश्रित है। पवतीय क्षेत्र (अल्मोडा, नैनीताल आदि) मे इस भात ने ही स्पर्शास्पिश की परम्परा को अविच्छिन्न रूप से सुरक्षित रखा है, अन्यथा वहाँ पूडी के अतिरिक्त किसी के यहाँ रोटी को भी खाने मे कोई आपत्ति नही मानी जाती।

चावलो के प्रधान भेद

एक कहावत हे कि क्षत्रिय और चावल की जाति अनन्त है। वास्तव मे चावलो के विभिन्न प्रकारो (Varieties) की गणना करना कठिन काम हे। भिन्न-भिन्न गॉवो, कस्बो, शहरो और प्रान्तो मे चावल के विभिन्न प्रकार उपलब्ध होते हे। खुद्दी से लेकर देहरादूनी चावल (बासमती) तक इसके अनन्त भेद है। फिर भी इसको दो प्रधान श्रेणियो मे विभाजित किया जा सकता है —

(१) अरवा और (२) उसिना। धान को ढेकी मे कूटा जाता है, जिससे उसके ऊपर की भूसी हट जाती है। इस प्रकार जो चावल तैयार किया जाता है, उसे 'अरवा' कहते है। परन्तु 'उसिना' चावल को बनाने की प्रक्रिया कुछ कठिन है। पहिले धान को २४ घण्टो तक पानी मे भिगो देते है। फिर इसे पानी मे से छानकर कडाही मे इस धान को धीमी आँच मे भूनते है। जब यह धान अधपका-सा हो जाता है, तब इसे ओखली या ढेंकी मे कूटते हैं। भूसी के छूट जाने पर, इस प्रकार से जो चावल तैयार होता है, उसे 'उसिना' कहते हैं। भोजपुरी मे किसी वस्तु को उबालने के लिए 'उसीनना' क्रिया का प्रयोग किया जाता है। चूँकि यह चावल 'उसीना' हुआ रहता है, अत इसे 'उसिना' कहा जाता है। उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलो मे इसे 'भुजिया' चावल का नाम प्राप्त है, जिसका अथ है भूना (या भूजा) गया चावल। इसीलिए पण्डित लोग इसे अपवित्र या अशुद्ध मानते है और अपने चौके मे इसे नही आने देते। इसके विपरीत 'अरवा' चावल पवित्र और शुद्ध समझा जाता है। भगवान् का भोग इसी चावल को पकाकर लगाया जाता है और किसी विशिष्ट तथा सम्मानित अतिथि के आने पर उसकी थाली मे इसी को भोजन के लिए परोसते हैं।

भोजपुरी क्षेत्र मे चावल का भात खाना या खिलाना बडे गौरव की बात समझी जाती है। यदि किसी किसान के लडके से पूछिये कि तुमने आज क्या खाया है ? तो वह गर्व और गौरव के साथ उत्तर देगा कि "आजु हम धाने के भात खइनी हँऽ।" अर्थात् आज धान (चावल) का भात खाया है।

इस क्षेत्र मे 'उसिना' चावल का भात खाने की बडी प्रथा है तथा इसका प्रचार है। यद्यपि 'अरवा' चावल भी आसानी से मिल जाता है, फिर भी 'उसिना' चावल ही लोग अधिक क्यो खाते है, यह बात कुछ समझ मे नही आती। सम्भवत 'उसिना' का सस्ता होना ही इसके प्रचुर-व्यवहार का प्रधान कारण है। गाँवो मे चावल और गेहूँ प्राय बराबर मात्रा मे पैदा होता है, फिर भी अधिकाश लोग चावल—फिर उसमे भी 'उसिना'—ही के प्रति इतना अटूट अनुराग क्यो दिखलाते हैं, इसका कारण अभी तक बुद्धि की सीमा के भीतर प्रवेश नही कर सका। आरा (बिहार) जिले मे रेलवे लाइन के दक्षिणी भाग को 'धनहा' देश कहा जाता है, जिसका अर्थ है वह प्रदेश (क्षेत्र) जहाँ धान अधिक मात्रा मे पैदा होता हो। वहाँ दोनो समय—सुबह और शाम—प्राय भात ही खाते है। जिस प्रकार से बगाली लोग 'मत्स्यप्रिय' हैं, उसी प्रकार भोजपुरिया लोग 'भातप्रिय' हैं।[१]

भात बनाने का प्रकार

भात बनाने के दो प्रकार है—(१) पसौआ और (२) बइठौआ। जिस चावल मे काफी पानी डालकर उसे पकाया जाता है और अन्त मे उसके 'माँड' को पसा (गिरा) दिया जाता है, उसे 'पसौआ' भात कहते है। अच्छे और बारीक चावलो का 'माँड' बिना निकाले वे 'फरहर' (अलग-अलग) नही होते, अत इनको 'पसाना' अत्यन्त आवश्यक होता है। यदि किसी विशिष्ट व्यक्ति के भोजन के लिए यह भात बनाया जा रहा हो, तो उसमे थोडा-सा घी भी छोड देते है जिससे वह स्वादिष्ट

१ जब लेखक नैनीताल में तीन-चार वर्षों तक रहा, तब अपनी आदत के अनुसार घोर जाडे के बर्फीले दिनो में भी भात खाया करता था। मित्रो ने बहुत समझाया कि पहाड में भात का खाना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। परन्तु उनके उपदेश पर ध्यान न देकर अपने नियम पर डटा रहा। उसे 'भातप्रिय' होने से कोई भी शारीरिक क्षति नहीं उठानी पड़ी।

और सुगन्धित हो जाय। अच्छे चावलो को पकाने पर उनमे से स्वाभाविक सुगन्ध निकलती है। इसीलिए सम्भवतः देहरादूनी चावल को 'बासमती' (या वासमती) कहा जाता है, जिसका अर्थ होता है सुगन्ध से युक्त।

'बइठौआ' भात उसे कहते है, जिसमे से 'माँड' नही निकाला जाता और चावल गलकर, पक कर रस में ही पच जाता है। यह भात 'गीला' न होने पाये, इसके लिए अन्दाज से ही चावल में पानी दिया जाता है। साधारणतया चावल के ऊपर चार अंगुल ऊँचा पानी होना चाहिए, तब भात के गीले होने का डर नही रहता और चावल अच्छी तरह से गल भी जाता है। चूँकि इसमे पानी का अन्दाजा ठीक होना चाहिए अतः इसको बनाने में श्रम होता है। अतः प्रायः स्त्रियाँ 'पसौआ' भात ही बनाती है।

चावल से पसाये गये जल को 'माँड' कहा जाता है। गरीब लोग इसी माँड को भात में मिलाकर खाते है जिसे 'माड भात' खाना कहा जाता है। आश्विन कृष्ण नवमी—जिसे मातृ नवमी कहते है—के दिन स्त्रियाँ अपनी मृत सास को माँड पीने को देती है या उन्हे चढाती है।

भात को परोसने का प्रकार

थाली मे भात को परोसने का एक विशेष प्रकार होता है। जब समधी या अन्य किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति को भोजन करने के लिए आमन्त्रित किया जाता है तो थाली मे भात को परोसकर उसमे थोड़ा घी डाल देते है। फिर भात को थाली के बीच में रखकर पर्वत के शिखर के रूप मे, या 'पिरामिड' की शक्ल मे उसको बनाते है। स्त्रियाँ इस बात का सदा प्रयास करती है कि भात को 'जाँत' (दबा) कर छोटी से छोटी शिखराकृति बनावें। इसी कारण [illegible] अर्थात् गरम चावल की भाँति दबाना, भोजपुरी मे एक मुहावरा बन गया है जिसका अर्थ है किसी व्यक्ति को दबाकर या नियन्त्रण में रखना। समधी को भात खिलाते समय परिहास करने के लिए, इस शिखराकृति भात के भीतर रुपया अथवा कोई और भी वस्तु रख दी जाती है। यह तो हुई भात परोसने की विशिष्ट विधि। परन्तु साधारण लोगों के भोजन के लिए भात को आधे भाग में थाली में चौड़ाई तथा लम्बाई मे फैला देते है और आधा स्थान दाल परोसने के लिए रख छोड़ते है।

विवाह आदि अवसरो पर बारातियो को भात पत्तल में खिलाया जाता है। अतः पत्तल में भात को डालकर उसकी वृत्ताकार (Circular) आकृति बनाते है। बीच में भात को हटाकर थोड़ा गड्ढा बना देते है। इसी गड्ढे में दाल परोसी जाती है, जिसके चारो ओर भात की ऊँची कगार होने के कारण यह पत्तल के बाहर गिरने नही पाती।

खाने की विधि

साधारणतया भात को दाल के साथ खाया जाता है। भोजपुरी क्षेत्र में भात के साथ अरहर की दाल खाने की प्रचुर प्रथा है परन्तु समधी को खिलाने के लिए (भात के साथ) चने की दाल बनायी जाती है। यह उनके लिए विशिष्ट आदर की वस्तु है। उत्तरप्रदेश के पश्चिमी जिलो मे भात मे घी और शक्कर डालकर उसे बड़े चाव से खाते है परन्तु पूर्वी जिलों में इस प्रथा का नितान्त अभाव है।

कुछ लोग भात को 'कढ़ी' के साथ भी खाते हैं। बच्चे दूध भात खाना अधिक पसन्द करते है। प्रिय व्यक्ति के शुभ समाचार की सूचना देनेवाले कौवे को दूध-भात ही खाने को देते है। कुछ व्यक्ति दही-भात खाना अधिक पसन्द करते है। छोटे बच्चे 'बासी' भात को दही के साथ बड़े प्रेम से ग्रहण करते है। गरीब लोगों को दाल के अभाव में सत्तू की 'सिबरी' (गीला सत्तू) के साथ भात खाना पडता है। जो लोग सौभाग्यशाली है उन्हे ही 'घी भात' खाने को मिलता है। निर्धनता से पीडित किसान या मजदूर 'नून-भात' (नमक के साथ भात) खाकर ही अपना गुजारा किसी प्रकार कर लेता है। कुछ लोग मसालेदार चने के साथ 'चना-भात' खाकर के अपने उदरदरी की पूर्ति करते है। इस प्रकार विभिन्न वस्तुओं के साथ भात खाया जाता है।

खुद्दी का चावल

चावल के टूटे हुए छोटे-छोटे अंशो को 'टूटन' या 'खुद्दी' कहते है। गरीब आदमियों के खाने के लिए यही चावल का 'टूटन' सस्ते दाम पर बाजार मे बिकता है। इसी को 'खुद्दी का चावल' कहते है। इसमें चावल का एक भी बड़ा दाना आपको देखने को नही मिलेगा। खुद्दी का भात बड़ा गीला होता है। और यदि नये चावल की खुद्दी हुई तो उसके भात के गीलापन का क्या कहना? "एक तो तितलौकी दूसर नीम चढ़ी।' खुद्दी का पूरा भात एक बड़े पिण्ड के समान हो जाता है।

खुद्दी के भात को दाल या दही के साथ खाया जाता है। इसके स्वाद का मजा पोपले मुँहवाले बुड्ढे भी ले सकते है। बच्चे बडे शौक से इसे खाते है, स्त्रियाँ बडे प्रेम से इसका प्रसाद ग्रहण करती है। चने के 'साग' (शाक) के साथ भी खुद्दी के भात का उपयोग किया जाता है।

चावल के द्वारा निर्मित अन्य भोज्य पदार्थ

जिस प्रकार शहरो मे भोजन की कला मे प्रवीण स्त्रियाँ मीठा चावल ओर नमकीन चावल (तहरी) आदि अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोजन बनाती हे, उसी प्रकार भोजपुरी क्षेत्र मे चावल से अन्य भोज्य पदाथ भी बनाये जाते है, जिनमे निम्नाकित तीन अधिक प्रसिद्ध है —

(१) नून-जाउरि, (२) दहि-जाउरि और (३) लौकी-जाउरि।

(१) भात जब पकने लगता है, तब उसमे थोडी हल्दी और नमक डाल देते है। फिर भात के पक जाने पर उतार-कर उसे घी, जीरा और मिर्चा से छौक देते है। इस प्रकार जो भात तैयार होता हे, उसे 'नून-जाउरि' कहते है। इसकी तुलना शहरी नमकीन चावल से की जा सकती है। (२) जब इसी भात को दही डालकर पकाते है, तब यह 'दहि-जाउरि' के नाम से पुकारा जाता है। (३) कभी कभी भात मे लौकी को चीरकर डाल देते है और दोनो को एक साथ पकाते है। फिर अन्त मे भात को घी, जीरा, मिर्चा आदि से छौंक देते है। इस विधि से जो भात तैयार होता है, वह 'लौकी-जाउरि' की सज्ञा को प्राप्त करता है। यह खाने मे बडा स्वादिष्ट लगता है। कुछ लोग इसमे दही भी डाल देते है, जिससे इसका स्वाद और अधिक बढ जाता है। यद्यपि ये सब गरीबो के ही भोजन है, परन्तु यदि धनी व्यक्ति भी इनका एक बार आस्वाद ले, तो इन्हे फिर से खाने के लिए उनका जी मचल उठे।

विभिन्न अन्नो के भात

भोजपुरी लोक-जीवन मे 'धाने के भात' भोज्य पदार्थों मे श्रेष्ठ समझा जाता है। परन्तु चावल (धान) के अतिरिक्त दूसरे अन्नो को भी भात के रूप मे पकाकर खाया जाता है, जिसमे निम्नलिखित प्रसिद्ध है —

(१) जौ, (२) जनेरा (मकाई), (३) सावाँ, (४) कोदो, (५) बाजरा और (६) जोन्हरी आदि।

कुछ लोग जौ—जिसे भोजपुरी मे 'जव' कहा जाता है—का भात बडे चाव से खाते है। जौ को कम-से-कम २४ घण्टे तक पानी मे भिगो दिया जाता है। फिर इसे पानी मे से छानकर, ओखल मे डालकर, मूसल की धमाधम चोट देकर कूटा जाता है, जिससे इसका ऊपरी छिलका या भूसी छूट जाय। फिर इसे सूप से फटक्कर, इसकी भूसी को अलग कर दिया जाता है। बाद मे चावल की ही भाँति इसे पानी मे पकाया जाता है। फिर दाल या दही की सहायता से इसे खाते है। जौ का भात बडा गरिष्ठ होता है और कभी-कभी इसके खाने के कारण पेट मे दर्द होने लगता है।

'कोदो' का भात चावल की ही भाँति सफेद होता है। यह खाने मे स्वादिष्ट लगता है। इसका भात प्राय गीला होता है, जिसे विशेषकर मट्ठा की सहायता से खाते है। 'साँवा' कोदो की ही भाँति कदन्न (बुरा अन्न) की श्रेणी मे गिना जाता है, जिसे निम्नवर्ग के लोग व्यवहार मे लाते है। सुदामा की स्त्री ने उनसे बडे ही करुणापूर्ण शब्दो मे कहा था कि यदि मुझे 'कोदो' और 'सवाँ' भी खाने को मिलता, तो दूध और मिष्ठान्न की कामना मैं नही करती।[1]

"कोदो सवाँ जुरतौ भरि पेट तौ।
चाहति ना दधि-दूध मिठोती॥"

'सावाँ' को कूटकर तथा फटककर ही इसका भात बनाया जाता है, परन्तु स्वरूप और स्वाद मे यह कोदो का मुकाबिला नही कर सकता। कोदो के चावल की खीर भी बनायी जाती है, परन्तु सम्भवत सावाँ प्राय इस काम मे प्रयुक्त नही होता। कुछ लोग बाजरा का भी भात पकाकर खाते है, जो स्वाद मे सम्भवत अच्छा नही लगता। जहाँ उत्तरप्रदेश के पश्चिमी जिलो—बिजनौर, सहारनपुर, मेरठ आदि—मे ज्वार, बाजरा, जौ और मक्की की रोटी खाने की अधिक प्रथा है, वहाँ हमारे यहाँ इनका भात ही बनाकर खाते है। जौ और ज्वार की रोटी भी बनायी जाती हे, परन्तु बहुत कम। ज्वार को भोजपुरी क्षेत्र मे 'जोन्हरी' कहा जाता है। इसका पौधा बडा लम्बा होता है और इसकी बाल पौधे के सबसे ऊपरी भाग (सिर) पर लगती है। इसका दाना सफेद होता है। पहिले इसको ओखली मे खूब कूटते है, जिससे इसके ऊपर की भूसी छूट जाती है। फिर उसका भात

१. नरोत्तमदास सुदामा-चरित।

और सुगन्धित हो जाय। अच्छे चावलो को पकाने पर उनमे से स्वाभाविक सुगन्ध [illegible] है। इसी से सम्भवत देहरादूनी चावल को 'बासमती' (या वासमती) कहा जाता है, जिसका अर्थ होता है सुगन्ध से युक्त।

'बइठौआ' भात उसे कहते है, जिसमे से 'माँड' नहीं निकाला जाता और [illegible] पक जाता है। यह भात 'गीला' न होने पाये, इसके लिए अन्दाज से ही चावल मे पानी दिया जाता है। साधारणतया चावल के ऊपर चार अंगुल ऊँचा पानी होना चाहिए, तब भात के गीले होने का डर नहीं रहता और [illegible] जाना है। चूँकि इसमे पानी का अन्दाजा ठीक होना चाहिए, अत इसको बनाने मे झंझट होता है। इसी से प्राय स्त्रियाँ 'पसौआ' भात ही बनाती है।

चावल से पसाये गये जल को 'माँड' कहा जाता है। गरीब लोग इसी माँड [illegible] भात खाते है जिसे 'माड भात' खाना कहा जाता है। आश्विन कृष्ण नवमी—जिसे मातृ नवमी कहते है—को स्त्रियाँ अपनी मृत सास को माँड पीने को देती है या उन्हे चढाती है।

भात को परोसने का प्रकार

थाली मे भात को परोसने का एक विशेष प्रकार होता है। जब समधी या [illegible] भोजन के लिए आमन्त्रित किया जाता है तो थाली मे भात को परोसकर [illegible]। फिर [illegible] बाहर पर्वत के शिखर के रूप मे, या 'पिरामिड' की शक्ल मे उसको बनाते है। स्त्रियाँ इस बात का सदा प्रयास करती है कि भात को 'जाँत' (दबा) कर छोटी से छोटी शिखराकृति बनावे। इसी कारण [illegible] अर्थात [illegible] चावल की भाँति दबाना, भोजपुरी मे एक मुहावरा बन गया है जिसका अर्थ है किसी [illegible] दबाना [illegible]। समधी को भात खिलाते समय परिहास करने के लिए, इस शिखराकृति भात के भीतर [illegible] भी रख दी जाती है। यह तो हुई भात परोसने की विशिष्ट विधि। परन्तु साधारण लोगो मे भात को थाली के आधे भाग मे चौड़ाई तथा लम्बाई मे फैला देते है और आधा स्थान दाल परोसने के लिए रख छोड़ते है।

विवाह आदि अवसरो पर बारातियो को भात पत्तल मे खिलाया जाता है। अत पत्तल मे भात को डालकर उसकी वृत्ताकार (Circular) आकृति बनाते हैं। बीच मे भात को दबाकर गोल गड्ढा बना देते है। इसी गड्ढे मे दाल परोसी जाती है जिसके चारो ओर भात की ऊँची कगार होने के कारण यह पत्तल से बाहर गिरने नहीं पाती।

खाने की विधि

साधारणतया भात को दाल के साथ खाया जाता है। भोजपुरी क्षेत्र मे भात के साथ अरहर की दाल खाने की प्रचुर प्रथा है परन्तु समधी को खिलाने के लिए (भात के साथ) चने की दाल बनायी जाती है। यह उसके लिए विशिष्ट आदर की वस्तु है। उत्तरप्रदेश के पश्चिमी जिलो मे भात मे घी और शक्कर डालकर उसे बड़े चाव से खाते है परन्तु पूर्वी जिलों में इस प्रथा का नितान्त अभाव है।

कुछ लोग भात को 'कढ़ी' के साथ भी खाते हैं। बच्चे दूध भात खाना अधिक पसन्द करते है। प्रिय व्यक्ति के शुभ समाचार की सूचना देनेवाले कौवे को दूध-भात ही खाने को देते है। कुछ व्यक्ति दही भात खाना अधिक पसन्द करते है। छोटे बच्चे 'बासी' भात को दही के साथ बडे प्रेम से ग्रहण करते है। गरीब लोगो को दाल के अभाव मे सत्तू की 'लिबरी' (गीला सत्तू) के साथ भात खाना पडता है। जो लोग सौभाग्यशाली है, उन्हे ही 'घी भात' खाने को मिलता है। निर्धनता से पीडित किसान या मजदूर 'नून-भात' (नमक के साथ भात) खाकर ही अपना गुजारा किसी प्रकार कर लेता है। कुछ लोग मसालेदार चने के साथ 'चना-भात' खाकर के अपने उदरदरी की पूर्ति करते है। इस प्रकार विभिन्न वस्तुओ के साथ भात खाया जाता है।

खुद्दी का चावल

चावल के टूटे हुए छोटे-छोटे अशो को 'टूटन' या 'खुद्दी' कहते है। गरीब आदमियो के खाने के लिए यही चावल का 'टूटन' सस्ते दाम पर बाजार मे बिकता है। इसी को 'खुद्दी का चावल' कहते है। इसमे चावल का एक भी बड़ा दाना आपको देखने को नही मिलेगा। खुद्दी का भात बड़ा गीला होता है। और यदि नये चावल की खुद्दी हुई तो उसके भात के गीलापन का क्या कहना? "एक तो तितलौकी दूसरे नीम चढ़ी।' खुद्दी का पूरा भात एक बड़े पिण्ड के समान हो जाता है।

खुद्दी के भात को दाल या दही के साथ खाया जाता है। इसके स्वाद का मजा पोपले मुँहवाले बुड्ढे भी ले सकते है। बच्चे बडे शौक से इसे खाते हे, स्त्रियाँ बडे प्रेम से इसका प्रसाद ग्रहण करती है। चने के 'साग' (शाक) के साथ भी खुद्दी के भात का उपयोग किया जाता है।

चावल के द्वारा निर्मित अन्य भोज्य पदार्थ

जिस प्रकार शहरो मे भोजन की कला मे प्रवीण स्त्रियाँ मीठा चावल ओर नमकीन चावल (तहरी) आदि अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोजन बनाती है, उसी प्रकार भोजपुरी क्षेत्र मे चावल से अन्य भोज्य पदाथ भी बनाये जाते है, जिनमे निम्नाकित तीन अधिक प्रसिद्ध है —

(१) नून-जाउरि, (२) दहि-जाउरि और (३) लौकी-जाउरि।

(१) भात जब पकने लगता है, तब उसमे थोडी हल्दी और नमक डाल देते हे। फिर भात के पक जाने पर उतार-कर उसे घी, जीरा और मिर्चा से छौक देते है। इस प्रकार जो भात तैयार होता है, उसे 'नून-जाउरि' कहते है। इसकी तुलना शहरी नमकीन चावल से की जा सकती है। (२) जब इसी भात को दही डालकर पकाते है, तब यह 'दहि-जाउरि' के नाम से पुकारा जाता है। (३) कभी-कभी भात मे लौकी को चीरकर डाल देते है और दोनो को एक साथ पकाते है। फिर अन्त मे भात को घी, जीरा, मिर्चा आदि से ढाक देते है। इस विधि से जो भात तैयार होता है, वह 'लौकी जाउरि' की सज्ञा को प्राप्त करता है। यह खाने मे बडा स्वादिष्ट लगता है। कुछ लोग इसमे दही भी डाल देते है, जिससे इसका स्वाद और अधिक बढ जाता है। यद्यपि ये सब गरीबो के ही भोजन है, परन्तु यदि धनी व्यक्ति भी इनका एक बार आस्वाद ले, तो इन्हे फिर से खाने के लिए उनका जी मचल उठे।

विभिन्न अन्नो के भात

भोजपुरी लोक-जीवन मे 'धाने के भात' भोज्य पदार्थो मे श्रेष्ठ समझा जाता हे। परन्तु चावल (धान) के अतिरिक्त दूसरे अन्नो को भी भात के रूप मे पकाकर खाया जाता है, जिनमे निम्नलिखित प्रसिद्ध है —

(१) जौ, (२) जनेरा (मकाई), (३) सावाँ, (४) कोदो, (५) बाजरा और (६) जोन्हरी आदि।

कुछ लोग जौ—जिसे भोजपुरी मे 'जव' कहा जाता है—का भात बडे चाव से खाते है। जौ को कम-से-कम २४ घण्टे तक पानी मे भिगो दिया जाता है। फिर इसे पानी मे से छानकर, ओखल मे डालकर, मूसल की धमाधम चोट देकर कूटा जाता है, जिससे इसका ऊपरी छिलका या भूसी छूट जाय। फिर इसे सूप से फटककर, इसकी भूसी को अलग कर दिया जाता है। बाद मे चावल की ही भाँति इसे पानी मे पकाया जाता है। फिर दाल या दही की सहायता से इसे खाते है। जौ का भात बडा गरिष्ठ होता है और कभी-कभी इसके खाने के कारण पेट मे दर्द होने लगता है।

'कोदो' का भात चावल की ही भाँति सफेद होता है। यह खाने मे स्वादिष्ट लगता है। इसका भात प्राय गीला होता है, जिसे विशेषकर मट्ठा की सहायता से खाते है। 'सावा' कोदो की ही भाँति कदन्न (बुरा अन्न) की श्रेणी मे गिना जाता है, जिसे निम्नवर्ग के लोग व्यवहार मे लाते है। सुदामा की स्त्री ने उनसे बडे ही करुणापूर्ण शब्दो मे कहा था कि यदि मुझे 'कोदो' और 'सवाँ' भी खाने को मिलता, तो दूध और मिष्ठान्न की कामना मैं नही करती।[1]

"कोदो सवाँ जुरतौ भरि पेट तौ।
चाहति ना दधि-दूध मिठौती।।"

'सावाँ' को कूटकर तथा फटककर ही इसका भात बनाया जाता है, परन्तु स्वरूप और स्वाद मे यह कोदो का मुकाबिला नही कर सकता। कोदो के चावल की खीर भी बनायी जाती है, परन्तु सम्भवत सावाँ प्राय इस काम मे प्रयुक्त नही होता। कुछ लोग बाजरा का भी भात पकाकर खाते है, जो स्वाद मे सम्भवत अच्छा नही लगता। जहाँ उत्तरप्रदेश के पश्चिमी जिलो—बिजनौर, सहारनपुर, मेरठ आदि—मे ज्वार, बाजरा, जौ और मक्की की रोटी खाने की अधिक प्रथा है, वहाँ हमारे यहाँ इनका भात ही बनाकर खाते है। जौ और ज्वार की रोटी भी बनायी जाती हे, परन्तु बहुत कम। ज्वार को भोजपुरी क्षेत्र मे 'जोन्हरी' कहा जाता है। इसका पौधा बडा लम्बा होता है और इसकी बाल पोधे के सबसे ऊपरी भाग (सिर) पर लगती है। इसका दाना सफेद होता है। पहिले इसको ओखली मे खूब कूटते है, जिससे इसके ऊपर की भूसी छूट जाती है। फिर उसका भात

१ नरोत्तमदास · सुदामा-चरित।

पकाया जाता है। जोन्हरी को जाँत मे दलकर—उसके टुकड़े करके भी —उसका भात बनता है परन्तु भात बनाने की अपेक्षा इसकी रोटी ही अधिक बनायी जाती है।

जनेरा का भात

चावल के अनन्तर भोजपुरियो का प्रधान भोजन मक्का का भात है। मक्का को भोजपुरी मे जनेरा कहा जाता है। इसे 'मकई' या 'मकइया' भी कहते है। जिस प्रकार से चावल का भात धनी वर्ग का भोजन है उसी प्रकार से जनेरा का भात निर्धनवर्ग के लोगो के प्रधान भोज्य पदार्थ का प्रतिनिधित्व करता है।

यह अन्न भादो मास मे तैयार होता है अत इसे 'भदई' के नाम से भी पुकारते है। गरीबी के कारण इस 'भदई' की फसल पर ही गरीब किसान अपनी आशा लगाये रहता है। यदि भदई की फसल अच्छी हो गयी तब तो उसका घर अन्न का अनन्त भाण्डार हो जाता है परन्तु यदि भदई बाढ के कारण बह गयी तो उसके साथ ही किसान का घर भी बह जाता, अर्थात् बर्बाद हो जाता है।

मकई के पौधे मे कई 'बाले' लगती है, जो 'भुट्टा' के नाम से प्रसिद्ध है। कच्चे भुट्टे को आग मे भूनकर खाया जाता है, जो बडा स्वादिष्ट लगता है। कुछ शौकीन लोग भुट्टे के कच्चे दानो को पीसकर उसका हलुआ भी बनाते है। जब मक्का पक जाता है तब उसे घर की स्त्रियाँ जाँत मे पीसती है। फिर सूप से उसके छिलके (भूसा) को छाँटकर तथा बडे टुकडो को अलग-अलग कर देती है। मक्का के इन्ही बडे-बडे टुकडो या खण्डो से इसका भात बनाया जाता है जिसे 'जनेरा का भात' कहते है।

पकाने की विधि

मक्का या जनेरा के भात को पकाने का काम घर की चतुर तथा अनुभवी स्त्री ही करती है। नयी 'नेगरूट' बहुएँ इस काम को करने मे असमर्थ होती है, क्योकि इसमे जलने का डर रहता है। और से पीस के। मक्के के खण्डित दानो को गर्म पानी मे डाल दिया जाता है। 'बटुली' (पतीली) की तरहटी (निचला भाग) मे न सटे इसलिए उसे बार-बार मोटी लकडी या कलछुल से 'चलाते' रहते हैं। अधिक आँच लगने से यह 'फट, फट फट' की आवाज करता हुआ पकने लगता है। इसी 'फट-फट' की ध्वनि करने से इस मक्के के भात को 'फँफार' भी कहते है। 'फँफार काटना' भोजपुरी का मुहावरा ही बन गया है जो किसी व्यक्ति की निर्धनता की सूचना देता है।

जनेरा का भात बनानेवाली स्त्री चूल्हा से थोडी दूर पर बैठती है क्योंकि बटुली से 'फट फट' की मधुर ध्वनि करते हुए मक्के के जलते हुए भात के अंश, यदि उसकी देह पर पड जायँ, तो उसे इसके उपचार के लिए किसी अस्पताल की ही शरण लेनी पडती है। जनेरा का भात सदा गीला ही बनता है अत इसे पकाने मे किसी कौशल की आवश्यकता नही होती। इसमे किसी 'गिहियान' की जरूरत नही। यह भात बहुत ही देर से पकता है क्योकि मक्का के कडे दानो को गलने में देर लगती है।

भात के बन जाने पर उसे थाली मे फैला देते हैं, जिससे थोडी ही देर मे वह जमकर थक्का हो जाता है। फिर उसे बडी थाली मे से काटकर या निकालकर थोडा थोडा भात घर के लोगो की थाली मे परोसा जाता है।

खाने की विधि

गरीब लोग जनेरा के 'तातल' (गर्म) भात पर नमक छिडककर उसे बडे प्रेम से खाते है। परन्तु इसके खाने का सबसे श्रेष्ठ साधन है दही या मट्ठा। मक्का का ताजा भात स्वादिष्ट होता है अत उसे नमक की सहायता से भले ही खा लिया जाय, परन्तु इसके ठण्डे या बासी हो जाने पर बिना दही की सहायता से इसे खाना अस्वादकर है। गाँव की गरीब स्त्रियाँ तथा बच्चे बडे प्रेम से 'फफोर'[1] मे दही मिलाकर खाते हैं। कुछ लोग अरहर की दाल के साथ भी इसका भोग लगाते हैं। परन्तु इन दोनो का मेल इतना ही बेमेल है, जितना सत्तू के साथ पूडी खाना।

'जनेरा' के भात का रंग सोने के समान पीला होता है। अत व्यंग्य मे इसे 'सोनहुला भात' भी कहते है। यदि भोजपुरी क्षेत्र मे किसी व्यक्ति की निर्धनता की व्यञ्जना करनी होगी, तो यह कहेगे कि "इनका घर सोनहुला भात खाइल जाला।" अर्थात् इसके घर मे सोने के रंग का भात खाया जाता है। यह जीवन का कितना बडा व्यंग्य है कि 'सोने के रूप' का

१ जनेरा के भात को 'फफोर' भी कहा जाता है।

भात खानेवाला व्यक्ति नितान्त दरिद्र हो। इस 'सोने के भात' को कुछ लोग 'पियरकी' भी कहते है और किसी गरीब पर बोली बोलते हुए "इनकरा घर से अबहुओ पियरकी ना गइल" इस शब्दावली का व्यवहार करते है।

जनेरा का भात पकाने पर बहुत बढ जाता है। अत यह निर्धनो की पेट की ज्वाला को शान्त करने मे सहायक है। यह भोजपुरियो का अन्नदाता है, प्राणदाता है, जीवनदाता है और उनकी रिक्त उदरदरी की पूर्ति करनेवाला है।

जॉत मे पीसे गये मक्के के छोटे-छोटे खण्डित दानो को 'दरिया' कहते है, जो 'दलिया' का अपभ्रंश रूप है। 'दरिया' मे गुड मिलाकर इसे खाया जाता है। यह जलपान या नाश्ता का उत्तम साधन है। बच्चे इसे बडे चाव से 'फॉकते' या खाते हैं।

मक्के की फसल जब होती है तब प्रचुर मात्रा मे होती है। इसे 'बम्पर क्राप' कह सकते है। इसके एक ही पौधे मे चार-चार और पाँच-पाँच तक बाले लगती है। अत इसके अन्न से घर अन्नपूर्णा का भाण्डार बन जाता है। यदि 'चइती' किसी प्रकार से नष्ट हो गयी, तो 'भदई' ही किसान के 'बुढापे की लकडी' का काम करती है, उसके प्राणधारण मे सहायक होती है। सस्ती होने के कारण इसे सभी लोग आसानी से खरीद सकते है।[1] अत इन विभिन्न गुणो से विभूषित होने के कारण यदि भोजपुरी जनता इसकी गुणावली के गीत गाये, तो इसमे कोई आश्चय की बात नही है। भोजपुरी के लोक-कवि श्री भिखारी ठाकुर ने जो 'मकई-प्रशस्ति' लिखी है, वह हरिषेण के द्वारा निर्मित समुद्रगुप्त की प्रयाग वाली प्रशस्ति से कुछ कम महत्त्वपूर्ण नही है। जिस प्रकार से हरिषेण ने अपनी 'प्रशस्ति' मे समुद्रगुप्त के व्यक्तिगत गुणो और उसके दिग्विजय का रोचक वर्णन प्रस्तुत किया है, उसी प्रकार से भिखारी ठाकुर ने 'मकई' के गुण (एचीवमेण्टस) का विस्तृत विवरण अपनी प्रशस्ति मे प्रस्तुत किया है। इस प्रशस्ति की प्रथम पक्ति है—'मकइया रे तोर गुनवा गुथबि माला।'

(२) अनुच्छेद—दाल

भोजपुरी क्षेत्र मे जिस प्रकार चावलो मे 'उसिना' या 'भुजिया' चावल खाने की अधिक प्रथा है, उसी प्रकार दालो मे अरहर की दाल सबसे अधिक व्यवहार मे लायी जाती है। दैनिक भोजन मे, विवाह के अवसर पर दावतो मे 'भतवानि' के समय सभी जगह अरहर की दाल का अखण्ड साम्राज्य दिखाई पडता है। इसके इतने अधिक प्रचार का कारण इसकी अधिक पैदावार हे। प्राय प्रत्येक किसान अपने खेतो मे अरहर बोता है। अरहर की फसल के तैयार होने मे पूरे साल भर लगते हैं। इसकी खेती पूरे बारह महीनो तक खेत मे खडी रहती है। इसी कारण यह रीतिकाल मे प्रेम मे पागल प्रेमी और प्रेमिकाओ के लिए सकेत स्थल (मिलने का स्थान) रहा है। बिहारी ने किसी प्रेमिका को सान्त्वना प्रदान करते हुए अरहर को अभिलक्षितकर लिखा है —[2]

"सन सुख्यौ, बीत्यो बनौ, ऊखो लई उपारि।
अजो खडी अरहर हरी, धर धीरज हिय नारि॥"

अरहर की दाल बडे आसानी से पक जाती है। यह पतली बनायी जाती है, जिससे चावल के साथ आसानी से खायी जा सके। यदि इसे घी और जीरा से छौक दिया जाय, तो फिर इसके स्वाद का क्या कहना है? आम के दिनो मे कच्चे आम के टुकडो को काटकर इसमे डाल दिया जाता है, जिससे इसके स्वाद मे वृद्धि हो जाती है। कुछ लोग इसमे गुड डालकर मीठी दाल का स्वाद लेते है।

अरहर की दाल के अतिरिक्त निम्नाकित दालो को भी व्यवहार मे लाया जाता है। परन्तु इनका उपयोग बडा सीमित है —

(१) चना, (२) मूँग, (३) उडद,
(४) मसूर, (५) मटर और (६) लेतरी (खेसारी)

यद्यपि चना इस क्षेत्र मे बहुत पैदा होता है, परन्तु इसकी दाल खाने का आम रिवाज नही है। हाँ, विशिष्ट अवसरो पर इसकी दाल अवश्य बनायी जाती है। विवाह के अवसर पर जब समधी (वर का पिता) मण्डप मे भात खाने के लिए आता है, उस समय निश्चित रूप से चने की दाल ही उसको खाने ('जेवने') के लिए परोसी जाती है। इस दाल को घी, जीरा, हीग और मिर्चा से छौकते है, जिससे इसका स्वाद बहुत अधिक बढ जाता है। किसी अन्य विशिष्ट व्यक्ति के आने पर उसके

१. परन्तु आजकल के इस भीषण अन्न-सकट में मक्का भी एक सेर का बिकने लगा है।
२. बिहारी सतसई।

स्वागत के लिए भी, चने की दाल बनायी जाती है। जिस प्रकार [illegible] यक्ति के सम्मान मे उडद की दाल खिलायी जाती है, उसी प्रकार [illegible]।

मूग की दाल आलोच्य क्षेत्र मे बहुत कम पैदा होता है। [illegible] जाता है। समूचे गाव मे खोज आइये, शायद ही किसी के घर मग [illegible] लोग मूंग की दाल खाने को बतलाते है। रोगी का पहिले उसकी दाल [illegible] जाती है। पाचनक्रिया मे यह बडी सरल होती है। इसीलिए इसका विशेष प्रयोग [illegible] जाता है।

उडद का प्रयोग दाल के रूप म बहुत ही कम होता है। पश्चिमी जिलो म [illegible] अधिक प्रचार है पूर्वी जिलो मे उतना ही कम है। इसका उपयोग 'बारा' ([illegible]) और 'फुलवरा' [illegible] किया जाता है जिसका उल्लेख अन्यत्र किया जायेगा। उडद की दाल बडी दर म पचती (गरुई) है। [illegible] इसे निम्न श्रेणी के लोग खाते है।[1] अरहर की दाल म मिलाकर पकाने म इसका स्वाद द्विगुणित हो जाता है। [illegible] आकृति मे चने की दाल के समान होती है। यह बडे दर म पचती है और [illegible] उच्च लोग प्राय नही खाते।

'लेतरी' की दाल सबसे निकृष्ट समझी जाती है। परन्तु सस्ती [illegible] खाते है। यह भी वायुकारक होती है। चपटी होने के कारण इसे पश्चिमी जिलो म [illegible] आरा जिले मे यह 'खेसारी' के नाम से पुकारी जाती है। धनी व्यक्ति इसका दाल [illegible] जिससे वे अधिक दूध दे सके। जिस प्रकार से दालो मे अरहर और चना उच्चवर्ग का भोज्य पदार्थ है उसी प्रकार [illegible] 'लेतरी' निर्धनो का भोजन है।

खिचडी

खिचडी भोजपुरी लोगो का प्रधान भोजन है। ग्रामीण जनता म [illegible] प्रचार है। [illegible] लोकप्रियता का प्रधान कारण यह है कि यह बडी आसानी से तैयार किया जाता है। [illegible] उपलब्ध नही होता, वहाँ उपले को जलाकर उस पर मिट्टी की हाँडी म चावल [illegible] साथ मिलाकर रख [illegible] है। फिर इसम थोडी हल्दी और नमक डालकर किसी लकडी के टुकडे अथवा [illegible] म इसे [illegible] है। थोडी ही देर म खिचडी पककर तैयार हो जाती है। फिर इसी हाँडी मे खिचडी खाकर बाद म इसे फोड देते है।

खिचडी को स्वादपूर्वक खाने के लिए अन्य चार पदार्थों—दही पापड घी और अचार—की आवश्यकता पडती है, जैसा निम्नाकित लोकोक्ति से स्पष्ट प्रतीत होता है —

"खिचडी के चार इयार।
दही, पापड, घी, अँचार॥"

नये चावल की खिचडी बडी स्वादिष्ट होती है। चावल के साथ प्राय अरहर की दाल [illegible] खिचडी बनायी जाती है। परन्तु मूंग के दाल की खिचडी बडी स्वादिष्ट, हल्की तथा पाचक होती है। इसीलिए डाक्टर लोग रोगी के पथ्य के लिए मूंग की खिचडी ही खाने को बतलाते है। उत्तरप्रदेश के पश्चिमी जिलो म उडद की दाल की खिचडी खाने की प्रथा है जो कुछ कम स्वादिष्ट नही होती। माघ के महीने म घी के साथ खिचडी का खाना स्वास्थ्यवर्धक होता है। माघ मास (१४ जनवरी) मे होनेवाली सक्रान्ति के दिन खिचडी खाने का बडा महत्त्व है। इस दिन प्राय सभी लोग खिचडी खाते है।

(३) अनुच्छेद—रोटी

यो तो रोटी कई अन्नो को पीसकर बनायी जाती है, परन्तु गेहूँ की रोटी सबसे अधिक मुलायम स्वादिष्ट और स्वास्थ्यकर होती है। गेहूँ की रोटी खाना बडे गर्व तथा सम्मान का विषय माना जाता है। भोजपुरी म एक कहावत प्रसिद्ध है—"खाइबि गेहूँ ना त रहबि एहूँ।" अर्थात् यदि मैं खाऊगा तो गेहूँ की ही रोटी खाऊँगा अन्यथा बिना खाये भूखा ही रह जाऊँगा। यह है गेहूँ की रोटी का महत्त्व। किसी व्यक्ति के धन का मूल्यांकन तथा उसके खान-पान की [illegible] का पता

१. आजकल मसूर की दाल का प्रयोग 'दालमोट' बनाने के काम में प्रचुर मात्रा में किया जा रहा है, जिसे [illegible] लोग भी बडे ही चाव से खाते हैं।

गेहूँ की रोटी खाने से लगता है। लोग आपस मे कहते है—'उनुकरा घरे गेहूँ के रोटी खाइल जाला', अर्थात् उसके घर मे गेहूँ की रोटी खायी जाती है। आशय यह है कि वह धनी व्यक्ति है।

गेहूँ को चौबीस घण्टे तक पानी मे भिगो देते है। फिर उसे पानी मे से छानकर धूप मे सुखा देते है। अच्छी तरह से सूख जाने पर उसे सूप से 'फटकते' है, जिससे उसकी भूसी, तिनका आदि निकल जाय। फिर इसे घर की चक्की मे खूब बारीक पीसते है। इस प्रकार जो आटा तैयार होता है, उसकी रोटी बडी मुलायम और स्वादिष्ट होती है। आजकल मशीनो मे गेहूँ को बिना धोये ही पिसवा देते है। परन्तु उसकी रोटी उतनी मुलायम नही होती। आटे को जितना ही अधिक देर तक गूथा (साना) जाय, जितना ही अधिक 'मॉडा' जाय, उसकी रोटी उतनी ही अधिक मुलायम होती है। आटे को गूथने का मापदण्ड (standard) यह हे कि वह थाली मे इतने जोरो से चिपक जाय कि गूथे गये आटे को ऊपर उठाने पर थाली भी उसके साथ ही ऊपर उठ जाय। रोटी जितनी ही पतली होगी, वह उतनी ही अधिक स्वादिष्ट होगी। कुछ स्त्रियाँ आट को हाथ से 'बेल' कर रोटी पकाती है, परन्तु अधिकाश स्त्रियाँ इसके लिए चकला (चौका या होरसा) और बेलना का प्रयोग करती हे। रोटी को पतला ओर गोलाकार बेलना 'गिहिथिन' (पाक मे चतुर) स्त्रियो का लक्षण माना जाता है। कुछ स्त्रियाँ रोटी को तवे पर ही 'फुलाती' है। परन्तु 'खरी' रोटी चूल्हे के नीचे आग पर ही सेकी जाती है। रोटी की विशेषता उसके पतली होने मे है। दाल मे डालते ही जो रोटी 'गल' जाय, तो समझना चाहिए कि यह बडी मुलायम होगी।

स्त्रियाँ रोटी मे घी लगाकर, उन्हे 'जोडियाकर', अर्थात् दो रोटियो को एक साथ एक के भीतर एक रखकर थाल मे परोसती है। रोटी अधिकतर शाक के साथ खायी जाती है, परन्तु इसके साथ यदि दाल भी हो, तो फिर क्या कहना? और यदि उस थाल को परोसनेवाली स्त्री प्रिया, तथा 'प्रियवादिनी' और सुन्दरी हो, तो फिर उसके आगे स्वग भी तुच्छ है। घाघ ने बडे ही सुन्दर शब्दो मे इसका वणन किया है[१] —

"कहे घाघ तब सबही झूठा।
उहाँ छाडि इहँवे बैकुण्ठा॥"

गेहूँ के अतिरिक्त अन्य अन्नो की भी रोटियाँ बनती है, जिनमे निम्नलिखित मुख्य है —

(१) जौ, (२) चना, (३) मक्का, (४) बाजरा, (५) ज्वार, और (६) मडुआ आदि।

जौ के आटे को तैयार करने मे बडी लम्बी (अनेक) प्रक्रियाओ का पालन करना पडता है—पानी मे भिगोना, ओखली मे कूटना, फिर धूप मे सुखाना, फिर उसे सूप से फटकना। और अन्त मे जब उसे जाँत मे पीसा जाता है, तब कही जौ का आटा तैयार होता है। इस प्रकार इसे बनाने मे कई दिन नष्ट होते है और अथक परिश्रम करना पडता है। चूकि जौ का आटा स्वय कष्ट सहनकर बनता है, अत यह खानेवालो को भी बडा कष्ट देता है। जो व्यक्ति अभ्यस्त नही है, यदि वे जौ की रोटी खा ले, तो उनके पेट मे दद पैदा हो जाता है। अत इसे प्राय गेहूँ के आटे के साथ मिलाकर खाते है, अन्यथा केवल जौ की रोटी को पचाना बडा मुश्किल है। यद्यपि आजकल डॉक्टर लोग रोगियो को 'बारली' खाने को कहते है, परन्तु जौ के आटे और 'बारी पाउडर' मे बडा अन्तर है।

कच्चे चने को पीसकर चने का आटा तैयार किया जाता है। इसका आटा खाने पर रेचक (दस्तावर) होता है। अत बहुत-से शौकीन लोग गेहूँ के आटे के साथ चने के आटे को मिलाकर बडे प्रेम से खाते है। गेहूँ मे चने का अनुपात ३ १ का होना चाहिए, अन्यथा चने की अधिकता होने से गेहूँ का स्वाद नष्ट हो जाता है। कुछ लोग चने के आटे मे नमक और गम-मसाला मिलवाकर केवल इसी की रोटियाँ पकवाते है, जो गरम-गरम और ताजी बडी स्वादिष्ट लगती है।

मक्के को पीसकर उसकी रोटियाँ बनायी जाती है, परन्तु पूर्वी जिलो मे इसके खाने की विशेष प्रथा नही है। मक्के का भात तो लोग बडे शौक से खाते है, परन्तु इसकी रोटी शायद ही कोई खाता है। पश्चिमी जिलो मे इसके ठीक विपरीत प्रथा प्रचलित है।

बाजरे के आटे की रोटी बडी स्वादिष्ट होती है। परन्तु इसको बनाने मे बडी चतुरता की आवश्यकता है। चूकि इस आटे मे 'लस्सी' (सरसता) बहुत कम होती है, अत इसको गर्म पानी से 'सानते' है। इसके आटे की 'लोइया' बनाकर उसे हाथो पर पीटकर बडा बनाते है और उसे तवे पर डालकर पकाते है। बाजरे के आटे की रोटी कुछ काली और मोटी होती है, अत वह आग पर विशेष नही 'फूलती'। शौक से बाजरे की रोटी खानेवाले धनी लोग इसमे खूब घी लगाते या 'सोखाते' हे। जब रोटी घी को खूब 'सोख' लेती है, तब उसे गुड की सहायता से खाते है। गरीब जनता इसकी मोटी और सूखी रोटी को

१ प० रामनरेश त्रिपाठी घाघ और भड्डरी।

शाक या गुड के साथ खाकर अपना पेट भरती है। बाजरा बहुत गर्म होता है [illegible] दिनों में ही खाया जाता है।

ज्वार को भोजपुरी मे 'जोन्हरी' कहते है। इसकी रोटी [illegible] होती है। इसीलिए इसके आटे को गेहूँ के आटे मे मिलाकर रोटी पकायी जाती है जिससे इसकी [illegible] लोग मड़ुआ की भी रोटी खाते है।

आम की गुठली की रोटी

गाँवो मे आम को खाकर उसकी गुठली को प्राय घूरे पर फेंक देते है। बरसात में जब गुठलियों पर काफी पानी पड जाता हे, तब गाव की चमाइने (चमार की स्त्रियाँ) आकर इन घूरों पर से आम [illegible] जाती है। फिर ये उन गुठलियो, जिसे भोजपुरी मे 'अँठिली' कहते है—को फोड़कर उसके भीतर [illegible] है, फिर इसे जाँत मे पीसकर आटे की तरह महीन कर लेती है। इसके पश्चात् गुठली [illegible] आटा मिला देती है। फिर वे दोनो को मिलाकर तथा इसे सानकर रोटियाँ बनाती है और उससे अपने पेट की ज्वाला को बुझाती है।

आम की गुठली की रोटी निम्नवर्ग (चमार, दुसाध) के अत्यन्त निर्धन [illegible] ही खाते है। ये रोटिया स्वाद मे कैसी होती होगी, यह कहना कठिन है। परन्तु इनका [illegible] की पूर्ति के लिए खायी जाती है।

(४) अनुच्छेद—गेहूँ के आटे से बननेवाले अन्य भोज्य पदार्थ

गेहूँ के आटे से अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थ तैयार किये जाते है, जिनमें से कुछ प्रसिद्ध इस प्रकार है —(१) पूड़ी (२) कचौडी, (३) पूरी, (४) पराठा, (५) मकुनी (६) [illegible] (७) [illegible] (८) [illegible] (९) [illegible] (१०) [illegible], (११) दहिरवरी, (१२) महुँअरि, (१३) दोहथी, (१४) पिठौरी (१५) गाझा (१६) [illegible] (१७) [illegible] (१८) लपसी (१९) अघरवटा, (२०) लाड़ू।

इन भोज्य पदार्थों का कोई श्रेणी-विभाजन करना बड़ा कठिन है। वास्तव में इनका कोई वर्गीकरण हो भी नही सकता। परन्तु इनको अलग-अलग श्रेणियो मे बाँटना ही चाहे, तो निम्न चार प्रकार से विभाजित [illegible] है —

(१) केवल आटे से बने हुए पदार्थ—जैसे पूड़ी, पराठा दोहथी आदि।

(२) आटे के भीतर दाल या सत्तू भरकर बनाये गये पदार्थ—जैसे पूरी मकुनी [illegible] कचौड़ी, गाझा आदि।

(३) आटे मे गुड या चीनी डालकर घी मे पकाये गये भोज्य पदार्थ—जैसे [illegible], दहिरवरी, ठेकुआ, [illegible] आदि।

(४) स्वतन्त्र रीति से बनाये गये पदार्थ—जैसे पिठौरी, महुँअरि।

परन्तु यहाँ पर किसी क्रम का पालन न करके स्वतन्त्र रीति से ही इनका विवेचन किया जाता है।

(१) पूड़ी

भोजपुरी मे पूरी को 'पूड़ी' कहा जाता है। परन्तु इन दोनो भोज्य पदार्थों में बड़ा अन्तर है। पूड़ी उसे कहते है, जब गूथा हुआ आटा कडाही मे डालकर घी मे पकाया जाता है परन्तु जब आटे के भीतर उबालकर पीसी हुई चने की दाल डाली जाती है और जब उसे तवे पर पकाया जाता है, तब भोजपुरी मे उसको 'पूरी' कहा जाता है। अतः भोजपुरी 'पूरी' और 'पूड़ी' मे बहुत अन्तर समझ लेना चाहिए।

पूड़ी दो प्रकार की होती है—(१) छोटी और (२) बड़ी। दैनिक भोजन के लिए जो पूड़ी बनायी जाती है वह बहुत पतली और छोटी होती है। इसे छोटे से चकले पर 'बेलन' से 'बेल' कर पकाते है। किसी विशिष्ट व्यक्ति या अतिथि के घर आने पर उसके भोजन के लिए आटे मे खूब घी मिलाकर या मलकर जो पूड़ी पकायी जाती है वह बड़ी मुलायम होती है। यह 'खस्ता पूड़ी' कहलाती है।

परन्तु, विवाह आदि अवसरो पर 'भोज' (दावत) करने के लिए जो पूड़ी पकायी जाती है वह बहुत बड़ी और लम्बी चौडी होती है। यदि पुरइन के पत्ते या हाथी के कान से उसकी उपमा दें तो कुछ अनुचित न होगा। यह एक पूड़ी तौल मे एक पाव (१।४ सेर) से भी अधिक होती है। इसे हलुवाई काठ के पीढ़े या लम्बे-चौड़े [illegible] पर [illegible] से बेलकर पकाते है। कुछ अपने दोनो हाथो से 'लोइया' को हाथो पर पटक-पटककर बड़ा बना देते है। परन्तु काठ पर बेली गयी पूड़ी बड़ी

सुडौल और सुन्दर होती है। इन पूडियो को 'जोडियाकर' एक साथ रखते जाते है और इसी तरह से उन्हे पत्तल मे भी परोसते है। साधारणतया दो से अधिक पूडी कोई नही खा सकता। पुरइन के पत्ते के समान लम्बी-चौडी तथा मोटी इन पूडियो को देखकर बडे-बडे भोजन-भट्टो के भी छक्के छूट जाते है। ये पूडियाँ देखने मे तो भद्दी और मोटी अवश्य लगती है, परन्तु ये कई दिनो तक मुलायम बनी रहती है और खराब नही होती।

'भोज' खानेवाले ब्राह्मण लोग इन पूडियो पर बहुत 'चोट करते' है, अर्थात् बडे प्रेम से खाते है। वे इससे अपने पेट की पूर्ति करने के लिए यदि किसी दूर स्थित गाँव से भी निमन्त्रण आता है, तो वहाँ भी पहुँच जाते है। इस सम्बन्ध मे एक कहावत प्रचलित है कि —

"चिउडा दही बारह कोस।
लुचुई अठारह कोस।।"

अर्थात् ब्राह्मण चिउडा दही खाने के लिए बारह कोस, अर्थात चौबीस मील तक जाते है। और यदि कही पूडी खाने का निमन्त्रण मिल गया, तो अठारह कोस, अर्थात् छत्तीस मील भी पैदल चले जाना उनके लिए कोई कठिन काम नही है। आजकल भी पाँच-सात मील तक पूडी खाने के लिए जानेवाले ब्राह्मण अक्सर पाये जाते है।

भोजपुरी मे पूडी को 'लुचुई' कहा जाता है। इसे 'सकुली' भी कहते है, जो सस्कृत के 'शष्कुली' का अपभ्रश रूप है। तुलसीदास ने 'सकुली' शब्द का प्रयोग इस प्रकार किया है —

"एक दिन तुलसी वे रहे, माँगत मिले न चून।
एक दिन तुलसी वे भये, सकुली दूनो जून।।"

बँगला मे भी पूडी को लुचुई ही कहा जाता है। अतिथि का सम्मान प्राय पूडी खिलाकर किया जाता है। यदि किसी व्यक्ति को अपने घर पर दावत देनी है, तो प्राय उसे पूडी ही खिलायी जाती है। भोजपुरी क्षेत्र मे चूकि पूडी को पक्का खाना माना जाता है, अत ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य, किसी के भी घर नि सकोच रूप से इसे खा सकते है तथा उन्हे खिलाया जा सकता हे। पक्का भोजन होने के कारण किसी के घर पूडी खाने मे कोई विशेष विचार या स्पृश्यास्पृश्य का तर्क नही करना पडता।

परन्तु, पुराणपन्थी पण्डित लोग पानी से 'साने' गये आटे की पूडी को अवश्य ही अशुद्ध मानते है। अत वे इस प्रकार की पूडी को नही खाते। वे दूध से आटे को सानकर घी मे पकायी गयी पूडी को ही पवित्र समझते है। यदि दूध का अभाव हो, तो दही ही सही, उसी से आटा साना जाना चाहिए, तभी वह उनके लिए ग्राह्य होती है।[1]

घी के अतिरिक्त सरसो, तिल, बर्रे और 'कोइना' के तेल मे भी पूडी पकायी जाती है। परन्तु डालडा और वनसदा के आगे इन तेलो को इस काम के लिए अब कोई नही पूछता।

(२) कचौडी

पक्के भोज्य पदार्थो मे पूडी के बाद दूसरा स्थान कचौडी का है। दावतो मे पूडी के साथ कचौडी भी खाने के लिए परोसी जाती है। कुछ लोग कचौडी के बडे प्रिय होते है और दजनो की सख्या मे इसे खाते है। गर्मागम कचौडी बडी स्वादिष्ट लगती है। घी की कडाही मे जब पककर कचौडी बादामी रग की हो जाय, खिलकर छोटे गेद की आकृति धारण कर ले, तब समझना चाहिए कि यह अच्छी तरह से पक गयी है।

साधारणतया कचौडी उडद की दाल को पीसकर बनायी जाती है। सिल पर पीसी गयी इस दाल को 'पिट्ठी' कहा जाता है। इस पिट्ठी को कडाही मे घी, मिर्चा और जीरा डालकर भूना जाता है। फिर इसे आटे के भीतर डालकर उसका लोइया बनाते है और घी की कडाही मे डालकर पकाते है। कभी-कभी उडद की सूखी दाल को जाँत मे पीस लेते है। यह पीसा गया चूर्ण 'धुआँस' कहलाता है। फिर इसे पानी से सानकर आटे मे भर देते हैं।

१ मेरी भतीजी के विवाह में कुछ पाखण्डी पण्डित ९-१० बजे रात को आये। उनके लिए क्या भोजन बनाया जाय, यह बडी समस्या उत्पन्न हुई। उन्होने बताया कि दूध में सनी और घी में पकायी गयी आटे की पूडी को ही वे खा सकते हैं। परन्तु, गाँव में दस बजे रात को दूध कहाँ मिलता, अत दही में आटे को सानकर पूडी पकायी गयी। पण्डितो ने डटकर खाया, परन्तु कहा कि पूडी का स्वाद खट्टा है। पता लगाने पर मालूम हुआ कि जिस दही से आटे को साना गया था, वह कई दिन की बासी और बहुत ही खट्टी थी। परन्तु अब लाचारी थी।

उडद की दाल के अतिरिक्त आलू, मटर, बथुआ [illegible] है। [illegible] मटर को सिल पर पीसकर उसमे नमक, गर्म मसाला आदि मिलाकर [illegible] है। आलू और बथुआ के साग को इसी प्रकार आग पर उबालकर, मसाला [illegible] भरी कडाही मे कचौडी नही 'छानते', बल्कि उसे तवे पर पकाते हैं और [illegible] मे थोडा घी लगा देते है। यही गरीबो की कचौडी है।

(३) पूरी

पूरी को 'दालभरी पूरी' भी कहा जाता है। यह पूरी [illegible] किया जा चुका है। पूरी खाने मे बडी स्वादिष्ट होती है। खासकर [illegible] दही भी मिल जाय, तब इसके स्वाद का क्या कहना। जब कोई नयी [illegible] करके पूरी बनायी जाती है। स्त्रियो का विश्वास है कि जिस प्रकार पूरी [illegible] भरी पूरी रहे, इसीलिए उसके स्वागत मे पूरी का पकाना आवश्यक समझा जाता है। [illegible] चौथे दिन जो 'चौथारी' होती है, उस दिन कुटुम्ब के भाई [illegible] पूरी खिलाने का ही 'मेधा' (प्रथा) है। इसके अतिरिक्त कुछ त्योहारो [illegible] के दिन 'माता दाई' को तेल मे बनायी गयी पूरी 'चढायी' जाती है। [illegible] भी पूरी पकायी जाती है। पूरी को पकाकर उसमे घी 'चभोर' (चुपड़) [illegible] है। बच्चो के एक लोरी-गीत से ज्ञात होता है कि पूरी मे घी खूब लगाया जाता है और [illegible] बच्चे निश्चय ही मचल उठते है। गीत इस प्रकार है —

> **"लाई लाई पुरिया, घी में चभोरिया।**
> **हम खाई कि भउजी खाई,**
> **भउजी पतरेंगिया।।"**

सचमुच घी मे 'चभोरी' गयी पूरी का बच्चे अपनी भावज [illegible]

चने की दाल को पानी मे डालकर पहिले आग पर उबालते है। [illegible] सिल पर पीसते है। फिर इसमे नमक, मिर्चा, खटाई, गर्म-मसाला आदि डालते है। [illegible] बनाकर [illegible] पर बेलते है। फिर घी से भरी कडाही मे इसे डालकर 'छानते' या पकाते है। पूरी पकाने के प्रधान तीन तरीके है -

(१) तवे पर पकाना।

(२) कुछ देर तवा पर, फिर कडाही मे पकाना।

(३) केवल कडाही मे ही पकाना।

निधन व्यक्ति पूरी को तवे पर ही पकाते है। जब पूरी [illegible] (मैला तथा छोटा कपडा) या चम्मच से थोडा घी लगा देते है। इस प्रकार पूरी तैयार हो जाती है। दूसरे लोग पहिले तवे पर ही पूरी [illegible] पकाते हैं, और जब वह प्राय पूरी पक चुकती है, तब उसे घी की कडाही मे डाल देते है, [illegible] हो जाती है। पूरी को पकाकर फिर कडाही मे डालने से घी कम खर्च होता है। यह पूरी बनाने का मध्यम मार्ग है। परन्तु शौकीन या धनी लोग पहिले पूरी को सीधे घी से भरी हुई कडाही मे डाल देते है और उसी मे उसे [illegible] है। कडाही के घी मे [illegible] पकायी गयी पूरी इतनी मुलायम होती है कि इसे बुड्ढे भी अपने पोपले मुँह मे [illegible] है। इस भोजपुरी पूरी के आगे शहरी लोगो के पराठे, पूरियाँ सब बेकार है। पूरी के दिन 'रसियाव' भी पकाया जाता है क्योंकि दोनो का बडा मेल है। कोहडे की तरकारी इसके स्वाद को और भी बढा देती है। यदि पूरी, रसियाव और कोहडे के शाक का संयोग एकत्र मिल जाय, तो कौन बिना पेटभर खाये उसे छोड सकता है?

(४) पराठा

पश्चिमी जिलो मे पराठे को 'परावँठे' कहते हैं, जिसे खाने का वहाँ आम रिवाज है। साधारण स्थिति का व्यक्ति भी शामको 'परावँठे' ही खाता है, चाहे घी से उसका सम्पर्क शून्य ही क्यो न हो। पूर्वी क्षेत्रो मे 'पराठे' को नियमपूर्वक प्रतिदिन खाया जाता हो, ऐसी बात नही है। परन्तु, शौक मे कभी-कभी इसे बनाया जाता है। 'लोइया' को बेलकर, उसे तीन

चार बार उलट-पुलटकर मोडते है। इसके प्रत्येक पत मे घी लगाते है। फिर इसकी तिकोनी आकृति बनाकर तवे पर डाल देते हे। फिर उस पर घी डालकर इसे धीरे-धीरे पकाते है। जब पककर 'पराठा' बादामी रग का हो जाता है, तब उसे उतार लेते है। कुछ स्त्रिया तिकोने के स्थान पर गोल, वृत्ताकार पराठा पकाती है। परन्तु किसी भी रूप मे पकाया जाय, पराठे का स्वाद बडा ललचाने वाला होता है। दिल्ली का पराठा बडा प्रसिद्ध हे, जहाँ चाँदनी चौक की 'परावँठे वाली' गली मे विशेषकर यही बिकता है।

कुछ लोग आटे मे थोडा नमक, अजवाइन, मगरैल आदि डालकर पराठा पकवाकर खाते है। नमकीन होने से इसका स्वाद और अधिक हो जाता है। घी मे पकायी गयी पूरी से पराठे का स्वाद कही अधिक होता है। इसीलिए यह बडा लोकप्रिय भोजन हो गया है।

(५) मकुनी

यह विशेषकर जाडे के दिनो मे खायी जाती है, क्योकि इसकी तासीर गम होती है। 'मकुनी', 'फुटेहरी' और 'बाटी' ये तीनो ही एक ही श्रेणी के भोजन है। चने के निखालिस सत्तू—जिसे 'सतुई' कहा जाता हे—मे नमक, मिर्चा, खटाई, अजवाइन, मगरैल आदि को डालकर उसको पानी से कडा सानते है। फिर उसमे सरसो का तेल डालकर उस 'सतुई' को हाथो से 'मीस' कर 'भुरभुरा' बना लेते है। इस सत्तू को आटे की लोइया के भीतर भर देते है और फिर चकले पर बेलकर तवा के ऊपर डाल देते है। पक जाने पर आग पर रोटी की ही भाति सेकते है। सेकने पर यह गेद की तरह 'फूल' (खिल) जाती है। फिर इसमे घी लगाकर खाते है।

कुछ स्त्रियॉं तवे पर ही घी लगाकर मकुनी को 'फुलाती' है, परन्तु वह उतनी नही 'फूलती', जितना आग पर सेकी गयी मकुनी। मकुनी जितनी छोटी और मोटी पकायी जाती हे, वह उतनी ही अधिक 'फूलती' है। यह गरीबो की कचौडी है।

(६) फुटेहरी

साधारण जनता मे इसे खाने की बडी प्रथा है, बडा प्रचार है। फुटेहरी भोजपुरी जनता के माग का पाथेय है। यह उनकी यात्रा का अनन्यतम साधन और सामग्री है। फुटेहरी भी मकुनी की ही भाति बनायी जाती है, परन्तु थोडा अन्तर है। फुटेहरी के सत्तू मे नमक, मिर्चा, खटाई, अजवाइन आदि डालकर आटे की लोइया बनाकर इसके भीतर इस सत्तू को भर देते है। फिर उस लोइया की गोल आकृति बनाकर उसे दहकते हुए उपले—जिसे भोजपुरी मे 'गोइठा' कहा जाता है—के आँच पर रख देते हैं। धीरे-धीरे आँच के लगने से जब यह फुटेहरी बीच से फट जाती है, तब समझा जाता है कि अब यह अच्छी तरह से पक गयी। फिर उसकी राख को झाडकर, उसमे घी लगाकर खाते हे। इसको पकाने के लिए न तो किसी बतन की आवश्यकता पडती है और न खाने के लिए किसी पात्र की। रास्ते मे जहा-कही पडाव डाला, वही बिना किसी झझट के फुटेहरी बना लिया। इसीलिए इसका प्रचार अधिक है।

(७) बाटी

कुछ लोग आटे मे सत्तू के स्थान मे गुड भरकर पकाते है। जहाँ गुड भी उपलब्ध नही है, वहा केवल आटे की मोटी-मोटी लोइया बनाकर उपले पर रखकर पकाते है। इसे 'बाटी' कहा जाता है। इसे दाल के साथ खाने मे आनन्द आता है। कुछ लोग हाथो से पीटकर मोटी रोटी को उपले पर पकाते है, जिसे 'लिट्टी' कहते है। फुटेहरी, बाटी, लिट्टी ये सभी भोजन यात्रा मे बडे उपयोगी होते है, क्योकि इन्हे बडी आसानी से बनाया जा सकता है।

(८) पूआ

भोजपुरी जनता का सर्वोत्कृष्ट, सवश्रेष्ठ और सबसे अधिक सुस्वादु भोजन 'पूआ' है। इसे सस्कृत मे 'अपूप' कहते है। प्राचीन भारत मे कुछ ऐसे पर्वों का उल्लेख मिलता है, जिस दिन केवल पूआ ही खाया जाता था। ऐसे पर्वो को 'अपूपमय पव' कहते थे। इससे ज्ञात होता है, पूआ खाने की प्रथा अत्यन्त प्राचीन है। पूर्वी जिलो मे आज भी अनेक पर्वो के दिन, जिसमे 'अनन्त चतुर्दशी' प्रधान है, प्रधानतया केवल पूआ ही भोजन के व्यवहार मे लाया जाता है। इस सम्बन्ध मे एक कहावत प्रसिद्ध है कि —

"कि पेट भरे छठिया माय।
कि पेट भरे अनतवा माय॥"

अर्थात् या तो छठी माता के दिन ही पेट भरना है अथवा [illegible] भरपेट खाने को मिलता है। भोजपुरी लोगो का यह उतना प्रिय भोजन है [illegible] पडती है। बच्चो के एक गीत मे इसका उल्लेख इस प्रकार से पाया जाता है —

"अरर बरर पूआ पाके ला।
चीलर खोंइछा नाचे ला॥" आदि

पूआ को बनाने की विधि

पहिले आटे मे, अन्दाज से, थोडा पानी डालते है। फिर उसमे [illegible] आटे को हाथ से बहुत देर तक 'फेंटा' (मिलाया) जाता है। जब आटा [illegible] उसमे [illegible] गरी, छुहारा, पिश्ता, चिरौंजी आदि मेवा डाल दिया जाता है। कुछ लोग [illegible] उसे 'फेंटते' है। इस प्रकार आटा, चीनी, दूध, पानी, मेवा आदि [illegible] पदार्थ तैयार किया जाता है, उसे 'लोरी' कहते है। यह 'लोरी' न तो बहुत पतली [illegible] ही दशाओ मे पूआ अच्छा नही बनेगा।

घी[1] से भरी कडाही मे इस लोरी को [illegible] आँच पर पकाया जाता है। 'छनवटे' से इसे कडाही मे उलटते-पुलटते भी रहते है, [illegible] जब यह कुछ ललाई लिये हुए दिखाई पडे, तब समझना चाहिए कि पक गया और उसे कडाही मे से निकाल लेना चाहिए।

पूआ बनाना बडी चतुरता का तथा कुशलता का काम है। 'गिहिथिन' ([illegible] प्रवीण) स्त्रियाँ ही इसे पका सकती है। यह फूहड स्त्री के वश की बात नही है। इसीलिए [illegible] बूढी और अनुभवी स्त्रियाँ ही करती है। 'पूआ पर चीनी खाना' भोजपुरी का एक मुहावरा है जिसका अर्थ है [illegible] गुण की वृद्धि होना। इसीसे पूआ की श्रेष्ठता तथा उत्कृष्टता का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। पूआ वास्तव मे भोजपुरियो का राजसी भोजन है, उनका सर्वोत्कृष्ट भोज्य पदार्थ है।

(९) ठेकुआ

'ठेकुआ' को भोजपुरियो का पाथेय कहे, तो कुछ अत्युक्ति न होगी। यह वह भोज्य पदार्थ है, जिसे यात्रा मे साथ लेकर जा सकते है, क्योंकि दो-तीन दिन बीत जाने पर भी यह खराब नही हो सकता। पक्वान्नो (पकवानो) मे जहाँ पूआ अपनी उत्तम सुस्वादुता के लिए प्रसिद्ध है, वहाँ 'ठेकुआ' टिकाऊपन (अधिक दिन तक भी खराब न होना) के लिए विख्यात है। किसी सम्बन्धी अथवा बन्धु-बान्धव के घर यदि पक्वान्न भेजना होता है उस समय ठेकुआ की ही शरण मे जाना पडता है।

आटे मे गुड या चीनी का रस डालकर उसे खूब कडा सानते है। फिर उस 'मॉड' की [illegible] लोइया बनाते है और फिर उसे चकले पर बेलकर घी की कडाही मे डाल देते है। जब यह खूब अच्छी तरह से कडाही मे 'फूल' जाता है, तब इसे निकाल लेते है। ठेकुआ को पकाने के लिए मन्द आँच और धैर्य की आवश्यकता होती है। कुछ लोग दूध मे आटे और चीनी को सानकर ठेकुआ पकाते हैं, जो बडा स्वादिष्ट होता है।

(१०) चोथा

इसके पकाने का तरीका बडा आसान है। आटे मे चीनी और पानी डालकर उसे खूब फेंटते है। जब इसकी पतली 'लोरी' तैयार हो जाती है, तब तवे पर घी लगाकर उस पर इसे फैला देते है। जब यह थोडा पक जाता है तब छनवटे की सहायता से इसे तवे पर ही दूसरी ओर उलट देते हैं। फिर घी डालकर इसे अच्छी तरह से पकाते है। पश्चिमी जिलो मे इसे 'चीले' कहते है।

(११) बहिरवरी

यह वह पक्वान्न है, जो सगे-सम्बन्धियो के घर भेजा जाता है। अपनी विवाहिता पुत्री के पास उसकी माता किसी व्रत

---

१ पूआ को गरीब आदमी तेल में पकाते हैं, जिसका वर्णन लोक-गीतों मे अनेक स्थानों मे पाया जाता है।

या त्यौहार के अवसर पर दहिरवरी पकाकर भेजती है। आट को गुड के रस मे मिला देते है। फिर उसे एक-दो दिन तक यो ही पडा रहने देते है। जब वह 'बजबजाने' लगता है, तब उस आटे को फिर खूब फेटते है। जब इसकी लोरी गाढी तैयार हो जाती है, तब इसे घी की कडाही मे डाल देते है। थोडी देर मे गोल-गोल दहिरवरी उस कडाही मे खिलती हुई नजर आती है। दहिरवरी की विशेषना यह है कि इसका आटा एक-दो दिन सानने के बाद बनाया जाता है। जितना ही सने हुए आटे मे 'खमीर' पैदा किया जाता है, दहिरवरी उतनी ही अधिक फूलती है। इसकी आकृति टेनिस के गेद की तरह गोली तथा बडी होती है। परन्तु होती है यह बहुत मुलायम। बूढे भी इसे बडी आसानी से खा सकते हैं। यह भोजपुरी भाइयो का बडा ही 'विशेष' पक्वान्न हे, जो सम्भवत अन्य प्रदेशो मे नही पाया जाता।

(१२) महुँअरि

यह आटे और महुआ को मिलाकर पकाया जाता है, इसीलिए इसे 'महुँअरि' कहते हे। हरे महुआ को सिल पर खूब बारीक पीसते है। फिर उसे आटे मे मिलाकर दोनो को खूब गूथते (सानते) है, जिससे दोनो बिल्कुल मिल जायँ। फिर आटे को कडा 'सान' कर के लोइया बनाते है और फिर उसे तवे पर डालकर रोटी की तरह पकाते है। कुछ स्त्रियाँ तवे पर महुँअरि को आधा पकाकर फिर उसे कडाही मे डालकर तेल (घी मे नही) मे पकाती है। तेल मे पकायी गयी महुँअरि पहिली की अपेक्षा अधिक स्वादिष्ट होती है।

यदि हरा महुआ उपलब्ध नही होता, तो सूखे महुए को पानी मे भिगो दिया जाता है। जब यह खूब भीगकर 'फूल' जाता हे, तब इसे मिल पर पीसते है और इसे आटे मे सानकर इसकी 'महुँअरि' पकाते है। कुछ स्त्रियाँ महुआ को सिल पर खूब पीसकर उसे कपडे मे निचोडकर केवल उसका रस निकाल लेती है और इसी रस की सहायता से आटे को सानकर 'महुँअरि' बनाती है। जिन लोगो के घर मे गुड और चीनी का नितान्त अभाव है, परन्तु घर के 'कोठिला' मे महुआ भरा पडा है, वे ही लोग 'महुँअरि' बनाकर खाते है। यह प्रधानतया गरीब लोगो का, निम्नवग के व्यक्तियो का भोजन है। साधारण जनता का यह विश्वास है कि महुआ मे यदि गुड मिला दिया जाय, तो वह मदिरा बन जाता है अथवा मद्य की भाति अपवित्र माना जाता है। इस सम्बन्ध मे एक मूर्खा पण्डितानी की कथा प्रसिद्ध है, जिसने अपनी चतुराई दिखाने के लिए महुए मे गुड डालकर 'महुँअरि' पकाया था। जब पण्डित जी को 'महुँअरि' खाते समय उसके अत्यधिक मीठी होने के कारण का पता चला, तो उन्होने अपनी स्त्री को बहुत डाँटा-फटकारा।

(१३) दोहथी

ऐसा ज्ञात होता है कि इस पदाथ को दोनो हाथो से पीटकर, उसे बडा बनाकर पकाते है, अत इसका नामकरण 'दोहथी' हो गया। इसके पकाने का प्रकार यह है कि आटे की दो लोइयो को लेकर उनमे घी लगाकर एक को दूसरे से चिपका देते हे। फिर इन दोनो से सम्मिलित लोइया को चकले पर बेलने से खूब पतला और बडा बेलते है। जितना बडा तवा होता है, उतनी ही बडी 'दोहथी' बेली जाती है। रोटी की ही भाति इसे तवे पर पकाते है। परन्तु इसे आग मे नही फुलाते। यह तवे पर ही 'फूल' जाती है। फिर इसके पर्तों (पपरा) को अलग-अलग कर देते है और इसमे घी चुपडकर खाते है। दोहथी बडी मुलायम और पतली होती है, अत रोटी से इसका स्वाद कुछ अधिक अच्छा होता है।

(१४) पिठौरी

आटे को पानी मे 'सान' कर अगुलि के बराबर मोटी और लम्बी उसकी पिण्डी या आकृति बनायी जाती है। जब दाल आधी 'चुर' (पक) जाती है, तब आटे की बनायी गयी इन पिण्डियो को दाल मे छोड देते है। ये दाल मे ही अच्छी तरह से पकती है। जब दाल गाढी हो जाती है और आटे की ये पिण्डियाँ अच्छी तरह से पक जाती है, तब इन्हे थाली मे परोसकर उसी दाल की सहायता से खाया जाता है। इसी को 'पिठौरी' कहते है। जहा रोटी पकाने का कोई साधन—तवा, चकला, बेलना आदि उपलब्ध नही होता, वहाँ दाल मे ही पिठौरी पकाकर पेट को भरा जाता है।

(१५) गोझा

गोझा की आकृति सेमल के फल की तरह लम्बी और मोटी होती है। सम्भवत 'ओझा' उपाधिधारी ब्राह्मणो को यह भोजन बहुत प्रिय है, जिसका उल्लेख बालको के निम्नाकित गीत मे पाया जाता है —

"ओझा खाले गोझा, ओझाइन खाली पूरी।
ओझा के लडिकवा, जनम के ठूरी।।"

एक त्यौहार के अवसर पर गोझा खाने के लिए विशेष रूप से बनाया जाता है। गोझा दो प्रकार का होता है—

(१) चने की—उबालकर पीसी हुई—दाल का भरकर बनाया गया।

(२) खँडदरा।

पहिले चने की दाल को उबालकर सिल पर पीस [illegible] है। [illegible] धनिया जीरा और गरम-मसाला डालते है। आटे की 'लोइया' के भीतर उस पीसी हुई [illegible] भर [illegible] है। [illegible] लोइया की आकृति को सेमल के फल की भाँति बनाते है। फिर उस मटुकी में रखकर पानी में उबाला [illegible] है। [illegible] पक जाता है तब पानी में से बाहर निकाल लेते हे। इस प्रकार 'गोझा' तैयार हो जाता है। [illegible] की आकृति [illegible] भाप की सहायता से ही पकाया जाता है।

'खँडदरा' 'गोझा' वह हे, जिसमे चने की उबाली गयी [illegible] भरा जाता। [illegible] दाल को ही लोइया के भीतर भर देते है। परन्तु दोनों प्रकार के गोझा [illegible] है। [illegible] कौन अधिक स्वादिष्ट होता हे, यह भी बताना कठिन है। सम्भवतः पीसी हुई [illegible] बाजी मार ले जाय। यह गोझा भी 'विशेष' भोजपुरी भोजन है।

(१६) हलुआ

हलुआ वह भोजन है, जिसे पोपले मुँहवाले बूढ़े भी बड़े शौक से खाते है। [illegible] कड़ाही में थोड़ा घी डालकर आटे को मन्द-मन्द आँच पर भूना जाता है। जब आटे में सोंधाई आ जाती है [illegible] अन्दाज से चीनी और पानी डाल दिया जाता है। फिर 'कलछुल' या 'पल्टा' से बार-बार आटे को चलाया [illegible] है। [illegible] जब पानी जल जाता है और हलुआ कडा हो जाता हे, तो उसे चूल्हे से उतार लेते है। कुछ स्त्रियाँ हलुआ बनाते समय इसमें गरी और छुहारा भी डाल देती है, परन्तु इससे स्वाद मे कोई वृद्धि नही होती। गाँवों में सूजी का हलुआ बहुत कम बनता है और इसके खाने वाले शौकीन व्यक्ति ही होते हैं। पानी की जगह दूध डालकर बनाया गया हलुआ बड़ा स्वादिष्ट होता है।

(१७) काँची

यह गरीब स्त्रियों का भोजन है। यह भी हलुआ की ही भाँति बनाया जाता है। परन्तु इसमें आटे को घी मे नही भूना जाता। सूखी कडाही मे आटा डालकर उसे भूनते है। फिर चीनी के स्थान पर गुड़ का रस [illegible] डाल दिया जाता है। फिर कलछुल से आटे को बराबर चलाते रहते है। कड़ा हो जाने पर इसे कड़ाही में से निकाल लेते है। यदि एक वाक्य मे कहना चाहे, तो कह सकते है कि घी और चीनी से रहित हलुआ का ही दूसरा नाम काँची है। यह मीठा अवश्य लगता है, परन्तु इसमे सुस्वाद का अभाव रहता है। सद्य प्रसूता स्त्रियो को काँची खाने के लिए दी जाती है परन्तु इसमें 'ओछवानी' भी पडी रहती है। यह पचने मे गरिष्ठ होता है, फिर भी नव प्रसूता स्त्री (जच्चा) को इसे विशेष रूप से क्यों खिलाते हैं, यह बात समझ मे नही आती।

(१८) लपसी

काँची और लपसी मे कोई विशेष अन्तर नही है। यह भी काँची की ही भाँति आटे में गुड़ और पानी डालकर बनायी जाती है। काँची कडी होती है, परन्तु लपसी पतली और गीली रहती है। जब चावल अधिक पानी के कारण अधिक गीला हो जाता है, तो यह कहा जाता है कि यह भात क्या है लपसी है (ई भात का ह लपसी ह)। इस वाक्य मे लपसी के गीलेपन की ओर सकेत किया गया है। काँची और लपसी—ये दोनो ही निर्धन तथा निम्नवर्ग के लोगों के भोजन है। जौ के आटे की भी लपसी बनायी जाती है, जिसे सस्कृत मे 'यवागू' कहते है।

(१९) अघरवटा

'अघरवटा' भी ठेकुआ की भाँति ही पकाया जाता है तथा दोनों के स्वरूप तथा आकृति में कोई अन्तर नहीं होता। दोनो मे पार्थक्य केवल इतना ही है कि जब गुड़ से मिश्रित कड़े आटे को एक विशेष प्रकार के साँचे—जिस पर सूर्य के रथ के चक्र की आकृति बनी रहती है—से अंकित कर घी में पकाते है तब उसे अघरवटा कहा जाता है परन्तु 'ठेकुआ' में कोई आकृति अंकित नहीं की जाती। कार्तिक शुक्ल षष्ठी—जिसे सूर्यषष्ठी भी कहते है—के दिन छठी माता की पूजा अघरवटा से की जाती है।

(२०) लाड

आटे को कडा सानकर इसकी गोल-गोल, छोटी-छोटी पिण्डियाँ बनाकर घी मे पकायी जाती है। फिर गुड का 'पाग' बनाकर उसमे इन पिण्डियो को डाल देते है। रविवार व्रत के उद्यापन मे लाड का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता हे। यह खाने मे मीठा होता है।

(५) अनुच्छेद—चना

भोजपुरी खाद्य पदार्थों मे चना का महत्त्वपूण स्थान है। इसका उपयोग अनेक प्रकार से किया जाता है। इसी चने का सत्तू बनाया जाता है, जिसका इस क्षेत्र मे बडा प्रचार है। इसी सत्तू से 'मकुनी', 'फुटेहरी' आदि भोज्य पदाथ तैयार किये जाते है। कुछ लोग चने को पानी मे भिगोकर प्रात काल जलपान करते है। दूसरे लोग इसे तेल मे तलकर इसकी 'घुघुनी' बनाते हे, जो बडी स्वादिष्ट होती है। चने को 'चकरी' मे दलकर इसकी दाल तैयार की जाती है, जो प्राय विवाह के अवसर पर 'समधी' को विशेष रूप से खिलायी जाती है। इसकी दाल को उबालकर 'गोझा', 'दलपुरी' आदि बनाया जाता है।

चने की दाल को जब चक्की मे पीस दिया जाता है, तब उसे 'बेसन' कहते है। इस 'बेसन' के द्वारा अनेक प्रकार की सुस्वादु वस्तुएँ बनायी जाती है। 'पपरा' इसी से बनता है। इसके अतिरिक्त 'सेव', 'पकौडी', 'बचका', 'बरी' आदि अनेक नमकीन सुस्वादु पदाथ इससे तैयार किये जाते है। अनेक प्रकार की मिठाइयाँ भी बेसन से निर्मित की जाती है। 'मोतीचूर', 'बुनिया' और 'बेसन का लड्डू' इसी के प्रसाद-रूप है। चने के द्वारा जितने अधिक खाद्य पदाथ तैयार किये जाते हे, उतना अन्य किसी अन्न से नही। यह भोजन, जलपान, मिठाई, 'पकौडी' आदि अनेक रूपो मे प्रयुक्त होता है। यही कारण है कि चावल और गेहूँ के पश्चात् चना ही अन्नो मे श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करता है।

सत्तू

महत्त्व तथा विशेषता

यदि 'सत्तू' को भोजपुरी जनता का राष्ट्रीय भोजन कहे, तो कुछ उत्युक्ति न होगी। शायद ही ऐसा कोई गाँव मे रहने-वाला भोजपुरिया हो, जिसने सत्तू का स्वाद न लिया हो। यह इतना प्रचलित और प्रसिद्ध भोजन है कि सभी इससे अच्छी तरह से परिचित है। गर्मी की दुपहरी मे अपने खेतो मे काम करनेवाले किसान की 'उदरदरी' की यह पूर्ति करता है। धुँआ-धार फैक्ट्रियो मे काम करनेवाले 'भइयालोग' कहे जानेवाले 'भोजपुरियो' की पेट की ज्वाला इसी के द्वारा शान्त होती है। दिन भर लकडी चीरनेवाला मजदूर और पालकी ढोनेवाले कहार इसी को भरपेट खाकर चैन की वशी बजाते है। अपनी सुदूर और बीहड यात्रा के माग पर जानेवाला भोजपुरिया जवान इसी को खाकर थकान का अनुभव नही करता। अत जहाँ भी देखिए 'सतुआ बाबा' का अखण्ड साम्राज्य है, विस्तृत प्रचार है।

सत्तू सच्चे अथ मे भोजपुरी जनता का पाथेय है। यही उनका बल और सम्बल है। जहाँ भोजन बनाने का कोई साधन न हो—'लोटा' 'थाली' 'बटुआ' 'कलछुल' तथा 'तवा' सभी वस्तुओ का अभाव हो—जहाँ कोई भी भोजन की सामग्री न मिलती हो, वहाँ ऐसे गाढे दिनो मे 'सतुआ' ही काम आता है। इसको बनाने मे न तो किसी बतन की आवश्यकता होती है और न चूल्हा-चौका की जरूरत। यह वह 'रेडीमेड' भोजन है, जिसका उपयोग जब चाहे और जहाँ चाहे कर सकते है।

सत्तू—जिसे भोजपुरी मे 'सतुआ' कहते है—खाने की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। वैदिक आर्य सत्तू खाते थे या नही, यह तो मुझे नही मालूम, परन्तु इतना निश्चित है कि पतञ्जलि के समय (ईसा पूव तृतीय शताब्दी) मे सत्तू खाने की प्रथा अवश्य प्रचलित थी। उन्होने महाभाष्य मे इसका उल्लेख "सत्तून् पिब देवदत्त!" लिखकर किया है। महाकवि श्रीहर्ष ने लिखा है कि जाँत मे पीसे जाते हुए सत्तू की सोधी-सोधी गन्ध पथिको को अपनी ओर आकर्षित करती थी—

"प्रतिहट्टपथे घरट्टजात्
पथिकाह्वानदसक्तुसौरभै।"

इसी प्रकार से सस्कृत के अन्य ग्रन्थो मे भी इसका उल्लेख पाया जाता है।

भोजपुरी समाज मे भोजन के रूप मे अत्यधिक प्रचलित होने के कारण इसकी प्रतिध्वनि लोक-गीतो मे भी सुनाई

पडती है। अपने मामा को बुलाने के लिए परदेश जानेवाला कोई भानजा अपनी मामी से कहता है कि आज मुझे दूर देश की यात्रा पर जाना है, अत मेरे लिए बारीक सत्तू पीस दो। गीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है —[1]

"पीसहु आवहु ऐ मामी, आरे जीरवा रे सतुइया।
हम जइबो मामा के लियावनु रे की।।"

ससुराल के कष्टो का वर्णन करती हुई कोई स्त्री कहती है कि ससुराल मे साग और सत्तू खाने को मिलता है, परन्तु मायके मे भात। अत अब मायके मे ही रहूगी —[2]

"ससुरा में मिलेला साग, सतुइया, नइहरवा में धाने के भात।"

बनाने की विधि

यो तो सत्तू अनेक अन्नो से बनाया जाता है, परन्तु चने और जौ का सत्तू ही सबसे अधिक प्रसिद्ध है। पहिले चने को भाड मे भुनवा लेते है। फिर इसे सूप से फटककर इसकी राख और भूसी अलग करते है। इसके बाद इसे चक्की मे पीसा जाता है। फिर चलनी से इसको चालते या छानते है और उसकी मोटी भूसी या छाल्ही को अलग रख देते हैं। फिर इसमे थोडा जौ का सत्तू—जो इसी प्रकार से बनाया जाता है—मिला देते है। इस प्रकार चना और जौ का मिला हुआ सत्तू भोजन का उपयोगी पदार्थ हो जाता है। केवल चने का जो बारीक सत्तू होता है उसे मैदा कहते है जिसे 'मकुनी' तथा 'फुटेहरी' बनाने मे प्रयुक्त किया जाता है।

खाने की विधि

सत्तू मे नमक मिलाकर उसे खाया जाता है। इसे और अधिक स्वादिष्ट बनाने के लिए कुछ लोग इसमे भूनकर पीसा हुआ जीरा भी डालते है। आधी थाली मे सत्तू को रखकर उसकी एक ऊँची मेड बना दी जाती है। फिर थाली के आधे भाग मे पानी डालकर सत्तू को उसमे घोलते है तथा थोडा नमक मिला देते है। पानी मे घोलकर पतले किये इस सत्तू को 'लिबरी' कहते है। सत्तू खाते समय लाल या हरे मिर्चे का होना अत्यन्त आवश्यक है। नमक और लाल मिर्चा सत्तू के अनन्य साथी है, जैसा कि इस उक्ति से स्पष्ट प्रकट होता है —

"सीतल[3] प्रसाद, रामरस,[4] लंका।[5]
भोजन करहु छाँड़ि सब संका।।"

'लिबरी' चूंकि पतली होती है, अत इसे लोग पीते है। फिर सत्तू मे अन्दाज से पानी डालकर उसे कड़ा 'साना' जाता है। इस कडे सत्तू के छोटे-छोटे टुकडे बनाये जाते है जिन्हे 'पिण्डी' कहते है। इस पिण्डी को लोग चटनी के सहारे या लाल मिर्चे की मदद से खाते है। सत्तू खाने के लिए यदि आम की अथवा इमली की चटनी मिल जाय, तो फिर क्या कहना है? सचमुच लाल मिर्चा और आम की चटनी—ये दोनो ही सत्तू के अभिन्न सहायक है।

सत्तू खाते समय गिलास अथवा लोटा से पानी नही पीया जाता। भोजन के बाद थाली मे ही पानी डालकर उसे पीते है। यही प्रथा है। यात्रा के मध्य मे, जहाँ सत्तू 'सानने' के लिए थाली उपलब्ध न हो वहाँ थाली का प्रतिनिधित्व तौलिया करती है, जिसे गाँवो मे 'गमछी' कहते हैं। किसी तालाब या नदी के किनारे बैठकर इसी 'गमछी' मे लोग सत्तू सानकर खाते है और खाने के पश्चात् उसे नदी मे धोकर साफ कर लेते हैं।

सत्तू एक ऐसा भोजन है, जो तुरन्त ही तैयार हो जाता है। अत इसे 'तुरन्ता' भी कहा जाता है। बलिया (उत्तर प्रदेश) मे ऐसी अनेक दूकानें दिखाई पडेंगी, जिनके आगे लम्बे-चौडे 'नाम पट्ट' पर लिखा हुआ है—'तुरन्ता भोजनालय।' इससे समझ लीजिए यहाँ सत्तू का बाजार गर्म है। इस भोजनालय के भीतर जाते ही थाली मे रखा सत्तू—जिसके साथ लाल मिर्चा और चटनी भी रहेगी—आपको भोजन करने के लिए मिलेगा। आरा और छपरा जिलो मे भी सत्तू का प्रचार है। चूंकि सत्तू मे नमक मिला रहता है, अत व्यग्य मे इसे 'नमकीन हलुआ' के नाम से भी पुकारते है।

१ डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय भोजपुरी लोकगीत, भाग १ (द्वितीय संस्करण), पृष्ठ ३२३।
२ वही, पृष्ठ ३७६।
३. सत्तू, ४. नमक, ५. लाल-हरा मिर्चा।

विभिन्न अन्नो के सत्तू

चने का सत्तू सबसे अधिक प्रचलित है, परन्तु इसके अतिरिक्त दूसरे भी अनेक अन्न है, जिनका सत्तू खाया जाता है, जैसे (१) जौ, (२) मटर, (३) मक्का, (४) लेतरी, और (५) जोन्हरी। इनमे से सभी अन्नो से सत्तू बनाने की प्रक्रिया यही है कि पहिले इनको भाड मे भुनवा लिया जाता है, फिर उसे जाँत या चक्की मे पीसते है। जौ का सत्तू स्वतन्त्र रूप से अकेले नही खाया जाता, बल्कि इसे चने के साथ मिलाकर खाते है।

मटर का सत्तू बहुत 'बादी' (वायुकारक) होता है। अत इसे केवल निम्नवग के गरीब लोग ही खाते है। 'लेतरी' और 'जोन्हरी' के सत्तू के सम्बन्ध मे भी यही बात समझनी चाहिए। लोगो का यह विश्वास है कि लेतरी का सत्तू खाने से आदमी लँगडा हो जाता है। मक्का का सत्तू बडा स्वादिष्ट होता है। इसमे घी और चीनी मिलाकर तथा पानी से सानकर लोग इसे बडे शौक से खाते है। गरीब लोग नमक की सहायता से इसका भोग लगाते है। मक्का बडा उपयोगी अन्न है। इसका सत्तू भी बनता है और आटा भी। इसके अतिरिक्त इसे भाड मे भुनवाकर 'भुजुना' के रूप मे भी प्रयोग किया जाता है। इसका भात भी बनता है, जिसकी चर्चा पहिले की जा चुकी है।

(६) अनुच्छेद—चना से बनाये जानेवाले अन्य भोज्य पदार्थ

पकौडी

जलपान के लिए अनेक प्रकार की 'पकौडियाँ' पकायी जाती है, जिनमे आलू, शाक, प्याज, चना आदि की पकौडियाँ अधिक व्यवहृत होती है। पहिले बेसन को पानी मे गाढा घोलते है, फिर उसमे मिर्चा, खटाई, गर्म-मसाला तथा नमक डालते है। इसके पश्चात् आलू को छीलकर उसे चाकू से गोला तथा पतला काटकर अथवा कद्दूकस मे पतले-पतले टुकडे कसकर बेसन मे डाल देते है। फिर बेसन से ओत-प्रोत आलू के इन टुकडो को कडाही मे थोडा तेल डालकर 'छानते' है। पककर पीला तथा कुछ लाल हो जाने पर इसे निकाल लेते है। यही आलू की पकौडी है। चने के शाक की पकौडी अच्छी बनती है। 'अगस्त' (वृक्ष-विशेष) तथा 'कोहडा' के फूलो की भी पकौडी बनायी जाती है, जिनमे पहिली अपने उत्तम स्वाद के द्वारा चित्त को प्रसन्न करनेवाली होती है।

चने को पानी मे भिगोकर फिर उसे थोडा-सा 'कूच' कर पकौडी बनाते है। कच्चा हरा चना और कच्चे मटर की पकौडी स्वाद मे अपना सानी नही रखती। 'लोनी' के साग की भी पकौडी अच्छी बनती है। प्याज खानेवाले इसके लिए प्याज का भी प्रयोग करते है।

प्रचुर मात्रा मे तेल के अभाव मे कडाही के स्थान मे तवे पर भी पकौडी पकायी जाती है। इसमे तेल बहुत थोडा लगता है और कामचलाऊ पकौडी तैयार हो जाती है। पकौडी खाने का प्रचार बढता जा रहा है और अब शहरो मे भी इसका साम्राज्य स्थापित हो गया है।

बजका, बरी, फुलौरा

कच्ची रसोई के ये तीनो ही अत्यन्त आवश्यक अग है। इनके बिना कच्चा भोजन पूर्ण नही समझा जाता। अब भी। किसी विशेष अतिथि या अभ्यागत को दाल-भात खिलाना होगा, तो उसके लिए इन उपर्युक्त वस्तुओ को भी बनाना पडेगा लडकी के विवाह मे समधी को भात खिलाते समय उसे 'फुलौरा' खिलाना वैवाहिक रीति-रिवाज का एक अनिवाय अवयव है। अत कच्चे भोजन के साथ इनका अटूट सम्बन्ध है।

(१) **बजका**—इसको बनाने की विधि प्राय वही है, जो पकौडी बनाने की है। लौकी का 'बजका' अधिक स्वादिष्ट होता है। लौकी को छीलकर, उसको गोलाई मे बहुत ही पतला काटते है। फिर उसे बेसन मे डालकर तेल मे पकाते है। इसी उत्पाद को 'बजका' कहा जाता है। लौकी के अतिरिक्त यह आलू का भी बनता है। आलू को गोलाई और थोडा-सा मोटा काट लेते है। फिर इसे पानी मे उबालते है। पूरा उबलने के पहिले ही इसे लेकर बेसन मे डालकर 'बजका' बनाते है। यह कच्चे आलू का भी बनाया जाता है, परन्तु वह उतना स्वादिष्ट नही होता। समधी से मजाक करने के लिए रूई को बेसन मे लपेटकर बजका बनाने की प्रथा है, जो 'चीमर' होने के कारण दाँत से टूटता ही नही। इस प्रकार अपनी शान मे 'चूर' समधी जी 'बेवकूफ' बनाये जाते है।

(२) **बरी**—यह बेसन से बनायी जाती है। यह दो प्रकार से तैयार की जाती है—(१) बेसन और (२)चने की दाल को तुरन्त पीसकर। पहिले बेसन मे थोडा-सा पानी डालकर इसे हाथ से खूब 'फेटते' है। जब फेटते-फेटते इसमे बुलबुले नकलने लगते है, तब यह समझना चाहिए कि यह तैयार हो गया। फिर इसमे गर्म-मसाला पीसकर डाल दिया जाता है। बाद

मे उस गाढे बेसन की गोल आकृति बनाते हुए उसे तेल से भरी कड़ाही में [illegible]। [illegible] 'बरी' तेल के ऊपर आ जाती है। फिर इसे 'छनवटे' से निकाल लिया जाता है। [illegible]।

इसके पश्चात इस गर्म बरी को पानी मे 'फूलने' के लिए डाल देते है। [illegible] इस पतली दही मे—जिसमे पीसा हुआ नमक और जीरा डाला गया रहता है—[illegible]। [illegible] अच्छी तरह से 'पी' लेती है। ऐसी बरी बडी मुलायम होती है।

दूसरे प्रकार की बरी चने की दाल को भिगाकर, फिर उसे सिल पर पीसकर [illegible]। [illegible] पीसी गयी दाल से बनायी गयी बरी, बेसन से बनायी गयी बरी की अपेक्षा अधिक स्वादिष्ट होती है। [illegible] आदमियों को खिलाने के लिए बरी बनानी पडे, वहाँ दाल पीसकर उसे बनाना सम्भव नहीं है [illegible] पर तैयार की जाती है।

छनौरी, तिलौरी और पापड़

(१) **छनौरी**—कच्चे भोजन के तीन और साथी है। यद्यपि [illegible] परन्तु [illegible] उपस्थिति से भोजन की सुस्वादुता अधिक बढ जाती है। बेसन की छोटी छोटी 'बुनिया' [illegible] और [illegible] दही मे डाल दिया जाता है। जब यह दही के रस को पी लेती है तब उसको [illegible] भोजन में दिया जाता है। कुछ लोग [illegible] नमकीन 'बुनिया' को भी खाते है। इसी को 'छनौरी' कहते है क्योंकि यह कड़ाही में [illegible] छानकर निकाली जाती है।

(२) **तिलौरी**—यह सम्भवत उडद की दाल से बनायी जाती है। [illegible] भिगोकर, फिर उसे सिल पर पीसकर उसमे गर्म-मसाला डाल देते है। इसकी छोटी छोटी गोली आकृति बनाकर [illegible] दिया जाता है। फिर इसी को घी मे छानकर अतिथियो को खाने के लिए परोसा जाता है। [illegible] यह बहुत कड़ी हो जाती है, अत खाने मे कमजोर दाँतवालो के 'दाँत खट्टे' कर देती है। यदि उड़द की पीसी [illegible] —सतुआ—का गूदा काटकर डाल दिया जाय, तो उसे 'अदवरी' कहते है। उड़द से बनने के कारण यह 'उरिदौरी' के नाम से भी प्रसिद्ध है।

(३) **पापड़**—यह प्रधानतया उडद, मूँग और आलू का बनाया जाता है। उड़द का पापड़ अधिक स्वादिष्ट होता है अत दावतो मे इसी को खिलाया जाता है। मूँग का भी पापड़ बनता है परन्तु उड़द के समान उसमे स्वाद नही होता।

(४) **कढ़ी**—बेसन से बनाये गये भोज्य पदार्थों मे कढ़ी का स्थान महत्वपूर्ण है। पहिले बेसन मे पानी डालकर इसे द्रव रूप मे तैयार करते है। फिर कडाही मे तेल या घी डालकर उसमे मिर्चा और जीरा का 'फोरन' देते है। इसके बाद पतले बेसन के द्रव को कडाही मे डालकर उसमे हल्दी और नमक छोड देते हैं। फिर उसम धीमी धीमी आँच देकर कलछुल से उसे चलाते रहते है। जब यह गाढा हो जाता है, तब इसे उतारकर रख देते हैं। इस प्रकार 'कढ़ी' तैयार हो जाती है। इसे भोजपुरी मे 'परेह' कहा जाता है।

खाने के पहिले इस कढी मे थोडी सी दही डाल दी जाती है जिससे इसका स्वाद कई गुना अधिक हो जाता है। दही के अभाव की अवस्था मे इसमे कच्चा आम का टुकड़ा अथवा सूखी खटाई डाल दी जाती है जिससे कढ़ी मे 'खटास' उत्पन्न हो जाय। दही जितनी ही खट्टी होती है, उसकी कढ़ी उतनी ही अच्छी बनती है। इसीलिए कढ़ी बनाने के लिए खट्टी दही की बडी आवश्यकता होती है।

कढी के बनाने मे समय बहुत कम लगता है। इसके बनाने मे किसी विशेष कौशल की भी जरूरत नही होती। यह स्वादिष्ट भी होती है। इस कारण भोजपुरी क्षेत्र मे भात के साथ कढ़ी खाने की प्रथा है। विवाह के अवसर पर समधी को जो भात खिलाया जाता है, उसमे कढी का भी होना अनिवार्य है। कच्चे भोजन के साथ कढ़ी का अटूट सम्बन्ध है। कुछ लोग रोटी के साथ भी इसे खाते है। कढी मे यदि 'छनौरी' और 'अदवरी' भी डाल दी जाय, तो उसका स्वाद शताधिक हो जाता है।

(५) **पपरा**—बेसन के द्वारा बनाये गये अनेक भोज्य पदार्थों मे से 'पपरा' प्रसिद्ध है। बेसन मे पानी मिलाकर पहिले इसे हाथ से खूब फेटते हैं। फिर इसमे नमक, मिर्चा, खटाई और गर्म मसाला पीसकर डालते है। इसके पश्चात् इस गीले परन्तु गाढे बेसन को तवे पर डालकर चारो ओर फैला दिया जाता है, जिससे इसकी रोटी की आकृति बन जाती है। फिर तवे पर घी लगाकर इसे कई बार उलटते-पुलटते रहते हैं, जिससे यह जलने न पाये। जब यह पक जाता है तब उतारकर थाली मे रख लेते है। इस प्रकार बनी हुई वस्तु को 'पपरा' कहते हैं।

'पपरा' बनाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यह तवे के ऊपर टूटने या बिखरने न पाय। अत इसे उलटते समय बडी सावधानी रखनी चाहिए। 'चोथा' और 'पपरा' के बनाने की विधि एक ही है, परन्तु पहिला स्वाद मे मीठा

होता है, तो दूसरा नमकीन। पपरा जलपान और भोजन दोनो मे समान रूप से व्यवहृत होता है। सुप्रसिद्ध मद्रासी भोजन 'डोसा' भोजपुरी 'पपरा' का ही दूसरा रूप है, जो चावल और उडद की दाल को पीसकर बनाया जाता है। उबाला हुआ मसालेदार आलू और प्याज तथा हरी धनिया आदि को इसके भीतर डालने से यह 'पपरा' की अपेक्षा अधिक स्वादिष्ट होता है।

(७) अनुच्छेद—उडद से बननेवाले भोज्य पदार्थ

भोजपुरी क्षेत्र मे उडद का प्रयोग बडा सीमित है। विवाह तथा मृत्यु के अवसर पर 'फुलवरा' बनाने के लिए ही इसका विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। इसकी दाल भी बनायी जाती है, परन्तु इस क्षेत्र मे इसका अधिक प्रचार नही है। उडद से प्रधानतया निम्नाकित भोज्य पदाथ बनाये जाते है—

(१) अदवरी, (२) दही बडा, (३) फुलवरा और (४) पापड।

यहाँ क्रमपूर्वक इनका सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

(१) अदवरी

पहिले उडद की दाल को पानी मे भिगो दिया जाता है। फिर करीब चौबीस घण्टो के बाद इसके छिलके को धोकर अलग कर देते है। इसके पश्चात् दाल को सिल पर अच्छी तरह से पीसते है। फिर इसमे पेठा—जिसे भोजपुरी मे 'भतुआ' कहते है—के भीतरी भाग अर्थात गूदा को काटकर इस पीसी हुई दाल मे अच्छी तरह से मिला देते है। फिर इसमे नमक, मिर्चा, खटाई तथा अन्य गर्म-मसाला डालते है। इसके पश्चात् किसी कपडे पर इसकी छोटी-छोटी पिण्डियाँ बनाकर धूप मे रखकर इसे सुखाते है। जब ये पिण्डिया सूख जाती है, तब कपडे पर से उनको हटाकर रख देते है। फिर इन सूखी पिण्डियो को कडाही मे तेल डालकर भूनते है। बाद मे इसमे नमक तथा मसाला डालकर पकाते है। इस प्रकार 'अदवरी' की तरकारी तैयार हो जाती है। अदवरी कोई स्वतन्त्र शाक नही है। प्राय इसे आलू के साथ ही पकाया जाता है। जब घर मे कोई शाक नही होता, तो उन गाढे दिनो मे 'अदवरी' ही काम मे आती है।

(२) दही-बडा

उडद की दाल को पीसकर उसमे नमक, मिर्चा तथा गर्म-मसाला आदि वस्तुएँ डालते है। फिर इसकी गोली तथा चपटी आकृति बनाकर तेल या घी मे इसे पकाते है। इसके बाद इसे गर्म पानी मे डाल देते है, जिससे वह फूलकर काफी मुलायम हो जाय। फिर इसको पतली दही मे डुबो देते है। जब इसमे दही का रस समाविष्ट हो जाता है, तब इसे बडे प्रेमपूवक खाया जाता है।

(३) फुलवरा

चूँकि समधी को 'फुलवरा' खिलाने की विधि है, अत विवाह मे ही यह विशेषकर बनाया जाता है। जिस प्रकार जाँत मे पीसी गयी चने की दाल को 'बेसन' कहते है, उसी प्रकार उडद की पीसी गयी दाल 'धुआँस' के नाम से प्रसिद्ध है। इसी 'धुआँस' से फुलवरा तैयार किया जाता है। बेसन की ही भाँति 'धुआँस' मे पानी डालकर इसे खूब गाढा फेटते है। फिर इसमे गर्म-मसाला, विशेषकर काली मिर्च और हीग आदि, डालते है। इसके पश्चात् तेल से भरी कडाही मे इसकी गोल आकृति बनाकर डाल देते है, जो आकार-प्रकार मे प्राय टेनिस के गेद के बराबर होती है। इसे अच्छी तरह से पकाने के लिए लकडी से इसके बीच मे छेद कर देते है। पक जाने पर इसकी आकृति कुछ लाल-सी पड जाती है। लम्बी-चौडी कडाही मे गोले-गोले बीसियो फुलवरो का, तेल के ऊपर तैरने का दृश्य, अजीब-सा लगता है। पक जाने पर फुलवरा को पहिले गम पानी मे भिगोते है, फिर उसे दही से भरे हुए 'नाद' मे डुबो देते है। तीन-चार घण्टो मे यह दही के रस को पी लेता है और खाने-योग्य हो जाता है। उडद की दाल को सिल पर पीसकर 'फुलवरा' बनाया जाता है।

बढिया फुलवरे की पहिचान यह है कि यह इतना मुलायम हो कि थाली या पत्तल मे डालते ही चूर-चूर हो जाय। बासी या 'बसिया' फुलवरा ही खाने मे अच्छा लगता है। बाराती लोग इसे खूब प्रेम से खाते है। इसे स्वादिष्ट तथा मुलायम बनाना गुणी स्त्रियो का ही काम है।

(८) अनुच्छेद—चिउडा-दही

चिउडा और दही दोनो का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। चिउडा धान से बनाया जाता है। सूखे धान को दो-तीन दिन तक

मे उस गाढे बेसन की गोल आकृति बनाते हुए उसे तेल से भरी कड़ाही में [illegible] बरी' तेल के ऊपर आ जाती हे। फिर इसे 'छनवटे' से निकाल लिया जाता है। [illegible]

इसके पश्चात इस गम बरी को पानी मे 'फूलने' के लिए डाल देते है। [illegible] इस पतली दही मे—जिसमे पीसा हुआ नमक और जीरा डाला गया रहता है—डाल देते है। [illegible] अच्छी तरह से 'पी' लेती हे। ऐसी बरी बडी मुलायम होती है।

दूसरे प्रकार की बरी चने की दाल को भिगोकर, फिर उसे सिल पर पीसकर [illegible] पीसी गयी दाल से बनायी गयी बरी, बेसन से बनायी गयी बरी की अपेक्षा अधिक स्वादिष्ट होती है। [illegible] आदमियो को खिलाने के लिए बरी बनानी पडे, वहाँ दाल पीसकर इसे बनाना सम्भव नहीं है, [illegible] पर तैयार की जाती है।

छनौरी, तिलौरी और पापड़

(१) **छनोरी**—कच्चे भोजन के तीन और साथी है। यद्यपि [illegible] उपस्थिति से भोजन की सुस्वादुता अधिक बढ जाती है। बेसन की छोटी छोटी 'बुनिया' [illegible] दही मे डाल दिया जाता है। जब यह दही के रस को पी लेती है तब उसका [illegible] नमकीन 'बुनिया' को भी खाते है। इसी को 'छनौरी' कहते है क्योंकि यह कड़ाही में से छानकर निकाली जाती है।

(२) **तिलोरी**—यह सम्भवत उडद की दाल की बनायी जाती है। उड़द की दाल को भिगोकर फिर उसे सिल पर पीसकर उसमे गम-मसाला डाल देते है। इसकी छोटी छोटी गोली आकृति बनाकर [illegible] लिया जाता है। फिर इसी को घी मे छानकर अतिथियो को खाने के लिए परोसा जाता है। घी में पकाये जाने पर यह बहुत कडी हो जाती है, अत खाने मे कमजोर दाँतवालो के 'दाँत खट्टे' कर देती है। यदि उड़द की पीसी दाल में [illegible]—कुम्हड़ा—का गूदा काटकर डाल दिया जाय, तो उसे 'अदवरी' कहते है। उड़द से बनने के कारण यह 'उरिदी' के नाम से भी प्रसिद्ध है।

(३) **पापड**—यह प्रधानतया उडद, मूँग और आलू का बनाया जाता है। उड़द का पापड़ अधिक स्वादिष्ट होता है अत दावतो मे इसी को खिलाया जाता है। मूँग का भी पापड़ बनता है परन्तु उड़द के समान उसमे स्वाद नही होता।

(४) **कढ़ी**—बेसन से बनाये गये भोज्य पदार्थों मे कढ़ी का स्थान महत्त्वपूर्ण है। पहिले बेसन मे पानी डालकर इसे द्रव रूप मे तैयार करते है। फिर कडाही मे तेल या घी डालकर उसमे मिर्चा और जीरा का 'फोरन' देते है। इसके बाद पतले बेसन के द्रव को कडाही मे डालकर उसमे हल्दी और नमक छोड देते है। फिर उसमे धीमी धीमी आँच देकर कलछुल से उसे चलाते रहते है। जब यह गाढा हो जाता है, तब इसे उतारकर रख देते हैं। इस प्रकार 'कढ़ी' तैयार हो जाती है। इसे भोजपुरी मे 'परेह' कहा जाता है।

खाने के पहिले इस कढी मे थोडी-सी दही डाल दी जाती है जिससे इसका स्वाद कई गुना अधिक हो जाता है। दही के अभाव की अवस्था मे इसमे कच्चा आम का टुकडा अथवा सूखी खटाई डाल दी जाती है जिससे कढ़ी में 'खटास' उत्पन्न हो जाय। दही जितनी ही खट्टी होती है, उसकी कढ़ी उतनी ही अच्छी बनती है। इसीलिए कढ़ी बनाने के लिए खट्टी दही की बडी आवश्यकता होती है।

कढी के बनाने मे समय बहुत कम लगता है। इसके बनाने में किसी विशेष कौशल की भी जरूरत नही होती। यह स्वादिष्ट भी होती है। इस कारण भोजपुरी क्षेत्र मे भात के साथ कढ़ी खाने की प्रथा है। विवाह के अवसर पर समधी को जो भात खिलाया जाता है, उसमे कढी का भी होना अनिवार्य है। कच्चे भोजन के साथ कढ़ी का अटूट सम्बन्ध है। कुछ लोग रोटी के साथ भी इसे खाते है। कढी मे यदि 'छनौरी' और 'अदवरी' भी डाल दी जाय, तो उसका स्वाद शताधिक हो जाता है।

(५) **पपरा**—बेसन के द्वारा बनाये गये अनेक भोज्य पदार्थों में से 'पपरा' प्रसिद्ध है। बेसन में पानी मिलाकर पहिले इसे हाथ से खूब फेंटते है। फिर इसमे नमक, मिर्चा, खटाई और गम मसाला पीसकर डालते है। इसके पश्चात् इस गीले परन्तु गाढे बेसन को तवे पर डालकर चारो ओर फैला दिया जाता है, जिससे इसकी रोटी की शकल बन जाती है। फिर तवे पर घी लगाकर इसे कई बार उलटते-पुलटते रहते हैं, जिसमे यह जलने न पाये। जब यह पक जाता है, तब उतारकर थाली मे रख लेते है। इस प्रकार बनी हुई वस्तु को 'पपरा' कहते हैं।

'पपरा' बनाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यह तवे के ऊपर टूटने या बिखरने न पाय। अत इसे उलटते समय बडी सावधानी रखनी चाहिए। 'चोथा' और 'पपरा' के बनाने की विधि एक ही है, परन्तु पहिला स्वाद मे मीठा

होता है, तो दूसरा नमकीन। पपरा जलपान और भोजन दोनो मे समान रूप से व्यवहृत होता है। सुप्रसिद्ध मद्रासी भोजन 'डोसा' भोजपुरी 'पपरा' का ही दूसरा रूप है, जो चावल और उडद की दाल को पीसकर बनाया जाता है। उबाला हुआ मसालेदार आलू और प्याज तथा हरी धनिया आदि को इसके भीतर डालने से यह 'पपरा' की अपेक्षा अधिक स्वादिष्ट होता है।

(७) अनुच्छेद—उडद से बननेवाले भोज्य पदार्थ

भोजपुरी क्षेत्र मे उडद का प्रयोग बडा सीमित है। विवाह तथा मृत्यु के अवसर पर 'फुलवरा' बनाने के लिए ही इसका विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। इसकी दाल भी बनायी जाती है, परन्तु इस क्षेत्र मे इसका अधिक प्रचार नही है। उडद से प्रधानतया निम्नांकित भोज्य पदाथ बनाये जाते है—

(१) अदवरी, (२) दही बडा, (३) फुलवरा और (४) पापड।

यहाँ क्रमपूर्वक इनका सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

(१) अदवरी

पहिले उडद की दाल को पानी मे भिगो दिया जाता है। फिर करीब चौबीस घण्टो के बाद इसके छिलके को धोकर अलग कर देते है। इसके पश्चात् दाल को सिल पर अच्छी तरह से पीसते है। फिर इसमे पेठा—जिसे भोजपुरी मे 'भतुआ' कहते है—के भीतरी भाग अर्थात् गूदा को काटकर इस पीसी हुई दाल मे अच्छी तरह से मिला देते है। फिर इसमे नमक, मिर्चा, खटाई तथा अन्य गर्म-मसाला डालते है। इसके पश्चात् किसी कपडे पर इसकी छोटी-छोटी पिण्डियाँ बनाकर धूप मे रखकर इसे सुखाते है। जब ये पिण्डिया सूख जाती है, तब कपडे पर से उनको हटाकर रख देते है। फिर इन सूखी पिण्डियो को कडाही मे तेल डालकर भूनते है। बाद मे इसमे नमक तथा मसाला डालकर पकाते है। इस प्रकार 'अदवरी' की तरकारी तैयार हो जाती है। अदवरी कोई स्वतन्त्र शाक नही है। प्राय इसे आलू के साथ ही पकाया जाता है। जब घर मे कोई शाक नही होता, तो उन गाढे दिनो मे 'अदवरी' ही काम मे आती है।

(२) दही-बडा

उडद की दाल को पीसकर उसमे नमक, मिर्चा तथा गर्म-मसाला आदि वस्तुएँ डालते है। फिर इसकी गोली तथा चपटी आकृति बनाकर तेल या घी मे इसे पकाते है। इसके बाद इसे गर्म पानी मे डाल देते है, जिससे वह फूलकर काफी मुलायम हो जाय। फिर इसको पतली दही मे डुबो देते है। जब इसमे दही का रस समाविष्ट हो जाता है, तब इसे बडे प्रेमपूवक खाया जाता है।

(३) फुलवरा

चूँकि समधी को 'फुलवरा' खिलाने की विधि है, अत विवाह मे ही यह विशेषकर बनाया जाता है। जिस प्रकार जाँत मे पीसी गयी चने की दाल को 'बेसन' कहते है, उसी प्रकार उडद की पीसी गयी दाल 'धुआँस' के नाम से प्रसिद्ध है। इसी 'धुआँस' से फुलवरा तैयार किया जाता है। बेसन की ही भाँति 'धुआँस' मे पानी डालकर इसे खूब गाढा फेंटते है। फिर इसमे गर्म-मसाला, विशेषकर काली मिर्च और हीग आदि, डालते है। इसके पश्चात् तेल से भरी कडाही मे इसकी गोल आकृति बनाकर डाल देते है, जो आकार-प्रकार मे प्राय टेनिस के गेंद के बराबर होती है। इसे अच्छी तरह से पकाने के लिए लकडी से इसके बीच मे छेद कर देते है। पक जाने पर इसकी आकृति कुछ लाल सी पड जाती है। लम्बी-चौडी कडाही मे गोले-गोले बीसियो फुलवरो का, तेल के ऊपर तैरने का दृश्य, अजीब-सा लगता है। पक जाने पर फुलवरा को पहिले गर्म पानी मे भिगोते है, फिर उसे दही से भरे हुए 'नाद' मे डुबो देते है। तीन-चार घण्टो मे यह दही के रस को पी लेता है और खाने-योग्य हो जाता है। उडद की दाल को सिल पर पीसकर 'फुलवरा' बनाया जाता है।

बढिया फुलवरे की पहिचान यह है कि यह इतना मुलायम हो कि थाली या पत्तल मे डालते ही चूर-चूर हो जाय। बासी या 'बसिया' फुलवरा ही खाने मे अच्छा लगता है। बाराती लोग इसे खूब प्रेम से खाते है। इसे स्वादिष्ट तथा मुलायम बनाना गुणी स्त्रियो का ही काम है।

(८) अनुच्छेद—चिउडा-दही

चिउडा और दही दोनो का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। चिउडा धान से बनाया जाता है। सूखे धान को दो-तीन दिन तक

पानी मे भिगो देते है। फिर उसे पानी मे से छानकर कडाही म 'कल्हारते' है। जब करीब करीब धान आधा पक जाता है, तब उस धान को ओखली मे (या ढेकी मे) डालकर 'मूसला' से धमाधम, धमाधम कूटते है। [illegible] सूप से उसे फटकते है, जिससे भूसी अलग हो जाती है और चिउडा अलग। चिउडा जितना ही अधिक कूटा जाता है, [illegible] उतना ही पतला और पतला होता है। गर्म दूध मे डालते ही जो चिउडा गल जाय तो समझना चाहिए कि [illegible] है।

'सुरुका' चिउडा सबसे अच्छा और स्वादिष्ट माना जाता है। [illegible] तोड़कर या 'सुरुक' कर लाया जाता है और इसे ओखली मे कूटकर चिउडा तैयार किया जाता है। सुरुक (खींच) कर लाये जाने के कारण ही इसका नाम 'सुरुका' पड गया है। कच्चे धान से बनाये जाने के कारण यह बहुत मुलायम होता और हल्का होता है।

भोजपुरी क्षेत्र मे—विशेषकर गोरखपुर और देवरिया जिला मे—चिउडा दही खाने की बड़ी प्रथा है। निमन्त्रण मिलने पर इसे खाने के लिए लोग कोसो दूर तक के गाँवो म भी जाने म संकोच नहीं करते है। इस कथन की पुष्टि निम्नांकित कहावत से होती है —

"चिउड़ा दही बारह कोस।
लुचुई अठारह कोस॥"

सरवार (गोरखपुर, बस्ती, देवरिया जिला) मे चिउडा दही खाने का प्रचुर प्रचार है। इसके अतिरिक्त इसका महत्त्व भी अधिक है। यहाँ के पंक्तिपावन ब्राह्मण किसी भी ब्राह्मण के हाथ का पकाया हुआ अन्न ग्रहण नही करते है। वे पूडी को भी अशुद्ध मानते है। ऐसी दशा मे, यात्रा मे चिउडा दही उनके लिए अनन्य सहायक ही नहीं वरन् प्राणरक्षक भी है। सरवरियो मे विवाह के अवसर पर चिउडा-दही भोजन का प्रधान अंग माना जाता है। यदि लड़कीवाले ने इसे नही खिलाया, तो उसकी कुशल नही। वर-पक्ष के बाराती लोग इसे अपना बड़ा अपमान समझते है। इन विवाहो मे बारातियो को जाडे की रात मे भी पहिले भरपेट चिउडा-दही खिलाया जाता है फिर बाद मे थोड़ी सी पूड़ी खाने को दी जाती है।

साधारणतया चिउडा-दही खाने की विधि यह है कि चिउडा को पहिले दही मे सान लेते है फिर उसमे गुड मिलाकर खाते है। परन्तु शौकीन लोग पहिले चिउडा को पानी मे धोते है जिससे उसकी गन्दगी निकल जाती है। फिर उसमे खौलता हुआ गर्म दूध डाल देते है। जब गर्म दूध के कारण चिउडा मुलायम हो जाता है तब उसे मजेदार दही मे 'सानते' है और फिर उसमे गुड या चीनी मिलाकर डटकर खाते हैं। इस चिउडा-दही का स्वाद बड़ा अपूर्व होता है।

मकर संक्रान्ति के दिन—जिसे खिचडी भी कहते है—चिउडा-दही खाने का विशेष महत्त्व माना जाता है। जो लोग इसके अभ्यस्त नही है, वे भी इस दिन चिउडा-दही अवश्य खाते है। चिउडा—जिसे 'चिउरा' भी कहा जाता है—परदेश जानेवाले पति का पाथेय है। यह उसका 'नाश्ता' (जलपान) भी है और भोजन भी। इसीलिए कोई परदेश की यात्रा करने वाला प्रियतम अपनी प्रियतमा से निवेदन करता है कि तुम जल्दी जल्दी चिउडा कूटो, जिसे मैं लेकर प्रस्थान कर सकूँ। गीत की कुछ कडियाँ इस प्रकार है —[1]

"चिउरा कुटु चिउरा कुटु सँवरो तिरियवा रे।
आरे हम जइबों सँवरो मगहुरे देसवा रे॥१॥
रोइ रोइ सँवरो रे चीउरा रे कूटेली।
आरे हँसि हँसि उमर बान्हावेले रे॥२॥"

चिउडा को भाड मे भूनकर उसमे घी और थोडा नमक मिलाकर खाने मे बड़ा स्वादिष्ट लगता है। शहरो मे—विशेषकर वाराणसी मे—इससे 'मटरा-चिउडा' और 'फरुही' बनायी जाती है। 'फरुही' को 'फोरनी दाना' भी कहते हैं। परन्तु गाँवो मे ये चीजे नही बनती, अत इनकी चर्चा करना व्यर्थ ही होगा।

माह्रीं

माह्रीं 'चीना' से पैदा होता है, जो पूर्वी जिलो मे बहुत बोया जाता है। इसकी फसल दो-तीन महीने म ही तैयार हो जाती है। चिउडा की ही भाँति माह्रीं को भी दही और गुड की सहायता से खाया जाता है। मजदूरो का जलपान के रूप

१ डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय : भोजपुरी लोक-गीत, भाग १, (द्वितीय संस्करण), पृष्ठ २८६।

मे देने के लिए 'माहीं' प्रयोग मे लाया जाता है। किसी व्यक्ति की मृत्यु के तेरही के दिन भिखमगो, गरीबो और करन्न (एक जाति विशेष) को जो भोजन दिया जाता है, उसमे माहीं और दही विशेष रूप से खिलाया जाता है। ये 'भुक्खड' कई सेर तक माहीं खा जाते है, फिर भी इनके पेट की पूर्ति नही होती।

माहीं को दूध मे भिगोकर चीनी के साथ खाने की भी विधि है। साधारण गृहस्थ के लिए 'चिउरा' और 'माहीं' दो बडी उपयोगी वस्तुएँ है, जो किसी भी व्यक्ति के स्वागत मे सदा तैयार रहती है। गॉवो मे जहाँ मिठाई नही मिलती, वहाँ चिउडा-गुड या माहीं-गुड ही अतिथि को जलपान करने के लिए दिया जाता है। सुदूर यात्रा मे जानेवाले भोजपुरी पथिक के लिए माहीं पाथेय का काम करता है। यह भोजपुरी जनता का जलपान (नाश्ता) भी है और भोजन भी। यह बहुत हल्का होता है और जल्दी ही पच जाता है। इसीलिए लोग इसे बडे प्रेम से खाते है।

(२) परिच्छेद

जलपान

भोजपुरी क्षेत्र मे अपने खेतो पर काम करनेवाला किसान, लकडी चीरने और हल जोतनेवाला मजदूर, मकान बनानेवाला 'राज' और अपने कन्धे पर पालकी ढोनेवाला 'कहार' ये सभी मध्याह्नकालीन भोजन के पहिले जलपान करते है। मजदूरो को मजदूरी करने के लिए काम पर लगाते समय यह पहिले ही से निश्चित कर लेना पडता है कि उन्हे जलपान भी देना पडेगा अथवा नही। यह उनकी मजदूरी का अग है।

कुछ लोगो की यह आदत होती है कि यदि वे प्रात काल कुछ जलपान न करे, तो उन्हे 'खराई' मार देती है, अर्थात् उनकी तबीयत कुछ खराब हो जाती है। अत इस 'खराई' को मिटाने के लिए वे कुछ चना-चबेना अवश्य खा लेते है। इसे 'खरमिटाव' कहा जाता है। भोजपुरी की बनारसी बोली मे, अपने काव्य 'वदमाश-दपण' की रचना करनेवाले श्री 'तेगअली' ने रहिला अर्थात् चना चबाकर 'खरमिटाव' करने का उल्लेख किया है—

"हम खरमिटाव कइली हाँ रहिला चबाइ के।
भेंवल धइल बा दूध में राजा खाजा तोरे बदे॥"

भोजपुरी मे 'जलपान' का अभिधेय अथ ग्रहण नही किया जाता। बल्कि व्यञ्जना के द्वारा इसका अथ होता है, जल पीने के साथ ही किसी अन्य वस्तु—मिठाई, भुजुना, घुघुनी आदि को भी खाने के लिए देना। यदि केवल पानी पीना ही अभिप्रेत रहेगा, तब कहेगे "पानी पीये के ले आवऽ।" लोक-भाषा मे जलपान को 'पनपियाउ' के नाम से पुकारते है। इसे 'जल खावा' भी कहा जाता है।

(१) अनुच्छेद—जलपान के विभिन्न प्रकार

जलपान के अन्तर्गत विभिन्न वस्तुओ का समावेश होता है —

'माहीं', 'चिउडा', 'भुजुना', 'घुघुनी', 'मिठाई', 'कसार', 'ढोढी', 'तीसी के लड्डू', 'तिलवा', 'तिलकुट', 'तिल के लड्डू', 'मेथी', 'लाटा' आदि-आदि।

माहीं और चिउडा को दही के साथ भोजन के रूप मे व्यवहार मे लाते है, जिसकी चर्चा अन्यत्र की जा चुकी है। परन्तु यह जलपान के रूप मे भी प्रयुक्त होता है। मजदूर और किसान प्रात काल गुड के साथ इसको खाते है। यह बडा 'गम्भीर जलपान' माना जाता है। धनी लोग चिउडा मे घी और चीनी मिलाकर बडे शौक से उसे खाते है।

१ भुजुना

'भुजुना' भोजपुरी भाइयो का प्रधान जलपान है। किसी भी गाँव मे चले जाइये, वहा आपको सुबह और शाम 'मन-सारि' (भाड) जलती हुई मिलेगी, जिसके सामने बच्चे और औरतो की कुछ भीड भी दिखाई पडेगी। भुजुना को 'चबेना' भी कहते है, जैसा कि किसी कवि की नीचे की पक्तियो से स्पष्ट है —

"चना-चबेना, गगाजल, जो देवै करता।
काशी कबहुँ न छोडिये, बाबा विश्वनाथ दरबार॥"

भाड मे भूने जाने के कारण ही इसका नाम 'भुजुना' पड गया है।

इसी भाड मे भुजुना 'भूजा' या 'भूना', जाता है। भुजुना के अनेक प्रकार है। जैसे —

(१) चने का भुजुना, (२) चावल का भुजुना, (३) जनेरा (मक्का) का भुजुना, (४) ज्वार का भुजुना,

(५) जौ का भुजुना, (६) चिउरा का भुजुना, (७) मकई का भुजुना,
(८) बर्रे का भुजुना, और (९) धान का भुजुना

चना, चावल, जौ, मक्का आदि किसी भी अन्न का जब भाड़ में भून लिया जाता है तब उसे भुजुना कहते है, जिसका अर्थ है भूनी गयी वस्तु। यदि सुस्वादुता और उत्तमता की दृष्टि से इनका श्रेणी विभाजन किया जाय तो चना, चावल और मक्का को क्रमश प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणी, बिना किसी संकोच के प्रदान की जा सकती है।

(१) चने का भुजुना

चने का भुजुना दो प्रकार का होता है—(१) नमकीन और (२) साधारण। सूखे चने का भाड में भुने जाने से जो 'भुजुना' होगा, उसे साधारण भुजुना कहते हैं। परन्तु नमकीन चने का भुजुना तैयार करने के लिए चने में थोडा पानी डालकर उसे केवल थोडा भिगो देते हे, जिसे भोजपुरी में 'करमाय देना' कहते हैं। फिर उसमें थोडा नमक मिलाकर उसे धूप मे सुखा देते है। इस प्रकार जब नमक चने में प्रविष्ट कर जाता है तब उसे भाड़ में भूनते हैं। यह चने का भुजुना नमकीन होता है और खाने मे बडा स्वादिष्ट लगता है। कुछ लोग सरसों का थोडा तेल उसमें मिलाकर खाते है। जो चने का भुजुना नमकीन नही होता, उसमे ऊपर से तेल और नमक मिला दिया जाता है। इसके पश्चात् ही उसे खाते है। चने के भुजुना मे चावल का भुजुना मिलाकर भी खाने की प्रथा है। ऐसा करने से दोनों का आनन्द साथ ही साथ मिल जाता है। सम्भवत चना और चावल की नाम-राशि एक ही होने के कारण दोनो में इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है। काशी में प्राय चने के भुजुने को दलकर, उसके ऊपर का छिलका फटककर निकाल देते है। यद्यपि इससे इसका स्वाद तो अवश्य ही अधिक बढ़ जाता है, परन्तु इसके छिलके का होना स्वास्थ्य के लिए अधिक लाभदायक है।[1] काशी में "चना जोर गरम" बेचनेवाले सडकों पर बहुत पाये जाते है, जो अपनी झोली मे गरमागरम चना लेकर बेचते फिरते है। ये चना बेचते समय बडे ही सुन्दर गीत गाते है। घासीराम नामक व्यक्ति इस चने को बेचता हुआ आशु कविता भी चने की प्रशंसा में करता जाता था, जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है —

"चना बनावें घासीराम, जिसकी झोली में दूकान।
मेरा चनवा चुरमुर बोलें, बाबू जी के मनवा डोलें।
जो मेरा चनवा ना खावें, वह पीछे मन में पछतावें।
खा लो बाबूजी, चना जोर गरम॥"

(२) चावल का भुजुना

यद्यपि 'अरवा' और 'उसिना'—इन दोनो प्रकार के चावलों का भुजुना बनता है परन्तु 'भुंजिया' चावल का ही भुजुना अच्छा होता है। भाड मे भूनने पर इसके दाने बड़े-बड़े हो जाते हैं। भुंजिया चावल में भी एक खास प्रकार का चावल होता है—जिसके धान को सम्भवत अधिक उबालकर चावल बनाते है—जो भुजुना के लिए बडा उपयोगी होता है क्योंकि इसके दाने बडे फूटते है। काशी मे 'फरुही' के नाम से यह प्रसिद्ध है। इस 'फरुही' में गुड़ का पाग डालकर इसे गोल आकृति मे छोटे लड्डू के समान बनाते है, जिसे 'लाई' कहते हैं। बच्चे 'लाई-चना' बड़े प्रेम से खाते है।

चावल के भुजुना मे नमक और सरसो का तेल मिलाकर खाने से यह अधिक स्वादिष्ट लगता है। इसमें चने का भुजुना मिलाकर खाने की अधिक प्रथा है। दोनो का सयोग एक-दूसरे के स्वाद को बढ़ा देता है। भोजपुरी क्षेत्र में भुजुना शब्द से चना, चावल और जनेरा के भुजुना का ही अर्थ गृहीत होता है।

(३) जनेरा (मक्का) का भुजुना

चना और चावल के बाद जनेरा का स्थान आता है। मक्का के भुजुना की विशेषता यह है कि वह भाड मे भूने जाने पर काफी बडा-बडा हो जाता है। इसके खिले हुए बडे-बडे सफेद दानो को 'लावा' और नही खिले छोटे-छोटे दानो को 'ठूरी' कहते हैं। 'लावा' खाने मे जितना ही मुलायम होता है, 'ठूरी' उतनी ही सख्त और कठोर होती है। इसीलिए निर्दयी और कठोर हृदयवाले व्यक्तियो की तुलना 'ठूरी' से की जाती है। निम्नांकित लोकोक्ति में इसी की गम्भीर व्यञ्जना की गयी है —

"ओझा खाले गोझा, ओझाइन खाली पूरी।
ओझा के लड़िकवा जनम के ठूरी॥"

१. काशी में "चना जोर गरम" बेचनेवाले चने को भिगोकर, उसमें थोड़ा नमक डालकर, उसे कुचलकर चपटा बना देते हैं। इसी को आग पर गर्म कर के बेचते फिरते हैं। यह नमकीन चना बड़ा ही स्वादिष्ट होता है।

मक्का का मुजुना देखने मे सफेद और सुन्दर होता है। पहिले तो इसे 'निरधन, निरबल, निरगुन' गाँव के 'गँवार' ही खाया करते थे, परन्तु अब बडे-बडे 'अप-टु-डेट' और 'फैशेनेबुल जैण्टिलमैन' भी इसके स्वाद का मजा लेते है। बम्बई और कलकत्ते की बडी-बडी दूकानो पर 'पुटैटोचिप्स' की तरह मक्के का मुजुना पैकेट मे बन्द होकर अब बिकने लगा है। यह गरीबो का जलपान, अब बिसकुट और 'चिप्स' की तुलना करने लगा है।

जनेरा के मुजुना को नमक और लाल मिर्चा की सहायता से खाया जाता है। मजदूरो को जलपान के रूप मे प्राय इसी को दिया जाता है। गरीब किसान तथा मजदूर दोपहर को भोजन के रूप मे इसी को खाकर अपना पेट भरता है।

(४) ज्वार को 'जोन्हरी' कहा जाता है। चूकि इसका 'दाना' सफेद होता है, अत इसके मुजुने का 'दाना' भी इसी रग का होता है। यह खाने मे कुछ विशिष्ट स्वादिष्ट नही होता।

(५) जौ को पानी मे भिगोकर, ओखली मे छाँटकर, सुखाकर और फटककर जब तैयार कर लेते है तब इसे भाड मे ले जाकर भुनवाते है। तब कही इसका भुजुना तैयार होता है। चने के मुजुने के साथ मिलाकर लोग प्राय इसे खाते है।

(६) चिउडा का मुजुना बडा हल्का और स्वादिष्ट होता है। बहुत लोग इसमे घी और थोडा नमक 'मीस' (मिला) कर बडे प्रेम से इसे ग्रहण करते हैं। यदि काली मिर्च को पीसकर थोडा इसमे डाल दिया जाय, तो इसका स्वाद और अधिक बढ जाता है। परन्तु चावल के आगे चिउडा के मुजुने का विशेष प्रचार नही है।

(७) बर्रे को भाड मे भूनने पर इसका रग सफेद हो जाता है। प्राय गुड के साथ इसके भुजुने को खाया जाता है।

(८) धान का लावा—'दिवाली' (दीपावली) के अवसर पर धान को भाड मे भूनकर उसका लावा—जिसे 'खील' कहते है—खाने की प्रथा है। बहुत लोग इस लावे मे गर्म दूध डालकर चीनी या गुड के साथ खाते है। अन्यथा साधारण लोग बताशा या गुड के साथ इसका उपयोग करते है। धान का लावा बडा हल्का होता है। अत इसे बीमार आदमी को भी खाने के लिए दिया जाता है।

(९) महुए का मुजुना—महुआ गरीबो का भोजन भी है और जलपान भी। घर की निर्धनता के बोझ से दबी हुई किसान की स्त्री अपने भूखे पति की पेट की ज्वाला को शान्त करने के लिए उसे 'महुअरि' पकाकर खिलाती है और क्षुधा के मारे बिलबिलाते हुए अपने बच्चो को महुए का मुजुना देकर फुसलाती हैं। सचमुच यदि यह महुआ न हो, तो गरीबो का दिवाला निकल जाय, उनकी जान के लाले पड जायँ। निश्चय ही यह निर्धन व्यक्तियो का भोजन ही नही, बल्कि उनके लिए यह किसमिस, मेवा और बादाम है। श्री मोती बी० ए० ने ठीक ही लिखा है कि —[1]

"इ गरीबन के किसमिस, अनार सजनी।"

सूखे महुए को भाड मे भूनकर इसका मुजुना तैयार किया जाता है, जो कुछ लाल और कुछ बादामी रग का होता है। इसके साथ बर्रे का मुजुना मिलाकर लोग आनन्द के साथ खाया करते है। महुआ और बर्रे के मुजुना मे गुड मिलाकर उसे ओखली मे खूब कूटा जाता है। कूटने से दोनो एक मे मिल जाते है और उनके प्रत्येक अश या अग मे गुड समाविष्ट हो जाता है। इस प्रकार जो वस्तु तैयार होती है, उसे 'लाटा' कहते है। यह 'लाटा' लडको का प्रधान जलपान है। विद्यालय के सुदूर मार्ग मे जानेवाले भोजपुरी बालको का यह पाथेय है। गाँवो मे सन्ध्या समय बालकगण अपनी गमछी (तौलिया) की झोली बनाकर चना अथवा चावल का मुजुना या लाटा खाते हुए दिखाई पडते है।

(२) अनुच्छेद—घुघुनी

जलपान का दूसरा अनन्य साधन घुघुनी है। घुघुनी दो प्रकार की होती है—(१) चने की घुघुनी और (२) मटर की घुघुनी। फिर चने की घुघुनी के भी दो भेद है—(१) हरे चने की तथा (२) सूखे चने या पके चने की घुघुनी। चने के पौधे मे जब फल लग जाते है और जब ये काफी बडे—जिसे भोजपुरी मे 'गोटार' कहते है—हो जाते है, तो इन्हे 'कचरी' की सज्ञा प्राप्त होती है। इसी कचरी मे से चने के हरे फलो (बीज) को निकाल लेते है और इसे कडाही मे घी, जीरा, मिर्चा आदि डाल कर छौक देते है। फिर थोडा-सा नमक अन्दाज से डालकर, इसे तलकर उतार लेते है। हरे चने की यह घुघुनी बडी स्वादिष्ट होती है।

दूसरे प्रकार की घुघुनी सूखे चने की होती है। पहिले चने को कम-से-कम २४ घण्टे पहिले पानी मे भिगो देते है। जब यह काफी 'फूल' जाता है, तब कडाही मे तेल, मिर्चा, जीरा आदि डालकर इसे छौक देते है। जब यह काफी तल जाता है, तब इसे उतारकर प्रेम से खाते है। चने की यह घुघुनी बडी प्रसिद्ध है तथा भोजपुरी भाइयो का प्रधान जलपान है।

१ महुआ बारी, पृष्ठ १।

कच्चे मटर की फलियो को 'छीमी' या 'छेमी' कहा जाता है। यह भोजपुरी में 'ढेढी' के नाम से प्रसिद्ध है। 'ढेढी' के भीतर के दाने को 'गादा' के नाम से पुकारते है। इस गादे को घी, मिर्चा और जीरा में [illegible] हैं। इन से मटर की घुघुनी तैयार हो जाती है। आलू के छोटे-छोटे टुकडे काटकर इसके साथ [illegible] स्वादिष्ट हो जाता है।

(३) होरहा

हरे चने या मटर के पौधे को उनकी फलियो के साथ जब आग में भून देते है, तब इन भूनी हुई फलियों को 'होरहा' कहा जाता है। यह दो प्रकार का होता है—(१) चने का होरहा और (२) मटर का होरहा। किसी बगीचे में तालाब के किनारे अथवा अन्य किसी एकान्त स्थान में पेड की सूखी पत्तियों को लाकर इकट्ठा किया जाता है। फिर खेत में से चने के उन पोधो को उखाड कर लाते है, जिनके दाने तो काफी पुष्ट और बड़े (गादार) हो गये हैं परन्तु अभी बिल्कुल पके नही है। इन पौधो को फलियो के साथ इसी पत्ती की आग पर भूनते है। अच्छी तरह से [illegible] भुन जाने पर उन्हे एकत्रित कर लेते हे। यही 'होरहा' कहलाता है। फिर इसे नमक, मिर्चा या अचार [illegible] है।

मटर का होरहा तैयार करने की भी यही पद्धति है। यद्यपि यह भी खाने में कुछ कम स्वादिष्ट नही लगता, परन्तु चने का 'होरहा' खाने की ही अधिक प्रथा है। ताजा 'होरहा' बड़ा स्वादिष्ट होता है। कुछ लोग इसे भूनकर रख लेते हैं और कई दिनो—प्राय महीनो—तक खाते रहते है।

'होरहा लगाना' भोजपुरी का एक मुहावरा है, जिसका अर्थ है सर्वनाश या सत्यानाश कर देना। इसे 'होरहा झोलना' भी कहते है। 'घर मे होरहा झोलना' का व्यंग्यार्थ है—उसमे आग लगाकर नष्ट कर देना।

(४) तिलवा

तिलवा भी जलपान का एक साधन है। यह निम्न प्रकार का होता है —

(१) धान का तिलवा
(२) जनेरा का तिलवा
(३) जोन्हरी का तिलवा
(४) बाजरा का तिलवा
(५) तिल का तिलवा

पहिले चिउडा को भाड मे भूना जाता है। फिर कड़ाही मे गुड का कुछ कड़ा 'पाग' बनाकर इन भूने हुए चिउडे मे डाल देते हे। फिर चिउडा मे पाग को अच्छी तरह से मिलाते हैं और उसके बाद इसका [illegible] आकार का गोला बना लेते है। सूख जाने पर यह कडा हो जाता है, जिसे लोग बड़े प्रेम से खाते है। इसी को 'तिलवा' कहा जाता है। यद्यपि यह अन्य अन्नो से भी बनाया जाता है, परन्तु धान (चिउडा) का तिलवा अधिक स्वादिष्ट होता है। यह जलपान के अतिरिक्त सगे-सम्बन्धियो के यहाँ 'करनी' (भोज्य पदार्थ) के रूप में भी भेजा जाता है। कुछ लोग तिलवा-दही को खाकर अपने पेट की पूजा करते है। 'खिचड़ी' (मकर संक्रान्ति) नामक पर्व के दिन दही के साथ तिलवा खाना आवश्यक समझा जाता है।

जनेरा, जोन्हरी और बाजरे का तिलवा बनाने की भी यही पद्धति है। जनेरे के लावे के बड़े होने के कारण इसका तिलवा आकृति मे बडा होता है। बाजरे का तिलवा अपेक्षाकृत बहुत छोटा बनाया जाता है।

(५) कसार

विवाह आदि मे इसका उपयोग अधिक होता है। विवाह अथवा गवना के पश्चात् जब लड़की पहिली बार ससुराल जाती है, तब 'झपोली' मे भरकर 'कसार' देने की प्रथा है। यो भी व्रत या त्यौहार के अवसर पर सम्बन्धियो—विशेषकर पुत्री—के यहाँ कसार भेजा जाता है। इस प्रकार जलपान के रूप मे इसका विशेष प्रयोग न होकर 'करनी' के रूप मे ही यह प्रधानतया व्यवहृत होता है।

बनाने की विधि

कडाही मे बहुत थोडा घी डालकर आटे को धीमी-धीमी आँच पर भूना जाता है। जब उसमें से भीनी-सोंधी सुगन्ध आने लगती है, तब उसे उतारकर रख देते हैं। फिर इसमे गरी, छुहारा, किसमिस आदि मेवा डालते हैं। इसके पश्चात् कडाही मे गुड घोलकर उसका 'पाग' तैयार करते हैं। जब 'पाग' में कुछ गाढ़ापन आने लगता है तब इसे भूने गये आटे में

डाल देते है। फिर दोनो को खूब मिलाते है। बाद मे पाव-पाव भर तौल के एक-एक लड्डू बनाते है। इसी को भोजपुरी मे 'कसार' कहा जाता है। सूख जाने पर 'कसार' बडा सख्त और कडा हो जाता है। फिर दाँतो का इनके ऊपर कोई बस नही चलता। ऐसी दशा मे इन्हे फोडकर खाने के लिए किसी पाषाण-खण्ड की शरण लेने की आवश्यकता पडती है। कसार आकृति मे गोला, देखने मे सफेद और भोजन मे स्वादयुक्त होता है। ताजा बना हुआ 'कसार' खाने मे उतना ही मुलायम लगता है, जितना सूख जाने पर सख्त। यह अपनी कठोरता के कारण युवती स्त्रियो के उभरते हुए उरोजो का उपमान माना जाता है।

(६) मेंथी

मेथी के भी बनाने की विधि वही है, जो कसार की है। अन्तर केवल इतना ही है कि जहाँ कसार मे घी बहुत थोडा लगाकर आटा भूना जाता है, वहाँ मेथी मे घी की मात्रा अधिक होती है। फिर उसमे मेवा आदि अधिक मात्रा मे डाला जाता है। इसके अतिरिक्त इसको सुस्वादु और पौष्टिक बनाने के लिए इसमे थोडी-सी 'सोठि' (सोठ) भी डाल देते है। कसार की आकृति की अपेक्षा मेथी प्राय आधी होती है। जहाँ कसार का प्रधानतया प्रयोग सगे-सम्बन्धियो के यहाँ 'करनी' भेजने मे किया जाता है, वहाँ इसके ठीक विपरीत मेथी दैनिक जलपान के रूप मे व्यवहृत होती है। लोग इसे बडे शौक से खाते है। सम्भवत बडी आकृतिवाली मेथी को 'मेथौरा' कहा जाता है, अन्यथा इन दोनो की बनावट मे कोई अन्तर नही है।

(७) सठौरा

जब किसी स्त्री को बच्चा पैदा होता है, तब उसके जलपान के लिए 'सठौरा' बनाया जाता है, जो बडा पुष्टिकारक होता है। चावल का आटा पीसकर उसमे सोठ, गोद, चिरौजी, गरी, किसमिस आदि मिलाते है। फिर गुड का गाढा पाग बनाकर इसमे मिला देते है। फिर इसकी गोल-गोल छोटी-छोटी पिण्डियाँ बना ली जाती है। यही गाँव का 'सठौरा' है। शहरो मे आटा भूनकर इसे बनाया जाता है, जो अधिक स्वादयुक्त होता है।

(८) खाजा (खाझा)

विवाह के पश्चात् गवना के अवसर पर पुत्री के प्रथमबार ससुराल जाते समय 'खाजा' बनवाकर झपोलियो मे भर-कर भेजने की प्रथा है। जो पिता खाजा की जितनी ही अधिक झपोलियाँ भेजता है, उसकी उतनी ही अधिक प्रशसा होती है। अत झपोलियो के आधे भाग मे आम का केवल पत्ता भरकर इन झपोलियो की सख्या बढाने का प्रयास किया जाता है। खाजा 'गवने' के विधि-विधानो तथा प्रथाओ का एक आवश्यक अग है। इसको बनवाकर बिना भेजे पुत्री की 'करनी' की सम्पूणता नही समझी जाती।

खाजा एक उत्तम भोज्य पदाथ तथा जलपान है। इसकी इसी उत्तमता की ओर परिलक्षित करते हुए भारतेन्दु जी ने अन्धेर नगरी मे लिखा है कि —

> **"अन्धेर नगरी, चौपट राजा।**
> **टके सेर भाजी, टके सेर खाझा॥"**

बनाने की विधि

खाजा बनाने के लिए विशेष कौशल की आवश्यकता होती है। इसे अनाडी हलवाई नही बना सकते। खाजा गेहूँ के मैदे से बनाया जाता है, आटे से नही। पहिले मैदा को पानी लगाकर खूब सानते है। जब वह अच्छी तरह से गूथे जाने के कारण मुलायम हो जाता है, तब उसकी 'लोइया' बनाते हैं। इस लोइया को चकले पर बेलकर इसमे खूब घी लगाते है। फिर उसे मोडकर बेलते है और फिर घी लगाते हैं। यह क्रम पाँच या छह बार तक चलता रहता है। इस प्रकार लोइया के प्रत्येक पर्त मे घी अच्छी तरह से समाविष्ट हो जाता है।

अन्त मे उस लोइया को लम्बा बेलकर घी से भरी कडाही मे डाल देते हैं। इसमे बहुत मन्द आँच लगाने की आव-श्यकता होती है। जब यह घी मे पकने लगता है, तब हलवाई दो लकडियो की सहायता से इसके विभिन्न पर्तों को अलग-अलग कर देता है। पक जाने पर इसे बाहर निकाल लिया जाता है। फिर कडाही मे चीनी का गाढा पाग तैयार किया जाता है और उसे धीरे-धीरे छनवटा की सहायता से खाजा के प्राय प्रत्येक पर्त पर गिराया जाता है। पाग के सूख जाने पर खाजा बिल्कुल खानेयोग्य हो जाता है।

घी मे पकाकर, चीनी का पाग देकर सिक्त किया गया खाजा बडा स्वादिष्ट और सरस होता है। इसकी लम्बाई प्राय छह इन्च और चौडाई २-३ इन्च होती है। परन्तु जो खाजा बहुत छोटा होता है उसे खजुली कहते है। बाजार की दूकानो पर प्राय 'खजुली' बिकती है। जलपान के रूप मे खाजा का उपयोग किया जाता है, परन्तु ग्रामीण लोग गरम खौलते हुए दूध मे डालकर इसका भरपेट भोग लगाते है। गर्म दूध मे डालने से यह और अधिक मुलायम तथा स्वादिष्ट हो जाता है।

खाजा बारहो महीने नही बनाया जाता। इसके बनाने का उचित समय शीत ऋतु ही है। गर्मी मे खाजा बनाने की चाल नही है। चूकि इसके बनाने मे बडा झझट होता है अत गाँवो मे भी धीरे धीरे इसका प्रचार कम होता जा रहा है। खाजा भोजपुरी जनता का एक विशिष्ट खाद्य पदार्थ है, जिसका प्रचार उत्तरप्रदेश के अन्य जिलो मे नही पाया जाता। चूकि यह बहुत ही हल्का होता है, अत हल्की वस्तुओ के उपमान के रूप मे इसका प्रयोग किया जाता है।

(६) ओछवानी

नव-प्रसूता वधू को जलपान के लिए जो वस्तु दी जाती है उसे ओछवानी कहा जाता है। इसमे अनेक प्रकार की काष्ठ-ओषधिया मिलायी जाती है। इसके अतिरिक्त इसमे गुड, सूखी गरी, सोठ, मसाला, मगरैल, अजवाइन, छुहाडा, मखाना का लावा, किसमिस, गरी आदि पदार्थ भी डाले जाते है। पहिले आटा को घी मे खूब भून लिया जाता है। फिर उपर्युक्त काष्ठ ओषधियो को पानी मे पीसकर घी मे खूब पकाया जाता है। जब इसमे सोंधी गन्ध आने लगती है तब भूने गये आटा को इसमे डाल देते है। फिर दोनो को आपस मे अच्छी तरह से मिला देते है। इस प्रकार जो लड्डुआ तैयार होता है उसे 'ओछवानी' कहते है। चूकि इसमे घी, गुड, सूखा मेवा आदि अनेक पौष्टिक पदार्थ होते है अत यह बडा ही स्वास्थ्यवर्द्धक तथा पुष्टिकारक होता है। यह जच्चा को प्रतिदिन नाश्ता के रूप मे खिलाया जाता है जिससे उसका स्वास्थ्य ठीक बना रहे। इसके खाने से जच्चा को शक्ति प्राप्त होती है।

ओछवानी को बनाने तथा खाने की प्रथा गाँवो मे ही सीमित है। शहर की स्त्रियाँ प्राय इसे व्यवहार मे नही लाती। इसे 'मसाला' भी कहा जाता है। यह केवल नव-प्रसूता स्त्रियो को ही खिलाया जाता है।

(३) परिच्छेद

शाक

आयुर्वेद के जन्मदाता तथा प्रतिष्ठापक महर्षि धन्वन्तरि किसी एकान्त स्थान मे बैठे हुए थे। उसी के पास वृक्ष की डाल के ऊपर बैठी हुई कोई चिडिया कह रही थी—कोऽरुक कोऽरुक, कोऽरुक अर्थात इस संसार मे नीरोग कौन व्यक्ति है। आचार्य धन्वन्तरि ने चटपट इसका उत्तर दिया—हितभुक, मितभुक अशाक भुक। अर्थात जो व्यक्ति थोडा खाता है, लाभदायक वस्तुओ को खाता है और जो शाक का व्यवहार नही करता, वही नीरोग रहता है।

परन्तु भोजपुरी जनता धन्वन्तरि महाराज के इस सिद्धान्त मे तनिक भी विश्वास नही करती। यह शाक खाती है और खूब खाती है। यदि कोई शाक उपलब्ध न हो सका, तो चने का ही साग सही। पूर्वी अंचल मे जिन शाको को भोजन के कार्य मे प्रयुक्त करते है, उनकी संख्या काफी लम्बी है। अत इनमे से जो प्रधान शाक है उन्ही की संक्षिप्त चर्चा यहाँ की जाती है। प्रधानतया निम्नाकित शाक विशेष रूप से प्रयोग मे लाये जाते है —

(१) आलू, (२) कोहडा, (३) कटहल, (४) करैला, (५) लउकी, (६) तरोई, (७) रामतरोई, (८) नेनुआ, (९) सतपुतिया, (१०) अरुई, (११) अरुआ, (१२) सूरन, (१३) गोभी, (१४) सेम, (१५) साग, (१६) बोरो, (१७) कुँदरू, (१८) चिचिंडा, (१९) सहिजन, (२०) मूली, (२१) परवल, (२२) टमाटर, (२३) भण्टा, (२४) केला, (२५) गिरवँछ।

भोजपुरी क्षेत्र मे शाक को तरकारी कहते हैं। यद्यपि शाक शब्द के अन्तर्गत सभी प्रकार के व्यञ्जन अन्तर्भुक्त हो जाते है, परन्तु भोजपुरी मे साग—जो शाक का ही अपभ्रंश है—उस तरकारी के लिए प्रयुक्त होता है, जो पत्तियो वाली हैं—जैसे, चँवलाई, पालक और बथुआ आदि। तरकारी शब्द का प्रयोग सभी प्रकार के व्यञ्जनो के लिए किया जाता है। परन्तु 'साग' शब्द का व्यवहार सीमित अर्थ मे ही होता है।

(१) आलू—यह सबसे अधिक सुलभ, प्रसिद्ध तथा सर्वसाधारण जनता द्वारा प्रयोग मे लाये जानेवाला शाक है। उत्तरप्रदेश के पूर्वी क्षेत्र मे यह बहुत पैदा होता है और गरीब किसान की आमदनी का अनन्य साधन है। आलू प्राय बारहो महीने उपलब्ध होता है और गर्मी के दिनो मे तो बहुत सस्ता बिकता है। इसकी सुलभता और सस्तापन ही इसके समधिक प्रचार का कारण है। फिर यह महीना घर मे पडा रहे, तो भी खराब नही होता। दैनिक भोजन मे तथा विवाह आदि मे, भोज के अवसर पर इसका प्रचुर प्रयोग किया जाता है।

बनाने की विधि

आलू का शाक दो प्रकार से बनाया जाता है—(१) सूखा और (२) रसेदार। सूखे साग को 'भुजिया' कहते है। कुछ लोग 'झूरी' के नाम से भी इसे पुकारते है। आलू को छीलकर उसको छोटे-छोटे पतले टुकडो मे काट लिया जाता है। फिर घी या तेल मे मिर्चा, जीरा, मेथी आदि का 'फोरन' देकर इसे छौक देते है। फिर धीमी-धीमी आँच पर नमक डालकर इसको भूनते है। जब यह कुछ-कुछ लाल होने लगता है, तब इसे उतार लेते है। इसी को आलू की 'भुजिया' कहते है।

रसेदार आलू को बनाने की विधि यह है कि पहिले आलू को उबाल देते है। फिर उसका छिलका निकाल देते है। बाद मे इसे बडा-बडा काटकर तेल मे मिर्चा, जीरा, मेथी आदि का 'फोरन' डालकर छाक देते है। फिर इसमे गम-मसाला पीसकर, डालकर पकाते हैं। थोडा पानी रहने पर इसे उतारकर रख देते है।

आलू का एक दूसरे प्रकार से भी रसेदार शाक बनाया जाता है, जिसे 'आलूदम' कहते है। बडे-बडे आलू को लेकर उसके छिलके को चाकू से छील देते है। फिर इस आलू को चाकू की नोक से 'गोभते' है। फिर कडाही मे प्रचुर मात्रा मे तेल डालकर पहिले पीसे गये गम-मसाला को उसमे खूब भूनते है। इसके बाद उस 'साबुत' (सम्पूर्ण) आलू को बिना चीरे हुए, मसाले मे डाल देते हे। फिर थोडा-सा पानी डालकर उसे खूब धीमी-धीमी आँच मे पकाते है। जब थोडा-सा पानी शेष रह जाता है, तब उसे उतार लेते हे। यही 'आलू का दम' कहलाता है, जो खाने मे बडा स्वादिष्ट होता है।

यह तो आलू की अकेलेपन की कहानी है। परन्तु अन्य शाको के साथ मिलाकर भी आलू की तरकारी बनायी जाती है, जैसे आलू-गोभी, आलू-टमाटर, आलू-मटर, आलू-बैगन, आदि। आलू मे गम-मसाले के साथ थोडी दही भी डालते है। फिर इसे पकाते है, जिसमे दही के रस को वह 'सोख' ले। दधि-मिश्रित आलू का यह शाक बडा ही स्वादिष्ट होता है।

(२) कोहडा

कोहडा प्रचुर मात्रा मे पैदा होता है। इसकी बेल को बाँस का 'ठट्टर' बाँधकर अथवा किसी छप्पर पर चढा देते है। फिर यह बेल फैलती जाती है। कोहडे के फूल की पकौडी या 'बजका' बनाया जाता है। कोहडा खूब फलता है। शाको मे सम्भवत कटहल को छोडकर इसका फल सबसे बडा होता है। एक-एक कोहडे का वजन तीन-तीन चार-चार पसेरी या आधा मन के करीब होता है।

कोहडा का छिलका बडा मोटा होता है। अत उसे पहिले चाकू से छीलते है। फिर उसे छोटा-छोटा काटकर तेल मे छौक देते है। जब यह प्राय पकने को हो जाता है, तब इसमे आम की थोडी खटाई डाल देते है। बिना खटाई के कोहडे की तरकारी अच्छी नही बनती, जैसा कि निम्नाकित लोकोक्ति से स्पष्ट पता चलता है —

"खटाई बिनु कोहडा कइसे बनी।"

कच्चे कोहडे की तरकारी मे मसाला डालकर अथवा बिना मसाले के भी बनाया जाता है। पके कोहडे का शाक बनाते समय उसमे गुड और खटाई दोनो ही डालते है, जिससे इसका स्वाद बहुत अच्छा हो जाता है।

विवाह आदि अवसरो पर जहाँ सैकडो आदमियो के लिए कोहडे की तरकारी बनानी पडती है, वहाँ इसके छिलके को 'छीला' नही जाता। इसकी तरकारी बनाते समय इसको इतना अधिक पका देते है कि छिलका भी आपसे-आप 'गल' जाता है। बारात मे खिलाने के लिए बडे-बडे कडाहो मे बनते हुए कोहडे के शाक का दृश्य देखने ही लायक होता है।

(३) कटहल

यह गाँवो मे बडी आसानी से सुलभ होने वाला शाक है। प्राय प्रत्येक किसान के बगीचे मे कटहल के पेड होते है, जिनके ऊपर यह बडी प्रचुरता के साथ फलता है। एक-एक पेड मे पचास-पचास सौ-सौ कटहल लटकते हुए दिखाई देते हैं। कटहल का फल सम्भवत कोहडे को छोडकर सबसे बडा होता है, जिसमे किसी-किसी का वजन बीस-पचीस सेर तक होता है।

कटहल का शाक बनाने के पहिले इसके छिलके को—जो बडा कडा और मोटा होता है—'छील' कर निकाल देते है। फिर शेष अश को काटकर तेल मे छौक देते है। इसके बाद पीसकर इसमे गम मसाला डाल देते है। धीरे-धीरे इसे पकाकर उतार लेते है।

कटहल का शाक यदि ठीक से पका हुआ न हो और उसे अधिक खा लिया जाय, तो पेट मे दर्द पैदा हो जाता है। इसीलिए इसे व्यग्य मे 'कष्टकर' (कष्ट देनेवाला) भी कहा जाता है।

इसके शाक को एक दूसरे प्रकार से भी बनाते है। पहिले कटहल को छीलकर बडे-बडे टुकडो मे काटकर इसे पानी

मे उबालते हे। जब यह प्राय उबल जाता है, तब इसे घी मे छौक देते हैं। फिर बाद में उसमें गर्म मसाला पीसकर प्रचुर मात्रा मे डालते है। फिर धीमी-धीमी आँच पर इसको पकाते है। इस प्रकार का शाक तैयार [illegible] 'दरकन्दम' कहा जाता हे। इस शाक मे घी की मात्रा अधिक होनी चाहिए, तभी यह स्वादिष्ट होता है। और [illegible] में भी आसानी होती है।

भोजपुरी बारात को भोजन कराने के लिए कटहल और कद्दू की तरकारी अवश्य ही बनायी जाती है। इस शाक की विशेषता यह है कि अन्य शाको की भाँति यह पकाने पर कम नही होता—बल्कि और अधिक बढ जाता है। विवाह के अवसर पर कटहल के शाक को घर की स्त्रियाँ न तो छीलती है और न चीरती है। क्योंकि यह उनके वश की बात नही है। इस समय गाँव का बढई बुलाया जाता है और वह इन कटहलो की ढेर को अपने 'बसूले' से छीलता है तथा उसी से काटकर इसे छोटे-छोटे टुकडो मे कर देता हे। फिर इस शाक को बहुत बडे कडाह मे तेल मे छौंकते हैं और नमक तथा गर्म-मसाला डालकर इसे पकाते हे। निश्चित ही इस प्रकार प्रचुर परिमाण (Mass scale) मे पकाया गया यह शाक [illegible] ही जिह्वा का विशेष स्वाद प्रदान नही करता।

कच्चे कटहल की ही तरकारी बनायी जाती है। पक जाने पर इस शाक के काम में कदापि नहीं लाया जा सकता। पके हुए कटहल के भीतर प्राय गोल-गोल और कुछ लम्बी, पीली-पीली, पिण्डियाँ होती हैं जिसे 'कोवा' कहा जाता है। इसे भोजपुरी भाई बडे शौक से खाते हे। 'कोवा' को अधिक मात्रा मे खाना हानिकारक है। इससे पेट में दर्द पैदा हो जाता है। 'कोवा' से उत्पन्न बुरे प्रभाव को नष्ट करनेवाला (एण्टीडोट) घी होता है। अतः शौकीन लोग 'कोवा' को घी मे डुबोकर खाते है अथवा इसके खाने के पश्चात् थोडा घी पी लेते हैं, जिससे इसका बुरा प्रभाव नष्ट हो जाय। 'कोवा' खाने के पश्चात् ताम्बूल भक्षण नही करना चाहिए, अन्यथा ऐसा करने से पेट 'फूलने' लगता है।

(४) लौकी

भोजपुरी गाँवो मे जहाँ भी चले जाइये, वहाँ बाँस के ठट्टरों पर अथवा घर के छप्परों पर लौकी लटकती हुई दिखाई पडेगी। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने गाँवो का वर्णन करते हुए ठीक ही लिखा है —

"काशी-फल कूष्माण्ड कहीं हैं।
कहीं लौकियाँ लटक रही हैं।"

प्राय प्रत्येक ग्रामीण अपने घर मे लौकी बोता है। उसकी बेल को फैलने के लिए अवकाश प्रदान करता है। जाडे के दिनो मे लौकी—जिसे भोजपुरी मे 'लउका' कहते है—खूब ही फलती है। एक ही बेल में बीस-बीस, तीस-तीस, लौकियाँ लटकती हुई दिखाई पडती हैं।

लौकी का शाक बनाने के पहिले इसके छिलके को चाकू या 'सुतुही' से छील लेते हैं। फिर इसे लम्बा और पतला काटते है। जहाँ सभी शाक तेल मे छौके जाते हैं, वहाँ लौकी को घी मे जीरा के साथ छौंका जाता है। इसमें बहुत थोड़ा नमक डालते है और जब इसका पानी खूब अच्छी तरह से जल जाता है, तब इसे चूल्हे से उतार लेते है। लौकी के शाक मे मसाला नही डाला जाता और इसे केवल सूखा बनाया जाता है। गर्मी के दिनो मे इसका शाक विशेष चाव से खाया जाता है, क्योंकि इसकी 'तासीर' (असर) ठण्डी होती है।

लौकी को 'कद्दूकस' मे कसकर, इसे उबालकर तथा नमक और गर्म-मसाला डालकर इसका 'रायता' भी बनाया जाता है, जो बडा स्वादिष्ट होता है।

(५) करैला

इसे भोजपुरी मे 'करइला' कहते हैं। यह शाक भी बहुत पैदा होता है। करैला का शाक दो प्रकार से बनाया जाता है—(१) भुजिया और (२) कलौंजी। करैला को पहिले पतली और गोल आकृति मे काटते है। फिर इसे कडाही मे तेल और जीरा (मिर्चा से नही) से छौकते है। इसके बाद इसे मन्द-मन्द आँच पर पकाते हैं। यही करैला की भुजिया है।

कलौजी बनाने के लिए कुछ अधिक कुशलता की जरूरत होती है। पहिले करैला के छिलके को चाकू से छील लेते है। फिर उसमे थोडा नमक मलकर धूप मे सुखा देते हैं, जिससे उसकी 'तिताई' नष्ट हो जाय। फिर उस करैला के भीतर गर्म मसाला भरते हैं। तब उसे कडाही मे प्रचुर तेल डालकर मन्द-मन्द आँच पर पकाते है। इस प्रकार पकाये गये शाक को 'करैले की कलौजी' कहते है। यह 'करैले का भरुता' भी कहा जाता है। लोग इसे कई दिनो तक खाते रहते है, क्योंकि पूर्ण

तया तेल मे ही पके होने के कारण यह जल्दी खराब नही होता। इस 'मुरते' मे करैले की स्वाभाविक 'तिताई' का अभाव पाया जाता है।

करैले का 'चोखा' भी बनाया जाता है। पहिले इसे पानी मे उबाल देते है। फिर इसे हाथ से 'मीसकर' इसमे नमक, तेल, खटाई आदि डालते है। इस प्रकार तैयार किये गये करैले का 'चोखा' स्वादिष्ट होता है। करैले को गोल-गोल छोटे-छोटे टुकडो मे काटकर आलू के साथ इसे तेल मे भूना जाता है। इस प्रकार बनायी गयी आलू और करैले की भुजिया खाने मे बडी अच्छी लगती है।

(६) राम तरोई

भिण्डी को भोजपुरी मे 'राम तरोई' कहा जाता है। यह लम्बी और पतली होती है, सम्भवत इसीलिए इसे अग्रेजी मे 'लेडीज फिगर' कहते हे। इसे काटने के पहिले ही पानी से धो लिया जाता है। अन्यथा बाद मे 'चिपक' होने के कारण इसे धोना बडा कठिन होता है। इसे फिर तेल मे खूब भूनते है। भिण्डी बहुत जल्दी ही पक जाती है। अत इसे अधिक 'आच' की आवश्यकता नही होती। पक जाने पर भिण्डी की भुजिया तैयार हो जाती है।

कुछ स्त्रियाँ इसकी कलौजी भी बनाती है। वे भिण्डी को लम्बा लम्बा काटकर उसमे गम-मसाला भर देती है। फिर उसमे थोडा पानी डालकर पकाती है। परन्तु इसकी कलौंजी अच्छी नही बनती। राम तरोई की भुजिया इसकी कलौंजी की अपेक्षा अधिक स्वादिष्ट होती है।

(७) तरोई

यह नेनुआ की ही भाँति लम्बी और बडी होती है, परन्तु इसका छिलका बडा कडा होता है। इसके छिलके को छीलकर इसका शाक बनाया जाता है। इसे आग पर रखकर धीरे-धीरे इसके पानी को जलाते हैं, तब कही यह शाक बनकर तैयार होता है। इसमे मसाला नही डाला जाता। तरोई की आकृति लम्बी और कुछ मोटी होती है।

(८) नेनुआ

नेनुआ भी लम्बा और कुछ मोटा होता है। परन्तु तरोई की भाँति इसका छिलका मोटा नही होता। अतएव कुछ स्त्रियाँ इसके छिलके को बिना छीले ही इसकी तरकारी बनाती है। इसे कुछ लोग 'घेवडा' भी कहते हे। इसे भी पकाते समय इसमे से पानी बहुत निकलता है। इसमे मसाला डालने की जरूरत नही होती। जब इसका पानी सूख जाय, तब समझना चाहिए कि यह अच्छी तरह से तैयार हो गया। जिनके पिता की मृत्यु हो गयी है, ऐसे व्यक्तियो के लिए पितृपक्ष के दिनो मे इसका खाना निषिद्ध माना जाता है। इसीलिए आश्विन मास के कृष्ण पक्ष—जिसे पितृपक्ष भी कहा जाता है—मे यह शाक काशी मे बडा सस्ता बिकता है, क्योकि पितरो को तिलाञ्जलि देनेवाला कोई भी व्यक्ति इसका उपयोग नही करता है।

(९) सतपुतिया

यह नेनुआ की ही श्रेणी का शाक है। अन्तर केवल इतना ही है कि नेनुआ लम्बा और मोटा होता है, परन्तु यह पतली और छोटी होती है। यह 'झोप' मे फलती है, अर्थात् एक ही साथ इसकी अनेक फलियाँ लगी हुई रहती है। इसको भी पकाने पर पानी बहुत निकलता है, अत इसमे भी मसाले की कोई जरूरत नही होती है। घर के छप्पर पर 'सतपुतिया' की बेल मे सैकडो फलियाँ लगी हुई दिखाई पडती है। नेनुआ, तरोई, और सतपुतिया ये तीनो ही एक ही वग के शाक है और इनके बनाने की विधि भी एक ही है।

(१०) अरुई

यह शाक दो-तीन इच लम्बा होता है। इसे 'घुइयाँ' भी कहा जाता है। आलू की भाँति यह भी जमीन के नीचे पैदा होता है। पहिले इसे पानी मे उबालते है, फिर इसके छिलके को निकाल देते है। बाद मे इसे गोल तथा छोटा-छोटा काटकर तेल, मिर्चा, जीरा आदि मे छौक देते है। इसके पश्चात् थोडा नमक और आग मे भूनकर पीसा गया सूखा मसाला इसमे डाल देते है। इस प्रकार भूनी गयी अरुई की तरकारी बडी सोंधी और स्वादिष्ट होती है। इसका शाक बनाने की दूसरी विधि यह है कि कच्ची अरुई का छिलका हटाकर इसे चीरकर छौक देते है, फिर इसमे पीसकर गर्म-मसाला डालते हैं। इस प्रकार रसदार 'अरुई' का शाक तैयार हो जाता है। परन्तु भूनी गयी अरुई मे स्वाद अधिक होता है।

(११) अरुआ

यह कन्द या शकरकन्द के समान लम्बा और उससे दुगुना तथा तिगुना मोटा होता है। इसे छीलने, काटने तथा खाने से हाथ और मुँह मे खुजलाहट-सी मालूम होने लगती है। अतः इसको पकाने में मसाले, तेल तथा खटाई का अधिक प्रयोग किया जाता है। इसके भी बनाने की विधि वही है, जो अरुई की भुजिया या रसेदार शाक की है। अन्तर केवल इतना ही है कि इसमे तेल और खटाई की मात्रा अधिक होनी चाहिए। गरीब लोग अरुआ को उबालकर उसमें नमक, मिर्चा डालकर इसका 'चोखा' बनाकर खाते है। अरुआ निकृष्ट शाको मे माना जाता है। यह रसदार भी बनाया जाता है।

(१२) सूरन

सूरन आकृति मे गोल और कुछ लम्बाई लिये हुए होता है। इसका वजन आध सेर से दस सेर तक होता है। साधारणतया इसकी उपमा गुड की छोटी 'चकरी' से की जा सकती है। अरुआ की ही भाँति यह भी खाने पर गले मे खुजली पैदा कर देता है। अतः इस शाक को बनाने मे तेल, मिर्चा और 'अमचुर' (खटाई) प्रचुर मात्रा मे प्रयुक्त किया जाता है जिससे उत्पन्न होनेवाली खुजलाहट नष्ट हो जाय।[1] इसे भी अरुई की ही भाँति बनाया जाता है। बवासीर के रोगियों के लिए यह शाक बडा लाभदायक होता है। गरीब लोग इसका चोखा बनाकर खाते है।

(१३) सेमि

इसकी बेल होती है, जिसे लौकी की बेल की भाँति 'ठट्ठर' पर फैला दिया जाता है। इसकी फलियाँ लम्बी और चपटी होती है। ये एक साथ 'झोप' (ग्रूप) मे फलती है। सेमि को काटकर तेल मे छौंक देते है। फिर इसमे गर्म मसाला डाल कर धीरे-धीरे पकाते है। जब पानी प्राय सूख जाता है, तब इसे उतार लेते है। आलू के साथ भी सेमि के शाक को बनाया जाता है। इसका अँचार भी डाला जाता है।

(१४) गोभी

गोभी दो प्रकार की होती है—(१) फूलगोभी और (२) पातगोभी। फूलगोभी उसे कहते है जिसके मध्य मे प्राय सफेद फूल दिखाई पडता है। परन्तु पात गोभी मे केवल पत्ते ही पत्ते दृष्टिगोचर होते है। गोभी कोई स्वतन्त्र शाक नही है। यह सदा आलू के साथ ही बनाया जाता है, तभी इसमे असली स्वाद का अनुभव होता है। कच्चे आलू के साथ ही फूल या पातगोभी बनायी जाती है। आलू के साथ इसमे गर्म मसाला डालकर पकाया जाता है। जब थोडा पानी 'बाकी' रह जाता है, तब इसे उतार लेते है। फूलगोभी रसदार बनायी जाती है और पातगोभी सूखी। दोनो का अपना अलग अलग स्वाद है। जाडे के दिनो मे आलू-गोभी का शाक खूब खाया जाता है। यदि इसमे पका टमाटर और मटर की फली डाल दी जाय, तब इसका स्वाद सैकडो गुना अधिक हो जाता है।

(१५) बोरो

यह करीब ६ से १२ इञ्च तक लम्बा और पतला होता है। इसकी भी बेल होती है जो खूब फलती है। इसके छोटे छोटे टुकडो को काटकर उन्हे मसाले के साथ बनाया जाता है। विदेशी बीज की बोरो बडी मुलायम होती है और इसके दाने बडे-बडे होते है। इसको 'बोडो' तथा बरबटा भी कहते है।

(१६) परवल

परवल को भोजपुरी मे 'परोरा' कहा जाता है। बगाल मे इसे 'पटल' के नाम से पुकारते है। यह सभी शाको मे श्रेष्ठ, गुणकारी और स्वादिष्ट होता है। किसी अतिथि को, किसी विशिष्ट व्यक्ति को परवल का शाक खिलाना गौरव का विषय माना जाता है। धनी-मानी व्यक्ति ही विवाह आदि अवसरो पर दावतो मे लोगो को आलू-परवल का शाक खिलाते हैं। जिस प्रकार भोज्य पदार्थों मे पूडी और पूआ श्रेष्ठ समझा जाता है, उसी प्रकार शाको मे आलू और परवल की तरकारी उत्तम मानी जाती है।

१ हिन्दी के महाकवि बिहारी ने श्लेषालंकार के द्वारा सूरन की खुजलाहट और इसमें तेल और खटाई डालने पर इसके शाक या अँचार की सुस्वादुता की ओर संकेत किया है।

परवल का शाक स्वादिष्ट होने के अतिरिक्त लाभदायक भी होता है और आसानी से पच जाता है। इसीलिए वैद्य और डॉक्टर बहुत दिनो से उपवास करनेवाले रोगी को परवल के शाक का 'जूस' या 'रस' 'पथ्य' के रूप मे खाने को बताते है।

परोरा का शाक दो प्रकार से बनाया जाता है—(१) भुजिया, (२) रसदार। परोरा को पतला-पतला चीरकर उसे तेल मे छौक देते है। फिर धीमी-धीमी आँच लगाकर उसे पकाते है। खूब 'भून' जाने पर वह सोधा हो जाता है। यह 'भुजिया-परवल' है। 'रसदार-परवल' बनाने के लिए उसके केवल दो टुकडे करते है। फिर तेल मे छौककर उसमे पर्याप्त पानी मे पीसा हुआ गर्म-मसाला डालते है। फिर पक जाने पर थोडा-सा पानी रहते ही इसे उतार लेते है। यही रसदार परोरा का शाक है। परवल मे सूखा गम-मसाला डालकर भी इसे बनाते है। आलू के साथ बनाया गया रसदार 'परोरा' स्वाद मे अपना सानी नही रखता।

(१७) कुँदरू

इसकी आकृति परवल से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। बहुत-से कुँजडे इसी रूप-साम्य के कारण इसे परवल मे मिलाकर मँहगे दाम मे बेचते है। इसका शाक बुद्धि को नष्ट करनेवाला माना जाता है।[1] अत पण्डित लोग इसे नही खाते। परवल के समान ही यह भी बनाया जाता है।

(१८) बैंगन

इसे भोजपुरी मे 'भण्टा' कहते है। इसकी आकृति गोल भी होती है और लम्बी भी। आधुनिक प्रणाली से खाद आदि देकर पैदा किया गया गोल बैंगन, अपने वृहत् आकार के कारण, गोलाकार लौकी को भी चुनौती देता है।

गोल बैंगन विशेष रूप से 'भुरता' बनाने के काम मे लाया जाता है, जिसे भोजपुरी मे 'चोखा' कहते है। इसे लकडी अथवा 'गोइँठा' (उपले) की आँच मे पकाते है। फिर इसका छिलका छीलकर फेक देते है और इसमे नमक, मिर्चा, खटाई और सरसो का तेल डालकर इसे खूब 'मीसते' है। इस प्रकार बैंगन का 'चोखा' तैयार हो जाता है।

लम्बे तथा पतले बैंगन की 'कलौजी' बनायी जाती है। बैंगन को दो टुकडो मे काटकर उसमे गम-मसाला भर दिया जाता है, फिर तेल मे उसे छौक देते है और अन्दाज से थोडा पानी और नमक डाल देते है। धीमी-धीमी आच पर इसे पकाया जाता है। कुछ लोग केवल तेल मे ही इसे पकाते है। इस प्रकार बनायी गयी बैंगन की यह 'कलौंजी' किस शौकीन खानेवाले को अपनी ओर आकृष्ट नही कर लेती?

बैंगन वायुकारक होता है। इसी कारण वायु-रोग से पीडित लोग इसके शाक को नही खाते। यो भी, खाने पर यह वायु पैदा करता है। किसी-किसी व्यक्ति के पित्त को भी यह कुपित कर देता है। इसी तथ्य की ओर किसी कवि ने निम्नांकित पक्तियो मे उल्लेख किया है —

"भटा एक को पित्त करे।
करे एक को बाय॥"

(१९) टमाटर

टमाटर शब्द अग्रेजी के 'टोमैटो' का अपभ्रश रूप है। गाँवो मे इसे 'बिलायती भण्टा' कहा जाता है। आज से लगभग तीस वर्ष पहिले गाँवो मे इसका प्रयोग अपवित्र माना जाता था और 'बिलायती भण्टा' कहकर यह हेय दृष्टि से देखा जाता था। परन्तु आजकल, क्या शहर और क्या गाव, सवत्र इसका प्रचार समान रूप से उपलब्ध होता है। इसमे 'विटामिन' अधिक होने के कारण लाल टमाटर को लोग नमक के साथ बडे शौक से खाते है।

टमाटर कोई स्वतन्त्र शाक नही है। इसकी तरकारी सदा आलू या मटर के साथ मिलाकर ही बनायी जाती है। तभी यह स्वादिष्ट लगता है। डॉक्टर लोग रोगियो को टमाटर का 'जूस' पीने के लिए बताते है। कुछ लोग टमाटर को पानी मे डालकर, उसका छिलका हटाकर उसे 'मीस' देते है। फिर इसे घी मे जीरा डालकर छौक देते है। इस प्रकार बनाया गया टमाटर का जूस स्वादिष्ट होता है। आजकल टमाटर का प्रयोग अनेक रूपो मे किया जा रहा है, परन्तु उसकी चर्चा मेरे क्षेत्र से बाहर की वस्तु है।

---

१ **"सद्य प्रज्ञा हरी तुण्डी, सद्य प्रज्ञा करी वचा।"**

(२०) सहिजन

इसकी आकृति लम्बी और पतली होती है। इसे चीरकर तथा मसाला [illegible] पकाया जाता है, परन्तु इसका स्वाद कुछ अच्छा नही होता। इसके शाक को खाया नही जाता, [illegible] 'बगा' [illegible] शाक है, अधिक सख्त हो जाने पर इस शाक को पकाना भी एक [illegible] है।

(२१) केला

केला का शाक खाने की प्रथा बहुत कम है। इसे केवल शौकीन लोग ही खाते है [illegible] रोगी को इसका शाक पथ्य के रूप मे दिया जाता है। भिण्डी के ही समान केला का शाक [illegible] जाता है। पहिले कच्चे केले के छिलके को चाकू से छीलकर अलग कर देते है। फिर [illegible] घी म जीरा, मिर्चा आदि 'फोरन' देकर इसको 'छौकते' है। फिर पानी म पीसा हुआ गरम मसाला [illegible] धीमी आँच पर पकाते है। जब मसाले का पानी सूख जाता है, तब इसे उतारकर [illegible] इसका स्वाद द्विगुणित हो जाता है। एक तो केला मँहगा बिकता है, दूसरे इसका शाक [illegible] बिना घी तथा गम-मसाला के इसका शाक नही बनाया जा सकता। इन्ही कारणो से इसकी तरकारी [illegible] कम लोग खाते है।

(२२) चिचिंडा

इस शाक की आकृति बडी टेढी-मेढी और बहुत लम्बी होती है। कहीं कहीं यह [illegible] फीट से भी अधिक लम्बा पाया जाता है। इसकी बेल 'ठट्टर' या पेड पर चढा दी जाती है। चिचिंडा के [illegible] लटकते हुए देखकर सर्प की आकृति की आशका होती है। इसे मसाला डालकर पकाया जाता है। इसका स्वाद कुछ विशेष रुचिकर नही होता।

(२३) मूली

साधारणतया मूली छोटी और पतली होती है। परन्तु जौनपुर की मूली बडी ही भारी और लम्बी होती है, जिसका वजन आठ-दस किलो से कम नही होता। मूली की पत्तियो का शाक बनाया जाता है, तथा मूली की कलौंजी पकायी जाती है। इसकी कलौजी बनाने का प्रकार वही है, जिसका उल्लेख बैगन की कलौंजी के प्रसंग में किया जा चुका है। 'ननुआ' के साथ मूली की तरकारी अच्छी बनती है। इन दोनो का बडा मेल है।

इसके अतिरिक्त सत्तू खाते समय मिर्चा की भाँति मूली भी खायी जाती है। भात दाल या रोटी के साथ भी नमक मे बोरकर मूली को खाते है। जैसे सत्तू भोजपुरी पथिका का पाथेय है, वैसे ही मूली उनका [illegible]' शाक है, जिसे पकाने की जरूरत नही पडती। इसीलिए सत्तू के साथ मूली और हरा मिर्चा अवश्य खाया जाता है।

मूली को सिल पर पीसकर इसकी चटनी भी बनायी जाती है। '[illegible]' में [illegible] इसका रायता भी तैयार किया जाता है। इसका अचार स्वाद मे बडा अच्छा लगता है। इस प्रकार मूली का उपयोग तरकारी, चटनी और अचार इन तीनो मे किया जाता है। यह भोजपुरी किसान का अत्यावश्यक शाक है जिसका प्रयोग वह नित्यप्रति करता है। यह खेतो मे प्रचुर मात्रा मे उत्पन्न होती है। अतएव सुलभ होने के कारण इसका बडा व्यापक प्रचार है।

(२४) साग

भोजपुरी 'साग' का अभिप्राय इन तरकारियो से होता है, जो पत्तेदार (क्लिफी) होती है। अत खडीबोली के 'शाक' और भोजपुरी 'साग' मे बडा अन्तर है। साग कई प्रकार का होता है—

(१) चँवराई का साग
(२) पालक का साग
(३) करेमू का साग
(४) बथुआ का साग
(५) गुल्फा का साग
(६) चने का साग
(७) मटर का साग
(८) मेथी का साग

(९) सरसो का साग और

(१०) नोनी (लोनी) का साग।

इन सागो मे चँवराई और पालक का साग सवश्रेष्ठ माना जाता है। पालक के साग को पकाते समय इसमे थोडा 'सोआ' भी डाल दिया जाता है, जिससे इसमे सुगन्ध आ जाती है और स्वाद मे भी वृद्धि हो जाती है। दैनिक व्यवहार मे आने के अतिरिक्त चँवराई और पालक का साग दावतो मे भी अतिथियो को खाने के लिए दिया जाता है। इनके बनाने की विधि यह है कि इन्हे पहिले (बिना पानी डाले) उबालते है। फिर साग को छानकर शेष जल को फेक देते है। इसके बाद तेल मे 'फोरन' देकर इसे धीमी-धीमी आँच पर भूनते है। जब इसका पानी बिल्कुल सूख जाता है, तब इसे बडे प्रेम से खाते है।

'करेमू' का साग सम्भवत पानी मे पैदा होता है। अत इसे बहुत पवित्र मानते है। ऋषिपचमीव्रत के दिन 'तीना' के चावल के साथ इसी शाक को खाते है। 'बथुआ' का साग बडा स्वादिष्ट होता है। इसे 'चने के साग' के साथ मिलाकर पकाते है। आलू के साथ भी इसको बनाया जाता है। इसके साग को उबालकर, आटे मे डालकर इसकी कचौडी भी पकायी जाती है। 'गुल्फा' (कुल्फा) कोई स्वतन्त्र तरकारी नही है। अर्थात् इसे बिना आलू मे डाले अलग नही पकाया जा सकता। यह कुछ खट्टा होता है, अत आलू के साथ पकाने से आलू का स्वाद और भी अच्छा हो जाता है। 'मेथी का साग' कुछ तीता होता है। इसे भी आलू के साथ ही मिलकर पकाते है। 'सरसो के साग' को खाने की विशेष प्रथा नही है, परन्तु कुछ लोग इसे बडे शौक से खाते है। 'मटर का साग' प्राय वायुकारक (बादी) होता है, अत इसका प्रयोग अपेक्षाकृत कम किया जाता है।

परन्तु भोजपुरी क्षेत्र मे 'चना के साग' का अधिक प्रचार है। यह गरीबो का साग ही नही, बल्कि उनका भोजन भी है। कितने ही निधन व्यक्ति इसके शाक को ही पेटभर खाकर अपनी भूख को शान्त करते है। चने के पौधे की 'फुनगी' (ऊपरी भाग) को तोडकर, उसमे पानी डालकर उबालते है। उबल जाने पर इसके पानी को निकाल देते हे। फिर कडाही मे तेल, मिर्चा, मेथी डालकर इसे छौंक दिया जाता है। पानी के सूख जाने पर और अच्छी तरह से भून जाने पर इसे उतार लिया जाता है। गरीब आदमी इसे तेल मे भूनते नही। बल्कि उबले हुए साग मे थोडा तेल और मिर्चा डालकर उसे खूब मीसते है और फिर भात या रोटी के साथ इसे खाते है। यह मुफ्त मे मिलनेवाला गरीबो का साग है।

'नोनी के साग' की पत्तियाँ बडी ही छोटी-छोटी होती है। यह साग बोया नही जाता, बल्कि आप-से-आप खेत अथवा मैदान मे उत्पन्न होता है। इसको तेल मे छौंककर इसका साग बनाया जाता है, जो खाने मे कुछ खटास लिये हुए रहता है। चूँकि यह बिना मोल का ही मिलता है, अत गरीब लोग इसे बडे चाव से खाते हैं।

(२५) गिरवँछ

'अरुआ' के पत्तियो से 'गिरवँछ' की तरकारी बनायी जाती है, जिसके पकाने की प्रक्रिया बडी कठिन है। पहिले अरुआ की छोटी, नयी तथा मुलायम पत्तियो को इसके लिए चुना जाता है। बेसन मे नमक, मिर्चा, खटाई और गर्म-मसाला डालकर उसे थोडे-से पानी मे घोलते है, जिससे वह गाढा रहे। अरुआ की पत्तियो को फैलाकर उसमे यह गाढा बेसन लगा दिया जाता है। फिर उस पत्ती को चारो ओर से लपेट कर उसकी चौकोर आकृति बना लेते है। पत्तियो के पर्त्त कही खुल न जायँ इसलिए इन्हे अरुआ की पत्ती के डण्ठल से निकाले गये तन्तु से अच्छी तरह से बाँध देते हैं। फिर बटुली मे थोडा पानी डालकर इसे उबालते हैं। अच्छी तरह से उबल जाने पर इसे तेल मे डालकर 'छान' लेते हैं। इस प्रकार बनाया गया 'गिरवँछ' जिसे 'रिकवँछ' भी कहा जाता है—जिह्वा को बडा आनन्द देता है। गरीब लोग उबाले गये 'गिरवँछ' को तेल मे नही 'छानते' बल्कि उसे यो ही तवे पर रखकर सोधा बना लेते है। 'गिरवँछ' मे भी अरुआ के शाक की भाँति तेल और खटाई का अश अधिक होना चाहिए, अन्यथा यह खाने के पश्चात् गले मे खुजली उत्पन्न कर देता है। 'गिरवँछ' 'विशेष' भोजपुरी भोज्य पदार्थ (शाक) है, जो सम्भवत अन्य क्षेत्रो मे नही बनाया जाता।

(४) परिच्छेद

(क) अचार

यह भोजन का एक आवश्यक अग है। यह भोजन के स्वाद मे वृद्धि उत्पन्न करता है और खाने की इच्छा को अधिक उत्तेजित कर देता है। खिचडी के सम्बन्ध मे तो यहाँ तक कहा गया है कि इसके चार आवश्यक मित्रो, अर्थात् उपादानो मे से एक अचार भी है —

"खिचडी के चार इयार।
दही, पापड, घी, अँचार॥"

कहने का आशय यह है कि भोजन मे सहायक होने के कारण भोज्य पदार्थों मे अचार की स्थिति आवश्यक है।

चतुर तथा 'गिहिथिनि' स्त्रियाँ मिट्टी के मटका मे अचार लगाकर (बनाकर) कई वर्षों तक सुरक्षित रखती हैं और किसी विशेष अतिथि या सम्बन्धी के आने पर ही इसका प्रयोग करती हैं। यो तो अचार अनेक प्रकार के होते है परन्तु निम्नलिखित ही अधिक प्रचलित और व्यवहृत होते है। जिन फलो से अचार बनाये जाते है उनकी सूची इस प्रकार है —

(१) आम, (२) कटहल, (३) बड़हल, (४) मिर्चा, (५) अमड़ा, (६) आँवला (७) करौना (८) नीबू, (९) आलू, (१०) करैला, (११) सेमि, (१२) इमिली, (१३) कदम्ब, (१४) अनरस (१५) मूली, (१६) सूरन और (१७) गोभी।

(१) अनुच्छेद—अचार

(१) आम

जिस प्रकार से फलो मे आम सबसे अधिक प्रिय तथा प्रचलित है उसी प्रकार से इसका अचार अपनी श्रेणी मे सर्व प्रथम स्थान का अधिकारी है। प्रत्येक भोजपुरी घर मे आम का अचार प्रतिवर्ष ही थोड़ा-बहुत लगाया (बनाया) जाता है, जिसका कारण उसकी सुलभता ही समझनी चाहिए। इस अँचार को लगाने (बनाने) की विधि यह है कि पहिले इसके लिए 'गूदेदार' आम को चुना जाता है। फिर इसे चार टुकड़ो मे काटकर इसमें नमक और थोड़ी हल्दी लगाकर एक-दो दिन के लिए छोड देते है। जब नमक आम के टुकड़ो के अन्दर अच्छी तरह से प्रवेश कर जाता है तब इन टुकड़ो मे गर्म मसाला भरा जाता है। आम के अचार के प्रधान मसाले ये है —

मिर्चा, अजवाइन, मँगरैल, सरसो, खटाई, राई, पिसी हुई धनिया आदि।

इन सभी वस्तुओ मे सरसो का तेल डालकर इन्हे सानते है और इस मसाले को आम के इन टुकड़ो मे भर देते हैं, फिर इन्हे धूप मे एक दिन सुखाते है। इसके पश्चात् मिट्टी के किसी मटके मे इन्हें रखकर इनमे इतना अधिक सरसो का तेल डालते है कि ये उसमे डूब जायँ। इस प्रकार कुछ दिनो के बाद आम का अँचार तैयार हो जाता है। यदि तेल मे यह डुबाया गया रहे, तो दो-तीन साल तक खराब नही होता।

कच्चे आम को छीलकर, उसके गूदे को काटकर उसे सिल पर थोड़ा 'कूँच' देते है। फिर इसमे नमक, मिर्चा, तेल आदि मिलाकर धूप मे रख देते है। कूँच या 'कूट' कर बनाये जाने के कारण यह 'कूँचा' कहलाता है। इसका भी अपना एक विशेष स्वाद होता है।

(२) कटहल

इसका अचार भी बडा स्वादिष्ट होता है। यह दो प्रकार से बनाया जाता है—(१) कच्चा और (२) उबालकर। पहिले कच्चे कटहल का छिलका हटा देते हैं। फिर उसे छोटे-छोटे टुकड़ो मे काटकर उसमे अँचार का मसाला लगाते हैं। बाद मे यह धूप मे सूखने के लिए रख दिया जाता है। कुछ सूख जाने पर इसमे तेल डालते है। कच्चा कटहल का अँचार यद्यपि टिकाऊ तो होता है, परन्तु यह बहुत दिनो मे बनकर तैयार होता है और स्वाद मे भी उतना अच्छा नही होता।

दूसरी पद्धति के अनुसार पहिले कटहल को बड़े-बड़े टुकड़ो मे काटकर उन्हे पानी मे उबाला जाता है। आधे से अधिक उबल जाने पर इन्हे धूप मे थोडा सुखा दिया जाता है, जिससे इसका पानी सूख जाय। फिर इसमे अचार का मसाला डालकर फिर थोडा धूप मे सुखाते है। बाद मे प्रचुर परिमाण मे इसमे तेल डालकर रख देते है। इस प्रकार से बनाया गया अँचार यद्यपि अधिक दिनो तक नही रह सकता, परन्तु स्वाद मे यह पहिले की अपेक्षा अधिक उत्तम होता है।

(३) बड़हर

इसका अचार प्रायः कच्चे रूप मे ही बनाया जाता है। कटहल की ही भाँति इसमे भी मसाला और तेल डाला जाता है। 'सिरके' मे भी डालकर इसका अचार तैयार किया जाता है।

(४) मिर्चा

इसे भोजपुरी मे 'मरिचा' कहते हैं। मिर्चा दो प्रकार का होता है—(१) हरा मिर्चा और (२) लाल मिर्चा। हरा मिर्चा के भी दो भेद होते है—(१) 'मिरिचाई' और (२) मिरिचा। मिरिचाई छोटी और पतली होती है, परन्तु स्वाद मे यह बडी तीती होती है। मिरिचा आकृति मे उसकी अपेक्षा बड़ा होने पर भी स्वाद मे उससे कम तीता होता है। लाल मिर्चा करीब तीन-चार इञ्च लम्बा और बडा तथा मोटा होता है। इसी का अचार बनाया जाता है।

इस मिर्चे को सिरे की ओर से थोडा तोड करके इसके पेट के भीतर लकडी या सीक की सहायता से अचार का सूखा मसाला अच्छी तरह से ठूँस-ठूँस कर भरा जाता है। इसके पश्चात् इसे धूप मे थोडा सुखा देते हैं। फिर बाद मे इसे तेल मे डुबोकर रख देते है। यदा-कदा इसे धूप भी दिखाया जाता है, जिसकी गर्मी से यह अच्छी तरह से पक जाता है। आम और कटहल के बाद अचार मे इसी का नम्बर आता है। सत्तू के साथ मिर्चे का अचार खूब खाया जाता है।

(५) अमडा

जब अमडा पूण वृद्धि को प्राप्तकर बडा हो जाता है, तब इसके भीतर 'जाली' पड जाती है। अत इसके पहिले ही अमडे को अचार के लिए तोड लेना चाहिए। फिर इसे दो टुकडो मे काटकर उबाल देना चाहिए। बाद मे अचार का मसाला डालकर इसे धूप मे थोडा सुखाया जाता है। फिर इसमे काफी तेल डालकर समय-समय पर धूप मे रखते रहते है। अमडा जितना ही छोटा और बिना जाली का होगा, उसका अचार उतना ही अच्छा होगा।

(६) आँवला

यह दो प्रकार का होता है—(१) बडा और (२) छोटा। बडा ऑवला मुरब्बा बनाने के काम मे लाया जाता है और छोटे ऑवले का अचार बनाया जाता है। पहिले ऑवले को पानी मे उबाल लेते हें। फिर इसमे अचार का मसाला, तेल और नमक डालकर खूब मिला देते है। बाद मे थोडी धूप मे इसे सुखाते है। इसमे सरसो का तेल अधिक नही डाला जाता। कुछ स्त्रियाँ उबाले गये आँवले का बीज निकाल देती है। शेष बचे हुए आँवले के गूदे मे मसाला डालकर इसकी पिण्डी बनाकर सुखा देती है और बाद मे इसमे काफी तेल डालती है। आँवले की यह पिण्डी बहुत दिनो तक खराब नही होती।

(७) करौना

इसका फल छोटा और गोल होता है। पक जाने पर यह लाल हो जाता है। कच्चे करौने को दो टुकडो मे काटकर उसमे अचार का मसाला डालते है। फिर इसे धूप मे सुखाते और तेल डालकर रख देते है। धूप मे अचार को रखने का केवल यही आशय होता है कि उसका मसाला पक जाय। करौना 'झोप' मे पैदा होता है और छोटे लडके इसे कच्चा ही तोडकर खूब खाते हैं। इसकी चटनी भी बनायी जाती है, जो बडी स्वादिष्ट होती है।

(८) नीबू

इसके अचार को भोजपुरी मे 'निमकी' कहा जाता है। नीबू भी दो प्रकार का होता है—(१) कागदी और (२) साधारण। कागदी नीबू मे रस बहुत अधिक होता हैं। इसीलिए लोग इसका अचार 'लगाते' (बनाते) है और इसके रस को दाल में 'गारकर' खाते हैं। यह अपेक्षाकृत बडा होता है और पकने पर पीला पड जाता है। साधारण नीबू छोटा तथा रस-हीन होता है। यह विशेष उपयोगी नहीं होता।

नीबू का अचार दो प्रकार से डाला जाता है। पहिले नीबू को पानी मे डुबो देते है। चौबीस घण्टे के बाद इसे निकालते है। फिर इसके छिलके को किसी पत्थर पर इतना रगडते है कि वह बिल्कुल घिस जाय। किसी मटके मे रखकर, ऊपर से पीसा हुआ नमक डालकर फिर इसे धूप मे रख देते हैं। इस प्रकार नमक तथा धूप की गर्मी से नीबू धीरे-धीरे पकने या 'गलने' लगता है। इसके बाद इसमे 'गलगल' नीबू का रस, 'अदरख' (आदी) के टुकडे तथा हरे मिर्चे को काटकर डाल दिया जाता है। कुछ दिनो के पश्चात् नीबू का स्वादिष्ट अचार तैयार हो जाता है।

कुछ लोग इसके छिलके को पत्थर पर बिना रगडे ही, इसे चार 'फाक' (टुकडे) करके इसमे मसाला डाल देते है और धीरे-धीरे धूप मे 'पकाते' हैं। परन्तु यह अचार स्वादिष्ट नही होता, क्योंकि इसका ऊपरी छिलका अन्त तक नही 'गलता'। यही एक ऐसा अचार है, जिसमे तेल की आवश्यकता बिल्कुल नही पडती। यह बहुत स्वादिष्ट तथा लाभदायक होता हैं, इसीलिए वैद्य या डॉक्टर रोगी के लिए नीबू का अचार (निमकी) खाने का आदेश देते है। यह सस्ते मे बिना किसी झझट के बनाया जा सकता है।

(९) आलू

आलू की तरकारी तो बनती ही है। इसका अचार भी बनाया जाता है। यह अधिक दिनो तक टिकाऊ नहीं होता। इसीलिए विवाह आदि अवसरो पर बारातियों को खिलाने के लिए इसे तत्काल तैयार कर लिया जाता है। पहिले बडे-बडे

आलुओ को उबालकर उनका छिलका छुडा लिया जाता है। फिर उन्हे छोटे टुकडो मे काटकर उसमे मसाला, तेल, नमक आदि मिलाया जाता है। इसके बाद इसे धूप मे रखकर थोडा सुखा देते है। फिर तेल डालकर मजे मे खाते है।

(१०) करैला

करैला को भी उबालकर ही इसका अचार बनाया जाता है। इसके भी बनाने की वही प्रक्रिया है जो आलू के अचार की है।

(११) सेमि

सेमि को करैला की भाँति उबालकर ही इसका अचार बनता है, जिसे तैयार करने की प्रक्रिया ठीक आलू के ही समान है। उपर्युक्त तीनो ही शाको का अचार अधिक दिनो तक नही टिक सकता। अत भोज आदि के अवसर पर ही इन्हे बनाया जाता है, जो दो-तीन दिनो मे ही समाप्त हो जाता है।

(१२) इमली

पेड पर पकी हुई इमली के 'फहुओ' को लेकर, उसमे नमक, मिर्चा और तेल डाल देते है। इस प्रकार इसका अचार तैयार हो जाता है। इसमे किसी भी मसाले की आवश्यकता नही होती। कभी-कभी इसकी फली मे से बीजो को निकालकर आँवले की भाति इसकी भी पिण्डी बनाते है, जिसे तेल मे डालकर बहुत दिनो तक सुरक्षित रखते है।

(१३) कदम्ब

अधकचरे कदम्ब के फल को काटकर, इसमे मसाला डालकर अचार बनाया जाता है। इस अचार का विशेष प्रचार नही है, क्योकि यह लघु परिमाण मे पाया जाता है।

(१४) सूरन

इसका अचार बडा ही स्वादिष्ट होता है और इसका स्वाद तो मुँह से नही छूटता। सूरन का अचार दो प्रकार से बनाया जाता है—(१) कच्चा, और (२) उबालकर। पहिली प्रणाली से अचार बनाते समय सूरन को ओखली मे खूब कूटा जाता है। फिर इसमे खटाई, नमक, मिर्चा आदि मसाला डाला जाता है। इसके अचार मे सरसो का तेल तथा खटाई प्रचुर मात्रा मे होनी चाहिए, अन्यथा खाते समय यह मुँह मे खुजलाहट उत्पन्न कर देता है।

दूसरा तरीका सूरन को उबालकर अचार बनाने का है। सूरन को छोटे-छोटे टुकडो मे काट लेते है फिर उन्हे पानी मे उबालते है। थोडी देर तक धूप मे सुखाने के पश्चात् इनमे पूर्ववत् उन्ही मसालो तथा तेल-नमक को डाल देते है। पहिले तरीके से बनाया गया अचार अधिक टिकाऊ तथा दूसरे प्रकार का अचार अधिक स्वादिष्ट होता है।

(१५) अदरख

आदी को ही भोजपुरी मे 'अदरख' कहा जाता है। इसका अचार अत्यन्त स्वादिष्ट और स्वास्थ्यकर होता है। इसमे न तो तेल की ही आवश्यकता होती है और न मसाले की ही। यह बिना किसी झझट के ही एक-दो घण्टे मे तैयार हो जाता है।

अदरख को पहिले छीलते है। फिर इसे छोटे-छोटे टुकडो मे काटकर किसी शीशे के बर्तन अथवा अमृतबान मे रख देते है। फिर इसमे 'गलगल' नामक रसदार नीबू का रस निचोडकर डालते हैं। इसके अतिरिक्त हरे मिर्चो के कुछ टुकडे तथा मूली को काटकर इसमे थोडे नमक के साथ छोड देते हैं। फिर इस बर्तन को धूप मे रख देते है। दो-तीन घण्टो के अन्दर ही इसका अचार तैयार हो जाता है। तीन-चार दिनो के पश्चात् नीबू के रस मे पककर अदरख लाल हो जाता है और इसका स्वाद अत्यधिक बढ़ जाता है।

(१६) मूली

मूली दो प्रकार की होती है—(१) छोटी और (२) बडी। छोटी तथा कच्ची मूली भोजन के साथ खायी जाती है, परन्तु बड़ी मूली का उपयोग अचार के लिए ही किया जाता है। पहिले मूली को कद्दूकस मे अच्छी तरह से कसते हैं। फिर इसमे

अचार का मसाला, नमक और तेल डालकर धूप मे रख दिया जाता है। मसाला के पकते ही मूली का अचार तैयार हो जाता है, जो खाने मे जिह्वा को बडा आनन्द देता है। अदरख की ही भाँति यह भी जल्दी ही तैयार हो जाता है।

(२) अनुच्छेद—चटनी

जिस प्रकार से जीवन मे हास्य (humuor) का होना आवश्यक है, उसी प्रकार से भोजन मे चटनी की स्थिति उपादेय है। चटनी के द्वारा बुभुक्षा को तीव्रगति प्राप्त होती है और मनुष्य भोजन को अधिक मात्रा मे करने मे समथ होता हे। कुछ लोग चटनी के बडे शौकीन होते है, तथा भोजन के समय नियमित रूप से इसे खाते है। जिस प्रकार चतुरगिणी सेना के चार अग होते है, उसी प्रकार भोजन के भी चार आवश्यक अवयव हैं—(१) तरकारी, (२) अचार, (३) चटनी (४) और 'गोरस'। बहुत-सी स्त्रियाँ चटनी के बिना प्रेम-पूर्वक भोजन ग्रहण नही करती। इसकी प्रतिध्वनि लोकगीतो मे भी सुनाई पडती हे'—

"दाल खइली, भात खइली, पूडी पर तरकारी।
चटनी बिना रूसल बाडी, बिन्दू के महतारी।।"

चटनी अनेक प्रकार की वस्तुओ से बनायी जाती है, जिनमे से प्रधान निम्नाकित है —

(१) आम, (२) इमली, (३) कोइता (कैथा), (४) टमाटर, (५) अमरस, (६) करौंना, (७) अमडा, (८) अमचुर, (९) मूली और (१०) धनिया।

(१) आम की चटनी

जिस प्रकार आम का अचार बडा स्वादिष्ट होता है, उसी प्रकार इसकी चटनी भी जायकेदार होती है। आम की चटनी दो प्रकार की होती है—(१) कच्चे आम की बनायी गयी और (२) खटाई से तैयार की गयी। कच्चे आम को लाकर पहिले उसके छिलके को छीलकर गूदा को चाकू से काट लेते हे। फिर इसके साथ पुदीने की थोडी-सी पत्तियाँ, हरा मिर्चा और नमक को लेकर पिल पर खूब पीसते है। इसके पश्चात् इसमे थोडा-सा सरसो का तेल छोड देते है। बस, आम की चटनी तैयार हो जाती है।

यदि कच्चा आम उपलब्ध न हो, तो सूखी खटाई को पहिले थोडे-से पानी मे भिगो देते है। फिर इसे सिल पर मिर्चा, पुदीने के साथ पीसते है। फिर इसमे थोडा पीसा नमक और तेल डाल देते है। यदि खटाई भी प्राप्त न हो सके, तो अमचुर को पीसकर इसकी चटनी बनायी जा सकती है। आम के कच्चे टुकडो को दाल मे डाल देते है और वह जब पक जाता है, तब उसको मीसकर तथा उसमे नमक, मिर्चा और तेल डालकर चटनी बनाकर खाते है।

(२) कोइता

इसे 'आलू बोखारा' भी कहा जाता है। कोयता के फल को, जो बडा सख्त होता है—को फोडकर उसका गूदा निकाल लेते है। फिर उसमे नमक, मिर्चा डालकर पीसते है। कोयता चूकि स्वय खट्टा होता है, अत इसकी चटनी अच्छी बनती है। परन्तु यह अपेक्षाकृत कम उपलब्ध होता है।

(३) इमली

आम के पश्चात् दूसरा स्थान इमली की ही चटनी का है। कच्ची तथा पककर सूखी हुई—दोनो प्रकार की इमली से चटनी बनायी जाती है। पहिले इमली का बीज निकाल लेते है। फिर शेष इमली को मिर्चा के साथ सिल पर पीसते है। जो सूखी इमली होती है, उसे पीसने की आवश्यकता नही होती। पहिले उसे पानी मे घण्टो तक भिगो देते हैं। जब वह काफी 'फूल' जाती है, तब उसे हाथ से मीसकर उसके बीज को निकाल देते है। फिर उसमे पीसा नमक, मिर्चा, तेल आदि डालते है। इस प्रकार इसकी चटनी तैयार हो जाती है। यह चटनी पतली होती है। ग्रामीण किसान सत्तू के साथ इसे बडे शौक से खाते है।

(४) टमाटर

कच्चे तथा पके टमाटर की चटनी बनती है, टमाटर को मिर्चा, पुदीना आदि के साथ पीसकर इसमे थोडा-सा सरसो का तेल छोड देते है। बस, यही टमामर की चटनी है।

(५) अमरस

कच्चा अमरस बडा ही खट्टा होता है। अत इसे पीसकर चटनी के रूप मे इसका प्रयोग किया जाता है।

(६) करौना

यह भी 'खटास' मे अपना सानी नही रखता। कच्ची तथा पक्की दोनो ही अवस्थाओ में यह खट्टा बना रहता है अत इसकी चटनी खट्टी होने के कारण अच्छी होती है।

(७) अमडा

जब अमडा अभी छोटा हो और 'जाली' न पडने पायी हो तभी उसकी चटनी अच्छी बनती है। इसे मिर्चा के साथ सिल पर पीसते है और नमक, तेल डालकर इसकी चटनी बनाते है।

(८) अमचुर

अमचुर शब्द 'आम्रचूण' का अपभ्रंश रूप है। कच्चे आम का छिलका उतारकर, उसके छोटे-छोटे टुकडे काटकर उन्हे धूप मे सुखा देते हैं। बिल्कुल सूख जाने पर खटाई के इन टुकडो को 'ओखली' मे कूटकर अथवा 'जाँत' मे पीसकर इसका चूण बना लेते हैं, जिसे 'अमचुर' कहा जाता है। इसी अमचुर मे पानी डालकर इसे नमक और मिर्चा के साथ सिल पर पीसते है। बाद मे इसमे सरसो का तेल डालते है। इस प्रकार अमचुर की चटनी तैयार हो जाती है। कभी-कभी अमचुर को पीसने की भी आवश्यकता नही होती। इसमे तेल, मिर्चा और नमक डालकर शीघ्र ही चटनी बना ली जाती है।

(९) मूली

मूली और इसकी पत्ती दोनो की चटनी बनायी जाती है। मूली के साथ नमक तथा मिर्चा को सिल पर पीसकर चटनी तैयार की जाती है। परन्तु इसकी पत्तियो के साथ खटाई भी पीसनी पडती है। तभी यह स्वादिष्ट बनती है अन्यथा नही।

(१०) धनिया

धनिया की हरी पत्तियो को सिल पर पीसते है। फिर इसमे अमचुर, नमक और मिर्चा तथा थोडा सरसो का तेल डाल देते है। इस प्रकार जो चटनी तैयार होती है वह बडी स्वादिष्ट होती है।

(३) अनुच्छेद—रायता

भोजन के सहायक उपादानो मे अचार और चटनी के बाद रायता का स्थान है। अचार की भाँति रायता अधिक दिनो तक 'टिकाऊ' नही होता। यह दो-तीन दिन से अधिक नही रखा जा सकता, क्योंकि दही के कारण इसमें अधिक खटास उत्पन्न हो जाती है और बुरी गन्ध आने लगती है। इसीलिए शौकीन लोग प्रतिदिन ताजा रायता बनवाते और खाते है। रायता साधारणतया निम्नाकित वस्तुओ से बनाया जाता है —

(१) लौकी, (२) खीरा, (३) बथुआ, (४) प्याज और (५) केला।

(१) लौकी का रायता

पहिले लौकी को 'हँसुआ' से खूब 'महीन' या पतला चीरते है अथवा कद्दूकस मे कसते है। फिर इसे उबालते हैं। जब यह पक जाता है, तब इसे नीचे उतारकर इसको 'मीस' कर पानी निकाल देते हैं। इसके पश्चात् इसमे खट्टी दही, भूना हुआ गर्म-मसाला, नमक, पीसा हुआ लाल मिर्चा आदि डालते हैं। फिर इसे धूप मे थोडी देर के लिए रख देते है। इस प्रकार तैयार किया गया लौकी का रायता बडा स्वादिष्ट होता है। इसके लिए खट्टी दही का होना अत्यन्त आवश्यक है। यह रायता तीन-चार दिन से अधिक नही रखा जा सकता।

(२) खीरा का रायता

इसका रायता बडी जल्दी ही तैयार हो जाता है। पहिले खीरा को कद्दूकस मे कसकर खूब पतला बना लेते हैं। फिर इसमे खट्टी दही, भूना हुआ गर्म-मसाला, पीसा हुआ मिर्चा और नमक डालते हैं। इस प्रकार यह तैयार किया जाता है।

लौकी के रायते की भांति इसे उबालने की आवश्यकता नही पडती। खीरा का रायता बडा स्वादिष्ट होता है और कुछ मिनटो मे ही तैयार किया जा सकता है।

(३) बथुआ का रायता

बथुआ के ाक को पहिले अच्छी तरह से उबालते है। जब यह पक जाता है, तब इसके पानी को निकाल देते है। फिर इसमे पूर्वोक्त मसालो और दही तथा नमक को डालकर रायता तैयार करते है।

(४) प्याज का रायता

प्याज को कद्दूकस से कसकर पतला कर लेते है। फिर इसमे दही, नमक, मसाला आदि मिलाते है। इसमे मिर्चा नही डाला जाता, क्योकि यह स्वय कुछ तीता और कुछ कडुआ होता है। इसे उबालने की आवश्यकता नही होती।

(५) केला का रायता

पूर्वोक्त रायते की भाति केला का रायता नमकीन न होकर मीठा होता है। पके हुए केले की फली को लेकर उसे छोटे-छोटे टुकडो मे काटते हे। फिर इसमे मीठी (खट्टी नही) दही और थोडी-सी चीनी डाल देते है। फिर तीनो को एक-दूसरे के साथ अच्छी तरह मे मिलाते है। इस प्रकार केले का मीठा रायता बनकर तैयार हो जाता है। परन्तु इसे सर्वसाधारण जनता नही खाती। धनी तथा शौकीन लोग ही इसे व्यवहार मे लाते है।

(४) अनुच्छेद—खटमिट्ठी

यह भी एक प्रकार की चटनी ही है, परन्तु इसमे गुड या चीनी डालने के कारण खट्टी के साथ ही यह मीठी भी लगती है। इसीलिए इसे 'खटमिट्ठी' नाम से पुकारा जाता है। यह प्रधानतया तीन चीजो से बनायी जाती है—

(१) आम, (२) इमली और (३) टमाटर

(१) आम की खटाई को पहिले पानी मे भिगो देते है। जब यह काफी फूलकर मुलायम हो जाती है, तब इसे हाथो से मलते है। फिर चीनी या गुड का पाग बनाकर इसमे छोड देते हैं। इसके बाद मिर्चा तथा अन्य आवश्यक मसाला इसमे डालते है। कुछ लोग किसमिस तथा छुहारे के टुकडो को इसमे छोड देते है। दो-चार दिन तक धूप मे रख देने के पश्चात् इसे प्रेमपूवक खाया जा सकता है।

(२) इमली को पहिले पानी मे भिगो देते है। इसके फूल जाने पर हाथ से मलकर इसके बीज को निकालकर फेक देते है। फिर कडाही मे तेल, मिर्चा, जीरा डालकर इसे छौक देते है। तत् पश्चात् इसमे गुड या चीनी का 'पाग' डालकर दोनो को खूब आग पर पकाते है। यही इमली की खटमिट्ठी है।

(३) टमाटर—पहिले इसे पानी मे उबालते है, फिर इसका छिलका छुडाकर फेक देते है। बाद मे इसे हाथ से खूब मलकर घी में जीरा, मिर्चा डालकर छौकते है। फिर इसमे चीनी डालकर इसे खूब आग पर पकाते है। जब चीनी टमाटर मे अच्छी तरह से समाविष्ट हो जाती हे, तब इसे उतार लेते है। इस प्रकार टमाटर की खटमिट्ठी तैयार हो जाती है।

मुरब्बा

इसको विशेष रूप से जलपान के लिए बनाया जाता है। आँवला और 'श्रीफल' के 'मुरब्बे' मे पहिला अधिक प्रिय तथा प्रचलित है। मुरब्बा कहने से आँवले के मुरब्बे का ही बोध होता है। मुरब्बा बनाने के लिए बिना रेशेवाले बडे-बडे आँवले ही उपयोगी होते है। इन मुरब्बो को लेकर चाकू या काँटेदार चम्मच से इनको 'गोमते' है। जिससे चीनी का रस इसके भीतर तक प्रविष्ट हो जाय। फिर उस आवले को पानी मे उबालते है। इसके पश्चात् चीनी का गाढा 'पाग' बनाकर उसमे इनको डुबो दिया जाता है। कुछ दिनो के पश्चात् आँवला, चीनी के रस को अच्छी तरह से 'पी' लेता है। फिर इस मुरब्बे का उपयोग शौक से जलपान के लिए किया जाता है। इसकी 'तासीर' बडी ठण्डी होती है, अत गर्मियो मे इसका प्रयोग विशेष रूप से लाभदायक तथा प्रिय होता है।

'श्रीफल' का मुरब्बा 'आँव' से पीडित व्यक्तियो के लिए विशेष गुणकारी होता है। कच्चे श्रीफल को कई टुकडो मे काटकर उसे उबालते है। जब वह अच्छी तरह से उबल जाता है, तब उसमे चीनी का गाढा पाग बनाकर डाल देते है। कुछ दिना के बाद यह मुरब्बा तैयार हो जाता है।

(५) परिच्छेद—मिष्ठान्न

भोजपुरी मे मिष्ठान्न को 'मिठाई' कहते है। यो तो मिठाई सभी को अच्छी लगती है, परन्तु बच्चे इसके बडे प्रेमी है। परदेश से आनेवाला पिता अपने बच्चो के लिए मिठाई लेकर घर आता है। भाई अपनी बहिन से मिलने जाते य झपोली मे भरकर मिठाइयाँ ले जाता है। घर मे अतिथि-अभ्यागत के आ जाने पर मिठाई से उसको जलपान कराया ा है। विवाह के अवसर पर बारात मे आनेवाले बारातियो को भरपेट मिठाई खाने को दी जाती है। इस र प्रत्येक अवसर पर स्वागत-सत्कार तथा बालको के मनोरञ्जन के लिए मिठाई की आवश्यकता पद-पद पर प्रतीत ो है।

भोजपुरी मिठाइया आटा, बेसन, चावल, चीनी, और गुण आदि के सम्मिश्रण से बनायी जाती है। यो तो इनकी ा बहुत है, परन्तु यहाँ केवल प्रधान-प्रधान मिठाइयो का ही सक्षिप्त वणन किया जाता है, जो निम्नाकित है —

(१) टिकरी, (२) जलेबी, (३) पटउरा, (४) बतासा, (५) लकठो, (६) बुनिया, (७) गुरुमा, (८) अनरसा,) मनरसा, (१०) गाटा, (११) कुटकी, (१२) लड्डू, (१३) पेडा, (१४) खजुली, (१५) गुलाबजामुन।

) टिकरी

भोजपुरी मिठाइयो मे 'टिकरी' और 'जलेबी' बहुत प्रसिद्ध है। जिस दूकान पर जाइये य दोनो मिठाइयाँ अवश्य ही ब्ध होगी। टिकरी बनाने की विधि यह कि आटे को सानकर घी मे खूब भूना जाता है। फिर एक रुपये के बराबर उनकी लोइयाँ बनाकर घी मे उसे पकाते है। फिर चीनी का गाढ़ा पाग बनाकर उसमे टिकरी को डुबो देते है। पाग ख जाने पर टिकरी तैयार हो जाती है। टिकरी का आटा जितना ही अधिक घी मे भूना जाता है, वह उतना ही अधिक दिष्ट होता है। यह दस-पन्द्रह दिन तक रखी रहने पर भी खराब नही होती। अत अतिथियो के जलपान कराने मे का उपयोग विशेष रूप से किया जाता है।

) जलेबी

यह बडी ही स्वादिष्ट मिठाई है। बच्चे इसे खाने के लिए बडे लालायित रहते है। जलेबी के आटे को सानकर दो- दिन तक उसे यो ही छोड देते है। फिर उसे हाथ से खूब 'फेटते' है। जब उसम 'तार' बँधने लगता है, तो उस गाढ़े मूत पदार्थ को किसी चुक्कड या पुरवा मे रखकर उसके नीचे छेद कर देते है। इसी छेद के द्वारा घी से भरी कडाही स द्रव को अनेक गोली आकृतियो को बनाते हुए गिराते है। इसके पक जाने पर चीनी क बनाये गये 'पाग' की कडाही मे डुबो देते है और लगभग आधे घटे तक इसे यो ही रहने देते है। फिर उसे छनौटे से निकाल लेते है। इस प्रकार रस री हुई जलेबी तैयार हो जाती है।

ताजी-ताजी जलेबियो को ही खाने मे आनन्द आता है। बासी हो जाने पर इनका रस सूख जाता है, अत इनमे कोई द नही रहता। इसी कारण जलपान करने के लिए इन्हे टिकरी की भाँति सुरक्षित नही रखा जा सकता।

) बतासा

यह चीनी से बनाया जाता है। इसे महीनो तक रखा जाय, तो भी यह खराब नही होता। अत यह जलपान के लिए उपयोगी होता है। चीनी को पानी मे घोलकर उसे आग पर खौलाते है। जब वह काफी गाढा हो जाता है, तब उसका ा-थोडा अश लेकर नीचे बिछी हुई चादर अथवा किसी कपडे पर डाल देते हैं। जब यह सूख जाता है, तब इसके छोटे-छोटे शे बन जाते है। बडे-बडे बताशे भी बनाये जाते है, जिन्हे सगे-सम्बन्धियो के यहाँ 'करनी' के रूप मे भेजा जाता है। गाँवों हाँ हलुवाई की दूकाने नही होती, वहाँ बताशे को मिट्टी की हडियो मे रखकर अतिथियो के जलपान के लिए सुरक्षित ो है।

) लकठो

बेसन मे थोडा घी 'मीसकर' उसे सानते हैं। फिर उसे बेलकर उसके छोटे-छोटे लम्बे टुकडे काट लेते है। फिर इसे मे पकाते है। इसके पश्चात् चीनी के गाढ़े पाग मे इसे डाल देते हैं। जब पाग सूख जाता है, तब 'लकठो' तैयार हो जाता बारातियो को 'माहौ' और 'लकठो' जलपान करने के लिए दिया जाता है।

(५) बुनियाँ

यह बेसन की बनायी जाती है। बेसन को गीला सानकर इसे छनवटे के ऊपर रखकर हाथ से मलते या रगडते हैं। ऐसा करने से उसके छेदो मे से छोटे-छोटे बेसन के दाने घी से भरी हुई कडाही मे गिरकर पकने लगते है। फिर इन्हे कडाही मे से छनौटे से छानकर चीनी के गाढे पाग से भरी हुई दूसरी कडाही मे डाल देते है। इसके पश्चात् इन्हे छानकर अलग रख देते हे। रस से भरी हुई यह बुनियाँ बडी स्वादिष्ट होती है।

बारातो मे जलपान के लिए बनायी जानेवाली बुनिया बहुत बडी-बडी होती है। इसे चीनी की पाग मे नही डालते बल्कि थोडा-सा 'पाग' इसके ऊपर छिडक देते हे। इस प्रकार थोडी सी मिठास इसमे आ जाती है।

(६) पटउरा

यह सफेद होता है और चीनी से बनाया जाता है। इसकी आकृति कुछ गोली और चपटी होती है। यह बहुत कडा होता है। इसमे सफेद तिल अथवा इसके अभाव मे कालातिल डाला जाता है। पटउरा के बनाने की विधि कुछ सरल नही है। पटउरा जितना ही मुलायम होगा, वह उतना ही अच्छा समझा जाता है। टिकरी की ही भाँति पटउरा अनेक महीनो तक सुरक्षित रखा जा सकता है। यह अतिथियो को जलपान कराने का सुन्दर साधन है। बलिया का पटउरा बडा प्रसिद्ध माना जाता हे।

(७) खुरमा

आटे मे थोडा घी मलकर उसे कडा सानते हैं। फिर उसे बेलकर, चाकू से उसके लम्बे, परन्तु छोटे-छोटे टुकडे काट लेते हे। फिर इन टुकडो को घी मे पकाते है। इसके पश्चात् चीनी का गाढा पाग बनाकर इनको उसमे डाल देते है। फिर पाग के सूख जाने पर इसे निकाल लेते है। इसी को 'खुरमा' या 'खुर्मा' कहा जाता है। यह अधिक दिनो तक रखने पर भी खराब नही होता।

(८) कुटकी

जिस पद्धति से 'पटउरा' बनाया जाता है, 'कुटकी' भी उसी रीति से बनायी जाती है। कुटकी की आकृति छोटी और गोली होती है। यह बच्चो के मनोरजन के लिए अच्छी मिठाई है।

(९) गाटा

गाटा गुड से बनाया जाता है, इसीलिए इसका रग कुछ लाल होता है। यह मिठाई क्या है, बच्चो के मन को बहलाने का एक साधन मात्र है। यह इतनी चिपकनेवाली और 'चीमर' मिठाई होती है कि सरकण्डे के ऊपर इसे लपेटकर लडके इसको धीरे-धीरे खाते नही, बल्कि चाटते रहते है। यह बडा सस्ता बिकता है।

(१०) अनरसा

यह चावल से बनाया जाता है। जहाँ अन्य मिठाइयाँ बेसन या आटे से तैयार की जाती हैं, वहाँ 'अनरसा' और 'मनरसा' चावल के द्वारा तैयार किया जाता है। अनरसा को बनाने की सम्भवत विधि यह है कि चावल को पीसकर आटा बना लेते है। फिर इसमे चीनी डालकर इसे सानते है। इसके पश्चात् इसे हाथ की हथेली के बराबर गोल और पतला बेलते है। बाद मे इसे घी मे डालकर पका लेते है। यही अनरसा है। यह सफेद और स्वच्छ होता है।

इसे सस्ते भाव मे बेचने के लिए हलुवाई चावल के आटे मे चीनी के स्थान मे गुड डाल देते है और इसे घी मे न पकाकर तेल मे पकाता है। ऐसे अनरसे का रग लाल होता है। यह देखने मे मद्दा और खाने मे स्वादहीन होता है।

(११) मनरसा

यह भी चावल से बनाया जाता है। इसकी भी बनाने की प्रक्रिया सम्भवत वही है, जो अनरसा की है, परन्तु दोनो की आकृति मे कुछ अन्तर होता है।

(१२) लड्डू

लड्डू भोजपुरियो की बडी प्रिय मिठाई है। 'भोजनभट्ट' लोगो का यह प्राण है। सस्कृत मे इसे 'मोदक' कहते है। हिन्दी मे 'मनमोदक खाना' जो मुहावरा है, वह इसी मोदक की श्रेष्ठता को घोतित करता है। सम्भवत ब्राह्मणो को यह

(५) परिच्छेद—मिष्ठान्न

भोजपुरी मे मिष्ठान्न को 'मिठाई' कहते है। यो तो मिठाई सभी को अच्छी लगती है, परन्तु बच्चे इसके बडे प्रेमी होते है। परदेश से आनेवाला पिता अपने बच्चो के लिए मिठाई लेकर घर आता है। भाई अपनी बहिन से मिलने जाते समय झपोली मे भरकर मिठाइयाँ ले जाता है। घर मे अतिथि-अभ्यागत के आ जाने पर मिठाई से उसको जलपान कराया जाता है। विवाह के अवसर पर बारात मे आनेवाले बारातियो को भरपेट मिठाई खाने को दी जाती है। इस प्रकार प्रत्येक अवसर पर स्वागत-सत्कार तथा बालको के मनोरञ्जन के लिए मिठाई की आवश्यकता पद-पद पर प्रतीत होती है।

भोजपुरी मिठाइयाँ आटा, बेसन, चावल, चीनी, और गुण आदि के सम्मिश्रण से बनायी जाती है। यो तो इनकी संख्या बहुत है, परन्तु यहा केवल प्रधान-प्रधान मिठाइयो का ही सक्षिप्त वर्णन किया जाता है, जो निम्नाकित है —

(१) टिकरी, (२) जलेबी, (३) पटउरा, (४) बतासा, (५) लकठो, (६) बुनिया, (७) खुरमा, (८) अनरसा, (९) मनरसा, (१०) गाटा, (११) कुटकी, (१२) लड्डू, (१३) पेडा, (१४) खजुली, (१५) गुलाबजामुन।

(१) टिकरी

भोजपुरी मिठाइयो मे 'टिकरी' और 'जलेबी' बहुत प्रसिद्ध है। जिस दूकान पर जाइये ये दोनो मिठाइयाँ अवश्य ही उपलब्ध होगी। टिकरी बनाने की विधि यह कि आटे को सानकर घी मे खूब भूना जाता है। फिर एक रुपये के बराबर बडी उनकी लोइयाँ बनाकर घी मे उसे पकाते है। फिर चीनी का गाढा पाग बनाकर उसमे टिकरी को डुबो देते है। पाग के सूख जाने पर टिकरी तैयार हो जाती है। टिकरी का आटा जितना ही अधिक घी मे भूना जाता है, वह उतना ही अधिक स्वादिष्ट होता है। यह दस-पन्द्रह दिन तक रखी रहने पर भी खराब नही होती। अत अतिथियो के जलपान कराने मे इसका उपयोग विशेष रूप से किया जाता है।

(२) जलेबी

यह बडी ही स्वादिष्ट मिठाई है। बच्चे इसे खाने के लिए बडे लालायित रहते है। जलेबी के आटे को सानकर दो-तीन दिन तक उसे यो ही छोड देते है। फिर उसे हाथ से खूब 'फेंटते' है। जब उसमे 'तार' बँधने लगता है, तो उस गाढे खमीरभूत पदार्थ को किसी चुक्कड या पुरवा मे रखकर उसके नीचे छेद कर देते है। इसी छेद के द्वारा घी से भरी कडाही मे उस द्रव को अनेक गोली आकृतियो को बनाते हुए गिराते है। इसके पक जाने पर चीनी के बनाये गये 'पाग' की कडाही मे उसे डुबो देते है और लगभग आधे घटे तक इसे यो ही रहने देते है। फिर उसे छनौटे से निकाल लेते है। इस प्रकार रस से भरी हुई जलेबी तैयार हो जाती है।

ताजी-ताजी जलेबियो को ही खाने मे आनन्द आता है। बासी हो जाने पर इनका रस सूख जाता है, अत इनमे कोई स्वाद नही रहता। इसी कारण जलपान करने के लिए इन्हे टिकरी की भाँति सुरक्षित नही रखा जा सकता।

(३) बतासा

यह चीनी से बनाया जाता है। इसे महीनो तक रखा जाय, तो भी यह खराब नही होता। अत यह जलपान के लिए बडा उपयोगी होता है। चीनी को पानी मे घोलकर उसे आग पर खौलाते हैं। जब वह काफी गाढ़ा हो जाता है, तब उसका थोडा-थोडा अश लेकर नीचे बिछी हुई चादर अथवा किसी कपडे पर डाल देते हैं। जब यह सूख जाता है, तब इसके छोटे-छोटे बताशे बन जाते है। बडे-बडे बताशे भी बनाये जाते है, जिन्हे सगे-सम्बन्धियो के यहाँ 'करनी' के रूप मे भेजा जाता है। गाँवों मे जहाँ हलुवाई की दूकाने नही होती, वहाँ बताशे को मिट्टी की हडियो मे रखकर अतिथियो के जलपान के लिए सुरक्षित रखते है।

(४) लकठो

बेसन मे थोडा घी 'मोसकर' उसे सानते हैं। फिर उसे बेलकर उसके छोटे-छोटे लम्बे टुकडे काट लेते हैं। फिर इसे घी मे पकाते है। इसके पश्चात् चीनी के गाढ़े पाग मे इसे डाल देते हैं। जब पाग सूख जाता है, तब 'लकठो' तैयार हो जाता है। बारातियो को 'माहीं' और 'लकठो' जलपान करने के लिए दिया जाता है।

(५) बुनियाँ

यह बेसन की बनायी जाती है। बेसन को गीला सानकर इसे छनवटे के ऊपर रखकर हाथ से मलते या रगडते हैं। ऐसा करने से उसके छेदो मे से छोटे-छोटे बेसन के दाने घी से भरी हुई कडाही मे गिरकर पकने लगते है। फिर इन्हे कडाही मे से छनौटे से छानकर चीनी के गाढे पाग से भरी हुई दूसरी कडाही मे डाल देते है। इसके पश्चात् इन्हे छानकर अलग रख देते हे। रस से भरी हुई यह बुनियाँ बडी स्वादिष्ट होती है।

बारातो मे जलपान के लिए बनायी जानेवाली बुनिया बहुत बडी-बडी होती है। इसे चीनी की पाग मे नही डालते बल्कि थोडा-सा 'पाग' इसके ऊपर छिडक देते हे। इस प्रकार थोडी सी मिठास इसमे आ जाती है।

(६) पटउरा

यह सफेद होता है और चीनी से बनाया जाता है। इसकी आकृति कुछ गोली और चपटी होती है। यह बहुत कडा होता है। इसमे सफेद तिल अथवा इसके अभाव मे कालातिल डाला जाता है। पटउरा के बनाने की विधि कुछ सरल नही है। पटउरा जितना ही मुलायम होगा, वह उतना ही अच्छा समझा जाता है। टिकरी की ही भाँति पटउरा अनेक महीनो तक सुरक्षित रखा जा सकता है। यह अतिथियो को जलपान कराने का सुन्दर साधन है। बलिया का पटउरा बडा प्रसिद्ध माना जाता है।

(७) खुरमा

आटे मे थोडा घी मलकर उसे कडा सानते हैं। फिर उसे बेलकर, चाकू से उसके लम्बे, परन्तु छोटे-छोटे टुकडे काट लेते है। फिर इन टुकडो को घी मे पकाते है। इसके पश्चात् चीनी का गाढा पाग बनाकर इनको उसमे डाल देते है। फिर पाग के सूख जाने पर इसे निकाल लेते है। इसी को 'खुरमा' या 'खुर्मा' कहा जाता है। यह अधिक दिनो तक रखने पर भी खराब नही होता।

(८) कुटकी

जिस पद्धति से 'पटउरा' बनाया जाता है, 'कुटकी' भी उसी रीति से बनायी जाती है। कुटकी की आकृति छोटी और गोली होती है। यह बच्चो के मनोरजन के लिए अच्छी मिठाई है।

(९) गाटा

गाटा गुड से बनाया जाता है, इसीलिए इसका रग कुछ लाल होता है। यह मिठाई क्या है, बच्चो के मन को बहलाने का एक साधन मात्र है। यह इतनी चिपकनेवाली और 'चीमर' मिठाई होती है कि सरकण्डे के ऊपर इसे लपेटकर लडके इसको धीरे-धीरे खाते नही, बल्कि चाटते रहते है। यह बडा सस्ता बिकता है।

(१०) अनरसा

यह चावल से बनाया जाता है। जहाँ अन्य मिठाइयाँ बेसन या आटे से तैयार की जाती है, वहाँ 'अनरसा' और 'मनरसा' चावल के द्वारा तैयार किया जाता है। अनरसा को बनाने की सम्भवत विधि यह है कि चावल को पीसकर आटा बना लेते है। फिर इसमे चीनी डालकर इसे सानते है। इसके पश्चात् इसे हाथ की हथेली के बराबर गोल और पतला बेलते है। बाद मे इसे घी मे डालकर पका लेते है। यही अनरसा है। यह सफेद और स्वच्छ होता है।

इसे सस्ते भाव मे बेचने के लिए हलुवाई चावल के आटे मे चीनी के स्थान मे गुड डाल देते है और इसे घी मे न पकाकर तेल मे पकाता है। ऐसे अनरसे का रग लाल होता है। यह देखने मे भद्दा और खाने मे स्वादहीन होता है।

(११) मनरसा

यह भी चावल से बनाया जाता है। इसकी भी बनाने की प्रक्रिया सम्भवत वही है, जो अनरसा की है, परन्तु दोनो की आकृति मे कुछ अन्तर होता है।

(१२) लड्डू

लड्डू भोजपुरियो की बडी प्रिय मिठाई है। 'भोजनभट्ट' लोगो का यह प्राण है। सस्कृत मे इसे 'मोदक' कहते हैं। हिन्दी मे 'मनमोदक खाना' जो मुहावरा है, वह इसी मोदक की श्रेष्ठता को द्योतित करता है। सम्भवत ब्राह्मणो को यह

मिठाई बडी प्रिय होती है, जैसा कि 'मोदकप्रिया हि ब्राह्मणा' उल्लेख से स्पष्ट प्रतीत होता है। परन्तु ब्राह्मणो को ही नही, देवताओ को भी यह लड्डू बहुत पसन्द है। हनुमान् जी को बेसन का लड्डू अच्छा लगता है, तो गणेश जी को मोतीचूर का। सम्भवत गणेश जी इन्ही लड्डुओ के खाने से इतने तुन्दिल (तोंदइल) हो गए हैं। मंगल के दिन हनुमान् जी को लड्डू चढाया जाता है।

यदि अतिथि-अभ्यागत को जलपान करने के लिए लड्डू दिया जाय, तो उसे वह अपना परम गौरव समझता है। बारातो मे तथा अन्य दावतो मे भी लड्डू प्रचुर परिमाण मे खिलाया जाता है। कहने का आशय यह है कि इस मिष्ठान्न का समधिक गौरव और प्रचार है, एव यह मानव तथा देवता—दोनो को समान रूप से आनन्द देनेवाली वस्तु है।

लड्डू अनेक प्रकार का होता है, जैसे—

(१) मोतीचूर का लड्डू
(२) महीनदाने का लड्डू }
(३) बेसन का लड्डू
(४) सकर लड्डू
(५) आटे का लड्डू
(६) तीसी का लड्डू
(७) खोवे का लड्डू।

(१) मोतीचूर का लड्डू

यह लड्डू विशेष रूप से प्रचलित है। यह बेसन से बनाया जाता है। पहिले बेसन को पानी मे गाढा घोलते है। फिर छनवटे मे द्रवरूप गाढे बेसन को रख देते है। उसके नीचे घी की कडाही रहती है। बेसन छनवटे के छोटे-छोटे छिद्रो मे से होकर कडाही मे गिरने लगता है, फिर 'बुनिया' को कडाही मे से निकाल लेते है। इसके बाद उस बुनिया मे चीनी का गाढा पाग या सीरा इस अन्दाज से डालते है कि बुनिया सारे सीरे को सोख ले। फिर उसमे इलायची, पतला काटा गया पिस्ता आदि डालकर लड्डू बनाते है। यही 'मोतीचूर' का लड्डू कहलाता है। जब बुनिया के दाने छोटे-छोटे होते है और चीनी अपेक्षाकृत कम डाली जाती है, तब इसे 'महीनदाने' का लड्डू कहते है। यह अधिक स्वादिष्ट होता है।

कभी कभी हलुवाई बहुत बडी-बडी बुनिया बनाते है और उसमे जानबूझकर आवश्यकता से अधिक चीनी डाल देते है। इस प्रकार जो लड्डू बनाया जाता है, वह भी लड्डू ही है, परन्तु घटिया किस्म का है। विवाह के पश्चात् लडकी की बिदाई के अवसर पर 'करनी' के रूप मे पाव-पाव भर वजन के बडे-बडे लड्डू बनवाये जाते है, जिनमे बुनिया और चीनी का अनुपात उचित परिमाण मे नही होता। ब्रह्मभोज मे, विवाह के अवसर पर तथा अन्य प्रकार की दावतो मे महीनदानेवाला मोतीचूर का लड्डू ही व्यवहार मे लाया जाता है। लोग इसे बड़े प्रेम से खाते है।

(२) बेसन का लड्डू

मोतीचूर के लड्डू से बेसन के लड्डू का स्वाद बिल्कुल भिन्न होता है, यद्यपि दोनो बेसन से ही बनाये जाते है। पहिले कडाही मे प्रचुर मात्रा मे घी डालकर उसमे बेसन को भूना जाता है। भूनते-भूनते जब उसमे से सोंधी गन्ध आने लगती है, तब खूब बारीक चीनी उसमे अन्दाज से डालते है। फिर बेसन और चीनी दोनो को खूब अच्छी तरह से एक मे मिलाते हैं। फिर पानी तथा घी की सहायता से बेसन का गोल-गोल लड्डू बनाते है। यह लड्डू हनुमान जी को बहुत प्रिय है।

(३) सकर-लड्डू

भोजपुरी 'सकर' शब्द शक्कर का अपभ्रंश रूप है, अत 'सकर-लड्डू' से अभिप्राय शक्कर अर्थात् चीनी का बना हुआ लड्डू है। यह केवल चीनी से बना हुआ होता है। बेसन की बुनिया से इसका तनिक भी सम्बन्ध नही होता। 'मेला-ठेला' तथा 'हाट-बाजार' मे इस सकर-लड्डू की बडी 'माँग' रहती है। गरीब लोग इसी से जलपान करते है और इसे ही देवी-देवताओ पर चढाते है। लोक-गीतो मे इसका अनेक बार उल्लेख पाया जाता है। कोई बहिन अपने भाई से कह रही है कि 'ए भइया'! तुम मेला अथवा परदेश को जा रहे हो, अत मेरे लिए सकर का लड्डू जरूर लेते आना। गीत की एक कडी इस प्रकार है—

"ले अइह, ए भइया! सकर लडुइया हो।"

(४) आटे का लड्डू

इसे बडी आसानी मे बनाया जा सकता है, क्योकि इसमे विशेष चतुरता की आवश्यकता नही होती। पहिले आटे को घी मे खूब भूनते हे। फिर उसमे किसमिस, गरी, पिस्ता आदि मेवा डालते है। बाद मे अन्दाज से चीनी डालकर दोनो को खूब मिलाते हे। इसके पश्चात् उसमे थोडा दूध या पानी डालकर इसका लड्डू बनाया जाता है।

(५) तीसी का लड्डू

पहिले तीसी को जाँत मे पीसा जाता है। फिर इसे घी मे डालकर खूब भूनते है। बाद मे चीनी और थोडा पानी डालकर इसका लड्डू तैयार किया जाता है। तीसी की 'तासीर' चूकि ठण्डी होती है, अत इसके लड्डू को विशेषकर गर्मियो के दिनो मे खाने की प्रथा है।

(६) खोवा का लड्डू

पहिले 'खावा' को घी मे भूनते है। फिर जब उसमे सोधाई आ जाती है, तब उसमे अन्दाज से चीनी डाल देते है। फिर 'पल्टा' या कलछुल से दोनो को खूब मिलाते हे। तत्पश्चात् इसके छोटे-छोटे लड्डू बना लेते है। शहरो मे हरे कच्चे चने का लड्डू बनाते है, जिसको 'कचरी' का लड्डू कहते है। गावो मे इसके बनाने की प्रथा नही है।

(१३) पेडा

गाँवो मे जो पेडा बनाया जाता है, वह उतना स्वादिष्ट नही होता, जितना शहर मे बनाया गया पेडा। इसका कारण यह है कि जहाँ शहरी पेडे मे 'खोवा' की अधिकता रहती है, वहाँ ग्रामीण पेडा मे चीनी की ही प्रधानता रहती है। फिर गाँवो मे 'खोवा' को अच्छी तरह से भूनते भी नही है। इसमे चीनी की प्रचुरता होने के कारण खोवा का स्वाद नष्ट हो जाता है। किसी अतिथि को 'पेडा' खिलाना बड ही सम्मान की वस्तु मानी जाती है।

(१४) खजुली

इसे खाजा का छोटा रूप समझना चाहिए। इसके बनाने की विधि वही है, जो खाजा की है। खजुली बडी मुलायम और मीठी होती है। बच्चे इसे प्रेम से खाते है।

(१५) गुलाबजामुन

इसे गाँवो मे 'रसगुल्ला' भी कहा जाता है। चूकि इस मिठाई मे रस भरा रहता है। अत इसका 'रसगुल्ला' नाम-करण साथक है। यह जामुन के समान लम्बी और रग मे गुलाबी होती है। अत इसका 'गुलाबजामुन' नाम उचित ही है। मिठाई मैदा और खोवा को एक साथ मिलाकर और घी मे पकाकर बनायी जाती है। फिर इसे चीनी के पाग मे डाल देते है। जब यह चीनी के रस को सोख लेती है, तब इसे खाया जाता है। यह बहुत मीठी और स्वादिष्ट होती है।

(६) परिच्छेद

फल

भोजपुरी क्षेत्र मे अनेक प्रकार के फल उपलब्ध होते है। आम तथा अमरूद के बडे-बडे बगीचे, फलवारी मे लगाये गये नीबू, अनार और बेर के पेड, कुटियो को सुशोभित करनेवाले कदली के वन और वर्षा मे अपनी बहार दिखलानेवाली कदम्ब की गाँछ भोजपुरियो की फल-प्रियता के प्रमाण हैं। बिहार के छपरा जिले मे सोनपुर के आस-पास केला की अनन्त पक्तियो तथा लीची एव आम के पेडो को देखकर ऐसा ज्ञात होता है कि सारी पृथ्वी फलवती हो गयी है, इस प्रदेश मे व्यव-हार मे लाये जानेवाले फलो की सख्या बहुत अधिक है, जिनमे कुछ प्रसिद्ध फल निम्नाकित है —

(१) आम, (२) जामुन, (३) कटहल, (४) बडहल, (५) नीबू, (६) नारगी (७) अनार, (८) केला, (९) इमली, (१०) बेर, (११) कदम्ब, (१२) पपीता, (१३) लीची, (१४) फालसा, (१५) शहतूम, (१६) मकोई, (१७) बेल, (१८) शरीफा, (१९) ककडी, (२०) फूट, (२१) खरबूजा, (२२) तरबूजा, (२३) खीरा, (२४) कन्द, (२५) सुथनी, (२३) गाजर, (२७) सिघाडा, (२८) भटकोआ, (२९) खजूर, (३०) तरकुल, (३१) गोदा, (३२) कोइता, (३३) गूलरि, (३४) अमरूद, (३५) अमरस, (३६) अमडा, (३७) बरगद, (३८) आँवला, (३९) कोइना।

भोजपुरी क्षेत्र मे जितने फल पैदा होते है, उनको साधारणतया चार श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है। यद्यपि यह वर्गीकरण बहुत वैज्ञानिक नही है, परन्तु सुविधा की दृष्टि से इनको निम्नाकित श्रेणियो मे विभाजित करना उचित होगा। —

(१) पेड मे लगनेवाले फल—जैसे—ग्राम, जामुन, कटहल, बेर ग्रादि।

(२) जमीन की सतह पर बेल मे फलनेवाले—जैसे—ककडी, खरबूजा, तरबूजा आदि।

(३) जमीन के नीचे पैदा होनेवाले—जैसे—कन्द, सुथनी, गाजर ग्रादि।

(४) पानी मे पैदा होनेवाले—जैसे—सिंघाडा।

इन उपर्युक्त श्रेणियो के फलो मे प्रथम वर्ग मे उपलब्ध फलो की सख्या सबसे ग्रधिक है ग्रौर ग्रन्तिम वग मे केवल एक ही फल प्राप्त होता है।

(१) आम

यदि ग्राम को भोजपुरी क्षेत्र के फलो का राजा कहे, तो यह उक्ति सत्य से दूर नही होगी। वास्तव मे ग्राम ग्रधिकता, सुलभता ग्रौर सुस्वादुता की दृष्टि से सभी फलो का सिरमौर है। भोजपुरी क्षेत्र के किसी भी गाँव मे चले जाइये वहाँ ग्रापको ग्राम के बड-बडे बगीचे दिखलाई पडेगे, जिन्हे 'लखराँव' कहते है। यह सस्कृत के 'लक्षाराम' (एक लाख पेड) का ग्रपभ्रश रूप है। ग्राम के बगीचे को 'ग्रमराई' भी कहते हे, जिसकी निरुक्ति सस्कृत के 'ग्राम्रराजि' (ग्राम के वृक्षो का समुदाय या पक्ति) से की जा सकती है।

ग्राम का वृक्ष बहुत बडा होता है। इसकी एक-एक शाखाएँ छोटे-मोटे वृक्ष के बराबर होती है। इसके पत्ते को 'पल्लो' कहा जाता है, परन्तु बनारस की बोली मे इसकी सज्ञा 'टल्लो' है। ग्राम गर्मियो मे फलता है। इसमे जो फूल लगते है, इसे 'मोजर' कहते है, जो 'मञ्जरी' का ही ग्रपभ्रश रूप है। जब इसमे छोटे-छोटे फल निकलते है, तो वे 'टिकोरा' के नाम से पुकारे जाते है, लोकभाषा मे इनको 'सरिसई' का ग्रभिधान प्राप्त है। एक लोक-गीत मे इसका उल्लेख इस प्रकार से किया गया है —

"जब आमवाँ में लागेला सरिसई हो रामा।
तब पियवा करेला लरिकई हो रामा।।"

कुछ ग्रधिक बडे हो जाने पर इस 'टिकोरे' मे गुठली पड जाती है। तभी इसकी पूर्ण वृद्धि समझनी चाहिए।

ग्राकृति, रग ग्रौर स्वाद के ग्राधार पर ग्रामो के ग्रनेक भेद होते है ग्रौर इनका नामकरण भी इसी ग्राधार पर किया जाता है —

आम के भेद

(१) आकृति के आधार पर आमो के नाम

गोलियवा (गोल), लमकोइयवा (लम्बा), चिपुटहवा (चिपटा)।

(२) रग के आधार पर नाम

करियवा (काला ग्राम), सिन्होरियवा (लाल ग्राम), पियरका (पीला ग्राम)।

(३) स्वाद के आधार पर नाम

चेफुग्रहवा—जिस ग्राम मे केवल रेशे होते है ग्रौर खाने मे ग्रच्छा नही होता, उसकी उपर्युक्त सज्ञा है।

करिहअहना—इस ग्राम मे 'चोप' ग्रधिक होता है ग्रौर यह खाने मे कुछ खट्टा ग्रौर स्वादहीन होता है।

यो तो ग्रामो के ग्रनन्त प्रकार है, जिनका वर्गीकरण करना बडा कठिन है, फिर भी इनको दो प्रधान श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है—(१) देशी ग्रौर (२) कलमी। देशी ग्राम छोटे होते हैं। इनमे रस की प्रचुरता होती है ग्रौर पकने पर पीले पड़ जाते है। इनके खाने की विधि यह है कि पहिले इनको रातभर पानी मे भिगो दिया जाता है। जिससे इनकी गर्मी निकल जाय। फिर इनके मुख के ग्रग्रभाग को साफ करके उसके 'चोप' को धो देते है। ग्राम को पुन ग्रँगुलियो से दबा दबाकर उसे 'पुलपुला' बना देते है। पश्चात् इसके रस को चूसते है।

देशी ग्राम का रस बडा पतला ग्रौर स्वादिष्ट होता है। इसमे पाचन का गुण होने के कारण लोग इसे प्राय भोजन के उपरान्त चूसते है। इसके रस को चूस लेने के पश्चात् इसकी गुठली—जिसे भोजपुरी मे 'ग्रँठिली' कहा जाता है—को फेक देते है।

यदि यह देशी ग्राम प्रचुरता के कारण खाने से बच जाता है, तो इसे ग्रोखल मे कूटते हैं ग्रौर इसके रस को निकाल-

कर किसी कपडे पर फैलाकर उसे धूप मे सुखाते है। इसके सूख जाने पर रस की दूसरी पत फिर इस पर फैला देते है। इस प्रकार जब यह पर्त मोटी हो जाती है, तब उसे कपडे पर से हटा लेते है। इस प्रकार जो वस्तु तैयार की जाती है, उसे 'अमावट' कहते है। इसे पानी मे भिगोकर प्राय रोटी के साथ खाते है।

कलमी आम बडा होता है। इसमे गूदा-ही-गूदा होता है। इसमे गुठली अवश्य रहती है परन्तु बहुत चिपटी, पतली और छोटी। पहिले इसके छिलके को चाकू से छीलकर अलग कर देते है। फिर इसके गूदे को चाकू से छोटे-छोटे टुकडो मे काटकर खाते है। यह बडा ही स्वादिष्ट और मीठा होता है। कलमी आम को भोजपुरी मे 'पेवनी' कहते है। बनारस का 'लँगडा' लखनऊ का 'दशहरी' और 'सफेदा' प्रसिद्ध कलमी आम है।

आम का अचार, चटनी और 'कूचा' भी बनाया जाता है। कच्चे तथा पके दोनो रूपो मे इसका बडा महत्त्व है और समानरूप से इसका उपयोग किया जाता है। सचमुच उपयोगिता की दृष्टि से यही हमारा सबसे श्रेष्ठ फल है।

(२) जामुन

फलो मे आम के बाद जामुन का ही स्थान है। इसका पेड बडा, लम्बा और मोटा होता है, परन्तु इसकी डाली बडी कमजोर होती है। जामुन का कच्चा फल कुछ सफेद और लाल होता है, परन्तु पक जाने पर यह बिल्कुल काला हो जाता है। जामुन का फल जितना ही काला होगा वह उतना ही अच्छा तथा स्वादिष्ट माना जाता है। इसीलिए भोजपुरी मे काली वस्तुओ की उपमा जामुन से दिया करते है। जामुन को नमक मे 'बोर' कर खाया जाता है। यह बहुत 'पाचक' मानी जाती है। अत भोजन के पश्चात् इसे लोग, बड प्रेम से खाते है। जिस जामुन मे कुछ रस तथा गुद्दा नही होता, उसे 'कठ जामुन' कहा जाता है। यह निम्नकोटि की होती है। जामुन का सिरका भी बनाया जाता है, जिसे लोग बडे चाव से पीते है। यह पेट के दद की अचूक दवा है।

(३) कटहल

कटहल के कच्चे फल की तरकारी या अचार बनता है। इसके पके फल को 'कोवा' कहा जाता है, जो पीला-पीला होता है। यह खाने मे बडा मीठा लगता है। कुछ लोग आम की तरह इसे भर पेट खाते हैं। चूकि यह पाचन मे बडा गरिष्ठ होता है, अत ठीक से पचाने के लिए इसे घी मे बोर या लपेटकर खाना चाहिए अथवा इसे खाने के पश्चात् थोडा घी पी लेना चाहिए। परन्तु गरीबो की 'उदरदरी' मे यह आप-ही-आप पच जाता है। कटहल प्राय बरसात मे ही पकता है, अत 'कोवा' इन्ही दिनो मे मिलता है।

(४) बडहल

इसका वृक्ष और फल—दोनो ही कटहल की अपेक्षा छोटा होता है। बडहल का फल छोटा और प्राय गोल होता है। पक जाने पर यह पीला हो जाता है। इसके छिलके मे कुछ तुर्शी होती है, परन्तु भीतर का गूदा मीठा होता है। बच्चे बडहर तोडकर खूब खाते है।

(५) नीबू

नीबू तीन प्रकार का होता है—(१) कागदी नीबू, (२) गलगल और (३) चकोतरा। कागदी नीबू खट्टा होता है। इसे काटकर इसके रस को दाल मे निचोडकर लोग बडे प्रेम से खाते है। इसका अचार भी डाला जाता है, जिसका उल्लेख यथास्थान किया जायेगा। 'गलगल' नामक नीबू बहुत बडा होता है। इसमे प्रचुर मात्रा मे रस भरा रहता है। इसलिए नीबू, मूली आदि के अचारो मे इसका रस निचोडकर डाला जाता है। इसका अन्य कोई दूसरा उपयोग नही है।

तीसरे प्रकार का नीबू चकोतरा है। यह गलगल की ही भाँति बडा होता है, परन्तु उसके ठीक विपरीत इसका रस मीठा होता है। इसको लोग चाव से खाते है। पक जाने पर इसका भीतरी भाग लाल हो जाता है। फुलवारी मे फले हुए चकोतरे को तोडकर लडके खूब खाते है। अनन्तचतुर्दशी व्रत के अवसर पर पूआ के साथ मीठे चकोतरे का भी रसास्वादन किया जाता है। कागदी खट्टा नीबू पित्तनाशक है। अत क्वार (आश्विन) के महीने मे इसे विशेष रूप से प्रयोग मे लाया जाता है।

(६) नारगी

भोजपुरी क्षेत्र मे जो नारगी पैदा होती है, वह साधारण किस्म की होती है। उसमे विशेष रस नही पाया जाता।

वह फल के प्रेमी बालको का मनोरजन भले ही कर ले, परन्तु अर्थोपाजन का साधन नही हो सकती। यह आकार मे छोटी और हरी होती है। यो बुटवल (नैपाल) और सिलहट की नारगी बडी प्रसिद्ध होती है।

(७) अनार

बगीचो मे अनार की शोभा देखते ही बनती है। पक जाने पर इसका रग लाल हो जाता है और यह आप-ही-आप बीच से फट जाता है। पूर्वी जिलो मे जो अनार पैदा होता है, वह साधारण किस्म का होता है। इसके दाने लाल, छोटे तथा रस से रहित दिखाई पडते है। 'बेदाना' नामक अनार बहुत बढिया होता है, जिसके दाने सफेद और बडे-बडे होते है।

(८) केला

यह व्यावसायिक रूप मे बेचने के लिए नही लगाया जाता, बल्कि शौक से बगीचो मे खाने के लिए लगाया जाता है, बम्बई के आस-पास खेतो मे केले को रोपते है और इसकी खेती की जाती है। इसे प्रचुर परिमाण मे पैदाकर बाजार मे बेचा जाता है। यह मोटा और लम्बा होता है। पक जाने पर भी 'बम्बइया' केला का रग हरा ही बना रहता है। परन्तु भोजपुरी केला बहुत छोटा और पतला होता है और पक जाने पर इसका रग पीला पड जाता है। यह स्वाद मे चीनी के समान मीठा होता है। अत इसे 'चीनिया केला' भी कहा जाता है। केले के जिस डण्ठल मे हजार फलियाँ होती है, वह 'हजारा' कहलाता है।

(९) इमली

इसका पेड बहुत बडा होता है। इसीलिए इसमे फल भी अनेक वर्षो के बाद लगते है। एक भोजपुरी कहावत से ज्ञात होता है कि तीस वर्षों के पश्चात् इमली के वृक्ष मे फल दिखाई पडते है —

"पाँचे आम, पचीसे महुआ।
तीस बरिस पर इमली के फहुआ॥"

इमली का फल सम्भवत चार-पाँच इञ्च लम्बा होता है। कच्चे रहने पर यह बडा खट्टा होता है, परन्तु पक जाने पर इसकी खटास कुछ कम हो जाती है। यह इतने प्रचुर परिमाण मे फलता है कि इसके तोडनेवालो के लिए कोई रोक टोक नही होती। नटखट लडके बगीचे मे जाकर इस फल को 'डण्डे' से मारकर खाया करते है। इसका फल 'फहुआ' के नाम से पुकारा जाता है। इसकी चटनी, खटमिट्ठी और अचार बडा अच्छा बनता है।

(१०) बेर

इसे भोजपुरी मे 'बइरि' कहते है। इसका फल छोटा और गोल या थोडा लम्बा होता है, जो पकने पर पीला पड जाता है। बेर के कुछ फल पकने पर ललाई धारण कर लेते है। यह स्वाद मे मीठा होता है। अच्छी किस्म के बेर मे 'गूदा' होता है, परन्तु जो घटिया बेर है, उसमे इसका नितान्त अभाव पाया जाता है। ऐसे बेर को 'बनबइरि' कहते हैं, जो जगलो मे बहुतायत से पैदा होती है। बेर का पेड साधारण ऊँचाई का होता है। परन्तु तीन-चार फीट की ऊँचाईवाली झाडियो मे एक प्रकार की बहुत छोटी बेर पैदा होती है जिसे 'झरबेरी' कहा जाता है। यह बहुत खट्टी होती है। अत इसे सुखाकर और कूट करके खटाई (अमचुर) के रूप मे इसका प्रयोग किया जाता है।

(११) कदम्ब

आम की ही भाति इसका पेड बडा होता है। यह बरसात के दिनो मे फूलता-फलता है। 'कदम्ब' का फल बिल्कुल गोला होता है। कच्चा रहने पर हरा और पकने पर यह पीला पड जाता है। यह खाने मे कुछ मीठा और कुछ खट्टा होता है। इसका अचार भी डाला जाता है। बच्चे इसे बडे प्रेम से खाते है। भोजपुरी लोग इसे 'कदम' के नाम से पुकारते हैं।

(१२) पपीता

इसे भोजपुरी मे 'रणमेवा' कहा जाता है। इसका फल थोडा लम्बा और बडा होता है। यह भी पकने पर पीला पड जाता है। कच्चे पपीते का शाक बनाया जाता है। बहुत अधिक पक जाने पर इसका स्वाद नष्ट समझना चाहिए।

अतएव पकने पर कुछ कडा रहने पर ही इसे खाना चाहिए। पपीता का पौधा लगाने के एक वष के अन्दर ही इसमे फल आने लगते है। यह पाचक तथा पेट को साफ रखता है। अत लोग इसे बडे शौक से खाते है।

(१३) लीची

बिहार के छपरा तथा मुजफ्फरपुर जिलो मे लीची प्रचुरता से पैदा होती है। इसका पेड अपेक्षाकृत छोटा होता है। लीची पकने पर लाल हो जाती है? पहिले इसके छिलके को छुडाकर फिर इसका गूदा खाया जाता है। इसमे 'बीया' (बीज) का अश बडा होता है और गूदा का अश बहुत कम।

(१४) फालसा

इसका फल मटर के समान छोटा होता है, जो पकने पर काला पड जाता है। जामुन के समान फालसा जितना ही काला हो, समझना चाहिए कि वह उतना ही अधिक पका हुआ और स्वादिष्ट है। फालसा का पेड छोटा होता है, जिस पर चढकर लडके इसे तोड-तोडकर खाते हैं। यह स्वाद मे बहुत खट्टा, कुछ 'तुश' होता है।

(१५) शहतूत

इसे भोजपुरी मे 'सहतोति' कहा जाता है। फालसा की भाँति इसका भी फल पक जाने पर काला पड जाता है? इसके फल की आकृति अँगुलियो के बराबर लम्बी और पतली होती है, जिनमे मिठास और तुर्शी दोनो पायी जाती है। इसकी सस्ती पत्तियो को खाकर जीनेवाले कीडे बहुमूल्य रेशम का निर्माण करते है।

(१६) मकोइ

इसका फल सुपारी के समान छोटा और गोला होता है, पक जाने पर पीला पड जाता है। यह बडा मुलायम और रसदार होता है। अत लडके इसे बडे प्रेम से खाते है। इसका फल पत्तियो से आवृत रहता है, जिसे हटाकर ही इसे खाया जा सकता है। इसमे बीज होते हैं, परन्तु बहुत ही छोटे-छोटे।

(१७) अमरूद

भोजपुरी फलो मे आम और जामुन के पश्चात् अमरूद का ही नम्बर आता है। यदि आम के बाद इसे दूसरा स्थान प्रदान करे, तो भी कुछ अनुचित न होगा। बगीचो मे आम की ही भाँति अमरूद भी प्रचुर परिमाण मे पाया जाता है। भोजपुरी क्षेत्र के किसी भी गाँव मे चले जाइये, वहाँ आम के साथ अमरूद के भी दो-चार पेड आपको अवश्य ही दिखाई पडेगे।

अमरूद दो प्रकार का होता है—(१) कलमी और (२) देशी। कलमी अमरूद का पेड बहुत ही छोटा होता है, परन्तु उसके फल बडे-बडे होते है। कुछ तो वजन मे दो-दो सेर तक के होते है। इलाहाबाद का अमरूद बडा प्रसिद्ध है, जिसमे गूदा अधिक और बीज बहुत कम होता है। यह खाने मे सेब की तरह मीठा और स्वादिष्ट लगता है। इसका छिलका बडा मुलायम होता है।

देशी अमरूद छोटा होता है। इसमे 'बीया' अधिक और 'गूदा' बहुत कम होता है। इसके छिलके के मोटे होने के कारण इसमे विशेष स्वाद नही पाया जाता। यह देशी अमरूद ही अधिक उपलब्ध होता है, अमरूद जब अधपका हो, तभी उसके खाने मे आनन्द आता है। अधिक पककर 'गल' जाने पर इसका स्वाद नष्ट हो जाता है।

कुछ अमरूदो का भीतरी भाग (गूदा) लाल होता है और कुछ का सफेद। लाल गूदावाला अमरूद अधिक स्वाद से युक्त होता है। जिस अमरूद के छिलके के ऊपर लाल-लाल धब्बे दिखाई पड, तो समझना चाहिए कि यह उत्तम कोटि का अमरूद है।

(१८) बेल

इसे भोजपुरी मे 'सिरिफल' कहा जाता है, जो सस्कृत के 'श्रीफल' का अपभ्रश रूप है। बेल का वृक्ष बडा विशाल तथा काँटेदार होता है। इसका फल लोटे के समान गोल, कडा तथा बडा होता है। यह पकने पर पीला पड जाता है। बेल के ऊपर का छिलका बडा कडा होता है, अत उसे हटाकर भीतर का 'गूदा' खाया जाता है। इसके बीज तथा गूदे मे बडी चिपक

होती है। गर्मी के दिनो मे इसके गूदे का शरबत बनाकर पिया जाता है, जो बडा ठण्डा होता है। बेल का मुरब्बा भी बनाया जाता है, जो आँव से पीडित रोगी की दवा है।

(१९) शरीफा

भोजपुरी मे यह 'सरीफा' के नाम से प्रसिद्ध है। इसका पेड बहुत छोटा होता है, जिस पर चढकर लडके इसके फल का स्वाद लिया करते है। पक जाने पर इसका ऊपरी भाग तो हरा ही बना रहता है, परन्तु भीतरी भाग सफेद हो जाता है। इसमे काले-काले बडे-बडे बीज होते है। शरीफे का छिलका कडा होता है, अत उसे हटा करके ही भीतर का गूदा खाया जाता है।

(२०) गोदा

पीपल का पेड बडा विशाल होता है। इसके पके फल को 'गोदा' कहा जाता है। इसमे कुछ स्वाद नही होता है, परन्तु गरीब आदमी अपने पेट की पूजा के लिए इसे बीन-बीनकर खाते है। भोजपुरी माताएं अपने नटखट तथा नालायक लडको को शाप देती हुई कहती है कि जाओ, गोदा बीन-बीनकर तुम्हे खाना पडेगा। 'जा गोदा बिनि बिनि खइब,'' जिसका आशय यह है कि तुम्हे बेहद गरीबी के दिन बिताने पडेगे। 'गोदा' खाना गरीबी का प्रतीक है। गोदा गोल और कुछ पीला होता है।

(२१) गूलर

इसका फल 'गोदा' के ही समान छोटा और गोल होता है। पक जाने पर इसमे कुछ लालिमा आ जाती है। इसके भीतर बहुत छोटे-छोटे बीज होते है। गूलर का फल खाने मे स्वादिष्ट लगता है। पके गूलर मे छोटे-छोटे 'मसे' होते है। इसी लिए कभी-कभी चिढाने के लिए लडके कहते है। गुलरी मे मसा, तिवारी बाबा हँसा यह पक जाने पर प्रचुर मात्रा मे नीचे गिरता रहता है, जिसे बीन बीनकर लोग खाया करते है।

(२२) बरगद का फल

इसके फल को भी 'गोदा' कहते है। यह पीपल के फल की अपेक्षा बडा होता है। पक जाने पर यह पीला हो जाता है और प्रचुर मात्रा मे जमीन पर गिरता रहता है। निर्धन जनता तथा लडके इसे बीनकर खाते है।

(२३) अमरस

इसका पेड बडा होता है। पक जाने पर यह भी कुछ पीला पड जाता है। यह स्वाद मे खट्टा होता है। अत नमक की सहायता से ही इसे थोडा खाया जा सकता है, अन्यथा नही। कच्चे अमरस की चटनी बनती है और इसका अचार भी बनाया जाता है। अमरस वह फल है, जो सबके दाँत खट्टे कर देता है।

(२४) अमडा

इसका पेड बडा होता है, परन्तु फल छोटा और गोल होता है। पक जाने पर भी इसके रगपन मे कोई विशेष अन्तर नही आता। नमक के साथ 'बोर' कर अमडा खाते है, जिसका स्वाद बडा खट्टा होता है। यह विशेष रूप से अचार डालने के काम मे ही लाया जाता है।

(२५) आँवला

इसका फल गोल और चिकना होता है। इसका स्वाद बडा 'कसैला' होता है। परन्तु इसको खाने के बाद पानी पीने पर बडा मीठा स्वाद आता है। आँवला विशेषकर मुरब्बा डालने तथा अचार बनाने के काम मे आता है। आँवला दो प्रकार का होता है—(१) कलमी और (२) देशी। कलमी आँवला बहुत बडा तथा सुन्दर आकृति का होता है। इसका बीज बहुत छोटा तथा इसमे रेशे का अभाव पाया जाता है। इसी आँवले का मुरब्बा बनता है। देशी आँवला छोटा और रेशेदार होता है तथा इसमे गूदा भी अधिक नही होता।

(२६) खजूर

इसका पेड ताड की अपेक्षा छोटा होता है। इसके सर्वोपरि भाग मे, पत्तियो के किनारे इसका फल लगता है, जो प्रचुर

मात्रा मे फलता है। उसके फल को खाने का आजकल बडा फैशन हो गया है और यह पैकेट मे बन्द होकर बाजारो मे बिकता है। अब यह गरीबो का नहीं, बल्कि फैशनेबुल तथा धनी व्यक्तियो का फल हो गया है।

(२७) तरकुल

ताड-वृक्ष को भोजपुरी मे 'तरकुल' कहा जाता है, जो सस्कृत के 'तालीकुल' (ताडो का समुदाय) का अपभ्रश रूप है। तरकुल का वृक्ष प्राय सभी वृक्षो से लम्बा और पतला होता है। इसके सिरे के केवल ऊपरी भाग मे ही पत्तियाँ होती है, जो बहुत बडी-बडी होती है। वही पर इसका फल भी लगता है। तरकुल का फल बेल से दुगुना-तिगुना बडा और गोल होता है। ऊँचाई के कारण इस फल को तोडना कठिन है। अत यह पक जाने पर आप-ही-आप पृथ्वी पर गिर पडता है। इसका गूदा बडा रसदार होता है, परन्तु उसमे बहुत ही अधिक रेशे होते है, जिसके कारण उसके रस को निकालना कठिन होता है। अत लडके इसके गूदा मे एक छोटी लकडी डालकर इसको खूब 'पेरते' है और जब पेरने से रस निकलने लगता है, तब उसे जीभ से चाटते है। इस फल का आनन्द इसी तरह से लिया जाता है।

(२८) कोंयता

इसे भोजपुरी मे 'कँइति' कहते है। सस्कृत मे इसे 'कपित्थ' कहा जाता है। इसका पेड बडा होता है तथा इसका फल 'हाकी' के गेंद के समान कडा और गोल होता है। कच्चे मे भी इसे खाया जाता है, जो स्वाद मे खट्टा लगता है। पकने पर इसका स्वाद 'खट मिट्ठा' हो जाता है। इसी लिए विशेष रूप से इसकी चटनी ही बनायी जाती है। कभी-कभी 'अमचुर' भी बनाते है।

(२९) कोइना

महुआ वृक्ष का फूल महुआ तथा इसका फल 'कोइना' कहलाता है। यह बरसात के दिनो मे पकता है और पककर आप-से आप टूटकर नीचे गिर पडता है। पकने पर भी इसका रग हरा ही बना रहता है। इसके छिलके मे जो थोडा-सा गूदा चिपका रहता है, उसे गरीब लोग खाते है, जो मीठा लगता है। इसका बीज बहुत बडा होता है, जिसे फोडकर, उसकी गरी निकालकर तेल बनाया जाता है, जो 'कोइना का तेल' के नाम से अभिहित किया जाता है।

(३०) भटकोआ

यह झाडियो मे पैदा होनेवाला फल है, जो फालसा के समान बडा और गोल होता है। पकने पर यह काला पड जाता है। फालसा के स्वाद की अपेक्षा इसका स्वाद घटिया होता है। छोटे-छोटे लडके इसे कच्चा ही तोडकर खा डालते हैं। इसमे बीज नाममात्र के लिए ही होता है।

(३१) ककड़ी

ऊपर जिन फलो का वर्णन किया गया है, वे या तो पेडो पर अथवा झाडियो मे फलते हैं। आगे उन फलो का विवरण उपस्थित किया जा रहा है, जो बेलो (लताओ) मे लगते हैं और पृथ्वी की सतह पर रहते हुए फूलते, फलते और पकते है। जमीन की सतह पर पैदा होनेवाले इन फलो मे ककडी और खरबूजा प्रधान हैं।

ककडी पतली और लम्बी होती है। ककडी जितनी ही अधिक पतली और छोटी होगी, वह उतनी ही अधिक मुलायम होने के कारण स्वादिष्ट होती है। उर्दू के मनचले कवियो ने इसकी उपमा लैला की अँगुलियो और मजनू की पसलियो से दी है।[1] कहने का आशय यह है कि पतलापन ही ककडी की विशेषता है।

ककडी नमक और काली मिर्च के साथ खायी जाती है। बडी और मोटी ककडी के छिलके को छीलकर फिर उसे काटकर खाते है। बहुत मोटी ककडी को छीलकर तरकारी भी बनायी जाती है, जो स्वाद मे लौकी के शाक की तरह लगती है।

सत्यनारायण बाबा की कथा मे ककडी का प्रसाद बाँटा जाता है और व्रत के दिन फल के रूप मे इसे खाने के काम मे लाते है। गरीब आदमी ककडी को खाकर अपना पेट भरते है और किसी प्रकार अपनी जीवन-यात्रा को चालू रखते है।

१ "हैं कैसी प्यारी प्यारी ये आगरे की ककड़ी।
लैला की अँगुलियाँ हैं, मजनू की पसलियाँ हैं।
खाने में हैं मुलायम, ये आगरे की ककडी।।"

(३२) खरबूजा

ककडी के समान ही खरबूजा की भी बेल होती है और यह जमीन की सतह पर फैलती है। खरबूजे की आकृति गोल और छोटी होती है। इसका ऊपरी भाग (छिलका) जितना सफेद और धारीदार हो, उतना ही वह अच्छा और स्वादिष्ट समझा जाता है। लखनऊ का खरबूजा बडा प्रसिद्ध है, जो खाने मे बडा मीठा होता है। इसे 'मनेरिया' भी कहा जाता है। खरबूजा को छीलकर, छोटे-छोटे टुकडो मे काटकर चीनी के साथ इसे शौकीन लोग खाते है।

(३३) फूट

यह भी ककडी का ही एक प्रकार है, जो निकृष्ट कोटि का होता है। यह बहुत लम्बा, मोटा और बडा होता है। पक जाने पर यह आप ही-आप बीच मे से फट जाता है। यही इसके पकने की सहज पहिचान है। यह खाने मे स्वादहीन और मुँह मे 'भस-भस'-सा लगता है। मिठास इसमे बहुत ही कम होती है। इसे अधिक खाने से आदमी बीमार पड जाता है। यदि 'मनेरिया' उच्चकोटि का खरबूजा है, तो 'फूट' ककडी का निकृष्टतम रूप है।

(३४) तरबूजा

इसे भोजपुरी मे 'हिन्दुआना' की सज्ञा प्राप्त है। यह बहुत बडा और गोल होता है। इसका वजन कभी-कभी १०-१५ किलो से भी अधिक होता है। ऊपर से इसका रग हरा दिखाई पडता है, परन्तु पक जाने पर इसका भीतरी भाग बिल्कुल लाल होता है। अत इसके पकने की परीक्षा करने के लिए, खरीदते समय, इसके थोडे-से अश का काटकर देख लेते है कि अभी इसमे लालिमा आ गयी है या नही। इसका फल बडा ही रसदार होता है। इसे काटते समय इसमे से पानी चूने लगता है। रेगिस्तान मे, जल के अभाव मे, तृषित व्यक्तियो के लिए यह फल जीवनदायक सिद्ध होता है। वहाँ इसे 'मतीरा' के नाम से पुकारते है।[1] यह खाने मे बडा मीठा होता है। नदियो की बालूदार तलहटी मे ककडी, खरबूजा और तरबूजा खूब पैदा होता है।

(३५) खीरा

इसका फल १०-१२ इञ्च लम्बा और थोडा मोटा होता है। बरसात के दिनो मे यह खूब फलता है। इसकी तिताई को मिटाने के लिए इसके ऊपरी भाग को थोडा काटकर, इसमे नमक लगाकर इसे खूब मलते है। ऐसा प्रसिद्ध है कि इससे इसकी तिक्तता लुप्त हो जाती है।[2] इसको छीलकर, टुकडे मे काटकर तथा उसमे नमक और पीसी हुई काली मिर्च मिलाकर खाते है, जिससे इसके स्वाद मे थोडी वृद्धि हो जाती है। इसका रायता भी बनाया जाता है, जो बडा स्वादिष्ट होता है।

(३६) कन्द

तीसरी कोटि के वे फल है, जो जमीन के अन्दर पैदा होते है, जैसे कन्द सुथनी और गाजर। इनमे कन्द सबसे अधिक प्रचलित है तथा इसका प्रयोग अधिक किया जाता है। व्रत के अवसर पर कन्द और सुथनी का विशेष रूप से प्रयोग होता है।

कन्द को भोजपुरी मे 'कन' कहते हैं। वर्ण के आधार पर यह दो प्रकार का होता है—(१) लाल और (२) सफेद। पहिली प्रकार का कन्द अधिक स्वादिष्ट होता है। कन्द को कच्चा तथा उबालकर—दोनो प्रकार से खाते हैं। परन्तु कच्चे कन्द मे विशेष स्वाद नही होता। किसी व्रत के दिन कन्द को थोडे पानी मे उबालते है। जब यह पक जाता है, तब इसके छिलके को छुडाकर या हटाकर प्रेम से खाते है। कुछ लोग इसे दूध मे 'मीसकर' और इसमे चीनी मिलाकर इसका प्रयोग करते है, जिससे यह बहुत मीठा हो जाता है। परन्तु भाड़ मे भूना गया कन्द सबसे अधिक स्वादिष्ट, सोधा और मीठा लगता है। गरीब आदमी कन्द को भोजन के रूप मे प्रयोग मे लाते है। अकाल के समय मे कन्द ही इन दुखिया तथा धनहीन व्यक्तियो का एकमात्र प्राणरक्षक होता है।

१ महाकवि बिहारी ने 'मतीरा' या 'मतीरन' शब्द का प्रयोग अपनी सतसई में करते हुए रेगिस्तान में इसकी उपयोगिता का उल्लेख किया है।

२ हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि रहीम ने इस कथन की ओर निम्नांकित पंक्तियों में संकेत किया है —

"खीरा सिर से काटिये, मलिये नमक लगाय।
रहिमन करुये मुखन को, चहियत यही सजाय॥"

कन्द का हलुग्रा भी बनाया जाता है। पहिले इसे पानी मे उबाल लेते है। फिर इसके छिलके को छुडाकर कडाही मे घी डालकर इसे खूब भूनते हे। थोडी देर के बाद इसमे चीनी डालकर मिलाते है। इस प्रकार कन्द का हलुग्रा तैयार हो जाता हे।

(३७) सुथनी

यह भी कन्द की ही भाति जमीन के ग्रन्दर पैदा होती है। जहाँ कन्द लम्बा होता है, वहाँ इसकी ग्राकृति गोल होती है। इसके छिलके के उपर बडे-बडे रेशे रहते हे, जो इसकी पहचान तुरन्त करा देते है। 'सुथनी' विशेष रूप से कार्तिक शुक्ल एकादशी—जिसे देवोत्थान एकादशी कहा जाता हे—के दिन खायी जाती है। कन्द के साथ व्रती के लिए इसका फलाहार करना भी ग्रावश्यक होता हे।

सुथनी को उबालकर खाया जाता है। यह बहुत कडी होती है, ग्रत इसके उबालने मे बडा समय लगता है। उबालने के पश्चात इसके छिलके को हटा देते हे, फिर इसे खाते है। इसमे कोई स्वाद नही होता, ग्रत चीनी के साथ प्राय इसे खाया जाता है। उबालकर छिलका हटा देने पर इसका रग सफेद होना है, जो नेत्र-सुखद होने पर भी जिह्वा को ग्रानन्द नही देता।

(३८) गाजर

इसे भोजपुरी मे 'गजरा' कहते है। यह दो प्रकार का होता है—(१) काला ग्रौर (२) पीला (गेरुअ)। काला गाजर लम्बा और मोटा होता है, परन्तु पीला गाजर छोटा ग्रौर पतला होता है। दूसरे प्रकार का गाजर देखने मे तो सुन्दर ग्रवश्य लगता है, परन्तु इसमे काले गाजर के समान 'मिठास' नही होती। ग्रत गाँवो मे काले गाजर को ही खाने का ग्रधिक प्रचार है। गाजर को कच्चा ग्रौर उबालकर दोनो प्रकार से खाते हैं। इसे भाड मे भी भूनकर खाने की विधि है। गाजर का हलुग्रा ग्रौर खीर दोनो बनाया जाता है, जिसके बनाने की प्रक्रिया व्ययसाध्य तथा श्रमसाध्य है।

(३९) सिंघाडा

सिघाडा ही ऐसा ग्रकेला फल है, जो पानी मे पैदा होता है। इसकी बेल को पानी मे लगा देते हैं, जो स्वय ग्रापसे-ग्राप धीरे-धीरे फैलती जाती है। इसका फल छोटा, हरा, नोकीला ग्रौर कुछ गोला होता है। जब तालाब मे यह खूब फलने लगता है, तब छोटी-छोटी डेंगियो पर बैठकर कुँजडे इसे तोडते है।

सिंघाडा कच्चा ग्रौर उबालकर दोनोही प्रकार से खाया जाता है। पहिले इसके छिलके को—जो हरा ग्रौर कुछ मोटा होता है—चाकू से काटकर हटा देते है, फिर इसके सफेद ग्रश को बडे प्रेम से खाते हैं। यह व्रती व्यक्तियो का, कन्द की ही भाँति, ग्रावश्यक फलाहार है। इसे पानी मे डालकर उबालते है, फिर इसके छिलके को छुडा देते है। इसके पश्चात् चीनी की सहायता से इसका फलाहार करते है। कच्चे सिंघाडे का भुजिया शाक भी बनाया जाता है, जो बडा स्वादिष्ट होता है। यह गरीबो का जलपान भी है ग्रौर भोजन भी।

इसका हलुग्रा भी बनाया जाता है, जो व्रत की पारणा के रूप मे प्रयुक्त होता है। इसके छिलके को हटाकर इसे खूब धूप मे सुखाया जाता है। सूख जाने पर इसे जाँत मे पीसकर ग्राटा तैयार करते हैं। फिर सूजी की भाँति इसका हलुग्रा बनाया जाता है, जो रग मे थोडा लाल होता है। गीले हलुए को थाली मे फैला देने पर यह जम जाता है। फिर चाकू से काटकर, इसके छोटे-छोटे टुकडे बना लेते है ग्रौर उन्हे बडे प्रेम से खाते है।

(७) परिच्छेद

पेय पदार्थ

भोजपुरी क्षेत्र मे किसी व्यक्ति के स्वागताथ या तो जलपान करने के लिए कोई वस्तु उसे खाने को दी जाती है ग्रथवा उसके सामने कोई पेय पदाथ पीने के लिए प्रस्तुत किया जाता है। इन पेय पदार्थों की गणना निम्नाकित रूप मे की जा सकती है —

(१) शरबत, (२) सीरा, राब, ठोपारी, महिया, (३)कचरस, (४) देहाती लस्सी, (५) ग्रमझोर, (६) श्रीफल का शरबत, (७) दूध, (८) दही, (९) मट्ठा, (१०) ठढई।

(१) शरबत

जिस प्रकार ग्राजकल पेय पदार्थों मे चाय सबसे ग्रधिक प्रिय ग्रौर प्रचलित है, उसी प्रकार से भोजपुरी क्षेत्र मे

शरबत—जिसे वहा की लोक-भाषा मे 'सरबत' कहा जाता है—सर्वाधिक प्रसिद्ध है। यदि कोई अतिथि आये अथवा कोई अत्यन्त निकट का सम्बन्धी ही आने की कृपा करे, तो उसे बिना किसी सकोच के 'सरबत' पिलाया जाता है। तिलक, विवाह आदि के अवसर पर गर्मी के कारण परेशान (क्योकि इस क्षेत्र मे विवाह प्राय गर्मियो मे ही हुआ करते हे) बारातियो को ठण्डा शरबत पिलाकर शान्त किया जाता है। शरबत द्वारा सत्कार करने का कार्यक्रम बारहो महीने चलता रहता है। यदि कोई अभ्यागत जाडो के दिनो मे ही आ धमके, तो उसका भी आतिथ्य इसी के द्वारा किया जाता है, यदि यह कहे कि शरबत भोजपुरियो का राष्ट्रीय पेय है, तो इसमे कुछ अत्युक्ति न होगी।

यह शरबत अनेक वस्तुओ से बनाया जाता है—जैसे गुड, चीनी, बतासा, शक्कर आदि। गुड का शर्बत सबसे अधिक प्रचलित है। गुड को फोड कर पानी मे डाल देते है, फिर उसके 'गल' जाने पर उसे किसी कपडे से छानकर उसे दो-चार बार एक बतन से दूसरे बतन मे उडेलते है। फिर गिलास मे रखकर अतिथि को पीने के लिए दिया जाता है। गुड का शर्बत, पुत्री के विवाह मे मण्डप 'छाने' के दिन विशेष रुप से पिलाया जाता हे। अपनी पुत्री के लिए भावी वर की खोज मे घूमनेवाले 'तिलकहरुओ' को भी गुड का शबत पिलाकर, उनका सत्कार किया जाता है।

परन्तु समृद्ध व्यक्ति चीनी का ही शर्बत पीते तथा पिलाते है। गुड का शबत कुछ काला होता है, परन्तु चीनी का शबत सफेद, स्वच्छ और स्वादिष्ट होता है। अब चीनी और गुड के 'दामो' मे विशेष अन्तर न होने के कारण गुड का स्थान चीनी लेती जा रही है। देशी चीनी को 'खाड' या 'सक्कर' कहते है, जो मशीन से न बनाकर हाथ मे ही बनायी जाती है। यह पूर्वी क्षेत्रो मे प्रचुर मात्रा मे तैयार की जाती है। अत चीनी के स्थान पर प्रधानतया 'खाँड' का ही शर्बत बनाया जाता है। यह तासीर मे ठण्डा होता है। यदि घर मे 'खाड' या 'सक्कर' उपलब्ध न रहा, तो बताशा का ही शबत बनाकर काम चलाते है। सीरा, ठोपारी और राब—जो शक्कर के ही विभिन्न साथी है—का भी 'अभावे शालिचूर्णं वा' के सिद्धान्त के अनुसार शबत बनाकर अतिथि-सत्कार का कतव्य निभाया जाता है।

(२) सीरा, राब, ठोपारी और महिया

ईख के रस को जब बडे कन्हाहे मे डालकर आग पर गम करके, गुड बनान का उपक्रम किया जाता है, तब उसकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओ पर सीरा, राब और महिया आदि का निर्माण होता है।

आग मे ईख के रस को जब गर्म करते है, तब उसकी गदगी ऊपर आने लगती है। इस गन्दे गाज को छनवटा मे हटाकर किसी वर्तन मे रख देते है और उसे पशुओ को पिला देते है। रस की गन्दगी के हट जाने पर फिर उसे गम किया जाता है। अब रस कुछ गाढा होने लगता है। इस समय रस के ऊपरी भाग (गाज) को छनवटा से उठाकर किसी बतन मे रख देते हैं। यही गाढा रस 'महिया' कहलाता है।

इसी रस को फिर और अधिक गर्म किया जाता है। जब वह गुड बनने के योग्य हो जाता है, तब उसके पहिले ही इस अधिक गाढे ईख के रस को निकालकर किसी बर्तन मे रख देते हैं। इसी को 'राब' कहते है। 'महिया और राब' दोनो ही ईख के रस से बनाये जाते है। इनमे पहिला अपेक्षाकृत कुछ पतला होता है और दूसरा (राब) बहुत गाढ़ा होता है।

गुड से जब चीनी बनाने लगते है, तब 'ठोपारी' की सृष्टि होती है। पहिले गुड के रस को आग मे गम किया जाता है। जब इसमे गाढापन आने लगता है, तब इसे किसी मिट्टी के नाद मे रख देते हैं। इस नाद मे एक छोटा-सा छेद करके उसके नीचे कोई पात्र रख देते है। इसी छिद्र के माग से गुड का गाढ़ा रस ठोप-ठोप (बिन्दु-बिन्दु) करके धीरे-धीरे नीचे के पात्र पर चूता है। ठोप-ठोप चूने के कारण ही इसे 'ठोपारी' कहा जाता है। जिस प्रकार से 'राब' गुड की पूर्वावस्था है, उसी प्रकार से 'ठोपारी' को चीनी की पूर्व-अवस्था समझनी चाहिए। 'सीरा' गुड का ही द्रवीभूत निकृष्ट रुप है, जिसका आजकल अनेक प्रकार से उपयोग किया जाता है।

भोजपुरी क्षेत्र मे 'राब' और 'महिया' को विशेष रुप से खाने की प्रथा है। जब घर मे गुड अथवा चीनी का अभाव हो जाता है, तब इसका उपयोग शरबत बनाने मे भी किया जाता है।

(३) कचरस

भोजपुरी क्षेत्र मे ईख बहुत पैदा होती हैं। अत इसके रस को पीने का बडा प्रचलन है। गरीब किसान दिन मे चबेना खाकर तथा ईख के रस को पेटभर पीकर अपनी जीवन-यात्रा को चालू रखता है। ईख को 'पेर' कर मद्य निकाले गये इसके रस को 'कचरस' कहा जाता है, जो बहुत ही स्वादिष्ट होता है। यदि कचरस मे थोडा गर्म दूध मिलाकर उसको

पीया जाय, तो उसके स्वाद मे और भी वृद्धि हो जाती है। अब तो ईख के ताजे रस को पीने का फैशन शहरो मे भी दिखाई पडने लगा है। जाडे के दिनो मे जब ईख खूब पैदा होती है—कचरस का प्रयोग प्रचुर मात्रा मे किया जाता है।

(४) देहाती लस्सी

शहरो मे जो लस्सी बनायी जाती है, उसमे चीनी, दही और बर्फ होता है। पहिले चीनी और दही को मथानी से मथकर उसमे बर्फ तोडकर डाला जाता है। परन्तु देहाती लस्सी मे न तो बर्फ होता है—क्योकि गावो मे इसका मिलना कठिन है—और न दही को मथानी से मथने की ही आवश्यकता समझी जाती है। पहिले गुड अथवा चीनी का शर्बत तैयार कर लेते है। फिर इसमे थोडी दही डाल देते है। बाद मे इसे एक बर्तन से दूसरे मे उडेलकर खूब मिलाते है। दही से युक्त इस शर्बत को इसीलिए 'देहाती लस्सी' का नाम दिया गया है। कुछ लोग दही के स्थान पर शर्बत मे दूध डालकर भी पीते है, जो स्वादिष्ट होता है।

(५) अमझोर

यह कच्चे आम से बनाया जाता है। कच्चे आम को पहिले आग मे पकाते या उबालते है। फिर इसके छिलके को निकाल कर फेक देते है। बाद मे गूदे को हाथ से मीसकर 'अँठिली' या गुठली से उसे पृथक् कर लेते है। फिर इसमे पानी, थोडा नमक और पीसा गया जीरा डालकर इसे पेय के रूप मे पतला बना लेते है। इसी को 'अमझोर' कहा जाता है। यह स्वाद मे बडा अच्छा होता है। लू से पीडित व्यक्तियो के लिए यह अचूक दवा है। 'अमझोर' को शहरो मे बिकनेवाले 'जलजीरा' के समान ही समझना चाहिए जिसमे पुदीना आदि भी पडा रहता है।

(६) श्रीफल का शर्बत

श्रीफल जब खूब पक जाता है, तब उसके गूदे को निकालकर पानी मे घोलते है। फिर इसके बीज को निकालकर फेक देते है। बाद मे इसे कपडे से छानते है, जिससे उसका 'खूझा' आदि निकल जाता है। फिर इसमे थोडी चीनी या शक्कर डालकर इसे घोल लेते है, इस प्रकार श्रीफल का मीठा शर्बत तैयार हो जाता है। इसकी 'तासीर' बडी ठण्डी होती है। अत गर्मी के दिनो मे लोग इसे बडे शौक से पीते है।

(७) दूध

भोजपुरी जनता का सर्वश्रेष्ठ पेय पदार्थ दूध है, इस कथन मे कुछ भी अत्युक्ति नही समझनी चाहिए। भोजपुरिया जवान गायो और भैसो को चराता है और उनके दूध को पीकर मस्ती का आनन्द लेता है। दूध दो रूपो मे पीया जाता है—(१) धारोष्ण, (२) गर्म किया गया। जब गाय या भैस दुही जाती है, उस समय उसका दूध बडा गर्म होता है। इसी को 'धारोष्ण' दूध कहा जाता है। यह बडा पुष्टिकारक और स्वास्थ्यवर्द्धक होता है। कुछ लोग इसी 'धारोष्ण' दूध को पीते हैं।

दूसरे प्रकार का दूध वह है, जो मिट्टी के किसी छोटे-से पात्र—हँडिया—मे रखकर उपले की मन्द-मन्द आँच पर अधिक देर तक गर्म किया जाता है। इस क्रिया को भोजपुरी मे 'औटना' कहते है। जब गर्म किये गये दूध मे मलाई—जिसे 'साही' कहा जाता है—की मोटी तह पड जाती है, तब इसे आग पर से उतार लेते है और उसे कटोरा अथवा गिलास मे रखकर पीते है। कुछ लोग दूध मे चीनी मिलाकर इसका प्रयोग करते है। परन्तु यह 'औटा' हुआ दूध इतना मीठा और स्वादिष्ट होता है कि इसमे चीनी की आवश्यकता ही नही पडती।

भोजपुरी लोक-गीतो मे गाय के दूध पीने का उल्लेख प्रचुर रूप मे पाया जाता है। बिरहा का एक उदाहरण लीजिए—

"हती मुटी रहनी त गइया चरवनी।
पियनी बकेनवा के दूध।।"

प्राय गाय और भैस का दूध ही पीने के लिए व्यवहृत होता है। अपनी माता का दूध न पीनेवाले बच्चो को बकरी का दूध पिलाया जाता है, जो गुण मे माता के दूध के समान ही गुणकारी तथा हितकारी होता है।

गोरस

भोजन मे गोरस का एक विशेष स्थान है, जिसके अन्तर्गत दूध, दही और घी है। प्रत्येक किसान के घर

मे गाय या भैंस पा ली जाती है, जिसका दूध पीकर भोजपुरिया जवान अपनी जवानी मे आगे किसी को कुछ नही समझता।

गाय का दूध अधिक पौष्टिक और बुद्धिवर्धक है। भैंस के दूध मे घी अधिक होता है, अत वह शक्तिवर्द्धक होता है। घर के बच्चे गाय का दूध पीते है और जवान भैंस के दूध का उपयोग करते है। पहिला दूध पतला होता है और दूसरा गाढा।

(८) दही

भैंस के दूध को गम करके उसकी दही जमायी जाती है। यो गाय के दूध की भी दही जमती है, परन्तु भैंस की दही अधिक स्वादिष्ट ओर मीठी होती है। यह दही तीन प्रकार की होती है —

(१) सजाव, (२) छिनुई और (३) मट्ठा। दूध को गमकर जो दही जमायी जाती है और जिसमे मलाई ज्यो की-त्यो रहती है, उसे 'सजाव' कहा जाता है। यह सबसे अधिक मीठी होती है। जब सजाव दही की मलाई 'छीन' लेते है अथवा निकाल लेते है, तो उसी को 'छिनुई' कहते है, अर्थात् मलाई रहित दही। इसी को आजकल शहरो मे 'सेपरेटा' कहने लगे है। यह दही बहुत सस्ती बिकती है और गांवो मे विशेषतया इसी का प्रयोग किया जाता है।' मलाई निकालने के पश्चात इसे मथानी से अच्छी तरह से मथते है और फिर उसम थोडा पानी डाल देते है। जिससे यह पतली हो जाय। इसी के बल पर भोजपुरिया किसान जनेरा और जौ के भात को बडे मजे मे खाता है। घर के बच्चे इसी के सहारे बासी भात 'चटपट' उडा डालते है।

(९) मटठा

तीसरा दही का प्रकार 'मट्ठा' है, जिसे सस्कृत मे 'तक्र' कहते है। स्वास्थ्य की दृष्टि मे यह बहुत लाभदायक और दीघ आयुष्य प्रदान करनेवाला है। इसीलिए कहा गया है कि तक्र (मट्ठा) शक्र (इन्द्र) के लिए भी दुलभ पदाथ है —

"तक्र शक्रस्य दुर्लभम्।"

सजाव दही को उसकी मलाई बिना निकाले ही मथानी से खूब मथते है। फिर इसमे थाडा पानी डाल देते है, जिससे यह दही पीने के योग्य पतले द्रव के रूप मे हो जाय। इसीलिए दही तो खायी जाती है, परन्तु मट्ठा पिया जाता है। नमक और भूनकर पीसा गया जीरा डालकर पीने से यह बडा स्वादिष्ट लगता है।

घी का उपयोग भी भोजपुरिया अपने भोजन मे करता है। सजाव दही, को पहिले मथनी से खूब ही मथते है, इसके बाद उसमे थोडा ठण्डा पानी डालते है, जिससे दही के ऊपर तैरता हुआ मक्खन—जिसे भोजपुरी मे 'लयनू' कहते हैं—एकत्रित हो जाता है। इस 'लयनू' को बाहर निकालकर किसी बतन मे रख देते है। फिर इसे कडाही मे डालकर आग पर गर्म करते है, तब इसका मट्ठा जल जाता है, और जो शेष बच जाता है, वही घी कहलाता है। विवाह मे समधी के लिए पूडियाँ इसी घी मे बनायी जाती है और भात खिलाते समय उनकी दाल म यही घी दिया जाता है।

(१०) ठण्डई

धनी तथा समृद्ध लोग गर्मी के दिनो मे ठण्डई को बडे चाव से पीते है। ठढई मे गुलाब की सूखी हुई पत्ती, सौफ, खरबूजा का बीज, काली मिर्च आदि पदार्थ होते हैं। इन सब को पहिले पानी मे भिगो देते है। कुछ फूल जाने पर इनको सिल पर अच्छी तरह से पीसते है। फिर इसको चीनी के रस मे डालकर कपडे से छानते है। इस प्रकार 'ठण्डई' तैयार हो जाती है। बनारसी लोग इसके साथ भाँग पीसकर इसमे घोल देते है और उसे आकण्ठमग्न होकर पीते है। परन्तु जो लोग भाँग खाने के अभ्यस्त नही है, वे केवल ठण्डई को पीकर ही स्वर्गीय सुख का अनुभव करते हैं। जिस प्रकार गुड का शर्बत सामान्य लोगो का पेय है, उसी प्रकार ठण्डई उच्चवर्ग के लोगो के पीने की वस्तु है।

खीर

दूध मे चावल को पकाकर उसमे चीनी, किसमिश, इलायची, चिरौंजी, पिश्ता आदि मेवा डालकर जो पदाथ तैयार किया जाता है, उसे 'खीर' कहते है। सस्कृत मे इसे 'तस्मै' कहा जाता है। खीर पतला बनाया जाता है, जिससे

चम्मच के द्वारा उसे उठाकर खाया अथवा पीया जा सके। परन्तु यह धनी लोगो का भोजन है और बहुत महँगा सौदा है।

रसियाव

यदि 'रसियाव' को सवसाधारण जनता का खीर कहे, तो कुछ अनुचित न होगा। परन्तु इन दोनो के आकार-प्रकार, रग-रूप तथा स्वाद मे बडा अन्तर है। जहा खीर मे दूध और चीनी का होना अत्यन्त आवश्यक है, वहाँ रसियाव मे इन दोनो का अत्यन्त अभाव होता है। रसियाव बनाने की विधि यह है कि गम पानी मे चावल —वह भी मोटा और उसिना—को डाल देते हे। जब चावल करीब आधा पक जाता है, तब इसमे गुड की 'भेली' को कूटकर डाल देते है। जब चावल अच्छी तरह से पक जाता है और सब पानी सूख जाता है, तब इसे 'चूल्हे' पर से उतार लेते है। इसी को 'रसियाव' कहते है। खीर जितनी पतली होती है, रसियाव उतना ही कडा होता है। गुड मे पकने के कारण इसका रूप काला पड जाता है। विवाह के चौथे (चौथारी) दिन दाल की पूरी के साथ रसियाव खाने की बडी प्रथा है। ये दोनो अभिन्न सहचर है। रसियाव यद्यपि अधिक सुस्वादु भोज्य पदाथ नही है, परन्तु प्रचलित प्रथा के कारण इसे खाना ही पडता है।

उपसहार

गत पष्ठो मे भोजपुरी जनता के भोजन का सक्षेप मे वणन उपस्थित किया गया है। भोजपुरी लोगो के प्रधान खाद्य पदाथ क्या है, जलपान के लिए वे किन वस्तुओ का प्रयोग करते है, वे किन फलो को खाते और किन तरकारियो को ये दैनिक व्यवहार मे लाते है, इसका विवरण यहाँ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त अपने भोजन को अधिकसुस्वादु तथा रुचिकर बनाने के लिए वे किन साधनो को काम मे लाते हैं, इसकी एक झाँकी दिखलायी गयी है। इस प्रकार उनके भोज्य तथा पेय पदार्थों का एक सर्वाङ्गीण विहगम दृश्य पाठको के सामने प्रस्तुत किया गया है।

भोजपुरी मे यह कहावत प्रसिद्ध है कि भोजन ५६ (छप्पन) प्रकार का होता है। गत पृष्ठो मे भोजन के जिन विभिन्न प्रकारो का उल्लेख किया गया है, उनके जोडने से यह सख्या ५६ से बहुत आगे निकल जायेगी। इस प्रकार जहाँ तक भोजन की विविधता का प्रश्न है, वहाँ भोजपुरियो का भोजन समृद्ध है। यह बिना किसी सकोच के कहा जा सकता है कि यहाँ की जनता शाकाहारी है और इनके भोजन मे वह सादगी, स्वच्छता और पवित्रता है, जो मनुष्य के हृदय मे सात्विक भावो का सञ्चार करती है। भगवान कृष्ण ने ऐसे ही भोजन को सात्विक की सज्ञा प्रदान की है। इसी सात्विक भोजन के कारण भोजपुरी लोग सत्त्व सम्पन्न है।

(८) परिच्छेद

(१) अनुच्छेद—मादक द्रव्य

भोजपुरी क्षेत्र के निवासी अनेक प्रकार के मादक द्रव्यो का सेवन करते है, जिसने निम्नलिखिन प्रधान हे —

१ शराब	२ ताडी	३ भाँग
४ गाँजा	५ अफीम	६ सखिया

(१) शराब

इस समाज के प्राय निम्नवर्ग के लोग शराब पीते है। किसी भी बाजार अथवा कस्बे मे 'देशी शराब' की दूकान देखी जा सकती है, जहाँ 'पियक्कडो' की भीड लगी रहती है। यह शराब प्राय महुआ को सडाकर बनायी जाती है, जिसको 'ठर्रा' कहा जाता है। चावल से भी शराब का निर्माण किया जाता है। परन्तु महुआ की शराब सस्ती और सुलभ होने के कारण इसी का प्रचार अधिक है। उच्च वर्ग के कुछ लोग भी इसका सेवन करते है, परन्तु इनकी सख्या गिनी-चुनी है। समाज मे मद्यपान निन्दित समझा जाता है। अत इसका उपयोग लोक-लज्जा के कारण नही किया जाता।

(२) ताडी

भोजपुरी क्षेत्र मे 'ताडी' का प्रचुर प्रचार उपलब्ध होता है। यो तो ताडी सभी स्थानो मे प्राप्त होती है, परन्तु बिहार राज्य के शाहाबाद (आधुनिक भोजपुर) जिले मे इसके पीने की प्रथा बहुत ही अधिक है। वहाँ तरकुल (तालीकुल) के वृक्ष, जिनसे ताडी चुआयी जाती है—लाखो की सख्या मे पाये जाते है। पासी लोग प्रात काल वन

ना पर चढकर ताडी की हँडिया उतारकर 'ताडीखाना' मे ले जाते हे और वहाँ इन्हे बेचते है। साधारणतया निम्नवग के दस्यो और तथाकथित अस्पृश्य जातियो के द्वारा इसका प्रयोग अधिक किया जाता है। गाँव मे चमार, दुसाध तथा म लोग इसे आनन्द से पीते है और इसकी मस्ती मे अपने जीवन की कठोरता भुलाये रहते हे। मुसहर जाति के लोग डी को भरपेट पीकर बीसियो कोस तक पालकी को ढोते हुए भी थकान का अनुभव नही करते। ताडी वह मादक पदार्थ है, जिसका सेवन करने से इन लोगो को शक्ति प्राप्त होती है। यह गरीबो का बल और सम्बल है। शराब अपेक्षा सस्ता, स्वादिष्ट और सुलभ होने के कारण ताडी का प्रचार मद्य की अपेक्षा बहुत ही अधिक हे।

३) भाँग

इस मादक द्रव्य का प्रचार भी कुछ कम नही है। चूकि भाँग मँहगा है और इसके निर्माण करने की प्रक्रिया बडा झझट है, अत इसका प्रयोग प्राय उच्चवग के धनी लोग ही किया करते हे। यो तो भोजपुरी क्षेत्र मे भाँग ने की प्रथा सर्वत्र पायी जाती है, परन्तु वाराणसी मे इसका प्रचार बहुत ही अधिक है। काशी के निवासी सन्ध्या मय गगा के उस पार अथवा 'बहरी तरफ' चले जाते है, जहाँ भाँग बनाकर वे बडे प्रेम से पीते है। बनारसी बोली इसे 'छानना' कहा जाता है। 'का रजा! आज कहवाँ छनी' का अथ हे, आज भाँग कहाँ पी जायेगी। जो लोग ग की निन्दा करते है, उन्हे बनारसी अभिशाप देते हुए कहता है कि—

"जो विजया की करें बुराई।
ताहि खायेंगी कालिका माई।।"

कुछ लोग भाँग को सिल पर पीसकर उसका एक गोला बना लेते है और उसे ही निगल जाते है। चूकि ला बाबा (शिवजी) भी इसके शौकीन है, अत उनको आवाहन करते हुए भाँग पीनेवाले कहते है—

"बम भोला लगावऽ गोला।"

इस मादक द्रव्य को पीनेवाले 'भँगेडी' के नाम से प्रसिद्ध है। जो अभ्यस्त तथा अनुभवी 'भँगेडी' है, वह भाँग गोला ही निगल जाता है, परन्तु जो शौकीन लोग है, वे भाँग को शरबत के रूप मे पीते है, जिसमे काली मिर्च, ायची और बादाम आदि भी डाला जाता है। सच तो यह है कि भाँग पीने का मजा इसी आपानक रस मे है, जो सुमधुर और सुस्वादु होता है।

४) गाँजा

कुछ लोग 'गाँजा' पीने के आदी होते है। उन्हे जब तक गाँजा पीने को नही मिलता, तब तक वे चैन से नही ते है। गाँजा को चिलम मे आग के ऊपर रखकर पीते है। 'गँजेडी' गाँजा पीते समय इतने जोरो से 'दम लगाता' कि आग मे लपट उत्पन्न हो जाती है। वह दो-तीन बार स्वय दम लगाने के पश्चात् दूसरो को पीने के लिए दे ा है। इस प्रकार इसे पीने का क्रम तब तक जारी रहता है, जब तक गाँजा आग मे जलकर राख नही बन जाता। धु लोग गाँजा को बडी मस्ती के साथ पीते है। आजकल हिप्पियो के आगमन के पश्चात इसके पीने की प्रथा का ुर प्रचार हो गया है। अब तो 'हरे कृष्ण हरेराम' नामक फिल्म मे भी इसे स्थान मिल गया है। इस फिल्म के गीत की एक कडी इस प्रकार है—

"दम मारो दम, मिट जाये गम।
बोलो सुबह शाम, हरे कृष्ण हरे राम।।"

गाँजा को 'सुलफा' भी कहा जाता है। ऐसा शायद ही कोई 'उदासी', 'बैरागी', 'नागा' और 'अवधूत' हो, ासने गाँजा का एक बार दम नही लगाया हो। गाँजा बडा महँगा बिकता है, अत निर्धन मनुष्यो के लिए यह सुलभ ही है।

इस मादक द्रव्य का प्रयोग 'ओझा', 'सोखा' आदि के द्वारा भूतो को भगाने मे विशेष रूप से किया जाता है। त-प्रेत आदि की पूजा मे प्रेतात्माओ को प्रसन्न करने के लिए इसे प्रदान किया जाता है। बिलोकी बाबा की पूजा गाँजा की प्रधानता रहती है। इस प्रकार इसका उपयोग मनुष्य तथा देवता दोनो के लिए समान रूप मे होता है।

(५) अफीम

इसका प्रयोग बहुत कम लोग करते हैं। अफीम खानेवाले को 'अफीमची' कहा जाता है। जो लोग इसके खाने के अभ्यासी है, उन्हे इसे खाये बिना पेट मे अन्न नही पचता। 'अफीमची' प्राय निष्क्रिय होते है और चारपायी पर पडे हुए दिन मे भी आकाश के तारे गिना करते है। गाजीपुर जिले मे अफीम की खेती होती है। परन्तु इसकी खेती गवनमेण्ट की 'मोनोपोली' है।

(६) सखिया

यह एक मँहगा मादक पदाथ है, जिसे प्राय पान मे खाया जाता है। अफीम की ही भाँति यह भी विष है, जिसे थोडी भी अधिक मात्रा मे खा लेने पर मृत्यु हो सकती है। इसका प्रयोग बहुत कम लोग करते है।

(२) अनुच्छेद—धूम्रपान

(१) बीडी

गाँवो मे धूम्रपान की बडी प्रथा है। सवसाधारण जनता—मजदूर और किसान—प्राय 'बीडी' पीती है, जो 'जगल मे उत्पन्न होनेवाले तेन्दू वृक्ष की पत्तियो से बनाया जाता है। बीस-पच्चीस बीडियो को एक साथ बाँधकर बेचा जाता है, जिसे 'बण्डल' कहा जाता है। चकि बीडी बडी सस्ती और सुलभ है, अन इसका प्रयोग विशेष रूप से होता है। इम धूम्रपान का इतना अधिक प्रचार है कि पान की छोटी-छोटी दूकानो पर भी बीडी को जलाने के लिए एक छोटा दीपक जलता रहता है।

(२) सिगरेट

गाँवो में इसका उपयोग प्राय नही के बराबर है। अग्रेजी शिक्षा मे दीक्षित प्राय 'जैण्टिलमैन' ही इसका प्रयोग करते है। नौकरी पेशावाले धनिक वग के लोग सिगरेट के बडे शौकीन होते हैं। वे एक सिगरेट के समाप्त होते ही दूसरे क्षण पुन नयी सिगरेट जलाकर पीने लगते है। ऐसे लोगो को 'चेन स्मौकर' (लगातार सिगरेट पीनेवाला) कहा जाता है। सिगरेट अनेक प्रकार की होती है, जिसमे घटिया तथा बढिया दोनो पायी जाती है। सिगरेट को जलाने के लिए दियासलाई के अतिरिक्त 'लाइटर' का भी प्रयोग किया जाता है।

(३) तम्बाकू

यह 'मौलेशेज' से तैयार किया जाता है। यह आकृति मे काला होता है। 'हुक्का' पर 'चिलम' चढाकर उसमे थोडी आग रख दी जाती है। उसी आग मे तम्बाकू को डालकर हुक्का को पीते है। हुक्का पीने की परम्परा अत्यन्त प्राचीन ज्ञात होती है। प्राचीन काल मे इन्द्र ने ब्रह्मा जी से पूछा कि पृथ्वी पर सारभूत वस्तु कौन-सी है। इस पर ब्रह्मा जी ने अपने चारो मुखो से चिल्लाकर कहा कि तम्बाकू, तम्बाकू, तम्बाकू, तम्बाकू।

> "बिडौजा पुरा पृष्टवान् पद्मयोनिं।
> धरित्रीतले सारभूत किमस्ति।।
> चतुर्भिर्मुखै इत्यबोचत् विधाता।
> तमाखु, तमाखु, तमाखु, तमाखु।।"

जब विधाता ने ही स्वय यह घोषणा कर दी है, तब गाँव के लोग इसे पीयें, तो इसमे आश्चर्य ही क्या है? उत्तरप्रदेश के पश्चिमी जिलो मे हुक्का पीने की बडी प्रथा है। किसी अतिथि के आने पर उसे हुक्का पीने के लिए देना सम्मान की वस्तु समझी जाती है। गाँवो मे यह 'पियनी' के नाम से प्रसिद्ध है।

(४) खईनी

'खईनी' एक प्रकार के पौधे की पत्ती है। खेत मे लगे हुए खईनी के पत्तो को 'गदहा' भी नही 'चरता' परन्तु आदमी बडे शौक से इसका प्रयोग करते है। यह 'सुरती' के नाम से भी प्रसिद्ध है। खईनी की सूखी हुई पत्ती मे

चूना मिलाकर उसे हथेली पर कुछ देर तक मसलते है। फिर थपडी से उसे पीटकर उसका चूना प्राय उडा या हटा दिया जाता है। इसके पश्चात् उसे दातो और नीचे के होठ के बीच मे स्थापित किया जाता है। गाँव के किसान लोग प्राय सभी खईनी खाते है।

(३) अनुच्छेद—मुखशुद्धि

(१) पान

भोजन के उपरान्त मुख-शुद्धि के लिए लोग पान खाते है। अतिथि के आने पर उसे पान का बीडा देना सम्मान तथा आदर का सूचक माना जाता है। वाराणसी मे पान खाने की प्रथा अत्यधिक है। बहुत से लोग दोनो गालो के भीतर पान रखकर उसे धीरे-धीरे खाते रहते है। सस्कृत के किसी कवि ने—

"ताम्बूलमुखगल्लोऽय, भल्लो जल्पति मानुष"

लिखकर सम्भवत किसी पान चाभनेवाले बनारसी का ही वणन किया है। यद्यपि 'मगहिया' पान प्रसिद्ध है, परन्तु 'बनारसी पान' भी सुस्वादु मे किसी से कम नही होता। शहरी लोग पान मे सुर्ती डालकर खाते है, जो अपनी उत्तमता के कारण बडी ही मँहगी होती है।

(२) सुपारी

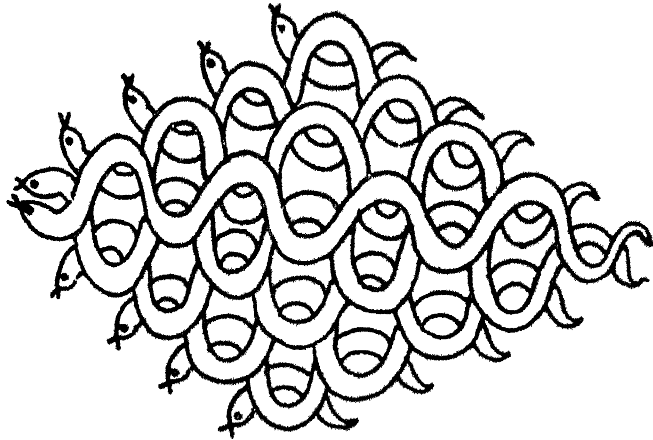
जो लोग पान खाना पसन्द नही करते, वे मुखशुद्धि के रूप मे 'सुपारी' (सुपाडी) का टुकडा काटकर खाते है। वे इन टुकडो को मुँह मे रखकर धीरे-धीरे 'चुभुलाते' रहते है।

(३) गरी

कुछ शौकीन लोग नारियल की गरी को कद्दूकस मे कसकर उसके छोटे-छोटे टुकडो का स्वाद लेते है। गरी खाने मे मीठी लगती है। पान मे भी गरी को खाने की प्रथा है।

(४) सौफ

लखनऊ का सौफ बडा छोटा तथा जीरा के समान पतला होता है। भोजन के पश्चात् इसे भी कुछ लोग खाते है। परन्तु गरी और सौफ का प्रयोग सर्वसाधारण जनता नही करती। इसे शौकीनो का शौक समझना चाहिए।



अध्याय ८

वेश-भूषा

○○

(१) अनुच्छेद—पुरुषो के वस्त्र

मनुष्य के गुह्य अगो के गोपन के लिए वस्त्र का धारण करना अत्यन्त आवश्यक है। जब कपास तथा ऊन से बने वस्त्रो का आविष्कार नही हुआ था, उस प्राचीन काल मे भी आदिम जातिया अपने अगो को ढकने के लिए पत्तियो तथा वृक्षो की छाल (त्वचा) का प्रयोग किया करती थी। ज्यो-ज्यो सभ्यता का उत्तरोत्तर विकास होता गया, त्यो-त्यो हमारे परिधान मे भी परिवतन की आवश्यकता ज्ञात होने लगी।

वस्त्रो का महत्त्व

आज आधुनिक सभ्यता के युग मे वस्त्रो को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया जाने लगा है। परन्तु ऐसा नही समझना चाहिए कि प्राचीन आय इसकी महत्ता से अपरिचित थे। मनुष्य को गौरव प्रदान करनेवाली वस्तुओ की सूची मे वस्त्रो को भी स्थान दिया गया है।

"विद्यया वपुषा वाचा, वस्त्रेण विभवेन च।
वकारै पचभिर्युक्तै नर प्राप्नोति गौरवम्॥"

वस्त्रो को मानव की योग्यता का प्रधान कारण माना गया है। ऐसा कहा जाता है कि समुद्र ने अपनी कन्या (लक्ष्मी) को विष्णु भगवान् को जो समर्पित कर दिया वह उनके सुन्दर पीताम्बर के कारण ही था।

"किं वाससा नैव विचारणीय,
वास प्रधान खलु योग्यताया।
पीताम्बर वीक्ष्य ददौ तनूजा,
दिगम्बर वीक्ष्य विष समुद्र॥"

इस प्रकार मनुष्य के जीवन मे वस्त्रो का स्थान बडा ही महत्त्वपूण है।

भोजपुरी क्षेत्र के लोग भिन्न-भिन्न प्रकार के वस्त्रो को धारण करते है, जिन्हे वर्णन की सुविधा के लिए हम तीन भागो मे विभक्त कर सकते है—

(क) पुरुषो के वस्त्र,

(ख) स्त्रियो के वस्त्र और

(ग) बालको के वस्त्र।

अत यहाँ सर्व पुरुषो के द्वारा धारण किये जानेवाले वस्त्रो का विवरण पाठको के सामने प्रस्तुत किया जाता है।

(क) सिर के वस्त्र

(१) पगडी

साधारणतया भोजपुरी जनता सिर पर कोई वस्त्र धारण नही करती। परन्तु विवाह आदि विशेष अवसर पर कुछ लोग 'पगडी' अवश्य बाँधते है। पगडी सामान्यतया एक मीटर चौडी तथा आठ-दस मीटर या गज लम्बी

होती है, जो प्राय सफेद कपडे की बनी होती है। सम्भवत साफ (स्वच्छ सफेद) कपड की बनी होने क कारण ही इसे 'साफा' भी कहा जाता है। पण्डित लोग जो पगडी सिर पर बाँधते हे, वह बहुत बडी होती है। इसीलिए व्यग्य रूप मे उन पर कटाक्ष करते हुए कहा गया है कि—

"बडा धोता, बडा पोथा।
पण्डिता पगडा बडा।।"

अर्थात् पण्डित लोगो की धोती, पोथी और पगडी सभी बडी होती है। पण्डितो के लिए पगडी एक आवश्यक शिरोवस्त्र है। इसके बिना उनका विशाल व्यक्तित्व पूर्णतया प्रस्फुटित नही होता। एक लोकगीत मे रामचन्द्र के विवाह के अवसर पर राजा दशरथ हाथी पर पगडी बाँधकर बैठे हुए चित्रित किये गये हे।[1]

पगडी के ही समान सिर पर धारण के लिए एक दूसरा वस्त्र 'मुरेठा' होता है। सम्भवत मूँड—गिर-पर बाँधने के कारण ही इसे 'मुरेठा' की सज्ञा दी गयी है। यद्यपि 'पगडी' और 'मुरेठा' मे कोई तात्विक अन्तर नही है, परन्तु आकार-प्रकार की दृष्टि से दोनो मे किञ्चित् पाथक्य अवश्य है। पगडी प्राय सफेद कपडे की होती है, परन्तु मुरेठा प्राय पतला (महीन) तथा रगीन कपडे का बना होता है।

भोजपुरी बारात मे घोडे की पीठपर चढकर बडी अदा के साथ अपने घोडे को 'कदम' की चाल से चलानेवाले नवयुवक बाराती 'मुरेठा' बाँधकर बडी शान के साथ चलते है। उनका मुरेठा प्राय रेशम का होता है, जो रगीन होने के कारण और भी सुन्दर लगता है। मुरेठा का एक छोर सिर के ऊपर कुछ उठा (खडा)-सा रहता है और उसकी दूसरी छोर पीठ पर लटकती रहती है। परन्तु पगडी के दोनो छोर बाहर निकले न होने के कारण दिखलाई नही पडते है। सिर पर पगडी की बँधाई कुछ ढीली-ढाली-सी होती है, परन्तु मुरेठा को बडे ढग से कसकर सिर पर बाधा जाता है, जो देखने मे बडा सुन्दर तथा सुडौल लगता है।

अपनी पुत्री के विवाह के दिन पिता द्वार-पूजा के अवसर पर पीले कपडे—जो हलदी या पीले रग मे रँगी होती है—की पगडी बाँधता है। मिथिला के निवासी मैथिली लोग लाल पगडी बाँधते है। यह प्रथा अत्यन्त प्राचीन ज्ञात होती है। पुरातन समय मे पुरोहितो द्वारा यज्ञ मे लाल पगडी बाँधने का वर्णन उपलब्ध होता है। "लोहितोष्णीया ऋत्विज सचरन्ति।"

विवाह करने के लिए जानेवाला वर या दूल्हा भी अपन सिर पर पगडी बाँधता है। इसकी पगडी का कपडा लम्बा तो अवश्य होता है, परन्तु इसकी चौडाई प्राय एक बालिस्त (१२ इञ्च) से अधिक नही होती। दूल्हे की पगडी का रगीन होना आवश्यक है। अतएव यह प्राय पीली या लाल होती है। अतएव यह प्राय पीली या लाल होती है।

भोजपुरी लोकगीतो मे पगडी बाँधने का उल्लेख अनेक स्थानो मे किया गया है। पगडी के सुन्दर ढग से सिर पर बाँधना भी एक कला है। सभी लोग इसे कलात्मक रीति से नही बाँध सकते। पगडी कभी-कभी ही सुन्दर रीति से सिर पर बाँधी जाती है। इस सम्बन्ध मे यह लोकोक्ति बहुत प्रसिद्ध है—

"राग, रसोइया, पागरी कभी-कभी बन जाय।"

अर्थात् गाना, रसोई और पगडी कभी-कभी ही (सदा नही) सुन्दर बन पडती है।

भोजपुरी क्षेत्र मे आज भी पगडी का बडा महत्त्व है। यह किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा का प्रतीक समझी जाती है। किसी व्यक्ति के पैरो पर अपनी पगडी रखना विनम्रता तथा आत्मसमपण का सूचक है। अपनी दीनता की ओर किसी व्यक्ति को द्रवित करके आकर्षित करने का यह अमोघ अस्त्र है। जहाँ पगडी बाँधकर चलना प्रतिष्ठा तथा सम्मान का परिचायक है, वहाँ पगडी उतारकर किसी के पैरो पर रख देना अपनी दयनीयता को सूचित करता है।

(२) टोपी

जहाँ पगडी वयस्क तथा बूढे लोग बाँधते हैं, वहाँ टोपी का प्रयोग लडको तथा नवयुवको के द्वारा किया जाता है। शौकीन नवयुवक सफेद तथा पतले मलमल की बनी हुई टोपी से अपने सिर को सुशोभित करते हैं। चूँकि यह

१ "देवता लोग बरिअतिया जाहू हे; फूल बरिसावत हे।
हथिया पर राजा दसरथ बइठल, बँधले पगड़िया हे।।" —लेखक का निजी सग्रह

टोपी दो पल्लो (भागो) को सीकर बनायी जाती है, अत इसे 'दुपलिया' कहते है। इसकी चौडाई (ऊँचाई) एक इन्च से अधिक नही होती। होली के अवसर पर बारात के समय तथा अन्य उत्सवो पर इसका प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है। परन्तु अब गाधी-टोपी के बहुल प्रचार के कारण इसका प्रचलन धीरे-धीरे उठता जा रहा है।

कुछ समय पूव छात्रो तथा नवयुवको के द्वारा गोली तथा काली टोपी का प्रयोग किया जाता था, परन्तु गाधी-टोपी की आँधी ने उसे भी सदा के लिए हवा मे उडा दिया। जिस प्रकार आजकल 'नेता' का अथ होता है खद्दरधारी काग्रेसी, उसी प्रकार से अब गाधी टोपी की ही व्यञ्जना होती है।

अपनी प्रेयसी की प्राप्ति के लिए सज-धजकर जानेवाला दूल्हा एक विशेष प्रकार की टोपी पहिनता है, जो गोली और अधिक ऊँची होती है। यह टोपी वेशकीमती होती है, क्योकि इसमे जरी का काम किया गया रहता है। इसके साथ ही इसमे बहुमूल्य पत्थर या रत्न जडे रहते है। सारे गाव मे किसी एक ही धनी व्यक्ति के पास यह टोपी होती है और जब किसी के यहाँ लडके का विवाह होता है, तब उसी व्यक्ति के यहाँ से यह टोपी 'मँगनी' मागकर लायी जाती है। एक लोक गीत मे इस टोपी का उल्लेख पाया जाता है।[१]

(३) कनटोप

'कनटोप' जाडे के दिनो मे सिर पर लगाया जाता है। इसका प्रयोग प्राय बडे बूढे और बच्चे किया करते है। यह प्राय ऊनी कपडे का बनाया जाता है। सिर को ढकता हुआ यह कानो तक लटकता रहता है। सम्भवत इसीलिए इसे 'कनटोप' (कान+टोप अर्थात कान की टोपी) कहा जाता है। कान के नीचे तक लटकनेवाले इसके दोनो छोरो मे 'बन्द' लगा रहता है। जिन्हे गले के पास लाकर बाँध देते है। इस कारण यह कनटोप सिर से नीचे गिरने नही पाता। निधन मनुष्य सूती कपडे का ही 'कनटोप' बनाकर पहिनते है, जिससे शीत से उनके सिर की रक्षा होती है।

बालको के लिए कनटोप बडा ही उपयोगी है। छोटे-छोटे बच्चो को सर्दी से बचाने के लिए इसे नियमित रूप से उन्हे जाडो मे पहिनाया जाता है। परन्तु आजकल ऊनी टोपी—जिसे 'मकी कैप' कहते है—प्रचार से कनटोप का व्यवहार धीरे-धीरे कम होने लगा है। परन्तु निधन ग्रामीण जनता आज भी इसी का प्रयोग करती है।

(ख) गले के वस्त्र

(१) चादर

पण्डित लोग गले मे चादर धारण करते है। यह प्राय सूती तथा सफेद होती है। कुछ विशिष्ट पण्डित रेशमी चादर का भी प्रयोग करते है। यह दो प्रकार से प्रयोग मे लायी जाती है। इसका प्रधान प्रयोग गले मे धारण करना है। कुछ धार्मिक व्यक्ति, जो सिले हुए वस्त्रो को पहिनकर भोजन नही करते, वे उध्ववस्त्र के रूप मे इसका व्यवहार करते है। इसे 'दुपट्टा' भी कहा जाता है। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि पहिले दो पट या वस्त्रो को सीकर इसे तैयार किया जाता था। इसी कारण इसका नाम दुपट्टा (द्वि+पट) अर्थात् दो वस्त्र पड गया है। आजकल भी कुछ लोग कपडे के दो टुकडो को एक मे सिलाकर इसे बनवाते है। परन्तु अब 'मिल' की बनी हुई चादरो के आने के कारण इन सिले हुए दुपट्टो का प्रचार कम हो रहा है। सस्कृत मे चादर को 'उत्तरीय' कहते है, जिसका शाब्दिक अथ है, शरीर के उत्तर अर्थात् ऊर्ध्व भाग मे धारण किया जानेवाला वस्त्र।

(२) गमछा

साधारण जनता अपने कन्धे पर सूती वस्त्र का एक टुकडा धारण करती है, जिसे 'अँगोछा' कहते है। इस वस्त्र का प्रधान उपयोग स्नान के पश्चात् गीले अगो को पोछने (सुखाने) मे किया जाता है। शरीर के विभिन्न अगो

१ "सब सखि परिछसु, दुलहा अलबेला हो।
दुलहा के देखे खातिर लागल बा झमेला हो।
सुन्दर जोडाजामा बाटे, टोपी अलबेला हो।"

—लेखक का निजी सग्रह

को पोछने के कारण ही इस वस्त्र का नाम 'अँगोछा' पड गया है, जो 'अग पोछा' (अगो को पोछनेवाला) का अपभ्रंश रूप ज्ञात होता है। यह प्राय दो-तीन मीटर (गज) लम्बा होता है और पहिनने के प्रयोग मे भी लाया जाता है। इसे 'गमछी' या 'गमछा' भी कहते है। इस शब्द की व्युत्पत्ति निश्चित रूप से नही बतलायी जा सकती। गमछी अगोछा की अपेक्षा प्राय छोटी और पतली होती है। देशी करघे पर हाथ से बुना हुआ—ट्रेण्डलूम का अँगोछा बडा मजबूत और टिकाऊ होता है। यह गरीबो के लिए धोती और गमछी दोनो का काम देता है। गमछा प्राय रगीन (लाल या हरा) होने के कारण यह जल्दी मैला भी नही होता। इस प्रकार यह किसानो के लिए बडे काम का वस्त्र है। अब धीरे-धीरे 'मिल' का बना हुआ रगीन तौलिया भी गाँवो मे प्रवेश करने लगा है। परन्तु अपनी महघता और अनुपयोगिता के कारण यह ग्रामीण समाज मे समादर प्राप्त नही कर सकता। एक लोकगीत मे कोई पति अपनी प्रेमिका से कहता है कि धोती तथा गमछा के मैला होने के कारण मै तुम्हारे पास नही आया।[1]

(ग) शरीर मे पहिने जानेवाले वस्त्र

(१) कुर्ता

भोजपुरी जनता अपने शरीर मे जिस वस्त्र को प्राय धारण करती है, उसे 'कुर्ता' कहा जाता है। सम्भवत ९५ प्रतिशत ग्रामीण लोग इसी का व्यवहार करते है। यह ग्रामीण जनता का बहुप्रचलित तथा लोकप्रिय वस्त्र है। खेत-खलिहान मे, विवाह-शादी के अवसर पर, मागलिक उत्सवो पर, तथा पर्व और त्यौहार के समय जनता इसी वस्त्र को पहनकर अपना जीवन-यापन करती है। रेशमी, सूती तथा ऊनी सभी प्रकार के वस्त्रों से कुर्ता बनाया जाता है, परन्तु गरीब लोग सूती कपडे—जो हाथ से बुना हुआ होता है—का ही कुर्ता पहिनते है। इस कपडे को 'मोटिया' या 'गाढा' कहते है। इस कपडे का सूत अपेक्षाकृत मोटा होता है और इसकी बुनाई घनी या 'गाढी' होती है। इसीलिए इसे उपर्युक्त दोनो सज्ञाएँ प्राप्त है। 'मोटिया' का बना कुर्ता बडा मजबूत होता है, जो कई वर्षों तक प्रयोग मे लाया जा सकता है। साधारणतया कुर्ते का बटन बीच मे लगाया जाता है, परन्तु कुछ बूढ़े ग्रामीण लोग बीच मे बटन न लगवाकर कन्धे के दाहिनी या बायी ओर लगवाते है। कभी-कभी बटन के स्थान पर कपडे की गोली तथा छोटी आकृति बनाकर—जिसे 'भडी या मुद्धी' कहते है—प्रयोग किया जाता है।

कुर्तों के विभिन्न प्रकार

सिलाई की दृष्टि से कुर्त्ता के अनेक प्रकार होते है। जैसे—चूडीदार कुर्ता, पजाबी कुर्ता और छवकलिया कुर्ता। चूडीदार कुर्ते मे बाँह की आस्तीन क्रमश कम चौडी होती जाती है और हाथो के पास उसकी चौडाई बहुत कम हो जाती है। कमीज की भाँति इसमे दो या तीन बटन लगाया जाता है। पजाबी कुर्ता ढीला-ढाला होता है। इसमे हाथो की आस्तीन मे बटन नही लगाया जाता। जिस कुर्ते की बगल मे प्रत्येक ओर कपडे के तीन-तीन टुकडो को जोडकर कुर्ता सीया जाता है, उसे 'छवकलिया' कहते है। कुर्ते की प्रत्येक 'सीयन' को 'कली' कहते है। चूकि इसमे छह टुकडे लगे रहते है, अत इसका नाम 'छवकलिया' पड गया है। शौकीन लोग 'मलमल', 'अद्धी' और 'तनजेब' के पतले तथा सुन्दर कपडे के कुर्ते पहिनते है। आजकल खद्दर के कुर्ते का प्रचार अधिक है, जो धोये जाने पर बहुत स्वच्छ दिखाई पडता है। विवाह के गीतो मे धोती तथा कुर्ता को वर एव देवर को देने का उल्लेख पाया जाता है। कोई स्त्री अपने देवर को कुर्ता देने का लालच देती है।

(२) बगलबन्दी

पण्डित लोग तथा प्राचीन परम्परा के उपासक कुछ वृद्ध व्यक्ति 'बगलबन्दी' पहिनते है। चूकि इस वस्त्र मे बगल के दोनो ओर बटन के स्थान पर कपडे के बने हुए 'बन्द' लगे रहते है, अत यह 'बगलबन्दी' के नाम से प्रसिद्ध है। यह 'डबल ब्रेस्ट' कोट के समान होता है, जिसकी सिलाई बडी सरल है। इसकी लम्बाई कमर तक होती है। जाडे के दिनो मे यह वस्त्र बडा उपयोगी होता है और पहिननेवाले व्यक्ति की शीत से रक्षा करता है।

---

१ "मइल धोतिया, धूमिल अँगवछिया,
तोहरा लाजे ना अइलीं आहो धनिया।"

—लेखक का निजी सग्रह

(३) मिरजई

इसी प्रकार का एक वस्त्र 'मिरजई' भी होता है। परतु 'बगलबन्दी' से इसमे थोडा अन्तर है। 'बगलबन्दी' मे दोनो बगलो की आर बन्द लगे रहते है, परन्तु 'मिरजई' मे दाहिनी ओर तो बद रहता है, परन्तु बायी ओर कपडे 'भुडी-मुद्धी' लगी रहती है। मिरजई मे इस 'मुद्धी' को लगाने पर भी बायी ओर छाती का कुछ भाग खुला रह जाता है।

बगलबन्दी को 'चौबन्दा' भी कहा जाता है, क्योकि इसमे चार बन्द लगे होते है। 'अगरखा' भी इसी प्रकार का एक वस्त्र-विशेप होना है। अगो की रक्षा करने के कारण ही इसका नाम 'अगरखा' पड गया है।

(४) शेरवानी

पण्डित लोग 'शेरवानी' भी पहनते है, परन्तु इसका उपयोग वे लोग विशिष्ट अवसरो पर ही किया करते है। मुमलमानी शेरवानी से पण्डितो की 'सिलवानी' मे थोडा अन्तर होता है। 'सिलवानी' मे बटन के साथ बन्द भी लगा रहता है। यह अपेक्षाकृत कुछ ढीलीढाली होती है। परन्तु 'शेरवानी' मे यह बात नही होती। शेरवानी घुटनो को छूती रहती है। 'मिरजई' तथा इसकी लम्बाई मे बहुत अधिक अन्तर है।

(५) रूईगर्दा

जाडो की कठोर शीत से अपने शरीर की रक्षा के लिए जन-साधारण 'रूईगर्दा' का प्रयोग करते है। यह वस्त्र मोटे, गदखोर (जिस पर धूल का प्रभाव न पड सके) कपडे का बनाया जाता है। इसके भीतर रूई भरी रहती है, जिसके कारण इसके पहनने वाले शीत से भयभीत नही होते। पूरे आस्तीन के बने हुए इस वस्त्र की लम्बाई केवल कटि-प्रदेश (कमर) तक होती है। कोई-कोई 'डबल ब्रेस्ट' का 'रूईगर्दा' भी पहनते है, जिससे शीत से छाती की रक्षा होती है। छोटे लडको के लिए यह बडा ही सस्ता एव उपयोगी वस्त्र है।

कुछ लोग किसी मोटे कपडे के भीतर रुई डालकर सिलायेगये कोट को भी पहनते है, जिसे 'रुई का कोट' कहते है। यह भी 'रुईगर्दा' की ही भाँति सिला होता है, परन्तु इसकी लम्बाई कुछ अधिक होती है। अब 'स्वेटर' बुनने का प्रचार गाँवो मे भी अधिकाधिक होता जा रहा है, अत 'रुईगर्दा' और 'रुई का कोट' पहिनने की प्रथा अब धीरे-धीरे नष्ट होती जा रही है। अग्रेजी पढे-लिखे नवयुवक अब कमीज और कोट का व्यवहार करने लगे है, जो अनेक प्रकार के 'कट' और 'फैशन' के होते है।

(६) गजी

कुर्ता, कमीज और बगलबन्दी को पसीने से बचाने के लिए गजी का भी प्रयोग किया जाता है, जिसे भोजपुरी मे 'बनियाइन' कहते हैं। मोटे कपडे की सिली हुई गजी बडी मजबूत होती है। मिल की बनी हुई गजी दो प्रकार की होती है—(१) आध आस्तीन की गजी, और (२) 'सैण्डोकट' अर्थात् जिसमे आस्तीन बिल्कुल नही होता। आजकल 'सैण्डोकट' का अत्यधिक प्रचार है। कुछ गजियाँ 'डबल ब्रेस्ट' की भी होती हैं, जिनकी मजबूती प्रसिद्ध है। सफेद रग की गजी का ही अधिकाशत प्रयोग होता है, यद्यपि लाल और हरे रग की गजियाँ भी मिलती है।

धनीवर्ग के लोग जाडो के दिनो मे ऊनी गजी, स्वेटर और पुलोवर का प्रयोग करते है। परन्तु निम्नवग के लोगो का 'पुल ओवर' उनका 'मोटिया' का कुर्ता और 'रुईगर्दा' ही है।

(घ) अधोवस्त्र

(१) धोती

जिस प्रकार भोजपुरी लोगो के शरीर के ऊपरी भाग का वस्त्र कुर्ता है, उसी प्रकार से उनका अधोवस्त्र धोती है। यह साधारणतया पाँच गज (मीटर) लम्बी और ४५ इच चौडी होती है। अपनी आर्थिक अवस्था के अनुसार विभिन्न वर्गों के लोग धोतियाँ खरीदकर पहनते है। किसान, मजदूर तथा साधारण स्थिति के लिए मोटे सूत की बुनी हुई धोती का प्रयोग करते है। हैण्डलूम की बनी धोतियाँ अधिक टिकाऊ और मजबूत होती है। मिल की बनी हुई धोतियाँ दो प्रकार की होती है—(१) कोरी, और (२) धुली हुई। जो धोतिया मिल मे बुनी

जाकर धुली नही जाती, उन्हे 'कोरा' कहते है। ये धुली हुई धोतियो से अधिक मजबूत होती है, यद्यपि देखने मे ये उतनी सुन्दर ओर आकर्षक नही होती। कभी समय था—जब यह देश स्वतन्त्र नही हुआ था—तब एक साधारण धोती दस या बारह आने मे मिला करती थी, परन्तु अब—जबकि अपने देश मे अपना राज स्थापित हो गया है—इन धोतियो का मूल्य पचीस-तीस रुपयो से कम नही है। सुपर फाइन किस्म की धोतिया—जिनमे 'परमसुख' तथा 'सेनगुप्ता' का नाम प्रसिद्ध है—आज तो पचास और साठ रुपयो से कम मे प्राप्त नही हो सकती।

कुछ धोतिया किनारी या कन्नीदार होती है और कुछ बिना किनारे की। बिना कन्नी की धोतियो की प्रथा अब धीरे-धीरे उठती जा रही है। पहिले गावो मे लाल, काले या हरे रग की चौड़ी कन्नी की धोती लोग बडे चाव से पहनते थे, परन्तु अब पतली ओर नाप्नी किनारे की धोतिया ही अधिक व्यवहार मे आ रही है। चौडे किनारे की धोती अब कोई पसन्द नही करता।

नयी तथा कोरी धोती को पहनना अशुभ समझा जाता है। अत नयी धोती का धारण करने के पहिले उसके एक किनारे को हलदी मे रग दिया जाता है। यद्यपि साधारणतया सफेद धोती ही प्रयोग मे लायी जाती है, परन्तु यज्ञोपवीत, विवाह आदि मागलिक अवसरो पर हल्दी अथवा पीले रग मे रगी गयी पीली धोती ही पहनने का शास्त्रीय विधान है। किसी पुत्री का पिता नयी तथा पीली धोती पहनकर ही कन्यादान करता है। दामाद या दूल्हा को इस समय जो धोती दी जाती है, वह भी पीली ही होती है। पीले रग मे रग जाने के कारण इसे 'पियरी' भी कहा जाता है। इसी प्रकार से सत्यनारायण की कथा सुनने तथा मन्त्र-दीक्षा ग्रहण करते समय पीली धोती ही पहनी जाती है।

लोकगीतो मे विवाह के अवसर पर 'भाट' को पीली धोती देने का उल्लेख पाया जाता है।[१] इसी प्रकार से ब्राह्मणो को भी उपहार मे 'पियरी' धोती दी जाती है। तुलसीदास जी ने भी राम के विवाह के समय पीली धोती का उल्लेख किया है।[२]

(२) लुंगी

लुंगी धोती का ही छोटा रूप है। निर्धन ग्रामीण लोग जो महगी होने के कारण धोती खरीदने मे असमर्थ होते है, वह लुगी पहनकर ही अपना दिन काटते है। यह ढाई से तीन मीटर (गज) तक लम्बी होती है। तथा इसकी चौडाई भी धोती की अपेक्षा कम होती है। पहले किसान और मजदूर निर्धनता के कारण इसे ही पहनते थे और आज भी पहनते है। परन्तु अब कुछ शौकीन नवयुवक को भी फैशन के लिए लुगिया को पहनने का शौक चर्रा रहा है। ये लुगिया रगीन ओर बहुमूल्य होती हैं तथा साधारण जनता के काम की नही है।

(३) लँगोट

अपनी शारीरिक शक्ति का प्रदर्शन करनेवाला भोजपुरिया जवान लँगोट पहनकर अखाडे मे उतरता है। ब्रह्मचारी के लिए लँगोट—जिसे सस्कृत मे कौपीन कहते है—पहनना अत्यन्त आवश्यक है। लँगोट का धारण करना ब्रह्मचर्य की साधना मे सहायक होता है। इसीलिए शकराचार्य ने लिखा है कि—"कौपीनवन्त खलु भाग्यवन्त" अर्थात् लगोट पहिननेवाला भाग्यवान् होता है।

लँगोट दो प्रकार का होता है—(१) सिला हुआ, और (२) बिना सिला हुआ। सिला हुआ लँगोट प्रत्येक व्यक्ति के शरीर के अनुसार लम्बा और चौडा होता है, जिसके दोनो छोरो पर कपडे की बनी हुई रस्सी लगी रहती है, जिसके द्वारा उसे कमर मे बाँधा जाता है। पण्डित लोग बिना सिला लँगोट पहनते है, जो १२ इच चौडे तथा तीन-चार हाथ लम्बे कपडे से बनी हुई पट्टी के समान होता है।

१ जब ही रामचनर गोयडहि गइले हो।
भटवा लिहले बेलमाई। सियाराम से बनी।
तोहरा के देबो भाट पियरी ही धोतिया,
सीता बिआहन हम अइलीं। सियाराम से बनी॥

—लेखक का निजी सग्रह

२. पीत पुनीत मनोहर धोती। रा० च० मा० (बा० का०)।

(ङ) पैर के परिधान

(१) जूता

ग्रामीण लोग पैर मे जिस जूते को पहनते है, उसे 'चमरौधा' कहते है। चूकि गाँव का चमार इस जूते को बनाता है, अत इसको 'चमरौधा' की सज्ञा प्राप्त हो गयी है। चमरौधा जूता बिना कमाये गये (untanned) चमडे (Hide) से बनाया जाता है, अत यह बडा सख्त होता है। इसलिए इसको मुलायम तथा पहनने-योग्य बनाने के लिए पहले उसमे रेडो (अरण्डी) का तेल डाला जाता है। जाड मे रात को छप्पर के ऊपर इसे रखा जाता है, जिसमे ओस की बूदो के पडने से यह मुलायम हो जाय। यदि रेडी का तेल उपलब्ध नही होता, तो सरसो अथवा महुआ का तेल इसमे डालते है। जब यह तेल लगाने से काफी मुलायम हो जाता है, तभी यह जूता पहना जा सकता है। अन्यथा यह पैर को दबाकर 'काटने' लगता है। घाघ ने इसी तथ्य की ओर अपनी निम्नाकित सूक्ति मे सकेत किया है —

> **"मुई चाम सो चाम कटावे,**
> **सँकरी भुई माँ सोवै।**
> **घाघ कहे ये तीनो भकुवा,**
> **सिर बोझा औ गावै॥"**

कहने की आवश्यकता नही कि 'मुई चाम' से यहा घाघ का तात्पय जूता से ही है। अग्रेजी जूता तो पैर को केवल 'पिञ्च' करता अर्थात् दबाता ही है,[1] परतु यदि चमरौध जूते की तेल आदि से सेवा न की जाय, तो वह पैर को बुरी तरह से 'काट' देता है।

चमरौधे जूते की एडी बडी नुकीली और कडी होती है। वह पहननेवाले के पैर की एडी को अपनी कककशता के कारण बुरी तरह से क्षत-विक्षत कर देती है। इसलिए इसे पहनना बडे साहस और वीरता का काम है।

परन्तु है यह चमरौधा जूता किसानो के बडे ही काम का। न तो इसे साफ करने की आवश्यकना होती है और न ही पालिश लगाने की। यह खेत और खलिहान मे, पक्की और कच्ची सडक पर, काँट-कुश से आच्छादित धरती पर तथा घने जगल मे समान रूप से काम मे लाया जाता है। इसके नीचे का तल्ला ककड-पत्थर की रगड से कभी घिसने न पाये, अत इसम एडी के तल्ले के नीचे 'लोहे' की बनी 'नाल' लगवा दी जाती है। फिर क्या मजाल कि यह जूता वर्षों तक पहनने पर भी एक तिल-मात्र भी घिस सके।

कुछ पढे लिखे लोग 'पम्पशू', 'फ्लैक्स' तथा दयालबाग के बने अग्रेजी जूते भी पहिनते है। कुछ चप्पल, सैण्डिल तथा हवाई चप्पल का भी प्रयोग करने लगे है, इनकी सख्या दिन-प्रतिदिन बढती जा रही है।

(२) खडाऊँ

घर मे लोग खडाऊँ का प्रयोग करते है। किसी अतिथि के आने पर पैर धोकर पहिनने के लिए उसे खडाऊँ दी जाती है। यह खडाऊँ दो प्रकार की होती है—(१) खूटीदार, और (२) बाध या रस्सी वाला। खूटीदार खडाऊँ सुन्दर होता है। किसी-किसी खडाऊँ पर नक्काशी का काम भी किया गया रहता है। परन्तु प्राय सादे खडाऊँ ही प्रयोग मे अधिक लाये जाते है, जो शीशम की लकडी के बने होते है।

यज्ञोपवीत के अवसर पर ब्रह्मचारी जो खडाऊँ पहनता है, वह आम की लकडी का बना हुआ होता है। इसी प्रकार विवाह मे दूल्हे के द्वारा प्रयुक्त खडाऊँ भी आम से ही बनाया जाता है। खूटीदार खडाऊँ कुछ तो बिलकुल ही सपाट पाये जाते हैं।

दूसरे प्रकार के खडाऊँ मे खूटी नही होती। इसके स्थान मे यह मूँज की रस्सी का या 'बाध' से बाँधा गया रहता है, इसी कारण इसे 'बधौरा' कहा जाता है। इस खडाऊँ की एडी लगभग दो-तीन इच ऊँची होती है। बरसात के दिनो मे कीचड और गोबर से पैर की रक्षा करने के लिए इसकी एडी का ऊँचा होना आवश्यक है। गाँव की बरसात मे पकमयी धरती के लिए यह खडाऊँ बडा ही उपयोगी है।

१ अंग्रेजी की इस कहावत की ओर ध्यान दीजिए।
The bearer knows where the shoes pinches

अब काठ की बनी 'चट्टी' या 'चटाकी' का प्रयोग भी प्रचुरता के साथ किया जाने लगा है। उसकी भी आकृति खडाऊँ की ही तरह होती है, परन्तु खूटी के स्थान पर इसमे 'नेवार' या रबर की पट्टी लगी रहती है, जिसे आसानी से पहना जाता है। इसे लगाकर चलते समय 'चट-चट' की आवाज होती है, इसीलिए इसे 'चटाकी' या 'चट्टी' कहते है।

अब मोटर के टायर की बनी हुई चप्पलो का प्रचार गावो मे भी होने लगा है। यह सस्ती और मजबूत होती है, अतएव निर्धन लोगो के लिए यह बहुत ही उपयोगी है।

वर की वेश-भूषा

जोडा और जामा

भोजपुरी क्षेत्र मे विवाह करने के लिए जानेवाला वर अथवा दूल्हा एक विशेष प्रकार की वेश-भूषा को धारण करता है। वह अपने सिर पर 'कामदार' गोनी तथा ऊँची टोपी पहनता है, जिसमे जरी का काम किया हुआ रहता है। उसके शरीर मे ढीला-ढाला कुर्ता सुशोभित होता है, जो पीला या हल्के लाल रग मे रगा हुआ होता है। धोती की जगह पर वह स्त्रियो के घाघरे की तरह का एक गोल घेरेदार वस्त्र को पहनकर विवाह के लिए जाता है, जिसे 'जामा' कहते है। यह जामा कुर्ते के रग के अनुकूल लाल या पीला होता है। 'जामा' का घेरा जितना ही बडा हो उतना ही अच्छा समझा जाता है।

इस 'जामे' को निर्धन लोग विवाह के अवसर पर नही बनवाते। गाँव का कोई धनी-मानी व्यक्ति इसे बनवा कर अपने घर मे रखे रहता है। जिस व्यक्ति के घर लडके का विवाह होता है, वह दूल्हे को पहनाने के लिए उसी धनी व्यक्ति से 'जामा' को मगनी माँगकर लाता है। चूकि दूल्हो की वैवाहिक आयु प्राय समान ही होती है और यह जामा काफी ढीला-ढाला होता है, अत सभी दूल्हे इसका उपयोग बडी आसानी से कर लेते है। बिना 'जोडा और जामा' के वर की वेश-भूषा समुचित तथा पूर्ण नही समझी जाती। परन्तु अब 'जामा' के स्थान पर पीली धोती पहिनने का प्रचलन बढ़ता जा रहा है।

एक लोकगीत मे ससुराल जाते हुए वर के द्वारा जामा पहिनने का वर्णन किया गया है।[१] बारात के अवसर पर महफिल मे वेश्याये जो गीत गाती है, उनमे वर के द्वारा 'जामा और जोडा' पहनने की चर्चा की गयी है।[२]

(२) जूता

दूल्हे का जूता भी एक विशेष प्रकार का होता है, जिसे 'सलेमशाही' कहते है। ऐसा अनुमान किया जा सकता है, 'सलीम शाह' नामक कोई नवाब इस प्रकार के जूते को पहनता रहा होगा, जिसके कारण इसका उपर्युक्त नामकरण हो गया है। यह लाल रग का जूता बडा मुलायम होता है। चूंकि विवाह मे रगीन वस्त्र तथा लाल जूता ही धारण करना चाहिए, अतएव इस मागलिक अवसर पर इसका विशेष महत्त्व माना जाता है। कुछ 'सलेमशाही' जूते 'कामदार' भी होते है, अर्थात उनके ऊपर चाँदी का 'काम' किया गया रहता है। इस समय दूल्हा जूता के साथ लाल मोजा भी पहिनता है, जिसे भोजपुरी मे 'पायताबा' कहा जाता है।[३]

(३) सेहरा

वर की वेशभूषा मे 'मउरि' का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिसे 'मौर' भी कहते है। वर के लिए सिर पर

१ कलकतवा से छूटल जहाज, नइया तोरे लागलि।
दुलहा सँवारे जामा ससुरारि, नइया तोरे लागलि।

—लेखक का निजी सग्रह

२ रुखे पुर-नूर का सेहरा, मुबारक हो, मुबारक हो।
नया जोडा, नया जामा; मुबारक हो, मुबारक हो।।

३ हाथ रुमाल सोभे, घडी सोभे बहियाँ।
गोड़ पैतामा सोभे, अवरु सोभे जूतवा जी।।

'सेहरा' को पहनना अत्यन्त आवश्यक है। यह गोलाकार तथा बडा ऊँचा बनाया जाता है। इसमे रग-बिरग के 'तार', 'गोटा', रगीन कागज आदि लगे रहते है, तथा स्थान-स्थान पर छोटे-छोटे शीशे भी जडे होते है। पटना मे बडी सुन्दर तथा आकषक 'मउरि' बनायी जाती हे। भोजपुरी विवाह के अवसर पर सजी-सजायी 'महफ्लि' मे 'बार बनिताएँ जो गाना गाती ह, उसमे 'सेहरा' का उल्लेख पाया जाता हे।[1]

(२) अनुच्छेद--बच्चो के वस्त्र

पहले भोजपुरी क्षेत्र मे प्राय तीन-चार वर्षो तक बच्चो को प्राय कोई कपडा नही पहनाया जाता था। वे प्रकृति की गोद मे पलते थे और अपने शरीर के विकास को वस्त्रो के भीतर नही छिपाते थे। कुछ बड होने पर वे एक प्रकार की लँगोटी पहिनना प्रारम्भ करते थे, जिसे 'भगही' कहा जाता था। इस वस्त्र को उनके कमर मे बाँध दिया जाता है, जिससे वह खिसककर गिरने न पाये। यह भोजपुरी 'भगही' कुछ-कुछ उस 'कछोटी' के समान होती थी, जिसका उल्लेख रसखान ने 'बाल-कृष्ण' के वणन मे किया हे।

बालक जब बडा होने लगता था, तब वह धोती ओर कुर्ता पहिनना प्रारम्भ करता था। उसकी यही वेश-भूषा उसके जीवन की चिरसगिनी हो जाती थी। वह अपने कन्धे पर सफेद, लाल, या हरी 'गम्छी' (तोलिया) को धारण करता था।

(१) घुटन्ना

परन्तु आजकल छोटे-छोटे बच्चो को भी कपडा पहिनाया जाने लगा है। दो-तीन वष तक बच्चे को जो लँगोटी पहनायी जाती है, उसे 'चड्डी' कहते ह। कुछ बडे होने पर इनको 'जाघिया पहिनाया जाता है, जो घुटने तक का होने के कारण 'घुटन्ना' भी कहा जाता है। 'चड्डी' या 'घुटन्ना' को 'इजारबन्द' के द्वारा बच्चो के कमर मे बाँध दिया जाता है। इसको पहिनकर चलने मे उनको लडखडाने या गिरने का डर नही होता है। अत यह उनके लिए बडा उपयोगी होता है।

(२) गाँती

जाडे के दिनो मे कठोर शीत से बच्चो की रक्षा करने के लिए सिर से लेकर पैर तक उनके शरीर को आच्छादित करनेवाले किसी मोटे कपडे को उनके गले मे बाँध दिया जाता है। इसे 'गाँती' कहते हैं।[2] इस शब्द की निरुक्ति को बतलाना कठिन है। सम्भवत 'गुपुरक्षणे' धातु से बने हुए 'गोप्ता' (रक्षा करनेवाला) शब्द से इसकी व्युत्पत्ति मानी जा सकती है। इस 'गाँती' को बच्चो का 'ओवरकोट' समझना चाहिए, जो उनके सिर को भी शीत से बचाता है। इनको जाडे के दिनो मे 'कनटोप' भी पहिनाया जाता है, जिसकी चर्चा पिछले अध्याय मे की जा चुकी है।

(३) जूता

भोजपुरी लडके प्राय बारह-तेरह वर्षों तक जूता नही पहनते थे। गाँवो मे जूनियर हाईस्कूलो मे पढनेवाले छात्र भी नगे पैर और नगे सिर विद्यालय मे शिक्षा ग्रहण करने के लिए जाते थे। 'चमरौधा' जूता लडको के पैरो के उपयुक्त नही बनाया जाता था। सच तो यह है कि उनके कोमल पैर 'चमरौधा' की कठोरता को सहन नही कर सकते थे।

परन्तु अब रबर और कैनवास के छोटे-छोटे जूते चल पडे है। 'बाटा' का साम्राज्य अब गाँवो मे भी फैलने लगा है। अत धनी-मानी व्यक्तियो के बच्चे अब इन्ही जूतो का प्रयोग करने लगे है। गरीब घर के लडके काठ की बनी 'चटाकी' से ही जूते का काम लेते है।

१. रखो पुर-नूर का सेहरा, मुबारक हो, मुबारक हो।

२. सूरदास ने इस शब्द का प्रयोग सूरसागर में किया है।

(३) अनुच्छेद—स्त्रियो के वस्त्र

(१) ओढनी

भोजपुरी समाज मे पर्द की प्रथा बहुत ही अधिक है। अत कोई भी स्त्री सिर से पैर तक अपने शरीर को बिना ढके घर के बाहर नही निकल सकती। सम्पूर्ण शरीर को आच्छादित करनेवाले इस वस्त्र को 'चादर' या 'ओढनी' कहा जाता है। यह प्राय रगीन कपडे की बनी हुई होती है और काफी लम्बी और चौडी होती है। नव विवाहिता वधू जिस ओढनी को ओढकर अपने ससुराल जाती है, वह लाल, बटीदार कपडे की बनी हुई होती है। रेशमी कपडे की भी ओढनी बनायी जाती है, जो बहुत मूल्यवान् होती है। निधन घर की स्त्रियाँ साधारण, परन्तु रगीन वस्त्र की बनी ओढनी ओढती है।

(२) झूला

झूला स्त्रियो का सबसे अधिक प्रिय, और व्यवहार मे आनेवाला वस्त्र है। उसकी लम्बाई कमर के ऊपर तक होती है, परन्तु इसमे आस्तीन का बिल्कुल अभाव होता है। ढीला-ढाला होने तथा झूलते रहने के कारण ही इसका नाम 'झूला' पड गया है। इसका 'गला' इतना बडा होना है, कि इसे आसानी से पहना जा सके। अत इसमे बटन लगाने की आवश्यकता नही होती। झूला की बाह तथा कमर के पास वाले निचले भाग पर सुन्दरता के लिए किसी दूसरे कपडे की एक छोटी पट्टी लगा दी जाती है, जिसे 'तोई' कहते है। लडकी की विदाई के अवसर पर, ससुराल मे ले जाने के लिए जो झूले उसे दिये जाते है, उसमे शीशे के छोटे-छोटे टुकडे भी जडे रहते हैं। परन्तु ऐसा झूला पहिनने के काम मे नही लाया जाता। इसका प्रधान उद्देश्य केवल अलकरण मात्र है। झूले की तुलना आजकल के ब्लाउज से की जा सकती है, जो आकार मे प्राय एकही समान होता है।

(३) कुरुती

'कुरुती' शरीर मे पहने जानेवाला वह वस्त्र है, जिसका आस्तीन आधीबाँह तक का होता है और जो कोट की भाँति आगे खुला हुआ रहता है। इसका बटन या 'हुक' लगातार पहना जाता है। बूढ़ी स्त्रियाँ केवल 'झूला' ही पहिनती है और 'कुरती' युवतियो के शरीर को शोभायमान करती है। आजकल पढ़ी-लिखी लडकियाँ 'जम्पर' और ब्लाउज का प्रयोग करने लगी है।

(४) चोली

उरोजो की सुरक्षा के लिए जो वस्त्र पहिना जाता है, उसे 'अँगिया' कहते हैं। पहले इसके पहिनने का प्रचलन बहुत ही कम था। हाँ, आजकल की नवयुवतियाँ इसका प्रयोग अवश्य करती है। अँगिया अनेक आकार-प्रकार तथा रग की होती है। लोकगीतो मे 'चोली' को पहिनने का उल्लेख पाया जाता है, जिनके अध्ययन से ज्ञात होता है कि यह बहुत ही 'कसी हुई' (कसमस चोलियाँ) होती थी और इसमे बन्द लगे रहते थे। इसका किनारा लाल रग का होता था।[१] परदेश जानेवाले पति से उसकी स्त्री पूछती है कि तुम मेरे लिये क्या लाओगे। इस पर वह उत्तर देता है कि तुम्हारे लिए मैं कसी हुई चोली ले आऊँगा।[२]

(१) अधोवस्त्र 'लूगा'

स्त्रियाँ अपनी कमर मे जिस वस्त्र या साडी को पहनती हैं, उसे भोजपुरी मे 'लूगा' कहा जाता है। यह प्राय छह गज लम्बा और ४८ इच चौडा होता है। साधारणतया यह सफेद कपडे का बना हुआ होता है। 'लूगा'

१ चोलिया जरद किनारी।

२ जो तुहुँ जइबऽ बालम पुरबी बनिजिया हो।
हमरा के का तू ले अइब रावल मुनिया॥
तोहरा के लाइबि धनिया, कसमस चोलिया हो।
अपना के सुघर बगालिन रावल मुनिया॥

और 'साडी' मे कोई अन्तर नही है। दोनो एक-दूसरे के पर्यायवाची है। परतु साधारणतया सफेद साडी को 'लूगा' कहा जाता है और रगीन लूगा 'साडी' की सज्ञा को प्राप्त करता है।

साडी मे अनेक प्रकार की कन्नी या किनारा होता है, जिसमे भिन्न-भिन्न प्रकार के पशु, पक्षी, वृक्ष, पुरुष आदि बुने हुए होते है। कालिदास ने पावती की साडी के वाडर मे सुन्दर हस का चित्र चित्रित किये जाने का उल्लेख किया है।[१] जिस प्रकार पुरुषो की धोती का किनारा पतला होना चाहिए, उसके ठीक विपरीत स्त्रियो की साडी का वार्डर जितना ही अधिक चौडा हो, वह उतना ही अधिक अच्छा तथा सुदर माना जाता है। कभी-कभी तो साडी के एक-चौथाई भाग मे कन्नी ही होती है, जिसमे तरह-तरह के दृश्य अकित किये गये रहते है।

भोजपुरी स्त्रियाँ चूकि घूघट काढती है। अत उनकी साडी कम-से-कम छह गज लम्बी होनी चाहिए। पढी-लिखी नवयुवतियाँ केवल पाच गज की साडी का प्रयोग करती है, क्योकि न तो वे साडी को सिर पर ओढती है, और न घूघट ही काढती है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'लूगा' का प्रयोग रामायण मे किया है। लोकगीतो मे कृष्ण के द्वारा गोपियो की साडी को फाडने का उल्लेख पाया जाता है।[२]

(२) लुगरी

निर्धन स्त्रियाँ धन के अभाव मे जिस फटे-पुराने तथा मैले-कुचैले 'लूगा' को पहनती है, उसे 'लुगरी' कहते है। फटी होने के कारण यह कई स्थानो मे सिली हुई होती है, तथा इसमे अनेक 'पेवन' (पेबन्द) लगे रहते है। कोई पति अपनी स्त्री से अप्रसन्न हो गया है। पत्नी के लिए यह अत्यन्त चिन्ता का विषय है। अत एक लोकगीत म कोई सखी उस स्त्री को 'लुगरी' छोडकर सुन्दर साडी पहनकर आकषक रूप बनाने का सलाह दे रही है, जिससे उसका पति उसके रूप-सौन्दर्य पर मोहित हो जाय।[३]

(३) सटुआ तथा (४) साया

जब लूगा या साडी का कपडा मोटा होता है, तब साधारणतया साडी के नीचे कोई कपडा नही पहना जाता। परन्तु जब साडी पतली हो और उसके भीतर से अगो के दिखलायी पडने की आशका होती है, तब स्त्रिया कपडे का एक या डेढ गज लम्बा टुकडा साडी के नीचे पहनती है, जिसे 'सटुआ' कहा जाता हे। चकि इसे साडी के साथ सटकर या मिलाकर पहना जाता है, अत इसका नाम 'सटुआ' पड गया है। इसे ग्रामीण स्त्रियो का 'पेटीकोट' समझना चाहिए।

'साया' भी 'सटुआ' की ही भाँति साडी के भीतर पहना जाता है। परन्तु इन दोनो मे थोडा अन्तर है। जहाँ 'सटुआ' कपडे का बिना सिला हुआ टुकडा होता है, वहाँ 'साया' घाँघरे की तरह सिला हुआ गोलाकार वस्त्र है, जिसे कमर मे बाँधने के लिए 'इजारबन्द' लगा रहता है। यो तो 'साया' किसी भी कपडे का बनाया जा सकता है, परन्तु आजकल इसके लिए एक विशेष प्रकार का रगीन कपडा मिलता है। सटुआ के दोनो छोरो को पकडकर गाँठ लगाकर कमर मे बाँधते हैं, परन्तु साये मे इजारबन्द के द्वारा यह काय सम्पादित किया जाता है। 'साया' आजकल पेटीकोट' के नाम से अधिक प्रचलित है। एक लोकगीत मे साया, साडी, चोली और रुमाल का एक ही साथ प्रयोग हुआ है।[४]

१ वधू दुकूल कलहस लक्षणम। —कुमार सभव सर्ग ५, श्लोक ६७।

२ जल भरे जात रहली जमुना जी,
बाट मोरे घेरेलन कन्हाई।
ककड चुनि चुनि घरिला फोरेले,
फाडेले रेसमिया के सारी। —लेखक का निजी सग्रह

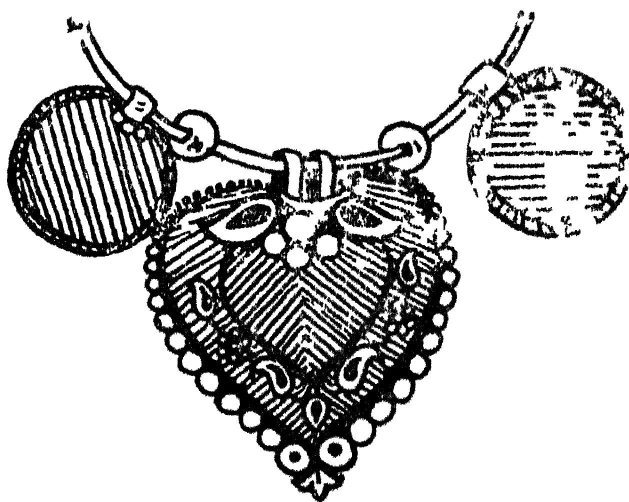
३ खोल धनि लुगरी, पहिर धनि चुनरी,
जेहि से पियवा रहेला लुभाई। —लेखक का निजी सग्रह

४. आगि लागे साया, साडी, आगि लागे चोलिया।
बजर पडे तोहरो लाली रे रुमलिया॥ —लेखक का निजी सग्रह

खरपा

साधारणतया अधिकाश भोजपुरी स्त्रियाँ पैर मे चप्पल या जूता नही पहनती। स्त्रियो के द्वारा जूते का पहनना समाज मे कुछ अच्छा भी नही समझा जाता। परन्तु बूढी तथा निम्नवग ।। स्त्रिया जलती हुई धूलि (भुभुर) मे अपने पैरो की रक्षा करने के लिए एक प्रकार का चप्पल पहनती है, जिसे 'खरपा' कहा जाता है। यह 'खरपा' गाव के चमार द्वारा बनाया जाता है, जो बडा कडा और मजबूत होता है। पढी-लिखी तथा धनीवग के लोगो की स्त्रियाँ अब चप्पल और सैण्डिल भी पहनने लगी है, जो प्राय रगीन होते है। नवविवाहिता वधू का चप्पल तो निश्चित रूप से रगीन होता है।

घर मे दैनिक व्यवहार मे काठ की बनी चट्टी या चटाकी का प्रयोग होता है। यह सस्ते दामो मे मिल जाती है, अत निधन वग की स्त्रियो के लिए यह सुलभ है। आजकल की शिक्षित स्त्रिया घर मे 'बाटा' का हवाई चप्पल का प्रयोग करने लगी है, जो अत्यन्त उपयोगी है।



अध्याय ९

आभूषण

○○

आभूषण स्त्रियो—विशेषकर भोजपुरी स्त्रियो—का परम प्रिय वस्तु है। विवाह के अवसर पर वर पक्ष की समृद्धि का अनुमान उमके द्वारा कन्या के लिए लाये गये गहनो से ही किया जाता है। कितनी ही बारातो मे प्रचुर परिमाण मे गहना न ले आने के कारण झगडा हो जाता है। स्त्रिया अपने पहिनने के वस्त्रो से भी अधिक गहनो से प्रेम करती है। वे अपने घरेलू पति से गहना गढा देने के लिए सतत आग्रह करती है और परदेश जानेवाले पति से अपने लिए सुन्दर गहना खरीदकर लाने की प्राथना करती है।

(१) परिच्छेद

भोजपुरी स्त्रियो का जीवन—जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त तक—आभूषण-प्रियता की एक करुण कहानी है। इस सम्बन्ध मे यह कथा प्रचलित है कि किसी भोजपुरी स्त्री ने अपने पति से कहा कि "मुझे आभूषण को छोडकर अन्न तथा वस्त्र किसी भी वस्तु की आवश्यकता नही है। अत मेरे लिये गहना गढा दो।" पति ने स्त्री के आग्रह को स्वीकार कर उसे सिर से पैर तक गहना पहिनाकर नगे एक घर मे रख दिया। दो-तीन दिन बीत जाने पर भूख की प्रचण्ड ज्वाला उसे जलाने लगी। तब उस स्त्री ने पति से प्राथना की "मुझे भोजन चाहिए, गहना नही।" इस कथा से स्त्रियो की आभूषण-प्रियता का पता चलता है।

भोजपुरी स्त्रियाँ सिर से लेकर पैरो तक अपने शरीर के प्रत्येक अग मे आभूषण पहिनती है जिनकी गूँज लोक-गीतो मे भी सुनायी पडती है। स्त्रियो द्वारा अपने विभिन्न अगो मे पहिने जानेवाले गहनो की तालिका नीचे दी जाती है, जिससे इनके आभूषणो की प्रचुरता का कुछ अनुमान किया जा सकता है—

शरीर के अग-आभूषण का नाम

(१) सिर के बाल—सैफ्टीपिन
(२) माँग—मँगटीका
(३) नाक—नथिया, झुलनी आदि
(४) कान—कनफूल, झूमक, टाप
(५) गला—कण्ठा, कण्ठेसरि
(६) कमर—करधनी
(७) बाहु का मध्य भाग—बाँक, जोसन आदि
(८) हाथ—पहुँची आदि
(९) हाथ की अँगुलियाँ—हथसकर
(१०) पैर—गोडाँव, पायल आदि
(११) पैर की अँगुलियाँ—बिछिया

स्त्रियो के विभिन्न अगो के आभूषण

(क) पैर के आभूषण

(१) नूपुर, (२) गोड़ाव, (३) झाँझ, (४) छडा, (५) पावजेब, (६) पइरी, (७) चूरा।

(ख) पैर की अंगुलियों के आभूषण

(१) बिछिया, (२) बिच्छुआ।

(ग) कटि के आभूषण

(१) करधनी, (२) डण्डा या डँडकसी।

(घ) हाथ की अँगुली के आभूषण

(१) अँगूठी, (२) हथसकर।

(ङ) पहुँचा के आभूषण

(१) कँगना, (२) पहुँची, (३) चूडा, (४) बँहलोई और (५) हथउग।

(च) बाँह के आभूषण

(१) बाजूबन्द, (२) बाक, (३) बिजायठ, (४) जोसन और (५) बहरबूटा।

(छ) वक्षस्थल के आभूषण

(१) हार, (२) चन्द्रहार, (३) तिलरी, (४) मोहर माला, (५) सिकडी और (६) हलका।

(ज) कण्ठ के आभूषण

(१) कण्ठा, (२) कण्ठेसरि और (३) हँसुली।

(झ) कान के आभूषण

(१) तरिवन, (२) कनफूल-झूमक-गिकडी, (३) कुण्डल, (४) बाली और (५) उतरना।

(ञ) नाक के आभूषण

(१) झुलनी, (२) नकबूली, (३) बेसर, (४) नथिया, (५) नथुनी, (६) छूँछी, (७) पान और (८) बुलाक।

(ट) सिर के आभूषण

(१) मँगटीका, (२) सैफ्टीपिन, (३) मोती, (४) लटकन और (५) झबिया।

(ठ) वस्त्रो में टाँके जानेवाले आभूषण

(१) मनोगी और (२) पत्ती।

(ड) बालकों के आभूषण

(१) बाला, (२) बिजायठ, (३) बेरा, (४) डण्डा और (५) गोडाँव।

कुल ५७ अलकारो का वर्णन है।

गहनो की सख्या

भोजपुरी मे आभूषण के लिए प्राय 'गहना' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जिसका अर्थ ग्रहण या धारण करना है। कहीं-कहीं अभरन का भी प्रयोग पाया जाता है। एक गीत मे 'बारहो आभरन' की चर्चा पायी जाती है, जिनके नाम निम्नांकित है—नूपुर, किंकिणी, वलय, कंकण, अँगूठी, अगद, हार, कण्ठश्री, बेसर, बिरिया, टीका और सीसफल। जायसी ने भी पद्मावती के श्रृगार-वर्णन मे बारह आभूषणो का उल्लेख किया है। यद्यपि इन आभूषणो की परम्परागत सख्या बारह प्राय रूढि हो गयी है, परन्तु वास्तव मे इन गहनो की सख्या अनन्त है। स्त्रियाँ एक-एक अग मे अनेक गहनो को पहिनती है, जैसे पैर मे वे नूपुर, गोडाँव, पावजेब, कडा और छडा धारण करती हैं। इसी प्रकार से बाँह के मध्य भाग मे वे बाँक, जोसन, बहरबंटा आदि गहनो को पहिनती हैं।

भोजपुरी लोक-गीतो मे स्त्रियो के अनेक आभषणो का वर्णन पाया जाता है, परन्तु वास्तव मे उनके द्वारा धारण किये गये गहनो की सख्या अत्यन्त अधिक है। इन गहनो के स्वरूप, आकार-प्रकार आदि का सक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

(क) पैर के आभूषण

(१) नूपुर

इसे पायल भी कहते है। यह चाँदी का बना हुआ होता है। इसमे घुँघुरू भी लगे रहते हैं, जिससे चलने पर रुन-झुन की आवाज होती है। कोई भोजपुरी पुत्री ससुराल जाते समय अपने पिता से कहती है कि मेरी माँ मेरे बिदा हो जाने पर घर के आँगन मे मुझे न पाकर और मेरे पैरो के नूपुरों की झन्कार को न सुनकर घूम-घूमकर रोयेगी।

"आँगना भूलिए भूलि आमा मोर रोइहे।
कतहूँ ना देखीं ए बेटी! नुपुरवा झनकार।।"

नूपुर के पहिनने की प्रथा प्राचीन ज्ञात होती है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने सीता के द्वारा नूपुर पहिनने का उल्लेख किया है—

"कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।
कहत लखन सन राम हृदय गुनि।।"

नूपुर को ही पायल की भी सज्ञा दी गयी है। एक लोक-गीत मे इसका भी उल्लेख पाया जाता है—

"गोरिया धीरे पाँव ढारू ना पायेलवा बाजेला।
पायेलवा के बाजवा सुनि छयलवा जागेला।।"

हिन्दी के सुप्रसिद्ध शृगारी कवि बिहारीलाल ने भी पायल का उल्लेख अपनी सतसई मे इस प्रकार से किया है—

"किय हाइलु चित चाह लगि।
बजि पायल तुव पाइ।।"

(२) गोडाँव

नूपुर की ही भाँति यह भी पैर का आभूषण है। यह चादी का ठोस गहना है, जो स्त्रियो के द्वारा बडे प्रेम से पहिना जाता है। नीच जाति की स्त्रियाँ दरब (Alloy) नामक धातु से बने गोडाँव को पहिनती है। जब नूपुर या पायल के प्रयोग का प्रचलन नही था, तब ग्रामीण स्त्रिया केवल गोडाव को ही धारण करती थी। यह आभूषण जितना ही मोटा हो उसकी उतनी ही प्रशसा होती है। यह ग्रामीण स्त्रियो का बडा ही लोकप्रिय तथा प्रसिद्ध आभूषण है। गोडाँव को 'कडा' भी कहते है।

(३) झाँझ

यह भी गोडाँव की ही भाँति पैर का एक गहना है। गोडाँव से इसमे केवल यही अन्तर है कि गोडाँव जहाँ ठोस चाँदी का बना होता है, वहाँ झाँझ भीतर से खोखला तथा पोला होता है। इसके भीतर घूँघुरू लगे रहते है जिससे चलने पर झन-झन की आवाज होती है। इसीलिए इसे झाँझ कहा जाता है।

(४) छडा

यह चाँदी के पतले-पतले तारो से बनाया गया एक आभूषण है, जो गोडाँव की ही भाँति पैरो मे धारण किया जाता है। छडा पतला होने के कारण आठ-दस की सख्या मे एक साथ पहिना जाता है। कुछ स्त्रियाँ कडा (गोडाँव) तथा छड़ा दोनो को एक साथ ही पहिनती है।

(५) पावजेब

यह भी पैर का ही गहना है। इसकी बनावट बडी ही विचित्र होती है। चाँदी अथवा 'दरब' के पतले तारो को मोडकर इसे बनाया जाता है। इसमे 'घुँघुरू' भी लगे रहते है, जिससे चलने पर आवाज होती है। यह वजन मे बडा भारी-भरकम होता है। आजकल इस गहने के पहिनने का प्रचलन उठता जा रहा है, परन्तु कुछ वर्षो पूर्व यह बडे ही आदर से पहिना जाता था।

(६) पैरी या पइरी

इस आभूषण को प्राय नीच जाति की स्त्रियाँ ही पहिनती है। यह 'दरब' (Alloy) नामक धातु से बनाया जाता है। यह काँसा से भी बनता है। इसकी आकृति खोल के समान होती है। वयस्क स्त्रियो की पैरी की ऊँचाई आठ-नौ इच और इसका व्यास चार-पाँच इच होता है। दोनो पैरो के पैरी का बजन लगभग पाँच सेर होता है।

लोक-गीतो मे पैरी का उल्लेख अनेक स्थलो पर पाया जाता है। एक भोजपुरी सोहर मे प्रसव-वेदना से पीडित किसी स्त्री के द्वारा पति को 'पैरी' फेंककर मारने का वणन उपलब्ध होता है—

"चूरा फेंकि मरलो पयरिया फेंकि मरलो।"

थारू जाति के लोगो के एक गीत मे भी पैरी की चर्चा हुई है—

देव सुन रे देवरा, गोडे जोगे पइरी
हाय री, साजन री॥"

इस आभूषण का प्रचार अब बिल्कुल नही दिखायी पडता। पहिले नीच जाति की स्त्रिया ही इसे पहिना करती थी, परन्तु वे भी अब इसे धारण नही करती।

(७) चूरा

यह भी पैर का ही आभूषण है। इसे बच्चे तथा स्त्रिया पहिना करती है। जायसी ने पद्मावती के शृगार का वणन करते हुए लिखा है कि वह अपने पैरो म पायल और चूरा पहिने हुई थी—

"पायन्ह पहिरै पायल चूरा।"

परन्तु ग्रियसन ने अपने ग्रन्थ 'बिहार पीजेण्ट लाइफ' मे चूर (चूरा नही) नामक गहन का उल्लेख किया, जो हाथो मे पहिना जाता था। परन्तु जायसी के उपर्युक्त उल्लेख से ज्ञात होता है कि यह पैर का ही गहना था।

भोजपुरी मे चूरा और पैरी इन दोनो गहनो का उल्लेख एक साथ ही उपलब्ध होता है। इससे सहज मे ही अनुमान किया जा सकता है कि दोनो ही एक ही स्थान मे लगाये जानेवाले गहने थे। भोजपुरी मे यह कहावत प्रचलित है—

"ना जननीं चूरा पइरी,
ना जननीं उतरना।"

कोई दुखिया स्त्री कहती है कि मैंने अपने जीवन मे चूरा और पइरी का पहिनना नही जाना और न कान का आभूषण उतरना ही पहिनने को मिला। इससे ज्ञात होता है चूरा और पइरी दोनो ही साधारण गहने थे, जिन्हे प्राय सभी स्त्रियाँ पहिना करती थी।

(ख) पैर की अँगुलियो के गहनें

(१) बिछिया

यह पैर के पाँचो अँगुलियो मे पहिनने की अँगूठी के समान होती है, जिसे सधवा स्त्रियाँ निश्चित रूप से पहिनती है। अनेक बिछियो मे घुँघरू भी लगे रहते है। अत चलने पर इनसे रुन-झुन की आवाज होती है। यह सौभाग्यवती स्त्रियो का परमावश्यक आभूषण है। भोजपुरी लोक-गीतो मे बिछिया का प्रचुर वणन पाया जाता है। बारात के अवसर पर जेवनार की गालियो मे समधिन की बिछिया की रुन झुन आवाज का उल्लेख हुआ है। लोक-कवि कहता है कि—

"बैठ चले जइसे मयगर हाथी,
बिछिया के झनकारे जी।"

एक दोहरे (दोहा) मे सम्भोग-वर्णन मे बिछिया के झकृत होने पर पुत्र को अपनी माता की झिडकियाँ सुननी पडती है—

"खटिया करे मचामची, बिछिया के झनकार।
हम तोसे पूछी ले ए पुता! दुनों में कवन गँवार॥"

(२) बिछुआ

यह पैर के अँगूठे मे पहिना जानेवाला गहना है। यह बिछिया की अपेक्षा कुछ मोटा और बडा होता है। इसके अतिरिक्त दोनो मे कुछ भी अन्तर नही है। कुछ स्त्रियाँ बिछुआ के निचले भाग म कपडा लपेटकर उसे पहिनती है, जिससे वह अँगूठे मे गडने या चुभने न पाये।

(ग) कटि के आभूषण

(१) करधनी

कमर मे अनेक प्रकार के आभषणो को पहिना जाता है, जिसमे करधनी प्रधान है। हिन्दी मे इसे किंकिणी भी कहा गया है। इसमे छोटी-छोटी घण्टिया लगी रहती है, जिसके कारण इसे 'क्षुद्र घण्टिका' भी कहते है। सूरदास ने बाल-कृष्ण के रूप का वणन करते हुए लिखा है कि उनके कमर मे क्षुद्रघण्टिका (करधनी) विराजमान थी, जिससे मधुर ध्वनि उत्पन्न हो रही थी—

"क्षुद्रघटिका कटि तट राजत।
नूपुर शब्द रसाल॥"

गोस्वामी तुलसीदास जी ने इसे किंकिणी के नाम से अभिहित करते हुए लिखा है कि—

"कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा।
नाभि गँभीर जान नहि देखा॥"

लोक-गीतो मे भी इसकी प्रतिध्वनि सुनायी पडती है—

"बाबू का डाँडे करधनिया, देखत नीक लागेला।
अवरु पॉव में बाजे पैजनिया, अजब छबि छाजेला॥"

करधनी प्राय चाँदी की बनायी जाती है, परतु धनी तथा सेठ-साहूकारो की स्त्रियॉ सोने की बनी करधनी भी पहिनती है। इसमे प्राय तीन लडे होती है।

(२) डण्डा या डँडकसी

भोजपुरी प्रदेश मे छोटे-छोटे बालक अपनी कमर मे 'डण्डा' नामक एक गहना पहिनते है, जो चाँदी का बना हुआ होता है। इस गहने मे जौ की आकृति के समान अनेक लम्बे-लम्बे दाने जोडे गये रहते है।

लोक-गीतो मे 'डँडकसी' नामक एक आभूषण का उल्लेख पाया जाता है, डाँड अथवा कमर को कसे रहने के कारण यह 'डँडकसी' कहलाता है। गीत की पक्ति इस प्रकार है—

"गोड़ मे नूपुरवा लगावता महाजना के छोकडी।
डँडकसिआ चढ़ावता महाजना के छोकडी॥"

कुछ धनीमानी पुरुष भी अपनी कमर मे डण्डा पहिनते है, जिसका एकमात्र प्रयोजन श्रृगार ही समझना चाहिए।

(घ) हाथ की अँगुली के आभूषण

(१) अँगूठी

हाथ की अँगुलियो का एकमात्र आभूषण अँगूठी है। इसे स्त्री तथा पुरुष समान रूप से धारण करते है। अँगूठी प्राय सोने की बनायी जाती है, जिसमे हीरा, मूगा अथवा पन्ना जडा हुआ होता है। जो लोग शनि के प्रकोप से पीडित रहते है, वे प्राय लोहे की अँगूठी धारण करते है। इसी प्रकार से जिन व्यक्तियो पर चन्द्रमा की कुदष्टि होती है, वे इसके परिहार के लिए चाँदी की अँगूठी पहिनते है। अन्य लोग दुष्ट ग्रहो से अपनी सुरक्षा के लिए अष्टधातु से निर्मित अँगूठी को अपनाते हैं। इस प्रकार सोना, चाँदी, ताँबा और लोहा आदि अनेक धातुओ से मुद्रिका का निर्माण किया जाता है।

अँगूठी को प्राय अनामिका नामक अँगुली मे पहिना जाता है। इसीलिए अग्रेजी मे इस अँगुली को 'रिग फिगर' (अँगूठीवाली अँगुली) कहा जाता है। ग्रामीण लोग इसे 'मुनरी' के नाम से जानते है, जो मुद्रिका का अपभ्रश जान पडता है।

लोक-गीतो मे मुनरी या मुनर का उल्लेख अनेक स्थानो मे हुआ है। यमुना के तट पर कृष्ण राधा से कहते है कि तुम्हे सुन्दर अँगूठी दूगा। तुम आज यही मेरे साथ रहो—

"तोहरा के देबो मुनर मुनर, अवरु गजमुक्ता के हार।
आजु के रहनिया राधे हो बसिजा, भोरे उतारबि पार॥"

(२) हथसकर

यह भी हाथ का ही एक आभूषण है, जो हथेली के ऊपरी भाग मे पहिना जाता है। उसकी आकृति हथेली के ही समान प्राय गोल होती है और इसमे पाच अँगूठियाँ बनी होती है, जिन्हे पाचो अगुलियो मे पहिना जाता है। ऐसा करने से इसके गिरने का डर नही रहता। यह चाँदी का गहना होता है, जिसके ऊपरी भाग मे अनेक प्रकार के अनेक रग के रग-बिरगे शीशे जडे रहते है। आजकल इस गहना का प्रचलन प्राय बन्द सा हो गया है।

(ङ) प्रकोष्ठ (पहुँचा) के आभूषण

(१) कँगना

बाहु (भुजा) के अन्तिम भाग—जो अँगुलियो के पहिले होता है—को सस्कृत म प्रकोष्ठ कहते है। हिन्दी मे कलाई और भोजपुरी मे यह पहुँचा के नाम से प्रसिद्ध है। हाथ के गहनो मे कगन या कँकना (ककण) सबसे अधिक लोकप्रिय है। यह प्राय चाँदी का बना हुआ होता है। परन्तु धनी वग की स्त्रियाँ सोने का कँगना पहिनती है।

कँगना प्राय दो प्रकार का होता है—(१) निसण्डी (ठोस) और (२) फुकुवा (खोखला)। ठोस कँगना वह है, जो सालिड (ठोस) चाँदी से बनाया जाता है। सोने के बने हुए ठास कगन मे पहिले ताँबे का ककना बनाकर उस पर सोने का पत्तर (पत्र) चढा दिया जाता है। इस प्रकार यह ठोस दिखायी पडता है। फुकुवा कँगना वह है, जो भीतर से खोखला होता है। यह ठोस कगन की अपेक्षा बडा तथा मोटा हाता है, परन्तु तौल मे हल्का। दूसरे प्रकार के कगन के ऊपर अनेक प्रकार के कटाव बने रहते है, जा देखने म सुन्दर लगत है। प्राय सभी स्त्रियाँ अपनी कलाई मे कगन अवश्य पहिनती है।

लोक-गीतो मे कँगना का नाम बहुश उपलब्ध होता है। ननद अपनी भावज से उसके पुत्र-जन्म के अवसर पर नेग मे कँगना माँगती है। कोई स्त्री बाजार मे कँगना पहिनकर जा रही है और वह बड़े शान से कहती है कि—

"ककना पहिरि हम चललों बजरिया।"

पुत्र की प्राप्ति से प्रसन्न भावज अपनी ननद को कँगना देने की प्रतिज्ञा करती है—

"ननदी कँगना जे रतन जड़ाव के,
तोहे पहिरा के देबों॥"

विरहिणी स्त्रियाँ अपने पति के आगमन की सूचना देनेवाले कौए को सोने की पैजनी और कगन देने का आश्वासन देती है।

सस्कृत साहित्य मे कगन को 'वलय' कहा जाता है। ऐसा ज्ञात होता है कि स्त्रियो के समान पुरुष भी अपने हाथो मे कगन अथवा वलय पहिना करते थे। कालिदास ने विरही यक्ष के दुबल हाथो से वलय के गिर जाने का उल्लेख मेघदूत मे किया है।[१] हिन्दी कवियो ने अपनी कृतियो मे तथा लाक-कवियो ने गीतो मे कगन धारण करने का प्रचुर रूप से वणन किया है।[२]

१ तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्त सकामी।
नीत्वा मासान् कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठ ॥
—मेघदूत : पूर्वार्द्ध, श्लोक २।

२ डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय भोजपुरी लोकगीत भाग १, २।

पहुँची

प्रकोष्ठ अर्थात् पहुँचा मे पहिने जाने के कारण इस आभषण को पहुँची की सज्ञा प्रदान की गयी है। इसे 'पहुँचारी' भी कहा जाता है। पहुँची दो प्रकार की होती है—एक 'साधारण' और दूसरी 'कटउवा'। 'साधारण' पहुँची वह है, जिसमे चाँदी के गोल तथा कुछ चपटे छोट-छोटे दाने होते है। इन्हे सूत मे 'गूथ' करके पहुँची बनायी जाती है। 'कटउवा' पहुँची वह है, जिसके छोटे-छोटे दानो की आकृति लम्बी तथा ऊँची होती है और उसके ऊपरी भाग मे तीन फाँके बनी रहती हे। गाँवो मे इन पतले फाँको की उपमा चूहे के दातो से दी जाती है।

लोक-गीतो मे पहुँची का उल्लेख पाया जाता है। विवाह सस्कार के अवसर पर बारातियो के जेवनार के समय गायी जानेवाली गाली मे रत्नजटित सोने की पहुँची का वणन पाया जाता है—

"गोरी गोरी बहियाँ रतन करे पहुँची।
सोनन करे पहुँची, मोतिन माँग सँवारि॥"

राम के बाल-रूप का वणन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है कि—

"पग नूपुर औ पहुँची कर कजनि।
मजु बनी मनि माल हिये॥"

इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि स्त्रियो के अतिरिक्त छोटे बच्चे भी अपने हाथो मे पहुँची पहिना करते थे।

चूडा अथवा चूडियाँ

भोजपुरी क्षेत्र मे सधवा स्त्रियाँ काँच की चूडिया ही अपनी कलाई मे पहिनती है। परन्तु कुछ धनाढ्य घरो की स्त्रियाँ सोने की बनी हुई चूडियो को भी पहिनने लगी है, जिन्हे 'सुवण वलय' की सज्ञा दी जा सकती है। ऐसा ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल मे शख की बनी हुई चूडियो को पहिनने की प्रथा विद्यमान थी। लोक-गीतो मे इसका उल्लेख पाया जाता है। किसी मालिन मे अनुरक्त अपने आचरणहीन पति के कृत्यो से रुष्ट होकर कोई स्त्री कहती है कि—

"फोरबों में सकर चुरिला, मेटबो कजरवा नु रे।
हतबों में बाला जियरा, रउरे हजुरवा नु रे॥"

परन्तु आजकल सधवा स्त्रियाँ शख की चूडियाँ नही पहिनती। सम्भवत बगालिन विधवा ही इसे धारण करती है।

बँहलोई

लोक-गीतो मे बँहलोई नामक गहने का उल्लेख पाया जाता है। परन्तु इसका आकार-प्रकार कैसा था इसके विषय मे निश्चित रूप से कुछ कही कहा जा सकता। अब इस आभूषण का प्रयोग बिल्कुल नही किया जाता। डॉ० ग्रियसन ने 'बिहार पीजेण्ट लाइफ' नामक अपने ग्रन्थ मे 'बँहलोली' नामक कलाई के गहने का उल्लेख किया है। गीतो मे अब इसकी स्मृति सुरक्षित रह गयी है—

"गोडवनि सोभेला रुनझुन बिछिया हाथ के बँहलोई।"

हथउरा

विवाह के एक गीत मे 'हठउरा' नामक गहने की चर्चा पायी जाती है। इसके भी आकार-प्रकार के विषय मे आज कुछ भी ज्ञात नही है। गीत के निम्नाकित पक्तियो से पता चलता है, कि यह कोई प्रकोष्ठ का गहना रहा होगा।

"हाथ हथउरा प्राभु हे बाबा देलेन, सिकडी लछन देवर।"

बँहलोई और हथउरा आज इन दोनो गहनो का कोई पता नही है। सम्भवत ये दोनो ही बहुत पहले ही प्रचार तथा प्रयोग से उठ गये होगे।

लोक-गीतो मे मुनरी या मुनर का उल्लेख अनेक स्थानो मे हुआ है। यमुना के तट पर कृष्ण राधा से कहते है कि तुम्हे सुन्दर अँगूठी दूगा। तुम आज यही मेरे साथ रहो—

"तोहरा के देबो सुनर मुनर, अवरु गजमुक्ता के हार।
आजु के रहनिया राधे हो बसिजा, भोरे उतारबि पार॥"

(२) हथसकर

यह भी हाथ का ही एक आभूषण है, जो हथेली के ऊपरी भाग मे पहिना जाता है। इसकी आकृति हथेली के ही समान प्राय गोल होती है और इसमे पाच अँगूठियाँ बनी हाती है, जिन्हे पाचो अगुलियो मे पहिना जाता है। ऐसा करने से इसके गिरने का डर नही रहता। यह चाँदी का गहना होता है, जिसके ऊपरी भाग मे अनेक प्रकार के अनेक रग के रग-बिरगे शीशे जडे रहते है। आजकल इस गहना का प्रचलन प्राय बन्द-सा हो गया है।

(ङ) प्रकोष्ठ (पहुँचा) के आभूषण

(१) कँगना

बाहु (भुजा) के अन्तिम भाग—जो अँगुलियो के पहिले होता है—को सस्कृत मे प्रकोष्ठ कहते है। हिन्दी मे कलाई और भोजपुरी मे यह पहुँचा के नाम से प्रसिद्व है। हाथ के गहनो मे कगन या कँकना (ककण) सबसे अधिक लोकप्रिय है। यह प्राय चाँदी का बना हुआ हाता है। परन्तु धनी वग की स्त्रियाँ सोने का कँगना पहिनती है।

कँगना प्राय दो प्रकार का होता है—(१) निसण्डी (ठोस) और (२) फुकुवा (खोखला)। ठोस कँगना वह है, जो सालिड (ठोस) चाँदी से बनाया जाता है। सोने के बने हुए ठोस कगन मे पहिले ताँबे का ककना बनाकर उस पर सोने का पत्तर (पत्र) चढा दिया जाता है। इस प्रकार यह ठोस दिखायी पडता है। फुकुवा कँगना वह है, जो भीतर से खोखला होता है। यह ठोस कगन की अपेक्षा बडा तथा मोटा हाता है, परन्तु तौल मे हल्का। दूसरे प्रकार के कगन के ऊपर अनेक प्रकार के कटाव बने रहते है जो देखने मे सुन्दर लगते है। प्राय सभी स्त्रियाँ अपनी कलाई मे कगन अवश्य पहिनती है।

लोक-गीतो मे कँगना का नाम बहुश उपलब्ध होता है। ननद अपनी भावज से उसके पुत्र-जन्म के अवसर पर नेग मे कँगना माँगती है। कोई स्त्री बाजार मे कँगना पहिनकर जा रही है और वह बड़े शान से कहती है कि—

"ककना पहिरि हम चलली बजरिया।"

पुत्र की प्राप्ति से प्रसन्न भावज अपनी ननद को कँगना देने की प्रतिज्ञा करती है—

"ननदी कँगना जे रतन जडाव के,
तोहे पहिरा के देबों॥"

विरहिणी स्त्रियाँ अपने पति के आगमन की सूचना देनेवाले कौए को सोने की पैजनी और कगन देने का आश्वासन देती है।

सस्कृत साहित्य मे कगन को 'वलय' कहा जाता है। ऐसा ज्ञात होता है कि स्त्रियो के समान पुरुष भी अपने हाथो मे कगन अथवा वलय पहिना करते थे। कालिदास ने विरही यक्ष के दुबल हाथो से वलय के गिर जाने का उल्लेख मेघदूत मे किया है।[१] हिन्दी कवियो ने अपनी कृतियो मे तथा लोक-कवियो ने गीतो मे कगन धारण करने का प्रचुर रूप से वणन किया है।[२]

१ तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्त. सकामी।
नीत्वा मासान् कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठ ॥

—मेघदूत : पूर्वार्द्ध, श्लोक २।

२ डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय भोजपुरी लोकगीत भाग १, २।

पहुँची

प्रकोष्ठ अर्थात् पहुँचा मे पहिने जाने के कारण इस आभषण को पहुँची की सज्ञा प्रदान की गयी है। इसे 'पहुँचारी' भी कहा जाता है। पहुँची दो प्रकार की होती है—एक 'साधारण' और दूसरी 'कटउवा'। 'साधारण' पहुँची वह है, जिसमे चाँदी के गोल तथा कुछ चपटे छोट-छोटे दाने होते है। इन्हे सूत मे 'गूँथ' करके पहुँची बनायी जाती है। 'कटउवा' पहुँची वह है, जिसके छोटे-छोटे दानो की आकृति लम्बी तथा ऊँची होती है और उसके ऊपरी भाग मे तीन फाँके बनी रहती हे। गावो मे इन पतले फाँको की उपमा चूहे के दाँतो से दी जाती है।

लोक-गीतो मे पहुँची का उल्लेख पाया जाता है। विवाह सस्कार के अवसर पर बारातियो के जेवनार के समय गायी जानेवाली गाली मे रत्नजटित सोने की पहुँची का वणन पाया जाता है—

"गोरी गोरी बहियाँ रतन करे पहुँची।
सोनन करे पहुँची, मोतिन माँग सँवारि॥"

राम के बाल-रूप का वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है कि—

"पग नूपुर औ पहुँची कर कजनि।
मजु बनी मनि माल हिये॥"

इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि स्त्रियो के अतिरिक्त छोटे बच्चे भी अपने हाथो मे पहुँची पहिना करते थ।

चूड़ा अथवा चूड़ियाँ

भोजपुरी क्षेत्र मे सधवा स्त्रियाँ काँच की चूडिया ही अपनी कलाई मे पहिनती है। परन्तु कुछ धनाढ्य घरो की स्त्रियाँ सोने की बनी हुई चूडियो को भी पहिनने लगी है, जिन्हे 'सुवर्ण वलय' की सज्ञा दी जा सकती है। ऐसा ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल मे शख की बनी हुई चूडियो को पहिनने की प्रथा विद्यमान थी। लोक-गीतो मे इसका उल्लेख पाया जाता है। किसी मालिन मे अनुरक्त अपने आचरणहीन पति के कृत्यो से रुष्ट होकर कोई स्त्री कहती है कि—

"फोरबो में सकर चुरिला, मेटबों कजरवा नु रे।
हलबों में बाला जियरा, रउरे हजुरवा नु रे॥"

परन्तु आजकल सधवा स्त्रियाँ शख की चूडिया नही पहिनती। सम्भवत बगालिन विधवा ही इसे धारण करती है।

बँहलोई

लोक-गीतो मे बँहलोई नामक गहने का उल्लेख पाया जाता है। परन्तु इसका आकार-प्रकार कैसा था इसके विषय मे निश्चित रूप से कुछ कही कहा जा सकता। अब इस आभूषण का प्रयोग बिल्कुल नही किया जाता। डॉ० ग्रियसन ने 'बिहार पीजेण्ट लाइफ' नामक अपने ग्रन्थ मे 'बँहलोली' नामक कलाई के गहने का उल्लेख किया है। गीतो मे अब इसकी स्मृति सुरक्षित रह गयी है—

"गोडवनि सोभेला रनझुन बिछिया हाथ के बँहलोई।"

हथउरा

विवाह के एक गीत मे 'हठउरा' नामक गहने की चर्चा पायी जाती है। इसके भी आकार-प्रकार के विषय मे आज कुछ भी ज्ञात नही है। गीत के निम्नाकित पक्तियो से पता चलता है, कि यह कोई प्रकोष्ठ का गहना रहा होगा।

"हाथ हथउरा प्राभु हे बाबा देलेन, सिकडी लछन देवर।"

बँहलोई और हथउरा आज इन दोनो गहनो का कोई पता नही है। सम्भवत ये दोनो ही बहुत पहले ही प्रचार तथा प्रयोग से उठ गये होगे।

(च) बाँह के आभूषण

स्त्रियाँ अपनी बाह के मध्य भाग मे अनेक प्रकार के आभूषण पहनती है, जिनम जोसन, बहरबूटा, बाजूबन्द, बाक, बिजायठ, अनन्त आदि प्रसिद्ध हे। परन्तु धीरे-धीरे इन आभूषणो का प्रयाग उठता चला जा रहा है।

बाजूबन्द

यह गहना बाह के मध्य भाग मे पहिना जाता है। चकि यह बाजू या बाह मे बाँधा जाता है, अत इसका नाम बाजूबन्द पड गया है। यह दो प्रकार का होता है—(१) साधारण बाजू और (२) कटुई बाजू। साधारण बाजू वह है, जिसमे रुपये की आकृति के गोल गोल खण्ड या दाने होते है। कटुई बाजू मे छोटी तथा पतली आकृति के अनेक टेढे टुकडे होते है, जिनको एक साथ मिलाकर यह बाजू बनाया जाता हे। चूकि उसमे अनेक कटाव (या खण्ड) होते हे, अत इसे कटुई बाजू कहते है।

लोक-गीतो मे बाजूबन्द का उल्लेख पाया जाता है। जैसे—

"एक ओर बिकाला राम बाजूबन्द बिछिया,
एक ओर ए राम झुलनी, तरिवनवा।"

बाँक

सम्भवत इस शब्द की उत्पत्ति सस्कृत के 'वक्र' से हुई है, जिसका अथ टेढा होता है। बाँक की आकृति भी चूकी टेढी (वक्र) होती है अत इसे यथाथनामा समझना चाहिए। बाँक प्राय सोने का बना होता है। इसकी आकृति गोलाकार होती है। सोने के पत्तर को तीन बार घुमाकर इसे गोल बनाया जाता है। कुछ लोग बाँक को अनन्त भी कहते है, जिसके नामकरण का कारण कुछ स्पष्ट ज्ञात नही होता।

बिजायठ

यह भी बाँह का ही गहना है। बाँक की आकृति जहाँ टेढी और पतली होती है, वहाँ बिजायठ की आकृति चपटी होती है। चाँदी अथवा सोने की गोली और चपटी आकृति बनाकर इस आभूषण का निर्माण किया जाता है। स्त्रियो के अतिरिक्त इसे बच्चे भी पहिना करते है। सस्कृत मे इसे 'केयूर' कहते है, जिसका प्रयोग निम्नाकित श्लोक मे इस प्रकार किया गया है—

"केयूरा न विभूषयन्ति पुरुष।
हारा न चन्द्रोज्वला'।।"

जोसन

यह चाँदी का बना हुआ गहना था। इसे रुपये की आकृति मे गोल बनाकर इसम डाँट जोडकर तथा सूत मे इन खण्डो को गूथकर पहिना जाता था। प्रत्येक रजत-खण्ड को एक-दूसरे से थोडी दूर पर रखकर गूथा जाता था, जिससे इसको हाथ मे पहिनने पर एक-दूसर की दूरी स्पष्ट दिखाई पडे।

बहरबूटा

चाँदी के खण्डो को गोल तथा पोली आकृति मे ढालकर इसे बनाया जाता था। इसके बीच के पोले भाग को राल से अथवा किसी अन्य द्रव्य से भर दिया जाता था। इस प्रकार इसका स्वरूप गोल तथा पोल दिखाई पडता था। बहरबूटा की अनेक गोटियाँ अलग-अलग बनायी जाती थी और फिर इन्हे सूत या धागे मे गूँथकर पहिना जाता था। यह गहना बडा भारी होता था, जिसके प्रहार से चोट लगने की सम्भावना बनी रहती थी। बूँट अर्थात् चना की भाँति गोल होने के कारण इसका नाम बहरबूँटा पड गया हो, तो इसमे आश्चर्य नही।

(छ) वक्षस्थल के आभूषण

स्त्रियो के वक्षस्थल पर लटकनेवाले अनेक आभूषण हैं, जिनमे हार या चन्द्रहार, सिलरी, मोहरमाला आदि प्रसिद्ध है।

(१) हार

गले से वक्षस्थल पर लटकनेवाले आभूषण को हार कहते है। इसके अनेक प्रकार उपलब्ध होते है। जैसे—गजमोती का हार। इसे लोक-गीतो मे मोतीमाला अथवा गजमुक्ता का हार भी कहा गया है। इस हार मे मोती जडे होते हे। इसीलिए इसे मोती का हार कहा जाता है। एक गीत मे कोई स्त्री कहती है कि—

"आगि लगइबो सँवरो डाला भरि सोनवा।
बजर परो गलहार ए हरी॥"

कोई स्त्री अपने गले का हार अपनी छोटी ननद को इसलिए दे देती है कि वह प्रियतम के साथ सोने मे साजन के हृदय मे गड जाता है—

"हरवा ना पेन्हो, सँइआ का गडि गडि जाय।
गोड तोर लागिले छोटकी ननदिया,
हरवा तू ले ले जाहु॥"

(२) चन्द्रहार

यह भी हार के समान ही एक आभूषण है, जिसमे तीन से लेकर पाच-छह लडियाँ तक होती है। प्राचीन-काल मे सम्भवत इसमे चन्द्रमा की आकृति बनी रहती होगी इसीलिए इसका नाम चन्द्रहार पड गया हो। भोजपुरी मे यह 'चन्द्रहार' के नाम से प्रसिद्ध है।

(३) तिलरी

तिलरी का अभिप्राय उस हार से है जिसमे तीन 'लर' (लडियाँ) होते है। तिलरी शब्द 'तीन लरी' का अपभ्रंश रूप है जिससे स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि इस हार मे तीन लडियाँ लगी रहती है। इसी प्रकार से पाँच 'लड' वाले हार को 'पचलरी' या 'पँचलडी' और सात लरीवाले को 'सतलरी' कहा जाता है। परन्तु लोक-गीतो मे केवल 'तिलरी' की चर्चा पायी जाती है। कोई स्त्री अपने पति से 'तिलरी' पहिनने की अभिलाषा प्रकट करती है। इस पर उसका पति उत्तर देता है कि तुम काली-कलूटी हो। तुम्हे तीन लडी का हार शोभा नही देगा। गीत की पक्तिया है—

"जब तुहूँ काली कलौंजर, दोसरे कोइलि रग,
धनिया, तुहके तिलरिआ नाहीं सोभे
तिलरिआ कहाँ पायेब॥"

तिलरी आज भी स्त्रियो का अत्यन्त लोकप्रिय हार है, जो सुवण से निर्मित किया जाता है।

(४) मोहरमाला

मुसलमानो के शासन-काल मे सोने का एक सिक्का प्रचलित था जिसे 'मोहर' कहते थे। इन्ही सिक्को को सूत मे गुथकर बनायी गयी माला को मोहरमाला कहते है। विवाह के अवसर पर वधू के आभूषणो मे मोहरमाला की गणना प्रधान रूप से की जाती है। सोहर के एक गीत मे इस गहने का उल्लेख निम्नाकित रूप मे हुआ है—

"गोड में सोभेला गोरहया,
गले में मोहरमाला नु हे।
बाबू दूर खेलन मति जाहु
खोजन तोहरा के जइहे हो॥"

स्त्रियो के अतिरिक्त पुरुषो के द्वारा भी यह अलकार धारण किया जाता है। अहीर जाति के पुरुष अपने गले मे मोहरमाला पहिनते है।

(५) सिकड़ी

यह एक लर (लड़ी) वाला सोने का गहना है, जिसे पुरुष तथा स्त्रियाँ समान रूप से अपने गले मे धारण करती है। यह हार की तरह वक्षस्थल तक नही लटकता रहता। यही हार और सिकड़ी मे अन्तर है।

(६) हलका

यह भोजपुरी स्त्रियो का उनके वक्षस्थल को सुशोभित करनेवाला प्रधान आभूषण है। यह प्रायः चाँदी का ही बनाया जाता है। हार और हलका मे अन्तर यह है कि हार मे केवल तीन या चार लम्बी लड़ियाँ होती है। परन्तु हलका के उस भाग मे जो वक्षस्थल के मध्य मे लटकता रहता है एक गोल (ओवल शेप) तथा बडी आकृति बनी रहती है। हलका हार की अपेक्षा तौल मे बडा भारी होता है। आजकल इसका प्रचलन धीरे-धीरे नष्ट होता चला जा रहा है।

(ज) कण्ठ के आभूषण

स्त्रियो के द्वारा गला अथवा कण्ठ मे पहिने जानेवाले आभूषणो मे कण्ठा, कण्ठेसरि, हँसुली आदि विशेष महत्त्वपूर्ण माने जाते है।

(१) कण्ठा

जैसा कि इसके नाम से ही ज्ञात होता है, यह कण्ठ मे पहिनने का आभूषण है। यह केवल सोने से ही बनाया जाता है, चाँदी आदि धातुओ से नही। कण्ठा मे पाँच से लेकर दस तक मान के बड़े-बड़े आँवले की आकृति के समान दाने होते है, जो भीतर से खोखले होते है। उस पोले या खोखले भाग मे लाह भरकर उसे ठोस तथा भारी बनाया जाता है। इन दानो को सूत मे गूँथकर गले मे पहिना जाता है। यह देखने मे सुन्दर तथा आकर्षक आभूषण है। नव विवाहिता वधू का यह परम प्रिय गहना है।

(२) कण्ठेसिर

कण्ठा की ही भाँति यह भी गले का गहना है। कण्ठेसरि शब्द कण्ठश्री से निकला हुआ ज्ञात होता है। कण्ठा और कण्ठेसरि की आकृति मे थोडा अन्तर है। जहाँ कण्ठा के दाने गोल तथा बडे होते है वहाँ कण्ठेसरि के दाने चिपटे और छोटे होते है। यह आभूषण स्त्रियो के गले मे चिपटा हुआ रहता है। कण्ठा की अपेक्षा कण्ठेसरि का प्रचलन बहुत कम है।

(३) हँसुली

कण्ठ के आभूषणो मे सबसे अधिक प्रचलित तथा लोकप्रिय गहना हँसुली है। यह सोने और चाँदी दोनो ही धातुओ से बनायी जाती है परन्तु चाँदी की ही बनी हुई हँसुली का अधिक प्रचार है। इसकी आकृति पतली तथा गोल होती है। इसका अन्तिम भाग खुला रहता है जिसकी सहायता से यह सरलता के साथ गले मे पहिनी जाती है।

हँसुली की लोकप्रियता का पता केवल इसी बात से चलता है कि आभूषणो की गणना मे 'हँसुली' और 'गोडाँव' दो ही सर्वप्रधान माने जाते है। जिन स्त्रियो को आभूषणो से विशेष प्रेम नही है वे भी गले मे हँसुली और पैरो मे 'गोडाव' अवश्य ही पहिनती है।

लोक-गीतो मे हँसुली की चर्चा बहुश: पायी जाती है। पुत्र-जन्म के अवसर पर कोई ननद अपनी भावज से नेग मे सोने की हँसुली माँगती है तो कोई प्रियतमा अपने पति से हँसुली गढा देने का आग्रह करती है।

(झ) कान के आभूषण

कान के गहनो मे तड़िवन, कनफूल, कुण्डल और उतरना आदि अधिक प्रसिद्ध है।

(१) तरिवन

इसे तडिवन भी कहा जाता हे। लोक मे इसका प्रचलित नाम 'तरकी' है। सस्कृत मे यह ताटक के नाम से प्रसिद्ध हे। इसकी आकृति कनफूल के ही समान होती है परतु इसमे एक लम्बी कील रहती है जो दोनो कपोलो का स्पश करती रहती है। लाक-गीतो मे वियोगिनी स्त्रियो के तरिवन से रस चूने की चर्चा पायी जाती है।

> "मलइत रहलो मे सोने के दरपनिया।
> से चुइ रे गइले ना, एक तरिवन के ठोपवा॥
> का तूहँ तरिवन चुवेले अँगनवा।
> मोर हरि रे बिनु सेजिया भइले सपनवा॥"

ऐसा ज्ञात हाता हे कि हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि बिहारीलाल के समय मे भी इस अलकार को धारण करने की प्रथा प्रचलित थी। इन्हान इसका उल्लेख करते हुए लिखा हे कि—

> "तरिवन कनक कपोल दुति, बीचहिं बीच बिकान।"

(२) कनफूल

इसे कणफूल भी कहते हे। सस्कृत मे यह 'कर्णावतस' नाम से प्रसिद्ध है। कनफूल के साथ ही तीन गहनो का परस्पर सम्बन्ध जुडा हुआ है जो एक साथ ही पहिने जाते ह। इनका नाम है—कनफूल-झूमक-सिकडी। इस आभूषण का जो भाग कान के निचले भाग (Earlobe) मे पहिना जाता है उसे कनफूल कहते है। कनफूल से जुडा हुआ जो भाग कान के नीचे अधर मे लटकता रहता है वह 'झूमक' के नाम से प्रसिद्ध है। दोनो कनफूलो को जोडनेवाली कुछ लडियाँ होती है जिसके बीच मे एक अकुश बना रहता है। इसी अकुश को सिर के बालो अथवा जूडे मे फसा दिया जाता है। लडियो से युक्त इस आभूषण को सिकडी कहा जाता हे। वास्तव मे "कनफूल-झूमक-सिकडी" पथक,-पथक तीन आभूषण नही है। बल्कि यह तीनो आभूषणो का समुदाय है जो समन्वित रूप मे एक आभूषण का निर्माण करते है।

लोक-गीतो मे 'झूमक' का अनेक बार उल्लेख पाया जाता है। जैसे—

> "पहिले नेंवत ननदोई किहाँ भेजलो,
> से लेइ अइले बुनुकान झुमकवा रे गेनवा।
> झुमका पहिरि ननदोई के जगवलीं,
> से बाडा सुनर बाजेला झुमकवा रे गेनवा॥"

(३) कुण्डल

कानो मे कुण्डल पहिनने की प्रथा अत्यन्त प्राचीनकाल से चली आ रही है। गोस्वामी जी ने राम के सौन्दर्य का वर्णन करते समय कुण्डल की भी चर्चा की है। सोने के बने हुए कुण्डल को स्त्री ओर पुरुष समान रूप से धारण करते है। कुण्डल की आकृति गोल होती है जिसके मध्य भाग मे रत्न जडा रहता है। अत यह आभूषण बहुमूल्य माना जाता है। लोक-गीतो मे इसकी चर्चा पायी जाती है। जैसे—

> "कान्हे कुण्डल गले तुलसी के माला सँवरे बरन सिरिराम।"

अनेक गीतो मे उपहारस्वरूप दोनो कानो के लिए सोना देने का वणन पाया जाता है जिसका अभिप्राय कुण्डल से ही समझना चाहिए।

> "अवरु जे देबउ देवरा कान दुनु सोनवा।
> मोर देवरवा हो, टोपिया मे रतन जडाय॥"

कुण्डल अनेक प्रकार के बनाये जाते थे, जिनमे विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षियो की आकृति उत्कीर्ण की जाती थी। चिरइया नाम का वह कुण्डल था जिसमे किसी पक्षी को उत्कीण किया जाता था।

> "ललना! उनका कोन सोने के चिरइया,
> चिरइया झकमक करे हो॥"

बिहारी ने "मकराकृति गापाल के कुण्डल शोभित कान" लिखकर इसी तथ्य को प्रमाणित किया है।

(४) बारी या बाली

प्राय मुसलमान स्त्रियो के द्वारा कान क ऊपरी भाग म पहने जानेवाली बालियो का 'बारी' कहा जाता है। ये अपने कानो मे आठ-दस 'बारी' का एक साथ पहिनती ह। जात के एक गीत (जँतसार) म इसकी चर्चा पायी जाती है। कोई सिपाही किसी पनिहारिन से पानी पिलान के लिए अनुराध करता है परन्तु अपनी जाति जुलाहिन (जोलहा की स्त्री) बताकर वह उस पानी न पिलान का बहाना करती है। इस पर सिपाही कहता है कि तुम जुलाहिन हो तो अपनी बालियो का दिखलाओ।

"जब तुहुँ बाड़ ए सँवरो।
जाति के जोलहिनिया।
कान दुनु बरिआ ए सवरो,
मोहि के बतावहु॥"

(५) उतरना

जिस प्रकार मुसलमाना की स्त्रिया अपने काना मे 'बालिया' पहिनती है, उसी प्रकार हिन्दू स्त्रिया काना मे 'उतरना' नामक आभूषण धारण करती है। 'बारी' प्राय चादी की बनी हाती है परन्तु 'उतरना' सान स निर्मित होता है। उपर्युक्त दोनो गहना की आकृति म कुछ विशेष अन्तर नही हाता। सम्भवत काना क ऊपरी (उत्तर) भाग मे पहिनने के कारण ही इस आभूषण का नाम 'उतरना' पड गया है।

(ञ) नाक के आभूषण

(१) झुलनी

नाक मे पहिने जानेवाले गहनो मे झुलनी अत्यन्त प्रसिद्ध तथा लाकप्रिय है। इस नाक क निचले भाग म पहिना जाता है। चूकि यह अधर मे लटकती हुई सदा झूलती रहती है अत इसका नाम 'झुलनी' पड गया है। लोक-गीतो म झुलनी का उल्लेख बहुश पाया जाता है। यथा—

"का तुहूँ बेवरू नजरिया लगावल,
मोरा लेखे झुलनी बेसाहु रे साँवलिया।
झुलनी पहिरि हम सुतलों ओसरवा।
ठोकि देले बजर केवरिया रे साँवलिया॥"

जिस झुलनी मे तीन पत्ते जुडे रहते है उसे 'तीन पतिया झुलनी' कहते है। कोई स्त्री ऐसी झुलनी क भुला जाने के कारण दुखित होकर कहती है कि—

"हेराइ रे गइले ना,
तीन पतिया मोर झुलनिया, हेराइ रे गइले ना।
सासु मारे हुथुका, ननद पारे गारी,
सँइयाँ मारे बाँसे के कोहनियाँ हो,
तीन पतिया मोर झुलनिया,
हेराइ हो गइले ना॥

झुलनी की चर्चा झूमर के गीतो मे अनेकश उपलब्ध होती है—

"ना जानो यार झुलनी मोर कहवाँ गिरा,
पनिया भरन जाऊँ राजा ना जानों,
यहाँ गिरा ना जानो, वहाँ गिरा ना जानों,
ना जानों यार डोरिये में लिपट गया॥"

(२) **नकबूली**

यह भी नाक के निचले भाग मे पहिनने का एक आभूषण है। नकबूली तथा झुलनी मे कोई विशेष अन्तर नही हे। दोनो ही अधर मे झूलते रहते है। नकबूली मे एक ही कनक पत्र होता है जब कि 'तीन पतिया झुलनी' मे इसकी सख्या तीन होती है। समाज के निम्न वग की स्त्रिया इस गहने को विशेष रूप से धारण करती है।

(३) **बेसर**

यह भी नकबूली की ही तरह नाक मे पहिनने का गहना हे जिसकी चर्चा लोक-गीतो मे पायी जाती हे। इसकी आकृति क्या थी, यह स्पष्ट नही है। किसी प्रियतमा का यह अभियोग है कि उसकी बेसर प्रिय के बालो मे फस जाती है। गीत की पक्ति हे—

"एक त पिया अँगिया के पातर,
दोसरे रखवले जुलुफिया।
तोरा जुलुफी मे अँटके बेसरिया,
काहे के पियवा रखवल ः जुलुफिया।।"

हिन्दी के महाकवि बिहारी ने भी बेसर का उल्लेख अपनी सतसई मे किया है—

"अजौ तरयौना ही रह्यो, श्रुति सेवत इक अग।
नाक बास बेसर लह्यो, बसि मुक्तन के सग।।

इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि बेसर मे मोती भी जडे जाते थे।

(४) **नथिया**

यह एक स्वण आभूषण है जिसकी आकृति गोल होती है। स्त्रियाँ इसे अपने दक्षिण नासापुर मे पहिनती है। यह गहना इतना बडा होता है कि इसकी गोलाई कान तक पहुँचती हे। इसके अतिशय भार से पीडित होकर स्त्रियाँ इसमे सूत लगाकर इसे अपने दाहिने कान मे बाँध देती है जिससे इसका भार कुछ हल्का हो जाता है। नथिया को 'नथ' भी कहा जाता है जो विवाहिता वधू का सौभाग्य-चिह्न माना जाता हे। इसीलिए लोक-गीतो मे स्त्रियाँ अपने पति से 'नथिया' गढ़ाने (बनाने) का आग्रह करती पायी जाती है। जब भोजपुरी पति कमाने के लिए परदेश जाता है, सबसे पहिले वह अपनी स्त्री के लिए सोने की नथिया बनवाकर ले आता है।

(५) **नथुनी**

इसे नथिया का लघु सस्करण समझना चाहिए। यह आकार मे गोल और नथिया की अपेक्षा छोटी ओर पतली होती है। नथिया पहिनने का फैशन अब पुराना पड गया है परन्तु नथुनी का फैशन आज भी धूमिल नही हुआ है। नथिया का भविष्य अब अन्धकारमय है परन्तु नथुनी अपने नये रूप मे आज भी लोकप्रिय है।

(६) **छूंछी**

यह नाक के दाहिने नासा-पुट मे पहिनने का गहना है जो आकृति मे गोल और छोटी होती है। कुछ स्त्रिया छूछी के मध्य भाग मे रगीन पत्थर जडवाकर इसे पहिनती है जिससे उनके सौन्दर्य मे 'चार चाँद' लग जाता है।

(७) **पान**

यह भी सोने का आभूषण है जिसकी आकृति पान के पत्ते के समान होती है। यह पतला तथा चिपटा होता है। छूछी का फैशन अब पुराना पडता जा रहा है अत युवती स्त्रियाँ अब उसके स्थान पर पान को ही धारण करती है।

(८) **बुलाक**

यह आभूषण भी झुलनी की भाँति नाक के निचले भाग मे पहिना जाता है, जो सदा झूलता रहता है। यह आभूषण भी झुलनी की भाँति नाक के निचले भाग मे पहिना जाता है, जो सदा झूलता रहता है। इसकी लम्बाई और चौडाई दो इच के बराबर होती है। इसकी बुलाक की आकृति प्राय चौकोर होती है जिसकी लम्बाई और चौडाई दो इच के बराबर होती है। इसकी

आकृति बडी होने के कारण स्त्रियो को भोजन करन मे इमस बडा कष्ट होता है। क्योकि यह उनक मुह तथा दानो अवगो को सदा आच्छादित किये रहता है। इसका भारीपन कष्ट का दूसरा कारण बन जाता है। नुनाग के ऊपरी भाग मे कही-कही रगीन शीशे भी जड होते है जिमस वह देखन म सुन्दर लगता है। आज स चालीस-पचास वष पहिले बूढी स्त्रिया इस आभूषण को बडे प्रेम से धारण करती थी। परन्तु उसकी विकट आकृति और कष्टदायक स्वरूप के कारण अब यह पुरातत्त्व सग्रहालय का विषय बन गया है।

(ट) सिर के आभूषण

(१) मँगटीका

सिर के आभूषणो मे मँगटीका का प्रधान स्थान है। यह एक गोला तथा चपटा सोने का गहना है जो माग पर से होता हुआ ललाट के ऊपर लटकता रहता है। मगटीका म लगी गयी सोने की जजीर के अन्तिम छोर पर एक टेढा अकुश होता है जिसे सिर के बालो अथवा जूडा मे कस दिया जाता है जिससे यह गहना नीचे न गिरने पावे।

(२) सेफ्टीपिन

आजकल कुछ नवीन युवती स्त्रिया अपने बालो को एक स्थान पर समटकर रखन के लिए उसमे सेफ्टीपिन लगा देती है। जूडा के बाधने मे भी इसका प्रयोग किया जाता है।

(३) मोती

कुछ लोक-गीतो मे मोती से माग भरने का उल्लेख पाया जाता है जिससे ज्ञात होता है कि सिर के बालो को सुशोभित करन के लिए मोतियो का प्रयोग किया जाता था।

"गोरी का लटिअन, चुयेला गुलाब,
कि मोतियन माँग भरी।।"

(४) लटकन-झबिया

यह भोजपुरी स्त्रियो का प्रधान आभूषण है जो गला माथ म ही पहिना जाता है। जैसा कि इसके नाम से विदित होता है लटकन स्त्रियो के वक्षस्थल पर लटकनवाला एक गहना है जिसमे घुघुरू लगे रहते है। इसी कारण चलने पर रुनझुन की मधुर आवाज होती है।

(५) झबिया

यह आभूषण बाँह के मध्य भाग मे पहिना जाता है। इस गहने मे घघरूदार तीन उल्टी हुई कटोरीनुमा आकृति होती है जो सूत के द्वारा आपस म गुथी हुई रहती है। इसी सूत का स्त्रियाँ अपनी बाँहो म बाध लेती है। झबिया अपक्षाकृत भारी गहना होता है जिस पहिनकर चलना कष्टसाध्य कार्य है। सम्भवत इसीलिए अब लटकन और झबिया का पहिनना 'आउट आफ फैशन' हो गया है। अब तो इन गहनो का दशन होना भी दुलभ है।

(ठ) वस्त्रो में टाँके जानेवाले आभूषण

कुछ गहने ऐसे भी है जो साडी के आँचल तथा किनार पर टाँके जाते है। इनमे मनोरी-पत्ती का उल्लेख आवश्यक है।

(१) मनोरी

यह अत्यन्त छोटी-छोटी कण्टोरियो के समान होता है जिसे साडियो के किनार पर टाँका जाता है। इसी प्रकार साडी के छोर पर घण्टी के आकार की झबिया बाँधी जाती है। नव विवाहिता वधू की पीली साडी मे ये अलकार टाँके जाते है।

(२) पत्ती

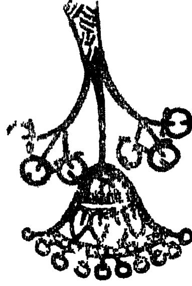
इमे अँचर पल्लो भी कहा जाता हे जो सस्कृत 'अचल-पल्लव' का अपभ्रश रूप ज्ञात होता हे। साडी के आचर के कोने पर चादी का त्रिभुजाकार पत्तर टाका जाता हे। यही अँचर-पल्लो अथवा पत्ती कहलाता हे। अब विवाह के अवसर पर भी साडियो मे मनोरी-पत्ती को टाकने की प्रथा का ह्रास हो रहा है।

(२) अनुच्छेद---बालको के आभूषण

भोजपुरी क्षेत्र मे कुछ वप पहिले छोटे-छोटे बालक भी गहना पहिना करते थे। यह प्रथा गावो मे आज भी प्रचनित हे। बालक जिम आभूषणो को धारण करते है उनकी सूची निम्नाकित है—

अग	आभूषण का नाम
१ कान	बाला
२ हाथ	वेरा
३ कमर	डण्डा या करधनी
४ बाहु	बिजायठ
५ पैर	गाडाव

लटके अपने कानो मे मोने का बना हुआ एक आभूषण पहिनते हे जो आकृति मे गोल होता है और उनके कानो से लटकता रहता है। इसे बाला कहा जाता है। वे अपने हाथ की कलाई मे चादी का बना हुआ ठोम वलय का धारण करते है जो बेरा के नाम से प्रसिद्व है। उनके बाहु के मध्य भाग मे एक गोल तथा चपटा गहना सुशोभित होता है जो 'बिजायठ' कहलाता है। सस्कृत मे इसकी सज्ञा केयूर है। बच्चे अपनी कमर मे करधनी पहिनकर घूमते है जिसे डण्टा के नाम से अभिहित किया जाता है। उनके पैरो को चादी का आभूषण सुशोभित करता है जो 'गोडाँव' के नाम से पुकारा जाता है।



अध्याय १०

अलंकरण तथा प्रसाधन के साधन

○○

मानव-जाति मे अपने शरीर को अलकृत तथा सुशोभित करने की प्रथा चिरकाल से पायी जाती है। सभ्यता की आदि अवस्था मे वतमान जातिया भी अपने शरीर को अलकृत किया करती थी। यह प्रथा पुरुषो तथा स्त्रियो दोनो मे समान रूप से विद्यमान थी। युद्ध म अपने शत्रु को पराजित करने के लिए जानेवाले वीर-बाँकुरे एक विशेष प्रकार की वेशभूषा पहिनते थे जिसे शारीरिक अलकरण का ही एक रूप समझना चाहिए। सौन्दय स्त्रियो की प्रधान विशेषता है। अत इस सौन्दय की प्राप्ति के लिए व विभिन्न प्रकार से अपन शरीर का अलकरण करती थी और आज भी करती है। गोदना गादान की प्रथा की उत्पत्ति इसी कारण स मानी जाती हे। यह प्रथा ससार के सभी प्राचीन देशो मे प्रचलित थी आर भोजपुरी क्षेत्र मे आज भी चली आ रही है। वणन की सुविधा के लिए इस परिच्छेद को तीन वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है—(१) बालो क प्रसाधन (२) केशपाश बालो के गूथने के प्रकार (३) शरीर के अन्य विभिन्न अगो का प्रसाधन।

(१) अनुच्छेद—बालो के प्रसाधन

गावो की देहाती दुनिया मे सादगी का साम्राज्य विराजता है। वहाँ की स्त्रियाँ न तो 'लिपस्टिक' का प्रयाग करना जानती है और न 'नेल पालिश' से ही परिचित होती है। बालो मे न तो 'कामिनिया आयल' के प्रयोग का नाम उन्होने सुना है और न 'ब्राह्मी-आँवला' का ही कभी दशन किया है। वे दीर्घकालीन परम्परा स चल आते हुए तेलो का व्यवहार करती है। इन तेलो मे तेज सुगन्ध भले ही न हो परन्तु बालो की दृष्टि से ये तल बड ही लाभप्रद होते है।

(१) तेल

भोजपुरी स्त्रियाँ अपने लम्बे-लम्बे बालो मे सरसो का तेल लगाकर उनका प्रसाधन किया करती है। भोजपुरी मे इसे 'कडआ' या 'करआ' तेल कहा जाता है। शुद्ध सरसो को पेरकर बनाया गया यह तेल 'बहुत तज' होता है इसीलिए सम्भवत इसका नाम 'कडआ' (कटु) पड गया है। कुछ लोग इसे 'मीठा' तेल भी कहते है क्योकि गरीब लोग इसे खाने के प्रयोग मे भी लाते है।

(अ) सरसो का तेल

भोजपुरी समाज मे यह प्रथा प्रचलित है कि जब कोई स्त्री अपने परिवार अथवा कुटुम्ब की किसी दूसरी स्त्री के पास जाती है तब वह उसका स्वागत-सत्कार शरबत अथवा चाय पिलाकर नही करती बल्कि उसके रूखे-सूखे बालो मे 'कडवा तेल' लगाती है जिसे 'तेल जाँतना' कहा जाता है। किसी स्त्री के सिर मे 'तेल जाँतना' और उसका 'पैर मचसना' (दबाना) बडे ही आदर का विषय समझा जाता है। इसीलिए विवाह के अवसर पर कन्या और वर के घर मे जो 'सगुन' (मागलिक गीत) गाये जाते है उनमे सम्मिलित होने के लिए—सगुन गाने वाली—स्त्रियो को सिर मे लगाने के लिए तेल दिया जाता है। कुछ स्त्रियाँ तो अपने सिर मे दो-तीन 'पइरी' तेल लगा लेती है, जो उनके बालो से चूता रहता है। इस प्रकार स्त्रियाँ 'कडआ' तेल के द्वारा अपने बालो को चिकना तथा सुन्दर बनाती है।

लोक-साहित्य मे सरसो का तेल लगाने का अनेक बार उल्लेख पाया जाता है। यज्ञोपवीत, विवाह आदि मागलिक अवसरो पर इसी तेल के प्रयोग का विधान पाया जाता है। एक लोक-गीत मे इसके लगाने का वणन इस प्रकार से उपलब्ध होता है। कोई स्त्री कहती है कि दाल-भात मेरा भोजन है और सरसो के तेल से मै स्नान करती हूँ।[१] बालो के लम्बे तथा काले होने मे ही उनकी सुन्दरता मानी जाती है।[२] जायसी ने भी ऐसे बालो के सौन्दय की प्रशसा की है।[३]

(आ) नारियल का तेल

जब अपने बालो को और अधिक लम्बा बढाने की इच्छा होती है तब स्त्रिया उन बालो मे नारियल का तेल लगाती है जिसे 'गरी का तेल' भी कहा जाता है। एक गीत मे कोई माता अपनी पुत्री से पूछती है कि तुम कौन-सा तेल लगाती हो और किस कघी से मचिया पर बैठकर अपने बालो को सँवार रही हो। इस पर पुत्री उत्तर देती है कि मै नारियल का तेल लगाती हूँ और सोने की कघी से अपने बालो को सँवारती हूँ।[४]

(इ) तीसी का तेल

निधन स्त्रिया अपने बालो मे 'तीसी' (अलसी) का तेल लगाती है। यह तेल बालो के लिए उपयुक्त नही होता। कोई स्त्री कहती है कि मैने अपने बालो मे तीसी का तेल लगा लिया है अत मेरे बाल 'लटिया' गये है अर्थात गन्दगी के कारण वे आपस मे चिपक गये है।[५] भगवती नामक कोई स्त्री सदा अपने बालो मे तीसी का ही तेल लगाती है।[६]

(ई) रेडी का तेल

गर्मी के दिनो मे स्त्रियाँ ठण्डे तेल के अभाव मे 'रेडी' (अरण्डी) का तेल अपने सिर मे लगाती है। यह तेल बडा गाढा होता है परन्तु इसकी 'तासीर' ठण्डी होती है। आजकल जिस 'लाल केस्टर आयल' को लगाकर शौकीन लोग अपने काले बालो को सँवारते है वह इसी 'रेडी' के तेल का 'रिफाइण्ड' (साफ किया हुआ) रूप है। यह 'रेडी' का तेल दीपक जलाने के काम मे लाया जाता है।

---

१ दाल-भात बाबा मोरा रे जेवनारवा,
कडुवहि तेल असनान ए।
डॉ० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १।

२. कँहुयाँ पनिया ससुर जी, अबरी से ढबरी नाहीं हो
भीजेले हमार लामी हो केसिया।

३ भँवर केस वह मालति रानी। बिसहर लुरे लेहिं अरघानी॥
पद्मावत—नख-शिख खण्ड

४ आरे कवि केरा ककही, कथीय केरा तेल।
आरे कथिका मचियवा हो बेटी, झारेलू लामी केस॥१०॥
आरे सोना केरी ककही, नरियर केर तेल।
आरे सोने का मचियवा हो अम्मा, झारीलें लामी केस॥२॥
डॉ० उपाध्याय—भो०लो०सा०अ० पृ० २९८।

५ आरे तिसिया के तेलवा से मथवा रे बन्हवलो
से बारवा गइले रे लटिआई।
—वही पृ० २९८।

६ तिसिया के तेलवा से भगवती, माथवा से बँधवली।
आरे तेलवे कचोटवे ए भगवती, पटिया रे बन्हवली॥
—वही, पृ० २९८।

(उ) कोइना का तेल

महुआ के फल को 'कोयता' या 'कोइना' कहा जाता है। उसकी गुद्दी को कूटकर तेल तैयार किया जाता है जो 'कोइनाँ' का तेल कहलाता है। यह तेल जाडो के दिनो मे घी की तरह जम जाता है। उसकी आकृति घी की तरह सफेद तथा रवादार होती है। इस तेल को भी स्त्रिया अपने बालो मे लगाती है। यह ठण्डा होता है तथा जलाने के काम मे भी लाया जाता है। गरीब लोग इस तेल मे पूरियाँ भी बनाते है। यह स्वाद मे कुछ कड़ुआ (कटु) होता है।

जब स्त्रियो के सिर मे जूँ या 'ढील' पड जाता है तब उन्हे नष्ट करने के लिए ये नीम का तेल सिर मे लगाती है। यह तेल कटु होता है अत जूँ नष्ट हो जाते है। लोक-गीतो मे रेडी और कोइना के तेल का उल्लेख पाया जाता है।[1]

बाल झारने के साधन

(१) कंघी

स्त्रियाँ अपने बालो को कंघी से 'झारती' (सँवारती) है। यह कंघी प्राय काठ की बनी होती है जिसके आगे 'दाँत' रहते है जिससे बालो को साफ किया जाता है। भोजपुरी मे कंघी को 'ककही' कहते है। एक लोक-गीत मे सोने की कंघी से बाल साफ करने का उल्लेख है जिससे तत्कालीन समाज के वैभव का पता चलता है।[2] हाथी दाँत और चन्दन की बनी कंघी तो देखने मे आती है परन्तु सोने की कंघी लोक-गीतो की दुनिया मे ही पायी जाती है। 'ककहा' को 'ककही' का ही बडा रूप समझना चाहिए जो अधिक उलझे हुए बालो की सफायी करता है।

(२) थकरी

जब स्त्रियो के बाल 'लटिया' जाते है अर्थात मैल एव गन्दगी के कारण वे एक दूसरे मे चिपक कर 'लाटा' बन जाते है, तब उनकी सफायी कंघी के द्वारा करनी असम्भव हो जाती है। ऐसी स्थिति मे स्त्रियाँ 'थकरी'[3] के द्वारा अपने लम्बे एव 'लटिआये' बालो को स्वच्छ करती है। वे अपने बालो को पकडकर 'थकरी' से 'झारती' है जिसके फलस्वरूप गन्दे बाल टूटकर अलग हो जाते है और इस प्रकार सिर के बाल स्वच्छ हो जाते है।

(२) अनुच्छेद—केश-पाश की रचना

बालो को गूँथने के प्रकार

बालो को गूँथने की परम्परा बडी प्राचीन है। अजन्ता की गुफाओ मे तथा खजुराहा के मन्दिरो मे स्त्रियो के जो चित्र और मूर्तियाँ क्रमश पायी जाती है उनकी कला के अध्ययन से उनके केशपाश के विन्यास पर प्रचुर प्रकाश पडता है। डा० मोतीचन्द्र ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'प्राचीन भारतीय वेशभूषा' मे केशपाशो की रचना का बडा ही सुन्दर तथा प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत किया है।

(१) जूरा

भोजपुरी स्त्रियाँ अपने समस्त बालो को एकत्रित करके—उन्हे समेटकर सिर के पिछले भाग मे एक गोलाकार गाँठ की आकृति बना देती है जो 'जूरा' कहा जाता है। प्राचीन भारत मे भी स्त्रियो के द्वारा जूरा बाँधने के उदाहरण चित्र तथा मूर्तिकला मे पाये जाते है। चूकि जूरा बडी सरलता से बाँधा जा सकता है अत केश-पाश के विन्यास की सबसे प्रचलित पद्धति यही है। जूरा आकृति मे गोल होता है। कोई अहीर अपनी मोटी लाठी के हूरा,

---

१ डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भो०लो०गी० भाग १।

२ आरे सोने केरी ककही नरियर केर तेल।

डॉ० उपाध्याय—भो०लो०मा०अ० पृ० २९८।

३ 'थकरी सूखे खस के छोटे टुकडो से बनायी जाती है। इसकी लम्बाई एक 'बित्ता (१२ इच) के बराबर होती है खस के टुकडो को सुतली से बाँधकर इसे बनाते हैं जिसकी आकृति प्रारम्भ मे पतली और अन्त मे मोटी होती है।

लाठी का निचला तथा मोटा भाग, की उपमा किसी स्त्री के 'जूरा' से देता हुआ कहता है कि ए गोरिया! तेरा जूरा मेरे हूरे के समान है और तेरा गाल कोमलता मे मालपुआ को भी मात करता है।[1]

(२) चोटी

कुछ स्त्रियाँ अपने बालो को गूथ कर एक बेणी बना लेती है। इस बेणी को 'चोटी' कहा जाता है। भोजपुरी मे 'चोटी करना' एक मुहावरा के रूप मे प्रयुक्त होता है जिसका अर्थ है बालो को 'गूह' (गूथ) कर वेणी के रूप मे उसे बनाना। कुछ स्त्रिया वेणी के अन्तिम भाग मे सूत की बनी हुई काली रस्सी को गूथ लेती है जो 'चोटी' के नाम से प्रसिद्ध है। इस चोटी के अन्तिम भाग मे काला 'फूलगेना' लगाया जाता है जो देखने मे सुन्दर लगता है। जिन निर्धन स्त्रियो के पास, बालो मे तेल लगाने के लिए धन का अभाव रहता है, वे अपने बालो को यो ही बिखरा हुआ छोड देती है। उनके अस्त-व्यस्त बाल मानो उसके जीर्ण-शीर्ण जीवन के प्रतीक हो।

(३) वेणियाँ

आजकल शहरो मे रहने वाली स्त्रियाँ तथा कालेज मे पढने वाली कुमारियाँ अपने बालो को दो भागो मे विभक्त कर उनकी अलग-अलग दो वेणियाँ (चोटियाँ) बनाती है। आजकल दो चोटी का ही अधिक फैशन है यद्यपि गावो मे अहीर की लाठी के 'हूरा' को चुनौती देने वाला 'जूरा' ही अधिक लोकप्रिय है। लोक-गीतो मे 'जूरा' और 'चोटी'[2] दोनो का उल्लेख पाया जाता है।

(३) अनुच्छेद—शरीर के विभिन्न अगो का प्रसाधन

(१) अबटन

आजकल शरीर को सुन्दर बनाने के लिए अनेक प्रकार के प्रसाधन प्रचलित है। सुगन्धित साबुन, क्रीम, स्नो तथा पाउडर आदि अनेक प्रकार के प्रसाधन आज उपलब्ध है जिससे शरीर को अलकृत किया जा सकता है। परन्तु देहाती दुनिया मे जहाँ इन वस्तुओ का नितान्त अभाव होता है वहा ग्रामीण स्त्रियाँ शरीर के प्रसाधन के लिए उबटन तथा बुकवा का प्रयोग करती है। सरसो को तेल मे भूनकर उसे पानी की सहायता से सिल पर पीसा जाता है। इस प्रकार जो 'लेप' तैयार होता है उसे 'उबटन' कहते है। भोजपुरी मे इसे 'अबटन' की सज्ञा दी जाती है। इस उबटन मे थोडा सरसो का तेल मिला दिया जाता है। फिर इसका लेप सारे शरीर मे किया जाता है। इससे शरीर की मैल दूर होने के साथ ही साथ देह-यष्टि सुन्दर तथा चिकनी भी हो जाती है। भोजपुरी माता अपने पुत्र के शरीर मे उबटन लगाती है। विशेषकर, जब वह विवाह करने जानेवाला होता है, उसके दो चार दिन पहिले से ही उबटन का लेप उसके शरीर मे लगाना अत्यन्त आवश्यक माना जाता है। नवागता वधू के शरीर मे गाँव की नाईन उबटन लगाती है जिससे वह अधिक सुन्दर और कान्तिमती दिखायी पडने लगती है। लोक-गीतो मे बहू अपनी सास को उबटन लगाती हुई वर्णित है। उबटन लगाकर सास को जगाने का यह वर्णन कितना सुन्दर है।[3]

---

१ हूरवा नियर तोर जूरवा ए गोरिया
पूअवा नियर तोर गाल।

डॉ० उपाध्याय—भो०लो०गी० भाग २।

२ झूला पहिरि हम बन्हवली रे जूरा।
पियवा नाहीं आवेला, सइयाँ नाही आवेला।

लेखक का निजी सग्रह

मोरी चोटी पर हाथ राजा धीरे से धरऽ।

—लेखक का निजी सग्रह

३ ऊबटन लाई-लाई सासु के जगवलो
राउर बेटा हो गइले, फकीरवा हो राम॥

—डॉ० उपाध्याय भो०लो०गी० अ० पृ० २९९

(२) बुकवा

स्त्रियाँ शरीर को एक अन्य साधन से प्रसाधित करती है जो 'बुकवा' के नाम से प्रसिद्ध है। आटे मे हलदी, सुगन्धित पदार्थ तथा पानी मिलाकर इस घोल को तैयार किया जाता है। इसका शरीर मे लेप करने से देह कुछ चिकनी तथा पीली दिखायी पडने लगती है। उबटन का प्रयोग बारह महीनो मे कभी भी किया जा सकता है परन्तु 'बुकवा' का उपयोग विवाह के समय, वर के लिए ही होता है। अत इसका प्रयोग एक विशिष्ट अवसर से सम्बन्धित है।

उबटन और बुकवा ये दोनो ही बडे उपयोगी तथा सस्ते प्रसाधन है जिसे किसी भी आर्थिक स्तर के व्यक्ति बडी सरलता से प्राप्त कर सकते है। परन्तु अब गाँवो मे भी साबुन का प्रवेश होने लगा है अथवा हो गया है। अत इसके कारण इन दोनो प्रसाधनो का प्रचलन समाज से धीरे-धीरे उठता जा रहा है।[१] इस प्रसग मे यह कहना कुछ अनुचित नही होगा कि जहा बुकवा लगाना मागलिक माना जाता है वहा यह आदर तथा सम्मान का भी प्रतीक है। भोजपुरी मे एक कहावत प्रचलित है जिसमे कोई स्त्री या माता अपने पति या पुत्र से व्यग्य रूप से कहती है कि तुम कौन-सी बडी 'कमायी' (अर्जन) करके घर आये हो जिससे तुम्हारे शरीर मे तेल और बुकवा लगाया जाय।[२] भाव यह है कि बुकवा का प्रयोग या तो किसी मागलिक अवसर पर किया जाता है अथवा किसी व्यक्ति-विशेष का आदर सत्कार करने के लिए।

माँग

सिन्दूर, माग का सबसे मागलिक सुन्दर तथा प्रसिद्ध प्रसाधन है। सौभाग्यवती स्त्रिया अपने माँग मे निश्चित रूप से सिन्दूर लगाती है क्योकि यह उनके सौभाग्य का सूचक है। विवाह के अवसर पर 'सुमगली' नामक विधि का सम्पादन किया जाता है। इस अवसर पर वर-कन्या के माँग मे सिन्दूर लगाता है। इस विधि को 'सिन्दूर-दान' भी कहा जाता है। जायसी ने पद्मावती की माँग मे लगाये गये सिन्दूर का बडा ही सुन्दर वर्णन किया है।[३] गोस्वामी जी ने भी विवाह के अवसर पर राम के द्वारा सीता के माँग मे सिन्दूर लगाने का उल्लेख किया है।[४] सधवा स्त्रियो के लिए सिन्दूर माँग का अनन्यतम प्रसाधन है। इसमे इनके सौन्दर्य की वृद्धि होती है। विधवा स्त्रियाँ माँग मे सिन्दूर नही लगाती। एक लोक-गीत मे कोई विधवा अपने दुखो का वर्णन करती हुई कहती है कि मेरा माँग सिन्दूर के बिना रो रहा है।[५] प्रियतम के घर न आने पर सिर के सिन्दूर को धो देने का उल्लेख भी पाया जाता है।[६]

---

१ इस लेखक की पूजनीया तथा प्रातःस्मरणीया दादी श्रीमती मूर्तिदेवी जी अपने पुत्रो के तीस-चालीस वर्ष की अवस्था प्राप्त कर लेने पर भी उन्हे बडे प्रेम से उबटन लगाया करती थी और कहती थी कि इससे शरीर सुन्दर, स्वस्थ और सुचिक्कण होता है।

२ बडा कमाई पर तेल बुकवा।

—लेखक का निजी सग्रह

३ (क) सिन्दुर अबहिं चढ़ा जेहि नाहीं।
(ख) बिनु सिन्दुर अस जानहु दीया।
उजियर पन्थ रैन मँहकीया।।

पद्मावत—नख-शिख वर्णन खण्ड

४ राम सीय सिर सेन्दुर देहीं,
सोभा कहि न जाइ विधि केहीं।।

रा० च० मा० (बा० का०)

५ बाबा माँग मोर रोवेला सिनुर बिनु,
नयना काजरवा बिनु ए राम।

६. धोइ डाल सिर के सेनुरवा, नयनवा के काजर हो।
धोइ डाल सोरहो सिंगार, कन्हैया नाहीं घर अइले हो।।

—लेखक का निजी सग्रह

(क) ललाट

स्त्रियाँ जिस प्रकार अपने माँग की शोभा सिन्दूर लगाकर करती है उसी प्रकार ललाट मे लाल बिन्दी लगाकर इसे सुशोभित करती है। यह बिन्दी या तो सिन्दूर की ही होती है अथवा 'रोरी' की। पुरानी परम्परा का पालन करने वाली स्त्रियाँ अपने ललाट मे टिकुली 'साटती' या लगाती है जो प्राय लाल होती है। कुछ स्त्रियाँ बडी और गोली टिकुली ललाट पर 'साटती' (लगाती) ह जिन्हे उनके बडे आकार के कारण 'टिकुला' कहा जाता है। टिकुली प्राय गोली तथा चपटी हुआ करती है परन्तु आजकल तिकोणी (△) तथा पतली और लम्बी ↑ टिकुली का प्रचार पाया जाता है। शिक्षित स्त्रिया अब टिकुली का व्यवहार न कर केवल एक लाल टीका लगाती हे जिसे लाल बिन्दी ○ का प्रतिनिधि मानना चाहिए। स्त्रियो के ललाट मे बिन्दी लगा देने पर उनका सौन्दय अगणित रूप से बढ जाता है। इस बात को रीतिकालीन महाकवि बिहारी ने भी स्वीकार किया है।[१]

लोक-गीतो मे 'रस बेनुली टिकुलिया' का वणन बहुत पाया जाता है। ग्रामीण स्त्रियाँ परदेस को जाते हुए अपने प्रियतम से लोटने पर सुन्दर टिकुली लाने की प्राथना करती है।[२] भोजपुरी भाई तीज के अवसर पर अपनी बहिन के लिए साडी, सिन्दूर, चूडी और टिकुली उपहार मे लाता है।

लाल टीका

सौभाग्यवती स्त्रिया अपने ललाट पर लाल तिलक या टीका लगाती है जो उनके सौभाग्य का सूचक है। यह तिलक लाल रग के 'इगुर' का होता है। कुछ स्त्रियाँ लाल तिलक न लगाकर ललाट मे केवल बिन्दी धारण करती है जो आकृति मे टीका से बहुत छोटी होती है। कुछ स्त्रियाँ लाल बिन्दी के स्थान पर काली बिन्दी से अपने ललाट को सुशोभित करती है। काली बिन्दी लगाने का उनका अभिप्राय यह होता है कि किसी की कुदृष्टि से उनकी रक्षा होती रहे। किसी की नजर न उन्हे लग जाय।

आँख—(१) काजल

आँखो को प्रसाधित करने के दो साधन है—(१) काजल और (२) अञ्जन। घर की बडी और बूढी स्त्रियाँ अपने छोटे बच्चो की आँखो मे काजल लगाती है। वे सरसो के तेल अथवा घी का दीपक जलाकर उसकी लौ से निकले हुए धूम्र को लोहे के छोटे तथा चपटे पात्र मे एकत्रित करती है जिसे 'कजरौटा' कहा जाता है। इसी धूम्र से उत्पन्न 'धूलि' मे सरसो का तेल मिलाकर 'काजल' बनाया जाता है जिसे 'काजर' भी कहते है। आँखो मे काजल लगाने से इनकी शोभा बहुत अधिक बढ जाती है। कोई माता यशोदा से अपने बच्चे के आँखो मे काजल लगाने के लिए प्रार्थना करती है।[३] लोगो का ऐसा विश्वास है कि काजल लगाने से आँखो की ज्योति बढती है। इसीलिए स्त्रियाँ नवजात शिशु की आँखो मे काजल अवश्य लगाती है। पुरुषो के लिए केवल जनेऊ और विवाह—इन दो अवसरो पर काजल लगाने का विधान पाया जाता है। विवाह के समय वर की आँखो मे काजल उसके सौन्दर्य को बढाने के लिए लगाया जाता है। एक गीत मे काजर से हीन वर की बडी निन्दा की गयी है।[४]

परन्तु काजल का प्रयोग प्रधानतया स्त्रियाँ ही करती है।' 'कजरारे नैना' का वणन हिन्दी साहित्य मे प्रचुर रूप मे पाया जाता है। काजल लगाने से आँखो की शोभा और भी बढ जाती है। इसीलिए काजल स्त्रियो के प्रसाधन का चिर सहचर हो गया है।

---

१ यहै कहै बेंदी दिये, आँक दस गुनो होत।
तिय लिलार बेंदी दिये, अगणित बढ़त उदोत।।
बिहारी—रत्नाकर दोहा

२ हमरा के ले अइह रस बेन्दुली टिकुलिया।

३ बबुआ के बडी-बडी अँखिया देखत नीक लागै।
करीं ना जसोदा मइया काजर अँगुरिया जनि डोलै हो।।
डॉ० श्रीधर मिश्र भो०लो०वि०रू० पृ० ३३

४ आँखि तोर देखीं ए वर कजरो नाहीं।
माई तोर लोहरवा के साथे काहे ना लाये रे बर।।
डॉ० श्रीधर मिश्र—वही पृ० ९०

(२) अञ्जन

नेत्रो को सुशोभित करने का दूसरा उपकरण अञ्जन है जिसे ग्रामीण बोली म 'आजन' कहा जाता हे। इसका प्रयोग नेत्रो की शोभा को बढाने की अपेक्षा आखो के रोगो को दूर करने के लिए विशेष रूप स किया जाता हे। घर की कोई बूढी तथा अनुभवी स्त्री, पीतल की थाली की पीठ पर मेथी, ताम्बे का पैसा बेल की पत्ती, लवँग ओर कपूर को रखकर उसमे किसी स्त्री का दूध थोडा डालकर उसे घण्टो रगडती हे। कुछ समय तक रगडते-रगडते उसका स्वरूप द्रव के रूप मे हो जाता हे। इसी गाढे द्रव को आँखो मे लगाया जाता हे जिससे आखो के रोग—फूली, माँडा, रतौधी दूर हो जाते हे। यह आजन रोगो को दूर करने के साथ ही आखो का सुशोभित भी करता है। गोस्वामी तुलसीदास जी के समय मे भी यह परम्परा प्रचलित थी। इसीलिए उन्होने मीराबाई के पास प्रेषित अपने पत्र मे लिखा था कि—

अजन कहा आँख जो फट
बहुतहि कहौ कहाँ लौ।।

लोक-गीतो मे भी 'अजन' का वर्णन पाया जाता है[1]।

(३) सुरमा

कुछ स्त्री और पुरुष अपनी आखो मे सुरमा भी लगाते है। यह प्रधानतया आँखो की ज्योति को बढाने के लिए लगाया जाता है परन्तु कुछ शौकीन लोग आँखो के प्रसाधन के लिए भी इसका प्रयोग करते है बरेली का बना हुआ 'सुरमा' बडा प्रसिद्ध है। यह पाउडर के रूप मे होता है और सलाई (शलाका) की सहायता से आँखो मे लगाया जाता है। एक लोक-गीत से पता चलता है कि किसी नायिका ने आँखो मे सुरमा लगाया है जिससे उसकी आखे इतनी सुन्दर तथा चित्ताकर्षक हो गयी है कि नायक का मन लुभा जाता है।[2] आँखो के प्रसाधन के रूप मे सुरमा की अपेक्षा काजल और अञ्जन का ही उल्लेख लोक-गीतो मे अधिक हुआ है।

दाँत—मिस्सी

दाँतो की शोभा बढाने का एकमात्र साधन 'मिस्सी' समझा जाता है। इस काले पाउडर का सतत प्रयोग करने से दाँतो की स्वच्छता नष्ट हो जाती है और वे काले पड जाते हैं। परन्तु स्त्रियाँ इसी को अपने दाँतो का शृगार समझती है। यो तो साहित्य मे सुन्दर तथा सफेद दाँतो की उपमा बिजली, कुड्मल (फूल की 'कोढी') मोती तथा अन्य स्वच्छ पदार्थों से दी गयी है परन्तु स्त्रियाँ मिस्सी लगाने मे ही अपने दाँतो के सौन्दर्य की वृद्धि समझती है। सम्भवत जायसी के समय मे भी दाँतो के प्रसाधन की यह प्रथा प्रचलित थी। इसीलिए उन्होने पद्मावती के 'नख-शिख' वर्णन के प्रसग मे उसके दाँतो मे मिस्सी लगाने का उल्लेख किया है।[3]

कुछ धनी मानी पुरुष और स्त्रियाँ अपने अगले दो बडे-बडे दाँतो मे छेद करवा कर उसमे सोना लगवा लेते है। सफेद दाँतो के बीच मे यह सोना बडा चमकीला तथा सुन्दर लगता है। परन्तु यह प्रथा केवल उच्च तथा धनी वर्ग के कुछ लोगो तक ही सीमित है। लोक-गीतो मे मिस्सी लगाने का उल्लेख बहुत ही कम पाया जाता हैं। केवल एक स्थान पर इसकी चर्चा इस प्रकार हुई है।[4]

---

१ लेखक का निजी सग्रह।

२ ऊँच-ऊँच लिलरा पर टिकुली रसीली सोभे
बडी-बडी अँखियन मे, सुरमा नीक लागे हो।

लेखक का निजी सग्रह

३ जायसी—पद्मावत—नख-शिख वर्णन खण्ड

४ गोरिया ह रँगीली ओकरा मिलल पान के खिली।
दाँतवाँ मे मिस्सी लगावेले सँइयाँ के रिझावेले ना।

लेखक का निजी सग्रह

ला—फूलो की माला

किसी व्यक्ति के स्वागत-सत्कार तथा विदाई के अवसर पर उसको फूलो की माला पहिनाना एक साधारण शिष्टाचार समझा जाता है। कन्या पक्ष वालो के घर पर जब बारात आती है तो प्राय प्रत्येक बाराती—बारात , सदस्य—को फूलो की माला अर्पित की जाती है। स्त्रिया फूलो की माला को भी प्रसाधन के रूप मे प्रयोग करती है। महाराष्ट्र प्रदेश की स्त्रिया अपने जूडा मे पुष्पो की माला धारण करती है।

सुगन्धित फूलो—जैसे बेला ओर चमेली—की मोटी माला को 'गजरा' कहते है। इस गजरा को भी भोजपुरी पुरुष तथा स्त्रियाँ बडे शोक से पहिनती है। लोक-गीतो मे 'गजरा' का उल्लेख पाया जाता है।[१] फूलो को सेज पर विखेरने का वणन मिलता हे जिससे रातभर सुगन्धमय वातावरण हो जाता है।[२] स्त्रिया माला को प्रसाधन के रूप मे अपन गले मे प्राय पहिनती है।

बाँह—गोदना

यह बाहो का एकमात्र प्रसाधन है। काजल को दूध मे घोलकर और भृगराज-भेगरिया की पत्तियो का रस मिलाकर इसे तैयार किया जाता है। नट जाति की स्त्रियाँ—जिसे 'नटुइनि' कहा जाता है—गोदना गोदने का काम किया करती हे। वह सुइयो को बाँहा मे चुभोती जाती है और स्त्रियो के कष्ट को दूर करने के लिए शृगार रस भरी गीत भी गाती जाती हे। गोदना गोदने के कारण नेटुइनि को 'गोदनहरी' भी कहा जाता है। एक गीत मे इसका उल्लेख पाया जाता हे।[३] विवाहिता स्त्रिया ही गोदना गोदवाती हे। कुँवारी लडकियाँ नही। गोदना से हाथ का सौन्दय बहुत अधिक बढ जाता है। कोई दुष्ट ससुर भोजन करते समय अपनी पुत्रवधू के हाथो का गोदना देखकर खाना-खाना ही भूल जाता हे।[४] कोई स्त्री 'नेटुइनि' से निवेदन करती है कि तुम इस प्रकार गोदना को गोदो जिस प्रकार विभिन्न रगो के साथ रँगरेज चुनरी रँगता है।[५] गोदना का काला रग स्थायी हो जाता है। अत स्त्रियो का विश्वास है कि मृत्यु के उपरान्त यही परलोक मे साथ जाता है। उनकी यह भी धारणा है कि इसके बिना स्वग की प्राप्ति नही हो सकती।

हाथ—मेंहदी

सावन क मनभावन महीने मे स्त्रियाँ अपने हाथो मे मेहदी लगाती है। मेहदी के पेड की पत्तिया हरी तथा छोटी होती है। इन पत्तियो को सिल (सिलवट) पर लोढा से पीसा जाता है और इसके रग को स्थायी तथा तेज बनाने के लिए इसमे थोडा सरसो का तेल मिला दिया जाता है। इसके पश्चात् स्त्रियाँ पीसी गयी इस मेहदी को सोक से उठाकर अपने हाथो पर बिन्दी के रूप मे स्थान-स्थान पर रखती जाती है। इस प्रक्रिया को 'मेहदी रचाना' कहा जाना हे। जब मेहदी सूख जाती है तब हाथो को पानी से धो देते हें। फिर हाथो की शोभा अगणित बढ जाती है। य हाथो पर लाल छीट के समान दिखायी पडने लगते है।

---

१ इ गजरा केकरा गला मे डालो।

२ कलिया चुनि-चुनि सेजिया डसवली।
मोरा सोवन वाला विदेस तरसे।
मोरी बारी उमिरिया नइहर तरसे॥
डॉ० उपाध्याय—भो०लो०गी०भा० १

३ पुरुब पछिमवा से अइली नेटुइनिया रामा।
हरि-हरि केहू साँवरि गोदना,
गोदवइहनि ए हरी।
लेखक का निजी सग्रह

४ सासु के दाँते बतीसी, बहू के बहियाँ गोदना।
ससुर जेंवना ना जेवें, निरखे गोदना॥

५ अइसन गोदना गोद रे गोदनरिया।
जइसे चुनरी रँगेला रँगरेज॥
डॉ० उपाध्याय भो० लो० गी०, भाग १, पृ०

आजकल 'मेहदी रचना' एक कला हो गयी है। स्त्रियाँ इस मेहदी के द्वारा अपने हाथो पर देवी, देवताओ तथा राष्ट्रीय नेताओ के चित्र भी अकित करने लगी है। हाथो पर मेहदी स स्वास्तिक तथा ओऽम् 'ॐ' की आकृत बनाना साधारण बात समझी जाती है।

जब स्त्रिया अपने हाथो मे मेहदी लगाती है तब वे कोई भी काम नही करती है जब तक कि मेहदी अच्छी तरह से सूख न जाय। इसलिए इस सम्बन्ध मे यह लाकोक्ति प्रसिद्ध हो गयी है।[1] लोक-गीत मे इसका उल्लेख पाया जाता है।[2] हिन्दी के एक आधुनिक कवि ने मेहदी का सुन्दर वणन करते हुए इसके द्वारा बडा ही अच्छा उपदेश दिया है।[3]

पैर—महावर

पैरो का प्रसाधन प्रधानतया महावर से किया जाता है जिसे मस्कृत मे 'आलक्तक' कहते है। किसी भी मागलिक काय के अवसर पर चाहे वह मुण्डन हो या जनेऊ हो, चाहे विवाह हो या गवना, स्त्रियां अपने पैरो मे महावर लगाना अत्यन्त आवश्यक समझती है। यह काय गाव की नाऊ की स्त्री नाईन करती है। इसके अतिरिक्त सत्यनारायण की कथा, व्रत तथा त्यौहारो के अवसर पर भी स्त्रियाँ महावर का प्रयोग करती है।

पैरो मे महावर लगाने की प्रथा बहुत प्राचीन ज्ञात हाती है। कालिदास ने यह वणन किया है जब शकुतला राजा दुष्यन्त के यहा जा रही थी उस समय किसी वृक्ष ने उसे क्षौम वस्त्र दिया और किसी न प्रेमवश 'लाक्षारस' प्रदान किया।[4] महाकवि बिहारी ने लिखा है कि किसी नायिका के पैर म महावर लगान के लिए काई नाईन आयी। परन्तु नायिका के पैरो की लाली को देखकर वह बडे असमजम मे पड गयी।[5] लोक-साहित्य मे भी महावर लगाने के अनेक उल्लेख पाये जाते है।[6]

इत्र

जहाँ निधन स्त्रिया 'तीसी' के तेल अपने बालो मे लगाती है वहाँ धनी तथा शौकीन महिलायें अपने शरीर को सुगन्धित रखने के लिए इत्र अथवा सुगन्धित तैलो का प्रयाग करती है। इत्र किसी अग विशेष मे नही लगाया जाता। शौकीन स्त्री और पुरुष इत्र मे भीगा हुआ रूई का 'फाहा' अपने कानो मे धारण करते है जिससे उसकी सुगन्ध का अनुभव सदा हाता रहे। कुछ लोग अपने हाथ की तलहथी के ऊपरी भाग मे इत्र लगाते है। स्त्रियाँ अपने कपडो को इत्र से सुवासित कर देती है जिससे वह 'गमकता' रहता है। एक लाक-गीत मे कोई स्त्री अपने पति स इत्र लगाने का आग्रह करती है।[7] इसे भोजपुरी मे 'अत्तर' कहते है जो इत्र का ही विकृत रूप है।



१ का तू अपना हाथ में मेंहदी लगावले बाड़ू।

२ मेंहदी अइसन जियरा हम दूनो जने के।

३ कुल से छूटी, कूट कर पीसी गई।
तब तेरे पद छूने पाई मेंहदी॥
खूनी होते हैं जगत के सब्ज रग।
यह दुहाई दे रही है मेंहदी॥

४ अभिज्ञान शाकुन्तलम् अक ४,

५ पाँइ महावर दैन को नाइनि बैठी आय।
फिरि फिरि जानि महावरी, एड़ी मीजति जाय॥ —बिहारी-रत्नाकर · दोहा ३५

६ गोडवा महावरि लवले, पहिने सबुज रग चुनरिया।
देखें साँवरि अपनी सुरतिया, दरपनवा में॥ —लेखक का निजी सग्रह

७. अपना के लें अइह पिया बेला-चमेली।
हमके ले अइह ऽ हो अतरवा, गमके सारी रात॥ —लेखक का निजी सग्रह

अध्याय ११

भोजपुरी लोक-कला

○○

लोक-कला उतनी ही प्राचीन है जितनी पुरानी मानव सभ्यता। भारतवासियो का जीवन सदा से कलात्मक रहा हे ओर आज भी हे। हमारी प्राचीन ललितकलाएँ तो गौरवशालिनी हे ही, परन्तु आज जन-जीवन मे उपलब्ध लोक-कलाओ का भी कुछ कम महत्त्व नही है। ग्रामीण जन जो भी काय करते है उसे वे कलात्मक रीति से सम्पादित करते हे। घर बनाने से लेकर बालको द्वारा घरौदा बनाने तक मे एक विशेष प्रकार की कला दिखायी पडती है। भोजपुरी लोक-कला को सामान्यतया निम्नाकित श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है —

(१) वास्तुकला	(२) मूर्तिकला
(३) चित्रकला	(४) अल्पना
(५) थापे	(६) गोदना
(७) मेहदी	(८) महावर
(९) मिष्ठान्न	(१०) विविध
(११) गृह-निर्माण	

इन कलाओ का सक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जाता है। इसके साथ ही भोजपुरी लोक-गीतो मे जहाँ इनका उल्लेख हुआ है उसे भी पुष्टि के लिए दिया जाता है।

(१) परिच्छेद

वास्तुकला

भोजपुरी वास्तुकला के अन्तर्गत गृह-निर्माण को प्रमुख स्थान प्राप्त है। भोजपुरी क्षेत्र मे प्राय दो प्रकार के मकान पाये जाते है —(१) कच्चा (२) पक्का। पक्का मकान उसे कहते है जो ईटो से बनाया जाता है। गाँव के धनी तथा समृद्ध व्यक्ति ही पक्के मकानो को बनवाते है। परन्तु अधिकाश ग्रामीणो के मकान प्राय कच्चे होते है। कच्चे मकान को भी दो श्रेणियों मे विभक्त किया जा सकता है —(१) मिट्टी के मकान (२) छप्पर के मकान। मिट्टी से बने हुए मकानो की दीवाले प्राय मोटी होती है और ऊपर से इसे खपडा तथा नरिया से छा दिया जाता है।

निर्माण का प्रकार

नोनिया जाति के लोग मिट्टी के मकानो को बनाने का काय करते है। वे किसी गड्ढे मे से अथवा खेत मे से मिट्टी खोदते है। फिर उसमे पानी मिलाकर उसका बडा-बडा गोला बनाते है जिसे 'लोडया' कहा जाता है। मिट्टी के इन गोल पिण्डो को वे एक-दूसरे के ऊपर रखते चले जाते हे। जब इस दीवाल की ऊँचाई एक हाथ अथवा दो-तीन फीट तक हो जाती है तब उसे सूखने के लिए छोड दिया जाता है। प्रथम बार के इस निर्माण को 'रादा' कहा जाता है। जब दीवाल सूख जाती है तब पुन 'सानी' हुई मिट्टी के गोल पिण्डो (लोइया) को इसके ऊपर रखा जाता है। दीवाल की ऊँचाई दो-तीन फीट हो जाने पर पुन इसे सूखने के लिए छोड दिया जाता है। इस प्रकार से एक रादा के ऊपर मिट्टी का दूसरा 'रादा' रखा जाता है। जब मकान की अभीष्ट ऊँचाई तक दीवाल ऊँची हो जाती है तब फिर उसे कुछ दिनो तक सूखने के लिए छोड दिया जाता है। किसी व्यक्ति की कुदृष्टि के कारण दीवाल गिर न जाय इसलिए इस पर किसी लकडी मे लगाकर लाल मिर्चा गाड दिया जाता है।

सम्पूर्ण दीवाल के पूर्णतया सूख जाने पर इसके ऊपरी भाग का निर्माण प्रारम्भ किया जाता है। सबसे पहिले लम्बाई में स्थित दोनों ओर की दीवालों के मध्य भाग में एक विशाल तथा मोटी लकड़ी स्थापित की जाती है जिसे 'लरही' कहते हैं। इसके पश्चात् लरही से लेकर दीवाल तक बांस के अनेक लम्बे खण्डों को रखा जाता है जिसे 'कोरो' कहा जाता है। इस कोरो के ऊपर बांस का अनेक टुकड़ा में चारों ओर रखते हैं जिसे 'फरठा' की संज्ञा प्राप्त है। इस फरठा के ऊपर पूस या खरई रखा जाता है। इसके ऊपर गीली स्थापित की जाती है। उसके ऊपर खपड़ा और इसके पश्चात् 'नरिया' स्थापित किया जाता है। इस प्रकार मिट्टी का कच्चा मकान बनकर तैयार हो जाता है। दीवाल के ऊपर रखे गये 'कोरो' के 'सपोट' (सहायता) के लिए दीवाल के बाहरी भाग में काठ की बनी घोड़े की आकृति वाली लकड़ियां लगायी जाती हैं जिन्हें घोड़मुहा कहा जाता है। मकान के ऊपरी भाग का बरसात का पानी जहाँ से नीचे गिरता है उस अन्तिम भाग को 'ओरी' कहते हैं। मकान के सबसे ऊंचे भाग को 'बड़ेरी' की संज्ञा प्राप्त है। बड़ेरी का पानी ओरी से होकर नीचे गिरता है। इसीलिए किसी प्रतिकूल कार्य करने की उपमा 'ओरी के पानी बड़ेरी जाला' से दी जाती है। ओरी के पास एक लम्बी नक्काशीदार लकड़ी सुन्दरता के लिए लगा दी जाती है जो 'मुहब्बत' के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ लोग ओरी के पास साधारण नरिया न लगाकर एक ऐसे नरिया को लगाते हैं जिनके अग्रभाग में गोली आकृति बनी रहती है। इसे लोग 'चुनिया' कहते हैं। इसका प्रयोजन केवल सौन्दर्य प्रदान करना है। गृह-निर्माण का कार्य समाप्त हो जाने पर इसके सर्वोपरि भाग (बड़ेरी) के ऊपर मिट्टी की बनी कुछ बड़ी-बड़ी नारी आकृति वाली वस्तुएं स्थापित की जाती हैं अन्त में घर में निवास करने के लिए आने के पहिले 'गृहप्रवेश' नामक वास्तु संस्कार किया जाता है। इस पूजा के पश्चात् गृह निवास के उपयुक्त माना जाता है।

कमरों की संख्या

भोजपुरी मकानों की विशेषता यह है कि एक घर में केवल एक ही दरवाजा होता है। यह दरवाजा अपेक्षाकृत छोटा तथा नीचा होता है जिसमें प्रवेश करते समय सिर को झुकाना पड़ता है। भोजपुरी घरों में खिड़की, जिसे झरोखा कहते हैं, का नितान्त अभाव पाया जाता है। वायु तथा प्रकाश के लिए केवल दरवाजा ही पर्याप्त समझा जाता है। परन्तु आजकल के बने पक्के मकानों में खिड़कियों को स्थान दिया जाने लगा है।

भोजपुरी प्रदेश में पर्दे की प्रथा के कारण स्त्रियां तथा पुरुषों के आवास स्थान अलग-अलग होते हैं। घर के आगे पुरुषों के रहने के लिए 'ओसारा' बनाया जाता है जिसे ढाबा अथवा बरामदा भी कहते हैं। धनी तथा समृद्ध व्यक्ति के घर के आगे एक बहुत बड़ा 'हाल' बनाते हैं जिसे 'दालान' की संज्ञा प्राप्त है। इस दालान के आगे ओसारा होता है जिसके दोनों ओर दो कोठरियाँ बनी होती हैं। इस दालान में होली के अवसर पर नाच-गान होता है, 'गवनई' होती है और गाँव में आयी हुई बारात ठहरायी जाती है। गाँवों में दालान का होना प्रतिष्ठा का विषय समझा जाता है। अतः उस व्यक्ति को 'दालानवाले बाबू साहब अथवा बाबा जी' कहकर सम्बोधित किया जाता है।

भोजपुरी गृहों में एक कमरा सोने के लिए होता है जहाँ सभी स्त्रियां साथ में सोती हैं। जो नव विवाहिता वधू है वह दूसरे कक्ष में सोती है जहाँ उसका पति रात को चोर की भाँति उसके पास आता है। तीसरा कक्ष रसोईघर होता है जहाँ स्त्रियाँ चूल्हे में लकड़ी जलाकर रसोई बनाती हैं। इस घर को दो भागों में विभक्त किया जाता है, बीच में एक छोटी-सी दीवाल खड़ी कर दी जाती है जिसे 'पाख' कहा जाता है। रसोई बनाकर उसे पुरुषों को खाने के लिए परोसकर नव-बहू इसी 'पाख' के पास बैठी रहती है जिससे उसे पुरुष न देख सकें। रसोईघर में जहाँ चूल्हा रखा जाता है उसे 'चुन्हानी' कहते हैं।

रसोईघर के अतिरिक्त एक 'जाँतघर' होता है जहाँ गेहूं पीसने के लिए जाँत घर में गाड़ा गया रहता है। घर की स्त्रियां यहीं बैठकर जाँत पीसती हैं। इसी घर में ओखरि और मूसल भी रखा रहता है जहाँ हाथ में मूसल लेकर स्त्रियां चावल या दाल छाँटती हैं। कहीं-कहीं घर के भीतर भी ओसारा होता है। भोजपुरी गृहों की रचना प्रायः चौकोर होती है। बीच में खुला आँगन होता है और उसके चारों ओर घर बने रहते हैं। इसी आँगन में बैठकर स्त्रियाँ नहाती-धोती हैं।

छप्पर का घर

दूसरे प्रकार का मकान छप्पर का बना हुआ होता है। इसकी दीवालें अरहर के पौधा—जिसे 'रहरठा' कहा

जाता है—से बनी हुई होती है। छप्पर के घरो को बनाने की प्रक्रिया निम्नांकित है। लकडी के उन मोटे खम्भो को जो छप्पर-रूपी छत को सँभाले रहते हे 'खम्भा' कहते हे। यदि छप्पर भारी हो तो उसको नीचे से सहारा देने के लिए छोटी-छोटी लकडियाँ लगा दी जाती हे जो 'थूही' के नाम से प्रसिद्ध है। इन मोटे-मोटे लकडी के खम्भो के ऊपर एक लम्बी मजबूत लकडी अथवा मोटा बास रखा जाता है जिसे 'लरही' की सज्ञा प्राप्त हे। छप्पर के निर्माण के पहिले लम्बे-लम्बे बास के खण्ड जमीन पर रखे जाते है जो 'कोरो' कहलाते ह। इन्ही 'कोरो' पर बाँस को चीरकर उसके लम्बे तथा पतले टुकडो—जो 'बाता' या 'बत्ता' कहा जाता है—को बाँसो पर बिछा दिया जाता हे। इन्ही बता के ऊपर सरकण्डा या खरपत (गह) को बिछा देते हे। जहाँ सरकण्डा प्राप्त नही होता वहाँ उसके छिलके या मूज से काम लिया जाता है। मूज की रस्सी को डोरी कहते है। इसी डोरी की सहायता से सरकण्डे को 'बत्ता' ओर 'कोरो' से कसकर बाध देते हे। इस प्रकार से जब छप्पर बाध-छानकर जमीन पर तैयार हो जाता हे तब उसे कई लोगो की सहायता से ऊपर उठाकर दोनो खम्भो के ऊपर स्थित लरही के ऊपर स्थापित कर दिया जाता हे। इस छप्पर को दोनो ओर थोडा झुका देते है जिससे बरसात का पानी छप्पर पर से फिसलकर जमीन पर गिर जाय। परन्तु जब छप्पर का बना मकान बनाना अभीष्ट होता है तब उपयुक्त पद्धति से दो छप्परो को पृथक-पृथक बनाया जाता हे। इनमे से प्रत्येक छप्पर को 'पल्ला' कहते हे। फिर दोनो पल्लो को दोनो ओर से उसी लरही पर स्थापित किया जाता है। ये दोनो पल्ले खिसककर कही गिर न जायें इसलिए उनके ऊपरी भाग को मोटी रस्सियो से आपस मे बाँध देते है। जब छप्पर के ये पल्ले बहुत भारी होते है तब उनकी स्थिति को दृढ बनाये रखने के लिए सहारे की लकडी लगायी जाती है जिसे टेक, ठेगुनी या 'थून्ही' की सज्ञा दी गयी है। दोनो पल्लो को कसकर मजबूती के साथ बाँधे रखने के लिए उनमे छोटी तथा आडी लकडियाँ लगायी जाती है जिसे 'कैंची' कहते ह। छप्पर का वह अन्तिम भाग जहा से वर्षा का पानी चू-चूकर जमीन पर गिरता है 'ओरी' कहलाता हे। जनपदीय भाषा मे इस प्रकार से बनाये गये छप्पर को 'पलानी' के नाम से अभिहित किया जाता हे। इसमे एक छोटा-सा दरवाजा लगा दिया जाता है। परन्तु कुछ लोग अरहर का बना बेडा दरवाजे के स्थान पर लगा देते हे।

(२) परिच्छेद

मूर्तिकला

गाँवो मे ग्रामीण कलाकार मूर्तियो के निर्माण मे निपुण दिखायी पडता है। इन मूर्तियो को साधारणतया चार श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है—

(१) प्रस्तर की मूर्तियाँ (२) काष्ठमयी मूर्तियाँ (३) मृण्मयी मूर्तिया (४) धातुमयी मूर्तियाँ।

लोक-गीतो मे पत्थर के बने देवस्थान तथा पाषाणमयी मूर्तियो का उल्लेख पाया जाता है। ग्रामीण कलाकार पत्थर के द्वारा शिवलिङ्ग का निर्माण करते है। वे अपनी छेनी के द्वारा हनुमान् की विशाल पाषाणमयी प्रतिमा को भी बनाते है।

काठ की बनी मूर्तियो मे 'जगन्नाथ' जी की गणना की जा सकती है। गाँवो के अशिक्षित कारीगर लकडी के द्वारा छोटे-छोटे पशु और पक्षियो की भी आकृति बनाते है जो देखने मे बडी सुन्दर लगती है। लकडी के विभिन्न प्रकार के खिलौने, द्वार के प्रधान किवाड-पट्टो पर नक्काशी का काम तथा पलँगो पर विभिन्न आकृतियो का निर्माण इनकी काष्ठ शिल्प कला का अलौकिक उदाहरण है।

मिट्टी की मूर्तियो को बनाने मे ग्रामीण कुम्भकार ने परम प्रवीणता प्राप्त की है। प्रतिवर्ष दीवाली के अवसर पर वह गणेश जी, सरस्वती, ब्रह्मा, विष्णु, शिव और हनुमान् की इतनी सुन्दर मूर्तियो का निर्माण करता है कि उनकी सुन्दरता देखते ही बनती हे। इसके अतिरिक्त अनेक राष्टीय, राजनीतिक नेताओ की मूर्तियो को बनाता है जो बडी सजीव दिखायी पडती है। इसके अतिरिक्त मिट्टी के विभिन्न प्रकार के खिलौनो को बनाकर वह बालको के मन का अनुरञ्जन करता है। मिट्टी की ये मूर्तिया दो प्रकार से बनायी जाती है। प्रथम प्रकार तो यह कच्ची मिट्टी की मूर्ति बनाकर उन्हे विभिन्न प्रकार के रगो से सुशोभित किया जाता है। ये मूर्तियाँ अधिक सुन्दर होती है। परन्तु

स्थायित्व नही होती। इनके टूट जाने का भय सदा बना रहता हे। दीवाली के त्यौहार पर जो मूर्तिया बनायी जाती हे वे प्राय ऐसी ही होती हे। कुछ मूर्तियो को बनाकर आग मे पका दिया जाता हे। उससे वे अधिक मजबूत हा जाती हे। बच्चो के खिलोने—जैसे चक्की, जॉत, घिरिहरी, हाथी आर घोडा—प्राय इसी प्रकार से बनाये जाते है।

धातुओ—विशेषकर सोना ओर चादी—पर भी मूर्तियो का उत्कीण किया जाता हे। चचक की अधिष्ठात देवी शीतला की मूर्ति, उनके वाहन —गदहे—के साथ चादी पर उत्कीण कर उसकी पूजा की जाती हे। साने की 'सोत' की मूर्ति बनायी जाती हे जो किसी पुरष की मृत पूव स्त्री की प्रतिकृति होती है। इसी प्रकार तांब क ऊपर अनेक प्रकार के यत्रो को उत्कीण किया जाता हे।

(३) परिच्छेद
चित्रकला

भोजपुरी लोक-गीतो मे चित्रकला की चर्चा अनेकश पायी जाती हे। चतुर चित्रकारो के द्वारा की गयी चित्रकला प्रधानतया दो रूपो मे उपलब्ध होती हे—

(१) भित्ति चित्र (Fresco painting)

(२) पट चित्र (Canvas painting)

इनमे से गॉवो म प्रथम प्रकार की चित्रकला ही अधिक उपलब्ध होती हे। भोजपुरी मे चित्राकन के लिए 'उराहना' शब्द का प्रयोग किया जाता हे। ये घर की दीवारो के भीतरी तथा बाहरी भागो म भी बनाय जात हे।

चित्रकला के उपादान—

भोजपुरी चित्रकला के उपादान है चूना, सिन्दूर, हल्दी का चूण, काजल, गेरू (गैरिक) और चौरठ अर्थात चावल का आटा। सवप्रथम दीवाल पर चूने से सफेदी कर दी जाती है। परन्तु जहाँ चूना उपलब्ध नही हाता वहाँ पीली मिट्टी से दीवाल को पोत दिया जाता है। तत्पश्चात् चौरठ मे पानी और हल्दी का चण मिलाकर उसका लेप तैयार किया जाता है। बाँस की पतली शाखा—जिसे लाक भाषा मे 'कोइनि' कहते है—के अगले भाग का कूच (कूट) कर ब्रश के समान पतला बना लिया जाता है। इसी बाँस के बने ब्रश के द्वारा ग्रामीण स्त्रियाँ चौरठ और हल्दी के मिश्रित लेप से भित्ति पर चित्रकम सम्पादित करती है। जहाँ बाँस के भी ब्रश का अभाव होता है वहाँ तजनी अँगुली ही तूलिका का कार्य करती है। उपर्युक्त लेप के अतिरिक्त चित्रो को बनाने मे काजल, गेरू तथा सिन्दूर का भी यथास्थान प्रयोग किया जाता है। कोहबर के एक गीत मे चावल के आटे से चित्रकम का उल्लेख हुआ है। नवग्रह की वेदिका बनाते समय सफेद रग के लिए गेहूँ का चूण—आटा—,काले रग के लिए लकडी के कोयले का चूरा और लाल रग के लिए ईंट को पीसकर बनाया गया चूर्ण प्रयोग किया जाता है।

स्त्रियाँ विवाह के अवसर पर 'कोहबर' की भीतरी दीवालो पर चित्रकारी करती है। एक गीत मे इस घर की भीत पर चार जोडे चिडियो, एक जोडे हस को चित्रित करने का उल्लेख मिलता है।[१] एक दूसरे गीत मे चन्द्रमा और सूर्य को अकित करने का वणन पाया जाता है।[२] इस गृह मे समधिन के द्वारा बनाये गये सुन्दर भित्ति-चित्रो को देखकर समस्त ससार मोहित हो जाता है। सम्भवत ये चित्र वर वधू के मनोरञ्जन के लिए बनाये जाते है।

इसके अतिरिक्त कोहबर मे कमल का पुष्प, कमल-पत्र, पालकी, घोडा, गोपीचन्द, तारिकाएँ तथा पान का पत्ता भी चित्रित किया जाता है। लोक-मानस हाथी, घोडा और पालकी को वैभव का गोपीचन्द और पतुरी को वर-वधू का, सूय और चन्द्रमा को दीर्घ आयुष्य का, हस और मोर को मागलिक जीवन का तथा पान एव कमल को कला का प्रतीक समझता है। कोहबर मे इन वस्तुओ को चित्रित करने का यही रहस्य है।

१ पानन मोरे बाबा मँडवा छवावेले,
फुलवा के बान्ह बन्हाई।
ताही भीतर बाबा पुतरी उरेहेले,
चार चिरइया जोडी हस रे।

२ कोहबर लिखबि चान रे सुरुजवा,
मँगवा लिखबि गोपीचन्द रे। —डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय-भो० लो० गी० भाग-१।

गृह के प्रधान द्वार की बाहरी दीवालो पर भी ग्रामीण कलाकार अनेक चित्रो का निर्माण कर अपनी तूलिका के सोन्दय को प्रदर्शित करता है। इन द्वारो पर कही तो फाटक के दोनो ओर सिह की आकृतियाँ बनी रहती हैं ओर लट्ठ या बन्दूकधारी पहरेदार की। ये चित्र प्राय गेरू से बनाये जाते ह। कही द्वारो के ऊपरी भाग पर विघ्न-विनाशक गणेश की प्रतिमा उत्कीण की गयी रहती हे।

ग्रामीण कलाकार न तो किसी 'कालेज आफ फाइन आट' का स्नातक होता है आर न तो राज-दरबार का राजकीय चित्रकार। फिर भी वह अपनी स्वाभाविक प्रतिभा के द्वारा इतनी रमणीय कलाकृतियो का निर्माण करता हे जिमे देखकर उमकी तूलिका को बरबस चूम लेने का जी करता हे। तजनी ही उसकी तूलिका है आर ग्रामीण रग ही चित्रकला के उपादान। फिर भी उसकी कलाकृतियाँ अलौकिक होती है।

(४) परिच्छेद

अल्पना

मागलिक अवसरो पर अल्पना बनाने की प्रथा प्रचलित हे। विवाह के अवसर पर जब लडकीवाले के घर बारात आती हे उस समय प्रधान द्वार के आगे 'द्वारपूजा' के लिए अल्पना बनायी जाती है। पहिले द्वार के सामने की जमीन का गोबर और मिट्टी से लीप देते है। यह काम गाव की नाइन करती है। फिर वह गेहूँ के आटे को चुटकी से लेकर जमीन पर गिराती हुई वर्गाकार आकृति बनाती है। वग के ठीक बीच एक गोलाकार रचना तैयार की जाती हे। यही पर कलश की स्थापना की जाती है। तिलक, विवाह, यज्ञोपवीत तथा अन्य मागलिक अवसरो पर अल्पना की विभिन्न 'डिजाइने' बनायी जाती हैं जिन्हे भोजपुरी मे 'चाक पूरना' कहा जाता है। आटे को पानी मे घोलकर इस लेप से 'चौक पूरा' जाता है।

काठ के छोटे-से तख्ते अथवा पीढा पर चावलो को विभिन्न रगो—लाल, पीला, हरा आदि—मे रँगकर बडी सुन्दर अल्पना बनायी जाती है। यह कही वर्गाकार होती है ओर कही गोलाकार। इन रँगे हुए चावलो के काष्ठ-खण्ड पर 'ओऽम्' अथवा स्वस्तिक 卐 की डिजाइने बनायी जाती हे। आजकल 'अल्पना' का फैशन बढता जा रहा है। नयी शिक्षित युवतियाँ विभिन्न रगो से जमीन पर मनोहर अल्पना बनाने मे परम प्रवीण होती है।

थापे

हाथ की अँगुलियो का थापा या ठापा मारकर जो चित्र अकित किया जाता है उसे 'थापा' कहते है। विवाह के समय लडकी के घर जो मण्डप तैयार किया जाता है, उसके बासो को गाडने के पहिले, उन पर उस कुवारी लडकी की पाँचो अँगुलियो का 'थापा' लगाया जाता है, जिसका विवाह होने वाला है। यह 'थापा' चावल को पानी मे पीसकर अथवा आटा को पानी मे घोलकर तैयार किया जाता है। कोहबर की दीवालो पर भी स्त्रियाँ 'थापा' लगाती है। भोजपुरी मण्डल मे कार्तिक के महीने मे कुँवारी लडकियाँ दीवाल पर चिडियाँ 'लगाते' समय उसके आस-पास दीवाल पर थापा भी लगाती है। पवतीय प्रदेश—विशेषकर नैनीताल जिले—मे दीपावली के अवसर पर स्थानीय स्त्रियाँ अपने घर मे लक्ष्मी के प्रवेश के लिए माग बनाती है। यह माग लाल और सफेद रगो को मिलाकर मुट्ठी का थापा लगाकर तैयार किया जाता है जो बडा ही कलात्मक होता है। अल्पना के समधिक प्रचार के कारण थापे की प्रथा का अब ह्रास हो रहा है।

(५) परिच्छेद

मेहदी

सावन के मनभावन मास मे स्त्रियाँ अपने हाथो मे मेहदी लगाती है जिसे 'मेहदी रचना' कहा जाता हे। वे मेहदी के पत्तो को सील पर अच्छी तरह से पीसती ह। फिर उसमे थोडा तेल डाल देती हैं जिससे मेहदी का रग अधिक स्थायी तथा पक्का हो जाता है। वे सीक से अपने हाथो पर इस प्रकार मेहदी लगाती है कि त्रिकोणात्मक, चतुष्कोणात्मक और पचकोणात्मक आकृतियाँ बन जाती ह। जो इन आकृतियो को नही बनाना चाहती वे बराबर दूरी पर मेहदी की बिन्दियो को अपने हाथो मे लगाती है। सूख जाने पर यह मेहदी बूँटीदार छीट की डिजाइन

की तरह सुन्दर लगती है। स्त्रियो के हाथ की मेहदी जब तक सूख नही जाती तब तक वे कोई काम नही करती इसीलिए 'हाथ मे मेहदी लगाना' हिन्दी मे एक मुहावरे के रूप मे प्रचलित हो गया है जिसका अर्थ है कोई काम नही करना।

आजकल मेहदी के द्वारा अपने हाथ पर स्वस्तिक 卐 तथा ओऽम् की डिजाइन भी तैयार करती है। कुछ स्त्रिया आधुनिक राजनैतिक नेताओ का चित्र भी बनाती है। चर्खा कातती हुई बुढिया और गाधीजी का चित्र भी अकित किया जाता है। कहने का आशय यह है कि मेहदी के द्वारा अनेक प्रकार की डिजाइन, नक्काशी, व चित्र तथा विभिन्न प्रकार की आकृतिया अकित की जाती है।

महावर

मागलिक अवसरो पर स्त्रिया अपने पैरो मे महावर लगाती है जिसे भोजपुरी मे 'गोड रगना' कहा जाता है। यह प्रथा अत्यन्त प्राचीन ज्ञात होती है। महाकवि कालिदास ने अपने सुप्रसिद्ध नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तल' मे इसका उल्लेख किया है। सस्कृत मे इसे आलक्तक कहा जाता है।

महावर पैर के ऊपरी भाग मे लगाया जाता है। गाव की चतुर नाइन वहू के पैर मे महावर लगाते समय प्राय चतुष्कोणात्मक अथवा वर्गाकार आकृति बनाती है। कभी-कभी कमल जैसी आकृति का निर्माण किया जाता है। पैरो मे स्वस्तिक का चिह्न नही बनाया जाता है क्योकि यह प्रतीक पवित्र समझा जाता है।

गोदना

भोजपुरी क्षेत्र मे विवाह के पश्चात् प्रत्येक स्त्री के लिए गोदना गोदाना अत्यन्त आवश्यक समझा जाता है। स्त्रियो मे यह धारणा प्रचलित है कि ऐसा न करने से अगले जन्म मे हिन्दू परिवार मे जन्म नही होता। आजकल गोदना के कार्य को सम्पादित करने के लिए अनेक यन्त्रो का आविष्कार हो गया है जिसके द्वारा गोदवाने पर तनिक भी कष्ट नही होता। परन्तु गावो मे यह कार्य आज भी अनेक सुइयो को एक साथ बाधकर किया जाता है जो बडा ही कष्टदायक होता है।

गावो मे गोदना का कार्य नेटुआ नामक जाति की स्त्री करती है। वह धतूर के दूध मे काजल मिलाकर काला रग तैयार करती है और उसमे अपनी सुइयो को डुबाकर नयी वधुओ के कोमल बाहो मे अपनी सुइयो को चुभाती है। इनके दुख को कम करने के लिए वह गाना भी गाती जाती है।

इन गोदनो की आकृतियाँ विभिन्न प्रकार की होती है। कोई वर्गाकार बनाये जाते है तो कोई आयताकार, कोई गोले होते है तो कोई त्रिभुजाकार। चतुर गोदना गोदनेवाली गोदना के द्वारा अनेक पशुओ, पक्षियो तथा विभिन्न प्रकार के फूल-पत्तियो को बाँहो पर 'उकेरती' है। एक विरहा मे शरीर के विभिन्न अगो मे गोदना के द्वारा उसी प्रकार चित्र बनाने का उल्लेख पाया जाता है जैसे रँगरेज चूनरी रँगता है।[1]

मिष्ठान्न

ग्रामीण कलाकार मिष्ठान्न बनाते समय भी अपनी कला का प्रदर्शन करने मे नही चूकता। वह अनेक आकृतियो के मिष्ठान्न को तैयार करता है। मिठाइयाँ कोई गोली होती है तो कोई चपटी। कोई आयताकार होती है कोई वर्गाकार। मोतीचूर का लड्डू गोला होता है परन्तु बालूशाही की आकृति चपटी होती है। बरफी प्राय आयताकार बनायी जाती है तो देहाती खुरमा नामक मिठाई वर्गाकार होती है। गुलाबजामुन एक इच लम्बी होती है जिसमे मोटाई तो अवश्य पायी जाती है परन्तु चौडाई का स्थान बहुत कम होता है। जलेबी और अमिरिती दोनो की आकृति गोली और चपटी होती है फिर भी दोनो की बनावट मे थोडा अन्तर होता है। अमिरिती का मध्य भाग खाली रहता है परन्तु इसके अन्तिम भाग अर्थात् परिधि के ऊपर गोली-गोली आकृतियाँ बनायी जाती है। परन्तु जलेबी मे सर्वत्र गोली आकृतियाँ बनी रहती है। बडी और भारी जलेबी को जलेबा कहते है। जलेबी और जलेबा के स्वरूप मे ही पार्थक्य पाया जाता है। काशी मे बनायी जानेवाली राष्ट्रीय बरफी मे राष्ट्रीय झण्डे की तरह तीन

---

१ अइसन गोदना गोदु रे गोदनरिया,
जइसन चूनरी रँगेला रँगरेज।'

होते हैं जो उसके विभिन्न स्तरो मे दृष्टिगोचर होता है। भोजपुरी मिठाई टिकरी जहाँ गोली होती है वहा 'गुरा' चिपटा होता हे जिसके ऊपरी भाग पर तीन अँगुलियो के चिह्न बनाये गये रहते हैं।

चारपाई बुनना

चारपाई के बुनने मे भी लोक-कला परिलक्षित होती हे। साधारणतया चारपाई मूज की रस्सी—जिसे बध कहते हैं—से बुनी जाती है। कुछ लोग धान के पुआल की रस्सी बनाकर चारपाई बुनते हे। परन्तु धनी लोग इस कार्य के लिए 'सुतली' का प्रयोग करते है जो पटुआ अथवा सन से बनायी जाती है। सुतली के द्वारा चारपाई बुनने की कला अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची हुई दिखायी पडती है। इसके बुनने के विभिन्न प्रकार है जिन्हे चार-बधिया, छव-बधिया, अठ-बधिया और बारह-बधिया कहा जाता है। चतुर चारपाई बुननेवाले सुतली के द्वारा इस प्रकार की बुनाई करते हैं जिससे चारपाई मे अनेक प्रकार के फूल ओर पत्तियाँ अकित या उत्कीर्ण हो जाती है। कृष्णबान नामक चारपाई उसे कहते हे जिसमे चारपाई के बुनने पर सर्प की आकृति परिलक्षित होने लगती है। लोगो का ऐसा विश्वास हे कि ऐसी चारपाई पर सर्प नही चढ सकता। कुछ चारपाइयो की बुनावट मे सैकडो आयताकार आकृतियाँ निकल आती हे। परन्तु नेवार के द्वारा चारपाई के बुनने के प्रचार से यह कला अब नष्ट होती जा रही हे।

लोक-कला का क्षेत्र अत्यत व्यापक है। जन-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे इसका दर्शन पाया जाता हे। ग्रामीण जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नही हे जो लोक-कला से अछूता हो।

(६) परिच्छेद

गृह-निर्माण

भोजपुरी लोगो की गृह-रचना उनके स्वभाव की ही भाँति सीधी-सादी होती हे। इस क्षेत्र मे प्राय चार प्रकार के मकान पाये जाते है—

(१) सिरकी के घर (२) छप्पर के घर (३) मिट्टी के घर और (४) पक्के मकान।

(१) सिरकी के घर

भोजपुरी क्षेत्र मे निवास करनेवाली खानाबदोश जातियाँ—जैसे नेटुआ, मुसहर आदि—अपने निवास-स्थान का निर्माण सिरकी के द्वारा किया करती है। ये सिरकी की बनी चटायी को अपने घर की दीवाल के रूप मे प्रयोग मे लाते है और उसी से उस घर के ऊपरी भाग को आच्छादित कर देते है जिससे आतप, वर्षा और शीत से वे अपनी रक्षा कर सके। चूँकि सिरकी चिकनी होती है अत वर्षा का जल जब उस पर गिरता है तो वह फिसलकर नीचे गिर पडता हे। इस प्रकार ये लोग वर्षा से अपनी रक्षा करने मे समर्थ होते है। ये घर चार-पाँच फीट से ऊँचे नही होते। ये अपने वस्त्रो, दही-दूध और भोजन की सामग्री को सिकहर (छीका) पर चढाकर रख देते है जिससे कोई जानवर इनके घर मे प्रवेश कर इन्हे नष्ट न कर दे। इनके छोटे से घर मे कोई दरवाजा नही होता अत ये लोग कपडा 'तान' (फैला) कर शीत से अपने को बचाते है। नेटुआ लोग प्राय किसी बाग-बगीचे मे अपना घर बनाते हैं अत इस प्रकार प्रकृति के प्रकोपो से वे अपनी रक्षा के साथ ही वृक्षो की शाखाओ का उपयोग 'वारड्रोब' के रूप मे किया करते हे।

नेटुआ लोगो का सिरकी का बना हुआ यह घर प्राय ८ फीट लम्बा, ६ फीट चौडा और ४ या ५ फीट ऊँचा होता हे। इसमे केवल एक या दो से अधिक चारपाइयाँ नही रखी जा सकती। अत इस परिवार के अन्य सदस्य प्राय जमीन पर ही सोते है। सिरकी के इन घरो को बनाने मे एक-दो घण्टे से अधिक समय नही लगता। इसी कारण ये लोग जब चाहे तब अपना घर समेटकर, उसे उठाकर, दूसरे स्थान को लेकर चले जाते है। सिरकी का मकान होने के कारण इन्हे अपनी यायावरी वृत्ति मे किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नही होती। ये जब चाहे तब 'ले लुगरिया, चल डुमरिया' की उक्ति को चरितार्थ करते है। नेटुओ के इस घर मे केवल एक ही कक्ष या कमरा होता है। इसी सकुचित स्थान मे माता, पिता, लडके, लडकियाँ सभी एक साथ निवास करते है।

(२) छप्पर के घर

साधारण वित्त के मनुष्य छप्पर का मकान बनाकर उसमे निवास करते है। जो लोग नदियो के किनारे रहते है जहाँ प्रतिवर्ष बाढ आने की आशका बनी रहती है, वे अपना मकान प्राय छप्पर का ही बनाते है। इन मकानो की दीवाल 'अरहर' के ठट्टर की बनायी जाती है।[1] उसे मजबूत करने के लिए मिट्टी का मोटा लेप लगा दिया जाता है जिससे वह मिट्टी की दीवाल के समान दिखायी पडती है। अरहर की दीवालो की मोटाई छह सात इञ्च से अधिक नही होती परन्तु मिट्टी का लेप लग जाने के कारण बाहर की ठण्डी हवा उसमे प्रवेश नही कर सकती।

ग्रामीण किसान फूस के छप्पर से इन घरो को छा देता है जिससे वर्षा और शीत से उनकी रक्षा होती है। ये छप्पर 'रबई' (कास) नामक घास से बनाये जाते है। रबई को जमीन पर बिछा देते है और इनके नीचे और ऊपर बास की 'फरठी' को रखकर उसे 'बाधी'—जो मूज की बनी होती है—से अच्छी तरह से बाध देते है। अरहर की बनी दीवालो के ऊपर मोटे तथा मजबूत बास की एक 'धरनि' बाँधी जाती है। इसी 'धरनि' पर इस छप्पर के मध्य भाग को स्थापित कर उसे दोनो ओर झुका दिया जाता है। इस प्रकार छप्पर का घर तैयार कर बनाया जाता है। छप्पर के घरो को बनाने मे अरहर और रबई की ही केवल आवश्यकता होती है। ये दोनो ही वस्तुएँ किसान के खेतो मे उपलब्ध होती है। अत छप्पर का घर बनाने मे विशेष धन की आवश्यकता नही होती।

छप्पर के मकान मे प्राय दो-तीन कमरो से अधिक स्थान नही होता। गरीब किसान उसी सकुचित स्थान मे अपने परिवार के साथ रहते हुए अपने जीवन के दिनो को काटता है। वह एक घर मे रहता और दूसरे घर मे रसोई बनाता है। यही उसका 'किचन' और 'स्टोर रूम' है। घर के आगे वह मिट्टी का एक ऊचा चबूतरा बनाकर उस पर एक 'पलानी' डाल देता है। यही उसका 'बैठका' है। इस प्रकार किसान का छप्पर का घर ही उसका राजमहल है।

छप्परो के घरो की विशेषता यह है कि इनका निर्माण अल्प धन से ही किया जा सकता है। अत किसान प्रति दूसरे या तीसरे छप्पर के पुराने पडने पर उसे बदलकर मकान का नवीनीकरण कर देता है। दूसरी विशेषता यह है कि बाढ के आने पर भी छप्पर का मकान जल-प्लावन के कारण धाराशायी नही होता। बाढ का पानी अरहर की ठट्टर की बनी दीवालो को छेदकर घर मे प्रवेश अवश्य कर सकता है परन्तु बाढ के कम हो जाने पर वह पानी उसी रास्ते से चला जाता है। इस प्रकार घर सुरक्षित रहता है। मिट्टी की दीवाल होने पर बाढ के कारण मकान के गिरने की आशका बनी रहती है परन्तु छप्पर के घर मे इस बात का तनिक भी भय नही होता। यदि कदाचित् कोई मकान गिर भी गया तो उसका निर्माण, बिना किसी विशेष द्रव्य व्यय किये ही, किया जा सकता है। इसी कारण इस प्रकार के मकान किसानो के लिए बडे ही उपयोगी है।

(३) मिट्टी के घर

गाँवो मे प्राय मिट्टी के ही मकान पाये जाते है। किसान लोग अपने खेत की मिट्टी से इन मकानो को बनवाते है अत यह बहुत ही सस्ता पडता है। मिट्टी का मकान बनाने का व्यवसाय करनेवाली जाति को 'नोनिया' कहा जाता है। जब किसी किसान को मिट्टी का मकान बनवाना होता है तब वह नोनिया को बुलाता है। नोनिया लोग मिट्टी को पानी मे सानकर उससे गोल-गोल पिण्ड बनाते है जिसे लोदा या धाधा कहा जाता है। इन लोदाओ को एक के ऊपर एक रखकर पहिले लगभग दो या तीन फीट ऊँची दीवाल बनायी जाती है। जब यह मिट्टी सूख जाती है तब फिर उसके ऊपर तीन फीट ऊँची दीवाल बनायी जाती है। इस प्रक्रिया को 'रादा देना' कहते है। प्रथम रादा के सूख जाने पर ही उसके ऊपर दूसरा 'रादा' स्थापित किया जाता है। अन्यथा मिट्टी के कच्ची रहने पर दीवाल के गिरने का भय बना रहता है। इस प्रकार एक के ऊपर दूसरा 'रादा' रखते हुए दीवाल को अभिलषित ऊँचाई तक तैयार किया जाता है। दीवालो के पूर्णतया बन जाने पर इसके ऊपर एक लम्बा और मोटा काष्ठ-खण्ड रखा जाता है जिसे 'बल्ली' या 'लरही' कहते है। इस बल्ली के 'सपोट' करने के लिए उसके नीचे 'धरनि' लगायी जाती है जो बल्ली को सहारा देती है। धारण करने के कारण ही उसको 'धरनि' कहा जाता है। लरही से दीवाल तक बाँस के अनेक लम्बे टुकडो को स्थापित करते है जो 'कारो' के नाम से प्रसिद्ध है। इन 'कारो' के ऊपर बाँस को चीरकर उनकी पतली 'बत्तियाँ' बनाकर बिछा दी जाती है जो 'फरठी' कही जाती है। इसी 'फरठी' के ऊपर मिट्टी का लोदा रखा जाता है। घर के निर्माण बढई के द्वारा लरही, धरनि, कोरो, फरठी आदि को यथास्थान स्थापित

१ 'अरहर की टट्टी, गुजराती ताला' इस लोकोक्ति मे इसी की ओर सकेत किया गया है।

करने की प्रक्रिया को 'तारन' कहते है। इसके पश्चात् मिट्टी के ऊपर 'खपडा' और उसके ऊपर 'नरिया' को रखा जाता है जो 'छाजन' के नाम से अभिहित किया जाता है। इस प्रकार 'तारन' और 'छाजन' के समाप्त होने पर गृह-निर्माण का काय पूरा समझा जाता है। धनी वग के लोग अपने मकानो की सुन्दरता के लिए 'ओरी' की ओर 'नरिया' के स्थान पर 'चुकिया' भी लगवाते है जो आकृति मे गोली होने के कारण देखने मे सुन्दर होती है। इस प्रकार वह घर के सौन्दय मे चार चाद लगा देती है। 'ओरी' के नीचे काठ का एक लम्बा टुकडा—जिसकी चौडाई छ इच से अधिक नही होती—लगाया जाता है जिसमे पशु-पक्षियो की आकृतियाँ उत्कीण की गयी रहती है। इस काष्ठखण्ड को 'मुहब्बत' कहते है।

धनी तथा उच्चवग के लोग अपने मकान के ऊपरी भाग मे ओरी के नीचे 'घोडमुहा' भी लगाते है जिसका एकमात्र उद्देश्य भवन की सौदय-वृद्धि करना है। इस काष्ठखण्ड पर, सम्भवत अतीत काल मे, घोडे के मुह की आकृति उत्कीण की जाती थी अत यह 'घोडमुहा' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। घर की 'बडेरी' पर मिट्टी की बनी हुई हाथी या घोडे की आकृति स्थापित की जाती है। इसका उद्देश्य भी केवल शोभा मात्र ही समझना चाहिए। इस प्रकार मिट्टी के बने हुए मकानो—जिन्हे कच्चा मकान कहा जाता है—मे मिट्टी, लकडी और थोडा लोहा का ही विशेष प्रयोग होता है।

मिट्टी के बने मकानो मे प्राय चार या पाँच कमरे होते है जिसमे शयन गृह, रसोई घर, भाण्डार आदि आवश्यक है। घर के आगे पुरुषो के बैठने के लिए एक बरामदा बना रहता है जिसको 'बैठका' कहते है। उस बैठका के पीछे एक विशाल प्रशाल होता है जो 'दालान' कहा जाता है। गाँव मे साधारण लोगो के घरो मे दालान और बैठका नही होता। केवल धनी लोग ही इसका निर्माण करते है। इसलिए जब किसी निधन व्यक्ति के घर बारात आती है तो उसका 'जनवासा' इसी दालान मे रखा जाता है। तिलक अथवा गवना के समय अधिक व्यक्तियो के आने पर उनको भी इसी प्रशाल (हाल) मे ठहराया जाता है। निधन लोग अपने गाय और बैलो को खुले मैदान अथवा किसी पेड की छाया म बाँधकर रखते है। परन्तु धनी लोग इन पशुओ को रखने के लिए छप्पर का घर बनाते है जो 'बथानि' कही जाती है। इसे सार घर भी कहते है।

किसानो के खेत, गाँव से दूर होते है। अत प्रत्येक दिन वहा जाना सम्भव नही होता। इस कारण गाँव से दूर, जहाँ खेत अधिक है, वहा धनी लोग एक छोटा-सा मकान बना लेते है। इस स्थान पर उनके नौकर-चाकर तथा बैल भी रहते है। गाँव से कुछ दूरी पर, खेत मे बने हुए ऐसे मकान को 'डेरा' कहा जाता है। यह सज्ञा उन निवास-स्थानो के लिए भी प्रयुक्त की जाती है, जो अस्थायी है। इस पर घर और डेरा मे थोडा अन्तर है। स्थायी निवास-स्थान घर कहलाता है, परन्तु अस्थायी घर को 'डेरा' का अभिधान दिया जाता है।

(४) पक्का मकान

मिट्टी से बने हुए मकानो को गाँवो मे कच्चा मकान कहा जाता है, परन्तु ईंट के मकानो को 'पक्का मकान' की सज्ञा दी जाती है। पक्का मकान का निर्माण ईटो के द्वारा किया जाता है। इसमे मिट्टी का गारा लगाकर ईटो की जोडाई की जाती है। कुछ लोग 'झाई' अथवा सुर्खी और चूना इस काय के लिए प्रयोग करते है। जब ईटो की दीवाल बनकर तैयार हो जाती है तब छत को पत्थर की पटियो से पाट दिया जाता है। कुछ धनी लोग लोहा और सिमेण्ट को लगाकर छत को बनवाते है जो बहुत ही मजबूत और पक्की होती है। घर की फश तथा छत पर गिट्टी डालकर इसको तैयार किया जाता है। इस प्रकार पक्का मकान के निर्माण मे ईंटा, लोहा, सिमेण्ट तथा चूना का विशेष रूप से प्रयोग होता है। जहाँ कच्चे मकानो मे आम की लकडी से घर का दरवाजा बनाया जाता है वहाँ पक्के मकान मे शीशम और साखू की लकडी इस काम के लिए उपयोग मे लायी जाती है। गावो के पक्के या कच्चे मकान प्राय आयताकार बनाये जाते है जिनमे लम्बाई अधिक और चौडाई कम होती है। 'सूयवेध' न हो, इसका भी ध्यान रखा जाता है।

गाँवो के मकानो मे चाहे वे पक्के हो या कच्चे—शौचालय के लिए कोई स्थान नही होता। अत सभी लोगो को इस कार्य के लिए मैदान मे जाना पडता है। पक्के मकान देखने मे सुन्दर भले ही लगे, परन्तु कच्चे मकान गर्मी मे बडे ठण्डे रहते है। इसीलिए किसी कवि ने ठीक ही लिखा है कि—

"मिट्टी के घर कितने अच्छे हैं।
लिपे, पुते हैं, स्वच्छ, सुघर है।"



अध्याय ११

लोक-विश्वास

○○

भोजपुरी जनता का जीवन लोक-विश्वास से ओत-प्रोत है। सच तो यह है कि इस क्षेत्र की जनता लोक-विश्वास मे अटूट आस्था रखती है। किसी स्थान के लिए यात्रा करना, किसी नवीन काय या श्रीगणेश करना तथा किसी शुभकाय का सम्पादन करना—ये सभी काय लोगो के विश्वास के अनुसार उचित अवसर तथा शुभमुहूर्त मे ही करने चाहिए। यदि किसी काय को करने मे सफलता की प्राप्ति नही हो सकी तो लोग यह विश्वास करने लगते है कि उसका श्रीगणेश शुभ-मुहूर्त मे नही हुआ था।

लोक-विश्वास को प्रधानतया दो भागो म विभक्त कर सकते है—(१) शकुन तथा (२) अपशकुन। यदि किसी काय मे शुभशकुन दिखायी पडता है तो उसम सफलता निश्चित होती है। परन्तु अपशकुन म ठीक इसके विपरीत होता है। इसी विषय का वणन यहा प्रस्तुत किया जाता है

(१) परिच्छेद

शकुन तथा अपशकुन

शकुन

भोजपुरी जनजीवन मे लोक-विश्वास का बडा महत्त्व है। सच तो यह है कि सामान्य जनता का जीवन लोक-विश्वासो पर ही आश्रित होता है। इसी के द्वारा उनके अनेक क्रिया-कलाप परिचालित होते है। शिष्ट और सभ्य कहा जाने वाला मानव-समुदाय जिन बातो को ढोग, आडम्बर तथा अन्धपरम्परा के नाम से अभिहित करता है वे ही साधारण जनता के दैनिक जीवन मे पथ-प्रदशन के लिए आलोक-स्तम्भ है।

शकुन का अथ तथा उसके भेद

शकुन सस्कृत भाषा का शब्द है जिसका अर्थ पक्षी होता है। प्राचीनकाल मे पक्षियो के रूप, रग, आकृति स्थान विशेष मे उनके बैठने की अवस्था, उनके उडने, फुदकने, कलरव अथवा ककश शब्द करने एव किसी व्यक्ति के बाये या दाये उनकी स्थिति के कारण शुभ अथवा अशुभ कार्यो का निर्णय किया जाता था। पुरातन काल की जनता अपने जीवन के सतत सहचर इन पक्षियो की गति-विधि से ही अपने विभिन्न क्रिया-कलापो के शुभ अथवा अशुभ होने का ज्ञान प्राप्त किया करती थी। शकुन अथवा पक्षियो के सम्बन्ध मे लोक-विश्वासो का जो समुदाय कालक्रम से एकत्रित होता गया वही कालान्तर मे 'शकुनशास्त्र' के नाम से अभिहित किया जाने लगा। क्रमश इस शास्त्र मे पक्षियो के अतिरिक्त पशुओ और जलचरो —विशेषकर मछली—से सम्बन्धित विश्वासो को भी स्थान दिया जाने लगा। इस प्रकार से शकुनशास्त्र की परिधि का प्रचुर विस्तार हो गया। आजकल 'शकुन-शास्त्र' का अभिप्राय उन समस्त लोक-विश्वासो के समुदाय से है जो नभचर (पक्षियो), थलचर (पशुओ) तथा जलचर (मछली) के सम्बन्ध मे लोक-जीवन मे प्रतिष्ठित है।

श्रेणी-विभाग—शकुनो को प्रधानतया निम्नाकित छ श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है—

(१) ग्रह तथा उपग्रहो से सम्बन्धित शकुन
(२) प्राकृतिक तत्वो से सम्बन्धित शकुन
(३) पशु, पक्षियो आदि की गति-विधियो से सम्बन्धित शकुन
(४) शारीरिक लक्षणो से सम्बन्धित शकुन
(५) स्वप्न सम्बन्धी शकुन
(६) विविध शकुन

अन्तिम वग मे उन शकुनो का समावेश किया जा सकता है जो इन उपर्युक्त पाँच वर्गों के अन्तर्गत समाविष्ट नही हो सकते।

(१) अनुच्छेद---नभचर सम्बन्धी लोक-विश्वास

अनन्त आकाश मे स्वच्छन्द विचरण करने वाले अनेक पक्षी ह, जिनके सम्बन्ध मे अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हे। इन पक्षियो के दशन, पखो का फडफडाना, कलरव तथा विशेष स्थिति मे बैठने की अवस्था से अनेक शुभ तथा अशुभ शकुनो का अनुमान किया जा सकता है।

(१) **कौआ**---पक्षियो मे कौआ यद्यपि बडा ही काला-कलूटा जीव है परन्तु अनेक लोक-विश्वासो का समुदाय इसके व्यक्तित्व से जुडा हुआ है। कोआ भोजपुरी स्त्रियो का प्रिय पक्षी है जो उनके प्राणप्यारे प्रियतम की सूचना देता है। यदि कौआ घर के मुंडेरे पर आकर कॉव-कॉव करने लगता है तो यह समझा जाता है कि किसी प्रिय व्यक्ति का आगमन होनेवाला है। यदि किसी कारण से प्रियतम सशरीर नही आ सका तो उसके कुशल-क्षेम का सूचक पत्र तो अवश्य ही आता है। भोजपुरी मे काग के बोलने को "कउवा का उचरना" कहा जाता है। अत जब कोई कौआ मुडेरे पर बैठकर बोलने लगता है तब भोजपुरी स्त्रियाँ कहती है कि "ए कउवा उचरऽऽ, बबुआ के बाबू जी आवत होइहे त हम तोहरा के दूध भात खिआइबि"। इसे कोरी प्रतिज्ञा ही नही समझनी चाहिए बल्कि अपने प्रियतम के आने पर भोजपुरी स्त्रिया वास्तव मे कौए को कटोरे मे दूध-भात रखकर उसे खिलाती है। हिन्दी साहित्य मे ऐसे लोक-विश्वास प्रचुर परिमाण मे पाये जाते है जिनमे कोई विरहिणी कौए के बोलने से पति के आगमन पर उसे दूध-भात खिलाती है और कोई उसकी चोच को सोने से मढाने के लिए आश्वासन देती है। विद्यापति ने इसी लोक-विश्वास का निम्नाकित पक्तियो मे अत्यन्त सुन्दर रीति से वणन किया हे।

"मोरे रे आँगानवाँ चनन के री गँछिया
ताहि चढि कुररे काग रे।
सोने के चोच मढ़इबो तोहि कागा,
जो पिया आवहु आजु रे॥"

सस्कृत साहित्य मे भी कौए के बोलने को शुभ माना गया है। कोई राजस्थानी विरहिणी कहती है कि जैसे कौए ने अपनी मधुर वाणी से प्रियतम के आने की सूचना दी और जिस ऊँट ने अपनी पीठपर स्थापित करके मेरे प्रियतम को घर पहुँचा दिया तो हे सखि! तुम्ही बतलाओ कि इन दोनो मे पहिले मै किसकी पूजा करूँ कौए की अथवा ऊँट की?

"आयान सूचितो येन, येनानीतश्च मे प्रिय।
प्रथम सखि! क पूज्य, काक किंवा क्रमेलक॥"

इन पक्तियो के लिखने का आशय केवल इतना ही है कि कौआ केवल भोजपुरी स्त्रियो का ही प्रिय पक्षी नही है बल्कि मरुभूमि मे निवास करने वाली मारवाडी स्त्रियाँ भी इसे समान आदर प्रदान करती है। यह हिन्दी के कवियो तथा सस्कृत के सूक्तिकारो का समान रूप से वण्य-विषय है।

(२) **नीलकण्ठ**---इस पक्षी के गले का रग नीला होता है अत इसे 'नीलकण्ठ' कहा जाता है। इसीलिए यह शिव का प्रतीक माना जाता है। आश्विन शुक्ल दशमी---जो दशहरा के नाम से अधिक प्रसिद्ध है---के दिन इस पक्षी का दर्शन अत्यन्त शुभ माना जाता है। अत बहेलिए इस पक्षी को पकडकर घर-घर घूमते हुए जनता को इसका दशन कराते फिरते है। इसी विशिष्ट दिन को ही इसका दशन शुभ क्यो है यह कहना कठिन है। परन्तु लोक मे इसी दिन ही इसके दशन का महत्त्व माना जाता है।

(३) **खजन**---इस पक्षी को भोजपुरी मे 'खडलिच' कहा जाता है। सामान्य रूप मे भी इसका दर्शन शुभ है परन्तु यदि गोबर के ऊपर सप अपना फन फैलाकर बैठा है और उस फन के ऊपर यदि खजन स्थित हो तो यह दर्शन अत्यन्त मगलदायक है। लोगो का विश्वास है कि ऐसे दृश्य को देखने वाले व्यक्ति की कुण्डली मे राजयोग होता है फलस्वरूप उसे कालान्तर मे राज्य की प्राप्ति होती है।

महाकवि जायसी ने भी इस लोक-विश्वास की पुष्टि की है। उन्होने पद्मावत मे लिखा है कि यदि सप अपने मुख मे कमल को ग्रहण किये हो और खजन उसके सिर पर बैठा हो तो इस दृश्य को देखने वाले को सिहासन, छत्र आर राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

"पन्नग मुख पकज गहे,
खजन तहाँ बईठ।
छात सिहासन, राजधन,
ता कहँ होई जो डीठ।"

सस्कृत साहित्य से अनेक उदाहरण देकर इस विश्वास का समथन किया जा सकता है।

(४) **गृद्ध**—इसे लोक-भाषा मे गीध की सज्ञा प्राप्त है। इसकी आकृति बडी भयानक होती हे। यह मास खानेवाला पक्षी हे। अत इसे बडी घृणा की दृष्टि से देखा जाता हे। यदि गीध किसी मकान के मुँडेर पर बैठ जाय तो यह बडा अशुभ माना जाता है। लोगो का विश्वास है कि यह मृत्यु का सूचक है। अत ऐसे घर को छोड देना चाहिए।

गीध की दृष्टि दूर तक देखने वाली होती है। इसीलिए निरीक्षण शक्ति से सम्पन्न व्यक्ति को 'गद्धदृष्टि' कहा जाता है। गोस्वामी जी ने भी 'गीधहि दष्टि अपार' लिखकर इसी तथ्य का प्रतिपादन किया है।

(५) **कबूतर**—यह बडा ही सुन्दर तथा शुभ पक्षी है। इसकी गर्दन कबुरित होने के कारण रमणीक होती हे। यह बडा 'कामी' पक्षी हे। महाकवि बिहारी ने 'मदा परेई सग' लिखकर इसी सत्य का प्रतिपादन किया है। अनक लोग अपने घर के ऊपरी भाग मे कबूतरो के निवास के लिए मचान बना देते है और उन्हे प्रतिदिन दाना चुगाते है।

कबूतर आजकल शान्ति का प्रतीक माना जाता है। भारतीय गणतन्त्र के दिन २६ जनवरी को प्रति वष अनेक कबूतर आकाश मे उडाकर ससार मे शान्ति-स्थापना की कामना की जाती है।

(६) **उल्लू**—इसे सस्कृत मे उलूक की सज्ञा प्राप्त है। यह पक्षी जडता, मखता, आलसता और उद्यमहीनता का परम प्रतीक स्वीकार किया गया है। जिन व्यक्तियो की आई क्यू० (उपलब्धि) बहुत ही कम होती है उन्हे 'उल्लू' की उपाधि से विभूषित किया जाता है। उल्लू का दूसरा अभिधान घुघ्घ भी है। इसे घोघा भी कहते है। अत जो लोग बुद्धि से हीन है उन्हे 'घोघा बसन्त' के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

जहाँ नीलकण्ठ का दशन शुभ है वहाँ 'उल्लू महाशय' का कही भी दिखायी पड जाना अमगल का कारण माना जाता है। यात्रा पर इस पक्षी का दशन अत्यन्त अशुभ है।

उल्लू को दिन मे नही दिखायी देता। सभवत उसकी निबल आँखे सूर्य की प्रखर ज्योति को नही सह सकती। इसीलिए केवल रात्रि मे अपने घोसले अथवा निवास-स्थान से बाहर निकलता है। पाश्चात्य देशो मे यह ज्ञान का प्रतीक माना जाता है। इसीलिए दशनशास्त्र की पुस्तको के मुख पृष्ठ पर उल्लू का चित्र दिखायी पडता है। परन्तु इस देश मे यह जडता तथा मूर्खता की साक्षात् मूर्ति है। अत यह घृणा की दृष्टि से देखा जाता है।

(७) **मयूर**—इसे भोजपुरी मे मोर कहा जाता है। इस पक्षी का रूप, रग तथा इसकी आकृति बडी सुन्दर होती है। इसके पखो—जिसे 'पिच्छ' कहा जाता है—पर चन्द्रमा की आकृति बनी रहती है जो अत्यन्त रमणीय दिखायी पडती है। इस पक्षी की अतिशय सुन्दरता तथा मनोरमता के कारण ही इसे भारत का राष्ट्रीय पक्षी स्वीकार किया गया है। यात्रा के समय मोर का दशन शुभ माना जाता है। इसका नृत्य मनोरम होने के साथ ही भावी वर्षा के आगम की सूचना देता है। इसकी बोली बडी मधुर होती है जिसे 'केका' कहते है।

(८) **क्षेमकरी**—इसे 'सोन चिडिया' या शकुन चिरैया भी कहा जाता है। क्षेमकरी शब्द का अर्थ है क्षेम अर्थात् कल्याण करने वाली। महाकवि जायसी ने इसे 'आकाश की धोबिन' के नाम से अभिहित किया है।[1] यात्रा के समय बाये भाग मे क्षेमकरी पक्षी का दिखायी पडना शुभ माना जाता है। दुर्गा सप्तशती मे इस पक्षी का मार्ग मे रक्षा करनेवाली के रूप मे उल्लेख हुआ है।[2] गोस्वामी तुलसीदास ने "क्षेमकरी कह छेम बिसेखी" लिखकर मगलसूचक पक्षी के रूप मे इसका वणन किया है।[3]

---

१ बाएँ अकाशी धोबिन आयी।
पद्मावत १३५।६।

२ पन्थान सुपथा रक्षेत्
मार्गं क्षेमरी तथा।
दु० स०—देवी कवच श्लो० ४१।

३ रा० च० मा० (बा० का०) दोहा ३०२।

(९) **कुररी**——इसे लोक-भाषा मे टिटिहरी पक्षी कहा जाता है। इसका शरीर छोटा परन्तु चोच अपेक्षाकृत लम्बी होती है। सस्कृत के वसन्तराजीय नामक ग्रन्थ मे लिखा है कि यात्रा के समय इस पक्षी के द्वारा बायी ओर शब्द करना मगलदायक है।

(१०) **गौरया**——यह एक छोटा-सा पक्षी है जो ग्रामीण जनता का बडा ही प्रिय पात्र है। यह गाँव की झोपडी मे अपना घोसला बनाता है तथा किसानो के घर मे परिवार के व्यक्तियो की तरह निवास करता है। यह चावल, गेहूँ, दाल ओर सरसो के दानो को चुगता हे। धार्मिक प्रवृत्ति के लोग इनके निवास के लिए लकडी का छोटा-सा सन्दूकनुमा घर भी बनवा देते है। इस पक्षी का चहचहाना प्रातकाल होने का सूचक है। घर मे इसका रहना शुभ माना जाता है। इसीलिए इसे अन्न के दानो को चुनाकर स्वच्छन्द रूप से घर मे विचरण करने दिया जाता है।

(११) हस——हस सरस्वती का वाहन होने के कारण अत्यन्त पवित्र पक्षी माना जाता है। इसीलिए यात्रा के समय हस का दशन अत्यन्त शुभ हे। महाकवि श्री हष ने भी इस तथ्य का समथन किया है।[1] हस के द्वारा अपने पक्षो को फडफडाना किसी काय की सिद्धि की सूचना देता है।[2] इस प्रकार से हस का दशन तथा उसके द्वारा पखो का फडफडाना दोनो ही शुभ तथा मगलकारक है।

(२) अनुच्छेद——थलचर सम्बन्धी विश्वास

पृथ्वी पर चलने वाले जीवो को थलचर कहा जाता है। परन्तु यहा पर हमारा अभिप्राय केवल पशुओ से है जिनके सम्बन्ध मे अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हे।

(१) **गाय**——गाय के सम्बन्ध मे जितने लोक-विश्वास प्रचलित है उतना सम्भवत किसी भी जानवर के विषय मे नही है। गाय माता के नाम से पुकारी जाती है। 'गो माता' कहने से ही प्रत्येक हिदू श्रद्धा से अवनत हो जाता है। आर्थिक दष्टि से गाय का जो महत्त्व है उससे कही अधिक इसका धार्मिक महत्त्व है।

मत्यु शय्या पर पडे हुए व्यक्ति के द्वारा गाय का दान कराया जाता है। लोगो का ऐसा विश्वास है कि गोदान करने मे मृत्यु के पश्चात् वैतरिणी को पार करते समय इसके द्वारा बडी सहायता मिलती है। प्रेतात्मा गाय की पूँछ पकडकर इस नदी को बडी सरलता से पार कर जाता है। गाय की सेवा-सुश्रूषा करने से पुत्र-रत्न की प्राप्ति होती है। कालिदास ने रघुवश नामक महाकाव्य मे राजा दिलीप के नन्दिनी गाय की सेवा का उल्लेख किया है जिसके फलस्वरूप उन्होने राजा रघु के रूप मे पुत्र को प्राप्त किया।

ग्रहण के अवसर पर अथवा किसी तीर्थ स्थान पर गोदान की परम्परा चिरकाल से चली आती है। प्रत्येक तीथयात्री पवित्र स्थान पर गोदान करना अपना आवश्यक कतव्य समझता है। गाय के विभिन्न अगो मे भिन्न-भिन्न देवताओ का निवास माना जाता है। अत धार्मिक हिन्दू प्रतिदिन प्रातकाल उठकर गाय को प्रणाम करते हैं।

गाय की रक्षा करना प्रत्येक हिन्दू का परम कर्तव्य है। प्राचीन काल मे गाय और ब्राह्मण की रक्षा के प्रयास मे जो व्यक्ति अपने प्राणो को अपित कर देते थे वे सूर्यलोक को भेद करके ब्रह्मलोक को प्राप्त करते थे।[3] गाय का दूध परम-पवित्र माना जाता है। सत्यनारायण की कथा मे अथवा किसी भी मागलिक अवसर पर, भगवान् की पूजा मे चरणामृत बनाने के लिए गाय के दूध का ही उपयोग किया जाता है। मन्दिर मे दीप जलाने के लिए गाय का ही घी प्रयुक्त होता है। अनेक रोगो के लिए गोमूत्र रामबाण ओषधि मानी गयी है। गोबर से लिपे-पुते स्थान को पवित्र माना जाता है। अतएव ऐसे उपयोगी तथा पवित्र पशु की हत्या की गणना पञ्च महापातको मे की जाती है। अन्य पापो से भले ही उद्धार हो जाय परन्तु गोहत्या से कदापि निष्कृति नही हो सकती।

---

१ आह स्म नैवाऽशकुनी भवेन्मे,
भावी प्रियाऽऽवेदक एष हस। — नै० च० सर्ग—

२ अस्तित्व कायसिद्धे स्फुटमथ कथयन्,
पक्षते पक्ष भेदात्। — नै० च०।

३ गवार्थे ब्राह्मणार्थे च प्राणत्याग करोति य।
सूर्यस्य मण्डल भित्वा, ब्रह्मलोक स गच्छति॥

(२) **बैल**—भारतीय कृषकों के जीवन मे यह अत्यन्त उपयोगी पशु माना जाता है। यह ग्रामीणो के खेत को जोतता है। इसी के द्वारा 'दँवरी' करके किसान अन्न की राशि को प्राप्त करता है। यह भारवाही पशु भी है। व्यापारी बैल पर अपना सामान लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाते है। यह बैलगाडी म जोता जाता है। इस प्रकार ग्रामीण कृषको की यातायात समस्या को भी हल करता है। इस प्रकार उपयोगिता की दृष्टि से बैल का कुछ कम महत्त्व नही है।

धर्म के क्षेत्र मे भी बैल का स्थान महत्त्वपूर्ण है। यह शिव जी का वाहन है। अत शिव के मन्दिरो मे यह नन्दी के रूप मे सदा विराजमान रहता है। लोग नन्दी की पूजा करते है। इस पर फल-पुष्प तथा जल चढाते है। अत शिव के वाहन के रूप मे यह जनता का पूजनीय है। किसी धनाढय तथा समृद्ध व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात उसके श्राद्ध के समय 'वृषोत्सर्ग' करने की प्रथा प्रचलित है। साड के बच्चे को लोहे के गर्म सलाका से दागकर उसे स्वतन्त्र चरने के लिए छोड दिया जाता है। लोगो का ऐसा विश्वास है कि प्रेतव्यक्ति की आत्मा इसी सॉड के रूप म सक्रमित हो जाती है। इसलिए ऐसे सॉड को लोग आदर की दृष्टि से देखते है ओर खडी खेती को चरने पर कोई इसे नही मारता है।

(३) **बिल्ली**—यह एक छोटा पालतू जानवर है जो फूहड तथा आलसी भोजपुरी स्त्रियो के घर की दूध और दही को चट कर जाती है। बिल्ली को कुछ लोग शौक से पालते है और उन्हे दूध पिलाते है। कबरित बिल्ली बडी सुन्दर दिखायी पडती है। इसे भोजपुरी मे चितकाबरि अथवा 'चितउर' कहते है। 'चितउर' बिल्ली को जान से मारना अत्यन्त निषिद्ध माना जाता है। लोगो की ऐसी धारणा है कि जब तक मारी गयी बिल्ली के वजन के बराबर सोना दान न किया जाय तब तक इस पाप से मुक्ति नही मिल सकती।

यदि कोई व्यक्ति किसी यात्रा पर जा रहा है और बिल्ली उसका रास्ता 'काट' दे तो यह अशुभ माना जाता है। अत इस दोष के परिहार के लिए यात्री अपनी यात्रा को थोडी देर के लिए स्थगित कर देता है। बिल्ली का रोना अमगल-कारक है। अत रोती हुई बिल्ली को लोग घर से बाहर खदेड देते है। पाश्चात्य देशो मे बिल्ली का रोना अथवा आपस मे लडना-झगडना आगामी वर्षा का सूचक है। अग्रेजी के मुहावरे It is raining cats and dogs मे इसी लोक-विश्वास की ओर सकेत किया गया है।

(४) **गीदड**—यह एक छोटा जानवर है। जो गॉव के बाहर खेतो मे निवास करते है। इसे लोक-भाषा मे 'सियार' की सज्ञा दी गयी है। शाम हो जाने पर प्रदोष के समय यह 'हुँआ हुँआ' की आवाज से ग्रामीण वातावरण को भर देता है। गीदड प्राय उन्ही स्थानो मे अधिकतर बोलते है जहॉ गॉव उजाड होता है। अत **'गीदड बोलना'**, इस मुहावरे का व्यग्यार्थ होता है उस स्थान का उजाड हो जाना। इस कारण से गीदडो का बोलना अशुभ तथा अमगलकारी माना जाता है। बिल्ली की भॉति गीदड के भी द्वारा रास्ता काटना अशुभसूचक है। अत इस दोष के परिहार के लिए यात्रा को थोडी देर के लिए स्थगित कर देना चाहिए। हिन्दी की लोक-कथाओ मे गीदड 'सियरन पाडे' के रूप मे अभिहित किया गया है। यह बहुत ही चतुर, चालाक तथा काइयॉ जानवर माना जाता है जिसकी चालाकी के अनेक उदाहरण पाये जाते है।

सस्कृत मे गीदड की मादा अर्थात् गीदडी को 'शिवा' कहा जाता है। इसकी आवाज गीदड से भी अधिक अशुभ मानी जाती है। किरातार्जुनीयम् के रचयिता ने 'जहासि निद्रा अशिवै शिवारुतै' लिखकर इसी तथ्य की ओर सकेत किया है जहाँ इसकी बोली को 'अशिव' (अमगल) की सज्ञा दी गयी है।

(५) **भैंसा**—यह मृत्यु के देवता यमराज का वाहन है। अत इसे अश्रद्धा तथा निरादर की दृष्टि से देखा जाता है। उत्तर प्रदेश के पहाडी जिलो—विशेषकर नैनीताल तथा अलमोडा मे नन्दाष्टमी उत्सव के अवसर पर तथा विजयदशमी के दिन भैंसा के बलि देने की प्रथा प्रचलित थी जो सभवत अब बन्द हो गयी है। भैंसा मन्दबुद्धि का प्रतीक माना जाता है। किसी व्यक्ति को 'भैंसा' की उपाधि से अलकृत करने का तात्पर्य है उसकी मूर्खता और स्वच्छन्द प्रवृत्ति।

छिपकली का गिरना

छिपकली को सस्कृत मे 'पल्ली' कहते है। अत सस्कृत के बृहत् सहिता आदि ग्रन्थो मे पल्लीपतन के सम्बन्ध म अनेक लोक-विश्वास प्रचलित है। रविवार और मगलवार को छिपकली का शरीर पर गिरना अशुभ माना जाता है। तथा इसके प्रायश्चित्तस्वरूप ब्राह्मणो को नमक दान मे दिया जाता है। इससे अशुभ की शान्ति हो जाती है। घाघ ने इस सम्बन्ध मे कहा है कि—

"सिर पर गिरै राजसुख पावै,
औ ललाट ऐश्वय लियावै।
कण्ठ मिलावै पियको लाई,
कांधे पडे विजय दरसाई।
जुगल कान औ जुगल भुजाहू,
जोधा गिरे होय धन लाहू।
निश्चय पीठि परै सुख पावै,
परे कॉख प्रियबन्धु मिलावै।"

अर्थात् यदि छिपकली सिर पर गिरे तो राज्य का सुख मिलता है, ललाट पर गिरने से ऐश्वय, कन्धे पर गिरने मे विजय, कान ओर भुजा पर गिरने से धन की प्राप्ति, पीठ पर गिरने से सुख और काख पर गिरने से प्रिय व्यक्ति की प्राप्ति होती है। इस प्रकार शरीर के विभिन्न अगो पर छिपकली के गिरने से अनेक प्रकार के शुभ ओर अशुभ फल होते हे।

(३) अनुच्छेद—जलचर सम्बन्धी विश्वास

मछली—जलचरो मे मछली, कछुआ और घडियाल आदि की गणना की जाती है। परन्तु लोक-विश्वास की दृष्टि से मछली का इसमे प्रधान स्थान है। यात्रा के समय मछली का दशन शुभ माना जाता है। इसका कारण सभवत यह है कि मछली भगवान् विष्णु का प्रथम अवतार—मत्स्यावतार है। अतएव दूर की यात्रा पर जानेवाला सभी मछली का दशन अवश्य करता है। महाकवि जायसी राजा रतनसेन की सिंहल यात्रा के समय शुभ वस्तुओ की श्रेणी मे मछली की भी गणना की है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस लोक-विश्वास की पुष्टि की है।

(२) परिच्छेद

आकाशीय पिण्ड सम्बन्धी विश्वास

(१) अनुच्छेद

आकाश मे अनेक ज्योतिष्मान् पिण्ड—जैसे सूय, चन्द्रमा और तारे है जिनके सम्बन्ध मे अनेक लोक-विश्वास साधारण मे प्रचलित है।

(१) **सूर्य**—आकाशीय पिण्डो मे सबसे अधिक प्रकाशमान भगवान् भास्कर अर्थात् सूय हे जिन्हे ग्रामीण जनता 'सुरुज भगवान्' के नाम से स्मरण करती है। प्रात काल मे उठकर उदीयमान सूय को लोग प्रणाम करते है। स्नान तथा पूजा करने के पश्चात् सूर्य को निम्नांकित मत्र से अघ्य दिया जाता है।

**"एहि सूय ! सहस्रांशो, तेजोराशे जगत्पते।
अनुकम्पय मा भक्त्या, गृहाणार्घ्य दिवाकर।"**

परन्तु अशिक्षित स्त्रियाँ सस्कृत के इस श्लोक का शुद्ध रूप से उच्चारण नही कर सकती है अत वे अपनी टूटी-फूटी वाणी से इस श्लोक का निम्नांकित रूप मे उच्चारण करती हैं।

"हे सुरुज सहस्सर नाम,
तेजोरासि जगत्पत्याग।"

सूर्य को अर्घ्य देने के मन्त्र का शुद्ध उच्चारण न कर सकने पर भी उनकी श्रद्धा और भक्ति मे किसी प्रकार की कमी नही रहती। अत 'विश्वास फलदायक' के अनुसार उन्हे सूर्य-पूजा का सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है।

पण्डित लोग प्रात तथा सायकाल मे सन्ध्या करते समय गायत्री के मन्त्र का जप करते हे जो वास्तव मे सावित्री (सूर्य) का ही मन्त्र है। यह गायत्री मन्त्र निम्नलिखित हे।

"ओऽम् भूर्भुव स्व तत्सवितुवरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो न प्रचोदयात।"

अर्थात् भगवान् सूय के उस तेज का हम ध्यान करते है जिससे हमारी बुद्धि तीक्ष्ण हो। उपवीत छात्र के लिए इस मन्त्र का जप करना अत्यन्त आवश्यक है क्योकि इससे उनकी बुद्धि का विकास होता है।

भगवान् सूय का व्रत कल्याण की कामना से किया जाता है। इस दिन व्रती दिनभर उपवास करने के पश्चात रात्रि मे 'अलोना' भोजन करता है। कुष्ठ रोग से पीडित व्यक्ति सूय को प्रतिदिन नियमित रूप से अघ्य प्रदान कर उनकी पूजा करते है। जो लोग चरक (लेको उरमा) रोग से ग्रसित है उनके लिए भी सूय की उपासना लाभदायक मानी जाती है।

(२) **चन्द्रमा**—सूय के पश्चात् चन्द्रमा की पूजा का प्रचार है। लोगो का विश्वास है कि चन्द्रमा की किरणो मे अमृत का गुण विद्यमान है। अत शरद्पूर्णिमा (आश्विन शुक्ल पूर्णिमा) के दिन कुछ लोग खीर (तस्मै) बनाकर उसे छत पर अथवा घर के ऊपरी भाग पर रख देते है। रात भर चन्द्रमा की अमृतमयी किरणे उस खीर को आप्यायित करती है। दूसरे दिन भक्त लोग उस खीर को बडे प्रेम से खाते हे। उनका विश्वास है कि ऐसा करने मे अमरत्व की प्राप्ति होती है।

भाद्रपद मास (भादो) के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को गाँवो मे 'ढेलहूवा चौथ' कहते है। इस दिन रात्रि मे चन्द्रमा का दशन करना निषिद्ध माना जाता है। लोगो की यह धारणा है इस दिन चन्द्रमा के दशन करने वाले व्यक्ति को कोई झूठा कलङ्क लग जाता है। इसलिए सभी लोग इस बात का बडा प्रयास करते है कि आकाश मे चन्द्रमा न दिखायी पडे। परतु कदाचित् वह दिखायी ही पड जाय तो इस दोष का परिहार दूसरो के घर पर ढेला, इट या पत्थर फेकने से हो जाता है। इसीलिए इसे 'ढेलवा चौथ' की सज्ञा प्रदान की गयी है। माघ शुक्ल चतुर्थी को स्त्रियाँ चन्द्रमा का व्रत करती है और रात्रि मे चन्द्रमा को अघ्य देने के बाद भोजन करती है। द्वितीया का चन्द्रमा आकाश मे हँसिया के रूप मे उदय होता है जो अत्यन्त सुदर दिखायी पडता है। दूज के चन्द्रमा को भक्ति के साथ लोग प्रणाम करते है। कालिदास ने भी इस तथ्य का प्रतिपादन 'प्रतिपद चन्द्रमिव प्रजा नृपम्' लिखकर किया है।

(३) **मगल**—नव ग्रहो मे यह बडा ही दुष्ट ग्रह समझा जाता हे। जिस व्यक्ति की कुण्डली म मगल बुरे स्थान मे होता है उसका अमगल होना निश्चित है। अत मगल ग्रह को प्रसन्न करने क लिए अनेक प्रकार क पूजा-पाठ का विधान बतलाया गया है। मगल की शान्ति के लिए लाल वस्त्र, लाल अन्न—जैसे मसूर की दाल, लाल भोजन-जैसे पूआ और रेकुआ आदि तथा अन्य लाल रग की वस्तुएँ ब्राह्मणो को प्रदान की जाती है। इससे मगल देवता प्रसन्न होते है।

जिस कन्या की कुण्डली मे मगल प्रधान स्थान पर स्थित होता है उस कन्या को 'मगली' कहा जाता है। इस कन्या का विवाह केवल 'मगला' वर से ही किया जा सकता है। सामान्य लोगो का यह विश्वास है कि मगली कन्या का विवाह यदि मगला वर से न किया जाय तो उसका फल वैधव्य योग होता है। इसी प्रकार यदि 'मगला वर' का विवाह मगली लडकी से न हो तो उसकी स्त्री की शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है।

(४) **वृहस्पति**—यह ग्रह मगलकारक माना जाता है। जिस व्यक्ति की कुण्डली मे वृहस्पति अपने घर अर्थात् चतुथ स्थान मे होता है वह महान् विद्वान् होता है। वृहस्पति चूँकि विद्या के देवता माने जाते है अत उनकी प्रसन्नता से विद्या की प्राप्ति होती है। इसीलिए इस दिन विद्यारम्भ करना शुभ माना जाता है।

(५) **शुक्र**—यह ग्रह साधारणतया शुभ माना जाता है। गाँवो मे इसे 'सुकवा' कहते है। मगध निवासियो के सम्बन्ध मे यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि—

"मगह के लोग बुड बकवा,
सुकवा के कहे भुड कवा।"

अर्थात् मगह के निवासी अत्यन्त मूर्ख होते है और वे शुक्र (सुकवा) को भृगु (भुडुकवा) के नाम से पुकारते हैं। ग्रामीण लोग आकाश मे शुक्र की स्थिति को देखकर रात्रि मे समय का निर्धारण किया करते हैं। शुक्रतारा अत्यन्त चमकीला और प्रकाशमान् होता है। यह रात्रि के अपर भाग मे आकाश मे दिखायी पडता है। अत इसे पहिचानना कुछ कठिन नही होता।

विवाह के अवसर पर शुक्रोदय होना आवश्यक माना जाता है क्योकि जब शुक्र अस्त हो तब वैवाहिक शुभ काय सम्पन्न नही किये जा सकते। नव विवाहिता बहू जब प्रथम बार अपने मायके जाना चाहती है उस समय शुक्र का सम्मुख (सामने) होना शुभ होने के साथ ही अनिवाय भी है। इस प्रकार विवाह तथा यात्रा के अवसर पर शुक्र की अनुकूलता का विचार निश्चित रूप से किया जाता है।

(६) **शनि**—मगल की ही भाति शनि भी अत्यन्त दुष्ट ग्रह है। जिस व्यक्ति की कुण्डली मे शनि ग्रह खराब होता है उसे जीवन मे बडा ही शारीरिक तथा मानसिक कष्ट उठाना पडता है। अत शनि की पूजा करके उसे प्रसन्न करने की चेष्टा की जाती है। जिस प्रकार मगल की पूजा मे लाल वस्त्रो तथा लाल मिष्ठान्नो को ब्राह्मणो को देना शुभ होता है उसी प्रकार शनि की पूजा मे काला वस्त्र, काला अन्न—जैसे उडद की दाल आदि—तथा काली वस्तु—लोहा आदि का दान देना मगलकारी माना जाता है। इस दिन सरसो के तेल को दान मे देना शुभ फल को देनेवाला होता है। वाराणसी नगरी मे शनिवार के दिन तेल की भिक्षा माँगने वाले 'सनीचर तेल' कहते हुए घूमा करते है जिन्हे लोग बडे प्रेम से तेल दान मे देते है।

काशी मे शनि देवता के अनेक मन्दिर है जहाँ इनकी पूजा शनिवार के दिन बडी विधिपूवक की जाती है। इस दिन इनके मन्दिर मे कडुवा तेल के दीपक जलाये जाते है। शनि की महादशा सोलह वष तक चलती है परन्तु इसकी 'साढसाती' अर्थात् साढे सात वर्षों तक शनि की दशा का होना—बडी ही भयकर होती है। गोस्वामी जी ने कैकेयी को अवध की 'साढ-साती' कहा है। शनि के समान दुष्ट ग्रह दूसरा नही है। इसीलिए सभी लोग इससे डरते है।

(२) अनुच्छेद--तारा

(१) **अगस्त**—यह तारा शरद् ऋतु के प्रारम्भ मे आकाश मे दिखायी पडता है। लोगो का ऐसा विश्वास है कि इसके उदय मे वर्षा का जल सूख जाता है। गोस्वामी तुलसीदास ने इसी तथ्य का उद्घाटन निम्नलिखित पक्तियो मे किया है—

"उदित अगस्त पथ जल सोखा,
जिमि लोभहिं सोखे सतोषा।"

अगस्त्य नामक ऋषि ने समुद्र के जल को अपनी अञ्जुलि (अञ्जलि) मे पीकर उसे सुखा दिया था। सम्भवत इसीलिए अगस्त का नाम जल के सोखने से सम्बन्धित हो गया है।

जब कोई मनुष्य अपनी मात्रा से अधिक भोजन कर लेता है और उसे अपच होने की आशका होती है तब उस अन्न को पचाने के लिए अगस्त्य ऋषि की प्रार्थना निम्नलिखित श्लोक से की जाती है।

"समुद्र शोषितो येन,
स मेऽगस्त्य प्रसीदतु।

इस प्रकार जल का शोषण करने के लिए तथा अन्न को पचाने के लिए अगस्त्य ऋषि का आवाहन किया जाता है।

(२) **ध्रुव तारा**—यह तारा आकाश मे सदा एक ही स्थान पर एक ही दिशा मे उदित होता है। यह आकाश मे सदा अटल (ध्रुव) रूप से विराजमान रहता है इसीलिए इसका नाम ध्रुव पड गया है। लोगो का ऐसा विश्वास है कि यह ध्रुव तारा ध्रुव नामक बालक का प्रतिनिधि है जिसने अपनी कठोर तपस्या तथा त्याग के द्वारा स्वग मे निश्चित स्थान प्राप्त कर लिया था। इसी ध्रुव बालक के नाम के कारण ही 'ध्रुव' शब्द का अर्थ अटल हो गया है।

(३) **सप्तर्षि मण्डल**—रात्रि मे आकाश मे सात तारे एक साथ प्रकाशित दिखायी पडते हैं जिन्हे 'सप्तर्षि मण्डल' कहा जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि तारे सात ऋषियो के प्रतिनिधि है।

सप्तर्षि मण्डल आकाश मे सदा एक ही स्थान मे तथा एक ही रूप मे अवस्थित दिखायी पडते है। अग्रेजी मे इन्हे 'सेवेन बियर्स' कहते है जिसका अर्थ सात-भालू होता है।

(३) अनुच्छेद—नक्षत्र

नक्षत्र—नक्षत्रो की सख्या सत्ताइस मानी जाती है जिनके सम्बन्ध मे अनेक लोक-विश्वास प्रचलित है। इनमे से कुछ नक्षत्र वर्षा तथा कुछ ग्रीष्म के लिए प्रसिद्ध हैं। निम्नाकित दस नक्षत्रो मे वृष्टि-योग माना जाता है अर्थात् जब ये नक्षत्र चढते अर्थात् आते हैं तब अत्यधिक वर्षा होती है—(१) आर्द्रा (२) पुष्य (३) पुनवसु (४) श्लेषा (५) मघा (६) पूर्वा फाल्गुनी (७) उत्तरा (८) चित्रा (९)हस्त और (१०) स्वाति। ये सभी वर्षा के नक्षत्र है। इनमे से प्रत्येक के आग-

मन पर कम या अधिक वर्षा होती है। इनमे भी आर्द्रा और हस्त मे वर्षा का योग विशेष होता है। आर्द्रा-नक्षत्र मे अत्यधिक वर्षा के कारण पृथ्वी आर्द्र अर्थात् गीली हो जाती है। सम्भवत इसीलिए इसका नाम आर्द्रा पड गया है। मघा-नक्षत्र मे वर्षा प्रचुर मात्रा मे होती है। जायसी ने लिखा है कि इस नक्षत्र मे झकारि-झकारि कर वर्षा होती है—"बरसे मघा झकोरि झकोरि"—

> **"बरसे मघा झकोरि-झकोरी,**
> **मोर दुइ नयन चुवें जस ओरी।।"**

हस्त नक्षत्र को गावो मे 'हथिया' कहा जाता है। इस नक्षत्र मे अत्यन्त अधिक वर्षा होती है जिसका क्रम लगातार अनेक दिनो तक चलता रहता है। आज से लगभग चालीस-पचास वर्ष पहिले हथिया के डर के मारे लोग अपने घरो मे दस पन्द्रह दिनो के लिए खाने के लिए अन्न तथा जलाने के लिए ईंधन जमा करके रख लेते थे क्योकि उन्हे सदा यह भय बना रहता था कि हथिया के अनवरत वर्षा के दिनो मे इन वस्तुओ को प्राप्त करना कठिन हो जायेगा। गाँवो मे "हथिया का झपसा" अर्थात् हस्त नक्षत्र की वर्षा प्रसिद्ध है।

जहाँ हथिया वर्षा का नक्षत्र माना जाता है वहाँ मृगशिरा प्रचण्ड गर्मी का नक्षत्र प्रसिद्ध है। मृगशिरा को गाँवो मे 'मगडाह' कहते है। इस शब्द की व्युत्पत्ति के विषय मे कहा जाता है कि चूकि इन दिनो मे भीषण गर्मी के कारण मृग 'डहते' है अर्थात् कष्ट को प्राप्त होते है अतएव इस नक्षत्र को 'मृगडाह' कहते है। मृगशिरा नक्षत्र मे ब्राह्मणो को पूडी और आम का भोजन कराया जाता है। लोगो का ऐसा विश्वास है कि इस नक्षत्र मे ब्राह्मणो को भोजन कराने से प्रचुर वर्षा होती है। मृगशिरा के बाद आर्द्रा नक्षत्र आता है। अत मृगशिरा मे ब्राह्मण भोजन कराने से आर्द्रा मे ब्राह्मणो के आशीर्वाद से अखण्ड वर्षा के कारण पृथ्वी आर्द्र हो जाती है।

रोहिणी नक्षत्र मे वर्षा होने के कारण आम पक जाते है जो बडे ही स्वादिष्ट होते है। इस नक्षत्र मे वर्षा के होने से अन्न प्रचुर मात्रा मे पैदा होता है।

सुप्रसिद्ध लोक-ऋतु विज्ञान-वेत्ता घाघ ने लिखा है कि यदि रोहिणी नक्षत्र मे वर्षा हो और मृगशिरा नक्षत्र मे भीषण गर्मी पडे तो इतना अधिक अन्न उत्पन्न होता है कि कुत्ता भी भात नही खाना चाहता।

> **"रोहिनि बरसे मृग तपे, कुछ-कुछ अद्रा जाय।**
> **कहे घाघ घाघिनि से, स्वान भात ना खाय।।"**

भड्डरी—जो घाघ के समान ही ऋतु-विज्ञान शास्त्री है—का कथन है कि आर्द्रा मे तनिक भी वर्षा न हो और मृग शिरा मे हवा न चले तो एक बूद भी वर्षा आगे होने की सम्भावना नही समझनी चाहिए।

> **"आद्रा तो बरसै नहीं, मृगशिर पौन न जोय।**
> **तौ जानै यो भड्डरी, बरसा बूंद न होय।।"**

इस प्रकार से घाघ और भड्डरी की अनेक कहावते उपलब्ध होती हैं जिनका सम्बन्ध विभिन्न प्रकार के नक्षत्रो से है। ग्रामीण लोग इन्ही लोकोक्तियो के आधार पर अपनी जीवन-चर्या को परिचालित करते हैं। वर्षा होने तथा सूखा पडने का परिज्ञान उन्हे इन्ही के द्वारा होता है।

(४) अनुच्छेद—प्राकृतिक प्रकोप सम्बन्धी विश्वास

प्रकृति भी अपना प्रकोप कभी-कभी प्रकट करती है। कभी प्रचुर वर्षा के द्वारा वह ससार को जलमग्न कर देती है तो कभी अनवरत करकापात से खेतो मे खडी खेती को नष्ट कर देती है। कभी बादलो की गडगडाहट से और बिजली के तड-तडाहट से हृदय मे भय का सचार होता है तो कभी प्रचण्ड आँधी के कारण विशालवृक्ष भी भूमिसात हो जाते है। इस प्रकार आँधी-पानी, वर्षा-बिजली के सम्बन्ध मे अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हो गये हैं। इन्ही विश्वासो के आधार पर ग्रामीण जनता का जीवन परिचालित होता है।

प्राकृतिक प्रकोपो तथा प्रकृति सम्बन्धी स्वरूपो (Phenomenon) को सामान्यतया चार वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है—

(१) बादल (२) वर्षा
(३) बिजली (४) आँधी और बवण्डर

(१) **बादल**—रग-रूप के कारण बादल भी अनेक प्रकार के होते है—जैसे काला, भूरा, सफेद आदि। जो बादल भूरे अथवा सफेद रग के होते है वे अत्यधिक वर्षा के कारण बनते है परन्तु काले बादल केवल लोगो को डरवाते है। वे तनिक भी वर्षा नही करते है। इस सम्बन्ध मे गावो मे यह लोकोक्ति प्रचलित है कि—

"भूरा बादल पानी लावे,
काला बादल जी डरवावे।"

(२) **बिजली**—आकाश मे बिजली का तडतडाना बडा अशुभ है तथा भयकारक माना जाता है। ऐसा समझा जाता है कि जब बिजली अधिक कडकेगी तब वह कही-न कही अवश्य गिरेगी। बिजली का गिरना अत्यन्त अशुभ माना जाता है क्योकि इससे जन ओर धन दोनो की हानि होती है। इसलिए 'बिजली गिरना' हिन्दी मे एक मुहावरा बन गया है जिसका अथ हे अत्यधिक क्षति का होना।

सस्कृत का एक श्लोक प्रचलित तथा प्रसिद्ध है जिसमे विभिन्न रग की बिजली को देखकर अनेक शुभ तथा अशुभ कल्पनाएँ की गयी है—

"वाताय कपिला विद्युत, आतपायाति लोहिनी।
कृष्णा भवति सस्याय दुर्भिक्षाय सिता भवेत्॥"

इसका भाव यह है कि यदि आकाश मे भूरी (कपिल) रग की बिजली चमके तो जोरो की आँधी आती है। यदि लाल रग की बिजली दिखायी पडे तो भीषण गर्मी पडने की सूचना मिलती है। काली बिजली प्रचुर अन्न के पैदा होने की सूचक है तथा यदि सफेद बिजली आकाश मे चमके तो देश मे अकाल की सूचक है। इस प्रकार बिजली के विभिन्न रगो के अनुसार अशुभ तथा शुभ कार्य का अनुमान किया जाता है।

(३) **वर्षा**—यद्यपि एक लोकोक्ति के अनुसार—जिसकी चर्चा अन्यत्र की गयी है—काले बादल केवल भय के कारक होते है और वर्षा नही करते परन्तु ग्रामीण क्षेत्रो मे लोगो की यह दृढ धारणा है कि बादल जितने ही काले होगे उतनी ही अधिक वर्षा होगी। इसीलिए काले बादलो को आकाश मे मडराते हुए देखकर भावी बर्षा की सम्भावना से किसान नाच उठता है।

मघा और हस्त—जिसे जनपदीय भाषा मे हथिया कहा जाता है—ये दोनो ही वर्षा के नक्षत्र है जिनकी चर्चा नक्षत्र वाले प्रकरण मे की जा चुकी है।

वर्षा कराने वाले विविध विधि-विधान

जब वर्षा नही होती तब अनावृष्टि के कारण किसान का हृदय अत्यन्त व्याकुल हो उठता है। वह अकाल की काली आशका से उद्विग्न हो जाता है। ऐसे समय जिस किसी प्रकार से वर्षा हो यही उसका एकमात्र अभीष्ट होता है। इसके लिए पण्डित, पुरोहित और यज्ञ का विधान प्रारम्भ करते है। गीता मे भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि—यज्ञ के धुएँ से बादल बनते है बादलो से वर्षा होती है और इससे अन्न की उत्पत्ति होती है। अत अवर्षण होने पर लोग यज्ञ-यागादि का विधान करते हे।

गाँवो मे वर्षा का योग प्राप्त करने के लिए एक विशेष प्रकार का विधान किया जाता है। उच्च वर्ण—ब्राह्मणो तथा क्षत्रियो की स्त्रियाँ मध्य रात्रि मे पूणतया नगी होकर खेत मे जाकर अपने हाथो से हल चलाती है। सामान्य जनता की यह मान्यता है कि ऐसा करने से वर्षा होती है। इस समय नगी स्त्रिया एक प्रकार का लोक-गीत भी गाती है जिसे "हरफरवरी" कहा जाता है। वर्षा कराने का दूसरा उपाय यह है कि कुल बच्चे घर-घर जाकर जमीन पर लेटते है और 'काला मेघा पानी दे' का रट लगाते हैं। लोग उन बालको के ऊपर पानी फेकते है या डालते हैं। ऐसा करने से वर्षा होती है यह विश्वास है।

(४) आँधी तथा बवण्डर

ग्रीष्म ऋतु मे जब हवा नही चलती और ग्रामीण लोग भीषण गर्मी से उद्विग्न हो जाते है, उस समय गाँव की स्त्रियाँ तथा लडके वायु को प्रेरित करने के लिए निम्नाकित गीत गाते है—

"एक टेंट कपास, बुढिया ले गइल आकास।
भाका बहऽऽबतास, भाका बहऽबतास।"

कुछ लोग हवा शब्द के अक्षरो को उलट कर 'वाह वाह' भी कहते हे जिसका सम्बन्ध वायु के बहने से हे। इन दोनो उपायो के करने से वायु बहने लगती है ऐसा सामान्य जनता का विश्वास हे। यदि वायु चल रही हो ओर उसका प्रचण्ड झोका अभीष्ट न हो तो उसे रोकन के लिए निम्नाकित शब्दावली का प्रयोग किया जाता है—

"अउवे रे अउवे, गउवे रे गउवे।"

लडके इन्हीं शब्दो का उच्चारण बारम्बार करते हे जिससे वायु का प्रचण्ड रूप बहुत कुछ कम हो जाता है।

प्रचण्ड आँधी—जिसे सस्कृत मे झञ्झावात और अग्रेजी मे 'साइक्लोन' कहते है—के चलने से पूव प्रकृति मे बडी निस्तब्धता छा जाती है। प्रकृति के इस पूणतया शान्त रूप को देखकर कुछ लोगो को यह आभास हो जाता है कि 'प्रचण्ड अन्धड' आने वाला है। गाँवो मे ऐसी प्रचण्ड आँधी या अन्धड को 'बुढिया आँधी' कहा जाता है। ऐसी आँधी वृक्षो को उखाड फेकती है तथा छप्पर के झोपडो एव कच्चे मकानो को भूमिसात् कर देती है।

गर्मी के दिनो मे हवा जोरो से गोलाई मे चलती है तथा बीच मे पडन वाली पत्तियो, तृणा तथा रजकणो को उडाती चलती है। इसे बवण्डर कहा जाता है। भोजपुरी मे इसे 'बडेरा' कहते है जो बवण्डर का ही अपभ्रश रूप है। गाँव के लोगो का ऐसा विश्वास हे कि भूतो की प्रेरणा से ही बवण्डर चला करते हे। अत जहाँ बडेरा चलता रहता हे उस स्थान को छोडकर लोग दूर चले जाते हे अन्यथा भूत-या प्रेत योनि से अभिभूत होने की आशका बनी रहती है। सस्कृत मे बवण्डर को 'वात्याचक्र' की सज्ञा प्रदान की गयी है। हिन्दी मे बिना काम के घुमक्कड तथा सचरणशील व्यक्ति को बवण्डर नाम से अभिहित किया जाता है।

(३) परिच्छेद

जलाशय सम्बन्धी विश्वास

(१) अनुच्छेद—नदी सम्बन्धी विश्वास

गगा, यमुना, नमदा तथा कमनासा आदि नदियो के सम्बन्ध मे अनेक प्रकार की मान्यताये जनसाधारण मे प्रचलित है जिनका सक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जाता है—

(१) **गगा**—यह हिन्दुओ की परम पवित्र नदी है। इसमे स्नान करने से शरीर पवित्र हो जाता है। मन को शान्ति मिलती है और मृत्यु के बाद परलोक की प्राप्ति होती है। गगा मे स्नान करने से व्यक्ति को भुक्ति (भोग) और मुक्ति (मोक्ष) दोनो ही प्राप्त होता है। गगा की स्तुति म सस्कृत के किसी कवि ने ठीक ही लिखा है कि—

**"नमामि गगे! तव पादपकजम्,
सुरा सुरैर्वन्दितदिव्यरूपम्।
मुक्तिञ्च भुक्तिञ्च ददासि नित्य,
भावानुसारेण सदा नराणाम्॥"**

गगा मे स्नान करने से तो मुक्ति मिलती ही है परन्तु जो व्यक्ति सौ योजन से भी केवल गगा शब्द का उच्चारण भी करे तो भी उसके पाप नष्ट हो जाते है। गगा के माहात्म्य के सम्बन्ध मे यह श्लोक बडा प्रसिद्ध है—

**"गगा गगेति, यो ब्रूयात्,
योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो,
स्वर्गलोक स गच्छति॥"**

इन कारणो से लोगो की यह दृढ धारणा है कि गगा मे स्नान करने से स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है। कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा के दिन गगा मे स्नान करने का अत्यधिक महत्त्व माना जाता है। इस दिन बिहार मे सोनपुर मे हरिहर क्षेत्र का

उत्तर प्रदेश के बलिया जिले मे ददरी का मेला, मेरठ जिले के गढमुक्तेश्वर मे गगा स्नान का बहुत बडा मेला जुटता है। कार्तिक माघ वाराणसी के पचगगा घाट पर स्नान करने के समधिक माहात्म्य है। इसी प्रकार से माघ-मास मे त्रिवेणी-सगम पर तथा वैसाख-मास मे हरिद्वार मे हर की पैडी पर गगा स्नान की बडी महिमा मानी जाती है। चन्द्रग्रहण तथा सूयग्रहण के अवसर गगा के पावन जल मे स्नान किया जाता है।

मरणासन्न व्यक्ति के मुख मे गगा-जल तथा तुलसीदल दिया जाता है जिससे उसको सद्गति प्राप्त हो सके, सुदूर दक्षिण मे स्थित रामेश्वरम् के मन्दिर मे भगवान् शिव का गगाजल से अभिषेक करना परम् पुण्यकारक माना जाता है। सत्य-नारायण की कथा मे भगवान् के चरणामत मे गगा-जल का डालना पवित्र है। गगा का जल अनेक मासो तक रखे रहने पर भी कीटाणुओ से दूषित नही होता। इस प्रकार धार्मिक तथा आयुर्वेदीय दोनो ही दृष्टियो से गगा का जल परम पावन, पवित्र तथा लाभकारी है।

(२) **यमुना**—गगा के पश्चात दूसरी पावन नदी यमुना, जो साधारणतया यमुना के नाम से पुकारी जाती है। माघ मास मे त्रिवेणी के तट पर यमुना मे स्नान करने का बडा माहात्म्य है। कार्तिक शुक्ल द्वितीया—जिसे यमद्वितीया भी कहा जाता है—के दिन मथुरा के विश्राम घाट पर यमुना मे स्नान करने के लिए भक्तो की भयकर भीड एकत्रित होती है। लोगो का ऐसा विश्वास है कि इस दिन यमुना मे स्नान करने से यम की यातना से मुक्ति मिल जाती है। जो लोग मथुरा नही जा सकते वे प्रयाग मे ही यमुना मे स्नान करते है।

इस सम्बन्ध मे यह कथा प्रचलित है कि सूय के पुत्र यमराज ने अपनी बहिन यमुना से अत्यन्त प्रसन्न होकर उससे वर माँगने के लिए कहा। यमुना ने यह वर मागा कि जो व्यक्ति आज के दिन मेरे पवित्र जल मे स्नान करे वह तुम्हारी (यम की) यातना से मुक्त हो जाय। यमराज ने 'एवमस्तु' कह इसे स्वीकार कर लिया। तभी से यमद्वितीया के दिन यमुना मे स्नान, मुक्ति प्रदान करने वाला माना जाता है।

ब्रजवासी लोग 'यमुना मइया' से बहुत प्रेम करते तथा उनकी महिमा गाते है। वे गगा की अपेक्षा यमुना मे ही स्नान करना अधिक पुण्यदायक मानते है। 'जमुना मइया की जय' यही उनका प्रिय नारा है।

(३) **कर्मनासा**—यह नदी मुगलसराय (उत्तर प्रदेश) के आगे थोडी दूर पर बहती है। यह बिहार और उत्तरप्रदेश सीमा पर प्रवाहित होने के कारण उसकी सीमा का भी निर्धारण करती है। ऐसा कहा जाता है कि कमनाशा नदी आकाश मे अधर रूप मे लटकते हुए त्रिशकु के लार से बनी हुई है। अत इसमे स्नान करना निषिद्ध माना जाता है। सर्वसाधारण जनता की यह दृढ धारणा है कि इसमे स्नान करने से समस्त शुभ कर्मों का नाश हो जाता है। इस प्रकार यह नदी अपने 'कमनाशा' नाम को पूर्णतया चरिताथ करती है।

पण्डित लोग तथा धार्मिकजन इस नदी के जल को स्पश करना भी अपावन समझते हैं। इसलिए इसके घाटो पर न तो स्नानार्थियो की भीड दिखायी पडती है और न पर्वों पर जन समूह।

(४) **सरयू**—भोजपुरी क्षेत्र की यह एक पावन तथा प्रसिद्ध नदी मानी जाती है। यह अयोध्या से बहती हुई आती है और बिहार के सारन जिले मे गगा मे मिल जाती है। अयोध्या मे प्रवाहित होने के कारण यह भगवान् राम की परम प्यारी नदी है। रामनवमी के दिन अयोध्या मे बहुत बडा मेला लगता है। इस दिन सरयू मे स्नान करना परम-पवित्र तथा पुण्यदायक माना जाता है।

इसी सरयू नदी के किनारे निवास करने के कारण कुछ ब्राह्मणो को 'सरयूपारीण' के नाम से अभिहित किया जाता हे जिसका अर्थ है सरयू के पार रहनेवाला व्यक्ति।

भोजपुरी क्षेत्र मे सरयूपारीण ब्राह्मणों की सख्या अत्यधिक है जिन्होंने भोजपुरी लोक-सस्कृति के निर्माण मे समधिक योगदान दिया है। गगा और सरयू इस प्रदेश की दो पवित्र नदियाँ है जिनके कारण इस प्रदेश की भू-समृद्धि होती रही है।

(२) अनुच्छेद

कूप—गाँवो मे कुछ ऐसे कुएँ होते है जिनका जल मीठा होता है। ऐसे कुओ के जल से दाल अच्छी तरह से गलती है। अत मीठे कुओ का बडा महत्त्व माना जाता है। कुछ कुओ का जल रोगनाशक होता है जिससे चमरोग सदा के लिए नष्ट हो जाता है।

वाराणसी नगरी में 'धनवन्तरि कूप' नामक एक सुप्रसिद्ध कुआँ है जिसका जल स्वास्थ्य-वर्धक तथा पाचक एव रोग-विनाशक माना जाता है। लोगो का ऐसा विश्वास है कि इस कूप के जल को पीने से अनेक प्रकार के रोगो का नाश हो जाता

है। अत इस कूप पर लोगो की सदा भीड लगी रहती है। कुछ लोग इस कुएँ के जल को अपने घर ले जाते है और अपने बाल बच्चो को भी पिलाते है।

कुण्ड—कूप के समान ही कुण्ड के जल की भी मान्यता पायी जाती है। वाराणसी नगरी भदैनी मुहल्ले के पास लोलाक नामक एक कुण्ड है जिसे स्थानीय लोग 'लोलारक कुण्ड' के नाम से पुकारते है। इस कुण्ड के विषय मे यह प्रसिद्धि हे कि इसके जल मे कुष्ठ रोग को दूर करने की शक्ति विद्यमान है। अनेक चमरोग भी इसके जल मे अवगाहन करने से नष्ट हो जाते है। इसके साथ ही इस कुण्ड के विषय मे लोगो की यह मान्यता है कि सन्तानहीन स्त्री यदि इस कुण्ड मे स्नान कर ले तो उसे सन्तान की प्राप्ति होती है। अतएव एक विशेष दिन इस कुण्ड मे स्नान करने के लिए स्त्रियो की बडी भीड एकत्र होती है। इस दिन इस कुण्ड मे पेठा (भतुआ) दान करने का बडा माहात्म्य माना जाता हे। स्त्रियाँ इस कुण्ड मे स्नान करके अपनी पुरानी साडी यही छोड देती हे ओर नवीन वस्त्र को धारण करती हे। लोलाककुण्ड मे स्नान करने से अनेक स्त्रियो को पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई है।[1]

(४) परिच्छेद

वनस्पति-जगत् सम्बन्धी विश्वास

वनस्पति जगत् को अनेक श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है यथा—वृक्ष, पौधा, लता, पुष्प, शाक ओर गुल्म तथा तृण। इनमे से कतिपय विशिष्ट वृक्षो तथा पुष्पो का ही यहाँ विवरण प्रस्तुत किया जाता है जिनका सम्बन्ध लोक-विश्वास से प्रचुर मात्रा मे पाया जाता है।

(१) **पीपल**—यह वनस्पति जगत् मे ब्राह्मण वग का वृक्ष माना जाता है, अत परम पवित्र है। इसकी पवित्रता का प्रधान कारण सभवत यह है कि इस वृक्ष के ऊपर ब्रह्मा का निवास रहता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने "अश्वत्थ सववृक्षाणाम्" कहकर इस वृक्ष को अत्यन्त महत्त्व प्रदान किया है। इसकी पवित्रता के ही कारण मन्दिरो के पास पीपल का वृक्ष लगाने की प्रथा है।

इस वृक्ष की डालो का काटना वर्जित है और इसकी लकडी को पूजा के अतिरिक्त अन्य घरेलू कार्यों मे जलाना अत्यन्त निषिद्ध है। लोगो का ऐसा विश्वास है कि इस वृक्ष को काटने से इस पर निवास करने वाले देवताओ को कष्ट होता हे अत कोई भी हिन्दू इसको काटने की हिम्मत नही कर सकता।

भोजपुरी क्षेत्र की स्त्रियाँ सोमवती अमावस्या के दिन स्नान करके वासुदेव के रूप मे इस वृक्ष की पूजा करती है। वे इसकी जड मे जल चढाती है तथा चन्दन, रोरी एव पुष्प से इसकी पूजा करती हैं। वे १०८ बार इस वृक्ष की प्रदक्षिणा करती है तथा प्रत्येक बार इसके चारो ओर सूत लपेटती हैं। जो इसके यज्ञोपवीत का प्रतीक है। कोई बूढ़ी स्त्री इस अवसर पर राजा निकुञ्जलि और उसकी पतिपरायणा स्त्री सत्यवती की कथा को भी सुनाती हैं। इस वृक्ष की पूजा दाम्पत्य प्रेम को बढाने वाली मानी जाती है तथा इससे सन्तान की प्राप्ति भी होती है।

इस क्षेत्र मे किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् दिवगत आत्मा को जल प्रदान करने के लिए इस वृक्ष की शाखा मे एक छोटा-सा कलश बाँध दिया जाता है जिसे 'घण्ट' कहते है। 'दाही' प्रतिदिन इसी घण्ट मे प्रात तथा सायकाल जल डालकर इसे भर देता है।

चूँकि इस वृक्ष की लकडी परम् पवित्र मानी जाती है अत इसका उपयोग मृत व्यक्ति के शव को जलाने के लिए किया जाता है। यज्ञ मे प्रयुक्त की जाने वाली अग्नि को उत्पन्न करने वाली 'अरणी' और होमकम का साधन 'श्रुवा' इसी पवित्र लकडी का बनाया जाता है। इस प्रकार पीपल अत्यन्त पवित्र वृक्ष है जिसका उपयोग केवल धार्मिक कृत्यो के लिए ही किया जाता है।

(२) **बरगद**—बरगद का वृक्ष अपनी विशालता के लिए प्रसिद्ध है। सस्कृत मे इसे न्यग्रोध कहते है। वाल्मीकि-रामायण तथा तुलसीदास कृत मानस मे 'अक्षयवट' का उल्लेख पाया जाता है जिसकी शीतल छाया मे सीता के साथ राम ने विश्राम किया था।

---

१ लेखक एक ऐसी पुत्रहीन स्त्री को जानता है जिसे अनेक वर्षों तक (पुत्रियो के होने पर) पुत्र की प्राप्ति नहीं थी। परन्तु इस कुण्ड मे एक बार स्नान करने के पश्चात् ही उस स्त्री को पुत्र पैदा हुआ। इस प्रकार उसका विश्वास सच निकला।

ऐसी प्रसिद्धि है कि प्रलयकाल मे समस्त ससार के विनष्ट हो जाने पर केवल वट का वृक्ष ही रह जाता है जिसकी पत्तियो पर भगवान कृष्ण अपने बालरूप मे विराजते है।

"हस्तारविन्देन मुखारविन्दे,
पादारविन्द विनिवेशयन्तम्।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयान
बाल मुकुन्द मनसा स्मरामि॥"

इस उपर्युक्त श्लोक मे इसी बालरूप कृष्ण का सुन्दर रीति से वणन किया गया है।

भोजपुरी मण्डल मे इस वृक्ष को पीपल की ही भाँति पवित्र माना गया है। इस वृक्ष की शाखाओ को काटना निषिद्ध है। अपनी विशाल शाखाओ के द्वारा माग का अवरोध करने पर भी इस पर कुल्हाडी चलाने की किसी की हिम्मत नही होती। इसकी पत्तियो का उपयोग पत्तल बनाने के लिए किया जाता है जिसमे भोजन करना पवित्र है। वट-सावित्री व्रत के दिन इसकी पूजा की जाती है जो सौभाग्य का वधक है। इस वृक्ष की शाखाओ से लम्बी-लम्बी जटाये नीचे लटकती रहती है जिन्हे 'बरोही' कहा जाता है। अनेक लोक-कथाएँ इस वृक्ष से सम्बन्धित है।

(३) **गूलर**—इसे सस्कृत मे उदुम्बर कहते है। इस वृक्ष की पत्तियो को तोडने से दूध निकलता है जो बडा गुण-कारी होता है। सम्भवत इसीलिए इसे 'हेमदुग्धा' भी कहा जाता है।

भोजपुरी जनता का यह विश्वास है कि गूलर के फूल—जो प्राय दिखायी नही पडते—को भोज्य पदाथ अथवा धन की राशि मे रख दिया जाय तो उसकी कभी समाप्ति नही हो सकती। इसीलिए जो वस्तु खच करने पर भी कभी नही घटती उसके सम्बन्ध मे यह कहा जाता है कि इसमे गूलर का फूल पड गया है घर के समीप गूलर के वृक्ष को लगाना निषिद्ध है। क्योकि लोगो का यह दृढ विश्वास है कि इसकी छाया से समस्त सचित पुण्य नष्ट हो जाते है। अत धर्मात्मा लोग इसकी छाया से बचकर चलते है। इस वृक्ष का फल मीठा होता है जिसे निर्धन व्यक्ति चुन-चुन कर खाते है। अत भोजपुरी माताएँ अपने उद्दण्ड तथा शरारती पुत्रो को गूलर के वृक्ष की छाया मे बैठकर रोने तथा उसके फल को—जिसे 'गोदा' कहा जाता है—बीन-बीन कर खाने का अभिशाप देती है। उनके शाप का 'मत्र' है—

"पकली गूलर तर बैठि के रोइबे।
अवरू गोदा बिनि-बिनि खइबे॥'

(४) **नीम**—नीम का वृक्ष बहुत ही पवित्र समझा जाता है। शीतला माता चेचक की अधिष्ठातृ देवी मानी जाती है। इनका निवास नीम के वृक्ष पर माना जाता है। लोक-गीतो मे इस विषय का उल्लेख मिलता है। शीतला नीम के पेड पर झूला लगाकर झूलती रहती है। अत शीतला माता का निवास स्थान होने के कारण यह वृक्ष आदर की दृष्टि से देखा जाता है।

जो व्यक्ति चेचक के रोग से पीडित होता है उसकी चारपाई पर नीम की पत्तियो को बिछाकर उसे सुलाते है। इस वृक्ष की पत्तियो से युक्त टहनियो से रोगी को पखा झला जाता है। चेचक मे नीम की पत्तियो का विभिन्न रूप मे प्रयोग किया जाता है। माली शीतला माता का भक्त है। अत उसे बुलाकर इस देवी की पूजा करायी जाती है जिससे यह रोग शीघ्र शान्त हो जाय। नीम का फल रोगी के पास रखा जाता है जिसकी सुगन्ध इस रोग मे हितकर मानी जाती है।

नीम का सम्बन्ध सर्प से भी है। लोगो का यह साधारण विश्वास है कि यदि कोई मनुष्य बारह वर्षो तक नीम की दातौन करे, इसकी लकडी से पकाये गये अन्न का भोजन करे, इस वृक्ष की वायु का सेवन करे तब सर्प के काटने का उसके ऊपर कोई प्रभाव नही पडता, प्रत्युत इसके विपरीत ऐसे मनुष्य को काटने वाले सप की ही मृत्यु हो जाती है।

नीम भूत भगवान् भी हैं। इसकी पत्तियो का प्रयोग दुष्ट प्रेत आत्माओ को भगाने के लिए किया जाता है। भूत से आविष्ट व्यक्ति को नीम की पत्तियो को जलाकर उसका धुआँ दिया जाता है। इस धुएँ के प्रभाव से भूत शीघ्र ही भाग जाता है। स्त्रियो के सूतिकागृह के मुख्य द्वार पर जलने वाली अँगीठी—जिसे पाँसघि कहते है—मे नीम की पत्तियाँ जलायी जाती हे जिससे कोई दुष्ट आत्मा (Evil spirit) घर मे प्रवेश न कर सके।

किसी मृत व्यक्ति की शवयात्रा से उत्पन्न स्पश दोष को दूर करने के लिए इसकी पत्तियो का प्रयोग किया जाता है। शव यात्रा से लौटकर आने पर प्रत्येक व्यक्ति को नीम की पत्तियाँ चबाने के लिए दी जाती है और इसकी टहनियो से उनके ऊपर जल छिडका जाता है।

जगली जातियो मे इस वृक्ष की पूजा का प्रचार है। उत्तरप्रदेश के डोम नामक जाति नीम वृक्ष को काली का निवास

स्थान मानते है। कुरूमी जाति के लोग इसे काली भवानी का स्थान मानकर इसकी पूजा करते हैं। इस प्रकार नीम का वक्ष आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से तथा धार्मिक दृष्टि से अत्यन्त ही उपयोगी, पवित्र तथा पूजनीय वृक्ष है। वैद्यक शास्त्र मे तुलसी को छोडकर यह सबसे उपयोगी तथा लाभदायक वृक्ष माना जाता है।

(५) **बेल**—लोक भाषा मे इसे 'सिरिफल' कहते है। यह भी पीपल की ही भाति एक पवित्र वृक्ष है। इसकी पत्तियो पर राम नाम लिखकर उन्हे शिव को चढाया जाता है। सामान्य जनता की यह धारणा है कि इन पत्तियो को चढाने से विष-पायी शिव की गर्मी शान्त होती है। शिव का इस वृक्ष से विशेष सम्बन्ध है। इसीलिए उन्हे 'विल्व दण्ड' भी कहा जाता है। इसके फल को भी शिव को अर्पित किया जाता है।

इस वृक्ष की लकडी पवित्र होने के कारण मत-व्यक्ति के शव को जलाने मे प्रयुक्त होती है। यज्ञीय कम मे होम करने के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है। यज्ञीय यूप, वह स्तम्भ जिसमे बाधकर पशु को बलि चढाया जाता है, का निर्माण भी इसकी लकडी से किया जाता है। पवित्रता के कारण इसका प्रयोग ईधन के रूप मे करना निषिद्ध है।

भोजपुरी मण्डल मे अपनी मनोकामना की सिद्धि के लिए स्त्रियाँ बेल-वृक्ष का आलिगन करती है जिसे 'अँकवारि' देना कहा जाता है। पार्थिव पूजा (मिट्टी के द्वारा शिवलिंग बनाना) मे भी बेलपत्र का उपयोग किया जाता है। शिव के भक्त-शैव-लोग अपनी शिखा मे बेल की पत्तियो को बाँधते है।

(६) **तुलसी**—तुलसी का पौधा परम पवित्र माना जाता है। विष्णु की पूजा से इसका घनिष्ट सम्बन्ध है। सस्कृत मे तुलसी को 'हरिप्रिया' कहते है जिसका अथ है विष्णु की प्रेमिका। इसे भूतघ्नी भी कहा जाता है जिससे सहज ही मे अनु-मान किया जा सकता है कि यह भूतो को भगाने वाली भी है। लोगो का विश्वास है कि तुलसी का पौधा जहाँ होता है वहा भूत नही आते। इसलिए इसका भूतघ्नी नाम साथक है।

यो तो तुलसी की पूजा बारहो महीने की जाती है परन्तु कार्तिक मास मे इनकी पूजा का विशेष महत्त्व है। स्त्रिया अपने घरो मे तुलसी का पौधा लगाती है। नित्य-प्रति प्रात तथा साय उसकी पूजा अक्षत, रोरी, पुष्प और नैवेद्य चढाकर करती है। रात्रि मे तुलसी के पास घी का दीपक जलाया जाता है। तुलसी पर गगाजल चढाकर निम्नाकित मत्र का पाठ किया जाता है—

**"करिया तुलसी साँवर बान,
तुलसी लाई सदा फल पाई।
पाँच पदारथ सोना पाई,
तुलसी महरानी एहि जग नाहीं।
जनम-जनम के पाप कटित करीं,
तुलसी महरानी नमो नम ॥"**

तुलसी की पूजा का दूसरा मन्त्र यह है—

**"घट मे तुलसी मुख में राम।
जब भजो तब सीताराम ॥"**

रविवार और मगलवार को तुलसी की पत्तियो को तोडना निषिद्ध है। इसकी पत्तियो को गम जल मे डालकर उबा-लना मना है क्योकि इससे तुलसी की आत्मा को कष्ट पहुँचता है। भक्त लोग भोजन मे तुलसी की पत्तियो को डालकर भगवान् का भोग लगाते है। विवाह आदि भोज के अवसर पर भोजन-पकवान और मिष्ठान्न के भाण्डार मे तुलसी की पत्तियाँ मत्र पढकर डाल दी जाती है। सामान्य जनता की यह धारणा है कि ऐसा करने से भोजन की सामग्री कभी कम नही हो सकती।

तुलसी की पत्तियो को पूजा करते समय शालग्राम के ऊपर चढ़ाते है। यदि ऐसा न किया जाय तो शालग्राम के सिर मे दर्द पैदा हो जाता है। कार्तिक मास देवोत्थान एकादशी के दिन तुलसी का विवाह विष्णु से सम्पादित किया जाता है जिसमे विवाह सम्बन्धी सभी विधिविधान होते है।

मरणासन्न व्यक्ति के मुख मे तुलसीदल और गगाजल डाला जाता है। जनता की धारणा है कि ऐसा करने से मृत आत्मा को सद्गति प्राप्त होती है। इसकी पत्तियाँ अनेक रोगो मे दवा के काम मे लायी जाती है। इसके पौधे मे मच्छरो को नष्ट कर देने का गुण विद्यमान है। अत जहाँ यह पौधा लगाया जाता है वहाँ मच्छर नही रहते। किसी व्यक्ति को शपथ दिलाते समय उसके हाथ मे तुलसी और गगाजल रखा जाता है। इससे वह झूठ नही बोल सकता यह माना जाता है।

(७) **कोहडा**—इसे सस्कृत मे कूष्माण्ड कहते है। भोजपुरी जनता की ऐसी मान्यता है इसके छोटे फल, जिसे 'बतिया' कहा जाता है, को अगुली दिखा देने से वह नष्ट हो जाता है। तुलसीदास जी ने इसी लोक-विश्वास की ओर निम्नाकित पक्तियो मे सकेत किया है—

> **"इहाँ कुम्हड बतिया कोउ नाहीं।**
> **जो तजनी देखि मरि जाहीं।।"**

जब तजनी दिखलाने से कोहडा की 'बतिया' मुर्झाने लगती है तब उसको पुन हरा-भरा बनाने के लिए सुवण के बने गहनो को पानी मे धोकर उस जल को रविवार और मगलवार के दिन इस पौधे की जड मे डाला जाता है।

कोहडा को पुत्र का प्रतीक माना जाता है। अत पुत्रवती स्त्रिया शाक बनाने के लिए इसे स्वय नही फोडती। किसी पुरुष के द्वारा ही इसे फोडने का काय सम्पन्न कराया जाता है। रविवार तथा मगलवार को इसका शाक बनाना निषिद्ध है। यदि किसी कारण से इसका शाक बनाया ही गया तो पुत्रवती इसमे नमक नही डालती। कोहडे का अत्यधिक सख्या मे फलना अपशकुन माना जाता है।

(८) **सतपुतिया**—यह भी एक शाक है जिसे सस्कृत मे 'सप्तपुत्रिका' कहते है। यह शाक सदासमूह(घवदि)मे एक ही साथ फलता है। स्त्रियो व ा ऐसा विश्वास है इस शाक को खाने से सात पुत्रो की उत्पत्ति होती है। आश्विन मास के कृष्ण-पक्ष की सप्तमी के दिन स्त्रिया जिउतिया (जीवित्पुत्रिका) नामक व्रत करती है। इस दिन वे निश्चित रूप से इसी शाक को खाती है। यह व्रत पुत्र की उत्पत्ति तथा उसकी रक्षा के लिए किया जाता है। अत 'जिउतिया' व्रत के अवसर पर 'सतपुतिया' की तरकारी खाना अत्यन्त आवश्यक है।

(९) **नेनुआ**—इसको 'घेवडा' भी कहा जाता है। आश्विन मास के कृष्णपक्ष, जिसे पितृपक्ष भी कहा जाता है, मे इस शाक का खाना निषिद्ध कहा गया है। जो लोग अपने मृत पिता तथा पितरो को इस पक्ष मे जलाञ्जलि देते है, वे इसे बिल्कुल नही खाते। इसीलिए वाराणसी मे यह शाक पितृपक्ष मे बहुत सस्ता बिकता है।

(१०) **कुश**—भोजपुरी मे इसे 'कूस' कहते है। वष मे केवल एक बार केवल कुशोत्पाटिनी एकादशी के दिन पण्डित तथा पुरोहित लोग 'ओऽम् फट स्वाहा' मन्त्र का कहते हुए इसे उखाडते है और सालभर के उपयोग के लिए इसे सचित करके सुरक्षित रूप से रख देते है।

कुश की पवित्रता के कारण इसका उपयोग सभी मागलिक कार्यों मे किया जाता है। विवाह की वेदी के ऊपर कुश बिछाया जाता है जिस पर पूजन का काय सम्पन्न होता है। नवग्रह की पूजा मे इसका प्रयोग होता है। यज्ञोपवीत के अवसर पर ब्रह्मचारी की शिखा को तीन भागो मे विभक्तकर उसमे कुश बाध दिया जाता है। सत्यनारायण की कथा मे कुश की 'पवित्री' बनाकर हाथो मे पहिना जाता है। पूजा मे कुश की आसनी पर बैठकर यह काय सम्पादित किया जाता है।

किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् उसके श्राद्ध के अवसर पर पिण्ड-दान के लिए जो वेदी बनायी जाती है उस पर कुश बिछाते है। मृतात्मा को जलाञ्जलि देते समय हाथ मे कुश, तिल और जल लिया जाता है। यदि कोई मनुष्य परदेश मे मर जाता है और उसका विधिवत् अग्नि सस्कार नही हो पाता तो कुश से उसकी प्रतिमा,जिसे कुशपुत्रिका कहते है, बनाकर उसका दाह-सस्कार सम्पन्न किया जाता है। कुश मे भूत को भगाने वाली शक्ति विद्यमान है। अत भूत से आविष्ट व्यक्ति को ओझा लोग कुश से ही 'झारते' है।

(११) **दूब**—इसे भोजपुरी मे 'दूबि' और सस्कृत मे 'दूर्वा' कहा जाता है। सभी मागलिक कार्यों मे इसका उपयोग किया जाता है। किसी शुभ काय के प्रारम्भ मे जो गणेश-पूजा की जाती है उस समय उनकी प्रतिमा पर दूब चढायी जाती है। कुश के अभाव मे देवताओ का आसन इसी दूब से बनाया जाता है। विवाह करने के लिए जाने वाले वर की धोती मे दूब अक्षत और हलदी बाँध दी जाती है। इसी प्रकार विवाह के पश्चात् ससुराल जाने वाली नव-वधू की 'खोइछा' मे दूब चावल और हलदी रख दी जाती है क्योकि ये तीनो ही मगलकारक है।

दूब सदा हरी-भरी रहती है। ऐसा कहा जाता है कि भगवान् विष्णु ने अमृत का कलश एक स्थान पर रख दिया था कौवे ने आकर उसका कुछ अश जमीन पर गिरा दिया। अमृत के छीटे दूब पर पड गये। इसीलिए यह अजर-अमर बन गयी। और सभी ऋतुओ मे हरी-भरी बनी रहती है। दूब स्त्रियो के सौभाग्य का प्रतीक मानी जाती है। अन्य स्थानो की अपेक्षा कुएँ की 'जगत' पर जमी हुई दूब अधिक पवित्र मानी जाती है। भूतपूर्व बम्बई राज्य (अब महाराष्ट्र) के प्रभु जाति के लोग गभवती स्त्रियो के बाये नाक मे दूब का रस निचोडकर डालने है जिससे गभ की व्यथा कुछ कम हो जाती है।

(५) परिच्छेद

यात्रा सम्बन्धी लोक-विश्वास

(१) अनुच्छेद—यात्रा

भोजपुरी क्षेत्र मे यात्रा के सम्बन्ध मे अनेक लोक-विश्वास प्रचलित है। साधारण जनता किसी दूर स्थान को जाने के पूव दिन का विचार करती है। लोक-विश्वास के अनुसार किसी विशेष दिन को किसी विशेष दिशा मे ही जाना श्रेयस्कर माना जाता है। इसके विपरीत गमन अशुभ तथा हानिप्रद माना जाता है। इस सम्बन्ध मे घाघ ओर भड्डरी की उक्ति प्रसिद्ध है जिसका पालन जनता बडी श्रद्धा से करती हे।

दिशा-शूल—लोक कवि जायसी ने भी पद्‌मावत मे इस तथ्य का प्रतिपादन किया है। उनका कथन है कि—

"सोम, सनिचर पुरुब न चालू, मगल, बुध उत्तर दिसि कालू।
अदित, सूक पच्छिम दिसि राहू, बियफें दखिन लक दिसि दाहू॥"

अर्थात् सोमवार ओर शनिवार को पूव दिशा की ओर यात्रा नही करनी चाहिए। रविवार और शुक्रवार को पश्चिम दिशा मे जाना निषिद्ध है। मगलवार तथा बुधवार को उत्तर दिशा मे जाना मृत्यु का कारण होता है तथा वृहस्पतिवार को दक्षिण दिशा मे जाना दाह अर्थात् नाश करनेवाला है। इसी विषय को निम्नाकित तालिका के द्वारा इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है।

दिन का नाम	यात्रा के लिए निषिद्ध दिशा का नाम
१ सोमवार तथा शनिवार	पूव
२ मगल ओर बुध	उत्तर
३ रविवार और शुक्रवार	पश्चिम
४ वृहस्पतिवार	दक्षिण

इन निषिद्ध दिनो को विभिन्न दिशा मे यात्रा करना 'दिशा-शूल' कहा जाता है जिसका अर्थ है दिशा का काँटा या कष्ट अर्थात् दिशा-शूल मे यात्रा करना विघ्न या कष्टकारक हे।

दिशा-शूल का परिहार

परन्तु यदि किसी आवश्यक काय-वश किसी व्यक्ति को दिशा-शूल मे यात्रा करनी पडे तो दिशा-शूल के परिहार के लिए 'प्रस्थान' रख दिया जाता है। यात्रा के लिए निषिद्ध दिन के पूर्व तिथि यात्रा करने वाले व्यक्ति की कोई वस्तु-पुस्तक, कपडा अथवा आभूषण—किसी परिचित आदमी के घर पर रख दिया जाता है। इस प्रक्रिया को 'प्रस्थान रखना' कहा जाता हे। दूसरे दिन उस वस्तु को लेकर वह व्यक्ति अपनी निर्दिष्ट यात्रा पर चला जाता है। इस विधि से दिशा-शूल का दोष मिट जाता है। अत गाँवो मे प्रस्थान रखना एक सामान्य विधि मानी जाती है।

निषिद्ध दिन को यात्रा करनी यदि आवश्यक ही हो तो कुछ वस्तुओ को खाने या पीने से भी इस दिशा-शूल का दोष परिहार हो जाता हे। इसकी तालिका निम्नलिखित है—

दिन	दिशा-शूल	दिशा-शूल का दोष परिहार
१ रविवार	पश्चिम	घी खाना
२ सोमवार	पूव	दूध पीना
३ मगलवार	उत्तर	गुड खाना
४ बुधवार	उत्तर	तिल खाना
५ वृहस्पतिवार	दक्षिण	दही खाना
६ शुक्रवार	पश्चिम	जव खाना
७ शनिवार	पूर्व	उडद खाना

ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार कुछ दिनो मे विशेष दिशा मे यात्रा करना शुभ तथा श्रेयस्कर माना जाता है। अत श्रेयस्कामी व्यक्ति को निम्न दिनो को ही यात्रा करनी चाहिए—

दिन का नाम	यात्रा के लिए शुभ दिशा
(१) रविवार	पूर्व, उत्तर, दक्षिण
(२) सोमवार	पश्चिम, उत्तर, दक्षिण
(३) मगलवार	पूव, पश्चिम, दक्षिण
(४) बुधवार	पूर्व, पश्चिम, दक्षिण
(५) वृहस्पतिवार	पूर्व, पश्चिम, उत्तर
(६) शुक्रवार	पूव, उत्तर, दक्षिण
(७) शनिवार	पश्चिम, उत्तर, दक्षिण

तिथि-विचार—यात्रा के सम्बन्ध मे तिथियो का भी विचार किया जाता है। घाघ ने इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित तिथियो का उल्लेख किया है—

यात्रा सम्बन्धी विश्वास

ग्रामीण जनता का जीवन अन्ध-विश्वास के ताने-बाने से बुना हुआ है। उन्हे अपने कार्यो परम्परा तथा लोक-विश्वास का सहारा लेकर चलना पडता है। किबहुना यदि स्थान को प्राप्त करना होता है तब इसके लिए भी शुभ दिन तथा दिशा-शूल का विचार करना पडता है। कुछ ऐसे दिन निर्धारित है जिस दिन अमुक दिशा मे यात्रा करना शुभ अथवा अशुभ माना जाता है। उदाहरण के लिए शास्त्रकारो ने रविवार के दिन पूव, उत्तर तथा दक्षिण दिशा की ओर यात्रा करना शुभ माना है। इसी प्रकार से सोमवार को पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशा की यात्रा करनी चाहिए। मगलवार के दिन पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण की यात्रा मगलमय होती है। बुधवार को पूव, दक्षिण की यात्रा करनी चाहिए। इसके साथ ही वृहस्पति-वार को पूव, पश्चिम तथा उत्तर की यात्रा प्रशस्त है। शुक्रवार के दिन पूर्व, उत्तर और दक्षिण की यात्रा शुभकारक मानी जाती है तथा शनिवार के दिन पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशा की ओर प्रशस्त करने से काय की सिद्धि होती है। इस विषय को निम्नाकित तालिका के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। यात्रा के लिए शुभ दिन तथा दिशाये इस प्रकार है—

दिन	दिशा
(१) रविवार	पूर्व, उत्तर, दक्षिण
(२) सोमवार	पश्चिम, उत्तर, दक्षिण
(३) मगलवार	पूव, पश्चिम, दक्षिण
(४) बुधवार	पूव, पश्चिम, दक्षिण
(५) वृहस्पतिवार	पूव, पश्चिम, उत्तर
(६) शुक्रवार	पूव, उत्तर, दक्षिण
(७) शनिवार	पश्चिम, उत्तर, दक्षिण

उपर्युक्त निर्दिष्ट दिनो और तिथियो मे ही यात्रा करनी चाहिए इसके विपरीत यात्रा करने पर 'दिशा-शूल' होता है जिससे काय मे बाधा या विपत्ति उत्पन्न हो जाती है। अतएव दिशा-शूल मे यात्रा कदापि नही करनी चाहिए। किस दिन को किस दिशा मे यात्रा करना निषिद्ध है तथा वह दिशा-शूल माना जाता है उसकी तालिका निम्नलिखित है—

दिन	दिशाशूल
रविवार	पश्चिम दिशा
सोमवार	पूव ,,
मगलवार	उत्तर ,,
बुधवार	उत्तर ,,
वृहस्पतिवार	दक्षिण ,,
शुक्रवार	पश्चिम ,,
शनिवार	पूव ,,

दिशा-शूल तथा उसमे यात्रा करने के दुष्परिणाम के सम्बन्ध मे घाघ की यह लोकोक्ति गावो मे अत्यधिक प्रचलित है। घाघ का कथन है कि—

**"सोम, सनीचर पुरुब न चालू। मगल, बुध उत्तर दिसि कालू।
बियफै दक्खिन करै पयाना। फिर समझौ नहिं ताकौ आना।
बुध कहै मैं बडा सयाना। मोरे दिन जनि करौ पयाना।
कौडी से नहिं भेंट कराऊँ। छेम कुसल से घर पहुँचाऊँ।"**

अर्थात् सोमवार और शनिवार को पूर्व दिशा मे नही जाना चाहिए। मगलवार और बुधवार को उत्तर दिशा मे जाना मृत्यु को निमत्रण देना है। वृहस्पतिवार के दिन जो दक्षिण दिशा मे यात्रा करता है वह फिर लौटकर घर वापस नही आता। बुधवार के दिन यात्रा नही करनी चाहिए क्योकि ऐसा करने से एक कौडी से भेंट नही हो सकती। अर्थात धन की प्राप्ति नही होती।

दिशा-शूल के सम्बन्ध मे एक दूसरी भी कहावत गाँवो मे प्रचलित है जो उपर्युक्त लोकोक्ति से बहुत कुछ मिलती जुलती है।

**"अदित, सूक पच्छिम दिसि राहू।
बियफे दखिन लक दिसि दाहू।।
सोम सनीचर पुरुब न चालू।
मगल, बुध उत्तर दिसि कालू।।"**

इसके अनुसार रविवार और शुक्रवार को पश्चिम दिशा मे जाना कष्टदायक है, वृहस्पतिवार को दक्षिण दिशा मे जाना दाह उत्पन्न करता है, सोमवार तथा शनिवार को पूर्व-दिशा मे जाना निषिद्ध है तथा मगलवार और बुधवार को उत्तर-दिशा मे प्रस्थान करना मृत्यु को निमत्रण देना है।

परन्तु यदि किसी आवश्यक काय-वश दिशा-शूल के दिन प्रस्थान करना ही हो तो इसके लिए भी शास्त्रकारो ने विधान बतलाया है। रविवार के दिन घी खाना, सोमवार को दूध पीना, मगलवार को गुड खाना, बुधवार को तिल, वृहस्पतिवार को दही, शुक्रवार को जौ और शनिवार को उडद खाने से दिशा-शूल का परिहार हो जाता है।

गाँवो मे यह विश्वास दृढ मूल है कि यात्रा के समय खाली घडा या कोई रिक्त पात्र देखने से काय की सिद्धि नही होती। अतएव यात्रा के समय घडा मे पानी भर कर रख दिया जाता है जिससे यात्रा मगलमय हो। इसी प्रकार से प्रस्थान के समय शव को देखना शुभ माना जाता है। इसके विपरीत गेरुआ वस्त्रधारी किसी सन्यासी को देखना अशुभ का सूचक है। मनुष्यो मे तेली अथवा अन्य किसी नीच जाति के व्यक्ति का दर्शन प्रस्थान के समय अमगलकारक होता है। तेली के सम्बन्ध मे यह कथा प्रसिद्ध है कि कोई व्यक्ति यात्रा पर जा रहा था कि उसे कोई तेली दिखायी पडा। लोगो के यह सूचित करने पर कि अब तुम्हारी यात्रा अमगलकारक हो गयी उस व्यक्ति ने उत्तर दिया कि—

"एक ही तेली कहा करिहे,
सौतेली बसे जिसके घर माँही ॥

अर्थात् जिसके घर मे सौतेली (१०० तेली) माता है उसका एक तेली क्या बिगाड सकता है। इस कथा से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यात्रा के समय तेली का दशन अशुभ है।

गावो मे यह प्रथा प्रचलित है कि यदि किसी व्यक्ति को दिशा-शूल के दिन यात्रा करनी आवश्यक हो तो वह उसके एक दिन पहिले अपनी किसी वस्तु, धोती, पुस्तक अथवा यज्ञोपवीत आदि, को दूसरे के घर पर रख देता है। इसे प्रस्थान रखना कहा जाता है। यात्रा करने के पहिले वह प्रस्थान को लेकर अपने गन्तव्य स्थान को चला जाता है। ऐसा करने मे लोगो का विश्वास है कि दिशा-शूल का परिहार हो जाता है।

यात्रा करते समय दही खाकर प्रस्थान करना शुभ माना जाता है। दपण मे मुँह देखकर जाना भी शुभकारक है। कुछ लोग मछली का दशन करना भी मगलकारक मानते है। प्रस्थान के समय किसी का छीकना अशुभ है। यदि कोई व्यक्ति यात्रा पर जा रहा हो तो उसे रोकना अथवा कुछ पूछना निषिद्ध है। यदि जाते समय रास्ते को बिल्ली काट दे अर्थात् सामने से चली जाय तो यह अमगलका क है। अत प्रस्थान करते समय उस व्यक्ति को दपण मे अपना मुँह देखकर तथा दही खाकर प्रस्थान करना चाहिए। यदि जलपूण घडा दिखायी पडे तो यात्रा शुभ तथा काय मे सफलता मिलती है।

(२) अनुच्छेद—स्वप्न-विचार

स्वप्न लोक-विश्वास का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अग है। स्वप्न के द्वारा शुभ अथवा अशुभ शकुनो का विचार किया जाता है। आधुनिक मनोविज्ञानशास्त्रियो ने स्वप्न के सम्बन्ध मे अत्यन्त गहन अध्ययन किया है।

गाँवो मे स्वप्न का बडा विचार किया जाता है। ग्रामीण जनता मे स्वप्न के सम्बन्ध मे यह विश्वास प्रचलित है कि "आपन देखल पराया के होय।" अर्थात् जो स्वप्न अपने प्रति देखा जाता है वह दूसरे लोगो पर जाकर घटता है। स्वप्न मे किसी व्यक्ति की मृत्यु, गृहदाह, उल्कापात, भूकम्प आदि देखना अशुभ माना जाता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित मानस मे त्रिजटा के स्वप्न का उल्लेख किया है। त्रिजटा कहती है कि "मैने स्वप्न मे देखा कि किसी वानर ने लका जला डाली और राक्षसो की सेना का नाश कर दिया। रावण नगा होकर गदहे पर बैठा है। उसका सिर मुण्डित है और बीसो भुजाये खण्डित हो गयी है।" इस स्वप्न का बुरा फल क्या हुआ यह मानस के पाठको से अविदित नही है। गोस्वामी जी लिखते है कि—

"सपने बानर लका जारी।
जातुधान-सेना सब मारी॥
खर-आरूढ़ नगन दससीसा।
मुण्डित सिर, खडित भुजबीसा॥'

दिन मे भी उल्कापात को अशुभ तथा अमगलकारक माना जाता है। लोगो का विश्वास है कि यदि किन्ही भी पाँच फलो का नाम ले लिया जाय तो इस अमगल का परिहार हो जाता है।

(३) अनुच्छेद—दिन सम्बन्धी लोक-विश्वास

विभिन्न दिनो के सम्बन्ध मे भी अनेक लोक-विश्वास प्रचलित है। (१) रविवार—सूय भगवान् का दिन समझा जाता है। इस दिन अनेक भक्तगण सूर्य का व्रत करते है। वे प्रात काल उठकर किसी नदी, तालाब अथवा कूप पर स्नान करके सूय भगवान् को अघ्य देकर उनकी पूजा करते है। इसके पश्चात् वे दिनभर उपवास व्रत करते है। रविवार का व्रत करने वाले व्यक्ति के लिए नमक खाना निषिद्ध है। अत वे सायकाल मे 'अलोना' भोजन ग्रहण करते है।

यदि रविवार को सप्तमी तिथि हो तो वह विशेष माहात्म्य का दिन होता है। मध्याह्न मे आँगन मे जमीन को गोबर से लीपकर सूय की पूजा करे। सूय को सफेद पुष्प चढाने का विधान है।

(२) **सोमवार**—यह चन्द्रमा का दिन माना जाता है। कुछ लोग इस दिन भी उपवास करते है। यह दिन पवित्र माना जाता है।

(३) **मगलवार**—यह दिन भी अत्यन्त पवित्र माना जाता है। इस दिन हनुमान की पूजा का विशेष माहात्म्य है। अत भक्तजन हनुमान का दशन निश्चित रूप से करते है। काशी मे सकटमोचन हनुमान का दशन करने के लिए हजारो

व्यक्तियो की इस दिन भीड एकत्रित होती है। चूकि महावीर जी को 'मोदक प्रिय, मुदमगल दाता' कहा गया हे अत प्रत्येक व्यक्ति आज के दिन बेसन का लड्डू चढाना अपना कतव्य समझता हे। इस प्रकार भक्तो के मोदक से लड्डू का पहाड लग जाता है।

मगलवार का दिन पवित्र होने के कारण किसी भी काय का श्रीगणेश करना शुभ माना जाता हे। इसी प्रकार से किसी काय की इतिश्री भी आज के दिन मगलकारक मानी जाती है। शास्त्रो मे भी कहा गया है कि 'स्थाप्य समाप्य शनि भोमवार।' अर्थात् किसी काम का प्रारम्भ तथा समाप्ति शनि ओर मगल को ही करनी चाहिए।

(४) **बुधवार**—यह दिन खाली (रिक्त) जाना जाता है। इसलिए आज के दिन किसी काय को प्रारम्भ नही किया जाता। लोगो का ऐसा विश्वास है कि आज के दिन प्रारम्भ काय सफलीभूत नही होता।

(५) **वृहस्पतिवार**—वृहस्पति विद्या के देवता माने जाते है। अत आज का यह दिन विद्या आरम्भ करने के लिए बडा शुभ माना जाता है। छोटे बच्चो को जिस दिन विद्यारम्भ कराया जाता हे वह दिन वृहस्पतिवार ही होना चाहिए। अय कोई भी काय इस दिन करना मगलकारक होता है।

(६) **शुक्रवार**—यह दिन सामान्यतया शुभ माना जाता हे।

(७) **शनिवार**—यह शनि देवता का दिन होने के कारण अशुभ माना जाता हे। गाव के लोग शनिवार को नया काम करना शुभ नही मानते परतु शास्त्रो के अनुसार इस दिन किसी काय का प्रारम्भ करना तथा उसकी समाप्ति शुभ है।

(६) परिच्छेद

शरीर के विभिन्न अगो सम्बन्धी लोक-विश्वास

मानव शरीर के विभिन्न अगो के सम्बन्ध मे अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हे। सिर से पैर तक शरीर के जो विभिन्न अवयव है उनके विषय मे सवसाधारण जनता की अनेक मान्यताये हे। जैसे सिर के बालो को काटकर किसी पवित्र स्थान मे उसे विसर्जित करने का विश्वास है उसी प्रकार से पैरा का बडा होना मूखता का द्योतक माना जाता है।

(१) **केश**—सिर के बालो के सम्बन्ध मे अनेक लोक-विश्वास प्रचलित है। बच्चो के बालो को अत्यन्त पवित्र माना जाता है। अत उसे काटना निषिद्ध है। जन्म के प्रथम, तृतीय अथवा पञ्चम वष मे बालक का मुण्डन-सस्कार किसी पवित्र नदी के किनारे तथा तीथ-स्थान मे किया जाता है। मुण्डन-सस्कार के अन्तगत इस विषय का विस्तृत वणन किया जा चुका है। अत उन बालो का यहाँ पुनरुल्लेख केवल पिष्टपेषण मात्र होगा। केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि बच्चो के बालो के पवित्र होने के कारण किसी नदी मे ही प्रवाहित किया जाता है।

तीथ-स्थानो मे सिर के बालो को मुण्डित करना पुण्य का कारण समझा जाता है। अत प्रत्येक तीर्थयात्री काशी, प्रयाग अथवा गया मे अपने बालो को कटवा कर अखण्ड, पुण्य की प्राप्ति करते है। बालो की पवित्रता के ही कारण महापुरुषो के बालो को सुरक्षित रखा जाता है। महात्मा बुद्ध के बालो को स्वणमजूषा मे रखकर उन्हे स्तूपो मे सुरक्षित रखा गया है। साधु और महात्माओ के सिर तथा दाढी के बाल बडे पवित्र माने जाते है। अत भक्तगण इन बालो को बडी श्रद्धा तथा भक्ति से इन्हे अपने पास थाती के रूप मे सँजोए रहते है।

जहाँ केशो को पावन समझा जाता है वहाँ ये भूत-प्रेतो के वाहक भी मान जाते है। किसी मृत व्यक्ति का दाह-सस्कार करने वाला 'दाही' अपने सिर के बालो को मुडा देता है जिससे प्रेतात्मा का घर मे प्रवेश न हो सके। बाल अशौच का भी प्रतीक माना जाता है। इसलिए मृत-व्यक्ति के 'दशाह' के दिन परिवार तथा कुटुम्ब के सभी व्यक्ति अपने सिर, दाढी तथा मूँछ के बालो को मुडवा देते है। उनका यह विश्वास है कि ऐसा करने से अशौच समाप्त हो जाता है तथा मृत की प्रेतात्मा से घर के लोगो को मुक्ति मिल जाती है।

बालो के द्वारा किसी व्यक्ति को अभिभूत भी किया जा सकता है क्योकि ये नीच आत्माओ (Evil spirits) के स्थानान्तरण (Transfer) करने के लिए सबसे उपयुक्त माध्यम है इसलिए यदि कोई व्यक्ति किसी के घर प्रतिदिन जाता है, तथा उसके साथ ही रहना पसन्द करता है तो यह विश्वास किया जाता है कि उक्त व्यक्ति ने उस प्रेमी की चुटिया के बालो को काटकर अपने घर मे काटकर गाड रखा है। आदिम जातियो मे बालो के द्वारा भूत-दूत का आवाहन किया जाता है और किसी व्यक्ति को वश मे करने का यह माध्यम माना जाता है।

खल्वाट होना—जिस व्यक्ति के सिर के बाल झड जाते अर्थात गिर जाते है वह खल्वाट कहा जाता है। ऐसा व्यक्ति कभी निधन नही हो सकता ऐसी लोगो की धारणा है। सस्कृत की एक सूक्ति मे कहा गया है कि—

क्वचित् काण भवेत् साधु,
क्वचित खल्वाट निर्धन ॥

अर्थात् शायद ही कोई काना (एकाक्ष) सज्जन होता है और कदाचित् ही कोई खल्वाट धन से रहित हो। अनुभव के आधार पर भी यह तथ्य सत्य प्रमाणित होता है। प्राय जितने भी खल्वाट आज तक देखे गये है वे सभी धनी, वैभवसम्पन्न तथा महान् व्यक्ति हे। नीच जाति का निधन तथा दीन व्यक्ति आज तक गजी खोपडी वाला नही देखा गया। अत जब किसी व्यक्ति के बाल गिरने शुरू होते हे तब यह उसके भावी भाग्य का सूचक माना जाता है। प्राय स्त्रिया खल्वाट नही होती ह। इसमे प्रकृति का कोई रहस्य ही कारणभूत हो सकता है।

चुटिया—गॉवो मे ऐसी मान्यता है कि जिस व्यक्ति के चुटिया के बाल खडे अर्थात् सिर के ऊपर लम्बे सीधे खडे हो जाते हे वह निश्चित ही चोर होता है। अत चुटिया के बाल किस दशा मे है इसका सदा ध्यान रखा जाता है। चुटिया के बालो को न बॉधना प्रतिज्ञा का कारण होता है। कुछ लोग यह प्रतिज्ञा करते है कि जब तक मै अमुक काय का सम्पादन नही कर लूगा तब तक अपनी चुटिया को नही बाधूगा। यह तो प्रसिद्ध ही है कि नन्द द्वारा अपमानित होने के कारण सुप्रसिद्ध कूटनीतिज्ञ चाणक्य ने यह कठोर प्रतिज्ञा की थी कि जब तक मै नन्द-वश का समूल नाश नही कर दूगा तब तक अपनी चुटिया नही बॉधूगा। किसी व्यक्ति को वश मे करने के लिए चुटिया के बालो को काटकर अपने पास रखना अन्यतम साधन है।

'गोखुर-प्रमाण' चुटिया मानी जाती है अर्थात् चुटिया इतनी मोटी तथा चौडी होनी चाहिए जितना चोडा गाय का खुर होता है। इसीलिए पण्डित लोग मोटी चुटिया धारण करते है। यह हिन्दुत्व का प्रतीक है। अत किसी व्यक्ति के द्वारा किसी दूसरे की चुटिया को काट लेना उसके अपमान का कारण समझा जाता है। उसकी नपुसकता तथा पौरुषहीनता का चिह्न है।

(२) **सिर तथा ललाट**—सिर का बडा होना शुभ तथा बडप्पन का सूचक समझा जाता है। यह बुद्धिमत्ता का प्रतीक है। इस सम्बन्ध मे यह कहावत प्रसिद्ध है कि 'सिर बडा सरदार का' अर्थात् बुद्धिमान मनुष्य का सिर बडा होता है। लोगो की यह धारणा है कि बडी बुद्धि बडे सिर मे ही निवास करती है। अत किसी बडे सिर वाले व्यक्ति की खिल्ली उडाने के लिए लोग कहते है कि उसका सिर सूजा हुआ है वास्तव मे बडा नही है।

उन्नत ललाट प्रशस्त माना जाता है। अतएव जिस व्यक्ति का ललाट उन्नत होता है वह भाग्यशाली माना जाता है। वह बुद्धिमान्, धनवान् तथा भाग्यवान् होता है। इसके ठीक विपरीत निम्न अर्थात् धँसा हुआ ललाट वाला व्यक्ति मन्दबुद्धि निधन तथा अभागा होता है। आजकल के मनोविज्ञानवेत्ता भी उन्नत ललाट को बुद्धिमत्ता का प्रतीक स्वीकार करते है और इसके विपरीत निम्न ललाट को बुद्धिमान्द्य का लक्षण मानते है। इस प्रकार किसी व्यक्ति का बडा सिर तथा उन्नत ललाट उसके भाग्य, वैभव तथा तीक्ष्ण बुद्धि की घोषणा डिण्डिभनाद से करता है।

(३) **आँख**—पुरुषो की दाहिनी आँख तथा स्त्रियो की बायी आँख का फडकना शुभ माना जाता है। इसके विपरीत अशुभ है। जब किसी स्त्री की बायी आँख फडकने लगती है तब उसे इसका दृढ विश्वास हो जाता है कि उसका परदेशी प्रियतम शीघ्र ही आनेवाला है अथया कोई अन्य शुभ समाचार की प्राप्ति होगी। वाल्मीकि ने अशोक बाटिका मे त्रिजटा के द्वारा सीता की बायी आँख का फडकना शुभ मानकर राम की प्राप्ति का सूचक बतलाया है। परन्तु मनुष्य की दाहिनी आँख शुभ मानी जाती है। यदि किसी व्यक्ति की दाहिनी आँख फडकती है तो वह समझता है कि उसे किसी शुभ सवाद की प्राप्ति होती है अथवा अर्थागम मिलता है।

सस्कृत तथा हिन्दी-साहित्य मे आँख के सम्बन्ध मे अनेक लोक-विश्वास प्रचलित है जिनमे इनका फडकना शुभ तथा अशुभ माना गया है। ग्रामीण जनता मे आँखो के फडकने के द्वारा ही शुभाशुभ का निणय किया जाता है।

(४) **नाक**—नाक मे घ्राण शक्ति का होना आवश्यक है। लोगो का ऐसा विश्वास है कि जिस व्यक्ति की घ्राण-शक्ति नष्ट हो जाती है वह छ मास के भीतर ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। विशेष करके दीपक के बुझाने पर जो गन्ध होती है उसके सूघने की शक्ति का होना जीवन का लक्षण माना जाता है। इस सम्बन्ध मे यह श्लोक प्रसिद्ध है कि—

दीप निर्वाण गन्ध च,
सुहृद् वाक्य अरुन्धतीम।
न जिघ्रन्ति न शृण्वन्ति,
न पश्यन्ति गतायुष ।।

जब अपनी ही आँख से अपनी नाक न दिखायी पडे तो उसे भी अशुभ मानते हे। सम्भवत यह मृत्यु की सूचना देता है। नाक का नोकीली होना सुन्दर तथा शुभ है। अत भोजपुरी माताएँ अपनी सन्तानो की नाक 'चोख' (नोकीली) होने की कामना करती हैं।

छीक—छीक के सम्बन्ध मे भी अनेक विश्वास प्रचलित है। किसी व्यक्ति की छीक शुभ मानी जाती हे ओर किसी की अशुभ। किसी काय को प्रारम्भ करने के पहिले यदि कोई व्यक्ति छीक देता हे तो उसे अशुभ मानते ह। यह समझा जाता है कि काय मे कोई बाधा उत्पन्न होगी। छीक के सम्बन्ध मे घाघ ने लिखा है कि—

"सन्मुख छीक लडाई भाष,
पीठ पाछिली सुख अभिलाषै।
छीक दाहिनी धन को नासै,
बाम छींक सुख सदा प्रकासै।
ऊँची छीक महा सुखकारी,
नीची छींक महा भयकारी।
अपनी छीक महादु खदायी,
कहै घाघ लोगन समुझाई।।

अर्थात् सामने छीक होने पर किसी व्यक्ति से लडाई होती है परन्तु पीठ के पीछे छीकने से सुख मिलता है। दक्षिण अग या दिशा मे छीक से धन का नाश और बाये होने से सुख की प्राप्ति होती हे। जोरो से छीकना सुखकारक तथा धीरे से छीकना भयकारक माना जाता है। दूसरे की छीक शुभ है परन्तु अपनी छीक अत्यन्त दु खदायी होती है। इसीलिए यात्रा के समय यदि व्यक्ति स्वय छीकने लगे तो यह अशुभ है और यात्रा स्थगित कर दी जाती है।

जब छोटे-छोटे बालक छीकते है तो उनकी माताएँ छीक के पश्चात् 'सत्तन जी' कहती है। यह शब्द 'शत जीवामि' का अपभ्रश होता है। छीक होने पर श्वास के सदा के लिए बाहर निकल जाने की आशका बनी रहती है। अतएव माताएँ छीक करने के बाद अपने बच्चो को सौ वर्ष तक जीने का आशीर्वाद देती है। जब बच्चो को लगातार छीक आने लगती है तब उसे रोकने के लिए उसकी माता उसके सिर के तालू को मुँह से फूकने लगती है। उनको विश्वास है कि ऐसा करने से छीक बन्द हो जाती है।

एक-दो छीक तो ठीक है परन्तु बच्चो का लगातार छीकना जुकाम तथा अन्य बीमारी का कारण समझा जाता है। अत उससे शुभाशुभ का कोई फल नही निकलता।

(५) **भुजा**—आँख की ही भाँति पुरुषो की दाहिनी भुजा और स्त्रियो की बायी बाँह का फडकना शुभ है। परन्तु इसके विपरीत फडकना अशुभ का द्योतक माना जाता है। हिन्दी तथा सस्कृत साहित्य से इस विश्वास की पुष्टि की जा सकती है। कालिदास ने अपने प्रसिद्ध नाटक शकुन्तला मे लिखा है कि कण्व के आश्रम मे जाने पर दुष्यन्त की दाहिनी भुजा फडकने लगती है। इस पर आश्चर्यित होकर वह कहता है कि इस शान्त आश्रम मे मेरी दाहिनी बाँह के फडकने का कौन-सा शुभ फल हो सकता है।[1] बिहारी की नायिका कहती है कि मेरी बायी भुजा के फडकने के शुभ फलस्वरूप मेरे प्रियतम का यदि आगमन हो गया तो अपनी दाहिनी भुजा को दूर करके बायी बाँह से ही उसका आलिगन करूँगी।[2] इस प्रकार स्त्रियो की बायी आख

---

१ शान्तमिदमाश्रमपद,
स्फुरित च बाहु कुतो फलमिहास। — अभिज्ञान शाकुन्तलम्-अक १।१४।

२ वाम बाहु फरकत मिले, जो हरि जीवन मूरि।
तो तोही से भेंटिहौं, राखि दाहिनी दूरि।।

और बायी भुजा का फडकना शुभ हे। इसके ठीक विपरीत पुरुषो की दाहिनी भुजा और आख का फडकना मगलकारक माना जाता है।

सामुद्रिकशास्त्र के अनुसार बाँहो का बडा होना शुभ माना जाता है। कालिदास ने रघुवशी राजाओ का वणन करते हुए उन्हे "शाल प्राशु महाभुज" अर्थात् लम्बी भुजावाला लिखा है। जिस व्यक्ति की भुजाएँ इतनी लम्बी हो कि वे घुटनों तक पहुँच जायँ तो वह व्यक्ति निश्चित रूप से महापुरुष होता है। भगवान् रामचन्द्र के विषय मे कहा जाता है कि उनकी भुजाएँ बडी लम्बी थी। इसीलिए उन्हे "आजानुबाहु" की सज्ञा दी गयी है।

हाथ की अँगुलियो मे कमल तथा विष्णु के चक्र का चिह्न होना सौभाग्य का सूचक है। इससे धन-धान्य की प्राप्ति होती है और ऐसा व्यक्ति बडा ही भाग्यवान् माना जाता है। स्त्रियो की अँगुलियाँ लम्बी और पतली होनी चाहिए जो उनके सौन्दय की प्रतीक हे। बाँहो के समान ही अँगुलियो का भी लम्बा होना प्रशस्त है।

(६) **छाती**—पुरुषो की लम्बी-चौडी छाती प्रशस्त मानी जाती है। यह उनकी वीरता का सूचक है। पुरुषो की छाती मे बालो का होना शुभ समझा जाता है। इसके ठीक विपरीत बालो का अभाव अशुभ और अविश्वास का कारण माना जाता है। भोजपुरी मे एक कहावत प्रचलित है कि—

'जेकरा छाती मे बार ना।
ओकर एतबार ना।।'

अर्थात जिस पुरुष की छाती मे बाल नही होता वह विश्वास का पात्र नही है। अनुभव के आधार पर भी यह देखा गया है कि छाती मे बालो से रहित पुरुष अविश्वसनीय, काँइयाँ तथा धूत्त होते है।

पुरुष की परिभाषा बतलाते हुए सामुद्रिकशास्त्र के विद्वानो ने लिखा है कि—

'स्तन केशवती स्त्री स्यात्
पुरुष लोमश स्मृत ।'

अर्थात् पुरुष लोम से युक्त होता है। अत पुरुष की छाती तथा शरीर के अन्य भागो मे बालो का होना स्वाभाविक है। परन्तु इसका विपरीत होना अशुभ की सूचना देता है।

(७) **पैर**—पैर सुन्दर तथा सुडौल होने चाहिए। जिस व्यक्ति का पैर सामान्य अनुपात से बडा होता है वह उसकी मूर्खता का लक्षण माना जाता है। कहावत है कि—

"सिर बडा सरदार का, पैर बडा गँवार का।"

अर्थात् महान् पुरुषो का सिर बडा होता है परन्तु मूर्ख पुरुषो का बडा पैर उनकी मन्द बुद्धि का सूचक है। अत पैर का बडा होना शुभ नही माना जाता।

जिस व्यक्ति के तलवे मे अथवा पैर की अँगुलियो मे चक्र के चिह्न दिखायी पडते है वह व्यक्ति घुमक्कड प्रकृति का समझा जाता है। इसीलिए चक्रमणशील व्यक्ति के लिए बहुधा यह कहा जाता है कि इसके पैर मे चक्कर (अर्थात् चक्र) है। पैर की अँगुलियो मे तिल का चिह्न होना भी इसी बात की सूचना देता है।

(७) परिच्छेद

विविध लोक-विश्वास

भोजपुरी क्षेत्र के विविध प्रकार के कार्यो मे लोक-विश्वास प्रचलित है। जैसे जन्म, मृत्यु और श्राद्ध आदि। नवीन वस्त्र धारण करना, स्नान करना, चूडी पहिनना, सिन्दूर धारण करना आदि के सम्बन्ध मे भी विश्वास पाये जाते है। किम्बहुना, एक, दो, तीन आदि सख्याओ के विषय मे भी जनता अनेक विश्वासो को धारण करती है। इन्ही सब विविध विश्वासो का विवरण यहाँ सक्षेप मे प्रस्तुत किया जाता है।

(१) अनुच्छेद—जन्म सम्बन्धी लोक-विश्वास

लोक-विश्वास की परम्परा की जडे बहुत दूर तक चली गयी है। बालक के जन्म किंवा गर्भाधान के सम्बन्ध मे भी अनेक लोक-विश्वास प्रचलित है। किसी भी मास के शुक्ल पक्ष मे स्त्री-समागम करना शुभ माना जाता है। इस सम्बन्ध मे तिथि-विचार भी आवश्यक है। लोगो का ऐसा विश्वास विषम तिथियो—जैसे प्रतिपदा, पञ्चमी आदि—मे समागम करने पर पुत्री तथा सम तिथियो—जैसे द्वितीया, चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी मे गर्भाधान होने पर पुत्र की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार से कृष्ण पक्ष मे सम्भोग से लडकी और शुक्ल पक्ष मे लडका पैदा होता है। अमावस्या इस कर्म के लिए निषिद्ध मानी गयी है। परन्तु पूर्णिमा विषम तिथि होने पर भी प्रशस्त है।

दशहरा, वसन्तपञ्चमी, होली आदि तिथियो के दिन गर्भाधान शुभ माना जाता है। लोगो की यह धारणा है कि इस प्रकार जो सन्तान उत्पन्न होगी वह भाग्यशाली होगी। समागम के कक्ष मे यदि वीर पुरुषो, नेताओ तथा सन्तो का चित्र विद्यमान हो तो इसका भी उत्पन्न होने वाली सन्तति के स्वभाव पर प्रभाव पडता है।

यदि सन्तति सिर के बल पैदा होती है तो शुभ मानी जाती है परन्तु पैर के बल होना अशुभ का सूचक है। यदि ऐसा बालक पेट के रोग से पीडित किसी व्यक्ति को अपने पैर से छू दे तो उसका रोग दूर हो जाता है।

तीन बच्चो के बाद यदि कोई लडकी पैदा होती है तो वह शुभ माना जाता है। इस सम्बन्ध मे गाँवो मे एक कहावत प्रचलित है कि—

"तेतर बेटी राज रजावे।
तेतर बेटा भीख मँगावे॥"

अर्थात् तीन पुत्रो के बाद यदि लडकी पैदा हो तो उसे धन-धान्य तथा राज्य की सम्पदा प्राप्त होती है परन्तु तीन पुत्रियो के बाद यदि पुत्र की उत्पत्ति होती है तो वह निधनता का कारण माना जाता है। इसीलिए 'तेतर' बेटी का गाँवो मे बडा आदर होता है।

लोगो की यह धारणा है कि किसी सन्तति के जन्म होने के बाद यदि घर अथवा परिवार मे किसी की मृत्यु हो जाय तो ऐसे बालक के जन्म को अशुभ मानते है।[१] परन्तु यदि जन्म के बाद किसी की नौकरी लग जाय अथवा धन और सम्पत्ति की प्राप्ति हो तो वह शुभदायक माना जाता है।

(२) अनुच्छेद—मृत्यु सम्बन्धी लोक-विश्वास

मृत्यु के सम्बन्ध मे भी अनेक लोक-विश्वास प्रचलित है। सूर्य छह महीने तक उत्तरायण रहता है और शेष छह मास मे दक्षिणायन। जब सूर्य दक्षिणायन हो उन दिनो मे किसी की मृत्यु अशुभ मानी जाती है। यह तो प्रसिद्ध ही है कि वीर योद्धा तथा कूट-राजनीतिज्ञ भीष्म महीनो तक शर-शय्या पर पडे रहे परन्तु सूर्य के दक्षिणायन होने के कारण उन्होने अपने प्राणो का परित्याग नही किया।

किसी शुभ तिथि तथा व्रत के दिन—जैसे एकादशी, रामनवमी तथा शिवरात्रि आदि—मृत्यु को प्राप्त करना शुभ माना जाता है। परन्तु 'पचखा' के पाँच दिनो मे मृत्यु का होना अशुभ सूचक है। सामान्य जनता की यह दृढ धारणा है कि 'पचखा' मे मरनेवाला व्यक्ति अपने साथ पाँच व्यक्तियो को लेकर मरता है। अर्थात् अपनी मृत्यु के पश्चात् और पाँच व्यक्ति भी यमराज के घर के अतिथि बनते है। अत इस अशुभ की शान्ति के लिए पूजा-पाठ का विविध विधान किया जाता है। अन्यथा घर के एक-दो व्यक्तियो की मृत्यु निश्चित ही होती है। अत 'पचखा' के पाँच दिनो मे मरना अत्यन्त अशुभ है।

(३) अनुच्छेद—श्राद्ध सम्बन्धी विश्वास

किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् उसकी आत्मा की शान्ति के लिए जो विधि-विधान किया जाता है उसे श्राद्ध कहते हैं। मृत्यु के दूसरे दिन से ही उसे जलाञ्जलि दी जाती है तथा पिण्डदान किया जाता है। लोगो का ऐसा विश्वास है कि इस प्रकार मृतात्मा को भोजन और जल प्राप्त होता है।

---

१ लेखक एक ऐसी लडकी को जानता है जिसके पिता की मृत्यु उस समय हो गयी जब वह अपनी माता के गर्भ मे थी। पिता की मृत्यु के छह मास बाद जब वह पैदा हुई तब उसकी माता उसे कुलच्छिनी मानकर उसका बडा निरादर करती रही। अन्त मे उस अभागिनी का जीवन भी बडा ही दु खमय हो गया।

दशाह तथा एकादशाह को पुरोहित तथा महाब्राह्मण को चारपाई, बिस्तर, बतन, पहिनने के वस्त्र, गहना, जूता, चप्पल, छडी, छाता आदि सभी वस्तुएँ दी जाती है। मृतात्मा को जो भी चीजे प्रिय थी उन सभी वस्तुओ को महाब्राह्मण को देना आवश्यक माना जाता हे। जनता की यह धारणा है कि जिन वस्तुओ का यहाँ दान किया जाता है वे सभी मृतात्मा को उस लोक मे मिलती हे। इसी विश्वास के अनुसार 'दाही' को अनेक प्रकार के मिष्ठान्न तथा पक्वान्न खिलाये जाते है। मृतात्मा को जो भोजन प्रिय था, जिन वस्त्रो को वह पहिनता था, जिन वस्तुओ का वह प्रेमी था उन सभी का दान प्रशसनीय माना जाता है।

धनी-मानी तथा समृद्ध व्यक्ति श्राद्ध के अवसर पर 'वृषोत्सग' भी करते हे अर्थात् वे साँड के बच्चे को गम लोहे की शलाका से दागते है आर अपने पिता के नाम पर उसे चरने के लिए स्वतन्त्र छोड देते है। कुछ लोग एक वर्ष तक इस साड को अपने घर पर रख कर उसे खिलाते तथा पालते है। सामान्य जनता की यह धारणा है कि मृत व्यक्ति की आत्मा इस साड मे सक्रमित होकर चली आती है। इसलिए इस साड का बडा आदर किया जाता है। इसे मारना अत्यन्त निषिद्ध है।

श्राद्ध के अन्तिम दिन त्रयोदशाह, जिसे भोजपुरी मे 'तेरही' कहते है, को ब्रह्म-भोज होता है। इस दिन जितने ही अधिक ब्राह्मणो को खिलाया जाय उतना ही प्रशसा का विषय माना जाता है। ब्राह्मण-भोज मृतात्मा की तृप्ति का अनन्यतम साधन माना जाता है।

(४) अनुच्छेद—अक सम्बन्धी लोक-विश्वास

अका के सम्बन्ध मे भी अनेक लोक-विश्वास प्रचलित है। इनके सम्बन्ध मे यह जानना आवश्यक है ये विश्वास एक से लेकर चौदह सख्या तक ही सीमित है। इनके आगे की सख्याओ का लोक-विश्वास से कोई विशेष लगाव नही है।

सबसे छोटी सख्या शून्य (०) है जो किसी इकाई की दाहिनी ओर लगाने से उस सख्या के मूल्य को दस गुना बढा देती है। परन्तु स्वय शून्य का कुछ भी मूल्य नही है। अभाव का पर्याय शून्य माना जाता है। अत यह सख्या अत्यन्त अशुभ समझी जाती है। किसी भी सख्या के अन्त मे, चाहे वह कितनी बडी-से-बडी क्यो न हो, शून्य का होना अमगल का सूचक है। इसीलिए दानी व्यक्ति (१००) सौ अथवा पाच सौ (५००) या एक हजार (१,०००) रुपयो का दान देकर उसमे एक रुपये की और वृद्धि कर देते है जिससे दान मे देय राशि शून्यान्त न होकर एक + अन्त (एकान्त) हो जाय। शून्य के अभाव का द्योतक होने के कारण मागलिक कार्यो मे इस सख्या का प्रयोग नही किया जाता। श्मशान घाट मे शव को जला देने के पश्चात् उस स्थान पर एक बडा शून्य बना देने की प्रथा है।

तीन—यह अक बडा ही अशुभ माना जाता है। इस सम्बन्ध मे एक कहावत प्रचलित है कि 'तीन टिकट महा विकट' अर्थात् किसी भी वस्तु का तीन की सख्या मे होना अमगलकारक होता है। इसीलिए तीन ब्राह्मणो का किसी काय के लिए एक साथ चलना कार्य की असफलता का द्योतक है। शास्त्रो मे भी लिखा है कि "न गच्छेत् ब्राह्मणत्रयम्" अर्थात् तीन ब्राह्मणो का कही एक साथ जाना निषिद्ध है। किसी व्यक्ति को तीन की सख्या मे मिष्ठान्न अथवा फल आदि नही देना चाहिए क्योकि ऐसा करने से अमगल की आशका बनी रहती है। विवाह आदि मागलिक अवसरो पर तीन स्त्रियो का गीत गाना अच्छा तथा शुभ नही माना जाता है। श्मशान मे शव जलाने के पश्चात् उस स्थान पर छत्तीस (३६) का अक लिख देते हैं जिसका अभिप्राय इस ससार से उसका सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। दान मे तीन रुपयो को देना मना है। किसी कार्य को तीन बार नहीं करना चाहिए। कहने का तात्पय यह है कि किसी दशा मे—चाहे वह तीन ब्राह्मणो का एक साथ चलना हो, चाहे तीन फलो, मिष्ठान्नो या रुपयो को दान मे देना—तीन की सख्या अत्यन्त निषिद्ध मानी जाती है। इसका वैज्ञानिक कारण क्या है यह कहना अत्यन्त कठिन हे। सम्भवत जनता की इस सख्या के सम्बन्ध मे कुत्सित धारणा ही इसका आधार है।

पाँच—यह विषम सख्या अत्यन्त शुभ मानी जाती है। गाँवो मे यह कहावत प्रचलित है कि 'पचमुख परमेश्वर' अर्थात् पाँच व्यक्ति जिस बात को कहते है वह परमात्मा की वाणी होती है। इसीलिए ग्रामीण विवादो को निपटाने के लिए जिन पचो की नियुक्ति होती है उनकी सख्या पाँच ही होनी चाहिए। विवाह के अवसर पर मागलिक गीत गाने के लिए अथवा वर को हल्दी चढाने के लिए स्त्रियो की सख्या पाच ही होती है। एक भोजपुरी लोक-गीत मे ऐसा वर्णन पाया जाता है कि पाँच सौभाग्यशाली अर्थात् सधवा स्त्रियाँ एक साथ मिलकर वर के शरीर पर हल्दी लगा रही है। गीत की पक्ति है—

> "पाँच सोहागिनि मिलि के
> हरदी चढ़ावहु मोरा लाल के।"

आजकल भी हाईकोट अथवा सुप्रीम कोट मे मुकदमे की सुनवाई के लिए जो बेञ्च (खण्डपीठ) बैठती है उसमे न्यायाधीशो की सख्या प्राय पाँच ही होती है। लोगो की ऐसी मान्यता है कि पाँच व्यक्ति एक साथ मिलकर जो न्याय करेगे वह उचित ही होगा। यदि आकाश मे कोई पुच्छल तारा दिखायी पड जाय तो किसी भी पाँच फलो का नाम ले लेने से उससे उत्पन्न होने वाले अमगल की शान्ति हो जाती है।

सात और नव—ये दोनो ही विषम सख्याएँ अत्यन्त शुभ मानी जाती है। ऋषियो की सख्या सात हे जो सप्तर्षि मण्डल के नाम से प्रसिद्ध हे। अतएव सात की सख्या को शुभ मानना स्वाभाविक ही हे। इसी प्रकार से ग्रहो की नव हे जो नवग्रह के नाम से जाने जाते हे। अत यह सख्या भी मगलकारक है।

विवाह आदि शुभ अवसरो पर जिस प्रकार पाच स्त्रियो का गाना मगलदायक है। उसी प्रकार से सात स्त्रियो का एक साथ मिलकर समवेत स्वर से गाना सौभाग्य की वर्षा करनेवाला समझा जाता है। इसीलिए लोक-गीतो मे "सात सुहागिन" स्त्रियो के द्वारा अपने कोकिल कण्ठ से गीत गाने का अनेक बार उल्लेख पाया जाता है। विवाह के लिए पाँच अथवा सात सधवा स्त्रियो का होना अत्यन्त आवश्यक है।

ऐसा लोगो का विश्वास है कि पाँच अथवा सात व्यक्ति मिलकर यदि किसी बुरे कार्य को भी करे तो उसमे कोई दोष नही लगता। इस सम्बन्ध मे एक धमशास्त्री पण्डित जी की कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है जिन्होने कुछ लडको के द्वारा किसी गदहे को मार डालने पर उन्हे अनेक प्रकार का प्रायश्चित्त करने का विधान बतलाया था। परन्तु इन लडको ने पण्डित जी को जब यह सूचना दी कि इस काय मे उनका पुत्र सन्तोष भी सम्मिलित था तब उन्होने शीघ्र ही अपना 'आदेश' बदल दिया और कहा कि—

"सात, पाँच लड़िका एक सन्तोष
गदहा मरले तनिको ना दोष॥"

अर्थात पाँच, सात लडके मिलकर (जिनमे सन्तोष भी हो) यदि किसी गदहे को जान से मार डाले तब उसमे कोई भी दोष नही लगता।

नौ—ग्रहो की सख्या नौ होने के कारण इस सख्या को भी शुभ माना जाता है। मगल काय मे नवग्रहो की पूजा की जाती हे। गाँवो मे किसी वृक्ष के नीचे देवी या किसी सती के चोरा के ऊपर जो मिट्टी की पिण्डियाँ स्थापित की जाती हे, उनकी सख्या सात अथवा नौ होती हे।

तेरह—ईसाई धम मे यह सख्या अत्यन्त अशुभ मानी गयी है। इसका कारण यह है कि ईसा का अनुयायी जूडा, जिसने उनको धोखा दिया था, उनका तेरहवाँ शिष्य था। अत यह तेरह की सख्या जूडा से सम्बन्धित होने के कारण अशुभ सख्या मानी जाने लगी।

सरयूपारीण ब्राह्मणो का विभाजन तीन और तेरह इन दो वर्गों मे किया जाता है, ऐसी कथा प्रसिद्ध है। भगवान् रामचन्द्र ने अपने राज्याभिषेक के अवसर पर एक बहुत बडा ब्रह्म-भोज किया था। भोज के अन्त मे उन्होने ब्राह्मणो को ताम्बूल अर्पित किया जिसमे 'ग्रामदान' तथा 'धनदान' दक्षिणा की सख्या लिखी हुई थी। गर्ग, गौतम तथा शाण्डिल्य गोत्र के ब्राह्मणो ने इस दक्षिणा को अस्वीकार कर दिया परन्तु काश्यप, भारद्वाज, घत कौशिक आदि तेरह गोत्रधारी ब्राह्मणो ने इस दक्षिणा को ग्रहण कर लिया। इसीलिए ये उपर्युक्त तीन गोत्र वाले ब्राह्मण अपने को सवश्रेष्ठ तथा तेरह गोत्र के ब्राह्मणो को हीन दृष्टि से देखते हैं। इसीलिए विवाह के अवसर पर 'तीन' को वरीयता दी जाती है और 'तेरह' हेय समझे जाते है। इसी कारण तेरह की सख्या शुभ नही मानी जाती है।

बारह और चौदह—आदित्यो की सख्या बारह है और भुवनो की सख्या चौदह कही जाती है। अत बारह और चौदह ये दोनो ही सम-सख्याएँ शुभ है। किसी पुस्तक के अध्यायो की सख्या बारह या चौदह रखना मगलकारक माना जाता है। समस्त विद्याओ की सख्या चतुर्दश अर्थात् चौदह मानी जाती है। पाणिनि व्याकरण मे शिव से प्राप्त जो प्रत्याहार सूत्र है उनकी सख्या चौदह ही है। इन कारणो से बारह और चौदह ये दोनो ही सख्याएँ शुभ है।

अठारह—यह सख्या भी सम होते हुए भी शुभ मानी गयी है। महाभारत के पर्वो की सख्या अठारह है। इसी प्रकार से गीता के अध्यायो की सख्या भी अठारह है। महापुराणो की सख्या भी अठारह ही है। यद्यपि इस सख्या की पवित्रता का कोई वैज्ञानिक कारण ढूँढ निकालना कठिन है परन्तु अत्यन्त प्राचीनकाल से इस सख्या को शुभ माना जाता है। आज भी यह सख्या पवित्र समझी जाती है।

अक्षर तथा वाक्य सम्बन्धी विश्वास—

लोक मे अक्षरो तथा वाक्यो के सम्बन्ध मे भी अनेक लोक-विश्वास प्रचलित है। देवनागरी वणमाला मे स्वरो की सूची मे पहिला अक्षर 'अ' हे। यह अनन्त का सूचक है। जिस प्रकार अग्रेजी मे किसी अज्ञात राशि का सूचक (x) अक्षर माना जाता हे उसी प्रकार से हिन्दी मे अज्ञात राशि को 'अ' अक्षर से सूचित किया जाता हे।

अ, उ तथा म् अक्षरो से 'ओऽम्' शब्द की उत्पत्ति मानी जाती है। यह अत्यन्त पवित्र तथा मगलकारक शब्द माना जाता है। वेदो के प्रत्येक मत्र का प्रारम्भ 'ओऽम्' से प्रारम्भ होता है। इसी तथ्य का समथन महाकवि कालिदास ने 'प्रणव छदसामिव' लिखकर किया है। अत किसी ग्रन्थ के लिखने के पूव अथवा किसी बहीखाता को प्रारम्भ करने के पहिले मगल का सूचक 'ओऽम्' लिखने की प्रथा प्रचलित है।

'र', 'आ' तथा म अक्षरो को एक साथ मिला देने पर 'राम' शब्द की निष्पत्ति होती हे। अत 'राम' के सयोजक इन अक्षरो को पवित्र माना जाता हे। कुछ लोगो का विश्वास है कि रामचरितमानस की प्रत्येक चोपाई मे 'र' या 'म' अक्षर पाया जाता हे जो 'राम' का प्रतिपादक है।

(५) अनुच्छेद—(१) भोजन सम्बन्धी लोक-विश्वास

भोजपुरी क्षेत्र मे रसोईघर मे चौके मे बैठकर भोजन करने की प्रथा है। पण्डित लोग तथा धमभीरु व्यक्ति शरीर पर से सिले हुए सभी वस्त्रो—कुर्ता, कमीज आदि को निकालकर भोजन करते है। कुछ लोग दर्जी के द्वारा सिली बनियाइन (गजी) को भी निकाल देते है ओर इस प्रकार केवल धोती पहिन नगे बदन भोजन करते है। उनकी यह धारणा है कि सिला हुआ वस्त्र अशुद्ध होता है अत उसे पहिनकर भोजन करना निषिद्ध है।

भोजपुरी लोग पहिले पैर धोकर ही भोजन करते है। इसीलिए किसी अतिथि को भोजन कराने के पहिले उसे पैर धोने के लिए लोटा मे जल दिया जाता है। मनु ने भी लिखा है कि "पैर धोकर ही भोजन करना चाहिए। "आद्र पादस्तु भुञ्जीत।" स्वास्थ्य तथा सफाई (हाइजिनिक) की दृष्टि से भी पैर धोकर ही भोजन करना श्रेयस्कर माना गया है।

रसोईघर से भोजन को उठाकर दूसरे स्थान पर ले जाना अशुद्ध तथा अनुचित माना जाता है। कुछ पण्डित लोग उठाकर लाया हुआ भोजन अशुद्ध होने के कारण उसे ग्रहण नही करते। अत वे चौके मे ही भाजन करते है। रामानुज श्री वैष्णव ब्राह्मण दष्टि-दोष को मानते है। अत वे एकान्त मे बैठकर भोजन करते है जहा उन्हे कोई देख न सके। यदि किसी व्यक्ति की दृष्टि उनके भोजन पर पड गयी तो वे उसे उच्छिष्ट मानकर ग्रहण नही करते।

ताजा तथा गम भोजन रुचिकर एव प्रशस्त माना जाता है। परन्तु मनु के मतानुसार अति उष्ण भोजन नही करना चाहिए क्योकि इससे स्वास्थ्य की क्षति होती है। इसके ठीक विपरीत ठण्डा तथा बासी भोजन वृद्धि को नष्ट करनेवाला होता है। इसलिए पढने वाले लडको को बासी भोजन नही खिलाना चाहिए। इस सम्बन्ध मे यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि—

"बात, बतासी, बासी, तीनो विद्या नासी।"

अर्थात् परस्पर बतकूचन (व्यथ की बाते) करना, जोरो की प्रचण्ड वायु का चलना तथा बासी भोजन करना ये तीनो ही वस्तुएँ विद्या का नाश करने वाली होती है।

यद्यपि गुरु, पुरोहित तथा श्रेष्ठ जनो का जूठा भोजन प्रसाद मानकर किया जाता है परन्तु उच्छिष्ट भोजन करने से बुद्धि मन्द हो जाती है और अनेक छूत के रोगो के होने की सम्भावना रहती है अत जूठा भोजन नही करना चाहिए।

(२) प्रात काल मे मुख-दर्शन

प्रात काल शय्या से उठने पर किसी प्रिय व्यक्ति का मुख देखना शुभ माना जाता है। अत भोजपुरी माताएँ प्रात काल मे अपने बच्चो को जगाकर अपना ही मुँह उन्हे दिखला देती हैं। यदि किसी बुरे व्यक्ति का मुह प्रात देख लिया जाय तो दिन-भर उसे भोजन नही मिलता, ऐसा लोगो का विश्वास है। अत सभी लोग यही प्रयास करते है कि अच्छे व्यक्ति के मुख का दशन हो।

नैषध-चरित के रचयिता महाकवि श्री हर्ष ने लिखा है कि नल के लिए उनकी प्रियतमा दमयन्ती का प्रात काल मुख-दशन अत्यन्त शुभ था। क्योकि प्रियजनो के दर्शन से बढकर ससार मे कोई दूसरा मगल तथा शुभकारक वस्तु नही है। कवि कहता है—

"जय जय महाराजेति प्राभातिकी प्रतिभामिमा
सफलयतु दानादक्षणोरलसपक्ष्मणी।
प्रथमदर्शन शय्योत्थाय तवास्तु विदभजा।
प्रियजनमुखाम्भोजातुगयदेगेन मगलम्।।"

यदि किसी अन्य व्यक्ति का मुँह देखना प्रात काल मे सम्भव न हो तो लोग अपनी दोनो हथेलियो को देखना शुभ मानते हे। शास्त्रो मे लिखा है कि—

"कराग्रे वसते लक्ष्मी करमध्ये सरस्वती।
करमूले तु गोविन्द प्रभाते करदशम्।।"

अर्थात् हथेली के मूल भाग मे विष्णु, अग्र भाग मे लक्ष्मी तथा मध्य भाग मे सरस्वती का निवास होता है। अत प्रात काल उठकर अपने हाथो का दशन अवश्य करना चाहिए।

(३) दन्तधावन

दैनिक क्रियाओ मे दन्त-धावन का प्रधान स्थान हे। शौच-कम के पश्चात् प्रत्येक व्यक्ति दातोन से मुँह धोता है। नीम ओर बबूल की दातोन अच्छी मानी जाती है क्योकि इसके रेशे बडे महीन होते हे ओर इनसे दातो की सफाई अच्छी तरह मे हो जाती हे। क्षीरी वृक्ष, अर्थात् वे वृक्ष जिनसे दूध निकलता है, की दातोन शुभ मानी जाती हे। ऋषिपञ्चमी के दिन एक विशेष पकार की लता की दातोन करने का विधान है जिसे जनपदीय भाषा मे 'चिचिडी' कहते है। कुछ स्त्रियाँ आज के दिन पूरे वर्ष के दिनो के हिसाब से ३६५ दातौन करती है जिससे प्रतिदिन 'चिचिडी' की दातोन करने का उन्हे फल मिल जाता हे।

जिउतिया के दिन स्त्रिया जीवत्पुत्रिका व्रत करती है। इस दिन भोजन करने की बात दूर रही, वे जल भी ग्रहण नही करती। उनके मुँह मे जल कही चला न जाय इसलिए वे इस दिन दातोन भी नही करती।

दातोन एक बालिस्त अथवा आठ से दस इच बडी होनी चाहिए जो न अधिक मोटी हो और न अधिक पतली। दातौन को दो भागो मे चीरकर उससे जीभ साफ की जाती है जिसे चीरा कहा जाता है। यह चीरा बडा अशुद्ध माना जाता है अत इसे उठाकर दूर फेक दिया जाता है।

(४) नवीन वस्त्र धारण करना

नये वस्त्रो को धारण करने के सम्बन्ध मे भी अनेक लोक विश्वास प्रचलित है। इस सम्बन्ध मे गाँवो मे यह कहावत प्रचलित हे कि—

"कपडा पहिरो बार बार,
बुध बियफे अवरु शुक्करवार।
भूले भटके खत अतवार।"

अर्थात् नवीन वस्त्र को बुधवार, वृहस्पतिवार और शुक्रवार को ही धारण करना चाहिए। भूले-भटके रविवार को भी पहिना जा सकता है। शनिवार को नया वस्त्र कभी नही पहिनना चाहिए क्योकि उसके फटने का भय बना रहता है। भड्डरी ने भी इसी तथ्य का प्रतिपादन किया है—

"कपडा पहिरै तीन बार, बुध, वृहस्पति, शुक्रवार,
हारे उबरे का अतवार, भडडर काहै यही विचार।"

वृहस्पतिवार को नवीन वस्त्र धारण करना शुभ तथा प्रशस्त माना जाता है। बुध और शुक्रवार भी शुभ है। परन्तु अन्य दिनो नया कपडा कदापि नही पहिनना चाहिए।

माघ शुक्ल पञ्चमी—जिसे वसन्तपञ्चमी अथवा श्रीपञ्चमी भी कहते है—के दिन पीत-वस्त्र पहिनने का विधान है। अत इस दिन कुछ लोग नवीन वस्त्र धारण करते हैं जो पीले रग मे रँगा हुआ होता है।

परन्तु किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर उसकी अन्त्येष्टि सस्कार करनेवाले 'दाही' के लिए किसी भी दिन नवीन वस्त्रो को धारण करने के लिए निषेध नही है। इसी प्रकार से सद्य विधवा स्त्री भी किसी भी दिन नवीन श्वेत वस्त्रो को धारण कर सकती हे। सात दिनो के पश्चात् 'सतनहयना' किया जाता है। इस दिन भी विधवा के लिए नवीन वस्त्रो का धारण निषिद्ध नही है। आपातकालीन स्थिति के कारण उपर्युक्त तीनो ही अवस्थाओ मे किसी भी दिन नये वस्त्रो को धारण किया जा सकता हे।

(५) शयन

दक्षिण दिशा यमराज की दिशा मानी जाती है अतएव चारपाई पर सोते समय दक्षिण की ओर पैर करके सोना अशुभ माना जाता हे। यदि कोई सोनेवाला न भी हो तो भी चारपाई की 'गोनतारी' दक्षिण दिशा की ओर नही की जाती। पूव दिशा की ओर सिर करके सोना शुभ माना जाता है। पश्चिम की ओर से शयन करना भी अच्छा है। परन्तु उत्तर सिर करके सोना अत्यन्त निषिद्ध है।

मृत व्यक्ति के शव को ले जाते समय उसका पैर सदा दक्षिण दिशा की ओर रखा जाता हे क्योकि यमराज उसी दिशा मे निवास करते है। ऐसा यदि सम्भव न हो तो उसके सिर को अरथी के आगे और पैरो को पीछे रखा जाता है।

(६) अनुच्छेद—झाड़ू सम्बन्धी विश्वास

झाड़ू सम्बन्धी विश्वास—घर को स्वच्छ रखने का साधन झाड़ू है। अत घर मे प्रतिदिन झाड़ू लगाना गृहिणी का आवश्यक धम माना जाता हे। परन्तु दीपावली के बाद दो दिनो तक अर्थात् भैया दूज तक झाड़ू लगाना अत्यन्त निषिद्ध है। दीपावली के दूसरे दिन स्त्रियाँ सूप डबडबा कर 'दलिद्दर खेदती' है अर्थात् घर से 'दरिद्रा' का निसारण करती हे। अतएव स्त्रियो का यह दृढ विश्वास है कि दीपावली के बाद दो दिनो तक झाड़ू नही लगाना चाहिए अन्यथा घर मे आयी हुई लक्ष्मी बुहारते समय घर से बाहर चली जाती हे। अतएव घर चाहे कितना ही गन्दा क्यो न हो जाय, इन दो दिनो मे झाड़ू नही लगाया जाता।

झाड़ू को सीधा खडा करना चाहिए अर्थात् जिस ओर झाड़ू को पकडकर घर बुहारा जाता है वह भाग जमीन पर होना चाहिए। परन्तु झाड़ू को उलटकर रखना अशुभ माना जाता है। झाड़ू को उलटकर खडा रखने से शत्रु खडा हो जाता है अर्थात् किसी से झगडा होने की आशका बनी रहती है। अत इसे जमीन पर सुलाकर 'पट' रखना ही श्रेयस्कर माना जाता है।

किसी प्रिय व्यक्ति के घर से प्रस्थान करने के दिन झाड़ू लगाना निषिद्ध माना जाता है। सम्भवत इससे उस व्यक्ति का अनादर होने की आशका होती है। इसी प्रकार से रात्रि के समय झाड़ू लगाना मना है। सम्भवत इससे लक्ष्मी के रूठ जाने का भय बना रहता है।

पूजा-पाठ करने के स्थान पर अथवा यज्ञ-वेदी या 'द्वारपूजा' की जगह पर झाड़ू नही लगाना चाहिए। चूकि झाड़ू को अशुद्ध माना जाता है अत पवित्र स्थानो पर इसका प्रयोग समुचित नही है। ऐसे स्थानो को पहिले कपडे से साफ करते है। इसके उपरान्त उसे गोबर और मिट्टी से लीपकर स्वच्छ बनाया जाता है।

मोर के पखो से बनाया झाड़ू परम पवित्र होता है। इसका प्रयोग पवित्र स्थानो को भी बुहारने मे किया जा सकता है। आजकल अनेक प्रकार के झाडओ का प्रचार पाया जाता है—जैसे नारियल का झाड़ू, सीक का झाड, ताडपत्र का झाड़ू, फूल का झाड़ू। परन्तु सुन्दरता तथा पवित्रता मे मोर का झाड़ू अद्वितीय है।

गन्दी वस्तुओ को झाडने और बुहारने का साधन होने के कारण झाड़ू अपवित्र माना जाता है। अतएव पूजा-गृह अथवा रसोईंघर मे इसे नही ले जाते। इसी अपवित्रता के बुहारने के अतिरिक्त झाड़ू को कोई नही छूता। कदाचित् इसका स्पर्श हो जाने पर हस्त-प्रक्षालन करना पडता है। किसी व्यक्ति को झाड़ू से मारना अपमान का सूचक है। इसलिए 'झाड़ू मारना' एक मुहावरा बन गया है जिसका अर्थ किसी व्यक्ति अथवा वस्तु का घोर तिरस्कार करना है।

चारपाई बुनना—'पचखा' के दिनो मे चारपाई का बुनना अशुभ माना जाता है। इसी प्रकार से आषाढ के महीने मे भी चारपाई नही बुनी जाती क्योकि ऐसा करने से उसके जल्दी ही टूट जाने की आशका बनी रहती है।

प्रधानतया चारपाई दो प्रकार से बुनी जाती है जिसे 'चार' बधिया और 'छह बधिया' कहा जाता है क्योकि बुनते समय उपर्युक्त सख्या के बाधो को एक साथ रखा जाता है। चारपाई बुनते समय इन बाधो के ग्रुप (समुदाय) बन जाते है। इन समुदायो को इन्द्र, चन्द्र, जम के रूप मे गिना जाता है। कोई भी चारपाई 'जम' पर नही उतरनी चाहिए क्योकि यह

अशुभ माना जाता हे। अत बुनते समय सदा इस बात का ध्यान रखा जाता हे कि चारपा इन्द्र पर उतरे अर्थात् समाप्त हो अथवा चन्द्र पर।

चारपाई को बुनते समय जिस रस्सी की सहायता ली जाती हे, जिसे भोजपुरी मे बन्आ कहते हे, उसका अत मे गड्ढे मे फेक दिया जाता हे। यदि किसी दूसरे व्यक्ति के घर मे उसे फेक दिया जाय तो उसके घर म अगरा करते है। अत कुछ दुष्ट व्यक्ति एसा करते हे।

(८) परिच्छेद

निषिद्ध (व्यक्ति-वस्तु)

(Taboo)

सामान्य परिचय—प्राचीन काल मे राजा, महाराजा, सामन्त, पण्डे तथा पुरोहित, गुरु एव पुजारी समाज मे अपने विशिष्ट स्थान के लिए अपने को उच्च समझते थे। अतएव वे सामान्य जनता की पहुच के बाहर थे। साधारण लोग केवल उनका दशन कर सकते थे। वे राजा अथवा गुरु के प्रति अत्यधिक श्रद्धा के कारण उनका नाम लेना अशोभन तथा अनुचित समझते थे। इसी प्रकार से नीच, दुष्ट व्यक्ति का नाम लेना भी अच्छा नही माना जाता है।

अशौच की दशा को प्राप्त व्यक्तियो का स्पश करना सम्भवत शौच की दृष्टि से बुरा माना जाता था। उदाहरण के लिए किसी मृत व्यक्ति की अन्त्येष्टि क्रिया करने वाला 'दाही' तथा 'मासिक धम' की अवस्था मे वतमान स्त्री का स्पश निषिद्ध है। इसी प्रकार कुछ वस्तुएँ भी स्पश के अयोग्य मानी जाती है जैसे रक्त तथा बाल आदि। आदिम समाज के लोगो की यह धारणा थी कि कुछ वस्तुओ मे भूत तथा नीच प्रेतात्माओ को भगाने की शक्ति निहित हे जैसे लोहा और आग। अत ये भी 'टैबू' की श्रेणी मे ही आते हे।

'टैबू' अग्रेजी भाषा का शब्द है जिसका अथ 'निषेध' होता है।[1] किसी भी प्रकार का निषेध क्यो न हो यह सब टैबू के अन्तगत आता है। किसी व्यक्ति का नाम लेना, किसी महान् आत्मा को स्पश करना, किसी कुत्सित तथा अपवित्र वस्तु को छूना, किसी व्यक्ति के साथ समागम करना, किसी विशिष्ट वस्तु का भोजन करना तथा किसी का मुँह देखना अथवा दिखलाना—ये सभी बाते टैबू के अतगत आती है।

इस प्रकार 'टैब' को प्रधानतया चार श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है—

(१) निषिद्ध कम (Tabooed Acts)

(२) निषिद्ध व्यक्ति (Tabooed Persons)

(३) निषिद्ध वस्तु (Tabooed Things)

(४) निषिद्ध शब्द (Tabooed Words)

इसमे से प्रत्येक का सक्षिप्त वणन यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

(१) अनुच्छेद—निषिद्ध व्यक्ति

कुछ व्यक्ति ऐसे होते है जिनका स्पश करना निषिद्ध है। यद्यपि फ्रेजर ने अपनी पुस्तक मे निषिद्ध व्यक्तियो मे ऊँच नीच अनेक प्रकार के मनुष्यो की गणना की है परन्तु भोजपुरी क्षेत्र मे उनमे से केवल तीन की ही सत्ता उपलब्ध होती है जो निम्नाकित है—

(१) रजस्वला स्त्री निषिद्ध

(२) दाही मनुष्य " " "

(३) हत्यारा मनुष्य " " "

(१) रजस्वला स्त्री—मासिक धर्म की अवस्था मे वर्तमान स्त्री को स्पर्श करना निषिद्ध माना जाता है। सामान्य तथा स्त्रियाँ तीन दिनो तक मासिक धर्म का पालन करती है। इन दिनो मे वे सबसे अलग एकान्त स्थान मे होती है। घर के किसी अन्य व्यक्ति को वे इन दिनो मे स्पर्श नही कर सकती और न घर का कोई सदस्य छूता है। वे तीन दिनो तक स्नान

---

१ हिन्दी भाषा मे Taboo शब्द का द्योतक कोई समुचित समानार्थक शब्द उपलब्ध नहीं है। अत ऐसी अवस्था मे अग्रेजी के 'टैबू' शब्द को यहाँ ग्रहण किया गया है। हिन्दी मे 'निषेध' शब्द के द्वारा इसका कुछ भाव द्योतित हो सकता है परन्तु 'टैबू', का क्षेत्र 'निषेध' की अपेक्षा अधिक व्यापक तथा विस्तृत है।

नही करती और एक ही वस्त्र को पहिने रहती है। ऋतु काल मे पति-समागम करना अत्यन्त निषिद्ध है। चूंकि रजस्वला स्त्री अपवित्र समझी जाती है अत भोजन तथा जल का स्पश नही कर सकता।

इन दिनो मे पति अपनी स्त्री से समागम की तो बात दूर रही, उसका स्पश भी नही कर सकता। इसका कारण स्त्री की अपवित्रता ही समझनी चाहिए। लोगो का ऐसा विश्वास है कि इन दिनो मे पत्नी के साथ सम्पक करने से पति की आयु क्षीण होती है। ऋतुकाल के पश्चात चौथे दिन स्नान करने पर ही स्त्री शुद्ध समझी जाता है तथा वह स्पश योग्य होती है।

सन्तान की उत्पत्ति के दिनो मे भी स्त्री अशुद्ध मानी जाती है। भोजपुरी क्षेत्र मे यह परम्परा प्रचलित है जब किसी स्त्री को लडका पैदा होता है तब वह अनेक दिनो तक एक विशेष घर—जिसे सूतिका-गृह कहते है—मे ही निवास करती है। इन दिनो मे न तो वह स्नान करती है ओर उस घर से बाहर ही जा सकती है। इस प्रकार अपवित्र होने के कारण वह अस्पृश्य होती है। सौर (सउरि) मे निवास करने के दिनो मे पति के लिए उसका मुह देखना भी निषिद्ध है। ज्योतिषी के द्वारा बतलाये गये शुभ दिन मे वह स्नान करके पवित्र होती है तभी घर के अन्य सदस्यो के लिए स्पर्श योग्य मानी जाती है।

(२) दाही मनुष्य का स्पश निषिद्ध

किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् परिवार का जो सदस्य मृतात्मा के मुह मे आग देता है तथा उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया करता है, उसे 'दाही' कहा जाता है। यह व्यक्ति श्राद्ध के दस-बारह दिनो तक अस्पृश्य माना जाता है। वह सबसे अलग काठ के तख्ते पर सोता है नियमित आहार करता है और ब्रह्मचय व्रत का पालन करने वाला होता है। लोगो की ऐसी धारणा है कि दाही व्यक्ति के ऊपर मृत व्यक्ति की आत्मा रहती है। अत लोग उससे डरते है और उसका स्पश नही करते। श्राद्ध-काल मे 'दाही' अस्पृश्य व्यक्ति माना जाता है। न तो उसे कोई छूता है और न वह किसी को स्पश कर सकता है।

(३) हत्यारा मनुष्य निषिद्ध

जो मनुष्य किसी व्यक्ति की हत्या करता है वह पातकी माना जाता है। शास्त्रकारो ने हत्या को महापातक की सज्ञा प्रदान की है। अत हत्यारा घोर नरक को प्राप्त करता है। इस कारण हत्यारा को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। उसे नीच तथा पापी मानने के कारण कोई भी स्पश नही करता। उसका मुँह देखना भी पाप का कारण होता है।

गाय की हत्या महापातको मे गिनी जाती है। अत गो-हत्या करने वाला महापातकी माना जाता है। यह अपने गले मे रस्सी का फदा लगा कर घर-घर भिक्षा माँगता फिरता है। महापातक का कर्ता होने के कारण वह मौन-व्रत धारण करता है। पाँच गाँवो मे भिक्षा माँगने के पश्चात् ही वह इस पाप का प्रायश्चित्त करने मे समथ हो पाता है। लोगो का ऐसा विश्वास है कि गोहत्या का प्रायश्चित्त मौन व्रत धारण कर पाच गाँवो मे भिक्षा मागने से दूर होता है। इसीलिए गाय के हत्यारे को उपर्युक्त विधान का आचरण करना पडता है। हत्यारा होने के कारण वह अस्पृश्य माना जाता है।

(२) अनुच्छेद––निषिद्ध वस्तुएँ

(१) लोहा—अनेक ऐसी वस्तुएँ है जो अनेक कारणो से 'निषिद्ध' की कोटि मे गिनी जाती है। इनमे लोहा का स्थान प्रथम है। भोजपुरी प्रदेश मे लोहा भूतो को भगाने वाला माना जाता है। जनता की ऐसी धारणा है कि जहाँ लोहा होता है वहाँ भूत नही आ सकता। सम्भवत लोहा का रग काला होने के कारण नीच आत्माये (evil spirits) डरती है और इसके पास फटकने की उनकी हिम्मत नही होती। इसीलिए 'दाही' सदा अपने पास लोहे की छडी अथवा चाकू रखता है। इन दोनो के अभाव मे वह लोहे की कील को ही पास मे रखकर सतोष को प्राप्त करता है। कुछ लोग अपने यज्ञोपवीत मे इसी कारण लोहे की चाभी बाँधे रहते हैं।

बियावान जगल मे, अँधेरी रात मे, जाने वाला व्यक्ति लोहे की बनी किसी वस्तु को धारण करके दुष्ट आत्माओ के आक्रमण से अपने को सुरक्षित समझता है। गाँव की स्त्रिया एक घर से दूसरे घर को पका हुआ भोजन ले जाते समय थाली मे लोहा का एक टुकडा अथवा आग की चिनकारी रख देती है जिससे भूत और 'परेत' डरकर उस भोजन का उपभोग न कर सके अथवा उनकी आत्मा (spirit) उसे दूषित न कर दे।

लोहा बडा ही अपवित्र धातु माना जाता है। इसीलिए लोहे की थाली मे कोई भोजन नही करता। मागलिक तथा शुभ कार्यों मे पीतल और ताँबे का तो प्रयोग होता है परन्तु ऐसे अवसर पर लोहे को कोई छूता भी नही है।

शनि बडा ही दुष्ट ग्रह माना जाता है। जब किसी व्यक्ति पर शनि की कुदृष्टि होती है तब उसके दुष्परिणामो से बचने के लिए लोहा तथा अन्य वस्तुओ तथा वस्त्रो को ब्राह्मणो को दान मे देता है। कुछ लोग शनि के बुरे प्रभावो से बचने

के लिए लोहे की बनी हुई अँगूठी धारण करते हे। यदि किसी व्यक्ति के पैर की अँगुली 'ठेसाहिं' हो जाती है तो वह चोट मे बचने के लिए उस अँगुली मे लोहे की अँगूठी पहिन लेता है जिससे चाट की पुनरावृत्ति नही होने पाती। लोहा सब धातुओ मे निकृष्ट होने पर भी अपनी "भूत-भगावन" विशेषताओ के कारण अत्यन्त उपयोगी तथा आवश्यक हे।

(२) **रुधिर**—राजा ओर महाराजाओ का रुधिर बडा ही पवित्र माना जाता हे अत किसी भी दशा मे उसका जमीन पर गिरना अनुचित है। फ्रेजर ने लिखा है कि मध्ययुग मे राजाओ को जब फाँसी दी जाती थी अथवा हत्या की जाती थी तब ऐसा प्रबन्ध किया जाता था कि उनका खून जमीन पर न गिरने पावे। इस देश मे भी खून के विषय मे अनेक विश्वास प्रचलित है।

मासिक-धम वाली रजस्वला स्त्री का रुधिर अत्यन्त अपवित्र माना जाता है। अत उसके लोहू से सिक्त वस्त्र का स्पश करना अत्यन्त निषिद्ध है। इसी प्रकार से जिस व्यक्ति की हत्या की जाती हे उसका रुधिर भी अस्पृश्य होता हे। ऐसा समझा जाता है कि उसके स्पश से हत्या का पाप लगता है।

इसके ठीक विपरीत जिस मनुष्य अथवा पशु की बलि चढायी जाती है उसका रुधिर पवित्र होता है। मिर्जापुर के पास विन्ध्यवासिनी देवी के सुप्रसिद्ध मदिर मे नवरात्र के दिनो मे अनेक बकरो की बलि दी जाती है। इससे जो खून निकलता है उसे पवित्र मानकर भक्त लोग अपने ललाट मे उसका टीका लगाते हे और वे उसके माँस को बडी श्रद्धा से भक्षण करते है।

इसी प्रकार से शहीदो का खून भी पवित्र कोटि मे गिना जाता है। प्राचीन काल मे गो तथा ब्राह्मण की रक्षा मे जो व्यक्ति अपने शरीर का बलिदान कर देते थे उनका रुधिर उनके काय के समान ही परम पावन होता था। स्वतन्त्रता आन्दोलन के दिनो मे जो देश-भक्त ब्रिटिश गोली के शिकार हो जाते थे उनके रक्त से सिञ्चित स्थान पर लोग फूलो की माला चढाया करते थे।

(३) **केश निषिद्ध**—सिर के बालो को बडा पवित्र माना जाता हे। अत बालको का जब मुण्डन-संस्कार सम्पादित होता है उस समय कटे हुए बालो को किसी पवित्र तालाब अथवा नदी मे विसर्जित कर दिया जाता है। श्रेष्ठ व्यक्तियो तथा ऋषि, मुनियो के केश पवित्र मानकर कुछ लोग उसे अपने पास सुरक्षित रखते है। पवित्र नदियो के किनारे तथा तीर्थ-स्थानो मे बालो का कटवाना पुण्य का कारण माना जाता है।

इसके ठीक विपरीत कुछ लोग केशो को अपवित्र मानते है। किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् उसका दाह-संस्कार करने वाले 'दाही' का सिर मुण्डित कर दिया जाता है। 'दशाह' के दिन परिवार के सभी व्यक्ति अपने बालो को उस्तरे से मुडवाते है। लोगो की यह धारणा है कि ऐसा करने से मृत्यु से उत्पन्न अशौच समाप्त हो जाता है। इस अवसर पर सिर, दाढ़ी तथा मूछ के बालो को कटवाना आवश्यक माना जाता है। बालो के द्वारा नीच आत्माओ का स्थानान्तरण भी किया जा सकता है। अतएव लोग अपने बालो को दूसरे को नही छूने देते। बालो के सम्बन्ध मे विशेष विवरण 'लोक-विश्वास' के प्रकरण मे दिया जा चुका है। अत उनका पिष्ट-पेषण यहाँ अभीष्ट नही है।

(४) केश-पाश तथा गाँठ बाँधना निषिद्ध

केश-पाश के सम्बन्ध मे भी अनेक विधि-निषेध पाये जाते है। वृहस्पतिवार को कुमारी लड़कियो के लिए अपने सिर के बालो को साफ करना शुभ माना जाता है। वे अपने बालो को सँवार कर जूडा बाँधती है। परन्तु शनिवार को केशपाशो को साफ कर उन्हे बाँधना निषिद्ध समझा जाता है। ऐसा करने से शनि महाराज की कुदृष्टि होने की आशका बनी रहती है। केश-पाश को बाँधने से दूसरे के मन को बाँधा जा सकता है, ऐसा विश्वास है। हिन्दी-कवि बिहारी ने किसी नायिका के केशपाश को देखकर उसमे दूसरे मनुष्यो के मन को बाँधने के गुण का उल्लेख किया है।[१]

इसी प्रकार से 'गाँठ बाँधने के सम्बन्ध मे अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। हिन्दी मे गाँठ-बाँधना' मुहावरा के रूप मे प्रचलित है जिसका भाव है किसी वस्तु का स्मरण करना। गाँठ बाँधने से किसी व्यक्ति अथवा वस्तु के बाँधे जाने का विश्वास होता है। हरिद्वार मे मनसा देवी के पास एक वक्ष की शाखा मे अनेक भक्त गण कपडे की गाँठ लगा देते है। इस प्रकार उनका मनोरथ उसमे बँध जाता है। अपनी कामना की पूर्ति के बाद वे उस गाँठ को खोल देते है।

---

१ काको मन बाँधे न यह,
जूरो बाँधि निहारि।'

(५) **भोजन**---भोजन के सम्बन्ध मे भी अनेक विधि-निषेध उपलब्ध होते है। हिन्दुओ के लिए गाय का मास तथा मुसलमानो के लिए सूअर का मास खाना अत्यन्त निषिद्ध है। कोई भी हिन्दू चाहे वह कितना भी पाश्चात्य सस्कृति से प्रभावित क्यो न हो, गोमास कभी नही खा सकता। इसी प्रकार से सिक्खो के लिए मदिरा तथा धूम्र-पान करना अनभिष्ट है। उनके धम के द्वारा इन दोनो वस्तुओ का निषेध किया गया है।

भोजपुरी क्षेत्र मे पूजा-पाठ करने वाले ब्राह्मणो, पुरोहितो तथा पण्डितो के द्वारा लहसुन तथा प्याज का प्रयोग निषिद्ध कोटि मे माना जाता है। पण्डितलोग इन उपर्युक्त पदार्थों को, इनकी तामसिक वृत्ति के कारण, स्पश तक नही करते। उनको भोज्य वस्तुओ की सूची मे स्थान देने की कथा तो दूर रही। इसी प्रकार से लाल टमाटर और मास के रग मे समानता के कारण कतिपय ब्राह्मण नही खाते। आश्विन कृष्ण-पक्ष—जिसे पितृपक्ष भी कहा जाता है—मे उन व्यक्तियो के लिए—जिनके पिता मृत है—'नेनुआ' नामक सब्जी का प्रयोग करना निषिद्ध है। कार्तिक मास मे बहुत से व्रती तथा गगास्नायी लोग 'भटा' (बैंगन) का खाना निषिद्ध मानते हे।

(३) अनुच्छेद—निषिद्ध कार्य

कुछ काय ऐसे हे जो निषिद्ध माने जाते है। इन कार्यों का सम्पादन करना अपुण्यकारक तथा पापो का जनक है।

(१) **भोजन**—कुछ सनातनी रामानुजी वैष्णव स्वयपाकी होते है अर्थात् वे दूसरो के हाथ से बनाया हुआ भोजन ग्रहण नही करते। वे अपना भोजन स्वय पकाते है। इसी प्रकार से वे एकान्त मे बैठकर भोजन करते है जिससे उन्हे कोई देख न सके। वे 'दृष्टिदोष' मे विश्वास करते है। उनकी यह मान्यता है कि यदि कोई मनुष्य भोजन करते समय उन्हे देख ले तो वह भोज्य-पदाथ उसकी दृष्टि लगने से दूषित हो जाता है। वह भोजन दृष्टि-दोष लगने से उच्छिष्ट और अखाद्य हो जाता है।

(२) **मुंह दिखलाना तथा देखना**—शय्या से उठकर प्रात काल मे किसी अपरिचित व्यक्ति का मुँह देखना अशुभ माना जाता है। अत मातायें अपने बच्चो को प्रात काल मे सबसे पहिले अपनी माता अथवा घर के श्रेष्ठ व्यक्तियो का मुह देखने के लिए उपदेश देती है। लोगो का यह विश्वास है कि किसी अपरिचित तथा अशुभ व्यक्ति का मुँह देखने से घर मे झगडा लग जाता है अथवा दिनभर एकादशी का व्रत करने के लिए बाधित होना पडता है। यदि किसी व्यक्ति को दिनभर भोजन से भेंट नही होती अथवा अनायास कोई झगडा खडा हो जाता है तो वह पश्चात्ताप करता हुआ कहता है कि "आज न जाने मैंने किसका मुँह देखा है।" अत भोजपुरी मातायें इस विषय मे बडी सतर्क रहती है कि मेरा पुत्र प्रात काल मे किसी अपरिचित अथवा अवाञ्छित व्यक्ति का मुँह न देखने पाये।

इसी प्रकार से दूसरे व्यक्तियों को अपना मुँह दिखलाना भी उचित नही माना जाता है। विवाह के उपरान्त जब नयी वधू अपनी ससुराल आती है तो कई दिनों तक घर की स्त्रियाँ भी उसका मुँह नही देख पाती। कुछ तो यह परदा-प्रथा तथा लज्जा के कारण किया जाता है। परन्तु इस काय के पीछे यह भावना भी छिपी हुई ज्ञात होती है कि मुँह दिखलाने से किसी स्त्री अथवा पुरुष की कही कुदृष्टि न लग जाय। इसी प्रकार से जन्म के पश्चात् लगभग छ मास तक बालक को घर से बाहर नही जाने दिया जाता अन्यथा उस पर किसी की दूषित दृष्टि पड जाने का भय बना रहता है। विवाह के लिए जाने वाले वर के सिर पर 'मोर' पहिनाया जाता है और उससे लटकती हुई मालायें वर के मुख को आच्छादित किये रहती है। इसके भीतर भी यही भावना विद्यमान है।

(३) **उच्छिष्ट भोजन**—थाली मे से थोडा-सा भोजन करके शेष को छोड देना 'उच्छिष्ट' कहलाता है। अनेक आदिम जातियो मे ऐसा विश्वास प्रचलित है कि उच्छिष्ट भोजन के द्वारा जादू किया जा सकता है। अत इस जाति के सदस्य अपने जूठे भोजन को जला देते है अथवा जमीन मे गाड देते है। भोजपुरी क्षेत्र मे जूठे भोजन को छोडना अशुभ तथा अनुचित माना जाता है। परोसे गये अन्न को पूर्णतया ग्रहण न करना उस अन्न का अपमान समझा जाता है। चूकि अन्न का तिरस्कार करना पाप का कारण होता है अत भोजन को उच्छिष्ट रूप मे नही छोडना चाहिए। शौच तथा सफाई (हाइजिनिक) की दृष्टि से भी उच्छिष्ट भोजन का दूसरे व्यक्तियो के द्वारा ग्रहण करना उचित नही। इससे अनेक प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न हो सकती है। भोजपुरी स्त्रियाँ अपने पति का उच्छिष्ट भोजन करना अपना सौभाग्य समझती है। परन्तु शुचिता की दृष्टि से तथा अन्य अनेक कारणो से इस भावना का अब क्रमिक ह्रास होने लगा है। मातायें किसी व्यक्ति का जूठा भोजन अपने बच्चों को नही करने देती। उनकी धारणा है कि ऐसा करने से बच्चे प्रेत आत्माओ से ग्रसित हो जाते है।

(४) **वृक्ष काटना**—हरे वृक्षो को काटना अत्यन्त निषिद्ध माना जाता है। वृक्षो मे पीपल तथा आम अत्यन्त पवित्र तथा पूजनीय माने जाते है। सोमवती अमावस्या के दिन स्त्रियाँ पीपल की पूजा करती है। आम का वृक्ष अपनी पवित्रता तथा उपयोगिता के कारण अछेद्य माना जाता है। प्राचीन धम-शास्त्रियो तथा आधुनिक वैज्ञानिको का यह मत है कि वृक्षो मे भी प्राण होता है। अत वक्षो को काटना हत्या करने के समान पातक माना जाता है। विशेषकर पीपल ओर आम के हरे वक्षो का विनाश करना पाप का कारण होता हे। अत कोई भी हिन्दू हरे पडो को नही काटता। किंबहुना रात्रि के समय आम की पत्तियो को भी तोडना निषिद्ध है। रात के समय मनुष्य की ही भाति वृक्ष भी सोते रहते है। अत ऐसी दशा मे उनकी पत्तियो को तोडना उनकी निद्रा को भग कर उनका अग-भग करने के समान हे। आजकल सरकार ने भी हरे वृक्षो को न काटने की आज्ञा जारी कर रखी हे। यद्यपि इसका कारण सामान्य जनता के विश्वास से सवथा भिन्न हे।

(४) अनुच्छेद—निषिद्ध शब्द

कुछ ऐसे शब्द हे जिनका उच्चारण करना अशोभन तथा अशुभ माना जाता हे। ऐसे शब्दो का निम्नाकित वर्गो मे विभक्त किया जा सकता है—

(१) व्यक्तिगत नामो का उच्चारण न करना।

(२) सम्बन्धित व्यक्तियो का नाम न लेना।

(३) मृतात्मा का नाम न लेना।

(४) राजा तथा पवित्र व्यक्तियो का नामोच्चारण न करना।

(५) देवताओ का नाम न लेना।

इनमे से अन्तिम को छोडकर शेष चार निषेध (Taboo) भोजपुरी प्रदेश मे उपलब्ध हाते है।

(१) **व्यक्तिगत नाम**—हमारे शास्त्रो मे लिखा है कि अपने मुँह से अपने नाम का उच्चारण नही करना चाहिए। शास्त्र-कारो ने जिन नामो का उच्चारण करना निषिद्ध बतलाया है उसमे अपना नाम भी है।[१] अत भोजपुरी प्रदेश मे साधारणतया लोग अपना नाम स्वय नही बतलाते। यदि उनका नाम पूछा जाता है तो वे बडे सकोच से कहते है कि "मुझे लोग ऐसा पुकारते है।"

प्रत्येक हिन्दू दो नामो को धारण करता है जिन्हे (१) राशि नाम और (२) पुकार नाम कहा जाता है। राशि का नाम गोपनीय होता है। इसका उपयोग केवल मागलिक काय-विशेष पर, विवाह के अवसर पर किया जाता है। विवाह के लिए वर और कन्या की कुण्डली इसी राशि के नाम से ही मिलाई जाती है। पुकार-नाम व्यक्ति विशिष्ट को पुकारने के लिए किया जाता है। इसी नाम का उपयोग जीवन मे सदा होता है। सम्भवत नाम-गोपन के विश्वास के कारण ही राशि-नाम की उत्पत्ति हुई होगी।

अपने मुँह से अपने नाम के उच्चारण न करने की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। बारहवी शताब्दी मे उत्पन्न होने वाले महा-कवि श्री हष ने अपने "नैषधीय चरित" महाकाव्य मे लिखा है कि जब दमयन्ती ने नल से उनके नाम को जानने की जिज्ञासा प्रकट की तब उन्होने अपना नाम बताना स्पष्ट ही अस्वीकार कर दिया और यह कहा कि महाजन लोगो की यह परम्परा है कि वे अपने मुँह से स्वय अपना नाम नही बतलाते।

"महाजनाचारपरम्परेदृशी
स्वनामनामादधते न साधव ।।
अतोऽभिधातु न तदुत्सहे पुन ।
जन किलाचारमुच विगायति।।"

निषिद्ध नामो मे अत्यन्त कृपण व्यक्ति के नाम की भी गणना की गई है।[२] जो व्यक्ति कजूस हो, मक्खीचूस हो तथा "चमडी जाय दमडी न जाय" के सिद्धान्त का पक्षपाती हो ऐसे महाकृपण व्यक्ति का नाम प्रात काल मे नही लेना चाहिए।

---

१ आत्म-नाम गुरोर्नाम, नामातिकृपणस्य च।
श्रेयस्कामो न गृह्णीयात्, ज्येष्ठापत्यकलत्रयो ।।

२. नामातिकृपणस्य च।

लोगो का विश्वास है कि ऐसा करने से दिन भर अमगल तथा अशुभ होता है। इसीलिए गावो मे सबेरे कजूस आदमी का नाम कोई नही लेता। इसी प्रकार से शत्रु का भी नाम नही लेना चाहिए क्योकि इससे अमगल की आशका होती है।

अमागलिक अवसरो पर उच्चारण किये जानेवाले कुछ शब्द ऐसे है जिनकी अन्य अवसरो पर की गयी आवृत्ति अत्यन्त अशुभ मानी जाती है। मृत व्यक्ति की श्मशान यात्रा मे "राम नाम सत्य है" इन शब्दो का उच्चारण किया जाता है। परतु पुत्रजन्म, यज्ञोपवीत, विवाह और गवना आदि शुभ अवसरो पर इस पदावली का अकस्मात, अनजाने उच्चारण भी अत्यन्त अशुभ तथा अमगल का कारण होता है। अत इस शाश्वतिक सत्य वाक्य का प्रयोग भी नितान्त निषिद्ध है।

(२) सम्बन्धियो का नाम न लेना

अपना जो घनिष्ठ तथा प्रियतम व्यक्ति होता है उसका भी नाम लेना निषिद्ध है। सभवत यह अतिशय प्रेम और स्नेह के कारण किया जाता है।

भोजपुरी प्रदेश मे स्त्रिया अपने पति का नाम कदापि नही लेती है। वे कितनी भी विपत्ति मे क्या न फसी हो, कितने भी सकट मे क्यो न हो परन्तु वे किसी भी दशा मे अपने पति के नाम का उच्चारण नही करती।[1] यदि उन्हे अपने पति को सम्बोधित करना होता है तो वे 'रउवा' अथवा 'ए रउँवा' शब्दो का प्रयोग करती हैं। यदि किसी अवसर पर पति का उल्लेख करना होता है तब 'बबुआ के बाबूजी' शब्दो से करती है। सास तथा ननद के समक्ष वे पति का उल्लेख 'राउर बेटा' तथा 'राउर भाई' शब्दो के द्वारा क्रमश करती है। पति भी अपनी स्त्री का नाम प्राय नही लिया करते। यदि उन्हे अपनी स्त्री को सम्बोधित करना होता है तब "ए बबुआ के भाई" अथवा "सुनतारू हो" आदि शब्दो का प्रयोग करते है। इस प्रकार पति-पत्नी एक दूसरे को नाम से कभी नही पुकारते।

इसी प्रकार से वधू अपने सास और ससुर का नाम कदापि नही लेती। 'भवहि' के लिए अपने 'भसुर' का नाम लेना नितान्त निषिद्ध है। माता तथा पिता अपने ज्येष्ठ पुत्र के नाम का उच्चारण कदापि नही करते। अतएव जेठे लडके को पुकारने के लिए कोई स्नेहपूर्ण छोटा सा दूसरा नाम रख लिया जाता है।[2]

(३) मृतात्मा का नाम न लेना

मृत व्यक्ति का भी नाम लेना निषिद्ध है। इसका कारण यह जान पडता है कि मृत का नाम लेने से उसकी स्मृति ताजी हो जाती है। और उसके सुख-दुःखो का स्मरण कर हृदय को कष्ट पहुँचता है। इसलिए उस मृतात्मा का नाम न लेना ही श्रेयस्कर माना जाता है।[3] कुछ आदिम जातिया अपने मृतपूवजो का नाम इसलिए नही लेती क्योकि उन्हे इस बात की सदा आशका बनी रहती है कि उस मृत व्यक्ति की प्रेत आत्मा (evil spirit) फिर लौट कर चली न आवे। परतु भोजपुरी क्षेत्र मे ऐसा कोई विश्वास प्रचलित नही है।

---

१ इस सम्बन्ध मे बलिया जिले के सोनवर्सा गाँव की एक स्त्री का उदाहरण यहाँ प्रस्तुत करना कुछ अनुचित न होगा। इस स्त्री के पति का नाम अनन्त राय था जो कलकत्ता मे नौकरी करता था। एक बार वह अपनी स्त्री को कलकत्ता ले गया। सयोगवश एक दिन कलकत्ता जैसे महानगर के 'बडा बाजार' मे घूमते समय अनन्त राय का अपनी स्त्री का साथ छूट गया। वह भूल गयी। पुलिस ने उसके पति का नाम उससे पूछा परन्तु उसने बतलाने से इन्कार कर दिया। परन्तु बडी चतुरता से उसने बतलाया कि मेरे पति का नाम वह व्रत है जो श्रावण शुक्ला चतुर्दशी को किया जाता है अर्थात् अनन्त। इस प्रकार उसने अपने पति के नाम का उच्चारण किये बिना ही उसे प्रकट कर दिया।

२ मेरी पूजनीया माता जी बडे भाई साहब (अपने ज्येष्ठ पुत्र) का नाम कदापि नहीं लेती थी। वे सदा उन्हे 'नन्हकू राम' के नाम से पुकारती थीं। पूज्य पिता जी भाई साहब को सदा 'बबुआ' कहा करते थे। मने कभी उन्हे नाम लेकर पुकारते नहीं सुना।

३ इन पक्तियो के लेखक को इस सम्बन्ध मे एक सच्ची घटना ज्ञात है जो इस प्रकार है। एक नव विवाहिता युवती का युवक पति अभी हाल ही मे सक्रामक रोग से पीडित होकर मर गया। कुछ दिनो के बाद उस घर मे किसी का विवाह हुआ। विवाह के अवसर पर सभी मृत पुरुषो का नामोल्लेख कर गीत गाने की प्रथा है घर की स्त्रियो ने इसी प्रथा के अनुसार उस मृत युवक के नाम का भी उल्लेख कर दिया जिसे सुनकर उसकी विधवा पत्नी 'पूका फाडकर' रोने लगी। इस प्रकार घर मे कुहराम मच गया।

(४) राजाओ तथा पवित्र आत्माओ का नामोच्चारण न करना

श्रेष्ठ व्यक्तियो, आदरणीय पुरुषो तथा पवित्र आत्माओ का नाम लेना निषिद्ध माना जाता है। जापानी लोग अपने राजा हिरोहितो के नाम का उच्चारण नही करते। भारतीय सघ म विलयन के पूव देशी राज्यो के राजाओ का नाम आदर तथा श्रद्धा के कारण कोई नही लेता था। काशी नरेश "हिज हाइनेस दि महाराजा आफ बनारस" के नाम से अभिहित किये जाते थे। साधारण जनता उन्हें 'महाराजा' के नाम से ही जानती थी।

इसी प्रकार से गुरुओ, आचार्यों, महन्तो तथा शकराचार्यो का भी नाम लेना निषिद्ध माना जाता है। चूकि ये पूत तथा पवित्र व्यक्ति समझे जाते है, अत इनका नामोल्लेख अनादर सूचक है। शकराचार्यों के उल्लेख के लिए "अनन्त श्री विभूषित श्री १००८ शकराचाय भगवान्" इस पदावली का प्रयोग किया जाता है। शकराचाय का नाम लेना अशोभन तथा अशिष्टता समझी जाती है। अत वे सदा भगवान्', श्री १००८ या आचाय पाद के नाम से अभिहित किये जाते है।

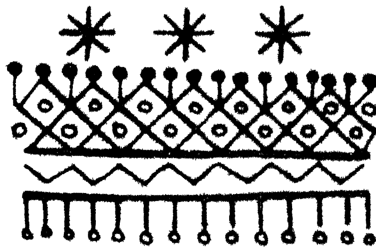
इसी प्रकार से मदिर के पुजारी तथा मठो के मठाधीश अथवा महन्थो को 'महाराज' की सम्मानित उपाधि से अभिहित किया जाता है। गावो के लोग अपने दीक्षा-गुरुओ को गुरु जी तथा पुरोहित को 'उपरोहित' के नाम से स्मरण करते है। इन मठाधीशो, महन्थो, पण्डा-पुजारियो, गुरु, पुरोहितो के पवित्र (अथवा अपवित्र) चरित्र का सामान्य जनता के हृदय पर इतना अधिक प्रभाव होता है कि श्रद्धा से अभिभूत होकर वे उनका नाम कदापि लेने की कल्पना भी नही कर सकते।

(५) देवताओ का नाम लेना निषिद्ध

भारत मे देवताओ का नाम लेना निषिद्ध नही माना जाता। इसके ठीक विपरीत इनके नामो का स्मरण करना अथवा जपना अक्षय पुण्य का कारण होता है। परन्तु एक ही देवता ऐसे ही है जिनका नाम लेना निषिद्ध है और वह है हनुमान। इनके विषय मे लोगो का ऐसा विश्वास है कि प्रात काल मे जो व्यक्ति हनुमान् का नाम लेता है उसे दिन भर भोजन से भेट नही होता। गोस्वामी जी ने भी इस तथ्य का प्रतिपादन किया है—

"प्रात लेइ जो नाम हमारा
सो तेहि कुछु न मिले अहारा।।"

इसलिए प्रात काल बन्दर का नाम लेना मना है। हनुमान् बन्दर जाति के शिरोमणि तथा सेनापति है परन्तु इनका नामोच्चारण निषिद्ध है।



अध्याय १३

मनोरंजन के साधन

○ ○

सामान्य विवरण

गाँवो मे मनोरंजन के साधन अत्यन्त सीमित है। बच्चो के मनोरजन का प्रधान साधन खेल है जिसे दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है।

(१) घर के भीतर के खेल (Indoor games)

(२) घर के बाहर के खेल (Outdoor games)

परन्तु वयस्क लोगो के लिए मनोरजन की कोई विशेष सामग्री उपलब्ध नही होती। वे रामलीला देखकर अथवा किसी मेला मे जाकर अपना मनोरजन किया करते है। बारातो मे जो नाटक मण्डली अथवा नृत्य मण्डली आती है वह भी मनोरजन का साधन बन जाती है। कुछ लोग रामायण का सामूहिक पाठ तथा कीतन भी किया करते है। मनोरजन के इन साधनो को निम्न श्रेणी मे विभक्त किया जा सकता है—

(१) परिच्छेद—घर के बाहर के खेल

(२) परिच्छेद—घर के भीतर के खेल

(३) परिच्छेद—अन्य खेल ताश आदि

(४) परिच्छेद—मेला आदि

(५) भिखरिया का नाच

(६) कीर्तन—रामायण का भजन

(७) लोकनाट्य—रामलीला

खेल-कूद

खेल कूद का महत्त्व

खेल-कूद का महत्व—किसी देश की पौरुष शक्ति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उस देश के खेल कूदो का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। प्राचीन यूनान तथा रोम साम्राज्य मे प्रचलित खेलो से पता चलता है कि इन देशो के लोग कितने वीर तथा शक्तिशाली थे। ग्रीस देश मे 'ओलम्पिक' नामक खेल हुआ करते थे जिसमे मानव-शक्ति का भिन्न-भिन्न रूपो मे प्रदशन किया जाता था। यहाँ 'मेरेथानरेस' के नाम से एक लम्बी दौड हुआ करती थी जो बहुत ही परिश्रम साध्य थी। रोमन साम्राज्य के उत्कष के दिनो मे रोम नगरी मे बने हुए 'कोलोसियम' मे बडे ही भयकर खेल हुआ करते थे जिनमे शारीरिक शक्ति का पूण प्रदर्शन किया जाता था। शीतप्रधान यूरोप के देशो मे स्कीयिंग (skiing) की जो परम्परा है वह उनके अद्भुत साहस और पराक्रम को प्रदर्शित करती है। कहने का आशय केवल इतना ही है कि विभिन्न देशो मे प्रचलित भिन्न-भिन्न प्रकार के खेल-कूदो के विषय मे अनुसन्धान करने से वहा के लोगो की वीरता, पराक्रम, साहस और कष्ट-सहिष्णुता का पता चलता है। किंबहुना उनके स्वभाव तथा जातीय चरित्र (National Character) को भी सम्यक् प्रकारेण जाना जा सकता है।

भोजपुरी-प्रदेश मे जो खेल-कूद आजकल प्रचलित हैं उनको दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है—Outdoor games और Indoor games इनको मैदानी खेल और घरेलू खेल कहा जा सकता है। यहाँ के मैदानी खेलो मे कबड्डी,

चिक्का, गुल्ली-डण्डा, ओल्हा-पाती आदि हे ओर घर मे के खेलो मे चन्दा मामा, चिऊँटा मामा, ओका-बोका आदि को गणना को जा सकती है। अवस्था के अनुसार इन खेलो की दो श्रेणी पायी जाती हे। (क) बालको के खेल (२) वयस्को के खेल। बालको के खेल के अन्तगत गुल्ली-डण्डा, ओका-बोका, ओल्पा पाती आदि आते हे। वयस्को के खेल म कबड्डी, चिक्का, दौड आदि का समावेश किया जा सकता हे। लिग के विचार से भी इन खेलो का दा वर्गो मे बाटा जा सकता हे। (१) लडको के खेल तथा (२) लडकियो के खेल। प्रथम के अन्तगत वे सभी खेल आते हे जिनका ऊपर उल्लेख किया गया हे। लडकियो के खेल मे प्रधानतया गोटी खेलना, हरदाबिछिया, झाका-झूमर की गणना की जा सकती ह।

इस प्रकार अवस्था तथा लिंग के अनुसार भोजपुरी खेलो म विविधता पायी जाती हे। बालको तथा तरुणो के द्वारा प्रधानतया खेल खेले जाते हे। भोजपुरी क्षेत्र के वृद्ध तथा वृद्धाये अपने बच्चो को कथा ओर कहानियाँ सुनाती हे, उन्हे पालने मे सुलाकर खेलाती हे—यही इनका एकमात्र खेल तथा मनोरजन का साधन है।

(१) परिच्छेद

इस क्षेत्र मे मैदानी खेलो (outdoor games) की ही प्रधानतया पायी हे जिनमे कबडडी, चिक्का, गुल्ली-डण्डा, ओल्हा-पाती, आँख-मिचोनी, कोडा-कोडा दोड आदि प्रसिद्ध हे। अत सवप्रथम उन्ही खेलो का यहाँ वणन किया जाता है।

(१) **कबड्डी**—भोजपुरी-प्रदेश का यह सबसे प्रसिद्ध तथा लोक-प्रिय खेल है। इसे लडके तथा वयस्क समान रूप से खेलते हे। कबड्डी के इस खेल ने अब अन्तर-राष्ट्रीय 'स्टेटस' को प्राप्त कर लिया है। प्रति चौथे वष ससार के भिन्न-भिन्न देशो मे जो अन्तर-राष्ट्रीय ओलम्पिक खेलो का आयोजन होता हे उसमे कबड्डी का भी स्थान प्राप्त ह। समस्त भारत से चुनकर कबड्डी के खिलाडियो की टीम इस खेल मे सम्मिलित होती है और प्राय विजयश्री प्राप्त करती है। इस प्रकार यह खेल बहुत ही लोकप्रिय हो गया है।

कबड्डी के खेल मे बालको का समुदाय दो दलो मे विभक्त हो जाता है। प्रत्येक दल मे कितने बालक होगे इसकी कोई सख्या निश्चित नही हे। इस खेल के प्रत्येक दल मे पन्द्रह-बीस लडके भी हो सकत है परन्तु कम से कम दो लडको का होना आवश्यक है। खेल के मैदान मे दोनो दलो के बीच म एक रेखा खीच दी जाती है। प्रत्येक दल उसी रेखा के एक-दूसरी ओर आमने-सामने खडा हो जाता है। हाकी या फुटबाल के खेल की भाँति इन खिलाडियो के खडे होन का कोई स्थान निश्चित नही है। वे स्वतन्त्रता-पूर्वक अपने दल मे जहाँ भी चाहे खडा रहकर खेल खेल सकते है।

खेल प्रारम्भ होने के पहिले कौन-सा दल पहिले खेल खेलेगा इसका निश्चय 'टासिग' (Tossing) के द्वारा किया जाता है अर्थात् किसी सिक्के को आकाश मे उछाल कर उसके 'चित्त' अथवा 'पठ' होने के अनुसार निणय होता है। जो दल पहिले खेल को शुरू करता है, उस दल का एक सदस्य, उस 'सौमित्र रेखा' का पार कर दूसरे दल में प्रवेश करता है और उस दल के किसी व्यक्ति को छूकर अपने दल मे भागकर चला जाता है। दूसरे दल मे जाते समय यह खिलाडी कबड्डी, कबड्डी, कबड्डी आदि शब्द की पुनरावृत्ति करता जाता है जिसे "कबड्डी पढ़ाना" कहते है। यदि इस शब्द का उच्चारण करते हुए वह दूसरे दल के किसी के अग का स्पर्श कर यदि अपने दल मे भागने मे सफल हो गया तब उसकी जीत समझी जाती है और जिस व्यक्ति को उसने छुआ है "वह मर गया" ऐसा घोषित कर दिया जाता है। इस प्रकार 'मरे हुए' व्यक्ति का खेल मे भाग लेने का तब तक अधिकार नही मिलता जब तक प्रथम दल का कोई खिलाडी भी न 'मर जाय।' यदि "कबड्डी' वाले बालक का "साँस टूट" जाय और दूसरे दल वाले अपनी सीमा मे ही उसे छू दें तो यह भी "मर जाता" है। इसलिए यह खिलाडी इस बात का सदा प्रयास करता है कि साँस टूटने के पहिले ही वह अपने दल मे लौटकर वापस चला जाय। एक दल वाले दूसरे दल के 'कबड्डी पढाने वाले' खिलाडी को पकडने की कोशिस करते हैं जिससे उसकी 'साँस टूट' जाय और वह 'मर जाय'। वह खिलाडी दूसरे दल के अधिक से अधिक जितने भी व्यक्तियो को छूकर भागने मे समथ होता है वह उतना ही उत्तम तथा चतुर समझा जाता है। 'कबड्डी' पढाते' समय खिलाडी इसके अतिरिक्त कभी-कभी ये बोल भी बोलते है।

१—"आम छू आम छू कउडी झनक छू।
आम छू, आम छू कउडी झनक छू।।"

× + ×

२—आव तानी हो, परह जनि हो।
टाँग जाई टूटी, कपार जाई फूटी,
लरिकपन, छूटी।।"

३—"ए कबडिया रेता, भगत मोर बेटा।
भगताइन मोरी जोरी, खेलबि हम होरी।।"

× × ×

इसके अलावा नीचे के बोल मे कबड्डी खेलने का भी उल्लेख हुआ है।

४—"एक कबडिया आईलें, तबला बजाइले।
तबला मे पईसा, लाल बगइचा।।"

कबड्डी के खेल मे कुछ खिलाडी कुछ दूसरे 'बोल' भी बोलते हुए पाये जाते है। जैसे—

५—"आम झू आम छू, अमवा छू"

× × ×

६—"चल कबड्डी धाइले, तबला घुड़काइले।
तबला मे पइसा, लाल बगइचा।।"

इन बोलो का कोई अर्थ नही होता। विभिन्न शब्दो को लाकर यहाँ जोड दिया गया और इस प्रकार एक तुकबन्दी तैयार कर दी गयी है। इन बोलो का अभिप्राय केवल इतना ही है कि दूसरे दल वालो को यह पता लगता रहे कि 'कबड्डी पढाने वाले' खिलाडी की साँस अभी टूटी नही है।

कबड्डी का खेलते समय जब किसी दल के—एक को छोडकर—सभी खिलाडी "मर जाते" है तब अन्तिम खिलाडी दूसरे दल मे चुपचाप खेलने के लिए प्रवेश करता है। इसे 'गूंगी' कहते है। यह खिलाडी बिलकुल भी नही बोलता और मौन रहते हुए दूसरो को छूकर भागने का प्रयास करता है। इस खिलाडी के प्रतिद्वन्द्वी इसे पकडकर 'गुदराते' है तथा इसे बोलने के लिए बाधित करते है। ज्योही यह बोल देता है उसी समय यह 'मर गया' समझ लिया जाता है और इस प्रकार खेल समाप्त होने पर 'गूँगी' के विरोधियो की जीत समझी जाती है। परन्तु अब हार-जीत की गणना 'प्वाइन्ट' से की जाने लगी है।

कबड्डी का खेल बडा स्वास्थ्यवधक है। इसमे दौडने के कारण पैरो का और धर-पकड के कारण हाथो का पूण व्यायाम हो जाता है। तेज दौडने से शरीर मे स्फूर्ति भी आती है और रक्त का सचार शीघ्रता से होने लगता है। इसमे शारीरिक शक्ति को छोडकर खेल के किसी अन्य उपादान या सामग्री की आवश्यकता नही पडती। अत यह बडा ही सस्ता और सरल खेल है। नदी के बालुकामय तट पर खेत मे, मैदान मे, किसी बाग-बगीचा मे कबड्डी का खेल रचाया जाता है। अहीर के बालक अपने गायो को खेतो मे चराते समय इस खेल को खेलते है। आम के बगीचो की रखवाली करने वाले किसानो के लडके, अपने बगीचे मे ही इस खेल का आयोजन करते है। कहने का आशय यह है कि वर्षा-ऋतु को छोडकर कबड्डी का खेल किसी भी मौसम मे और किसी भी मैदान मे खेला जा सकता है।

(२) गुल्ली-डण्डा

कबड्डी के पश्चात् गुल्ली-डण्डा लडको का सबसे प्रसिद्ध, प्रचलित तथा लोकप्रिय खेल है। इसे सभी लडके बडे प्रेम से खेलते है। इस खेल के खिलाडी दो दलो मे बँट जाते है। खेल का प्रारम्भ किस दल की ओर पहिले किया जायेगा इसका निश्चय पैसे को आकाश मे उछालकर 'चित्त और पट' अर्थात् 'टासिंग' के अनुसार किया जाता है। इस खेल मे एक या डेढ हाथ लम्बा लकडी का डण्डा और एक छोटी सी गुल्ली आवश्यक होती है। गुल्ली के दोनो अन्तो को छोलकर कुछ पतला (चासल) बना दिया जाता है जिससे गुल्ली आसानी से ऊपर उछल सके। फिर जमीन मे चार अगुल गहरा गड्ढा बना दिया जाता है जिसे 'गुडुपी' कहा जाता है। कुछ लोग इसे 'कुपी' भी कहते है।

प्रथम दल का एक खिलाडी खेल को आरम्भ करता है। यह अपने हाथ मे डण्डा लेकर गुल्ली को गुडुपी के ऊपर रख देता है। फिर उसे डण्डे से गुल्ली को दूर फेकता है। दूसरे दल के खिलाडी उस गुल्ली को 'लोकने' का प्रयास करते है अर्थात् गुल्ली के जमीन पर गिरने के पहिले अपने हाथो से पकड लेते है। यदि ऐसा करने मे वे समथ हो गये तो खेलने वाले लडके का दाँव चला जाता है अर्थात् वह 'आउट' हो जाता है। यदि गुल्ली जमीन पर गिर गयी तो दूसरे दल वाले उसे उठाकर इस हिसाब से फेकते है कि गुल्ली 'गुडुपी' मे गिर जाय। ऐसा होने पर भी खिलाडी 'आउट' माना जाता है। गुडुपी की ओर फेकी गयी

गुल्ली को खिलाडी डण्डे से मारता है जिसे दूसरे दल वाले पुन 'लोकने' का प्रयास करते है। गुल्ली जितनी दूर जाकर गिरती है उस दूरी को खिलाडी अपने डण्डे की लम्बाई से नापता है। सात डण्डा नापने पर उसका एक प्वाइन्ट बनता है जिसे कहा जाता है। फिर वह उस गुल्ली को दूसरे बार भी मारता है और जब तक 'आउट' नही हो जाता तब तक खेलता रहता है। जब खिलाडी का डण्डा गुल्ली को मारते समय जमीन से स्पर्श कर जाता है तब भी उसे 'आउट' हो जाना पडता है। ऐसा करने पर दूसरे दल वाले चिल्लाने लगते है कि—

खुरकुच्ची मरले पियले सही।

अर्थात् चूकि तुम्हारा डण्डा जमीन छू गया अत तुम 'आउट' हो गये। गुल्ली को इस अन्दाज मे फेका जाता है जिससे वह गुडुपी मे गिर जाय। इस प्रक्रिया को 'पियाना' कहते है। इस प्रकार एक के आउट हो जाने के बाद दूसरा खिलाडी खेल खेलता है। जब दल के सभी खिलाडी खेल चुकते है तब वे अपने दल के प्रत्येक खिलाडी के द्वारा बनाय गये को जोड लेते है। यदि दूसरे दल के खिलाडियो की समष्टि के द्वारा बनाये कम हुए तो प्रथम दल की जीत और अधिक हुए तो द्वितीय दल की विजय मानी जाती है।

गुल्ली को डण्डे से मारने के सात प्रकार है—जिनके नाम निम्नाकित है।

(१) एडी (२) दोडी (३) तिलिया (४) चौरी (५) चम्पा (६) सेख (७) सुतेख।

जब गुल्ली को पैर के बाये या दाये पजे पर रखकर डण्डे से मारा जाता है तब इसे एडी कहते हैं।

बाये हाथ की तजनी और कनिष्ठिका अँगुलियो के ऊपर गुल्ली को रख कर इसे मारने की प्रक्रिया 'दोडी' कहलाती है। गुल्ली को 'तिलतिला' कर मारना 'तिलिया' के नाम से प्रसिद्ध है। बाये हाथ की मुट्ठी पर गुल्ली को रख कर मारना 'चौरी' और बाये हाथ मे रखकर मारना चम्पा कहलाता है। दाहिने हाथ के ऊपरी भाग मे गुल्ली को रखकर उसे ऊपर उछालकर मारना सेख और जमीन पर उसे रखकर डण्डे से दूर फेकना 'सुतेख' की सज्ञा प्राप्त करता है। इस प्रकार सात प्रकार से गुल्ली को डण्डे से मार कर यह खेल खेला जाता है। कुछ लोग 'एडी, दोडी, जैसे निरर्थक शब्दो के भीतर से अर्थ खोजने का व्यर्थ का प्रयास करते है।

जिस दल की जीत होती है उस दल के खिलाडी दूसरे पराजित दल वालो को अब 'पदाना' प्रारम्भ करते हैं। प्रत्येक खिलाडी गुल्ली को मारता है। गुल्ली जहाँ गिरती है वहाँ से दूसरा खिलाडी फिर उसे डण्डे से मारता है। प्रत्येक खिलाडी बारी बारी से ऐसा ही करता है। इस प्रकार खिलाडी अपने मूल स्थान से गुडुपी-से दो अथवा तीन फर्लांग दूर तक निकल जाते हैं। इसके पश्चात् विजेता पराजित दल वालो को 'पदाना' प्रारम्भ करते हैं। दूसरे दल का खिलाडी 'बड्डी' 'बड्डी' कहता हुआ जहाँ से खेल प्रारम्भ हुआ था उस दिशा मे दौडता है। जहाँ उसकी साँस टूट जाती है वहाँसे दूसरा खेलाडी दौडना शुरू करता है। इसके बाद तीसरा और चौथा खिलाडी दौड लगाते हैं। जब ये खिलाडी 'बड्डी' 'बड्डी' कहते हुए क्रम से गुडुपी तक पहुँच जाते है तब खेल समाप्त समझा जाता है। परन्तु पराजित खिलाडी यदि अपने निर्दिष्ट स्थान तक नही पहुँच सके तब विजयी दल के खिलाडी डण्डे से गुल्ली को मारते हुए फिर उन्हे 'पदाना' शुरू करते हैं। इस प्रकार यह खेल घटो तक चलता रहता है।

गुल्ली-डण्डा के खेल मे हाथ, पैर तथा शरीर के अन्य अगों का भी व्यायाम होता है अत यह मनोरजक होने के साथ ही परिश्रमजन्य खेल है। इसमे प्रयुक्त होने वाली सामग्री सर्वत्र सुलभ होने के कारण धनी तथा निर्धन सभी वर्ग के बालक इसे समान रूप से खेल सकते है।

(३) गूँगा-गूँगी

यह बच्चो का एक खेल है जिसमे उन्हें मौन रहने की साधना करनी पडती है। इसीलिए यह 'गूँगा-गूँगी' के नाम से प्रसिद्ध है। सन्ध्या के समय जब दो-चार बच्चे एक साथ बैठ जाते हैं तब वे आपस में मौन रहने प्रतियोगिता करते हैं। इस खेल मे इस बात की परीक्षा की जाती है कि कौन लडका अधिक देर तक मौन व्रत की साधना करता हुआ चुपचाप बैठा रह सकता है। चूकि बुलबुलापन बच्चो का स्वभाव होता है, अत यह खेल उनके धैर्य को चुनौती देने वाला है। जब सब लडके एक साथ आकर बैठ जाते है तब उनमे से एक लडका निम्नांकित पंक्तियों को कह कर सर्वप्रथम बोलने वाले बालक की माँ-बहन से निकट का सबध स्थापित करता हुआ सभी को मौन रहने की शपथ दिलाता है।

"आदा बादा नून सवादा
मछरी के कटा, बैल के सींग।
जे बोली से गँइयाँ बोली
सगरी नगरिया बोली॥
जे बोली ओकरा माई के ।"

इस शपथ के उच्चारण करने के साथ ही सभी लडके 'कोईरी के देवता' की तरह चुपचाप मौन बैठ जाते है। परन्तु यदि कोई बालक चपलतावश बोल उठता है तो मा की गाली उसी के सिर पडती है।

इस खेल का उद्देश्य बालको के चित्त को एकाग्र करना है। कुछ देर तक चुपचाप मोन बैठने से उनके चित्त की एकाग्रता बढती है जिसका उपयोग वे अपने पठन-पाठन के काय मे करते हे।

(४) कोडा-कोडा के खेल

कुछ लडके गोलाई मे जमीन पर बैठ जाते है। उनमे से एक बालक अपनी गम्छी (तौलिया) के अगले भाग मे गाँठ बाध कर उसे कोडे के आकार का बना लेता है। फिर वह बैठे हुए लडको के पृष्ठ भाग मे गोलाई मे दाडता है। इसी दौड के बीच मे वह किसी लडके के पीछे चुपके से अपने कोडे को रख देता है। जिस लडके के पीठ के पीछे वह कोडा रखा गया है यदि उसे इस बात का पता लग गया तो वह उस कोडे को अपने हाथ मे लेकर स्वय दौडने लगता है और वह भी यही प्रयत्न करता है कि इस कोडे को किसी अन्य लडके के पीछे रख दे। यदि उस लडके को इस रहस्य का पता नही चला और दौडने वाला बालक पुन उसी स्थान पर दौडकर आ गया जहा उसने कोडा रखा था तब वह उस कोडे से उस बालक को पीटने लगता है। दो चार कोडे मारने के पश्चात् वह उसे अपना कोडा उस दण्डित बालक को दे देता है। वह लडका भी पुन उसी प्रकार दौडता हुआ उस कोडे को किसी अन्य बालक के पीठ के पीछे छिपा कर रख देता है। बालक के एक राउण्ड दौडकर आने तक यदि अन्य बालक को अपने पीठ के पास रखे गये कोडे का पता न चला तो फिर उसको भी कोडे से 'मारा' जाता है। इस प्रकार इस खेल का आनन्द सभी बालक उठाते है। परन्तु जो बालक सतक रहते है, जो सदा यह देखते रहते है कि कही कोडा उनकी पीठ के पीछे तो नही रखा जा रहा है वे इस कोडे की मार से वंचित रहते हैं।

(५) जय कन्हैयालाल की

इस खेल मे तीन-चार लडके भाग लेते हैं। जिनकी अवस्था आठ-दस वष की होती है। दो लडके आमने-सामने खडे हो जाते है और अपने दोनो हाथो को एक दूसरे की ओर फैला देते है। उसमे से एक लडका अपने दाहिने हाथ की तलहथी से अपना मुँह ठोकता है और 'आँ-आँ-आँ' की आवाज करता है। इसके बाद वह उस हाथ की तलहथी से अपने बाये हाथ की केहुनी को पकड लेता है और अपने दाये हाथ को सीधा रखता है। दूसरा लडका भी इसी प्रकार करता है। इसके बाद पहिला लडका अपने बाये हाथ से दूसरे लडके की हाथ की केहुनी को पकड लेता है। दूसरा लडका भी अपने बाये हाथ से पहिले लडके के हाथ की केहुनी को पकड लेता है। इस प्रकार चार हाथो को मिला देने से तीन खाने बन जाते है। तीसरा लडका अगल-बगल वाले खाने मे अपना पैर लटका कर बीच वाले खाने मे बैठ जाता है और अपने दोनो हाथो से दोनो लडको के सिर को पकडे रहता है जिससे वह गिर न पडे। दोनो लडके अपने हाथो पर उसे बैठा कर उसे घुमाने लगते है और यह 'बोल' बोलते रहते है।

जय कन्हैयालाल की, मदन गोपाल की।
लडिकन के हाथी जोडा, बुढवन के पालकी॥

इस प्रकार तीसरा लडका पालकी पर चढने का आनन्द लेता है और उसके दोनो साथी उसे अपने हाथो पर बैठा कर उसे घुमाने मे मनोरजन का अनुभव करते है।

(६) हमार घोडी विरवनी

यह खेल केवल दो लडको के बीच मे खेला जाता है। दो लडके अपने दाये और बाये हाथ की तलहथी को इस प्रकार से जकड लेते है कि दोनों कनिष्ठिका अँगुलियाँ और दोनो अँगूठे एक दूसरे के आमने सामने हो। वे लोग दोनो बिचली अँगु-

लियो (मध्यमा) को छोडकर शेष सभी अँगुलियो को आपस मे फसा देते है। वे दाना मध्यमा अगुलियो को आगे की ओर निकाले रहते है। तथा इनकी घोडी की कल्पना कर लेते हे। एक लडका दूसरे से पूछता हे कि तुम्हारी घोडी कान हे। वह जिस अँगुली को घोडी बतलायेगा उसे स्थिर करके वह दूसरी बिचली अँगुली से उसे चिडाना शुरू कर देता हे जिसे 'रिगाना' या 'बिराना' कहा जाता है। वह 'बिराते' समय निम्नाकित 'बोल' बोलता है।

"तहरा घोडी के टाँग टूटल,
हमार घोडी विरवनी "

इस प्रकार यह खेल कुछ देर तक चलता रहता है।

(७) घोडा के खेल

बालको को घोडा-घोडी पर चढने का बडा शोक हाता है। विवाह आदि मे जब भी घाडे पर किसी दूसरे के साथ उन्हे बैठने का अवसर मिलता है वे अतिशय आनन्द का अनुभव करते हे। परन्तु जब वास्तविक घोडा उपलब्ध नही होता तब वे एक लम्बी लाठी को ही घोडा के रूप मे कल्पित करते है। व इस लाठी को दोनो पैरो के बीच मे रखकर उस पर बैठने की कल्पना करते है। लाठी का कुछ अश दोनो पैरो के आगे कुछ निकला रहता हे। इसको बालक अपने बाये हाथ से पकडे रहता है और दाहिने हाथ मे चाबुक के रूप मे बाँस की एक छडी ले लेता है। इसी छडी से वह अपने 'घोडे' को तेज चलने के लिए मारता है ओर लाठी पर एक चाबुक जमाकर द्रुतगति से स्वय चलन लगता है। वह 'घोडा' को चलाते समय यह 'बोल' कहता है—

"दिन वहाडें खेत उजाडे,
पाँडे जी के घोडी।
पाँडे जी से बढ़ि के निकललि,
पाँडे जी के जोडी।।

इस प्रकार वह लाठीरूपी घोडे पर चढा हुआ घुडसवारी के आनन्द का अनुभव करता है। 'सोलो सगीत' की तरह यह खेल केवल एक ही बालक के द्वारा खेला जाता है।

गॉवो मे घोडा पर चढना धनी, समृद्ध तथा शौकीन लागो का काम समझा जाता है। अत बालक, असली घाडा न सही, काठ (लाठी) के नकली घोडे पर चढकर ही उसका आनन्द उठाते है।

(८) घुमरी परउवा

यह खेल पॉच छ लडके मिल कर एक साथ खेलते है। वे एक स्थान मे गोलाई मे घूमते जाते हैं। इस प्रकार गोलाई मे चक्कर काटते-काटते उन्हे चक्कर आ जाता है और वे जमीन पर गिर पडते हैं। कुछ देर के बाद वे जमीन से उठकर फिर घूमने लगते है और 'घुमरी परउवा' खेलने मे मस्त हो जाते है। वे चक्कर काटते समय यह गीत गाते जाते हैं।

"घुमरी परौआ, चाक डोलौआ।
घुमरी परौआ, चाक डोलौआ।।
चाक डोले चक बम्बक डोले।
खरवा पीपर कबहूँ ना डोले।।

(९) घोडी का खेल

छोटे-छोटे बच्चे इस खेल को बडे प्रेम से खेलते है। इसे खेलते समय कोई लडका अपने दोनो जघा के बीच मे एक लम्बी लाठी रख लेता है जिसके अगले भाग को वह अपने बाये हाथ से पकडे रहता है। दाहिने हाथ मे बाँस की एक छडी लेकर वह अपने 'घोडी' को पीटता है और उसे आगे तेज चलने के लिए प्रेरित करता है। लड़का लाठी को पकडे हुए धीरे धीरे आगे चलता रहता है और इस प्रकार अपने कल्पित 'घोडी' पर चढने के काल्पनिक सुख का अनुभव करता है। वह घोडी पर चढे हुए इस गीत को भी गाता जाता है।

"दिन वहाडे खेत उजाड़े,
पाँडे जी की घोड़ी।

पाँडे जी से बढि के निकलल
पाँडे जी की जोडी।।"

(२) परिच्छेद

घर के भीतर के खेल

घर के भीतर के खेलो मे उन क्रीडाओ की गणना की जाती हे जो घर के भीतर आनन्द से बैठकर खेले जाते है। जैसे ओका-बोका, झाका-झूमरि और अन्हर-चटकी आदि। इन खेलो के लिए विशेष स्थान की आवश्यकता नही होती बल्कि ये मकान के किसी एक कमरे मे बैठ कर खेले जा सकते है। बरसात के दिनो मे जब बाहर मैदान मे निकल कर खेलना सम्भव नही हो सकता, तब ये खेल घर के भीतर खेले जाते है। इन खेलो मे विशेष परिश्रम नही करना पडता। अत सभी प्रकार के बालक इसमे आनन्दपूवक माग लेते है।

(१) ओका-बोका का खेल

यह एक बडा ही मनोरजक खेल है। इसमे दस-पाच लडके एक साथ बैठते है। ये अपने दोनो हाथो की अँगुलियो से जमीन को छूते हुए अपनी हथेली को ऊपर उठाये रहते है। फिर उस दल का नेता प्रत्येक बालक के हाथो को अपने हाथ से स्पर्श करता हुआ यह कहता है—

"ओका बोका तीन तडोका,
लउवा लाठी, चन्दन काठी।
बाग मे बगउवा डोले,
सावन मे करइला फूले,
ओ करइला के नाव का
इजइल, बिजइल, पानवा, फूलवा
ढोढ़िया पचक।

पहिले यह अगला बालक 'ओका' कहकर दूसरे बालक के हाथ को स्पश करता है। फिर 'बोका' कह कर तीसरे बालक के हाथ को छूता है। इसी प्रकार वह उपर्युक्त गीत गाता हुआ प्रत्येक बालक के हाथ को स्पश करता जाता है। जब गीत का अन्तिम शब्द 'पचक' आता है, तब वह जिस बालक के हाथ को उस समय छूता है उसे जमीन पर पिचका देता है। फिर जिस बालक का हाथ जमीन पर पिचकाया गया रहता है वह इस खेल को शुरू करता है और पुन 'ओका-बोका' कहने का क्रम जारी कर देता है।

बालकगण इस खेल को मनोरजन के लिए खेला करते है। इसमे आठ-दस वष की आयु वाले बच्चे ही माग लेते हैं।

(२) झाका-झूमरि—

यह लडकियो का बडा ही लोकप्रिय खेल है। इस खेल मे नृत्य का मी आयोजन रहता है। अत मनोरजन की मात्रा इससे अधिक बढ जाती है। आठ-दस लडकियाँ एक दूसरे के हाथ को पकडकर गोलाई मे खडी हो जाती है। वे कमी आगे आती है, कमी पीछे जाती है। इस प्रकार वे झूमती रहती है। फिर वे गोलाई मे बडे जोरो से झूमती है और निम्नलिखित गीत गाती है।

"एक हाडी झिकडा, बँडेरी लागल धूआ।
सासु पकवली, गल गल पूआ।
अपने खइली घिआवाहा पूआ।
हमरा के दिहली तेलहवा पूआ।
ना खाइबि पूआ, खेलबि जूआ,
ना खाइबि पूआ, खेलबि जूआ।"

यह क्रम बहुत देर तक चलता रहता है। भोजपुरी गाँवो मे 'झाका झूमरि' का खेल बहुत ही प्रसिद्ध है। जब दो तीन स्त्रियाँ आपस मे बातचीत करती हुई एक दूसरी को झकझोरती है तब कहा जाता है कि—

का झाका झूमरि कहल बाड़ लोग।

ऐसा ज्ञात होता है इस खेल पर ब्रज की रास लीला का प्रभाव पडा है। इस खेल मे भाग लेने वाली लडकियो की सख्या जितनी अधिक हो उतना ही अच्छा है।

झूम झूम कर खेलने के कारण ही इसका नाम 'झाका-झूमरि' पड गया है।

अन्तिम दोनो पक्तियो—'ना खाइबि पूआ खेलबि जूआ' को गाती हुई लडकियाँ बडी द्रुतगति से गोलाई मे नाचने लगती है। उनके पैरो मे गति और हाथो मे जोर आ जाता है और वे एक दूसरे का हाथ पकड कर नृत्य का अभियन करती है।

तार काटो तरकुल काटो

छोटे बच्चो का यह खेल भी बडा मनोरजक होता है। पाँच-सात बच्चे एक जगह एकत्र हो जाते है। उनमे से कोई एक लडका अपने बाये पैर की एडी को जमीन मे टिका कर पैर के अँगूठे को ऊपर उठाये रहता है। फिर वह इसी अगूठे को अपने बाये हाथ से पकड कर मुट्ठी बाँध लेता है। फिर वह दूसरे लडको को अपने बाये हाथ के अँगूठे को पकड कर मुट्ठी बाँधने के लिए कहता है। इस प्रकार सभी लडके एक बाद के एक अपनी मुट्ठी बाँधते जाते है। जब मुट्ठियो का एक लम्बा और ताड के समान ऊँचा-एक पेड सा बन जाता है तब पहिला लडका अपने हाथरूपी तलवार या टाँगी से उसे काटने लगता है। ऐसी कल्पना की जाती है कि ताड का यह कल्पित वृक्ष कुल्हाडी से काटा जा रहा है। ऐसा करते समय वह इन पक्तियो का बडे प्रेमयुक्त स्वर से उच्चारण करता या गाता है—

तार काटो तरकुल काटो
काटो रे बन खाजा।
हाथी पर के घुघुरा
चमकि चले राजा॥
राजा के बोलइया
भइया के दोपाटा।
हींच मारो, घींचि मारो
मूसर अइसन बाचा॥

कुछ लडके बाचा के स्थान पर बेटा भी कहते है। वे यह गीत गाते हुए एक-एक मुट्ठी को हटाकर अलग करते जाते है। जब सब मुट्ठियो को "काट" दिया जाता है तब खेल खतम हो जाता है।

घुघुआ माना

यह खेल बच्चे अपनी माता के साथ खेलते है। इसमे एक वर्ष से लेकर पाँच-छह वर्ष के बच्चे ही भाग लेते है। इसमे माता का प्रधान भाग होता है। माता अपने बच्चो को साथ मे लेकर किसी चारपाई पर लेट जाती है। फिर वह अपने दोनो पैर के घुटनो को मोड लेती है और उन घुटनो पर किसी छोटे बच्चे बैठा देती है। इसके पश्चात् वह अपने घुटने को धीरे धीरे ऊपर—आकाश की ओर उठाती है। घुटने के साथ ही उस पर बैठा हुआ छोटा बच्चा भी ऊपर की ओर उठता जाता है। माता अपने दोनो हाथो से उस बच्चे को पकडे रहती है जिससे बच्चा कही गिर न पडे। वह अपने दोनो पैर के घुटने को ऊपर उठाती और नीचे गिराती रहती है जिससे बालक को बडा आनन्द आता है। इस खेल को करते समय वह माता निम्नाकित गीत भी गाती रहती है जिससे बच्चे का मनोरजन भी होता रहता है —

"गलर-गलर पूआ पाकेला।
चिलर खोंइछा नाचेला॥
ओ रे चिलरा खेलत बरिहाम।
ले अइहे तिलकिया बान॥

ओही धान से चिउरा कूटबि।
बाभन, बिसुन नेवता पठइबि॥
बाभन के पूतवा दीही असीस।
बबुआ जीअसु लाख बरीस॥

बच्चो को मिठाई और पूआ खाना अच्छा लगता है। चिउरा का भुजना भी उनको प्रिय है। अत माता भोजन की इन वस्तुओ का उल्लेख इस गीत मे करती है।

एक लेखक ने इस गीत मे गभीर अथ खोज निकालने का प्रयत्न किया है परन्तु उनका यह प्रयास उतना ही निष्फल है जितना बालू से तेल निकालना। सच तो यह है कि इन गीतो मे बच्चो के मनोरजन के लिए शब्दो की योजना की गयी है।

इस खेल मे प्रयुक्त होने वाला दूसरा खेल इस प्रकार है जिसमे बच्चे के मामा के आने की सूचना दी गयी है।

"घुघुआ माना उपजे धाना।
धनि धनि अइले बबुआ के मामा।
बबुआ के नाक कान दुनो छेदइबो,
सोनरा के देबो भर सुप धाना॥
सोनरा के पूतवा दीही असीस।
बबुआ जीअसु लाख बरीस॥

छोटे बच्चो के नाक और कान छेदने की प्रथा है। इस काय को गाव का सोनार सम्पादित करता है। माता अपने पुत्र के दीघ आयुष्य की कामना करती हुई कहती है मेरा प्यारा बच्चा एक लाख वर्ष तक जीता रहे।

इसी खेल मे यह तीसरी गीत भी गायी जाती है जो इस प्रकार है।

"घुघुआ माना मनेर से।
सठिया के चाउर डेढ सेर॥
बबुआ खाले दूध-भातावा।
बिलइया चाटें पातावा॥
पातवा उधिआई गइल।
बिलइया लजाई गइल॥"

अन्त मे माता अपने ऊपर उठाये हुए दोनो घुटनो को धीरे धीरे नीचे ले आती है और यह 'बोल' बोलती है।

"नयी भीति उठेले, पुरानी भीति गिरेले।
सँभरले रहिहे रे बुढ़िया माई॥

यहाँ नयी भीति का अथ नयी पीढी से लिया जा सकता है परन्तु यह क्लिष्ट कल्पना मात्र है।

घुघुआ माना

यह खेल दिन अथवा रात्रि मे कभी भी खेला जा सकता है जिसमे चार-पाँच वर्ष से कम आयु के बालक ही भाग ले सकते है। गृहकार्य से अवकाश प्राप्त करने पर माता अपने छोटे बच्चे के साथ यह खेल खेलती है। वह चारपाई पर सोकर पहिले अपने दोनो घुटनो को मोड लेती है। फिर वह बच्चे को अपने घुटनो पर बैठा कर अपने पैरो को धीरे धीरे ऊपर उठाती है। छोटा बच्चा ऊपर उठने पर कही गिर न जाय अत वह उसे अपने दोनो हाथो से पकडे रहती है। माता अपने घुटनो को कभी ऊपर उठाती और कभी धीरे से नीचे गिराती है। इससे बच्चो को झूले पर चढने का आनन्द मिलता है। बच्चो का मनोरजन करने के लिए माता निम्नाकित गीत भी गाती जाती है—

अरर बरर पूआ पाकेला,
चीलर खोंइछा नाचेला।
चीलर भइले थोर,
मोर बाबू के मुंहवा गोर॥

इसके साथ ही मातायें इस गीत को भी प्राय गाती हे—

"हाल हाल बबुआ,
कुरुई मे ढेबुआ।
माई अकसरुआ,
बाप दरबरुआ।।
हाल हाल बबुआ।।

माता बच्चे को अपने पैर रूपी पालने पर झुलाती हुई उसे आनन्द प्रदान करती हे। बच्चा ध्यान से गाने को सुनता है और उसके स्वर-साम्य के माधुय के कारण धीरे-धीरे निद्रा देवी की गोद मे चला जाता है। बिहार के सारन जिले मे इस अवसर पर निम्नाकित गीत गाया जाता है—

"गलर गलर पूआ पाकेला
चिलरा खोइछा नाचेला।
जोरे चिलरा खेत खरिहान,
ले अइहे तिलकिया धान।
ओही धान से चिउरा कुटाइबि,
बाभन बिसुन नेवता पठाइबि।
बभना के पूतवा दीही असीस,
बबुआ जीअसु लाख बरीस।।"

बच्चो के लिए मामा बडा ही प्रिय सम्बन्धी होता है। वह जब भी अपने बहिन के यहाँ जाता है अपने भानजो के लिए प्रचुर मात्रा मे मिष्ठान्न लाता है। इसीलिए बच्चे मामा के आगमन पर बहुत प्रसन्न होते है। नीचे के गीत मे इसी का उल्लेख पाया जाता है।

"घुघुआ माना उपजे धाना,
धनि धनि अइले बबुआ के मामा।
बबुआ के नाक-कान वूनू छेदवइबों,
सोनरा के देबो भरसूप धाना।
सोनरा के पूतवा दीही असीस
बबुआ जी उसु लाख बरीस।।"

बच्चो को दूध-भात खाना बडा प्रिय है। वे बडे प्रेम से इसे खाते है। इस तथ्य का उल्लेख नीचे के गीत मे है—

"घुघुआ माना मनेर से
सठिया के चउरा डेढ़ सेर।
बबुआ खाले दूध भातवा,
बिलइया चाटे पातवा।
पातवा उधिआइ गइल,
बिलइया लजा गइल।।"

माता अपने घुटनो पर बच्चो को बैठाकर जब घुटनो को ऊपर-नीचे करती रहती है उसी समय ये गीत गाये जाते हैं। चूकि इन सभी गीतो का प्रारम्भ 'घुघुआ माना' शब्दो से होता है। अत इस खेल का नाम ही 'घुघुआ माना' पड गया है।

खेल के अन्त मे माता अपने पैरो को धीरे-धीरे ऊपर उठाकर फिर उन्हे नीचे गिराती हुई यह गाती है—

नई भीति उठेले
पुरानी भीति गिरेले
सम्भरिहे रे बबुआ।"

इस प्रकार अपने घुटनो को नीचे गिरा कर वह खेल को समाप्त कर देती है।

चिऊँटा हो चिऊँटा का खेल

इस खेल मे पाँच-सात लडके भाग लिया करते है जिनकी आयु पाँच से दस-बारह के बीच होती हे। वे गोलाई मे बैठ जाते हे। प्रत्येक लडका एक दूसरे के कानो को अपने दाये तथा बाये दोनो हाथो से पकड कर अपनी ओर खीचता है। ऐसा करने मे ये लोग आगे ओर पीछे झुकते रहते है। एक दूसरे का कान जोर से खीचते हुए लडके यह 'बोल' बोलते है—

"चिऊँटा हो चिऊँटा
मामा के गगरिया,
काहे फोरल हो चिऊँटा।
मामा के झगरवा,
छोडाव हो चिऊँटा॥"

ए चिऊटॉ ! तुमने मामा की गगरी क्यो फोडी ? इतना कहते ही लडके एक दूसरे का कान छोडकर मामा और मामी का झगडा छुडाने लगते हु। अन्त मे लडके आपस मे 'लाता-लूती' करने लगते है और इस प्रकार से खेल समाप्त हो जाता है।

'चिऊँटा हो चिऊँटा' का यह खेल बच्चो मे बडा लोकप्रिय है। एक दूसरे का कान उमेठने मे उन्हे बडा आनन्द मिलता है ओर 'लाता-लूती' मे इसकी समाप्ति इसको पराकाष्ठा पर पहुँचा देती है। यह खेल दो लडको के बीच मे भी हो सकता है। अत जहाँ भी दो-तीन बच्चे बैठ जाते है वहाँ इस खेल को प्रारम्भ कर देते है।

ऑखि मुदौवल

इस खेल मे आठ-दस लडके भाग लेते है। इनमे से किसी एक बालक को 'चोर' की उपाधि प्रदान की जाती है। यह 'चोर' बालक किसी दीवाल अथवा पेड की ओर खडा होकर अपनी आँखो को दोनो हाथो से ढक देता है। शेष लडके भागकर किसी घर अथवा पेड की आड मे छिप जाते है। थोडी देर के बाद वह 'चोर' अपनी आखो को खोलकर अपने साथियो को खोजता है। जिस बालक को वह खोजकर पकडने मे समथ होता है वही बालक 'चोर' की सज्ञा को प्राप्त करता है। फिर वह उसी प्रकार अपनी आँखो को मूद कर, खडा रहकर खेल को चालू करता है। इस खेल के बोल हैं—

(१) खोल केबाड झकझूमरी
ताहारा भइया लेअइले चूनरी।
(२) ए बनवारी खोल केवाडी,
ताहारा घर मे लँहगा-साडी।
आन्हर कनिया बूढ़ महतारी,
बुनो रोवे पारा-पारी॥

ऑखि मुदौवल

इस खेल मे किसी दीवाल को कोठा मान लिया जाता है। चोर लडका दीवाल की ओर अपना मुँह करके अपनी आखो को दोनो हाथो से बन्द कर लेता है और अपने मुँह को दीवाल से 'सटाये' (चिपकाये) रहता है। शेष लडके यह 'बोल' बोलते हुए भाग कर कहीं छिप जाते है। थोडी देर के बाद चोर लडका अपनी आखे खोलता है और उन लडको मे से किसी एक का पता लगा लेता है। वह जिस लडके को छू देता है वही 'चोर' बन जाता है ओर वह भी फिर पहिले लडके के समान अपनी ऑखे बन्द कर खेल खेलता है। इस क्रीडा का 'बोल' है—

"खोल केवाडी झकझूमरी।
ताहार भइया ले अइले चूनरी॥"
× × ×
"ए बनवारी खोलउ केवाडी,
तहरा घर मे लँहगा सारी।
आन्हर कनिया, बूढि महतारी,
बूनो रोवें पारा-पारी॥"

अन्हर चटकी

यह एक बडा ही मनोरजक खेल है। इस खेल मे आठ-दस लडके इकट्ठे हो जाते हे। उनमे से एक लडका किसी दूसरे लडके की दोनो आँखो को अपने हाथो से बन्द कर देता है। फिर शेष लडके अपनी तजनी ओर मध्यमा अगुलियो के द्वारा उसके सिर मे ठोकर मारते है और उससे पूछते हे कि बतलाओ तुम्हे किसने ठोकर मारा। अनवरत ठोकरो का शिकार वह लडका दोनो आँखो के बन्द होने के कारण किसी बालक का नाम वतलाने मे असमथ होता है। अत वह किसी ठोकर मारने वाले लडके का हाथ पकड लेता है और उसे अपराधी साबित हो जाने पर उसी की आँखे बन्द कर दी जाती हे और अन्य लडके उसे ठोकर मारने लगते है। यह क्रम तब तक जारी रहता हे जब तक वह किसी ठोकर मारने वाले 'अपराधी' को पहिचान न ले अथवा पकड न ले। चूकि एक बालक दूसरे को ठोकर मारने मे आनन्द का अनुभव करता है अत इसे बडे चाव से खेलता है।

अन्हर चटकी

इस खेल मे अनेक लडके भाग लेते हे। सब लडके एक साथ बैठ जाते है और किसी एक लडके को आखो का अपने दोना हाथो से ढँक लेते है। फिर कुछ लडके उसके सिर पर अपनी अँगुलियो से ठोकर मारते हे। यदि उस लडके ने ठोकर मारने वालो मे से किसी को पकड लिया तब पकडे गये लडके को उसके सिर पर ठोकर मारना शुरु कर दिया जाता है। यही क्रम घटो चलता है रहता है। यह खेल लडको का बडा ही प्रिय खेल हे क्योकि इसमे सभी का बारी-बारी से एक दूसरे को ठोकर मारने का अवसर मिलता है। जब तक ठोकर मारने वाला असली लडका नही पकडा जाता तब तक उसी लडके पर मार पडती रहती है। चूकि इस खेल मे बालक की आखे मूद कर, उसे अन्धा बनाकर, उसके सिर पर चटकन अर्थात् चपत से मारा जाता है इसीलिए इस खेल को "अन्हर चटकी" कहा जाता हे।

लाता-लूती

भोजपुरी मे 'लात' का अथ पैर होता हे। अत 'लाता-लूती' का अथ हुआ पैर से झगडा करना अथवा खेल खेलना। इस खेल मे एक साथ केवल दो ही बालक भाग लेत है। दो बालक जमीन पर अथवा चारपाई पर आमने-सामने पैरो को फैला कर बैठ जाते हे। जब खेल शुरू होता है तब एक बालक दूसरे का अपने पैरो से मारता है। दूसरा बालक भी अपने पैरो को अन्धा-धुंध चलाता हे। इस प्रकार एक दूसरे पर पाद-प्रहार करते है। इस खेल मे पैर के द्वारा दूसरे बालक के पैरो पर ही हल्की सी चोट की जाती है जिसका उद्देश्य प्रहार करना नही बल्कि मनोरजन प्रदान करना होता है। इन पक्तियो के लेखक को लाता-लूती का खेल बडा प्रिय था। आज भी इस खेल का प्रचलन है परन्तु धीरे-धीरे इसका ह्रास हो रहा हे।

(३) परिच्छेद

ताश का खेल

यह खेल ताश के पत्तो से खेला जाता है। इन पत्तो म पान, ईंट, राजा, रानी आदि का चित्र बना रहता है। ताश खेलने के अनेक प्रकार है। कुछ लोग पैसा दाँव पर लगा करके ताश खेलते है जिसे जुआ का दूसरा रूप ही समझना चाहिए। ताश का खेल बच्चो मे बडा ही लोकप्रिय है तथा इसे खेलना सभी जानते है। अत इसके विशेष वणन की यहाँ आवश्यकता नही प्रतीत होती।

कुछ लोग रात्रि मे तुलसीदास का रामायण सामूहिक रूप मे गाकर अपना मनोरजन करते है। इसी प्रकार से किसी मदिर मे सामूहिक हरिकीर्तन भी किया जाता है। रामलीला देखकर भी मनोरजन किया जाता है।

(४) परिच्छेद

मेला

भोजपुरी प्रदेश मे प्राय अधिकाश जिलो मे किसी पर्व के अवसर पर मेला लगता है। मेला शब्द सम्मेलन या मेलन शब्द का अपभ्रश रूप है। यह शब्द 'मिलि सगमे' धातु से बना हुआ है जिसका अर्थ है आपस मे मिलना। प्राचीन काल मे इन मेलो का बडा महत्त्व था क्योकि इस अवसर पर इस महान् देश मे अनेक प्रान्तो से आये हुए साधु, सन्तो, महात्माओ तथा

तपस्वियो के दशन करने का सुयोग प्राप्त होता था। आज भी इन मेलो का महत्त्व कुछ कम नही है क्योकि इस समय पर ही जनता के धार्मिक जीवन को उसके स्वाभाविक रूप मे देखा जा सकता है।

इन मेलो को प्राय दो श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है—(१) धार्मिक मेला तथा (२) व्यावसायिक मेला। प्रथम कोटि मे उन मेलो की गणना की जाती है जो किसी पव या त्यौहार के समय लगते है और जिनका उद्देश्य शुद्ध धार्मिक है। व्यावसायिक मेला उनको कहा जा सकता है जिनकी योजना किसी व्यवसाय अथवा व्यापार की सिद्धि के लिए की जाती है। भोजपुरी क्षेत्र मे प्राय धार्मिक मेले ही अधिक पाये जाते है परन्तु व्यावसायिक मेलो की भी कुछ कमी नही है। यहाँ जनपद के क्रम से कुछ प्रधान तथा लोकप्रसिद्ध मेलो का विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

(१) बलिया

इस जनपद मे प्रधानतया प्राय तीन मेले लगते है—

(१) भृगुक्षेत्र का मेला (२) धनुषयज्ञ का मेला और (३) शकरपुर का मेला।

भृगुक्षेत्र का मेला बलिया नगर के पास गगा के तट पर कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को लगता है। यह 'ददरी का मेला' के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। ददर मुनि भृगुजी के शिष्य थे। अत इन्ही के नाम से यह मेला समधिक लोकविश्रुत है। कार्तिक पूर्णिमा के दिन गगा मे स्नान करना बडा ही पुण्यकारक समझा जाता है। अत इस दिन गगा-स्नान करना एक आवश्यकीय धम है। इस जिले के सुदूर स्थानो से ग्रामीण जनता बलिया नगर मे आती है और प्रात काल पतित पावनी भागीरथी मे स्नान कर 'गगा मइया की जय' का तार स्वर से उद्घोष करती है। स्नान करने के पश्चात् गगाजल को लेकर श्रद्धालु जनता भृगुजी के मदिर मे जल चढाती तथा इनके साथ ही उनके शिष्य ददर मुनि का भी दर्शन करती है।

इस अवसर पर गगा के किनारे मीलो तक मेला लगता है जो लगभग पन्द्रह दिनो तक चलता रहता है। इस मेले मे घोडे, गाय, बैल, बकरी आदि अनेक जानवरो की बिक्री होती है। कार्तिक का महीना किसानो के लिए, खेती के लिए, बडा उपयोगी है। अत अनेक जिले से किसान यहाँ आकर उत्तम नस्ल के बैलो को खरीदते हैं। इस प्रकार विशेषकर बैलो की खरीददारी के लिए यह मेला बहुत प्रसिद्ध है। जानवरो के अतिरिक्त यहाँ कपडा, बर्तन, गृहस्थी के सामान आदि की भी बिक्री होती है। गगा के बालुकामय तट पर लगा हुआ यह मेला बडा ही भव्य तथा हृदयाकर्षक होता है।

(२) धनुष यज्ञ का मेला

यह मेला बलिया नगर बीस मील पूव (३० किलोमीटर पूव) बैरिया गाँव से थोडी दूर पर अगहन सुदी पचमी को लगता है। आज से लगभग एक सौ वष पहिले सुदिष्ट गोसाई नाम के एक स्थानीय महात्मा थे जो अपने आश्रम पर 'रामलीला' के अभिनय की योजना किया करते थे। धनुषयज्ञ के अवसर पर यहाँ बडी भीड हुआ करती थी जिसने कालान्तर मे मेले का रूप धारण कर लिया। यह ददरी के मेले की अपेक्षा बहुत छोटा होता है। इसमे जानवरो की बिक्री नही होती है। परन्तु ग्रामीण उपयोगी वस्तुएँ—जैसे बतन, लकडी का दरवाजा, कपडा आदि—बिका करती है। यह मेला भी दस-पन्द्रह दिनो तक चलता रहता है।

(३) शकरपुर का मेला

यह मेला बलिया नगर से दो-तीन मील की दूरी पर चैत्र शुक्ल नवमी—जिसे रामनवमी कहा जाता है—के अवसर पर लगता है। यह केवल एक दिन ही रहता है। इस मेले मे आये हुए लोग मिष्ठान्न आदि खरीदते हैं और दिन भर मेला घूम कर शाम को घर जाते है। इस मेले मे भेडो की लडाई—मेषो का मल्लयुद्ध— अपनी विशेषता रखता है। चूंकि यह मेला चैत्र मास मे लगता है अत यहाँ चैता-गीत को गाने वाले गवैयो का दगल भी देखने योग्य होता है।

सोनपुर का मेला

सारन—यह मेला बिहार राज्य के सारन जिले मे कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को होता है। चूंकि इसकी स्थिति सोनपुर कस्बे के पास है अत यह सोनपुर का मेला कहा जाता है। यहाँ हरिहरनाथ बाबा (शिव) का मदिर है जहाँ लाखो यात्री मदिर मे दशन के लिए जाते है। अत यह "हरिहर-क्षेत्र का मेला" के नाम से अधिक प्रसिद्ध है।

सोनपुर के मेले का ससार मे दूसरा स्थान है। यह समस्त भारतवष मे सबसे बडा तथा प्रसिद्ध मेला है। इसकी सबसे बडी विशेषता यह है कि यहाँ हाथी बिकने के लिए आते हे। इस मेले मे मद-मस्त, झूमते हुए हाथियो की पक्तिया का दृश्य बडा ही सुन्दर तथा नेत्राकषक होता है। इसके अतिरिक्त यहा घोडा, गाय, बैल, बकरी, भेड, तोता-मैना आदि पशु-पक्षी बिकते हे। यहाँ पर भारतवष के समस्त राज्यो से व्यापारी अपनी विक्रेय वस्तुओ को लेकर आते है जिनमे कपडा, बतन, लकडी, सोना, चाँदी आदि वस्तुओ की प्रधानता रहती है। कहने का आशय यह है कि जितनी भी पण्य वस्तुये हो सकती है वे सभी इस महान् मेले मे उपलब्ध होती है।

आरा (भोजपुर)—बिहार राज्य के आरा (वतमान भोजपुर) जिले मे 'बरहपुर' का प्रसिद्ध मेला लगता है। उत्तर रेलवे के रघुनाथपुर रेलवे स्टेशन पर उतर कर इस स्थान को जाते है। यह मेला फाल्गुन मास की महाशिवरात्रि के दिन लगता है। यहा शिव का एक मदिर है। बरहपुर गॉव गगा के किनारे बसा हुआ है। अत यात्री इस दिन गगा की पवित्र धारा मे स्नान करके शिवजी का दशन करते हे। यात्री लोगो की अपार सख्या के कारण इस छोटे से मदिर मे बडी भीड हो जाती है जिससे अनेक वृद्ध व्यक्ति कुचल जाते हे। यहा बैलो का बडा भारी मेला होता है जिन्हे खरीदने के लिए दूर दूर से लोग आते है।

बक्सर—इसी जिले के बक्सर नगर मे गगा के किनारे रामरेखा घाट पर माघ मास की मकर सक्राति के अवसर पर बहुत बडा मेला जुटता है। इस समय आस पास के जिलो के लोग यहाँ गगास्नान के लिए आते है। यह मेला प्रधानतया धार्मिक है क्योकि यहाँ आने वाले यात्रियो का एकमात्र उद्देश्य गगा की पवित्र धारा मे अवगाहन कर पुण्य सचय करना होता है। बक्सर महर्षि विश्वामित्र की तपोभूमि माना जाता है। यहाँ पर भगवान् राम ने ताडका का बध किया था। आजकल यहाँ पर विश्वा-मित्र के नाम पर एक डिग्री कालेज भी स्थापित है। अतएव यह स्थान बडा पवित्र माना जाता है। यही कारण है कि मकर-सक्राति के अवसर पर यहाँ गगा-स्नान का बडा महत्त्व है।

बिहटा—यह स्थान आरा नगर से पूव दिशा मे बीस-पचीस मील की दूरी पर स्थित है। यहाँ बिहटेश्वर नाथ (शिव) का मदिर है जहाँ कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को मेला लगता है। यह भी एक धार्मिक मेला है जहाँ केवल भगवान् शिव का दशन ही यात्रियो का एक मात्र प्रयोजन होता है।

वाराणसी—वाराणसी भारतवष का एक प्रधान तीथस्थान है जहाँ प्रदेश के प्रत्येक भाग से हजारो की सख्या मे यात्री प्रतिदिन आया करते है। इस प्रकार यहाँ गगा के किनारे प्रतिदिन मेला लगा रहता है। फिर भी यहाँ कुछ विशिष्ट मासो मे मेला लगा करते है।

रथयात्रा का मेला—आषाढ शुक्ल द्वितीया को यहाँ रथ-यात्रा का मेला लगता है जो लगातार तीन दिनो तक चलता रहता है। वाराणसी नगर मे रथ-यात्रा चौमुहानी पर इस मेले का आयोजन होता है जहाँ बीस फीट ऊँचा लकडी का बना हुआ रथ रखा है। इसी रथ पर भगवान् जगन्नाथ अपने भाई बलराम और बहिन सुभद्रा के साथ बैठाये जाते है। इस रथ मे लम्बे लम्बे रस्सो को लगाकर इसे खीचा जाता है जिसमे सहस्रो की सख्या मे लोग भाग लेते हैं। भगवान् के रथ को खीचना बडा ही पुण्य का कार्य माना जाता है। उडीसा राज्य के पुरी नगर मे रथयात्रा का भारत-प्रसिद्ध मेला लगता है परन्तु उसके पश्चात् काशी के इस मेले का ही स्थान है।

सारनाथ का मेला—यह स्थान वाराणसी से दस मील की दूरी पर स्थित है। यह बहुत ही प्राचीन तथा ऐतिहासिक स्थान है। यहाँ सावन मास के प्रत्येक सोमवार को मेला लगता है। यहाँ 'सारगनाथ' नामक शिव का मदिर है जिसका दशन इस दिन करना बडा पवित्र माना जाता है। इस मेले मे वाराणसी नगर के लोगो की प्रधानता रहती है परन्तु आसपास के गाँवो से भी आकर लोग इसमे सम्मिलित होते है। यह मेला पूरे सावन मास मे प्रत्येक सोमवार को जुटता है।

दुर्गा जी का मेला—सावन मास के प्रत्येक मगलवार को दुर्गाकुण्ड के पास यह मेला लगता है। इस दिन दुर्गा जी का दर्शन करना बडा पवित्र माना जाता है। यहाँ हजारो यात्री उस दिन आकर भगवती दुर्गा का दर्शन कर अपने जीवन को सफल बनाते है। इस मेले मे छोटे-छोटे बच्चे 'चरखी' तथा 'कठघोडवा' पर चढ़ते हुए दिखाई पडते हैं। बच्चो के लिए उपयोगी खिलौने भी यहाँ बिकते हैं।

लक्ष्मीकुण्ड का मेला—यह मेला लक्सा के पास लक्ष्मी कुण्ड पर लगता है। दर्शक गण लक्ष्मी कुण्ड मे स्नान करके लक्ष्मी जी की अर्चा तथा पूजा करते हैं।

भरत मिलाप का मेला—यह वाराणसी का सबसे बडा मेला है जिसे देखने के लिए लाखो नर-नारी एकत्रित होते है। यह नाटी इमली मुहल्ले में आश्विन सुदी एकादशी अर्थात् दशहरा के एक दिन बाद लगता है। यह मेला 'भरत-मिलाप' के नाम [illegible] भरतमिलाप का दश्य यही सम्पन्न होता है जिसमे स्वय काशी नरेश पधारते है। राम

नगर की रामलीला भी बडी प्रसिद्ध हे जो लगभग एक मास तक चलती हे। इसका आयोजन काशीनरेश की ओर से किया जाता है जिसे देखने के लिए दूर दूर से लोग आते हे।

काशी के सभी मेले प्राय स्थानीय हे जिनमे केवल शहर के निवासी ही भाग लेते ह। इनमे केवल स्थानीय वस्तुये ही बिका करती हे।

प्रयाग का माघ मेला

तीथराज प्रयाग मे प्रतिवष माघ के महीने मे मेला लगता है जो माघ मेला के नाम से प्रसिद्ध है। यह मेला पूरे एक मास तक लगता है। गगा ओर यमुना के किनारे, त्रिवेणी के पावन बालुकामय तट पर, यह मेला जुटता है। अनेक जिलो तथा राज्यो से धार्मिक व्यक्ति आकर यहाँ एक महीने तक निवास करते ह जिमे 'कल्पवास' कहा जाता हे। ये भक्त गण सगम पर बनी पडा लोगो की झोपडियो मे निवास करते हे। इस प्रकार कल्पवास करने वाले व्यक्ति 'कल्पवासी' कहलाते है। इनका एकमात्र कतव्य सूर्योदय के पहिले सगम मे स्नान करना होता है। कल्पवास करते समय इन्हे अनेक नियमो का पालन करना पडता है जिनमे से कुछ प्रधान निम्नाकित है—

(१) जमीन पर सोना।
(२) जूता, चप्पल आदि न पहिनना।
(३) तैल आदि का शरीर मे मदन न करना।
(४) कल्पवास के क्षेत्र को छोडकर बाहर न जाना।
(५) पूरे मास तक कीतन, 'कथा-श्रवण' तथा भजन मे अपना समय बिताना।

इस मास मे तिल को खाने तथा दान मे देने का बडा महत्त्व समझा जाता है। अत लोग प्राय तिल का लड्डू खाते है। सूर्योदय के पहिले प्रत्येक कल्पवासी नियमित रूप से सगम मे स्नान करता है। लोक-गीतो को गाती हुई, सगम की ओर जाती हुई, स्त्रियो का समुदाय बडा ही सुन्दर दृश्य उपस्थित करता है। 'गगा मइया' के प्रति इनकी श्रद्धा को देखकर नास्तिक जनो के हृदय मे भी भक्ति की भावना का उद्रेक होता है।

माघ मास मे यो तो प्रतिदिन सगम मे स्नान का महत्त्व है परन्तु निम्नाकित पर्वों के अवसर पर यहाँ बडा भारी मेला लगता है और लाखो की सख्या मे लोग गगा स्नान करते है। ये मुख्य पर्व है—

(१) सक्रान्ति (२) मौनी अमावस्या (३) बसन्त पचमी तथा (४) माघी पूर्णिमा। माघ मास मे जो सक्रान्ति का पर्व मनाया जाता है उसे मकर-सक्रान्ति करते है। इस दिन पूर्वी जिलो मे खिचडी खाने की प्रथा है। अत इसे खिचडी सक्रान्ति भी कहते है। परन्तु प्रयाग के माघ मेले का सबसे बडा पव माघ मास की अमावस्या है जिसे मौनी अमावस्या कहते है। इस दिन प्रात काल उठकर, मौन रहकर, त्रिवेणी मे स्नान किया जाता है। इसीलिए इसे मौनी अमावस्या कहा जाता है। इस अवसर पर लाखो की सख्या मे लोग आकर गगा मे अवगाहन कर पुण्य-लाभ करते है। बारह वर्षो के पश्चात् इस तिथि को कुम्भ का महान् मेला जुटता है जिसमे भारत से यात्रीगण आकर सम्मिलित होते है। सन् १९५४ मे जो कुम्भ का मेला लगा था उसमे ८०,०,०,००० (अस्सी लाख) लोगो ने सगम मे स्नान किया था। इस अवसर पर भारत के समस्त धार्मिक सम्प्रदायो के अखाडे यहाँ आते है। नागा, उदासी, अवधूत, वैरागी, साधु-महात्मा, कबीर पन्थी, रैदासी आदि सभी पन्थो के लोग यहाँ आकर पूरे मास तक निवास करते है। विभिन्न साधु-महात्माओ के कैम्पो मे कीतन-भजन तथा कथा-श्रवण का कार्यक्रम चलता रहता है। सच तो यह है कि ससार के किसी भी भू-भाग मे इतना विशाल धार्मिक मेला नही लगता और न इतनी अधिक सख्या मे नर-नारी ही कही एकत्र होते है।



अध्याय १४

लोक-औषधि

(Folk medicine)

○ ○

ग्रामीण जनता का जीवन लोक-विश्वासो तथा अन्ध-परम्पराओ मे अभिभूत रहता है। जीवन म जो कुछ घटनाये घटित होती है इसका कारण वे कोई दैवी कोप ही समझते है। इसीलिए किसी प्राकृतिक दुघटना के होने पर वे देवी-देवता अथवा भूत प्रेत की पूजा करते है। आरोग्य तथा स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे भी उनके ये ही विचार है।

आदिवासी जातियो मे यह परम्परा प्रचलित है कि वे कान और आख मे दद पैदा होन का कारण किसी देवी या देवता का प्रकोप मानते है और किसी अभीष्ट देवता की पूजा करके उस व्याधि को दूर करने की चेष्टा करते है।

शिष्ट तथा शिक्षित लोग किसी रोग के होने पर डाक्टर की शरण लेते है। किसी होमियोपैथ का दरवाजा खटखटाते है। परन्तु गाँवो मे जहाँ डाक्टरो का नितान्त अभाव होता है, वहाँ लोक-विश्वास पर आश्रित देहाती दवाओ से ही काम चलाया जाता है। कुछ रोगो मे तो केवल लोक-विश्वास ही उसके उपचार का कारण बन जाता है।

उदाहरण के लिए चेचक के रोग को लिया जा सकता है। गाँवो मे बसन्त ऋतु मे चेचक का प्रकोप दिखाई पडता है। यद्यपि इस रोग की अनेक अग्रेजी दवाये आविष्कृत हो चुकी है परन्तु ग्रामीण जनता इसे शीतला माता का प्रकोप समझती है और इस रोग का सम्यक् उपचार न करके शीतला को प्रसन्न करने की ही चेष्टा करती है। इसी प्रकार से अजनहारी रोग का उपचार भी लोक-विश्वास पर ही आश्रित है।

इस अध्याय मे जन-जीवन से सम्बन्धित कुछ उन रोगो की चर्चा की जा रही है जिसका उपचार अग्रेजी दवा से नही होता, बल्कि लोक-विश्वास के द्वारा सम्पन्न किया जाता है। कुछ रोगो मे कुछ औषधि दी जाती है परन्तु वे ही दवाये जो गावो मे उपलब्ध होती है और सर्वसाधारण जनता के लिए भी अत्यन्त सुलभ है। इन दवाओ को लोक-औषधि (Folk medicine) की सज्ञा प्रदान की गई है। यह कहना उचित नही होगा कि इन औषधियो मे वैज्ञानिक तत्वो का अभाव है। परन्तु सामान्यतया यह प्रतीत नही होता। इन औषधियो की आधार-शिला प्रधानतया लोक-विश्वास है, न कि उनमे वैज्ञानिक तत्वो की उपलब्धि।

रोगो की सूची

(१) अजनहारी	(२) चेचक
(३) मलेरिया	(४) सर्दी या जुकाम
(५) पेचिश	(६) लू या लूह
(७) घाव या फोडा	(८) फोडिया-फुंसी
(९) खाँसी	(१०) आँव
(११) सिर दर्द	(१२) पेट दर्द
(१३) आँख आना	(१४) पाण्डु रोग
(१५) पैर का दर्द	(१६) हरारत
(१७) रात्रि-सेचन	(१८) अधकपारी
(१९) दाँत का दर्द	(२०) चनकल होना
(२१) रोहा	(२२) फूली या माडा पडना

(२३) मिरगी
(२४) पेट फूलना
(२५) सूखण्डी रोग
(२६) मियादी बुखार
(२७) चरक फूटना
(२८) हैजा
(२९) सपदश
(३०) बिच्छू दश
(३१) कुत्ता का काटना
(३२) छरियाना
(३३) हड्डा-वर्रे का काटना
(३४) कट जाना
(३५) ज्वर या बुखार
(३६) रतौंधी
(३७) कान का दद

इनमे से केवल प्रधान बीमारियो का वणन यहाँ सक्षेप मे लिखा जाता है।

(१) परिच्छेद

शरीर के विभिन्न अगो से सबधित रोग

१ **सिर दर्द**—कठिन शारीरिक परिश्रम करने अथवा अधिक समय तक अध्ययन करने के कारण सिर मे दद पैदा होता हे। ऐसी दशा मे इस दर्द को दूर करने के लिए 'गुलाब रोगन' जिसे लोक-भाषा मे 'गुलरोगन' कहा जाता है—का तेल मला जाता है। इस तेल की तासीर ठडी होती है। अत यह सिर के दद को शीघ्र ही शान्त कर देता है। इस तेल के अभाव मे तिल के तेल को लगाना भी लाभदायक सिद्ध होता है। ग्रामीण जनता इन दोनो को 'ठढा तेल' के नाम से पुकारती है। अत सिरदद मे इनका लगाना रोगनाशक माना जाता है।

कुछ लोग शिर की व्यथा से पीडित होने पर चन्दन को घिसकर ललाट पर लगाते है। इसकी शीतलता से सभवत सिर का ताप नष्ट हो जाता है। हिरन के सीग को पानी के साथ चन्दन की भाति पत्थर पर रगड कर लगाने से भी यह लाभ होता है। अत अनेक ग्रामीण लोग हिरन की सीग इस काय के लिए अपने घर मे रखते है। प्राकृतिक चिकित्सा मे विश्वास करने वाले व्यक्ति पीली मिट्टी का लेप भी ललाट पर लगाते है अथवा गीली मिट्टी को किसी साफ कपडे मे रखकर उसकी पोल्टिस को सिर पर बाँधते है।

२ **अधकपारी**—जो लोग सूर्योदय के पश्चात् सोकर उठते है उनके आधे सिर मे दद पैदा हो जाता है। भोजपुरी मे सिर को 'कपार' कहा जाता है। अत यह रोग 'अधकपारी' के नाम से प्रसिद्ध है जिसका अथ है सिर के आधे भागमे दद का होना।

अधकपारी की सबसे अच्छी दवा सूर्योदय होने के पहिले ही विस्तर को छोडकर उठ जाना है। चन्दन को घिस कर सिर मे लगाने से भी थोडी शान्ति मिलती है।

३ **अजनहारी**—इसे भोजपुरी मे 'अखिजनी' कहते है। यह आँख का एक रोग है। आँखो की निचले या ऊपरी पलक पर छोटा सा घाव हो जाता है जिससे पलक मे सूजन आ जाती है। आखो मे कष्ट उत्पन्न हो जाता है। इस रोग को दूर करने के लिए लोक मे पाँच उपचार प्रचलित है जो प्राय लोक-विश्वास के ऊपर आश्रित है।

(१) इसका प्रथम उपचार है अपने दाहिने हाथ की कनिष्ठिका अगुली को बाये हाथ के तलवे पर रगड रखकर आँख के उस अश को स्पर्श करना जहाँ सूजन हो गई है। यह आधुनिक 'फोमेण्टेशन' का ही दूसरा रूप समझना चाहिए।

(२) इसकी दूसरी दवा किसी ताड वृक्ष को 'बिराना' है। कानी अगुली को हाथ पर रगड कर किसी ताडवृक्ष को उसके द्वारा 'बिराते' है और पुन उस अगुली से फूले हुए स्थान को स्पर्श करते है।

(३) कुछ लोग इस रोग को दूर करने के लिए बेर के सात पत्तो को लेकर, उन्हे किसी सीक मे खोस कर, किसी स्थान पर रख देते है। उनका यह दृढ विश्वास है कि जैसे जैसे बेर का पत्ता सूखता जायेगा वैसे ही वैसे उनकी अजनहारी भी सूखती जायेगी। कुछ ही दिनो मे वे नीरोग भी हो जाते है।

(४) कुछ लोग छोहाडा के बीज को पानी मे रगडकर उसके लेप को आँख मे लगाते है। इससे भी इस रोग की शान्ति हो जाती है।

(५) अजनहारी को नष्ट करने के लिए सिन्दूर को तेल मे रगडकर इस पर लगाया जाता है। इससे भी इस रोग की शान्ति हो जाती है।

अजनहारी के लिए उपर्युक्त जो उपचार बतलाये गये है उनमे औषधि के तत्त्व विद्यमान हो सकते है परन्तु अधिकाश जनता इन्हे लोक-विश्वास के आधार पर ही ग्रहण करती है।

४ **आँख आना**—गर्मी के दिनो मे अधिक धूप मे घूमने के कारण बच्चो की 'आँखे आ जाती' है अर्थात् वे लाल होकर दुखने लगती है। ऐसी दशा मे उन्हे बडी पीडा होती है। इस रोग को दूर करने के लिए सबसे बडी औषधि 'आँजन' है जो अंजन का ही अपभ्रंश रूप है। घर की बडी तथा बूढी औरत आँजन तैयार करती है। वह पीतल की थाली की पीठ पर बेल की पत्तियो, मेथी के दानो और ताम्बे के पैसे को लेकर, उसमे थोडा पानी डालकर, जोरो से रगडती है। इस रगड से जो लेप के रूप मे पदार्थ तैयार होता है वही 'आँजन' है। इसे वे अपने बच्चे की आँखो मे लगाती है जिसमे आँख की लाली जाती रहती है और दर्द भी दूर हो जाता है।

इस रोग मे गुलाब-जल का आँखो मे डालना अत्यन्त लाभदायक होता है। इससे आँख की जलन तथा लाली नष्ट हो जाती है। कुछ लोग पकाये गये गर्म तथा ताजा भात की पोल्टिस भी आँखो पर बाँधते है।

कुछ लडको की आँखे लसलसाने लगती है और 'कीचर' आने लगता है। उस समय आँखो मे काजल लगाने से बडा लाभ होता है। काजल स्त्रियो की आँखो का शृंगार होने के अतिरिक्त बच्चो की आँखो के लिए उत्तम औषधि भी है।

५ **फूली और माडा**—जब आँखे लाल हो जाती है, जब रोग के कारण अधिक दिनो तक दुखती रहती है तब उसके मध्य भाग अर्थात् पुतली मे विकार उत्पन्न हो जाता है और पुतली की कालिमा मे सफेदी उत्पन्न हो जाती है। इससे दृष्टि दोष उत्पन्न हो जाता है।

इस रोग को दूर करने के लिए स्त्रियाँ विभिन्न प्रकार का आंजन (अन्जन) तैयार करती है। इस आँजन को पीतल की थाली की पीठ पर बेलपत्र, मेथी, ताम्बे का पैसा आदि को रगड कर तैयार किया जाता है। इस आंजन को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए इसमे 'तूतिया' भी मिलाया जाता है। यद्यपि इस प्रकार तैयार किया आजन आँखो मे बहुत अधिक 'लगता' है परन्तु इससे आँख का रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

६ **रतौंधी**—रतौंधी शब्द की निष्पत्ति 'रात्रि अन्ध' से ज्ञात होती है जिसका अर्थ है रात्रि मे दिखाई न पडना। कुछ लोग ऐसे होते है जिनके नेत्र की ज्योति दिन मे बिलकुल ठीक रहती है परन्तु रात्रि के प्रारम्भ होते ही उन्हे कुछ भी दिखाई नही पडता। ऐसे लोग रतौंधी रोग से पीडित होते है। यह रोग केवल बुड्ढे लोगो को ही हो ऐसी बात नही है, बल्कि नौजवान भी इस रोग से ग्रसित हो जाते है।

इस प्रकार के रोगी के लिए बेल (सिरिफल) के पत्ते को सील पर खूब अच्छी तरह से पीस कर फिर उसे कपडे से छान लेते है। इसके पश्चात् इसमे दही मिलाकर इस पेय को रोगी को पीने के लिए दिया जाता है। इससे यह रोग जाता रहता है।

७ **कान का दर्द**—कान मे दर्द पैदा होने पर लहसुन को सरसो के तेल मे खूब पकाया जाता है। लहसुन के पक जाने पर उस ईषत् उष्ण—सुसुम—तेल को कान मे डालने से दर्द दूर हो जाता है। कुछ लोग गेंदा की पत्तियो को सील पर अच्छी तरह से कूटते है। फिर उसके रस को कपडे से छानकर आग पर थोडा गर्म करते है। पुन इसे कान मे डाल देते है। लोगो का विश्वास है कि इससे कान का दर्द दूर हो जाता है।

८ **दाँत का दर्द**—इस दर्द मे पानी को आग मे गर्म करके उसमे थोडा नमक डाल दिया जाता है। इस गर्म जल से कुल्ला करने पर दर्द दूर हो जाता है। कुछ लोग 'सेहुड' (एक प्रकार का पौधा) का दूध भी दाँतो मे लगाते है। क्षीरीवृक्ष जैसे महुआ, बरगद, सेहुड आदि की दतौन से दाँत धोने से भी इस रोग मे लाभ पहुँचता है।

गाँवो मे कानो तथा दाँतो के दर्द को मन्त्रो के द्वारा झाड कर दूर करने वाले बहुत से 'वैद' घूमा करते है जो नीम हकीम होते है। इन्हे अंग्रेजी मे 'मेडिसिन मैन' कहा जा सकता है। ये लोग कान और दाँत से कीडा (जर्म्स) निकालते है और इस प्रकार रोगी के रोग को दूर कर देते है। ये लोग गाँवो मे 'दाँत का वैद' और 'कान का वैद' की आवाज लगाते रहते है हुए प्राय घूमा करते है।

९ **सर्दी या जुकाम**—जाडे के दिनो मे खुली हवा मे घूमने अथवा कपडो के अभाव मे शीत लग जाने के कारण लोगो को सर्दी का रोग हो जाता है। इसे जुकाम भी कहते है। इस रोग से पीडित व्यक्ति को तुलसी की पत्तियो का काढा बनाकर दिया जाता है। कभी-कभी इसमे काली मिर्च भी डाल दी जाती है। जिससे उसका रोग कुछ शान्त हो जाता है। रोगी को 'बफारा' देना इसकी दूसरी दवा है। धीमी आग मे अँजवाइन डाल दी जाती है। इससे जो धुआँ उठता है उसे रोगी सूँघता है। इसी को बफारा कहते हैं। चूँकि अजवाइन की तासीर गर्म होती है। अत इसके धुएँ को सूँघने से उसे बडा लाभ होता है।

यदि सर्दी के कारण किसी व्यक्ति का गला फँस जाता है अर्थात् उसे बोलने मे कष्ट होने लगता है तो उसे काली मिर्च, अदरक और गुड़ को घी मे पकाकर खाने के लिए दिया जाता है। इसको खाने से उसका गला साफ हो जाता है। कुछ लोग इसके लिये 'मुलेठी' को मुख मे रखकर उसे चूसते है। अदरक तथा अँजवाइन के खाने से भी यह रोग शीघ्र ही दूर हो जाता है।

१० **खाँसी**—शीत लग जाने से तथा अन्य कारणो से भी खासी हो जाती है। हमेशा खाँसते रहने के कारण 'लग्स' पर जोर पडता है तथा छाती मे दद पैदा हो जाता है। अत इससे शीघ्र ही मुक्ति पाने की चेष्टा की जाती हे।

जिस पान मे कत्था की मात्रा अधिक हो उसे खाने से खासी से क्षणिक शान्ति मिलती है। कुछ लोग 'कुलन्जन' नामक एक काष्ठ-औषधि को मुह मे डालकर चूसते रहते है। इससे खासी नही आती। अँजवाइन मे थोडा नमक मिलाकर, इसे मुह मे रखकर चूसने से थोडा लाभ होता है। परन्तु इनसे क्षणिक लाभ की ही प्राप्ति होती है, स्थायी नही।

केले की सूखी हुई पत्तियो को आग मे जलाकर और उसमे थोडा सा शहद मिलाकर उसे चाटने से खाँसी का रोग स्थायी रूप से नष्ट हो जाता है। आँवला अथवा आवले का मुरब्बा खाने से भी यह रोग शान्त हो जाता है। इसीलिए वैद्य लोग च्यवनप्राश का सेवन इस रोग मे उत्तम बतलाते है जिसमे आँवले का अश सव प्रधान होता है।

११ **पेचिस**—अन्न के अच्छी तरह से पेट मे न पचने के कारण पेचिस की बीमारी हो जाती है। इस रोग मे पतले-पतले दस्त आने लगते है। थोडे से अतर के बाद शीघ्र ही दस्त होने के कारण शरीर मे कमजोरी आने लगती हे और दस्त के कारण रोगी पस्त हो जाता है।

दस्त को रोकने के लिए रोगी को मट्ठा पिलाना अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होता है। इस मट्ठे (तक्र) मे भूना हुआ जीरा और काला नमक डालकर पिलाने से अधिक फायदा होता है। रोगी को पुराना चावल का भात और मट्ठा खिलाया जाता है जिससे उसका दस्त बन्द हो जाता है।

पका हुआ केला खिलाने से भी रोग की शान्ति हो जाती है। कुछ लोगो को बेल का मुरब्बा भी खाने के लिए दिया जाता है परन्तु गावो मे जहाँ मुरब्बा उपलब्ध नही होता वहा पका हुआ बेल का शबत भी लाभदायक सिद्ध होता है।

१२ **आँव**—अन्न का सम्यक् परिपाक न होने के कारण पेट मे आँव पड जाता है। इससे शोच करते समय पेट मे दद होने लगता है और बडा कष्ट होता है।

आँव को दूर करने की सबसे सस्ती और सुलभ दवा पके हुए केले को खाना है। बेल का मुरब्बा भी इस रोग मे बहुत लाभदायक सिद्ध होता है। इसके अभाव मे, पका हुआ बेल का फल भी खाया जा सकता है। आव के रोग से पीडित होने पर ग्रामीण लोग "इसफ गोल की भूसी को पानी मे डालकर और उसमे थोडी सी चीनी मिलाकर इसे पीते है। उनका विश्वास है कि ऐसा करने से यह रोग नष्ट हो जाता है।

पुराने चावल के भात मे घी मिलाकर खाने से भी इसमे लाभ होता है। आँव से पीडित होने पर रोटी कदापि नही खानी चाहिए। भात को थोडी दही के साथ खाने पर इसमे विशेष लाभ होता है। आँव मे हल्दी को कडी पीस कर उसकी गोली को खाने से भी इसका नाश हो जाता है।

१३ **पेट दर्द**—भोजन को अत्यधिक मात्रा मे भक्षण करने के हेतु पेट मे दद पैदा हो जाता है। ग्रामीण स्त्रियो का विश्वास है कि किसी भूत-प्रेत से ग्रसित हो जाने के कारण ही बच्चो के पेट मे दद पैदा हो जाता है। अत स्त्रियाँ इस रोग से पीडित बच्चे को किसी 'ओझा' से दिखलाती है और उसकी 'भभूति' को उसके पेट मे पर मलती है। उनकी यह धारणा है कि ऐसा करने से भूत भाग जाता है और पेट का दद नष्ट हो जाता है।[1]

इस दद मे बबूल की पत्तियो को नमक के साथ खाने से भी लाभ होता है। कुछ लोग काला नमक खाकर गम पानी पीते है। इससे भी दर्द शान्त हो जाता है। त्रिफला—आँवला, हर्रे और बहेडा का चूर्ण भी इसकी औषधि है। कुछ लोग हिग्वाष्टक चूर्ण का भी प्रयोग इसके लिये करते हैं।

१४ **पेट फूलना**—अत्यधिक भोजन करने तथा उसका सम्यक् परिपाक न हो सकने के कारण प्राय बच्चो का पेट फूल जाता है। इस कारण उन्हे द र्द भी होने लगता है। ऐसी दशा मे ग्रामीण लोग काला नमक बच्चे को खाने के लिये देते है। यदि इससे शीघ्र लाभ होता हुआ न दिखाई पडे तो गम पानी मे सेंधा नमक मिला पीने के लिए दिया जाता है। इतसे पतले दस्त आने लगते है और पेट का फूलना कम हो जाता है।

कुछ लोग हीग को पानी मे घोल कर तथा उसे गम करके बच्चे को नाभि (ढोढी) के चारो ओर लेप देते है। इससे भी पेट का फूलना शान्त हो जाता और दद भी जाता रहता है।

---

१ इन पक्तियो के लेखक की पूजनीया माता श्रीमती मूर्तिदेवी जी जब उनके बच्चे के पेट मे दर्द पैदा होता था "तब एक विशेष" मत्र से भूत को 'झारती' थीं। बच्चे के पेट को अपनी मूठी मे पकड वह "छोड पापी छोड', 'छोड पापी छोड" इस मत्र की आवृत्ति कर अपनी मुट्ठी को खोलकर अपने मुंह से फूंकती थीं। फलस्वरूप वह भूत भाग जाता था और पेट का दर्द शान्त हो जाता था।

१५ **कमर में दर्द**—कभी कभी ठडक लग जाने से अथवा अन्य कारणो से कमर में भी दर्द पैदा हो जाता है जिसे चिलकना कहते है। ग्रामीण जनता की यह धारणा है कि जो बच्चा अपनी मा की पेट से पैर के बल पैदा होता है यदि वह अपने पैरो से पीडित व्यक्ति के कमर को स्पर्श कर दे तो यह दर्द नष्ट हो जाता है। सरसो के तेल मे सोठ मिला कर आग मे उसे थोडा गर्म करते है। उस तेल को कमर मे मालिस करने से कष्ट दूर होता है।

१६ **पैर का दर्द**—अनेक लडको को पैर का दर्द हो जाता है। वे पैदल भले ही न चले, केवल चारपायी पर भले ही पडे रहे फिर भी उनके पैरो मे दर्द मालूम होता है जिसे पैरो का 'टटाना' कहा जाता है। यह रोग भी झाड-फूँक से ही दूर होता है। मत्रोषधि ही इसकी रामवाण दवा है।

इस रोग के मत्र को जानने वाला ओझा बॉस की दो छोटी तथा पतली शाखाओ—जिसे लोक-भाषा मे 'कोइनि' कहा जाता है—मँगवाता है और उन्हे बीच से चीर कर दो भागो मे विभक्त कर देता है। दो मनुष्य कोइनि' के इन दोनो भागो को अपने दोनो हाथो मे पकड कर खडे हो जाते है। इन दोनो कोइनो मे काफी अन्तर रहता है। परन्तु ओझा जैसे-जैसे 'जुट जूट' कहते हुए मत्र पढता जाता है वैसे ही वैसे इन कोइनो का अन्तर कम होने लगता है और अन्त मे वे एक साथ मिलकर 'जुट' जाती है। फिर 'छुट-छुट' कहने से वे पुन अलग अलग हो जाती है। इस प्रक्रिया से बालक के पैर का 'टटाना' दूर हो जाता है। इस कार्य मे किसी प्रकार की औषधि का प्रयोग नही होता बल्कि मत्र के बल से ही यह रोग निर्मूल हो जाता है।

(२) परिच्छेद

सामान्य रोग

१७ **चेचक**—यह छूत का रोग बडा ही भयानक माना जाता है जो प्राय बसन्त ऋतु मे ही होता है। यद्यपि इसके निदान के लिए अनेक अग्रेजी दवाये आविष्कृत हो चुकी है परन्तु गॉव के लोग उन पर विश्वास नही करते। उनकी यह दृढ धारणा है कि यह शीतला माता के प्रकोप के कारण होता है। अत वे इस रोग से आक्रान्त होने पर उस व्यक्ति की दवा शीतला माता को प्रसन्न करके करते है। शीतला देवी का निवास स्थान नीम का वृक्ष है। वे इस वृक्ष पर हिंडोला डाल कर रहती है। अत चेचक के रोग से पीडित व्यक्ति को नीम की टहनियो से पखा झलते है। इसकी पत्तिया का उसकी शय्या पर बिखेर देते है और उसी पर सोने के लिए उससे आग्रह किया जाता है। माली शीतला माता का भक्त माना जाता है। अत उसे बुलाकर शीतला की पूजा कराई जाती है। घर की स्त्रियाँ शीतला माता के गीत गाती है जिनमे रोगी को शीघ्र नीरोग करने के लिए प्रार्थना की जाती हैं। इस प्रकार लोक-विश्वास के आधार पर, लोक-औषधि के द्वारा इस भीषण रोग की शान्ति की जाती है। शीतला माता की पूजा ही इस सक्रामक रोग की परम औषधि मानी जाती है।

१८ ज्वर तथा मियादी बुखार

ज्वर को भोजपुरी मे 'जर' कहा जाता है। इसे अग्रेजी मे फीवर कहते हैं। जो ज्वर जाडा देकर आता है उसे 'जडैया' का अभिधान प्राप्त हैं। इस रोग से पीडित व्यक्ति की बाँह अथवा गर्दन मे 'बिछकुतिया' अर्थात् छिपकलीकी पूँछ को काट कर बॉध दिया जाता है। इससे 'जडैया' जाती रहती है। बुखार से पिण्ड छुडाने का सबसे प्रबल उपचार 'लघन' माना जाता है। अर्थात् बुखार लगने पर रोगी को खाने के लिए अन्न नही दिया जाता। देहात मे यह कहावत प्रसिद्ध है कि 'जर अवरु पाहुन लघन से दूर भागेला।' अर्थात् अतिथि और ज्वरी को भोजन न देने से दूर भाग जाते है।

जो बुखार निश्चित समय के अन्तर से आता है उसे मियादी बुखार कहते हैं। यह अपने समय पर अर्थात् एक या दो सप्ताह के बाद ठीक समय पर ही छूटता है।

१९ **मलेरिया**—यह वह ज्वर है जो जाडा देकर आता है। इस रोग के होने से शरीर का तापमान बढ जाता है। इसके उपचार के लिए तुलसी की पत्तियो को गर्म पानी मे उबाला जाता है तथा उसमे काली मिर्च मिलायी जाती है। इस प्रकार तैयार किये गये काढे को रोगी को पिलाया जाता है जिससे उसका ज्वर शान्त हो जाता है।

कभी कभी अदरक तथा काली मिर्च को मिलाकर रोगी को पीने के लिये चाय भी दी जाती है।

२० **मिरगी**—इसे सस्कृत मे अपस्मार कहते है। आग और पानी देखकर यह रोग अचानक भडक उठता है और रोगी हाथ-पैर पीटता हुआ जमीन पर छटपटाने लगता है। अत मिरगी रोग से ग्रसित व्यक्ति जलाशय अथवा नदी के तट पर स्नान के लिए नही जाता। चूल्हा अथवा 'ऑवा' के पास भी उसका जाना निषिद्ध है। घर वाले ऐसे रोगी को सदा आग-पानी से अलग रखते हैं।

२१ **पाण्डु रोग**—इसे भोजपुरी मे 'पियरी' कहते है। इस रोग के कारण मनुष्य का सारा शरीर पीला जाता है। किम्बहुना उसकी आखे भी पीली दिखाई देती है।

इसकी सबसे प्रसिद्ध दवा झाड-फूक है। गावो मे अनेक ओझा और सोखा होते है जो इस रोग को केवल झाड-फूक से ही दूर कर देते है। वे एक पीतल की थाली मे जल भर कर उसमे रोगी के हाथ के रखने क लिए कहते है। फिर वे मत्र पढते हुए उस जल से रोगी की बाँह को ोते हे। रोगी के बाहो को धोने से वह जल पीला पडता जाता है। लोगो का यह विश्वास है कि रोगी के शरीर का पीलापन मत्र की शक्ति से उस जल मे सक्रमित हो जाता है। इस प्रकार वह व्यक्ति नीरोग हो जाता है। ि इन पक्तियो के लेखक ने अनेक ऐसे रोगियो को देखा है जिनका यह रोग मत्र के बल से पानी मे सक्रमित होकर दूर हो गया।

२२ **चरक फूटना**—अनेक मनुष्यो के शरीर पर सफेद सफेद छोटे छोटे दाग दिखाई पडने लगते है। यह भी एक प्रकार का सक्रामक रोग है जो दिन पर दिन रोगी के शरीर मे फैलता जाता है। इसको 'चरक' कहते है। अग्रेजी मे यह 'ल्यूको-डर्मा' के नाम से प्रसिद्ध हे। इस रोग के होने से सभवत कोई शारीरिक कष्ट तो नही होता परन्तु शारीरिक सौन्दर्य सदा के लिए नष्ट हो जाता है।

इस रोग से पीडित व्यक्ति के लिए नमक का प्रयोग नही करना चाहिए। स्त्रियाँ इस रोग से ग्रसित होने पर प्राय नित्यप्रति गगा स्नान करती है, सूय को अर्घ प्रदान करती हे और रविवार तथा मगलवार को अलोना भोजन करती है। ग्रामीण लोगो की ऐसी धारणा हे कि इस रोअग का सूय भगवान् से विशेष सम्बन्ध है। अतएव भगवान् भास्कर को प्रसन्न करने से ही इस रोग से मुक्ति मिल सकती है।

२३ **हैजा**—इसे सस्कृत मे विसूचिका तथा अग्रेजी मे कालरा कहते है। यह प्राय गर्मी के दिनो मे मात्रा से अधिक भोजन करने के कारण होता है। अधिक गदगी भी इसके पैदा होने का एक कारण है। इसीलिए मेले-ठेले मे हैजा का टीका लगाना आवश्यक होता है। इस रोग मे वमन और दस्त अधिक होता है जिससे रोगी शीघ्र ही सुस्त तथा कमजोर हो जाता है।

ऐसी दशा मे उसके कै और दस्त को बन्द करने के लिए उपचार किया जाता है। बताशा मे बरगद का दूध डालकर रोगी को देना दस्त के लिए लाभदायक है। इसी प्रकार से छोटी इलायची को पीसकर तथा उसमे मधु मिलाकर चाटना वमन को रोकता है। मोर के पख को आग मे जलाकर, इसकी राख मे शहद मिलाकर चाटना वमन के रोकने मे सहायक सिद्ध होता है।

२४ **लू**—इसे भोजपुरी जनता लूह के नाम से पुकारती है। गर्मी के दिनो मे प्रचण्ड धूप मे चलने से 'लू' लग जाती है। इस रोग मे रोगी का शरीर गम हो जाता है और उसे बुखार हो जाता है। ऐसी दशा मे गाँव के लोग कच्चे आम को आग मे पकाते है और उसके गुद्दे को पानी मे डालकर उसका शर्बत तैयार करते है जो 'अमझोर' के नाम से प्रसिद्ध है। उस शर्बत मे नमक डाल कर रोगी को पिलाया जाता है। रोगी के शरीर की गर्मी को शान्त करने के शिए आग मे पकाये गये कच्चे आम के गूदे को रोगी के हाथो तथा पैरो मे मला या रगडा जाता है। ऐसा करने से उसके शरीर का तापमान कम हो जाता है और उसे शान्ति मिलती है।

प्याज लू का परम प्रतिरोधक है। अत भोजपुरी मातायें गर्मी के दिनों मे स्कूल को अथवा खेलने के लिए घर से बाहर जाने वाले अपने बच्चे के पाकेट मे एक प्याज रख देती है। उनका यह विश्वास है कि प्याज के पाकेट मे रखने के कारण उसे लू नही लग सकती। लू से पीडित व्यक्ति को प्याज को निचोड कर उसका रस पिलाया जाता है जिससे उसका शारीरिक ताप शान्त हो जाता है।

२५ **घाव या फोडा**—फोडा बडा ही कष्टदायक रोग होता है। अत इससे पिण्ड छुडाने के लिए अनेक दवाये की जाती है। गावो मे फोडा की सबसे अच्छी दवा नीम की पत्ती मानी जाती है। जो कृमि नाशक (एण्टीसेप्टिक) होती है। अत नीम की पत्तियो को पीस कर उसमे थोडा सरसो का तेल मिलाकर उसे फोडे पर लगाकर पट्टी बाँध दी जाती है। इससे कुछ ही दिनो मे फोडा पक कर फूट जाता है। फिर नीम की पत्तियो को पानी मे उबालकर उसी गर्म पानी से उस घाव को धोया जाता है।

घाव को पकाने के लिए अरहर की पत्तियो को पीसकर उस पर लगाया जाता हे। कुछ लोग अरहर की दाल को पीस-कर उसकी पोल्टिस भी फोडा के ऊपर बाँधते है जिससे वह पक कर सूख जाता है। एक प्रकार की लत्ता—जिसका नाम है और जिसकी पत्तियाँ चौडी एव प्राय गोली है—की पत्तियो के पृष्ठ भाग मे घी लगाकर उसको घाव पर रखकर पट्टी बाँध

देते है। ऐसा करने से भी घाव पक जाता हे। इस काय के लिए तीसी को पीसकर उसकी पोल्टिस भी बाँधी जाती है। इस प्रकार फोडा को पकाकर सुखा देने के लिए ये अनेक प्रकार की लोक-औषधियाँ प्रयुक्त होती है।

२६ **फोडिया-फुसी**—यह एक छोटा सा फोडा या घाव है जो शरीर के किसी भी अग मे हो सकता है। नवजवान लडके जब योवन के प्रागण मे पदापण करना प्रारम्भ करते हे तब उनके मुँह पर छोटी-छोटी फुसियाँ निकल आती है जिनको 'मोहासा' कहा जाता है। इनको दूर करने के लिए अनेक दवाये प्रचलित है।

नीम के वृक्ष के तने के सूखे हुए छिलके को चन्दन की भाति पानी डालकर पत्थर पर रगडा जाता है। पुन इस लेप को फुसी पर लगाया जाता है। इससे फुसियाँ, सूख जाती है। छोटी छोटी फुसियो, पर गीला खाने वाला चूना लगा देने से भी वे दब जाती हे। कुछ लोग इनके ऊपर गीला सिन्दूर भी लगाते है। छोहाडा के बीज को चन्दन की भाँति रगड कर लगाने से भी यह रोग दूर हो जाता है।

२७ **रक्त स्राव**—गृह काय मे विशेष शाक-सब्जी काटते समय हसुवा या चाकू से हाथ की अँगुलियो का कट जाना एक साधारण वात है। ऐसी दशा मे कटे हुए स्थान से खून गिरने लगता है। रक्त स्राव को शीघ्र बन्द करने के लिए सबसे पहिले कटे हुए स्थान को हाथ से दबा दिया जाता हे। फिर किसी साफ कपडे को पानी मे भिगोकर उसे कटे स्थान पर बाँध दिया जाता हैं। इसके पश्चात् उस कपडे पर थोडा थोडा पानी डालकर उसे सदा भिगोकर 'तर' रखते है। इस प्रकार सर्दी पाकर खून का गिरना बन्द हो जाता है।

परन्तु यदि किसी कारण से किसी व्यक्ति का सिर फूट गया हो और उससे खून गिर रहा हो तो पानी से उस स्थान को धोकर उसमे पीसा हुआ बारीक कोयला भर कर उसे पट्टी से बाँध देते है। यद्यपि यह प्रक्रिया वैज्ञानिक नही है परन्तु इससे सिर से खून का गिरना बन्द हो जाता है।

२८ **जलना**—स्त्रियाँ रसोई बनाते समय 'अदहन' के गम पानी से, दाल छौकते समय गम घी के गिर जाने से, जल जाती हे। कभी कभी रोटी सेकते समय आग से उनका हाथ जल जाता है। ऐसी परिस्थिति मे ग्रामीण लोग बिना पानी की सहायता से आलू को छील पर, पतला पीस कर, उस जले हुए स्थान पर उसे लगा देते है। इससे जलन शान्त हो जाती है और कष्ट भी जाता रहता है। आलू से अधिक उत्तम जलन-शान्ति की कोई दूसरी दवा गाँवो मे उपलब्ध नही है। जले हुए स्थान पर मधु का लेप करने से भी थोडी शान्ति मिलती है।

२९ **छरियाना**—छोटे छोट बच्चे कभी कभी अनायास बहुत रोते है और वे माता का दूध नही पीते। इसे 'छरियाना' कहा जाता हे। जब बच्चे माता का दूध नही पीना चाहते उस समय उनकी मातायें अपने थन को 'थुक थुकाती' है। ऐसा करने से बच्चा दूध पीने मे प्रवृत्त हो जाता हैं।

कुछ स्त्रियो का यह भी विश्वास है कि किसी भूत-प्रेत—जिसे 'उपरवार' कहा जाता है—की कुदृष्टि से बच्चे छरियाने लगने है। अत वे उनके सिर के चारो ओर अपने हाथो मे राई लेकर घुमाती हैं और अन्त मे उस राई को आग मे जला देती है। ऐसा करने से बच्चो को कष्ट देने वाली प्रेतात्मा का नाश हो जाता है।

३० **सुखण्डी रोग**—प्राय ऐसा देखा जाता है कि छोटे छोटे बच्चो के हाथ-पैर दुबले होते चले जाते है। उनका पेट बाहर निकल आता है और उनका चेहरा कृश तथा उदास हो जाता है। ऐसे रोग को 'सूखा' कहते है जिसे लोक-भाषा मे 'सुखण्डी' रोग' के नाम से अभिहित किया जाता हैं।

इस रोग का उपचार प्राय ओझाओ के द्वारा किया जाने वाला झाडफूंक है। लोगो का ऐसा विश्वास है कि किसी दुष्ट प्रेतात्मा के द्वारा ऐसा किया जाता है। अत मान्त्रिक किसी लौकी या घास को अभिमन्त्रित करके घर के प्रधान द्वार पर टँगवा देते है। ऐसा समझा जाता है कि जैसे जैसे वह लौकी या घास सूखती जायेगी वैसे ही वैसे बच्चे का रोग भी सूखता जायेगा। इस प्रकार बच्चा वास्तव मे कुछ दिनो के पश्चात् चगा तथा पूर्ण स्वस्थ हो जाता है।

(३) परिच्छेद

३१ **सर्पदंश**—गाँवो मे विशेषकर बरसात के दिनो मे, सर्पदश प्राय एक सामान्य घटना मानी जाती है। कोई भी साल ऐसा नही बीतता जब कि साँप के काटने से दो-चार व्यक्ति परलोक न जाते हो।

साँप के द्वारा काटे गये व्यक्ति को पहिले नीम की पत्ती अथवा कालीमिर्च चबाने के लिए दी जाती है। यदि ये वस्तुयें कडुई अथवा तीती (तिक्त) न मालूम हो तो यह समझना चाहिए कि उस व्यक्ति को सप ने काट खाया है तथा इसका विष उसके शरीर मे व्याप्त हो रहा है। ऐसी अवस्था मे किसी 'साँप को झारने' वाले व्यक्ति को बुलाया जाता है। सर्पदश की सूचना

देने वाले व्यक्ति की पीठ पर यह मान्त्रिक पीतल की थाली का पृष्ठ भाग स्थापित करता है। वह अपने हाथो से 'मुसकोइल'—अर्थात् वह मिट्टी जिसे चूहो ने जमीन के नीचे से कुरेदकर ऊपर निकाला हो—को लेकर मत्र पढता है और उस थाली पर मिट्टी को जोरो से फेकता है। ऐसा करने से थाली उस व्यक्ति की पीठ पर चिपक जाती है। जब तक थाली उसकी पीठ पर चिपकी रहती है मान्त्रिक सपदश का मत्र पढकर उस पर मिट्टी फेकता रहता है। परन्तु जब थाली पीठ पर न चिपक कर नीचे गिर जाती है तब यह समझा जाता है सपदश का विष उतर गया अथवा नष्ट हो गया और वह व्यक्ति नीरोग हो जाता है। सपदश का मत्र निम्नलिखित है—

"इन्द्र कै बेटी वरह्मा सारी,
हाथ लडा वह ताली।
गोहुँवन, घोडकराइत, अजिगर,
भुवँग दोनो नैना जोरी के
चला हो शकर जी
चला हो शकर जी।"

कुछ यान्त्रिक लोग कोडी फेकते है। अर्थात् वे अपने मत्र के बल पर से दो कौडियो को फेकते है जो सप के दोनो कानो के पास जाकर चिपक जाती है। मत्र के बल से सप उस व्यक्ति के पास आता है और अपने विष को चूस लेता है।

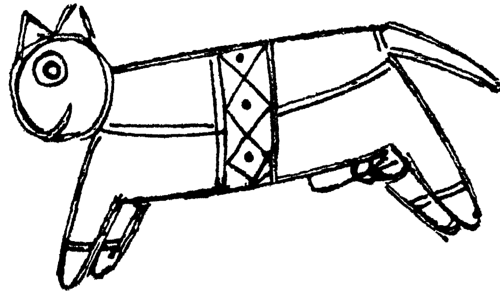
राजस्थान मे सप से काटे गये व्यक्ति को तेजा जी—जो सर्पों के देवता माने जाते है—के मदिर मे ले जाते है। वहाँ मदिर का पुजारी अथवा तेजाजी का कोई भक्त आकर साँप के विष को चूस लेता है और रोगी पूणत निरोग हो जाता है।

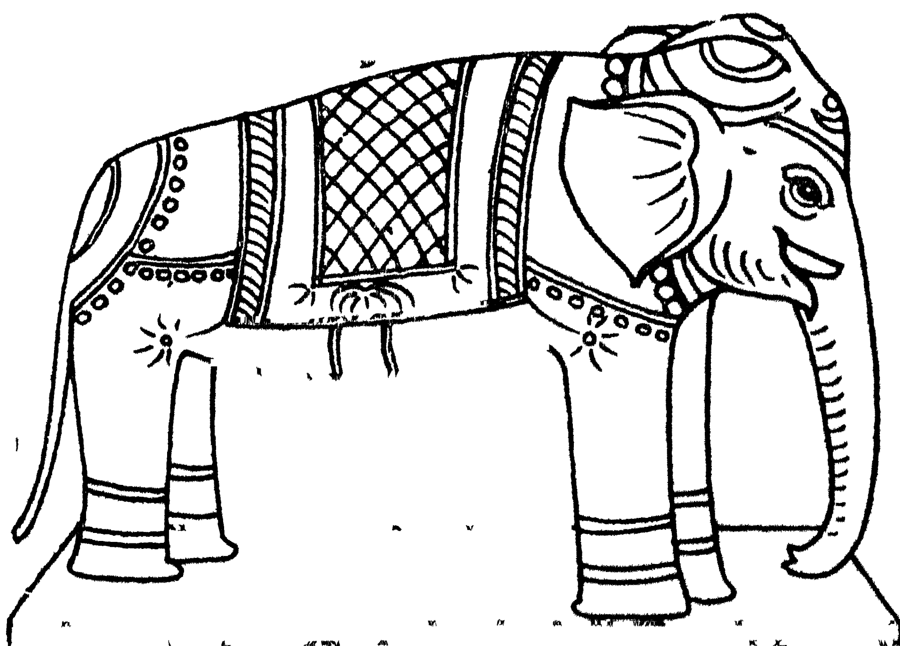
३२ **बिच्छू का दश**—गावो मे बिच्छू का काटना भी एक सामान्य घटना समझना चाहिए। जिस स्थान पर बिच्छू काटता है उस स्थान से थोडी दूर ऊपर शरीर के उस अग को रस्सी से जोरो से बाँध दिया जाता है जिससे दूषित या बिषैले रक्त का सचार शरीर मे न फैलने पाये। कुछ लोग उस स्थान को—जहाँ बिच्छू ने काट लिया हो—चाकू से चीर कर उससे थोडा रक्त निकाल देते है जिससे बिच्छू का विष का सचार न हो। फिर 'फिटकिरी को पानी मे घुलाकर उस जल को पीडित व्यक्ति के विपरीत अग वाले कान मे डाल देते है। यदि पैर अथवा हाथ मे 'बिच्छू ने डक मारा हो तो उस अग को गर्मपानी से धोया जाता है। इससे रोगी को बडी शान्ति मिलती है।

साँप की तरह बिच्छू के दश के विष को भी मत्रो के द्वारा 'उतारा' जाता है।

३३ **ततैया का काटना**—ततैया दो प्रकार का होता है जिसे भोजपुरी मे हाडा और बिर्न्हीं कहा जाता है। हाडा का रग लाल और बिर्न्हीं का पीला होता है। दोनो का ही दश बडा कष्टदायक होता है परन्तु चिरस्थायी नही। ततैया के द्वारा काटे गये स्थान पर लोहे की चाभी, चाकू अथवा कील के द्वारा धीरे-धीरे रगडने से उसका विष शान्त हो जाता है। कुछ लोग उस स्थान पर खानेवाला चूना पोत देते है। चूना के प्रभाव से विष जाता रहता है।

३४ **कुत्ता का काटना**—कुत्ते से काटे गये व्यक्ति को सात कुओ मे झांकने के लिए कहा जाता है। लोगो का ऐसा बिश्वास है कि इससे कुत्ते के बिष का प्रभाव नष्ट हो जाता है। सप की ही भाति कुत्ते के विष को भी मत्रो के द्वारा नष्ट किया जाता है।





अध्याय १५

आर्थिक जीवन

०○

(१) परिच्छेद

सामान्य जनता के आर्थिक जीवन का चित्रण

(१) अनुच्छेद—समाज मे समृद्धि

(२) अनुच्छेद—गरीबी तथा निर्धनता,

भोजपुरी जनता का आर्थिक स्तर अत्यन्त निम्न कोटि का है। इस प्रदेश मे निवास करने वाली अधिकाश जनता गरीबी की सी ा के नीचे निवास करती है। इस गरीबी का प्रधान कारण इस प्रदेश मे किसी बडे व्यवसाय का अभाव है। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकार ने इस क्षेत्र की आर्थिक उन्नति पर आज तक विशेष ध्यान नही दिया है। इस प्रदेश मे न तो कोई बडा स्टील प्लान्ट है और न कोई बडी इन्डस्ट्री। यही कारण है कि यहाँ की जनता अत्यन्त निर्धन है। यद्यपि भोजपुरी लोक-गीतो मे सोने की थाली मे भोजन करने का वणन उपलब्ध होता है परन्तु वह अतीत की स्मृति मात्र है। वर्तमान दशा का चित्रण कदापि नही है।

इस प्रदेश मे अनेक पेशेवाली जातियाँ निवास करती है जैसे लोहार, सोनार, बढई आदि। ये लोग रात दिन घनघोर परिश्रम करते है फिर भी पेट भरने से अधिक द्रव्य की प्राप्ति नही होती। अत इनकी दशा भी किसानो की ही भाति साधारण है। इन्ही का वर्णन यहाँ किया जाता है।

(२) परिच्छेद

पेशेवाली जातियाँ

भोजपुरी प्रदेश मे ऐसी अनेक जातियाँ निवास करती है जो किसी विशिष्ट व्यवसाय को ही करती है। इन जातियो मे जो परम्परागत पेशा चला आ रहा है उसी को करने मे ये अपना सम्मान तथा गौरव समझती हैं। ये लोग इस प्रदेश मे निवास करने वाली सामान्य जनता—किसान तथा मजदूरो—की दैनिक चर्या के लिए सामग्री जुटाने मे सलग्न रहते हैं। उदाहरण के लिए बढई किसानो के गृह निर्माण का काय करता है तो लोहार खेती के काम मे आने वाले उपकरणो को अपनी ग्रामीण प्रयोग-शाला मे तैयार करने मे सलग्न रहता है। इसी प्रकार से अन्य जातियाँ सामान्य लोगो के जीवन-यापन मे अपने पैतृक व्यवसाय के द्वारा सहायता पहुँचाती है। कहने का आशय यह है कि साधारण कृषक तथा इन पेशेवाली जातियो मे अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है अर्थात् एक का जीवन दूसरे पर अवलम्बित है। यदि धोबी और नाई ग्रामीण जनता के वस्त्रो का धोकर तथा उनकी हजामत बनाकर उनकी सेवा करता है तो जनता भी उनके भरण-पोषण के लिए आवश्यक अन्न तथा द्रव्य प्रदान कर अपने कर्तव्य का पालन करती है। इस प्रकार श्रम का विभाजन (Division of labour) होने के कारण ग्रामीण जीवन सुखी और सम्पन्न है। एक दूसरे के व्यवसाय मे किसी प्रकार की प्रतियोगिता की भावना न होने के कारण ग्रामीण जनता सुखपूर्वक निवास करते हुए चैन की वशी बजाती है।

यहाँ पेशेवाली जातियो का नाम तथा उनके व्यवसाय का सक्षिप्त वणन प्रस्तुत किया जाता हे।

१ बढई	२ लोहार
३ सोनार	४ धोबी
५ नाई	६ कोहार
७ माली	८ दर्जी
९ तेली	१० तमोली
११ राई	१२ ठठेरा
१३ नोनिया	१४ गोड
१५ भर	१६ लकडीहारा
१७ कोयरी	१८ कुँजडा
१९ खटिक	२० काछी
२१ मल्लाह	२२ मछुआ
२३ कहार	२४ मुसहर
२५ पेसराज	२६ पटहेरा
२७ धुनिया	२८ जोलाहा
२९ भाट	३० नेटुआ
३१ घटवार	३२ कलवार
३३ धाटिया	३४ कुरुमी
३५ पसारी	३६ भाँड
३७ पँवरिया	३८ हलुवाई
३९ तुरहा	४० कानू
४१ ?हीर	

(१) अहीर—भोजपुरी प्रदेश मे अहीर एक अत्यन्त वीर और पराक्रमशील जाति है जो अपनी शक्ति और बाहुबल के भरोसे जीती-जागती है। इनका प्रधान व्यवसाय गोपालन और कृषि-काय है। ये स्वभाव से बडे ही सीधे-सादे और स्पष्टवक्ता हैं। अत कभी कभी इनकी स्पष्टोक्ति शिष्टता की सीमा को भी पार कर जाती है। लाठी इनका सदा-सहायक आयुध है। अत ये लोग "लाठी मे गुण बहुत है, सदा राखिए पास" इस सिद्धान्त को मानने वाले है। यही कारण है कि ये बाँस की मोटी तथा लम्बी लाठी को अपने कधे पर रखकर खेतो मे निश्चिन्त तथा निडर विचरण किया करते है। डॉ० ग्रियसन ने इस वीर जाति की मुक्तकण्ठ से प्रशसा की है।

अहीर लोगो का राष्ट्रीय-गीत विरहा है जिसे ये लोग खेतो मे गाय चराते समय, अथवा आम के बगीचो मे विश्राम करते समय या किसी मेले-ठेले मे कान पर हाथ रख कर बडे ही उन्मुक्त स्वर से गाते है। विरहा मूलत विरह के गीत हैं जिनमे आजकल सभी रसो की अभिव्यक्ति की जाती है।

अहीरो की बारात देखने ही लायक होती हैं। इस जाति के सभी सदस्य अपने कधो पर मोटी लाठी लेकर विरहा गाते हुए चलते जाते है। अपने गन्तव्य स्थल पर पहुँच कर ये किसी बाग या बगीचे मे ठहर जाते है जिसे इनका जनवासा समझना चाहिए। यहाँ पर ये लोग खेल-कूद और व्यायाम का प्रदर्शन करते है। इनका एक विशेष व्यायाम दोनो हाथो को पृथ्वी पर रख कर उसके सहारे उछलना है जिसे 'गिरह मारना' कहा जाता है। जो अहीर इस कला मे जितना ही निपुण होगा वह उतना ही वीर समझा जाता है।

अहीर लोग स्वभाव से सीधे और छल-प्रपच से कोसो दूर रहते है। अत इनकी इस सिधाई को मूखता समझा जाने लगा है। इसीलिए, यह कहा जाता है कि अहीर सदा नाबालिग ही रहता है। लोग गीतो, लोक-कथाओ और कहावतो मे इनकी मूर्खता और काँइयापन के अनेक उल्लेख पाये जाते है। अहीर का आई-क्यू (I Q) बहुत कम होता है अत उसे समझाने वाला व्यक्ति बहादुर ही कहा जा सकता है।—

"अहिर के इयारी, भादो मे उजारी"

अहीर से मित्रता नही करनी चाहिए अन्यथा ये बीच मे ही धोखा दे देते है। उसका निर्वाह कदापि नही करते—

"अहीर के इयारी, भादो मे उजारी।"

जब ससार मे कोई भी व्यक्ति मित्रता करने के लिए न मिले तभी अहीर से इयारी (दोस्ती) करनी चाहिए अन्यथा नही।

"अहीर मिताई तब करे
जब सबै मीत मरि जाय।।"

इससे ज्ञात होता है मित्र के रूप मे अहीर कितना अविश्वसनीय व्यक्ति होता है। एक दूसरी कहावत मे इनकी मित्रता की उपमा 'बदरकट्टू घाम' (वह धूप जिसमे बादल छाये हुए हो) से दी गई है जो बहुत तेज और कष्टदायक होती है।[१] सावा की खेती और अहीर की मित्रता कभी-कभी ही अपनी होती है। अर्थात् इन पर विश्वास नही किया जा सकता।[२]

अहीरो की बुद्धिहीनता सुप्रसिद्ध है। वह कितना भी चतुर क्यो न हो जाय परन्तु लोरिक (लोरकी नामक लोक-गाथा) को छोड कर वह ओर कुछ गाना नही जानता।

"कतनो अहीर होय सयाना।
लोरिक छाडि न गावहि आना।।"

यदि कोई व्यक्ति जाति का अहीर हो, ओर जवानी से युक्त हो तथा इसके ऊपर उसके घर मे नव मन धान भी पैदा हो गया हो तब तो उसके बल, शक्ति और ज्ञान का क्या कहना है। ये तीनो अनर्थ के कारण बन जाते है। लोकोक्ति है--

"एक त अहीर, दोसरे जवान।
तीसरे होगइल नौ मन धान।।"

इस लोकोक्ति से सम्बन्धित सस्कृत की यह उक्ति कितनी समानता रखती है।

"यौवम, धनसम्पत्ति., प्रभुत्व, अविवेकता।
एकैकमप्यनर्थाय, किमु यत्र चतुष्टयम्।।

कहने की आवश्यकता नही कि अहीरो मे यदि उनके पास धन ओर प्रभुता भी हो—ये चारो बाते पायी जाती है तो विनाश को प्राप्त करना स्वाभाविक है।

अहीर का जीवन सीधा-सादा और उसका भोजन मोटा अन्न होता है। वह चटकीले तथा चटपटी वस्तुओ के खाने से दूर रहता है। इसीलिए यह कहा गया है कि "अहीर के भोजन कवन, दालि, बाटि, कोहडा।" इस जाति के लोग शरीर से बलिष्ठ तथा बडे हट्टे कट्टे होते है। अत इनका भोजन भी अपने शरीर के समान ही अधिक होता है। इसीलिए इनके पेट को गहरा कहा गया है।

"अहीर के पेट गहीर।" इनकी स्त्री बडी चतुर होती है। इसलिए कहावत है कि "अहिरिन अपना दही के कभी खट्टा ना कहेले।"

(२) **कलवार**—ऐसा ज्ञात होता है कि प्राचीन काल मे इनका व्यवसाय शराब 'चूआना' था। कबीरदास के एक पद से भी इनके व्यवसाय का उल्लेख किया गया है—

"अब मैं हो कलवारिन होइबे।
राम-नाम के मदिरा चुअइबो,
हो कलवारिन होइबो।"

भोजपुरी मे यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि कलवार की लडकी भूख से भलेही छटपटाती रहे परन्तु लोग यही कहते हैं कि उसने शराब पिया है।[३]

---

१ अहीर के इयारी बदरकद्दू घाम। (भो० लो० मु० पृ० ८९)
२ सोंवाँ के खेती अहीर मीत।
कबो कबो होखे मीते।। (भो० लो० पृ० १३५)
३ डॉ० मुक्तेश्वर तिवारी—भोजपुरी लोकोक्तियाँ और मुहावरे पृ० ८९।

"कलवारे के बिटिया भूखन छपिटात रही,
तबो लोग कही कि पियले बा।"

इसी भाव को द्योतित करने वाली एक दूसरी लोकोक्ति भी प्रचलित है[1]—

"कलवार के लडिका खइला बिना मुअत रहे,
तबे लोग कहल कि पी के मातल बा।"

इन लोकोक्तियो से ज्ञात होता है कि कलवार लोगो का प्रधान काय शराब बनाना है। अपने इसी निम्न व्यवसाय के कारण ये समाज मे ऊँची निगाह से नही देखे जाते।

कलवार जाति का प्राचीन नाम 'कल्यपाल' था। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि[2] "इन (कलवारो) के पूवज कभी राजपूत सैनिक थे और सेना के पिछले हिस्से मे रहकर 'कल्यवत' या 'कलेऊ' की रक्षा करते थे। न जाने किस जमाने मे इन लोगो ने तराजू पकडी थी और अब पूरे बनिया हो गये है।' परन्तु मृच्छकटिक नाटक मे 'कल्यवर्ता' का प्रयोग निन्दासूचक अथ मे किया गया है।

(३) **कहाँर**—गाँवो मे कहार लोग पालकी ढोने का काम करते है। भोजपुरी प्रदेश मे दूल्हा पालकी मे बैठकर ही विवाह करने के लिए जाता है। अत इस अवसर पर पालकी की बडी आवश्यकता पडती है। इसके फलस्वरूप विवाह के 'सीजन' मे कहारो का महत्त्व बहुत अधिक बढ जाता है। पालकी ढोते समय ये धीरे चलने, तेजी से चलने तथा ठहर जाने के अथ को द्योतित करने के लिए एक विशेष शब्दावली का प्रयोग करते है जो इनके ही शब्द-कोष मे पायी जाती है। लोक-गीतो मे इनका उल्लेख अनेक स्थानो मे पाया जाता है। चूकि विवाह के पश्चात् ये विवाहिता स्त्री को अपनी पालकी मे बिठाकर मायके से उसे ससुराल ले जाते है, अत इनका काय बधू की दृष्टि मे बडा क्रूर समझा जाता है। जब पालकी ढोने का मौसम नही होता तब ये लोग किसानो के घर मे सेवा या 'टहल' करते है।

(४) **काछी**—यह जाति भी कुजडा की ही भाँति साग-सब्जी पैदा करने का काम करती है। नदी के कछारो मे ये सब्जी और फल पैदा करने का व्यवसाय करती है। सत्यनारायण 'कविरत्न' ने अपनी एक कविता मे जमुना की तलहटी मे काछियो के द्वारा सब्जी की खेती करने का उल्लेख किया है—

"काछी, माली करत है, आपन आपन खेत" यह जाति उत्तर-प्रदेश के पश्चिमी जिलो मे ही प्राय अधिक पायी जाती है।

(५) **कानू**—सस्कृत मे 'कन्दु' शब्द का अथ 'भाड' होता है जिसे भोजपुरी मे 'भनसारि' कहा जाता है। कन्दु-पक्व अन्न उसे कहते है जो भाड मे भूना जाय। इस जन-भाषा मे 'भुजुना' भी सज्ञा प्राप्त है। देव-वाणी मे 'कान्दविक' नाम से उस जाति का उल्लेख किया गया है जो भडभूजे का पेशा करती है। सस्कृत के इसी 'कान्दविक' शब्द से 'कानू' की उत्पत्ति समझनी चाहिए।[3] चूकि कानू या कान्दू जाति कन्दू (भाड झोकना) का व्यवसाय करती है, अतएव कालान्तर मे इसका नाम 'कानू' पड गया होगा।

इस जाति की स्त्रियाँ गाँवो के बगीचे मे गिरी हुई सूखी पत्तियो को बटोर कर उनकी एक बहुत बडी तथा ऊँची राशि तैयार करती है। यह शुष्क-पर्ण-राशि 'गाँज' कही जाती है। इन्ही सूखे पत्तो को भाड़मे झोककर 'भुजुना' भूना जाता है। चूकि 'भाड का झोकना' एक परिश्रम रहित और निरथक व्यापार समझा जाता है। अत हिन्दी मे 'भाड झोकना' एक मुहावरे के रूप मे प्रयुक्त होने लगा है जिसका अर्थ है निष्प्रयोजन कार्य करना। भाड़ मे अन्न को भूनने की परम्परा कुछ कम प्राचीन नही है। जायसी ने विरहिणी नागमती के शरीर के जलने की उपमा भाड़ के जलने से दी है।[4]

फिरि फिरि भुजहि तजहि न बाक॥

पाणिनि ने भी भाड़ का उल्लेख किया है। उनके 'सस्कृत भक्षा' (४।२।१३) सूत्र पर काशिका मे तीन उदाहरण दिये गये हे—(१) भ्राष्ट्रा अपूपा (२) कालश अपूपा और (३) कौम्भा अपूपा। यहाँ भ्राष्ट्र का अर्थ 'भाड़' है। इस भाड

१. डॉ० शशिशेखर तिवारी—भोजपुरी लोकोक्तियाँ पृ० १२५।
२ डॉ० द्विवेदी—अशोक के फूल पृ० ३३।
३ डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी—अशोक के फूल पृ० ३२।
४ जायसी-पद्मावत (नागमती वियोग खण्ड)

मे सेक कर बनाये गये 'अपूप' को 'भ्राष्ट्रा अपूप' कहा जाता था। भोजपुरी प्रदेश मे ये 'अपूप' आज भी बनाये जाते ह। कडे गूथे हुए आटे की बडी लोई बनाकर भाड के पास ले जाते है और इसे खोचे मे रखकर भाड के भीतर रखकर सेक लेते ह। इसे 'खोरिया' कहा जाता है। यही पाणिनि का 'भ्राष्ट्रा अपूप' है।

(६) **कायस्थ**—यह एक बुद्धिजीवी जाति है जो अपनी लेखनी और बुद्धि के बल से जीविकोपार्जन करती है। कायस्था का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। शूद्रक के द्वारा लिखित मृच्छकटिक नाटक मे इनका उल्लेख पाया जाता है, जहाँ न्यायाल्य (कचहरी) के एक कमचारी के रूप मे इनका चित्रण किया गया है। मुगलकाल तथा ब्रिटिश राज मे भी ये छोटे बडे राजकीय पदो पर आसीन रहे। मुगलकाल मे कचहरी का काम करने के लिए इन्होने अरबी, फारसी और उर्दू का अध्ययन किया और अग्रेजी राज मे ये अग्रजी पढने मे भी अग्रणी रहे है। इस प्रकार समय के परिवर्तन के साथ ही ये अपने को उसके अनुकूल बनाने मे बडे तेज है। आज भी कायस्थ भारतवर्ष की शिक्षित तथा बुद्धिजीवी जातियो मे प्रधान है। अत्यन्त प्राचीन काल से राज-काज तथा राज-दरबारो से सम्बद्ध होने के कारण ये वाक्-पटुता, लोक-व्यवहार और समाचातुरी मे सिद्ध होते है।

ये कचहरी के जीव है। जैसे बत्तक पानी मे आनन्द से तैरता रहता है उसी प्रकार से कायस्थ कचहरी मे अपनी सिद्धहस्तता दिखलाने मे बडे चतुर है। लिखा-पढी करने तथा लेखा (एकाउण्ट्स) आदि के काम को बडी ही चतुरता से ये सम्पादित कर सकते है। शायद ही कोई कायस्थ का पुत्र ऐसा हो जो मन्द, बुद्धिहीन और मूख हो। कायस्थ चतुरता, चालाकी ओर काइयापन का प्रतीक समझा जाता है। इसीलिए इससे सभी लोग भय खाते है।

याज्ञवल्क्य ने कायस्थ शब्द की व्युत्पत्ति बतलाते हुए इसे काय (शासन) मे 'स्थ' अर्थात् स्थित (काय + स्थ) लिखा है।[1] आचाय उशना ने कायस्थो को एक चतुर जाति माना है और इस शब्द की निरुक्ति निम्नाकित प्रकार से बतलायी है। उनके अनुसार काक (कौआ) के 'का' यम के 'य' और स्थपति के 'स्थ' इन तीनो शब्दो के आदि अक्षरो को जोड देने से इसकी निष्पत्ति हुई है।[2] काक, यम और स्थपति शब्द क्रम से चचलता, क्रूरता एव लूट के परिचायक है।[3] सस्कृत के किसी कवि ने इनकी क्रूरता के सम्बन्ध मे लिखा है कि कायस्थ के बालक ने अपनी माता के गर्भ मे निवास करते समय माता के मास का भक्षण नही किया। इसमे उसकी दया नही समझनी चाहिए। बल्कि उसके दाँतो का अभाव ही इसका प्रधान कारण था।[4] परन्तु निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि यह उक्ति अत्युक्ति मात्र है। कायस्थ जाति मे ऐसे अनेक पुरुष रत्न पैदा हुए हैं जिनका आचरण देवतुल्य था। जो त्याग और तपस्या मे किसी भी उच्च वर्ग के व्यक्ति को चुनौती दे सकते थे और जिनका जीवन गगा की तरह पवित्र, दूध की भाँति स्वच्छ और पवमान् के सदृश पावन था।

लोक साहित्य की विभिन्न विधाओ—लोक-गीत, लोक-कथा, लोकोक्तियाँ आदि—मे कायस्थो की चतुरता का उल्लेख पाया जाता है। ये लोग अपनी बुद्धि से काम करते हैं। अत यदि कायस्थ का लडका पढा लिखा है तब तो ठीक है नही तो उसे बेकार ही समझना चाहिए।[5] ये लोग गाँवो मे प्राय पटवारी (आधुनिक लेखपाल) का काम करते है और इन्हे सदा अपना कागज-पत्र—'खसरा' और 'खतिऔनी' आदि ही दिखाई पडता है।[6] ये हमेशा लेखा-जोखा करते रहते है, खेतो की पैदावार का औसत निकाला करते है तथा लेखन काय से सम्बद्ध रहने के कारण ये बडे हिसाबी किताबी है। उनकी इसी प्रवृत्ति

---

१ याज्ञवल्क्य स्मृति १।३३६

२ काकाल्लौल्य यमात् क्रौर्यं
स्थपतेरथ कृन्तनम्।
आद्यक्षराणि सगृह्य,
कायस्थ, इति निर्दिशेत्।
उशना स्मृति ३५।

३ डॉ० शशिशेखर तिवारी—भो० लो० पृ० १२६।

४ कायस्थेनोदरस्थेन, मातुर्मास न भक्षितम्।
न हि तत्र दया हेतु, तत्र हेतुरदन्तता॥

५ कायस्थ का बेटा पढ़ा भला, या मरा भला।

६ कायथ के कागदे में सूझेला।

को लक्षित करती हुई एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है।[1] कायस्थ किसी से झगड़ा नही करता बल्कि वह अपनी तेज बुद्धि और अपनी कलम के बल से दूसरो का नाश कर देता है। वह खेती के कागजो मे गलत इन्दिराज (entries) करके एक व्यक्ति के खेत को दूसरे के नाम लिख देता है। यह कहावत प्रसिद्ध है कि—

"एक कलम घसके, त बावन गाँव खसके"

अर्थात् वह एक कलम की नोक से किसी व्यक्ति के बावन गाव के खेतो को दूसरे के नाम लिख देता है। ये लोग धनी वर्ग के सदस्यो को आपस मे लडा देते है और स्वय उस झगडे मे लाभ उठाकर अपने स्वार्थ की सिद्धि करते है। ये महाकवि भवभूति के इस कथन के अनुयायी है जिसका उल्लेख उनकी निम्नांकित पंक्ति मे किया है —

"तटस्थ स्वान् अर्थान् घटयति च मौन च भजते"

घूस लेना पटवारी अथवा लेखपाल का जन्मसिद्ध अधिकार माना जाता है। ये घूस लिए बिना बात तक नही करते। मुफ्तखोरी की आदत पड जाने के कारण, ये पैसा देकर किसी चीज को खरीदना नही जानते और जब किसी वस्तु का मूल्य रूपयो मे चुकाना पडता है तब ये अशिष्ट आचरण करने लगते है।[2] कायस्थ लोग बडे चालाक होते है। ये अपने मालिक को खुश करना जानते है। अपनी खुशामदी प्रवत्ति के कारण ये किसी भी व्यक्ति को अपने वश मे करने की कला को जानते है। इसीलिए इनकी गणना वैद्यो और दलालो की श्रेणी मे की गई है।[4] एक ही कायस्थ अपनी चतुरता और चालाकी के द्वारा दूसरो का नुकसान करने के लिए पर्याप्त है परन्तु जहा तीन कायस्थ एकत्रित हो जाय वहाँ तो सर्वनाश ही समझना चाहिए। एक पहेली मे ऐसा उल्लेख पाया जाता है कि जहा तीन कायस्थ हो वहाँ वज्र पड जायेगा।[5]

कायस्थो की सबसे बडी विशेषता यह है कि ये अपने जाति से बडा प्रेम करते है। यदि एक भी कायस्थ किसी आफिस, फक्टरी अथवा सचिवालय मे ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित है तो वह अपनी जाति के हजारो आदमियो को लाकर भर देता है। ये ब्राह्मण और कुत्तो की तरह अपने बन्धु-बान्धवो को देखकर गुर्राते नही, प्रत्युत उनसे प्रेम करते हुए अपना साहचर्य स्थापित करते है। सगठन तथा एकता की यही भावना इनकी उन्नति का एक मात्र कारण है। एक कहावत मे उनकी इस प्रवृत्ति का बडा सुन्दर उल्लेख पाया जाता है।[6]

"कायथ, कउवा, रोर, जाति जाति बटोर।"

अर्थात् कायस्थ, कौआ और सियार (गीदड)—ये अपनी जाति के अन्य सदस्यो को एकत्रित करते है, उन्हे अपने पास बटोर कर लाते है।

(७) **कुँजडा**—इन लोगो का कार्य प्रधानतया साग-सब्जी बेंचना है। गाँवो मे जो व्यवसाय तुरहा जाति के लोग किया करते है शहरो मे वही काम कुँजडा लोगो का है। ये सब्जी बेचने के अतिरिक्त आम और अमरूद के कुंजो अथवा बगीचो को खरीद लेते है और पक जाने पर इन फलो को तोड कर बाजारो मे बेंचते है। क्या कुंजो मे रहने और उनकी रखवाली करने के कारण ही इनका नाम कुँजडा तो नही पड गया है ?

---

१ लेखे जोखे थाहे, लडिका बुडलन काहे।

इस लोकोक्ति से सम्बन्धित कथा इस प्रकार है। कोई मुन्शी जी (कायस्थ की उपाधि) किसी नदी की गहराई का औसत हिसाब निकाल रहे थे। उनकी गणना के अनुसार नदी की औसत गहराई इतनी ही थी जिसे आर पार किया जा सकता था। परन्तु अपने पुत्र को जिस स्थान पर नदी पार करने का उन्होने आदेश दिया वहाँ नदी अधिक गहरी थी। अत नदी को पार करते समय उनका लडका डूबकर मर गया। उस मूर्ख मुन्शी को यह क्या मालूम था कि नदी की गहराई औसत से नहीं निकाली जाती।

२ "लड्डू लडे, झिल्ली भरे, कायथ बेचारा का पेट भरे।"
यहाँ लड्डू का अर्थ धनी लोगों से समझना चाहिए। और झिल्ली का अर्थ 'बुनिया' है।

३ "नगद कायथ भूत, उधार कायथ देवता।"

४ पर घर नाचे तीन, कायथ, बैद, दलाल।

५ बज्जर पडे कहवाँ, तीन कायथ जहवाँ।

६ डॉ० शशि शेखर तिवारी—भो० लो० पृ० १२६-२७।

इनकी स्त्री 'कुँजडिन' के नाम से जानी जाती हे जो अपने पति के साथ काम करने मे बडी दक्ष होती है। ये आम और अमरूद के फलो को बेचने के लिए छबडी मे अपने सिर पर रख कर, गाँव गाँव मे घूमती फिरती है।

(८) **कुरुमी**—यह एक खेतिहर जाति हे। इनकी आथिक स्थिति प्राय अच्छी पायी जाती है। ये लोग व्यापार भी करते है परन्तु इनकी प्रधान जीविका खेती पर ही निभर हे। लोक-साहित्य मे इनका वणन एक परिश्रमी जाति के रूप मे किया गया है। इनकी स्त्रिया भी बडी ही मिहनती तथा परिश्रम शील होती है आर अपने पति के साथ निरन्तर खेतो मे काम करती हुई पायी जाती है। एक 'कविता' मे इनके व्यवसाय का बडा ही सुन्दर वणन हुआ है जिससे अपने पति के साथ इनकी साहचय-प्रियता का भी पता चलता है।

"नीक जाति कुरुमिन की, खुरपी हाथ।
आपन खेत निरावे, पिय के साथ।।"

एक लोकोक्ति मे कोहार और कुरुमी के द्वारा झुक झुक कर खेत को कुदाल के द्वारा खोदने का उल्लेख हुआ है।

"कुरुमी, कोहार, हुचुक हुचुक के कुदरा पार।"

कुरुमी के विषय मे यह कहावत प्रसिद्ध है।

"बनले मल्ल, बिगरले कुरुमी।।

अर्थात् धन से युक्त होने पर ये मल्ल (क्षत्रियो के एक विशेष जाति) के नाम से पुकारे जाते है परन्तु गरीब होने पर 'कुरुमी' की सज्ञा प्राप्त करते हैं।

एक लोकोक्ति मे इनकी अविश्वसनीयता का पता चलता है—[1]

"पत्थर पर जब जामे गुरुमी।
तबहु ना होखे आपन कुरुमी।।"

अर्थात् पत्थर की शिला पर गुरुमी (ककडी की जाति का एक पौधा) का पैदा होना समव है परन्तु कुरुमी पर विश्वास करना असम्भव है। ये कभी भी अपने नही हो सकते है।

(९) **कोईरी**—यह बहुत परिश्रमी जाति है जिनका स्वभाव बडा सरल और रहन-सहन साधारण होता है। इनका प्रधान व्यवसाय शाक-सब्जी पैदा करना है। ये अपने खेतो को खूब अधिक जोतते हे, उनमे गोबर तथा कम्पोस्ट की खाद प्रचुर मात्रा मे डालते है जिससे उस खेत की उपजाऊ शक्ति बहुत अधिक बढ जाती है। कोईरी के इस खाद युक्त खेत को "कोडार" कहा जाता है। ये लोग इस 'कोडार' मे साल भर मे तीन फसल पैदा करते है। भिन्न-भिन्न मौसमो मे ये इन खेतो मे अनेक प्रकार की शाक-सब्जियाँ पैदा करते है जिससे इनको प्रचुर आय होती है। प्रचण्ड गर्मी के दिनो मे ही जब तरकारी पैदा होने का मौसम नही रहता ये 'चीना' बो देते है और कुएँ से सिंचाई करके इस पैदावार को दो मास के भीतर ही पैदा कर लेते है। इस प्रकार कोईरी केवल दो-तीन बीघे जमीन मे ही शाक-सब्जी के द्वारा इतना द्रव्य पैदा कर लेता है जिससे वह अपने परिवार का पालन-पोषण अच्छी तरह से कर लेता है।

कोईरी बडे ही परिश्रमी होते है। खेत ही इनका साधन है। यही इनकी कमस्थली है। इनके सम्बन्ध मे यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि—

"कोईरी अहीर खेती करे
अउर करे बरिआई।"

अर्थात् कोईरी और अहीर अपने अथक परिश्रम के द्वारा सच्चे अर्थो मे खेती करते है और अन्य जाति के लोग तो जबरदस्ती करते है। वास्तव मे ये दोनो अपने घनघोर श्रम के द्वारा पृथ्वी से सोना उगलवाते ह।

इतनी जबरदस्त मिहनत करने के बावजूद भी कोईरी अपने परिवार का पेट पालने के अतिरिक्त और कुछ नही कर पाता। वह एक निधन वग का सदस्य माना जाता है। इसका उल्लेख एक कहावत मे इस प्रकार से किया गया है—

---

१ डॉ० शशिशेखर तिवारी—भोजपुरी-लोकोक्तियाँ पृ० १२७।

को लक्षित करती हुई एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है।[१] कायस्थ किसी से झगडा नही करता बल्कि वह अपनी तेज बुद्धि ओर अपनी कलम के बल से दूसरो का नाश कर देता है। वह खेती के कागजो मे गलत इन्द्रिराज (entries) करके एक व्यक्ति के खेत को दूसरे के नाम लिख देता है। यह कहावत प्रसिद्ध हे कि—

"एक कलम घसके, त बावन गाँव खसके"

अर्थात् वह एक कलम की नोक से किसी व्यक्ति के बावन गाँव के खेतो को दूसरे के नाम लिख देता है। ये लोग धनी वर्ग के सदस्यो को आपस मे लडा देते है ओर स्वय इस झगडे से लाभ उठाकर अपने स्वार्थ की सिद्धि करते है। ये महाकवि भवभूति के इस कथन के अनुयायी है जिसका उल्लेख उन्होने निम्नांकित पंक्ति मे किया है—

"तटस्थ स्वान् अर्थान् घटयति च मान च भजते"

घूस लेना पटवारी अथवा लेखपाल का जन्मसिद्ध अधिकार माना जाता है। ये घूस लिए बिना बात तक नही करते। मुफ्तखोरी की आदत पड जाने के कारण, ये पैसा देकर किसी चीज को खरीदना नही जानते और जब किसी वस्तु का मूल्य रूपयो मे चुकाना पडता है तब ये अशिष्ट आचरण करने लगते है।[२] कायस्थ लोग बडे चालाक होते है। ये अपने मालिक को खुश करना जानते है। अपनी खुशामदी प्रवृत्ति के कारण ये किसी भी व्यक्ति को अपने वश मे करने की कला को जानते है। इसीलिए इनकी गणना वैद्यो और दलालो की श्रेणी म की गई है।[४] एक ही कायस्थ अपनी चतुरता और चालाकी के द्वारा दूसरो का नुकसान करने के लिए पर्याप्त हे परन्तु जहा तीन कायस्थ एकत्रित हो जाँय वहाँ तो सवनाश ही समझना चाहिए। एक पहेली मे ऐसा उल्लेख पाया जाता है कि जहा तीन कायस्थ हो वहाँ बज्र पड जायेगा।[५]

कायस्थो की सबसे बडी विशेषता यह है कि ये अपने जाति से बडा प्रेम करते है। यदि एक भी कायस्थ किसी आफिस, फक्टरी अथवा सचिवालय मे ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित हे तो वह अपनी जाति के हजारो आदमियो को लाकर भर देता है। ये ब्राह्मण ओर कुत्तो की तरह अपने बन्धु-बान्धवो को देखकर गुर्राते नही, प्रत्युत उनसे प्रेम करते हुए अपना साहचय स्थापित करते है। सगठन तथा एकता की यही भावना इनकी उन्नति का एक मात्र कारण है। एक कहावत मे उनकी इस प्रवृत्ति का बडा सुन्दर उल्लेख पाया जाता है।[६]

"कायथ, कउवा, रोर, जाति जाति बटोर।"

अर्थात् कायस्थ, कौआ और सियार (गीदड)—ये अपनी जाति के अन्य सदस्यो को एकत्रित करने है, उन्हे अपने पास बटोर कर लाते है।

(७) **कुँजडा**—इन लोगो का काय प्रधानतया साग-सब्जी बेचना है। गाँवो मे जो व्यवसाय तुरहा जाति के लोग किया करते है शहरो मे वही काम कुँजडा लोगो का है। ये सब्जी बेचने के अतिरिक्त आम और अमरूद के कुजो अथवा बगीचो को खरीद लेते है और पक जाने पर इन फलो को तोड कर बाजारो मे बेचते है। क्या कुजो मे रहने और उनकी रखवाली करने के कारण ही इनका नाम कुँजडा तो नही पड गया है ?

---

१ लेखे जोखे थाहे, लडिका बुडलन काहे।

इस लोकोक्ति से सम्बन्धित कथा इस प्रकार है। कोई मुन्शी जी (कायस्थ की उपाधि) किसी नदी की गहराई का औसत हिसाब निकाल रहे थे। उनकी गणना के अनुसार नदी की औसत गहराई इतनी ही थी जिसे आर पार किया जा सकता था। परन्तु अपने पुत्र को जिस स्थान पर नदी पार करने का उन्होंने आदेश दिया वहाँ नदी अधिक गहरी थी। अत नदी को पार करते समय उनका लडका डूबकर मर गया। उस मूर्ख मुन्शी को यह क्या मालूम था कि नदी की गहराई औसत से नहीं निकाली जाती।

२ "लड्डू लडे, झिल्ली भरे, कायथ बेचारा का पेट भरे।"

यहाँ लड्डू का अर्थ धनी लोगो से समझना चाहिए। और झिल्ली का अर्थ 'बुनिया' है।

३ "नगद कायथ भूत, उधार कायथ देवता।"

४ पर घर नाचे तीन, कायथ, बैद, दलाल।

५ बज्जर पड़े कहवाँ, तीन कायथ जहवाँ।

६ डॉ० शशि शेखर तिवारी—भो० लो० पृ० १२६-२७।

इनकी स्त्री 'कुँजडिन' के नाम से जानी जाती है जो अपने पति के साथ काम करने मे बडी दक्ष होती है। ये आम और अमरूद के फलो को बेचने के लिए छबडी मे अपने सिर पर रख कर, गाँव गाँव मे घूमती फिरती है।

(८) **कुरुमी**—यह एक खेतिहर जाति है। इनकी आर्थिक स्थिति प्राय अच्छी पायी जाती है। ये लोग व्यापार भी करते है परन्तु इनकी प्रधान जीविका खेती पर ही निभर हे। लोक-साहित्य मे इनका वणन एक परिश्रमी जाति के रूप मे किया गया है। इनकी स्त्रिया भी बडी ही मिहनती तथा परिश्रम शील होती है और अपने पति के साथ निरन्तर खेतो मे काम करती हुई पायी जाती है। एक 'कविता' मे इनके व्यवसाय का बडा ही सुन्दर वणन हुआ है जिससे अपने पति के साथ इनकी साहचय-प्रियता का भी पता चलता है।

"नीक जाति कुरुमिन की, खुरुपी हाथ।
आपन खेत निरावे, पिय के साथ॥"

एक लोकोक्ति मे कोहार और कुरुमी के द्वारा झुक झुक कर खेत को कुदाल के द्वारा खोदने का उल्लेख हुआ है।

"कुरुमी, कोहार, हुचुक हुचुक के कुदरा पार।"

कुरुमी के विषय मे यह कहावत प्रसिद्ध है।

"बनले मल्ल, बिगरले कुरुमी॥

अर्थात् धन से युक्त होने पर ये मल्ल (क्षत्रियो के एक विशेष जाति) के नाम से पुकारे जाते है परन्तु गरीब होने पर 'कुरुमी' की सज्ञा प्राप्त करते हे।

एक लोकोक्ति मे इनकी अविश्वसनीयता का पता चलता है—[१]

"पत्थर पर जब जामे गुरुमी।
तबहु ना होखे आपन कुरुमी॥"

अर्थात् पत्थर की शिला पर गुरुमी (ककडी की जाति का एक पौधा) का पैदा होना समव है परन्तु कुरुमी पर विश्वास करना असम्भव है। ये कभी भी अपने नही हो सकते है।

(९) **कोईरी**—यह बहुत परिश्रमी जाति है जिनका स्वभाव बडा सरल और रहन-सहन साधारण होता है। इनका प्रधान व्यवसाय शाक-सब्जी पैदा करना है। ये अपने खेतो को खूब अधिक जोतते हे, उनमे गोबर तथा कम्पोस्ट की खाद प्रचुर मात्रा मे डालते है जिससे उस खेत की उपजाऊ शक्ति बहुत अधिक बढ जाती है। कोईरी के इस खाद युक्त खेत को "कोडार" कहा जाता है। ये लोग इस 'कोडार' मे साल भर मे तीन फसल पैदा करते है। भिन्न-भिन्न मौसमो मे ये इन खेतो मे अनेक प्रकार की शाक-सब्जियाँ पैदा करते है जिससे इनको प्रचुर आय होती है। प्रचण्ड गर्मी के दिनो मे ही जब तरकारी पैदा होने का मौसम नही रहता ये 'चीना' बो देते है और कुएँ से सिचाई करके इस पैदावार को दो मास के भीतर ही पैदा कर लेते हैं। इस प्रकार कोईरी केवल दो-तीन बीघे जमीन मे ही शाक-सब्जी के द्वारा इतना द्रव्य पैदा कर लेता है जिससे वह अपने परिवार का पालन-पोषण अच्छी तरह से कर लेता है।

कोईरी बडे ही परिश्रमी होते है। खेत ही इनका साधन है। यही इनकी कमस्थली है। इनके सम्बन्ध मे यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि—

"कोईरी अहीर खेती करे
अउर करे बरिआई।"

अर्थात् कोईरी और अहीर अपने अथक परिश्रम के द्वारा सच्चे अर्थो मे खेती करते है और अन्य जाति के लोग तो जबरदस्ती करते हे। वास्तव मे ये दोनो अपने घनघोर श्रम के द्वारा पृथ्वी से सोना उगलवाते है।

इतनी जबरदस्त मिहनत करने के बावजूद भी कोईरी अपने परिवार का पेट पालने के अतिरिक्त और कुछ नही कर पाता। वह एक निर्धन वर्ग का सदस्य माना जाता है। इसका उल्लेख एक कहावत मे इस प्रकार से किया गया है—

---

१ **डॉ० शशिशेखर तिवारी—भोजपुरी-लोकोक्तियाँ पृ० १२७।**

"कोईरी के लरिका जनमे के हीन।
हाथ मे खुरपा मोथा बीन।।

अर्थात् कोईरी का पुत्र जन्म से ही दरिद्र, दीन-हीन होता है। वह आरम्भ से ही हाथ मे खुरपी लेकर मोथा—एक विशेष घास—को बीनता है, उसकी निराई करता है।

कोईरी एक सीधी-सादी जाति है। यह छल-प्रपञ्च से कोसो दूर रहती है। इनको अपने खेत मे कठिन परिश्रम कर तरकारी उगाने से ही फुसत नही मिल्ती। इनकी इसी सीधापन और सज्जनता को लक्षित करते हुए एक मुहावरा प्रचलित है–

"कोईरी के देवता नियर सीधा"

अर्थात् कोईरी के देवता के समान सरल और सज्जन। गाँवो मे यदि कोई व्यक्ति कम बोलता है, सीधा तथा सरल है तथा छल-प्रपञ्च से कोसो दूर रहता है ऐसे व्यक्ति की उपमा 'कोईरी' के देवता' से दी जाती है। इस प्रकार कोईरी सीधापन का प्रतीक और सज्जनता की मूर्ति है।

(१०) **कोंहार**—संस्कृत के 'कुम्भकार' शब्द से कोहार की निरुक्ति हुई है जिसका अथ है कुम्भ अर्थात् घडा का बनाने वाला। गाँवो मे जिस प्रकार से बढई और लोहार किसानो के लिए लकडी और लोहे के सामानो को तैयार कर उनकी आवश्यकताओ की पूर्ति करता है उसी प्रकार से कोहार सामान्य जनता के उपयोग के लिए मिट्टी के विभिन्न उपयोगी पात्रो को बनाता है। इसके द्वारा निर्मित कुछ पात्रो के नाम इस प्रकार है'—करवा, पुरवा, चुक्कड, नादी, मटका, मटकी, सुराही घडा, नाद, छोडि आदि। इसमे पुरवा सबसे छोटा पात्र होता जिसमे सामान्यलोग जल, चाय या दुग्ध-पान करते है। परन्तु छोडि सबसे बडा जल का पात्र होता है जिसमे विवाह के अवसर पर बारातियो के पानी पीने के जल का सचय किया जाता है। गाँवो मे जहाँ पानी रखने के लिए बडे बडे कडाल नही होते वहाँ उनकी पूर्ति इसी 'छोडि' से की जाती है।

कोहार—जिसे कुम्हार भी कहा जाता है—का साधन पत्थर का एक गोलाकार खण्ड मात्र है जिसे 'चाक' कहते है। उसमे एक छेद बना रहता है जिसमे डण्डा या छोटी छडी डाल कर कुम्हार उसे दाये से बाये घुमाता है और अपने हाथोसे मिट्टी के 'लोदा' को स्पश कर उससे विभिन्न पात्रो की आकृति बनाता है। अपने इसी निर्माण कुशलता के कारण वह ब्रह्मा से भी स्पर्धा करने की कामना करता है।

"भवेतऽद्य श्वो वा नियतमिह पापिनि कलियुगे।
घटानां निर्मातु त्रिभुवनविधातुश्च कलह ।।"

परन्तु कोहार का सबसे अधिक महत्व इससे है कि वह ग्रामीणो के गृह-निर्माण के लिए आवश्यक उपादान प्रस्तुत करता है। गाँव के लोग प्राय मिट्टी का मकान बनाते है और उसे ऊपर से खपडा और नरिया से छा देते है। ये दोनो ही वस्तुये ग्रामीण कुम्हार की प्रयोगशाला—आँवा—मे तैयार की जाती हैं। इनके अभाव मे मकान का बनना सम्भव नहीहै। इसके अतिरिक्त वह मगलमय अवसरों—विशेषकर विवाह के समय—पर गणेश की प्रतिमा, मगलमय हस्ती (हाथी) और 'मडेसर' आदि को बनाकर जनता के कार्यो मे सहयोग प्रदान करता है। दिवाली के अवसर पर कुम्हार की कला अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची हुई दिखलाई पडती है। विभिन्न जानवरो, पक्षियो, देवताओ की प्रतिमाओ को मिट्टी के लोदे के द्वारा निर्मित कर वह उनको सजीवता प्रदान कर देता है। दिवाली के त्यौहार पर गणेश और लक्ष्मी की रगीन तथा मनोहारिणी प्रतिमा देखते ही बनती है।

कोहार के सम्बन्ध मे कई कहावतें प्रसिद्ध हैं। एक लोकोक्ति का भाव यह है कि कुम्हार के आवें से अनेक जीवो की रक्षा होती है।[२] इसी प्रकार से कोहार घडे का निर्माण करता है और अपनी सृष्टि से समस्त ससार को भर देता है।[३] इस दृष्टि से कुम्हार का पेशा बडा ही उपयोगी व्यवसाय है जिसकी आवश्यकता ग्रामीण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे दिखायी पडती है।

---

१ करवा कोहार के, घीव जजमान के।
बाबा जी करसु, स्वाहा स्वाहा।।
२ कोहार के धुई पाख, बोसरा के जीव राख।
३ घडे कोंहार, भरे ससार।
डॉ० श० शे० तिवारी—भोजपुरी लोकोक्तियाँ पृ० १२७।

(११) **खटिक**—इनका व्यवसाय भी प्राय कुजडो के समान है। ये लोग फल के बगीचो को खरीदने तथा साग-सब्जी बेचने का काम करते है। जो जाति गावो मे कुँजडा के नाम से प्रसिद्ध है वही शहरो मे खटिक के नाम से जानी जाती है। दोनो के व्यवसाय मे कुछ भी अन्तर नही समझना चाहिए।

(१२) **गोड**—भोजपुरी प्रदेश मे गाँवो मे गोड नामक एक जाति निवास करती है जिनका पेशा किसानो के घर मे सेवा वृत्ति करना है। ये लोग मध्यप्रदेश के सुप्रसिद्ध 'गोण्ड' नामक आदिवासियो से नितान्त भिन्न है। उन गोण्डो का मध्य-प्रदेश मे अपना राज्य था जो गोण्डवाना के नाम से प्रसिद्ध था। यही की रानी दुर्गावती थी जिसने अपनी वीरता, शौर्य एव पराक्रम के कारण भारतीय इतिहास मे अपना नाम अजर-अमर कर दिया है। अत इन पराक्रमी आदिवासी गोण्डो से भोज-पुरी गोडो की समानता करना नितान्त भ्रमपूण है। नेविल ने स्पष्ट ही लिखा है कि इन दोनो गोण्ड जातियो का आपस मे कोई सम्बन्ध नही है।[१]

भोजपुरी क्षेत्र मे निवास करने वाले गोडो की रहन-सहन साधारण और आचार-विचार शुद्ध है। यह कुछ कम आश्चय की बात नही हे कि ब्राह्मणो के भी हाथ का बनाया हुआ ये भोजन ग्रहण नही करते। परन्तु इनके इस काय से ब्राह्मणो के प्रति अस्पृश्यता की भावना नही बल्कि अपने स्वामी को कष्ट न देने की भावना ही कारण है। ये लोग शरीर से हट्टे कट्टे होते है। अत किसानो के घरो मे पानी भरने, तथा सेवा टहल करने का काम करते है। इन का जीवन टोना-टोटका तथा अन्य धार्मिक मान्यताओ से भरा पडा है।

गोड लोग अपने गीत और नाच के लिए प्रसिद्ध है। इनका गीत 'गोडऊ गीत' के नाम से और नृत्य 'गोडऊ नाच" के नाम से विख्यात है। ये लोग अपने व्यङ्ग-विनोद और भडैती के कारण जनता के प्रिय-पात्र बन गये है। इनके गीतो मे भी वैसी ही मस्ती पायी जाती है। गोड लोगो का यह गीत कितना हास्य तथा विनोद पूण है —

"हलबल धुनिया धूने, सूत काते हलुआई।
फुफुती तर के झुलनी झूले, बुटवलि के कमाई।
आरे बुटवलि के कमाई॥"

परन्तु गोड लोग अपने नाच के लिए ही समधिक प्रसिद्ध है जो "गोडऊ नाच" पुकारा जाता है। इस नाच मे केवल पुरुष ही सम्मिलित होते है। दल का नेता एक कटे बास को हाथ मे लेकर नाचता है और नृत्य का अभिनय करने के साथ कुछ सम्वाद भी करता है। उसका यह सम्वाद बडा ही अश्लील होता है जिसमे गाली-गलौज, भोडी तथा अश्लील बातो का समावेश किया जाता है। दल का दूसरा व्यक्ति एक विशेष प्रकार का बाजा बजाता है जिसे 'हुड्का' कहते है। इनका अभिनय—जिसमे हास्य, विनोद, अश्लीलता सभी का समिश्रण होता है—'हर बोलाई' कहा जाता है। इसी कारण भोजपुरी मे 'हरबोलाई करना' मुहावरा के रूप मे प्रचलित हो गया है जिसका अथ है हास्यपूण अनुकरण करना। "गोडऊ नाच" को देखने के लिए गँवई के लोगो की अपार भीड इकट्ठी देखी जा सकती है जो इन लोगो के हँसोडिये अभिनय को देखकर हँसते हँसते लोट-पोट हो जाते है।

(१३) **घटवार**—नदियो को पार करने के लिए विभिन्न स्थानो पर घाट बने होते है। इन घाटो पर जाकर ग्रामीण जनता नावो के द्वारा नदी के एक पार से दूसरे पार को जाती है। इन घाटो को ठीका (contract) पर दिया जाता है। अत जो जाति इस व्यवसाय को करती है उसे 'घटवार' कहते है। ये नावो के द्वारा नदी पार करने के लिए जनता से शुल्क रूप मे पैसा वसूल करते है। ये लोग इस काय मे बडी सख्ती करते है और गरीब लोगो से भी 'उतराई' का शुल्क लिये बिना उन्हे पार नही उतारते। उनके इसी निदयपूण व्यवहार के कारण यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि—

"घटवार बाड़ा बटवार होखेला"

अर्थात् घटवार बडे ही बटमार अथवा दुष्ट होते है। इनका आचरण भी बहुत अच्छा नही समझा जाता। पार जाने वाली युवती स्त्रियो से छेडछाड कर ये अपने अनैतिक चरित्र का परिचय देते है। एक लोक-गीत मे यह वर्णन पाया जाता है कि कोई युवती नदी के पार जाना चाहती है, परन्तु दुष्ट घटवार उसे मछली और दूध देने का प्रलोभन देता है परन्तु वह सती स्त्री उसके प्रस्ताव

---

१ "There is no apparent connection between these Gonds and the aboriginal tribe of the same name who belong to the hill country of Central India"

H R Nevill—Benares district Gazeteer Vol XXIV Allahabad 1907

को अस्वीकार करती हुई कहती है कि तेरी मछली मे मे आग लगा दूगी, तेरे दूध मे वज्र पड जाय। तुम भले ही मुझे पार मत उतारो। मै पार नही जाऊँगी।[1] इनकी बडी नाव को 'घटहा' कहा जाता है जिसमे बैठकर ये लोगो को नदी के पार उतारते है। घटवार नदी के घाट का देवता माना जाता है। वह अपने अधिकारो का दुरुपयोग कर जिसको चाहे पार उतारे अथवा न उतारे। अब अनेक स्थानो पर 'पान्टुन ब्रिज' (पीपा का पुल) बन जाने के कारण घटवारो के अत्याचारो मे कमी आ गई है।

(१४) **घाटिया**—घटवार जहाँ अपने घटहा (नाव) के द्वारा लोगो को नदी के पार उतारता है वहाँ घाटिया सब साधारण जनता को अपने धार्मिक क्रिया-कलापो के द्वारा भव-सागर से पार करता है। घटवार और घाटिया की नाम राशि एक ही है और ये दोनो ही पार लगाने का काम करते है। काशी, अयोध्या और हरिद्वार आदि धार्मिक स्थानो पर, नदी के किनारे घाटो पर बैठने वाले ब्राह्मणो को 'घाटिया' कहा जाता है। ये गगा मे स्नानार्थी जनता के लिए सकल्प पढते है, पितृपक्ष के दिनो मे उनके द्वारा पितरो को जलाञ्जलि देने के विधान को सम्पादित करते है। इसके फलस्वरूप स्नान करने वाले लोग इन्हे दान दक्षिणा भी देते है। यही 'घाटिया' के जीवन यापन का एकमात्र साधन है। चूंकि घाटो पर बैठकर पूजा-पाठ कराना ही इनका एकमात्र कर्म है अत इन्हे 'घाटिया-ब्राह्मण' भी कहते है। गगा-माता ही इनकी उदर-पूर्ति की पूर्ति के लिए एकमात्र साधन है। अत ये घाटिया 'गगा-पुत्र' नाम से भी प्रसिद्ध है। वाराणसी मे ये 'घाटिया' प्रचुर सख्या मे पाये जाते है। गगा-दशहरा के दिन ये 'गगा-पुत्र' बडा उत्सव मनाते है और बडी भक्ति-भाव से गगा-माता की पूजा करते है। ये यात्रियो के निवास के लिए अपने घर मे स्थान देते है, उन्हे नगर की तीर्थयात्रा करात है। अत धार्मिक पथ-प्रदर्शक के रूप मे इनकी सस्था बडी उपयोगी हैं। इन लोगो मे कुछ विद्वान् और सच्चरित्र भी पाये जाते है। परन्तु कुछ व्यक्तियो के अनाचरण के कारण यह व्यवसाय बहुत आदर की दृष्टि से अब नही देखा जाता।

(१५) **जुलाहा**—इस जाति के लोग कपडा बुनने और बुने हुए कपडो को बेचने का काम करते है। हिन्दू-धर्मावलम्बी भी इस पेशे को अपनाये हुए है जो 'तन्तुवाय' के नाम से प्रसिद्ध है। ये ताना और बाना को मिलाकर बडे परिश्रम से कपडा बुनते है। महात्मा गाधी के स्वदेशी आन्दोलन के पूर्व, ये लोग हाथ से काते गये मोटे सूतो को बुना करते थे जो 'मोटिया' कहा जाता था। प्रत्येक गाँव मे इन लोगो की वस्ती पायी जाती है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इनके विषय मे लिखा है कि "जुलाहो के पुरोहित 'साँईं' कहे जाते है। साँईं, अर्थात् स्वामी। नाथ परम्परा मे गुरु को 'नाथ' या स्वामी कहते थे। अब ये लोग पक्के मुसलमान हो गये है। केवल नाम मे अपनी पुरानी स्मृति ढोते आ रहे है।"[2]

जुलाहो के स्वभाव, रहन-सहन तथा उनके पेशा के सम्बन्ध मे अनेक आवश्यक जानकारी का पता लोक-जीवन मे प्रचलित लोकोक्तियो से चलता है। एक जुलाहा करघे पर कपडा बुनना छोडकर कोई तमाशा देखने गया किन्तु उस तमाशे मे उसे अकारण ही चोट खानी पडी —

"करिगह छोडि तमाशा जाए।
नाहक चोट जोलाहा खाए॥"

इनका स्वभाव कुछ झगडालू होता है इस सम्बन्ध मे यह कहावत कही जाती है।

"आठ जुलाहा नौ हुक्का, तबनो पर थुक्कम थुक्का।"

अर्थात् प्रचुर सामग्री होने पर भी ये आपस मे झगडते रहते है।

सस्कृत मे एक कहावत है कि —

सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पडित

---

१ "आगि लगइबो चाल्हावा मछरिया,
बजर परसु तोरा दूध ए।
आरे दुनुकी फुटहु तोरा जाँत के करियवा।
नउजी उतारि देबो पार ए॥"
डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १ पृ० १३५।

२ डॉ० द्विवेदी—अशोक के फूल पृ० ३३।

परन्तु इनका आचरण इसके ठीक विपरीत है।

सरबस हारो त हारो, गजभर ना फारो

अर्थात् खरीदने वाले के प्रति जुलाहा कहता है कि मै सवस्व भले ही हार जाऊँ परन्तु थान से एक गज कपडा फाडकर नही दूगा। ये थोडा सा धन पा जाने पर भी सन्तुष्ट हो जाते है—

"गगरी अनाज भइल, जोलहन के राज भइल"

अर्थात् जब जुलाहे को एक घडा अनाज हो जाता है तब वह अपने को राजा समझने लगता है। इनकी बाते भी विश्वसनीय नही है।[1]

"जोलाहा के आई-पाई, चमरा के विहान"

अर्थात् यदि जुलाहा कपडा माँगने पर शीघ्र ही कपडा बनाकर देने का आश्वासन दे और चमार दूसरे ही दिन जूता बनाकर देने को कहे तो भी इनकी बातो पर विश्वास नही करना चाहिए। पठान जुलाहो के यहाँ नौकरी (बेगारी) करते है। इस अथ को द्योतित करने वाली लोकोक्ति है "जोलाहा के बेगरिहा पैठान"। जुलाहा के घर की बकरी कभी 'मरखाहि' (मारने वाली) नही होती क्योकि उसे सदा अपनी ही मृत्यु का भय बना रहता है।[2]

"जोलाहो के छेरि मरखाहि"

इस प्रकार जुलाहो के पेशा, जीवनचर्या, स्वभाव तथा उनकी अविश्वसनीयता की झाँकी हमे लोक-साहित्य मे देखने को मिलती है।

(१६) ठठेरा—इस जाति के लोग प्राय पीतल के बतन बनाने का काम काम करते है। ये अपनी हथौडी से पीतल को पीटते है जिससे 'ठक ठक' की आवाज होती है। इसीलिए सभवत इन्हे ठठेरा कहा जाता है। वाराणसी मे जहाँ पीतल के बतन बनाये जाते है उस स्थान का नाम ही 'ठठेरी गली' पड गया है। इसी प्रकार से लोहारो की कमस्थली 'लोहटिया' के नाम से प्रसिद्ध है।

ठठेरा पीतल की धातु से लोटा, गिलास, थाली, परात आदि बतनो को बनाते है। ये इन बतनो पर नक्काशी का काम भी करते है जिसके द्वारा ये विभिन्न देवी और देवताओ की मूर्तिया उत्कीर्ण करने मे समथ होते है। इन्हे धातु-विज्ञान का अच्छा ज्ञान होता है। अत ये खरी और खोटी धातु को शीघ्र ही पहिचान लेते है। इसी कारण यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि—

"ठठेरे ठठेरे मे बदलाई नहीं होती"

जिसका आशय यह है कि एक चतुर व्यक्ति दूसरे चतुर आदमी को ठग नही सकता है। ठठेरा फूटे हुए पुराने बतनो को मरम्मत करने तथा जोडने का भी काम करते है।

(१७) तमोली—जो व्यक्ति पान का व्यवसाय करके अपनी जीविका चलाता है उसे 'तमोली' कहते है। इस शब्द की व्युत्पत्ति 'ताम्बूल' से ज्ञात होती है जिसका अथ पान है। ताम्बूल का व्यापार करने के कारण इस जाति का अभिधान 'ताम्बोली' रहा होगा। इस शब्द का परिवतन कालक्रम से तमोली के रूप मे हो गया। भोजपुरी मे इसे 'पनहेरी' कहते है जो 'पानहर्ता' शब्द का अपभ्रश रूप ज्ञात होता है।

पनहेरी पान का व्यापार करता है। वह पानो को खरीद कर उन्हे बडे करीने से सौ सौ की गड्डियो मे लगाकर रखता है जिसको 'ढोली' कहते है। वह पान को पकाने की विधि मे भी निष्णात होता है। पानो मे 'मगहिया पान' बहुत प्रसिद्ध है परन्तु बनारसी पान का भी अपना विशेष महत्व है। पान मे कत्था, चूना, सुपारी लगाकर उसे तैयार किया जाता है। अत पान के सबध मे यह लोकोक्ति प्रचलित है कि—

"एक बेकति के चार कान।
खैर, सोपारी, चूना, पान॥"

---

१ डॉ० शशि शेखर तिवारी—भोजपुरी लोकोक्तियाँ, १२९।

२ डॉ० मुक्तेश्वर तिवारी—भो० लो० मु० पृ० ८९।

विवाह आदि मागलिक अवसरो पर पनहेरी पान लेकर गृहस्थो के घर जाता है और उन्हे अपनी 'सौगात' समर्पित करता है। इसके लिए उसे मुँह मागी दक्षिणा मिलती ह। पान का प्रयोग पूजा-पाठ मे भी किया जाता है। यदि तमोली न हो तो बहुतो का मुँह लाल होने से रह जाय ओर बहुत से शोकीन पान के बिना बेपानी हो जाँय। यह तमोली की ही कृपा है कि वह बहुतो के मुख की लाली बनाये रखता है।

(१८) **तुरहा**—इस जाति के लोगो का प्रधान व्यवसाय शाक-सब्जी बेचना है। परन्तु ये शाको को केवल बेचते ही नही उन्हे खेतो मे पैदा भी करते है। खटिक और तुरहा इन दोनो का व्यवसाय प्राय एक समान ही है। परन्तु जहाँ खटिक शाको को केवल बेचता है वहाँ तुरहा इन शाको की खेती भी करता हे। नदियो की पेटी मे—जिसे 'छाडन' कहा जाता है—जहा बलघुस (बालू से मिली हुई) मिट्टी की प्रधानता होती है वहा तुरहा का एक छत्र सामाज्य विराजमान दिखाई पडता है। बालुकामय मिट्टी ककडी, खरबूजा ओर तरबूजा को पैदा करने के लिए बडी उपयोगी सिद्ध होती है। अत नदी के इसी बालुका मय पुलिन पर तुरहा अपनी झोपडी बनाता है ओर वहा बालू मे से तेल (फल) निकालने का सफल प्रयास करता है। वे इसी बालू को खोदकर छोटी-छोटी कुइयाँ बनाते हे ओर इसी कूपजल से अपने पौधो को सीचते है।

बालू की सतह पर पैदा होने वाले इन फलो को बाँस के बने हुए 'ओडा' (बडी चँगोली) म लेकर इनकी स्त्री—तुरहिन—गॉवो तथा बाजारो मे घूम-घूम कर बेचती है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे लिखा है कि "जातियो की तालिका मे इनका नाम तो मिल जाता है परन्तु किसी नृतत्व-शास्त्रीय विवेचन मे मैने इनकी चर्चा नही पढी। मेरा अनुमान है कि यह जाति आर्यो और गोडो के मिश्रण की एक कडी है। नृतत्त्व–शास्त्र के अध्येता इनको अपनी अधीति का उपयोगी विषय बना सकते है।"[१]

(१९) **तेली**—इस जाति का प्रधान व्यवसाय तेल पेरना है। सम्भवत इस शब्द की निरुक्ति सस्कृत तैलिक से हुई है जिसका अर्थ है तेल का निर्माता। तेली का एकमात्र साधन 'कोल्हू' है जिसमे वह तेल पेरता है। वह इस कार्य के लिए एक बैल को कोल्हू मे जोतता है। इस बैल को 'नाटा' कहा जाता है जो अपने नियमित माग पर गोलाई मे सदा घूमता रहता है। इसीलिए सतत कार्य मे निरत व्यक्ति—जो अनवरत गति से अपने काम मे जुटा रहता है—को 'कोल्हू का नाटा' की सज्ञा प्रदान की जाती है। इस बैल की आँखो को कपडे वे ढक दिया जाता है जिससे वह किसी वस्तु को देख कर मडक न जाय। आँखो के इस आवरण को 'छोपनी' कहते है।

ऐसा ज्ञात होता है प्राचीनकाल मे तेली सम्भवत केवल तिल को ही पेर कर तेल बनाता था। इसी कारण इसका नाम 'तेली' पड गया हो। परन्तु आजकल वह सरसो, तिल, बर्रे, चिनिया बदाम आदि सभी वस्तुओ से तेल बनाता है। मशीन के इस युग मे कोल्हू की प्रथा अब उठती चली जा रही है, परन्तु 'कोल्हू का नाटा' साहित्य जगत् मे सदा अमर रहेगा।

लोगो का यह विश्वास है कि प्रातकाल मे तेली का मुख देखना अमगल कारक है। किसी व्यक्ति के घर सौतेली (सौ-तेली) मा थी। उसने किसी तेली का मुख देख लिया। इस पर जब किसी ने उससे 'अमगल' होने की बात कही तब उसने झुँझलाकर उत्तर दिया कि —

"एक ही तैली कहा करिहैं
सौतेली बसे जिसके घर माँही"

इसी एक सूक्ति से तेली के मुँह देखने से अपशकुन की सम्भावना का अनुमान किया जा सकता है।

तेली का उल्लेख भोजपुरी लोकोक्तियो मे पाया जाता है। अपने व्यवसाय के द्वारा विपुल द्रव्य कमाने के कारण तेली धनी माना जाता है। अत इसके सम्बन्ध मे यह कहावत प्रसिद्ध है कि—

"सरलौं तेली तऽ एक अधेली"

अर्थात् यदि गरीब भी तेली होगा तो उसके पास एक अधेला (थोडी-सी सम्पत्ति) तो अवश्य ही होगा। तेली धन का लोलुप होता है अत जब तीसी महँगी हो जाती है तभी वह तेल पेरना प्रारम्भ करता है—

"तीन के तीसी तेरह लागलि,
तब तेलिनियाँ पेरे लागलि।।"

---

१ डॉ० द्विवेदी—अशोक के फूल, पृ० ३३।

पूस और माघ महीनो के बीत जाने पर तेली हाथ नही लगता। इसका कारण यह है कि इन महीनो मे तेलहन तैयार हो जाता है। अत किसान इसे बेचने के लिए उसका दरवाजा खटखटाता है। इस तथ्य का उल्लेख निम्न प्रकार से हुआ है—

"माघ पूस ठेली, तब ना हाथ तेली"

तेली स्वभाव से ही कृपण होता है। उसे पैसा खच करने मे बडा कष्ट होता है। वह उदार दिल नही बल्कि सकुचित है। अत उसके विषय मे यह ठीक ही कहा गया है कि **"तेली के जीव अधेली"** अर्थात् इसका हृदय अधेले के बराबर तुच्छ होता है।

(२०) **दर्जी**—इस जाति के सदस्य कपडा सीने का काय करते है। हिन्दू और मुसलमान दोनो ही सम्प्रदाय के लोग इस पेशा को करनेवाले है परन्तु इनमे मुसलमानो की ही सख्या अधिक है। भोजपुरी की एक कहावत है—

"दरजी का पुत्ता जब तक जीता तब तक सीता।"

अर्थात् दर्जी का लडका जब तक जीता है तब तक सिलाई के काम को ही करता है। यह लोकोक्ति कुछ इसी प्रकार की है कि "यावत् जीवमधीते विप्र" अर्थात् ब्राह्मण जब तक जीवित रहता है तब तक ज्ञान की गुदडी को सीता रहता है। दर्जी का पुत्र ही नही बल्कि उसकी पुत्री भी कपडा सीने का काय करती है जैसा कि यहाँ सकेत किया गया है—

"दुख्तरे दर्जी का सीना देखकर
जी मे आता है कि मलमल दें।"

दर्जी मोटे-पतले सभी प्रकार के वस्त्रो को सीने का काम करता है—

"दर्जी के सूई कब्बो तास मे, कब्बो टाट मे"

अर्थात् दर्जी की सुई कभी रेशम मे और कभी टाट मे चलती है।

विवाह अथवा शादी के मागलिक अवसर पर या होली आदि त्यौहारो के समय दर्जी की माँग बहुत अधिक हो जाती है। वह दिन-रात बर-बधू के कपडो को सीने मे सलग्न रहता है। 'पियहुती' पीली साडी मे 'मनोरी-पत्ती' लगाना तो उसी का ही काम है। होली के पूव छोटे बच्चो के लिए कुर्त्ता और टोपी सीने से उसे फुसत नही मिलती। इस प्रकार दर्जी ग्रामीण जनता के लिए बडा ही उपयोगी है।

(२१) **धुनिया**—इनका व्यवसाय रूई धूनना है। जाडे के दिनो मे जब ओढने और बिछाने की आवश्यकता होती है तब लोग रजाई और तोसक बनवाने के लिए रूई खरीदते है। धुनिया लोग इस रूई को अपनी धुनुकी से 'धूनकर' इन वस्त्रो मे भर देते है। यही इनका एकमात्र पेशा है। ये जाडे को ऋतु मे गाँवो मे घूमते फिरते है और रूई धूनने के लिए अपनी सशुल्क सेवाओ को प्रस्तुत करते रहते है। ये बडी शीघता के साथ रूई को धूनते है जिसका उल्लेख एक लोक-गीत मे इस प्रकार से हुआ है—[1]

"हलबल हलबल धुनिया धूने
सूत काते हलुआई।
फुफती तर के झुलनी झूले,
आरे बुटवलि के कमाई।।"

धुनुकी नामक अपने साधन के द्वारा रूई को 'धुन' 'धुन' की आवाज कर धूनने के कारण ही इनका नाम 'धुनिया' पड गया होगा।

(२२) **धोबी**—

धोबी का प्रधान व्यवसाय ग्रामीण तथा नगर निवासियो के मलीन वस्त्रो का प्रक्षालन करना है। धोबी अथवा उसकी स्त्री—धोबिन—गाँव के प्रत्येक घर मे जाकर गन्दे कपडो को इकटठा करती है। वह इन वस्त्रो को अपने वाहन 'गदहा' पर लादकर किसी नदी, तालाब, तल्लैया अथवा पोखरे पर ले जाती है। वहाँ वह किसी पत्थर अथवा काठ के किसी टुकडे पर जिसको 'पाट' कहते है—उन वस्त्रो को पटकती है। वह इन वस्त्रो को इस निदयता के साथ पीटती है कि कमजोर कपडो का दिवाला निकल जाता है। इसी कारण भोजपुरी मे 'पाट पर पीटना' एक मुहावरे के रूप मे प्रयुक्त होता है जिसका अथ है निम-

१ डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १ पृ० ३४९-५०।

मता के साथ किसी व्यक्ति को पीटना। गॉव का धोबी कपडो को साफ करने के लिए साबुन या सफ नही का प्रयोग करता बल्कि इसके स्थान पर वह 'रेह'[1] और गदहे की लीद का प्रयोग करता है। धोबी गदहे पर 'लादी' (गन्देवस्त्र) लादकर प्रात काल ही अपने गन्तव्य स्थल पर चला जाता है ओर सूर्यास्त तक वस्त्र प्रक्षालन के काय मे सलग्न रहता है। एक गीत मे वह अपनी स्त्री से कहता है कि ऐ धोबिन! तुम मेरे लिए मोटी-मोटी रोटी अर्थात् लिट्टी पकाना क्योकि मुझे कल सवेरे 'घाट' पर (कपडा धोने का स्थान) बहुत दूर जाना है—

> "मोटी मोटी लिटिया पकइहे रे धोबिनिया
> मोरा जाए के बा बडी दूर।"

यही मोटी लिट्टी धोबी के मध्याह्न भोजन का काय करती है जिसे खाकर वह दिन भर कठिन परिश्रम करने म लगा रहता है। वह जब कपडो को 'पाट' पर पटकता रहता है तब अपने श्रम की व्यथा को कम करने के लिए अथवा उसे भुला देने के लिए 'आछो'-'आछो' का जोरो से उच्चारण करता है। यद्यपि यह शब्द निरथक है परन्तु उसके कष्ट को हटाने कम करने मे साथक है।

धोबी घुटने भर पानी मे खडा होकर कपडो को पटक कर और उन्हे साफ करके धोबिन को देता जाता है। वह इन वस्त्रो को घास पर फैला देती है। सन्ध्या की वेला मे घर लौटते समय धोबिन सभी वस्त्रो को एकत्रित कर गदहे पर लाद देती है। ग्रामीण धोबिन के पास कपडो की सिकुडन को ठीक करने के लिये न तो कोई 'लोहा' (आयरन) होता है और न 'इस्त्री'। अत वह बिना लोहा किये ही, और उन कपडो को बिना 'चौपाते' ही अपने 'जजमानो' के घर दे आता है। कभी-कभी इन वस्त्रो को देखकर मन मे यह सन्देह होने लगता है कि ये धुल कर आये है अथवा धोबी के घर जाने वाले है।

इन कपडो को धोने के लिए धोबी को प्रत्येक खेप मे कोई धुलाई नही दी जाती। किसी घर मे जितने व्यक्ति होते है प्रति व्यक्ति उतने ही पसेरी (पाँच सेर) अन्न उसे दिया जाता है। परन्तु रेट मे भी आजकल महँगाई के इन दिनो मे इस दर मे भी वृद्धि हो गयी है। कहने की आवश्यकता नही कि धोबी का व्यवसाय बहुत ही परिश्रम साध्य है जिसके अनुरूप उसे गाँवो मे मजूरी नही दी जाती।

(२३) **नाई**—'नाई' शब्द सस्कृत के 'नापित' के अपभ्रश के रूप मे है। इसे भोजपुरी मे 'हजाम' कहा जाता है और इसके काम को 'हजामत' की सज्ञा प्राप्त है। पक्षियो मे कौवा की ही भाँति मनुष्यो मे नाई बडा ही चतुर, चालाक तथा धूर्त माना जाता है। सस्कृत मे एक लोकोक्ति प्रचलित है कि "नराणा नापितो धूर्त।" सामन्ती युग मे नाई का बडा महत्व था। यह ब्राह्मण-पुरोहित के साथ सामन्तो, जमीदारो तथा धनी मानी व्यक्तियो की कन्याओ के लिए वर खोजने के लिए जाया करता था। इस प्रकार यह समृद्ध परिवारो के विवाह का 'घटक' था। इसीलिए नाई और ब्राह्मण का जोडा—कम से कम वैवाहिक काय के लिए—प्रसिद्ध है। आजकल नाई अपने को ब्राह्मण का छोटा भाई समझते है और इस प्रकार वे अपनी जाति को "नाई-ब्राह्मण" बतलाने मे तनिक भी सकोच नही करते।

नाइयो की चतुरता, वाक् विदग्धता तथा चालाकी के सम्बन्ध मे भोजपुरी मे अनेक लोकोक्तियाँ प्रसिद्ध है। एक कहावत के अनुसार पक्षियो मे कौवा और मनुष्यो मे नौवा (नाई) अपनी धूर्तता के लिए विख्यात हैं।[2] नाई और केवट विभिन्न जातियो की प्रकृति को पहिचानते है और बहुत चिकनी-चिपुडी बाते करते है।[3] ये वचन-चातुरी मे बडे कुशल है। नाई की बारात मे सब अपने को श्रेष्ठ समझते है। इस सम्बन्ध मे यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

> "नउवा के बरियात मे सब ठाकुरे ठाकुर।"

भोजपुरी जीवन के प्रत्येक शुभ अथवा अशुभ कार्यों मे नाई का सहयोग पाया जाता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक के सस्कारो के विभिन्न क्रिया-कलापो मे नाई का साहचय दिखायी पडता है। मुण्डन और यज्ञोपवीत के सस्कारो मे क्षौर कर्म के लिए नाई की उपस्थिति अत्यन्त आवश्यक है। विवाह के लिए वर का अन्वेषण करना नाई और ब्राह्मण का प्रधान

---

१ रेह ऊसर प्रदेश मे प्राप्त होने वाली उस इषत् सफेद धूल को कहते हैं जो क्षार होती है।

२ चिरई मे कउवा, मनई मे नउवा।

३ नउवा के वह चीन्हे जात।
बड लोगनि के चिक्कन बात॥
डॉ० शशिशेखर तिवारी—भोजोपुरी लोकोक्तियाँ, पृ० १३१।

काय माना जाता है। इसलिए नाई की उपस्थिति अत्यन्त आवश्यक है। विभिन्न वैवाहिक विधानो मे नाई तथा उसकी नाइन (हजाम और हजामिन) का होना अनिवाय है। द्वार-पूजा के लिए वर के बैठने के स्थान पर चौका पूरना नाईन का ही काम है। वह घर की स्त्रियो के पैर मे महावर लगाती है, कन्या के शरीर मे तैल का मदन करती और उबटन लगाती है। विवाह के समय वह मण्डप मे कन्या को लेकर बैठती है और 'सुमगली' के समय सहायता पहुँचाती है। नाई भी अनेक प्रकार का काय इस अवसर पर करता है। किंबहुना, मृत्यु के समय और मृतात्मा के श्राद्ध मे वह अनेक विधि-विधानो मे सहायक होता है। 'दाही'—मृत व्यक्ति का दाह सस्कार करने वाले—के साथ नाई छाया की तरह दस दिन तक रहता तथा उसकी सेवा करता है। इस प्रकार जीवन के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक नाई की आवश्यकता पद-पद पर अनुभूत होती है।

नाई का उपकरण 'उस्तरा' है जिसे 'छूरा' कहा जाता है। यह प्राय लम्बा और थोडा चौडा होता है। एक दिन मे अनेक व्यक्तियो की हजामत बनाने के कारण यह 'छूरा' प्राय शीघ्र ही 'भोथर' (कुठित) हो जाता है जिसे तेज करने के लिए नाई उसे चमडे की पट्टी पर रगडता है। ग्रामीण नाई का छूरा प्राय 'भोथर' होता है। जिससे हजामत बनाने मे कष्ट होता है। अत 'हजामत बनाना' हिन्दी मे एक मुहावरे के रूप मे प्रयोग होता है जिसका अथ है किसी व्यक्ति को ठगना, धोखा देना अथवा उसे कष्ट पहुँचाना। इसी सम्बन्ध मे एक दूसरा मुहावरा भी प्रचलित है—"उल्टे छूरे से हजामत बनाना" जिसका आशय है किसी व्यक्ति को समधिक कष्ट प्रदान करना।

गाँवो मे प्रत्येक किसान के घर जाकर, नाई अपने जजमान की हजामत बनाता है। चूकि शनिवार को बाल काटना शास्त्र के द्वारा निषिद्ध है अत नाई के लिए शनिवार अवकाश का दिन होता है। नाई को प्रत्येक व्यक्ति का बाल काटने के लिए उससे कोई शुल्क या द्रव्य नही मिलता। इसके लिए किसान साल भर मे एक बार नाई को अन्न के रूप मे उसकी मजदूरी देता है। हाँ, विवाह आदि के अवसर पर उसे धोती, कुर्त्ता, चादर या गम्छी आदि भी दी जाती है।

नाई ग्रामीण जनता के लिए सन्देशवाहक का भी काय करता है। विशेष कर शुभ तथा मागलिक अवसर पर वह जनेऊ, विवाह अथवा गवना का सन्देश लेकर सगे सम्बन्धिया के घर जाता है। इस प्रकार वह पत्र-वाहक या चिट्ठीरसा की भूमिका भी अदा करता है। गवना के अनेक गीतो मे नाई के द्वारा कन्या की बिदाई का सन्देश लाने का वणन पाया जाता है—

> **"खेलत रहलो मे सुपुली रे मऊनिया**
> **कि लेइ के अइले ना, मोरा गवना के दिनवा**
> **कि लेइ के अइले ना। गोड तोरा लागिलें नउवा**
> **के बेटउवा, कि लेईं जाहु ना मोरा गवना का दिनवा।।**

(२४) **नेटुआ**—नेटुआ शब्द की व्युत्पत्ति 'नट' से ज्ञात होती है, जिसका अथ नाचना या अभिनय करना है। उत्तर-प्रदेश के पूर्वी जिलो मे नेटुआ लोग गाँव के बाहर सीक की झोपडी बनाकर रहते है। यह एक खाना-बदोश जाति है जो अपनी इच्छानुसार एक स्थान से हटकर दूसरे स्थान पर अस्थायी रूप से अपना डेरा-डडा डाल कर रहने लगते है। यह लोग प्राय भैंस को पालते है और उसके दूध-घी को बेंचते है। ये लोग मधुमक्खी के 'छाता' से मधु (शहद) निकालने का भी काम करते है जिसकी बिक्री कर ये अपनी जीविका चलाते है। ये लोग बडे हट्टे-कट्टे होते है और अखाडो मे कुश्ती भी लडते हैं।

इनकी स्त्रियाँ 'नेटुइन' कही जाती है। ये नव-विवाहिता बधुओ की बाहो मे गोदना गोदने का काम करती हैं। काजल को भेंगरिया (भृङ्गराज—एक प्रकार का पौधा) के रस मे मिलाकर ये अपनी तेज सुइयो से कोमलागी बहुओ की बाहुओ पर गोदना गोदती है। बहुओ के कष्ट को दूर करने के लिए ये मनोरजन तथा हास्यास्पद गीत भी गाती जाती है। नेटुइन वचन-विदग्धता मे बडी निपुण होती है और पर-पुरुष के मन को हठात् मोह लेती है। नेटुआ लोग नट-विद्या मे भी निपुण होते हैं। यायावरी वृत्ति ग्रहण करने के कारण ये एक स्थान पर अधिक दिनो तक निवास नही करते। यदि ये लोग अपने खानाबदोशी जीवन को छोडकर यदि एक स्थान पर निवास करने लगे तो समाज के बडे ही उपयोगी अग सिद्ध हो सकते है।

(२५) **नोनिया**—गाँवो मे प्राय मिट्टी के मकान बनाये जाते है। इन मकानो को बनाने का काम नोनिया जाति के व्यक्ति किया करते है। नूनी (नमक) अथवा नमकीन मिट्टी के माध्यम से गृह निर्माण कर अपनी जीविका चलाने के कारण ही इनको 'नोनिया' कहा जाता है। जिस प्रकार इँट या पत्थर से पक्के मकान को बनाने वाले कारीगर को 'राज' कहा जाता है उसी प्रकार से मिट्टी के द्वारा कच्चे मकानो का बनाने वाले मजदूर को 'नोनिया' कहते है।

इन लोगो का दूसरा व्यवसाय कच्ची मिट्टी से ईंटे 'पाथना' है। गाँवो मे जब कोई व्यक्ति व्यवसाय के लिए अथवा घर बनाने के लिए भट्ठा—जिसे भोजपुरी मे 'कजवा' कहते है—लगाता है तब इटे पाथने के लिए इसी जाति के सदस्य बुलाये जाते

है। ये लकड़ी के बने एक आयताकार साचे मे गिली मिट्टी को भर उससे कच्ची इटो का निर्माण करते है। इनके व्यवसाय का उपकरण साँचे के अतिरिक्त और कुछ नही है। अब धीरे-धीरे गाँवो मे भी पक्के मकानो क बनते जाने के कारण इनके व्यवसाय मे कमी आने लगी है।

(२६) **पटहेरा**—इस जाति का प्रधान व्यवसाय गहने को गूथना है। ये लोग अपने व्यापार के साधनो को अपनी पीठ पर लादकर गाँव-गाँव घूमते-फिरते है। गृहस्थ के घरो मे जाकर ये गहना गथने के लिए स्त्रिया से पूछते फिरते है। विवाह के दिनो मे इनका व्यवसाय बडी प्रगति कर जाता है क्योकि सभी लोग नये खरीदे गये गहनो को गुथाने के लिए पटहेरा की प्रतीक्षा करते रहते है। ये लोग सूत अथवा रेशम के तागो के द्वारा गहनो को गथने का काम करते है। जो आभूषण इनके द्वारा गूथे जाते है उनमे से कुछ के नाम इस प्रकार है —कठा, कँठेसरि, जोसन, बाजू, हलका, लटकन, झबिया, बगुरी, और पहुँची आदि। इसी कारण यह ग्रामीण स्त्रियो का प्रिय व्यवसायी है। यह वैवाहिक कृत्य क लिए अत्यन्त आवश्यक उपादान 'ताग पाट' जो लाल रग के सूत की माला के समान होता है—को भी बेचता है। सोनार सोना और चादी के गहनो को बनाता है उनका निर्माण करता है, परन्तु सूत के द्वारा इनको 'गुहना' पटहेरा का ही काम है।

(२७) **पवँरिया**—इस जाति के लोग इस्लाम धम के अनुयायी है। इनका प्रधान पेशा पुत्र-जन्म के अवसर पर नाचना और गाना है। जब गाँवो मे किसी गृहस्थ के घर पुत्र की उत्पत्ति होती है तब एक विशिष्ट जाति के लोग गाने, बजाने के लिए उस व्यक्ति के घर अनाहूत चले आते हैं। ये 'पवँरिया' के नाम से प्रसिद्ध है। ये लोग एक लम्बा-चोडा चोगा पहिनते है। गाँवो मे सभी नवजात शिशु राम का प्रतीक माने जाते है। अत ये लोग राम जन्म के सम्बन्ध म सोहर के गीत गाते है, जिसकी प्रथम पक्ति इस प्रकार है।

> **"सिरी रामचन्दर जनम लिहले**
> **चइत राम नवमी।"**

ये गीत गाते समय नाचते भी रहते है। इनका बाजा 'ढोल' है जिसे गले मे लटका कर ये बजाते है। परन्तु पुत्र-जन्म के अवसर पर ही 'पवँरिया' का नाच होता है, पुत्री के पैदा होने पर नही। केवल धनी और समृद्ध लोग ही अपने यहाँ इनके नृत्य का आयोजन करते है। निधन व्यक्ति इनकी दक्षिणा देने मे अपने को असमर्थ पाकर इनका नाच नही कराता।

(२८) **पेसराज**—वाराणसी नगर मे मकान बनाने वाले कारीगर "पेसराज" के नाम से प्रसिद्ध है। गाँवो मे मकान बनाने वाले कारीगरो को 'राज' कहा जाता है। 'पेसराज' शब्द की निरुक्ति के विषय म कुछ निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। ये पेसराज प्राय अहीर जाति के सदस्य होते है जो बडे ही हट्ठे-कट्ठे और मजबूत होते है। ये बनारस की तग गलियो में बडे-बडे पाषाण-खण्डो को 'सेंगरा' के रूप मे अपने कधो पर ढोते है। इसी से इनकी शारीरिक शक्ति का कुछ अनुमान किया जा सकता है। इस प्रकार ये पेसराज 'पाषाण राज' है। ये अनगढ पत्थरो को अपनी छेनी से छील कर उसे सुन्दर तथा सुडौल बनाने मे बडे दक्ष होते हैं। पाँच-पाँच और छ-छ मजिले ऊँचे मकानो को बनाने के लिए "पैट" बाँधकर उन पर चढना इन्ही के साहस का काम है।

(२९) **पसारी**—इस जाति के लोगो का काम प्रधानतया नमक और मसाला बेचना है। इसके अतिरिक्त सूखी जडी-बूटियो का भी व्यवसाय करते है। शहरो मे जो काम 'अत्तार' किया करते है, गाँवा म वही पेशा पसारी का भी है। इस प्रकार ये खुदरा चीजो का व्यापार करते है। इनकी दूकान बहुत छोटी होती है परन्तु वहाँ ग्रामीण लोगो के लिए सभी आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध होती है। अत इनकी दूकान को यदि 'जनरल स्टोर्स' की सज्ञा प्रदान की जाय तो कुछ अनुचित न होगा। कभी-कभी ये गाँवो मे घूम-घूम कर, अपनी दूकान को अपनी पीठ पर लाद कर हल्दी, मिच, मसाले और जडी बूटियो को बेचते फिरते हैं। ग्रामीणो को इनसे सौदा खरीदते समय बडा सावधान रहना पडता है क्योकि इनसे ठग जाने की सभावना बनी रहती है। लोकोक्तियो मे इनकी चालाकी तथा ठगी का उल्लेख पाया जाता है—

> **"बाघ ना देखल, देखल बिलारी।**
> **ठग ना देखल, देखल पसारी॥"[1]**

अर्थात यदि ठग को नही देखा है तो पसारी का देखना ही पर्याप्त है। एक दूसरी कहावत म भी इनकी चालाकी का सकेत किया गया है—

---

१ डॉ० शशिशेखर तिवारी—भोजपुरी लोकोक्तियाँ, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, १९७० ई०।

"वैद पसारी, आधे आध।"

अर्थात वैद्य ओर पसारी औषधियो के व्यापार मे बराबर लाभ के भागी होते हैं इस प्रकार पसारियो की चालाकी का वणन लोक-साहित्य मे उपलब्ध होता हे।

(३०) **बढई**—यह गॉव मे निवास करनेवाली सबसे अधिक उपयोगी पेशेवाली जाति है। इसका प्रधान काय ग्रामीण लोगो के गृहनिर्माण काय मे लरही, बल्ली, धरनि, खम्भा आदि आवश्यक वस्तुओ को बनाना है। इसके अतिरिक्त यह चार-पाई, हर, फार, आदि को लकडी से गढ कर तैयार करता है। जनजीवन से सम्बन्धित कोई भी ऐसा काय नही है जिसमे बढई का सहयोग न हो। यह मुण्डन तथा विवाह मे ब्रह्मचारी की पढने की पाटी (पटरी) तथा वर का पीढा तैयार करता है। कृषक-काय मे प्रयुक्त अनेक प्रकार के उपादानो—जैसे हल, पचखा, गडासी, मुँगरी-आदि—का निर्माण करता है। किबहुना मृत्यु के समय मृतात्मा के लिए जो 'अरथी' बनाई जाती है वह भी विश्वकर्मा के इसी वशज के परिश्रम का फल है।

बढई का ओजार बसूला, टॉगी, रुखानी, छेनी, आरी आदि है जिनके द्वारा वह लकडी को काटता, छीलता और चिकना बनाता है। इस जाति के लोग विश्वकर्मा को अपना पूवज मानते है और एक विशिष्ट दिन इनकी पूजा करते है। आजकल पढे-लिखे बढई अपने को ब्राह्मण होने का दावा करते है। अपनी उपाधि के रूप मे 'शमा' लिखते है और यज्ञोपवीत को भी धारण करते है। इसमे सन्देह नही कि ये लोग बडे ही उपयोगी होते है और इनके सहयोग के अभाव मे किसान का जीवन दूभर हो जायेगा।

(३१) **बरई**—बरई का प्रधान काय पत्तल बनाना है। इस शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। इसे भोजपुरी मे 'बारी' कहा जाता है। ऐसा ज्ञात होता है यह गृहस्थो के घर पत्तल देने के लिए बार-बार (पुन-पुन) जाता हे। अत इसका नाम बारी पड गया हो। अथवा प्रत्येक बार (दिन) जाने के कारण ही यह नामकरण हो गया हो।

गावो मे विवाह ओर गवना आदि मागलिक अवसरो पर बारातियो को पत्तल मे ही भोजन कराया जाता है। पुत्र के जन्म के उत्सव पर अथवा किसी कथा-वार्ता की समाप्ति पर ब्राह्मणो के भोजन का पात्र यही पत्तल ही होता है। किबहुना, श्राद्ध-तेरही के दिन—ब्राह्मणो, महाब्राह्मणो आदि को खाने के लिए पूडी और तरकारी इसी पत्ते की बनी पत्तलो मे परोसी जाती है। पत्तलो का निर्माता होने के कारण ग्रामीण जनता के लिए यह बडा ही उपयोगी जीव है।

पत्तल प्राय बट वृक्ष के पत्ते से बनाया जाता है। महुआ तथा कटहल की पत्तियाँ भी इसके लिए प्रयोग मे लायी जाती है। परन्तु पण्डित लोग महुआ को मादक मानकर इसके पत्तल मे भोजन नही करते। पलाश की पत्तियो से बना पत्तल बहुत ही पवित्र माना जाता है। भोजपुरी प्रदेश मे जब कोई बारात आती है तब बारी अपनी कमर मे क्षुद्र घटिकाओ को बाँधकर बारातियो का स्वागत करने के लिए सबसे पहिले जाता है। बारी और बारात—दोनो की एक ही राशि होने के कारण यही उन लोगो के लिए उपयुक्त स्वागतकर्ता माना जाता है।

(३२) **भर**—ये गाँवो मे पानी भरने का काम किया करते थे। इसीलिए सम्भवत इनका नाम 'भर' पड गया। भर और गोड लोगो का व्यवसाय प्राय एक समान ही है। दोनो ही गॉवो मे गृहस्थो के घरो मे सेवक का काय करते है। भरो की एक जाति 'राजभर' भी है जो अनेक दृष्टियो से अत्यन्त महत्वपूण है। भर लोग सेवा-वृत्ति का कार्य छोडकर अब स्वतन्त्र पेशा भी करने लगे है।

(३३) **भाट**—इस शब्द की निरुक्ति सस्कृत 'भट्ट' से हुई है। आप्टे ने इस शब्द का अर्थ बतलाते हुए लिखा है कि यह एक मिश्रित जाति है जिसका व्यवसाय राजाओ की स्तुति करना है। राजस्थान मे चारण नामक एक जाति पायी जाती है, जिसका काम राजघरानो मे रहते हुए, अपने आश्रयदाता राजा का यशोगान करना है। भोजपुरी प्रदेश के भाटो का व्यव-साय भी इसी प्रकार का हे। आधुनिक युग मे राजा-महाराजा और जमीदारो के अभाव मे अब ये लोग साधारण जनता का गुणगान करने लगे है। किसी मागलिक समय पर विशेष कर विवाह के अवसर पर—ये भाट लडकी अथवा लडकेवाले के घर जाते है और हिन्दी के किसी प्राचीन कवि की कविता सुनाते है। चूकि साधारण व्यक्ति की वशावली ऐसी नही होती जिसका गुणगान किया जा सके, अत ये लोग सीता-राम के विवाह सम्बन्धी कविताओ को सुनाकर ही सन्तोष कर अपने कतव्य की इतिश्री समझते है। ये बडे ही वाचाल होते है। अत अधिक बोलने वाले व्यक्ति को 'भाट' की सज्ञा प्रदान की जाती है। ब्राह्मणो की भाँति भाट भी अपने जातिवालो से ईर्ष्या करते है। इनके सम्बन्ध मे यह कहावत प्रसिद्ध है कि—

"बाभन, कुकुर, भाट, जाति जाति के काट।"

---

१ A Kind of mixed caste, whose occupation is that of bards or panegyrists
आप्टे—सस्कृत-इगलिश डिक्शनरी, पृ० ३९९।

(३४) **भाँड**—इस जाति के सदस्य किसानो के विवाह आदि मागलिक अवसरो पर अपना अभिनय दिखाकर सर्व साधारण जनता का मनोरंजन किया करते है। इनके अभिनय मे मजाक, हसी, अश्लीलता, व्यग्य-विनोद तथा अनुकरण का मिश्रण पाया जाता है। गाँवो मे रात्रि के समय जहा हजारो आदमियो की भीड लगी हो और हास्यरस का फौवारा फूट रहा हो वहा निश्चित रूप से समझना चाहिए भाँडो का नाच हो रहा है। ये कभी-कभी अपने अभिनय मे शिष्टता की सीमा का अतिक्रमण कर अश्लीलता की छोर को छूने लगते है। इसीलिए इनका नाच शिष्ट समाज मे प्रदर्शित करने योग्य नही होता। परन्तु इसमे सन्देह नही कि ये जन—मन का अनुरंजन करने मे बडे ही निपुण तथा कुशल होते है। इनके अभिनय को 'भड़ैती' कहा जाता है जिसमे नृत्य, अनुकरण सभी कुछ सम्मिलित है। चूकि भाँड लोग बहुत-सी अनर्गल बाते करते है, अत किसी व्यक्ति की भाड से और उसके कृत्य का भड़ैती से उपमा देना उसका अपमान करना माना जाता है। जहा भट्ट या भाट लोग राज-दरबारो मे रहते हुए राजाओ का मनोरंजन किया करते थे, वहा ये भाड सर्वसाधारण जनता को हँसाते हँसाते लोट, पोट कर देते है। यो तो लखनऊ के भाँड अपने अभिनय तथा वचन-चातुरी मे बडे प्रसिद्ध है, परन्तु वाराणसी के भाड भी किसी से कम नही है। ये भँड़ैती मे किसी से भी लोहा ले सकते है।

(३५) **मछुआ**—इनका प्रधान व्यवसाय मछली मारना और उसे बाजार म बेचना है। मल्लाह भी मछली मारते है, परन्तु वह अपनी पेट-पूजा के लिए ही ऐसा करते है। परन्तु मछुआ विक्रय के लिए ही मछली मारता है। मछली का व्यापार करने के कारण ही इनका नाम 'मछुआ' पड गया है। बिहार राज्य के पटना शहर मे एक मुहल्ले का नाम ही 'मछुआ टोली' है जहा इस जाति के लोग सडक के किनारे अपनी अस्थायी दूकान लगाकर मछलियो को बेचा करते है।

(३६) **मल्लाह**—ये लोग नदियो मे नाव चलाने का काम करते है। नदी, नाला, ताल, तँलया आदि मे नाव द्वारा लोगो को आर-पार कराना ही इनका व्यवसाय है। यही इनकी उदरपूर्ति का प्रधान साधन है। ये शुल्क लेकर लोगो को पार उतारते है जिसे 'उतराई' कहा जाता है। परन्तु अपनी बिरादरी के लोगो से यह शुल्क नही लेते है। यह इनकी आचार सहिता का प्रथम नियम है। भगवान् रामचन्द्र नदी के पार उतारने के लिए जब निषादराज गुह को दक्षिणा देने लगे तब उसने इसे स्पष्ट ही अस्वीकार कर दिया और उसने कहा हे भगवान् ! ऐसा करके आप मेरा धर्म (नियम) मत बिगाड़िये—

> **"नाई से न नाई लेत, धोबी से न धोबी लेत**
> **बेके उतराई मेरी जाति ना बिगाड़िये॥"**

मल्लाह तालाबो अथवा नदियो मे जाल डालकर मछली पकडने का भी काम करते है। जब कोई व्यक्ति किसी नदी मे डूब कर मर जाता है तब ये 'महाजाल' (बहुत बडा जाल) डालकर उसकी लाश का निकालने का प्रयास करते है। ये अपनी जीविका की एकमात्र साधन 'नौका' का बडा आदर करते है। उसके अग्र भाग पर 'जूता रखना' अथवा जूता पहनकर नाव पर चढ़ना बुरा मानते है। जब कोई नयी नाव पानी मे प्रथम बार उतारी जाती है उस समय ये उसकी बडी पूजा करते है। अनेक लोक-गीतो मे इसका उल्लेख पाया जाता है, जहाँ नदी के पार उतारने के लिए उनसे प्रार्थना की गई है।[1]

(३७) **माली**—माली शब्द संस्कृत के 'मालाकार' का अपभ्रंश ज्ञात होता है। जिसका अर्थ माला बनाने वाला है। कालान्तर मे 'कार' शब्द का लोप हो गया और माला शब्द शेष रह गया जिससे 'माली' शब्द का निर्माण हुआ। यदि भाषा-शास्त्र की दृष्टि से देखे तो माली (माला अस्ति अस्येति माली) शब्द का भी वही अर्थ है जो मालाकार का था।

भोजपुरी मे माली को 'मलहोरी' कहा जाता है जिसका आशय है माला को आहरण करने वाला अर्थात् लाने वाला व्यक्ति। माली का प्रधान व्यवसाय फूलो के द्वारा माला बनाकर उसकी बिक्री करना है। काशी, अयोध्या, मथुरा और हरिद्वार आदि तीर्थ-स्थानो पर, प्रसिद्ध मदिरो के सिहद्वार के दोनो ओर अनेक मालियो की दूकाने देखी जा सकती है जो देव-दर्शन के लिए मदिर मे जानेवाले भक्तो के हाथ मालाओ को बेच कर अपनी उदरदरी की पूर्ति करते है।

भोजपुरी लोक-गीतो मे माली और उसकी स्त्री मालिन का उल्लेख शीतला माता के भक्त के रूप मे किया गया है। गाँवो मे जब कोई बालक चेचक के रोग से पीडित होता है तब उसकी कोई दवा नहीं की जाती। शीतला माता इस रोग की अधिष्ठातृ देवी मानी जाती है। अत बालक की आरोग्य प्राप्ति के लिए उन्ही की अर्चा तथा पूजा की जाती है। चूकि माली

---

१. डॉ० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १।

शीतला माता का सेवक है अत उसे बुलाकर देवी को प्रसन्न करने के लिए उससे निवेदन किया जाता है। लोगो का ऐसा दृढ विश्वास है कि नीम के वृक्ष पर शीतला निवास करती है और वही पर झूला लगाकर झूलती रहती है। अत मालो या मालिन नीम की पत्ती का पखा झलती है जिससे बालक शीघ्र नीरोग हो जाता है।

लोक-गीतो मे माली—विशेष कर उसकी स्त्री मालिन—का उल्लेख अनेक स्थानो मे पाया जाता है। नीम के पेड़ मे झूला झूलते हुए शीतला को प्यास लग जाती है अत पानी पीने के लिए अपनी भक्तिन मालिन के निवास स्थान पर स्वय चली आती है और उसे सम्बोधित करती हुई कहती है कि ए मालिन! तुम सो रही हो अथवा जाग रही हो। तुम उठो और मझे पानी पिलाओ। गीत की कुछ पक्तिया इस प्रकार है—

"झुलत झुलत मइया का लगली पियसिया
कि चलि भइली ना।
मलहोरिया आवास कि चलि भइली ना।
सूतलि बाड़ू कि जागलि ए मालिनि
उठि के मोहि के पनिया पिआऊ॥"[1]

विवाह के अवसर पर माली वर के लिए 'मऊरि' बनाता है जिसे सिर पर पहिन कर वह कन्यावाले के घर जाता है। समस्त मागलिक अवसरो पर पुष्प और माला प्रदान करना माली का ही काय है। परन्तु शीतला माता का सेवक होने के कारण ही माली का सम्मान अधिक है क्योकि वह चेचक से पीडित बालक के लिए देवी के प्रसाद को प्राप्त करने का सहज माध्यम है।

(३८) **मुसहर**—इस जाति के लोग वाराणसी जिले के पश्चिमी भाग मे पाये जाते है। परन्तु इनका केन्द्र बिहार राज्य का आरा जिला है, जहाँ लाखो की सख्या मे ये पाये जाते है। मुसहर शब्द की निरुक्ति 'मूषकहर' या 'मूषकहर्ता' मानी जाती है। इस जाति के लोग, बरसात के दिनो मे, खेत मे बिल बनाकर रहने वाले चूहो को पकडते है और उन्हे आग मे पका कर खाते है इसीलिए इनका नाम 'मुसहर' है। यह एक प्रकार की अस्पृश्य जाति है जिसका छुआ हुआ पानी उच्च वण के लोग नही पीते। ये गाँव के बाहर अपनी झोपडी बनाकर निवास करते है। इनकी आकृति काली और कद सामान्यतया छोटा होता है।

इनका प्रधान व्यवसाय मजदूरी करना है। शाहाबाद (अब भोजपुर) जिले मे ये किसानो के खेतो को जोतते और फसल—विशेषकर धान के पक जाने पर उसे काटते है। इनकी स्त्रिया जिनको मुसहरिन कहा जाता है—खेतो मे धान को रोपती हुई सुन्दर गीत गाती है। ये लोग पालकी ढोने का भी काम करते है। ये बडे ही परिश्रमी होते है। थकावट का तो ये नाम ही नही जानते। यदि इनको थोडी-सी 'ताडी' अथवा महुआ की शराब पिला दी जाय तो ये दिन भर बडे चाव से परिश्रम करते रहते है। यद्यपि ये लोग भोजपुरी ही बोलते है परन्तु इनका उच्चारण (Intonation) कुछ भिन्न होता है। रात्रि मे ये लोग नाच-गान करके अपने दिन की थकावट को दूर करते है। इनकी रहन-सहन, आचार-विचार के सम्बन्ध मे शोधकार्य भी हो चुका है।

(३९) **लकडीहारा**—ये लोग गाँवो मे लकडी चीरने का काम करते है। ग्रामीण लोगो के यहाँ जब कभी विवाह, गवना अन्य कोई मागलिक या अमागलिक कृत्य होता है तब भोजन पकाने के लिए अत्यधिक लकडी की आवश्यकता है। ऐसी परिस्थिति मे किसान आम या बबूल की लकडी का प्रयोग करता है जो 'जलावन' के लिए अच्छी मानी जाती है। लकडीहारा इन पेडो को काटकर गिराता है और उसका 'बोटा' बनाकर उस लकडी को 'टाँगा' से चीरकर 'चैला' बनाता है। इसी लकडी को बडे-बडे चूल्हो (भट्ठी) मे जलाकर भोजन पकाया जाता है। इनका दूसरा काम लकडी चीरना भी है। ये आम या साखू की मोटी लकडी को अपने लम्बे-लम्बे 'आरा' से चीरकर इनके 'पटरा' (लम्बा तख्ता) बनाता है। इस प्रकार 'टाँगा' से लकडी काटना और 'आरा' से मोटे काष्ठ खण्ड को चीरना इनका प्रधान कार्य है।

इनका तीसरा काम लकडी बेचना भी है। ये किसी किसान का सूखा पेड चोरी से अथवा स्वल्प मूल्य देकर उसे खरीद लेते हैं और उस लकडी को चीरकर उनको इकट्ठा कर देते है जिसे 'टाल' कहा जाता है। ये इस 'टाल' की लकडी को बेचने का काम करते है। वाराणसी जिले के पश्चिमी भाग—भदोही तहसील मे लकडीहारे का काम विशेषकर 'मुसहर' जाति के लोग किया करते है जो 'बँहगी' मे चैलो को सजाकर उसे अपने कधो पर ढोते है और 'ले चैला' 'ले चैला' चिल्लाते फिरते है और इस प्रकार अपनी जीविका चलाने मे व्यस्त रहते है।

---

१ डॉ० उपाध्याय—भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन पृ० २०१।

(४०) लोहार—लोहार शब्द संस्कृत लौहकार' का अपभ्रंश है जिसका अर्थ है लोहे को बनाने वाला। चूंकि लोहार लोहे के द्वारा विभिन्न औजारो तथा वस्तुओ का निर्माण करता है अत इसका यह नाम साथक है। बढई के समान लोहार भी समाज का एक उपयोगी अग है। गाँवो मे इसका प्रधान काय गृह-निर्माण मे प्रयुक्त होने वाली सामग्रीका निर्माण करना है। इसके अतिरिक्त वह किसानो के 'भोथर' (कुण्ठित) औजारो को 'सान धराने' (तेज करने) का भी काय करता है। हँसुआ, 'छूरी' (चाकू) गडसी टाँगी, आरी आदि औजारो को 'सान' (शाण) पर चढा कर वह तेज करता है। लोहे को आग मे गर्म करके वह कील, काँटा, कब्जा, कुल्हाडी को भी बनाता है। उसके इस कार्य का उल्लेख संस्कृत के किसी कवि ने इस प्रकार किया है—

"लौहकार घनै लोहैं, किं ताडयसि तापितम्।
इदृक् तीक्ष्णमुखाग्राणा, इयव प्रतिक्रिया॥"

लोहार का उपकरण भाथी, निहाई, हथौडा, छेनी आदि है जिनके उपयोग से वह अपनी जीविका चलाता है। भाथी चाम की बनी होती है जिसमे हवा भरकर लोहार लोहे को गम करता है। इस सम्बन्ध मे हिन्दी के किसी कवि की यह उक्ति कितनी सटीक है।

"निबल को न सताइये जाकी मोटी हाय।
मुई चाम की खाल से, सार भसम होई जाय॥"

लोहार किसानो का सतत सखा और सहायक है। चाकू पर 'सान धराने' से लेकर घर बनाने के काम तक उसका सहयोग अपेक्षित ही नही अनिवार्य भी है।

(४१) सोनार—यह संस्कृत के स्वणकार का अपभ्रंश रूप है। सोनार का प्रधान काय सोना तथा चाँदी के गहनो का निर्माण करना है। ग्रामीण स्त्रियाँ अपेक्षा कृत समधिक आभूषण प्रिय होती है। अत सोनार उनके मनोवान्छित आभूषणा का निर्माता है। इस प्रकार वह स्त्रियो का प्रियपात्र तथा बन्धु है। अनेक लोक-गीतो मे इसे 'भइया' अथवा "सोनार भइया हितवा" (भलाई करने वाले सोनार भाई) की उपाधि से विभूषित किया गया है और उससे नथिया या 'तिलरी' गढ़ाने के लिए प्रार्थना की गई है।[1]

सोनार अपने व्यवसाय मे कुशलता के लिए प्रसिद्ध है। वे अपनी कला-चातुरी के द्वारा सुवर्ण का ऐसा गहना बनान में समर्थ होते हैं कि उसमे किसी अन्य धातु के मिलावट का पता भी नहीं चलता। ऐसी किम्वदन्ती है कि किसी सोनार ने अपनी माता के लिए सोने का गहना बनाया था परन्तु उसमे किसी प्रकार की मिलावट न करने के शोक के कारण वह बीमार पड गया।

विवाह के दिनो मे सोनार का आदर बहुत बढ़ जाता है। वह गहनो के बनाने मे सदा सलग्न रहता है और लोगो की 'फरमाइश' के अनुसार अनेक प्रकार के गहने बनाता है। सोनार का उपकरण बहुत मामूली होता है। वह छोटी-सी एक हथौडी से सोने को पीटकर उसे विभिन्न आभूषणो को आकृति प्रदान करता है। यद्यपि स्वर्णकार सर्वाधिक मूल्यवान् धातु का उपयोग करता है परन्तु उसकी रहन सहन साधारण तथा सामग्री स्वल्प होती है।

(४२) हलुवाई—गाँवो मे हलुवाई जाति के लोगो का व्यवसाय मिष्ठान्न बनाना और अपनी दूकान लगाकर उसे बेंचना है। ये गुड और चीनी तथा आटा और चौरठ (चावल को पीस कर बनाया गया चूर्ण) के द्वारा विभिन्न प्रकार की मिठाइयाँ बनाने मे बडे कुशल और सिद्धहस्त होते हैं। इनके द्वारा बनायी जाने वाली कुछ प्रसिद्ध, लोकप्रिय तथा टिपिकल मिठाइयो के नाम इस प्रकार हैं[2]—

(१) टिकरी, (२) जलेबी, (३) लड्डू (४) अनरसा, (५) कुटकी, (६) पटौरा, (७) मोतीचूर आदि।

गाँवो मे जब कोई अतिथि आ जाता है और उसके स्वागत-सत्कार के लिए जब कोई वस्तु उपलब्ध नही होती तब उक्त गाढे समय मे हलुवाई ही काम आता है।

---

१ मोरा पिछुआरावा सोनार भइया हितवा,
गढ़ाइ देवहु ना मोहिं के सोने के तिलरिया॥
डॉ० उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १।

२ इन विभिन्न प्रकार के मिष्ठान्नों के विस्तृत वर्णन के लिए "भोजन और पेय" वाला अध्याय देखिए।

इस जाति का दूसरा काम किसी बारात अथवा भोज के समय लोगो को खिलाने के लिए पूडी-कचौडी बनाना है। भोजपुरी प्रदेश मे धनी लोगो की बारात मे कुछ निमन्त्रित और कुछ अनिमन्त्रित—सैकडो व्यक्ति कन्या वाले के घर आते है जो भोजन करने मे बडे ही 'भोजनभट्ट होते है। उन्हे उदरभरि तथा वृकोदर की सज्ञा दी जाय तो कुछ अनुचित न होगा। इस भारी भीड को भरपेट भोजन देना साधारण काम नही है। अत ऐसे अवसर पर हलुवाई बुलाया जाता है जो पूरी बारात के लिए साग, सब्जी, पूडी, कचौडी और मिठाई बनाता है। इनकी पूडियाँ बडी लम्बी-चौडी होती है जिन्हे दो से अधिक खाना किसी भले आदमी के लिए सभव नही है।

(३) परिच्छेद

भूमि (जमीन) के प्रकार

गाँवो मे जो भूमि उपलब्ध होती है उसके अनेक भेद-प्रभेद पाये जाते हैं। ये भेद प्रधानतया तीन प्रकार के होते हैं।

(१) गाँवो से उनकी दूरी के कारण

(२) उस भूमि की विशिष्टता के कारण

(३) उस भूमि मे जो विशेष पैदावार होती है उसके आधार पर।

(१) जिस जमीन मे घर बने होते हैं और जहाँ गाँवो की स्थिति होती है उसे **आबादी** कहते हैं। इसे **बसती** भी कहा जाता है। परन्तु जो जमीन कुछ ऊँची होती है, जिस पर पहिले घर बने हुए थे परन्तु अब उजाड हो गयी है उसे **डीह** के नाम से पुकारते है। गाँव के पास की जमीन जहाँ घरो के नाली का पानी जाता है **गोहान** की सज्ञा प्राप्त करती है। गाँव से दूर स्थित खेतो को जब तक उनमे पैदावार लगी रहती है **सरेह** के नाम से पुकारा जाता है। किसी नदी के उपान्त्य की भूमि जहाँ कुछ भी पैदावार नही होती अथवा जो किसी नदी के बीच मे पड जाने के कारण द्वीप बन जाती है **दीअर** कही जाती है। जो गाँव ऐसी जमीन पर स्थित होते है वे भी प्राय **दीअर** के नाम से पुकारे जाते है, जैसे बलिया जिले का **गाँव सिताबदियर।** जिस जमीन पर केवल मूँज ही मूँज पैदा होती है उसे **मुँजवानि** कहा जाता है।

(२) जिस जमीन मे मिट्टी, बालू, ककड आदि पाया जाता है उसका नाम इन विशेष वस्तुओ की उपलब्धि के कारण भिन्न भिन्न हुआ करता है।

(क) जिस भूमि मे बालू अधिक पाया जाता है उसे **बलघुस** कहते हैं। कही कही इसे **बलुअट** भी कहा जाता है। **भीस** सुन्दर तथा Compact (ठोस) बालू को तथा **बाल मोटे** तथा अलग अलग कण वाले बालू को कहते है।

(ख) जिस भूमि मे शुद्ध मिट्टी की प्रधानता होती है उसे **मटियार** की सज्ञा प्राप्त है। यह मिट्टी भूअर होती है तथा धान की पैदावार के लिए अति उत्तम है। जिस जमीन मे अधिक उपजाऊ मिट्टी होती है वह **करइल** के नाम से प्रसिद्ध है। इसका रग बडा ही काला होता है। वह मिट्टी जो शरीर पर मलने पर चिकनी लगती है **दूधी या चिकनी मिट्टी** कही जाती है। वाराणसी नगर मे हाथ मलने के लिए बडी चिकनी मिट्टी प्राप्त होती है जिसका रग पीला होने के कारण **पीली मिट्टी** कहलाती है। सोन नदी की तलहटी मे लाल मिट्टी पाई जाती है इसका बालू लाल बालू के नाम से प्रसिद्ध है। जिस मिट्टी मे ककड, पत्थर मिला होता है वह **ककडीली, पथरीली** के नाम से प्रसिद्ध है। इसे पटिया भी कहते है। **चहल या कदोई** उस जमीन को कहते है जो कभी पूर्ण रूप से नही सूखती और उसमे कीचड या पाँक होती है। ऐसी जमीन मे बिना हल चलाये ही अन्न बो दिया जाता है। जब बाढ आती है तब वह खेतो मे बहुत सी नयी मिट्टी लाकर जमा कर देती है। ऐसे खेत दोमट कहे जाते है। नदी की बाढ का पानी जब घट जाता है परन्तु निचली भूमि वाले खेतो मे जमा रहता है उसे **छाडन** कहते है। यह **भागड** के नाम से भी प्रसिद्ध है। जो खेत ऊँची जमीन पर स्थित होते है उन्हे **उपरवार** और नीची जमीन के खेतो को **खलार** की सज्ञा प्राप्त है।

जिन खेतो की मिट्टी अच्छी होती है और जिनमे पैदावार अच्छी लगती है वे **उपजाऊ** कहे जाते है। परन्तु जिन खेतो मे रेतीली, ककरीली मिट्टी के होने से उपज बिल्कुल नही होती वे **ऊसर** या **बनजर** कहलाते है। कोयरी जिस खेत मे खूब अधिक खाद डाल कर, उसमे तरकारी तथा अन्य फसलो (चीना आदि) को पैदा करता है वह **कोडार** के नाम से जाना जाता है। ऐसे खेतो मे साल भर तक साग सब्जी पैदा होती रहती है।

(३) जो खेत ईख बोने के लिए पिछले बसन्त मे बिना बोये ही छोड दिया जाता है उसे **मघार** कहा जाता है। इसी प्रकार से जो खेत चैती बोने के लिए पहिले बिना बोये ही छोड दिया जाता है उसे **पलिहर** की सज्ञा प्राप्त है। जो खेत **बिना**

बोये ही छोड दिये जाते है वे **परती** कहलाते है। परन्तु जिन खेतो मे अन्न सदा बोया जाता है वे **आबाद या उठती** के नाम से जाने जाते है। जिन खेतो की उपजाऊ शक्ति नष्ट हो जाती है वे **हल्लुक** कहलाते है। इनका दूसरा नाम **बाँगर** है।

जिन खेतो मे कृत्रिम साधनो से सिचाई की जाती है उन्हे **पटौआ** कहते है। ऐसे खेतो को **भरैया** भी कहा जाता है। जिस खेत मे साल भर मे केवल एक ही फसल पैदा होती है उसे **एकफसिली** तथा जिन खेतो मे दो फसल होती है उन्हे **दो फसिली** कहते है। परन्तु जिनमे साल भर मे तीन फसल होती है वे तिनफसिली कहलाते है। इस प्रकार मिट्टी, ऊपज, सिंचाई, पैदावार के हिसाब से खेतो के अनेक प्रकार पाये जात है।

सिंचाई के विभिन्न साधन

गाँवो मे खेतो की सिंचाई के लिए अनेक साधन प्रयोग मे लाये जाते है। जैसे मोट, रहँट, कूडि, दौरी, दोन आदि। **इन** साधनो मे मोट के द्वारा सिंचाई ही अधिक प्रचलित है और साधारणतया किसान इसी का उपयोग करते है।

(१) **मोट**—यह चमडे का बना हुआ गोलाकार बडा पात्र होता है जिसमे एक मोटी रस्सी बँधी रहती है। इस मोटी रस्सी मे मोट को बाँध कर घडारी पर चढाकर नीचे कुए मे डाल दिया जाता है। जब मोट मे पानी भर जाता है तब उस रस्सी को बैल खीचते है। जब मोट ऊपर आ जाता है तब कोई व्यक्ति उस मोट के पानी को बाहर गिराकर पुन मोट को कुए मे डाल देता है। इस प्रकार मोट के द्वारा पानी कुएँ मे से निकाल कर खेत की सिंचाई की जाती है। इस काय मे कम से कम तीन व्यक्तियो की आवश्यकता होती है। एक व्यक्ति बैलो को हाँकता है और दूसरा पानी से भरे मोट को खाली कर उसे पुन कुएँ मे डालता है। तीसरा व्यक्ति खेत मे मिट्टी की नाली बनाता जाता है जिससे कुएँ का जल खेतो मे अभीष्ट स्थान तक पहुँच जाय।

(२) **रँहट**—रँहट मे छोटी छोटी बीस-पच्चीस बाल्टियाँ लगी रहती है जो लम्बाई मे कुएँ के जल तक पहुँचती है। इस रँहट को एक बैल के द्वारा चलाया जाता है। जैसे जैसे बैल घूमता है वैसे वैसे बाल्टियाँ कुएँ मे नीचे चलती जाती है और उसमे पानी भरता जाता है। कुएँ मे से ऊपर आने पर यह पानी स्वत बाहर गिरता रहता है और बाल्टियाँ नीचे-ऊपर आती जाती रहती है। इस राज्य के पश्चिमी जिलो मे इस रँहट को ऊँट चलाया करते है। इसके द्वारा सिंचाई के काय को बडी आसानी से किया जाता है।

(३) **कूडि**—यह लोहे की एक बडी बाल्टी के समान होता है जिसके सिरे पर लम्बी रस्सी बाँधी गई रहती है। इसी रस्सी के सहारे कूँडि को कुएँ मे डालकर पानी को ढेकुल के द्वारा ऊपर खीचा जाता है। चूँकि कूँडि मे पानी की मात्रा बहुत थोडी होती है अत इससे अधिक खेतो की सिंचाई नही की जा सकती। कोइरी लोग अपने **कोआर** के खेतो मे साग सब्जी उपजाने के लिए इसी कूँडि से अपने खेतो की सिंचाई करते हैं। मोट और कूँडि मे यही अन्तर है कि मोट को कुएँ से बैल खीचते है, इसमे पानी की मात्रा अधिक होती है परन्तु कूँडि को आदमी खीचता है और इसमे जल की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है।

(४) **दोन**—मोट, रँहट तथा कूँडि से खेतो की सिचाई कुएँ से पानी निकाल कर की जाती है। परन्तु दोन के द्वारा जो सिंचाई होती है उसका आधार कुआँ न होकर छोटी तलैया या पोखरा या जलाशय होता है। दोन काठ का बना हुआ लम्बा तथा चौडा काष्ठ खण्ड होता है जिसको खोखला करके चम्मच के आकार का बनाया जाता है। किसी नीचे जलाशय के जल द्वारा ऊँचाई पर स्थित खेत को जब सीचना पडता है तब **दोन** द्वारा ही यह काय किया जाता है। दोन के एक सिरे को पानी मे डुबो दिया जाता है। फिर छोटो सी ढेकुल के द्वारा इस जल को ऊपर लाकर खेत मे डाल देते है। इस प्रकार से जिन खेतो को कुए से सीचने की कोई व्यवस्था नही होती उनको इसी दोन से सीचा जाता है। जो व्यक्ति दोन को चलाता है उसे दोनवाह कहते है। इस प्रकार की सिंचाई वहाँ सम्भव है जहाँ छोटे जलाशय उपलब्ध हो।

(५) **दौरी**—**दौरी** के द्वारा भी कही कही सिचाई की जाती है। **दौरी** बाँस की बनी हुई **छबडी** को कहते है जिसमे प्राय घर का अन्न आदि सामान रखा जाता है। इस दौरी के दोनो ओर दो रस्सियाँ लगा दी जाती है। इन्ही रस्सियो को पकड कर दो व्यक्ति इस दौरी को जल मे डुबोते है और फिर उसी रस्सी के सहारे उस जल को बाहर निकाल कर खेतो मे डालते हैं। जो दो व्यक्ति इन रस्सियो को खीच कर जल भरते हैं उन्हें **दौरीवाह** कहा जाता है। यह कार्य प्राय गाँव की नीची जाति की स्त्रियाँ क्रिया करती है। दौरी के द्वारा सिंचाई तभी समव है जबकि जलाशय से खेत की ऊँचाई थोडी ही अधिक हो।

(६) खोखले ताड वृक्ष के द्वारा—कही कही गाँवो मे ताड वृक्ष को काटकर उसके धड को खोखला बना देते हैं। कुएँ से पानी निकाल कर इसी खोखले लम्बे ताड के द्वारा उसे खेतो मे पहुँचाते है। परन्तु इस माध्यम से अधिक खेतो की सिचाई नही हो सकती।

(७) नहर—खेतो की सिंचाई का सबसे प्रधान बडा साधन नहर है। शाहाबाद (आधुनिक भोजपुर) जिले मे सोन नदी से एक बहुत बडी नहर निकाली गई है जिससे लाखो, एकड जमीन की सिचाई होती है जिसमे धान बोया जाता है। धान की खेती के लिए बहुत अधिक जल की आवश्यकता होती है। अत यह पानी केवल नहर के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है अथवा मूसलाधार वृष्टि से ही सम्भव है। कूप और जलाशयो के लघु स्रोत से धान के खेतो की सिचाई सम्भव नही है। अत नहर और धान की खेती का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है।

सिंचाई के आधुनिक साधन

स्वाधीन भारत मे सिचाई के बहुत से नये साधन उपलब्ध हो गये है जिनको तीन श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है —

(१) नवीन नहरो का निर्माण।
(२) डैम का निर्माण।
(३) टयब वेलो का निर्माण।
(४) पम्पिंग सेटो का लगाना।

हमारी राष्ट्रीय प्रान्तीय सरकारो ने अनेक नवीन नहरो का निर्माण कराया है जिससे सिचाई मे बडी सुविधा हो गई है। गगा, जमुना, सोन, गडक आदि नदियो से अनेक छोटी छोटी नहरे निकाली गई है जिससे सिचाई बडी आसानी से हो रही है सरकार ने कही-कही लिफ्ट-योजना भी चालू कर रखी है। जिन नहरो या जलाशयो मे पानी का अभाव है उनमे गगा आदि। बडी नदियो का पानी यन्त्रो के द्वारा बडे बडे पाइपो के सहारे इन नहरो मे डाल दिया जाता है जिससे वे सूखने न पावे और खेतो को पर्याप्त जल देकर सिचाई कर सके। यह लिफ्ट-योजना बडी कारकर सिद्ध हुई है।

(२) सरकार का उद्देश्य प्रत्येक गाँव मे बिजली पहुँचाना है जिससे सिंचाई का काय सुलभ हो सके। इसके लिए सरकार ने पहाडी नदियो मे बडे बडे बाँधो का निर्माण किया है। मिर्जापुर मे रिहन्द (रेणु) नदी पर ऐसा ही बाँध बाँधा गया है जो 'रिहन्द डैम' के नाम से प्रसिद्ध है। इस 'डैम' से बहुत बिजली पैदा की जाती है जिसका उपयोग उद्योग-धन्धो को चलाने के लिए किया जाता है। मिर्जापुर जिले मे ही अहिरौरा के पास पर्वत की घाटी को घेर कर—बाध बाधकर—एक बडे जलाशय का निर्माण किया गया है जिससे एक बहुत बडे भूभाग की सिंचाई की जाती है। इसी प्रकार से अन्य जिलो मे 'डैम' बनाये गये है।

(३) ट्यूबवेल—नलकूपो का निर्माण

सरकार ने गाँवो मे अनेक नलकूपो का निर्माण किया है। ये नलकूप पाताल तोड कुये के समान है जिनका जल बिजली के द्वारा ऊपर लाकर खेतो मे पहुँचाया जाता है। इन ट्यूबवेलो से—जिन्हे ग्रामीण जनता 'टीबुल' कहती है—खेतो की सिंचाई मे बडी सुविधा हो गई है।

(४) कुछ धनी तथा समृद्ध व्यक्तियो ने अपने खर्चे से अपने खेतो मे 'पम्पिग सेट' लगा लिया है जो बिजली के द्वारा चालित होता है। इन प्राइवेट 'पम्पिगसेटो' के द्वारा भी बडी आसानी से सिचाई हो रही है। परन्तु बिजली कटौती के कारण इस काय मे पूरी सफलता नही मिल रही है। सिचाई के इन नये साधनो से सुविधा तो अवश्य हो गई है परन्तु इससे खेती का खर्चा बढता जा रहा है।

(४) परिच्छेद

प्राकृतिक आपत्तियाँ

यदि भोजपुरी प्रदेश को प्राकृतिक आपत्तियो का घर कहा जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी। ऐसा ज्ञात होता है कि प्रकृति इस प्रदेश से अत्यन्त क्रुद्ध है और यह मण्डल विधाता की कोप दृष्टि का भाजन है। भगवान् की कृपादृष्टि से यह प्रदेश सदा वचित रहा है और स्वाधीनता की प्राप्ति के पश्चात् भी सुख सौभाग्य और सम्पन्नता की किरणे इसे अभी स्पश भी नही कर सकी है।

ईतियाँ—शास्त्रो मे छ प्रकार की ईतियो का उल्लेख किया गया है।

अर्थात् (१) अतिवृष्टि (२) अनावृष्टि (३) चूहा (४) टिड्डिया (५) सुग्गा और (६) राजा का आक्रमण—ये छ प्रकार की ईतियाँ है। कहने की आवश्यकता नही कि भोजपुरी प्रदेश मे ये छवो ईतिया युग युग से टाँग तोडकर बैठी हुई है।

(१) अति वृष्टि—अर्थात् अत्यन्त अधिक वर्षा तथा अनावृष्टि—अर्थात वर्षा का अत्यन्त अभाव। इन दोनो के जोडा से यह प्रदेश सदा से पीडित रहा है। बूडा और सूखा ये दोनो ही ऐसे ग्रह है जो इस प्रदेश की जन्म-कुण्डली मे अपने स्थान के स्वामी होकर बैठे हुए है।

बलिया जिले का पूर्वी भाग 'दो आबा' के नाम से प्रसिद्ध है। यहा एक ओर गगा नदी और दूसरी ओर सरयू नदी प्रवाहित होती है। प्रतिवष इन नदियो मे बाढ आ जाती है और समस्त प्रदेश जलमग्न हो जाता है। खडी फसल का नष्ट हो जाना यहाँ की वार्षिक चर्या है। बाढ के आने से केवल खडी फसल ही नष्ट नही होती बल्कि कच्चे मकान धराशायी हो जाते है और छप्पर बह जाते है। लोगो को घर मे मचान बनाकर रहना पडता है और भोजन के स्थान पर सत्तू से ही सन्तोष करना पडता है। इस प्रकार से प्रतिवष खेती का नष्ट हो जाना और मकान का गिरना मानो इनके भाग्य की निश्चित रेखा बन गई है।

काशी की छोटी आर ।मियो मे सूख जाने वाली वरुणा नदी भी बाढ के दिनो मे वीभत्स रूप धारण कर लेती है। जौनपुर की सई नदी वर्षा के दिनो मे प्रलयकारी रूप दिखलाती है। उसी प्रकार मे आजमगढ की तमसा (टोन्स) और गोरखपुर की गोमती भी अपना विकराल रूप धारण कर यहाँ के निवासियो को गृहहीन बनाने के साथ ही उनकी खेती को नष्ट करके दाने दाने को मुँहताज बना देती है। अत अतिवृष्टि के कारण बाढ का आना इस प्रदेश की ऐसी समस्या है जिसका समाधान आज तक नही हो पाया है। इस दैवी आपत्ति के कारण यहाँ की जनता की आर्थिक थिति बहुत खराब हो गई है।

अनावृष्टि—अनावृष्टि का अथ वर्षा का अत्यन्त अभाव है। इस काण इस प्रदेश मे आये दिन सूखा पडता रहता है। भोजपुरी किसान केवल भगवान् के भरोसे खेती करता है। यदि समय मे उचित मात्रा मे वर्षा हो गई तब उसकी धरती सोना उगलने लगती है। परन्तु वर्षा के अभाव मे खेतो मे धूल उडने लगती है। पैदावार होने की कथा तो दूर की बात है। स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद से, नलकूपो का निर्माण होन से, सिचाई की अवश्य कुछ सुविधायें प्राप्त हुई है परन्तु अभी पूरे प्रदेश को इससे लाभ पहुँचने की आशा दुराशा मात्र है। अत किसानो की समस्या अभी वैसी ही बनी हुई है।

कभी कभी ऐसा भी होता है कि वर्षा के कारण अतिवृष्टि से भदई की फसल नष्ट हो जाती है और बाढ की समाप्ति के पश्चात खरीफ की फसल होने पर अनावृष्टि के कारण वह सूख जाती है। इस प्रकार अधिक वर्षा तथा बाढ से भदई की फसल पानी मे डूब कर नष्ट हो जाती है और इसके बाद पानी न बरसने मे अनावृष्टि मे खरीफ भी नही होती। इस प्रकार अतिवृष्टि और अनावृष्टि का द्वन्द्व भोजपुरी कृषक के भाग्य के दुष्ट शनि और मगल ग्रह के समान है जो उसे पनपने नही देते।

मूषका शलभा, शुका—खेतो मे चूहो की अधिकता से सारी मिट्टी खोखली कर दी जाती है जिससे अन्न नही पैदा होता। कभी कभी आये दिन टिड्डियो का भी आक्रमण होता रहता है जो कि किसान की खडी खेती को घटो मे ही चट कर जाती है। टिड्डियाँ फल वाले वृक्षों को भी अत्यन्त हानि पहुँचाती है। इस प्रकार खेती और फल दोनो को नष्ट कर देती है।

नदियों के द्वारा धरती का कटाव

भोजपुरी प्रदेश मे गंगा, सरयू, सई, गोमती, वरुणा आदि नदियो मे प्रति वष बाढ आती है जिसके कारण लाखो वर्ग मील की खेती नष्ट हो जाती है। इसके अतिरिक्त जब नदियो का पानी 'ओहरने' अर्थात् घटने लगता है तब वे अपने तट को काटने लगती है जिसके फलस्वरूप हजारो बीघा जमीन कट कर इधर से उधर हो जाती है। यद्यपि कटाव की समस्या प्राय प्रत्येक जिले मे है परन्तु बलिया और छपरा तथा बलिया एव आरा (वतमान भोजपुर) जिलो के बीच इस समस्या ने भीषण रूप धारण कर लिया है। बलिया और आरा के बीच गगा नदी प्रवाहित होती है। गगा की कटाव से कभी बलिया जिले की हजारो बीघा जमीन आरा जिले मे चली जाती है और कभी आरा की बलिया मे। चूँकि गगा नदी ही इन दोनो की विभाजक रेखा है अत जिला की सीमा प्रतिवर्ष बदलती रहती है। इस कारण दोना जिलो के लोगा मे प्रति वष झगडा होता रहता है और कभी कभी बलवा भी हो जाता है। यही दशा बलिया और छपरा की है जहाँ सरजू (घाघरा) नदी विभाजन की रेखा बनाती है। इस कारण हजारो व्यक्ति गृहहीन तथा खेती की जमीन से रहित हा जाते है और उन्हे निर्धनता का जीवन बिताना पडता है। काश इसका कोई स्थायी समाधान निकाला जाता।

महामारियों का प्रकोप—भोजपुरी प्रदेश मे बाढ़ के घटने के पश्चात् अनेक प्रकार की बीमारियाँ पैदा हो जाती है। हैजा और प्लेग इन दोनों ही बीमारियों का इस प्रदेश से घनिष्ट प्रेम है और ये बिना चूके हुए प्रतिवष दर्शन देने के लिए आती है।

अपोषण और कुपोषण से अनेक व्याधियाँ उत्पन्न होती है। गर्मी के दिनो मे हैजा का प्रकोप अधिक दिखाई पडता है और जाडे के दिनो मे प्लेग का रोग। गावो मे अस्पताल के अभाव और सद्वैद्यो की कमी के कारण इन रोगियो का कोई समुचित उपचार नही हो पाता आर वे रोगी तडप तडप कर मर जाते है। गावा मे 'मेटर्निटी होम' न होने के कारण कितनी गर्भिणी स्त्रियो के प्राण पखेरू प्रसव की वेदना के कारण उड जाते है।

गाँवो मे बसन्त ऋतु मे चेचक की बीमारी सात्रामक रोग के रूप म फैल जाती है। भोजपुरी जनता इस रोग को शीतला माता का प्रकोप मानती है। अत इस रोग से पीडित व्यक्ति को कोई दवा अथवा औषधि नही दी जाती वल्कि शीतला की पूजा ही इसका उपचार माना जाता है। मच्छरो के कारण मलेरिया का प्रचार भी कुछ कम नही है। कुवार के महीने मे ज्वर से पीडित होने से अनेक लोगो के घर मे कोई पथ्य देनेवाला भी नही रहता। जूडी-बुखार इन लोगो का सतत सहचर है जिससे पिण्ड छुडाना बडा कठिन काय है।

(५) परिच्छेद

बाट और माप

(Weights and measures)

भोजपुरी प्रदेश मे ठोस वस्तुओ—अन्न, शाक-सब्जी आदि—के क्रम-बिक्रय के लिए अनेक बाट प्रसिद्ध थे जिसकी सबसे छोटी इकाई **छँटाक** थी जिसे 'कनवा' भी कहते है। ४ छँटाक का एक पाव (१।४ सेर), ८ छटाँक का **आधा सेर** (१।२ सेर) और १६ छटाँक का एक सेर होता था। ढाई सेर की आधा पसेरी और पाच सेर की एक **पसेरी** होती थी। दस सेर को एक **धारा** कहा जाता था। बीस सेर का आधा मन और चालीस सेर का एक **मन** होता था। इसी तरह से अट्ठाइस मन को एक **टन** की सज्ञा दी जाती थी। इस प्रकार से ठोस पदार्थों के तौलने की सबसे छोटी ईकाई छटाँक थी और सबसे बडी ईकाई टन माना जाता था। उसे निम्नाकित तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है—

१ छटाक	सबसे छोटी ईकाई
४ ,,	१ पाव (१।४ सेर)
८ ,,	१।२ सेर (दो पाव)
१६ ,,	१ सेर (चार पाव)
२१।२ सेर	१।२ पसेरी
५ ,,	१ पसेरी (पनसेरी)
१० ,,	१ धारा
२० ,,	१।२ मन
४० ,,	१ मन
२८ मन	१ टन

जिन लोहे के बाटो से—जिन पर सरकार की मुहर लगी रहती थी—ये ठोस द्रव्य तौले जाते थे उन बाटो के नाम इस प्रकार थे।

(१)	छटकी	१।१६ सेर
(२)	अधपई	१।८ सेर
(३)	पौआ	१।४ सेर
(४)	अधसेरा	१।२ सेर
(५)	तिनपौआ	३।४ सेर
(६)	सेर	१ सेर (१६ छटाँक)
(७)	सवैआ	१ १।४ सेर
(८)	डेढसेरी	१ १।२ सेर
(९)	अढैया	२ १।२ सेर
(१०)	पसेरी या पनसेरी	५ सेर
(११)	धारा	१० सेर
(१२)	मन	४० सेर

प्रान्तीय सरकार के द्वारा निर्धारित इन लोह के बने बाटो के अतिरिक्त गावो मे शाक-सब्जी को तौलने के लिए पत्थर के बाट भी प्रचलित थे जिन्हे वहा के लोगो ने अपनी सुविधा के लिए बना रखा था। ये बाट आज भी प्रचलित हे यद्यपि इनके तौल मे अब अन्तर आ गया है।

दूध, घी, तेल आदि द्रव पदार्थो के भी नापने की यह प्रणाली प्रचलित थी। इस तौल मे सोलह छटाँक का एक सेर माना जाता था। परन्तु गाँवा मे जो सेर प्रचलित था उसे कच्चा सेर कहते थे। सरकारी मुहर से अंकित जो सेर शहरो मे प्रचलित था वह पक्का सेर कहा जाता था। इन दोनो प्रकार के सेरो मे बडा अन्तर था। सरकारी सेर १६ गण्डा का होता था परन्तु कच्चा सेर कही १४ और कही १२ गण्डा का ही होता था। एक गण्डा पाच तोला के बराबर था। अत सरकारी १६ गण्डा वाला पक्का सेर ८० तोला का होता था जबकि गाँव के कच्चे सेर का वजन केवल ६० तोला अथवा ७० होता था। पक्का सेर बडी तौल के नाम से प्रसिद्ध था जबकि कच्चा सेर छोटी तौल कहा जाता था। एक ही जनपद मे दो तरह के बाटो के प्रचलित होने के कारण बडी गडबडी थी। चालाक व्यापारी सीधे सादे ग्रामीणो को कच्चे सेर से अपने माल को तौलकर पक्के सेर के रेट का दाम वसूल करते थे। अत तत्कालीन सरकार ने इस अव्यवस्था को दूर करने के लिए सर्वत्र पक्का सेर से ही तौलने का आदेश जारी कर दिया था। इस कारण बाद मे इसी स्टैण्डड राजकीय बाट का प्रयाग किया जाने लगा था। सन् १९४७ ई० मे यह देश स्वतन्त्र हो गया। इसके पश्चात् हमारे देश के राजनेताओ मे सभी प्रकार की वतमान वस्तुओ मे सुधार तथा परिवतन की धुन सवार हुई। जिसके फलस्वरूप हिन्दू धम मे विवाह, दाय भाग, उत्तराधिकार आदि नियमो मे महान् परिवतन कर दिया गया। हमारे देश की मुद्रा प्रणाली तथा बाट और नाप की पद्धति भी इससे अछूती नही बची और उसमे आमूल परिवतन या क्रान्ति कर दी गई। यह क्रान्ति सन १९५५ ई० के आसपास मे की गई और तभी से यह नयी बाट प्रणाली प्रचलित कर दी गई।

आजकल जो बाट प्रणाली प्रचलित है उसे दशमलव प्रणाली (Decimel system) कहते है क्योकि इसकी सभी इकाईयाँ १० अथवा १०० से विभाजित की जा सकती है। यह प्रणाली यूरोप के अन्य देशो मे भी पायी जाती है। अत भारत को यूरोप के अन्य देशो की श्रेणी मे बैठाने के लिए तौल की इस दशमलव प्रणाली का यहाँ भी प्रचार किया गया। वैज्ञानिक दृष्टि से इस प्रणाली म भले ही कुछ विशेषता हो परन्तु व्यावहारिक दृष्टि स इससे लाभ की अपेक्षा साधारण जनता की कठिनाई और भी बढ गई है। क्योकि जो जनता शताब्दियो से छटाँक और सेर से परिचित थी वह अब ग्राम और किलो के चक्कर मे फँस गई है।

आजकल बाट की जो दाशमालविक प्रणाली प्रचलित है उसे निम्नाकित तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है। इस बाट प्रणाली की सबसे छोटी ईकाई ग्राम है और सबसे बडी ईकाई मेट्रिक टन है।

	१ ग्राम
१ ग्राम	१।१००० किलो
१०० ग्राम	१।१०० किलो
२५० ,,	१।४ किलो
५०० ,,	१।२ किलो
७७५ ,,	३।४ किलो
१००० ,,	१ किलो
२५ किलोग्राम	१।४ क्विन्टल
५० ,, ,,	१।२ ,, ,,
७५ ,, ,,	३।४ ,, ,,
१०० ,, ,,	१ क्विन्टल

सोना तथा चाँदी आदि बहुमूल्य पदार्थों को तौलने के लिए जो बाट भोजपुरी प्रदेश मे प्रचलित थे उनका विवरण इस प्रकार है। इस बाट की सबसे छोटी ईकाई जौ थी और सबसे बडी ईकाई तोला कही जाती थी। एक विशेष वृक्ष का लाल फल 'करजनी' या लाल कहा जाता था। इसे रत्ती भी कहते थे। यही रत्ती सोने और चाँदी को तौलने के लिए सबसे छोटी ईकाई के रूप मे व्यावहारिक रूप से काम मे लायी जाती थी। चार जौ मिलाकर एक रत्ती होती थी। इस बाट की तालिका निम्नांकित है—

*३ जौ	१ लाल *
४ जौ	१ रत्ती
४ रत्ती	१ चौरत्ती
५ १।४ रत्ती	१ एअन्नी (एकन्नी)
८ रत्ती	१ मासा
१० १।२ रत्ती	१ दुअन्नी
८ दुअन्नी या १० १।२ मासा	१ ढाका
१२ मासा	१ तोला

आजकल सोने आदि बहुमूल्य वस्तुओ के तौलने का बाट बिल्कुल बदल गया है। इसके तौल की सबसे छोटी इकाई ग्राम है तथा सबसे बडी इकाई कही जाती है। यह तौल भी दाशमालविक प्रणाली के नाम से प्रसिद्ध है।

(ख) ठोस द्रव्यो को नापने का नया पैमाना।

१० मिलीग्राम	१ सेन्टीग्राम
१० सेन्टीग्राम	१ डेसी ग्राम
१० डेसी ग्राम	१ ग्राम
१० ग्राम	१ डेका ग्राम
१० डेकाग्राम	१ हेक्टोग्राम
१० हेक्टो ग्राम	१ किलोग्राम
१० किलोग्राम	१ मिरिया ग्राम
१० मिरिया ग्राम	१ क्विन्टल
१० क्विन्टल	१ मेटिक टन

इस नये पैमाने मे ग्राम और किलो इन्ही दो बटो का प्रयोग सबसे अधिक होता है। अब किलोग्राम ने पुराने बाट सेर का स्थान ले लिया है। एक किलोग्राम १ सेर ६ तोला के बराबर होता है और १ सेर ९३३ ग्राम के बराबर माना जाता है। एक किलो मे कितने ग्राम होते है इसके सम्बन्ध मे एक दोहा प्रचलित है।

डेका दस है किलो हजार।
हेक्टो से समझो सौ बार।।

इस प्रकार १० ग्राम का १ डेका ग्राम, १०० ग्राम का १ हेक्टोग्राम तथा १००० ग्राम का १ किलोग्राम होता है।

कपडा नापने का माप

कपडा को नापने के लिए पहिले गिरह और गज का प्रयोग होता था। तर्जनी की जो लम्बाई है वह एक गिरह के बराबर समझा जाता था। सोलह गिरह का एक गज माना जाता था। इसी गिरह और गज के माप से दर्जी कपडा नापा करते थे। यह गज भी दो प्रकार का होता था। (१) बडा गज (२) छोटा गज। जमीन के नापने मे जिस गज का प्रयोग किया जाता था उसे सिकन्दरी गज कहते थे। परन्तु दर्जी जिस गज का प्रयोग करते थे वह कतइ गज या 'कत्ती गज' के नाम से जाना जाता था। अकबर ने अपने साम्राज्य मे इलाही गज का नाप चलाया था जो ३३ ३।४ इच के बराबर होता था।

परन्तु आज कल कपडा को नापने के लिए गिरह और गज के स्थान पर मीटर का प्रयोग होने लगा है। यह मीटर गज से थोडा बडा होता है।

*** जौ एक प्रकार का अन्न है जो गेहूँ के ही समान होता है। इसका प्रयोग सोने के तौलने के लिए किया जाता था।**

*** यह एक वृक्ष का फल है जो लाल होता है। इसके ऊपर काला दाग भी होता है। इसे 'करजनी' भी कहा जाता है।**

लम्बाई नापने का माप

लम्बाई नापने के लिए जो पैमाना प्रचलित था उसकी छोटी इकाई सूत और सबसे बडी इकाई हाथ थी। किसी सूत्र (सूत) या डोरा की जो मोटाई है उसे सूत कहते हे। तीन सूत मिल कर एक पैन होता था और तीन पैन मिलाकर एक अगुल माना जाता था। अँगुरी की जो चौडाई है उसका नाम अगुल है जो २।३ इच के बराबर होता है। चार अगुलियो की चोडाई को चौआ कहा जाता है। शाहाबाद (आधुनिक भोजपुर) जिले मे एक माप मुट्ठा के नाम से भी प्रचलित है जो बाधी गई मूठ (बद्ध मुष्टि) की चौडा ई के बराबर होता हे। बारह अगुलिया की चोडाई बित्ता कहा जाता है। दो बालिस्त एक हाथ के नाम प्रसिद्ध हे। इस माप को निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है —

१ सूत	सूत्र की चोडाई
३ सूत	१ पैन
३ पैन	१ अगुल
४ अगुल	१ चौआ
१२ अगुल	१ बित्ता
२ बित्ता	१ हाथ

यह हाथ १५ से २० इच लम्बा होता हे परन्तु इसकी औसतन लम्बाई १८ इच होती है।

खेत नापने का माप

खेत नापने तथा दूरी—सडक या स्थान की लम्बाई—मापन के लिए अलग अलग मापदण्ड प्रचलित है। तीन गज या छ क्यूबिट की एक लग्गी होती है। जिसे बाँस भी कहा जाता है। बीस लग्गी एक रसरी के बराबर होती है जो १२० क्यूबिट के बरावर मानी जाती है। साठ रस्सी या रसरी का एक कोस हाता है। कोस की लम्बाई विभिन्न जिलो मे बदलती रहती है। साधारणतया एक कोस ६० रस्मी या १२०० लग्गी अथवा ३६०० गज या दो मील से ८० गज बडा होता है। धाप करीब एक मील का होता है और कच्चा कोस पक्के कोस—जिसका ऊपर वणन किया गया है—से कुछ छोटा होता है।

२ हाथ	१ गज
३ गज	१ लग्गी
२० लग्गी	१ रस्सी या रसरी
६० रस्सी	१ कोस
४ कोस	१ जोजन

सामान्यतया सडक की दूरी को नाँपने क लिए नीचे लिखे हुए माप प्रचलित थे —

२२० गज	१ फर्लांग
८ फर्लांग	१ मील
२ मील	१ कोस

कही कही गाँवो मे खेत नापने के लिए एक दूसरी प्रणाली भी प्रचलित है जिसमे लट्ठा, धुर, विस्वा, बीघा आदि का प्रयोग होता है। इस माप मे—गज का एक लग्गी या लट्ठा होता है। लग्गी की एक धूरि होती है। बीस धूरि का एक विस्वा और बीस विस्वा का एक बीघा होता है। किन्ही किन्ही जिलो मे विस्वा को डिसमिल भी कहा जाता है। बीघा भी दो प्रकार का होता है—(१) पक्का बीघा और (२) कच्चा बीघा। कच्चा बीघा पक्के से छोटा होता है। कही कही एकड का भी भी प्रयोग किया जाता है जो लगभग १॥ से २ बीघा के बराबर होता है।

गज	१ लट्ठा
लट्ठा	१ धूरि
२० धूरि	१ विस्वा
२० विस्वा	१ बीघा
१॥ बीघा	१ एकड

साधारणतया गाँवो मे खेतो को नाँपने के लिए यही नाप प्रचलित है। पटवारी (आधुनिक लेखपाल) खेतो को नापने के लिए लोहे का बना हुआ नाप यन्त्र—जो 'जरीब' कहा जाता था—का प्रयोग किया करते थे जिसकी लम्बाई—गज हुआ करती थी।

(१) दूरी नापने का नया मेट्रिक पैमाना

१० मिली मीटर	१ सेटी मीटर
१० सेन्टी मीटर	१ डेसी मीटर
१० डेसी मीटर	१ मीटर
१० मीटर	१ डेका मीटर
१० डेका मीटर	१ हेक्टो मीटर
१० हेक्टोमीटर	१ किलो मीटर

आजकल मील के स्थान पर इसी किलोमीटर का प्रयोग किया जाता है।

(२) कपडा आदि नापने का नया पैमाना

१० सेन्टी मीटर	१ डेसी मीटर
१० डेसी मीटर	१ मीटर

इस प्रकार १ मीटर, १ गज ३ इच के बराबर होता है। दूसरे शब्दो मे १ गज ०९१ मीटर के।

ईकाई का पैमाना

आम, नीबू, केला आदि वस्तुओ को गिनने मे निम्नलिखित पैमाना का व्यवहार किया जाता है।

१२ अदद या ईकाई	१ दजन
१२ दर्जन	१ ग्रोम या ग्रूस
५ अदद	१ गाही
२० अदद	१ कोडी
१०० अदद	१ सैकडा

बनारस आदि शहरो मे आम, नीबू आदि वस्तुओ की बिक्री सैकडा के हिसाब से की जाती है। परन्तु यह सैकडा एक सौ (१००) के बदले मे १३० अदद का होता है।

गाँवो मे जो स्त्रियाँ एक से लेकर सौ तक की गिनती नही जानती वे अपने आम, नीबू, उपले आदि गाही (५) के हिसाब से ही गिनकर लेती है। इस प्रकार बीस गाही गिनने पर उनका सैकडा पूरा हो जाता रे।

(६) परिच्छेद

आदान-प्रदान के साधन

अत्यन्त प्राचीन काल मे जब मुद्राप्रणाली का आविष्कार नही हुआ था उस समय तत्कालीन लोगो मे आदान-प्रदान का साधन विनिमय था। वैदिक काल मे यह साधन गौ थी। जिसके पास अधिक गौवे होती थी वही व्यक्ति धनिक माना जाता था। गौ को देकर दूसरी वस्तुओ का क्रय किया जाता था। इसके पश्चात् अन्न से अन्न का विनिमय किया जाता रहा। यह प्रथा आदिम जातियो तथा जन जातियो मे आज भी प्रचलित है।

भोजपुरी-प्रदेश मे आदान-प्रदान-विनिमय की यह प्रथा गाँवो मे अभी हाल तक प्रचलित थी। गाँव की स्त्रियाँ चावल, चना आदि अन्नो को देकर इसके बदले मे अपने बच्चो के लिए मिठाई आदि खरीदा करती थी। यदि किसी स्त्री के घर मे चावल नही होता था तो वह गेहूँ देकर चावल उसके बदले मे ले आती थी। इसी प्रकार से चना को देकर दाल और धान को देकर नमक दही, दूध आदि बदले मे लिया जाता था। इन अन्नो के विनिमय की दर क्या थी यह कहना तो बडा कठिन है परन्तु यह एक सामान्य नियम था कि जितना अन्न दिया जाता था उसके बदले मे उतना ही दूसरा अन्न मिलता था। अर्थात यह विनियम का दर बराबरी का था। गाँव के व्यापारी तथा बनिया इस विनिमय की प्रणाली से भोली भाली स्त्रियो को बडा ठगा करते थे। इन पक्तिया के लेखक ने एक बार देखा कि एक दही बेचने वाली जितना दही देती थी उसके बदले मे उतना ही धान उस घर-वाली से ले लिया करती है जबकि दही का दाम सस्ता, दो पैसे सेर था। इस प्रकार दही और धान दोनो के विनिमय का दर बराबर थे।

परन्तु जब से अन्न अधिक महँगा हो गया तब से अन्नसे विनिमय की प्रणाली जाती रही है। अब समी वस्तुये पैसा ओर रुपया के माध्यम से ही प्राप्त की जाती हे।

इस प्रदेश मे जो मुद्रा-प्रणाली पहिले प्रचलित थी उसका उल्लेख अगले पृष्ठो मे किया जाता है। इसके पश्चात् स्वतत्र भारत मे इस प्रणाली मे जो परिवतन किया गया हे उसका सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

सिक्का

भोजपुरी प्रदेश मे पहिले मुद्रा की जो प्रणाली प्रचलित थी उसमे रुपया, आना, पाई का प्रयोग होता था। इस प्रणाली की सबसे छोटी ईकाई पैसा था और सबसे बडी ईकाई रुपया था। चार पैसे का एक आना होता था और सोलह आने का एक रुपया होता था। इस प्रकार एक रुपया मे चोसठ पैसा होता था। इसके अतिरिक्त पाई का भी प्रचलन था जो १ पैसा मे तीन पाई होती थी। इस प्रकार एक आना मे बारह पाई का समावेश होता था। परन्तु इस पाई—जो अग्रेजी पाई के नाम से प्रसिद्ध थी—का व्यावहारिक रूप से प्रचलन बहुत कम था। बल्कि नही के बराबर था। यह केवल सरकारी कार्यालयो मे कागजी हिसाब-किताब के प्रयोग मे ही लाई जाती थी। यह पाई—जो एक पैसे मे तीन होती थी—पैसे से आकार-प्रकार मे बहुत छोटी होती थी। दो पैसे का भी एक सिक्का होता था जो एक पैसे के आकार से प्राय दुगुना मोटा और बडा होता था परन्तु व्यवहार मे इसका प्रयोग विशेष नही था। एकन्नी नामक सिक्के मे चार पैसे होते थे जो आकार मे गोली होती थी। दुअन्नी और चवन्नी शुद्ध चादी की बनी हुई थी जिसका आकार एकन्नी से छोटा था। अठन्नी ५० पैसे की आकृति मे गोली थी। रुपया आकार मे अठन्नी से भी बडा और गोला था। इन राजकीय मुद्राओ के अतिरिक्त इस प्रदेश मे एक स्थानीय सिक्का भी प्रचलित था जिसे 'ढेबुआ' कहा जाता था। यह पैसा के ही मल्य के बराबर होता था परन्तु आकार मे चौकोर तथा चपटा था। समवत गोरखपुर मे इसका प्रचार अधिक होने के कारण इसे 'गोरखपुरी ढेबुआ' की भी सज्ञा प्राप्त थी। इस ढेबुआ का बहुत दिनो तक प्रचार था। परन्तु इस पर राजकीय मुहर न होने के कारण अवैध रूप से लोगो ने इसका निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया। अत ब्रिटिश सरकार ने इसका प्रचलन कानून द्वारा बन्द कर दिया।

ब्रिटिश शासन के दिनो मे छोटी दुअन्नी और चवन्नी शुद्ध चाँदी की बनी होती थी। महारानी विक्टोरिया के समय मे प्रचलित रुपयो मे चाँदी की मात्रा अत्यधिक होती थी। जब कालान्तर मे रुपये मे चाँदी की कमी होने लगी तब विक्टोरिया के रूपयो का लोग तस्कर व्यापार करने लगे थे। कुछ वर्षों के पश्चात् दुअन्नी और चवन्नी मे दरब (Alloy) की मात्रा अधिक होने लगी और इसके आकार मे भी परिवर्तन हो गया। स्वाधीनता के पहिले और कुछ दिनो बाद तक जो सिक्के प्रचलित थे वे इस प्रकार थे।

प्रचलित सिक्के

सिक्के का नाम		धातु-विशेष
१ पैसा	लघुतम ईकाई	ताम्बा का बना
४ ,,	१ इकन्नी	गिलट
८ ,,	१ दुअन्नी	चाँदी
१६ ,,	१ चवन्नी	चाँदी
३२ ,,	१ अठन्नी	गिलट
६४ ,,	१ रुपया	चाँदी ! दरब

एक पैसा मे तीन अग्रेजी पाई होती थी। इस प्रकार एक आने मे बारह पाई का समावेश था। परन्तु इसके आगे के सिक्के एकन्नी, दुअन्नी मे कोई अन्तर नही था।

उस समय जो नोट प्रचलित थे वह एक, दो, पाँच, दस, सौ, हजार, और दस हजार रूपयो के मूल्य के होते थे। एक रुपये की नोट से दस और सौ के नोट का आकार बडा होता था। इन नोटो पर ब्रिटेन के तत्कालीन बादशाह की आकृति छपी रहती थी तथा यह राजकीय प्रतिज्ञा भी मुद्रित होती थी कि "अमुक नोट के धारक को किसी भी सरकारी खजाने से उतने ही मूल्य की अदायगी सिक्को मे की जायेगी।"

परन्तु स्वतन्त्रता की प्राप्ति के पश्चात जिस प्रकार से हमारी राष्ट्रीय सरकार ने बाट और नाप मे परिवर्तन कर दिया उसी प्रकार इस मुद्रा प्रणाली मे भी आमूल परिवर्तन स्थापित किया गया। पहिले मुद्रा प्रणाली का आधार रूपया, आना और

पाई था परन्तु इस भारतीय प्रणाली को यूरोप दाशमालविक मुद्रा पद्धति से समानता करने के लिए तथा इसमे एकरूपता लाने के लिए 'आना' को हटाकर केवल रुपया और पैसा ही प्रधान सिक्का स्वीकार किया गया। नयी मुद्रा प्रणाली के अनुसार अब एक रुपया एक सौ पैसा के बराबर माना जाने लगा है जबकि पुरानी पद्धति के अनुसार चौसठ पैसे का एक रुपया होता था। अब मुद्रा की सबसे छोटी इकाई पैसा है जिसे पहिले कुछ वर्षों तक नया पैसा कहा जाता था। अधिकतम ईकाई रुपया है। अब १० रुपयो और २० रुपयो का भी एक सिक्का होने लगा है जो पहिले नही था। अब नोटो पर केन्द्रीय सरकार की राजकीय मुद्रा—अशोक स्तम्भ तथा चार सिह छापा जाता है। आजकल के प्रचलित सिक्के निम्नांकित है।

१ पैसा—लघुतम इकाई—रुपये का (१।१०० भाग
२ पैसा—रुपये का १।५० भाग
५ पैसा—रुपये का १।२० भाग
१० पैसा—रुपये का १।१० भाग
२५ पैसा—रुपये का १।४ भाग
५० पैसा—रुपये का १।२ भाग
१०० पैसा—एक रुपया

• •



अध्याय १६

धार्मिक जीवन

(१) परिच्छेद

लोक देवी और देवता

भोजपुरी जनता का जीवन धम से ओत-प्रोत है। उसके जीवन की मूल भित्ति धम है। इसी के ऊपर इनका जीवन आश्रित है। भोजपुरी प्रदेश मे अनेक देवी और देवता उपलब्ध है जिनकी पूजा बडी श्रद्धा से की जाती है। इन देवताओ को दो श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है (१) पौराणिक देवता (२) लोक देवता।

पौराणिक देवता वे है जिनकी पूजा और अर्चा का विधान पुराणो मे उपलब्ध होता है जैसे राम, कृष्ण और शिव आदि। परन्तु लोक देवता उन्हे कहते है जिनका प्राचीन ग्रन्थो मे उल्लेख नही पाया जाता। परन्तु जनता मे वे बडे ही लोकप्रिय है जैसे क्षेत्रपाल। कुछ देवता ऐसे भी है जिनका पुराणो मे किम्बा वेदो तक मे वणन पाया जाता है परन्तु जनता मे भी उनकी पूजा अक्षुण्ण रूप से होती चली आ रही है जैसे गणेश। इसी प्रकार कुछ लोक-देवियो की भी पूजा गाँवो मे हुआ करती है। इन पर ग्रामीण जनता की बडी आस्था है। ऐसी देवियो मे सतोषी माता, काली माई आदि प्रसिद्ध है।

(१) अनुच्छेद—(क) देवता की पूजा

भोजपुरी प्रदेश मे अनेक देवी और देवताओ की पूजा की जाती है। हनुमान्, गणेश आदि ऐसे अनेक देवता है जो गाँवो मे अत्यन्त लोक-प्रिय है और इनकी पूजा-अर्चा का विधान प्रत्येक शुभ अवसर पर किया जाता है। ग्रामीण क्षेत्र मे प्रसिद्ध लोक देवताओ (Folk gods) के नाम निम्नाकित है।

(१) हनुमान् (२) गणेश (३) भैरव (४) शिव आदि।

इन देवताओ का वर्णन यहाँ क्रमश सक्षिप्त रूप मे प्रस्तुत किया जाता है।

(१) हनुमान्—भोजपुरी प्रदेश की जनता के सबसे प्रधान देवता हनुमान् है। ये महाबलशाली है अत इन्हे 'महावीर' भी कहा जाता है। हनुमान् की माता का नाम अजनि और पिता का नाम वायु या पवन है—अजनि पुत्र, पवन सुत नामा। ये भगवान् रामचन्द्र के अत्यन्त भक्त हैं। अतएव राम के मदिरो मे हनुमान् की मूर्ति भी पायी जाती है। परन्तु हनुमान् की पूजा पृथक रूप मे भी की जाती है। यो तो हनुमान् के अनेक मदिर गाँवो मे पाये जाते है परन्तु इनके तीन मदिर अत्यन्त प्रसिद्ध है।

(१) वाराणसी मे सकट-मोचन का मदिर

(२) प्रयाग मे सगम पर स्थित मदिर

(३) अयोध्या मे हनुमान्-गढी का मदिर

वाराणसी नगर मे लका के पास स्थित सकट मोचन का मदिर अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस मदिर की स्थापना गोस्वामी तुलसीदास जी ने आज से चार सौ वर्ष पहले की थी। यहाँ शनिवार और मगलवार को बडी भीड एकत्रित होती है। मगल हनुमान जी का जन्म दिन माना जाता है। अत इस दिन विशेष रूप से यहाँ दर्शनार्थियो का ममद होता है। हनुमान् जी का मोदक अर्थात् लड्डू बहुत प्रिय है—

मोदक-प्रिय मुद मगल दाता।
विद्या वारिधि बुद्धि विधाता॥

अत दशनार्थी हनुमान् जी को लडडू चढाते है। कुछ लोग मनोती मानते हे और अपनी का ना की पूर्ति होने पर लड्डू चढाते है। दुर्गा जी के मदिर के पास वनकटी हनमान् का मदिर है। ऐसी प्रसिद्धि है कि लगातार चालीस दिनो तक इस हनुमान् का दशन करने से मनोकामना की अवश्यमेव सिद्धि होती है।

हनुमान् का दूसरा मदिर प्रयाग मे सगम के पास स्थित है। हनुमान की प्राय सभी मूर्तियाँ खडी मुद्रा मे स्थित पायी जाती है परन्तु यहा पर हनुमान की मर्ति जमीन पर सोयी हुई मुद्रा मे उपलब्ध होती है। जो कोई यात्री सगम पर स्नान करने के लिए आते हे वे सभी हनुमान् का दशन इस मदिर मे करते हे। अयोध्या मे हनुमान गढी मे रामनवमी के दिन वडी भीड होती है। इस दिन लाखो व्यक्ति सरयू मे स्नान कर हनुमान् जी के दशन के लिए आते हे और उनका प्रिय प्रसाद 'लड्डू' चढाते है। 'जय महावीर जी की' तथा 'जय हनुमान् जी की' गगनभेदी ध्वनि से सारा वायुमण्डल गूँज उठता है।

हनुमान् की मूर्ति का निर्माण ठोस पाषाण की एक ही शिला से किया जाता है। यह मूर्ति पुरुष-प्रमाण से बडी ओर विशाल होती है। इस मूर्ति मे तेल और सिन्दूर को मिलाकर उसका लेप किया जाता है। इस प्रकार हनुमान् की मूर्ति लाल होती है। भक्त जन इसी सिन्दूर का टीका लगाते ह। हनुमान बन्दरो के राजा माने जाते हे। अत इनकी मानवाकृति मे पूछ की भी रचना की जाती है जो बडी विशाल होती है। उनकी आकृति का बडा सुन्दर वणन इस पद्य मे किया गया हे—

"लाल देह लाली लसे, अरु धरि लाल लँगूर।
वज्रदेह, दानव दलन, जय, जय, जय, कपिसूर॥

चूकि हनुमान् शक्ति के देवता हे और वल के प्रतीक माने जाते है अत अपनी रक्षा के अवसर पर अथवा किसी सकट के समय भक्तजन जय हनुमान् जी की' 'जय वजरगबली की' का गगनभेदी जयघाष करते है।

चूकि हनुमान् शक्ति के देवता माने जाते है, अत गावो के प्रत्येक अखाडो पर इस देवता की मूर्ति स्थापित की जाती है तथा 'एकरगा' के कपडे की बनी हुयी लाल पताका गाडी जाती है जिसे 'महावीर जी का झडा' कहते हे। मगलवार के दिन ग्रामीण जनता मोटी रोटी को पका कर उसमे गुड मीस कर—जिसे रोट कहते है—इस देवता को चढाती है। बहुत से लोग अपनी मनोकामना की पूर्ति होने पर सवा सेर, या सवा पसेरी का रोट भगवान् को चढाते है और उसे भक्तजनो मे वितरण करते हे जिसे 'प्रसाद' कहा जाता है। गॉवो मे महावीर जी के जन्म के दिन 'महावीरी झडा' निकाला जाता है जिसमे हजारो की सख्या मे लोग सम्मिलित होते है। इस दिन ये लोग गदा और मुग्दर भाँजते है और बनेठी भाँजते है। चूकि भोजपुरी भूमि वीर-प्रसू है और यहाँ की जनता वीरता-प्रिय है अत शौय और शक्ति के प्रतीक हनुमान् इनके इष्टदेव है यह स्वाभाविक ही है।

हनुमान् जी वानरराज माने जाते है। अत उनके सबध के कारण जनता साधारण बन्दरो को भी सम्मान की दृष्टि से देखती है। वाराणसी मे दुर्गा जी के मदिर को 'मकी टेम्पुल' कहा जाता है जहाँ सैकडो की सख्या मे बन्दर पाये जाते है। ये इतने धृष्ट और उद्दण्ड है कि यात्रियो की गठरी को उनसे छीनकर भाग जाते है। भक्तगण इन्हे चना और गुड खिलाते है। अयोध्या की हनुमान् गढी के मदिर मे भी यह दृश्य देखा जा सकता है। हनुमान् के गण होने के कारण वन्दरो को मारना पाप समझा जाता है।

अनेक लोक हनुमान् की आकृति को गृह के प्रधान द्वार की भित्ति पर चित्रित करते है। लोगो का यह विश्वास है कि शक्ति के देवता होने के कारण महावीर जी गृह की रक्षा करते है। महाराष्ट्रराज्य मे प्राय प्रत्येक गॉव मे हनुमान की मूर्ति स्थापित पायी जाती है जिसे 'ग्राम मारुति' कहते है।

हनुमान की स्तुति के रूप मे ग्रामीण जनता महावीर जी के मन्दिर मे 'हनुमान् चालीसा' का पाठ करती है। जो लोग सस्कृत के विद्वान् है वे तो मारुति स्तोत्र का पाठ करते है परन्तु अनपढ के लिए चालीस पद्यो की यह पुस्तक ही उनके लिए स्तोत्र ग्रन्थ है। 'हनुमान चालीसा' मे हनुमान् की आकृति, स्वभाव और गुणो का बडी सरल भाषा मे वणन किया गया है इसके साथ ही उनके पराक्रम का भी बडी ओजस्वी भाषा मे विवरण पाया जाता है। इसके कुछ प्रसिद्ध पद्य निम्नाकित है जिनका पाठ हनुमान् के दर्शन के समय किया जाता है—

"जय हनुमान ज्ञान गुन सागर,
जय कपीश तिहुँलोक उजागर।
राम दूत अतुलित बलधामा,
अजनि पुत्र पवन सुत नामा॥१॥

महावीर विक्रम बजरंगी,
कुमति निवार सुमति के संगी।
कंचन बरन बिराज सुबेसा,
कानन कुण्डल, कुंचित केसा॥२॥

अब उनके पराक्रम का वर्णन इस प्रकार है—

भीम रूप धरि, असुर सँहारे,
रामचन्द्र के काज सँवारे॥३॥

(२) **गणेश**—भगवान् गणेश बहुत ही लोकप्रिय देवता हैं। सभी मांगलिक कार्यों में गणेश की पूजा सर्वप्रथम की जाती है। क्या यज्ञोपवीत और क्या विवाह, क्या सत्यनारायण की कथा और क्या त्रिलोकीनाथ की पूजा—इन सभी अवसरों पर गणेश जी की पूजा अनिवार्य रूप से की जाती है। कहने का आशय यह है कि कोई भी ऐसा मंगल का अवसर नहीं होता जब गणेश जी की पूजा न की जाती हो।

भगवान् गणेश विघ्नों के नष्ट करने वाले देवता माने जाते हैं। उनकी पूजा करने से आने वाली विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और आरम्भ किया हुआ कार्य सफलतापूर्वक समाप्त होता है। इन्हें 'विघ्नेश्वर' माना गया है। यही कारण है कि गणेश की पूजा प्रथम कर्तव्य माना जाता है।

गणेश जी का पेट बहुत बड़ा तथा आगे निकला हुआ है। इसीलिए इन्हें 'तुन्दिल' कहा जाता है। मुँह के स्थान में ये हाथी के सूँड को धारण करते हैं। अतएव इन्हें 'गजानन' भी कहा जाता है। हनुमान् की भाँति इनके शरीर में लाल सिन्दूर लगाया जाता है जिससे इनकी आकृति लाल दिखाई पड़ती है। वायु-पुत्र की तरह इन्हें भी लड्डू बहुत ही प्रिय है। इसीलिए भक्तगण इनका दर्शन करके इन्हें लड्डू का प्रसाद चढ़ाते हैं। माघ शुक्ल चतुर्थी—जिसे गणेश चतुर्थी कहते हैं—को गणेश जी की विशेष रूप से पूजा की जाती है। काशी में लोहटिया मुहल्ले में 'बड़ा गणेश' का मंदिर है। इस दिन इस देवता के दर्शन के लिए हजारों दर्शनार्थियों की भीड़ एकत्रित होती है और अपनी श्रद्धा के रूप में इन्हें पुष्प और मिष्ठान्न अर्पित करते हैं। महाराष्ट्र में गणेश चतुर्थी के दिन सार्वजनिक उत्सव मनाया जाता है। जहाँ छात्र व्यायाम का प्रदर्शन करते हैं तथा विद्वानों के भाषण होते हैं। यों तो गणेश का मंदिर प्रायः प्रत्येक नगर में पाया जाता है परन्तु मध्य प्रदेश के उज्जैन में बड़ा गणेश का मंदिर बड़ा प्रसिद्ध है। इस मंदिर में गणेश की बड़ी विशाल प्रतिमा स्थापित है जो ऊँचाई में बीस फीट से भी अधिक है।

यह किम्बदन्ती है कि एक बार देवताओं में यह विवाद छिड़ गया कि सर्वश्रेष्ठ देवता कौन है। यह निश्चय हुआ कि जो संसार की परिक्रमा सबसे पहिले कर लेगा वही सर्वश्रेष्ठ देवता माना जायेगा। सभी देवता अपने 'मिशन' पर निकल गये। गणेश जी 'तुन्दिल' होने के कारण पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने में असमर्थ थे। अतः इन्होंने अपने माता और पिता—शिव-पार्वती की प्रदक्षिणा की। चूँकि माता-पिता की प्रदक्षिणा का महत्त्व संसार की प्रदक्षिणा से भी अधिक है अतः गणेश जी ही सर्वश्रेष्ठ घोषित किये गये। यही कारण है कि सभी मांगलिक कार्यों में सर्वप्रथम गणेश की ही पूजा की जाती है।

गणेश जी का वाहन चूहा है। जिसकी आकृति की स्थापना इनकी मूर्ति के पास की जाती है। गणेश का अर्थ गणों का स्वामी है। अतः ये देवताओं में मुख्य माने जाते हैं। गणेश जी धन, ऐश्वर्य, लाभ के भी देवता हैं। अतः व्यापारी लोग अपनी दूकान में गणेश की प्रतिमा रखते हैं तथा अपनी बहियों पर 'श्रीगणेशाय नमः' लिखते हैं। दीपावली के दिन गणेश और लक्ष्मी की प्रतिमा का पूजन विशेष रूप से किया जाता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि ऐसा करने से घर में लक्ष्मी का आगमन होता है।

(३) **शिव**—ब्रह्मा, विष्णु और महेश हिन्दू धर्म की प्रसिद्ध त्रयी है जिनका कार्य क्रमशः संसार की सृष्टि, पालन तथा नाश करना है। इनमें महेश ही शिव के नाम से प्रसिद्ध हैं। शिव का शाब्दिक अर्थ मंगल या कल्याण है। इस देवता के दो रूप हैं (१) शिव तथा (२) रुद्र। इनका शिवस्वरूप मंगल दायक तथा कल्याणकारी है तथा रुद्ररूप भयानक तथा विनाश करने वाला है।

भोजपुरी क्षेत्र में इस देवता के शिव रूप की ही पूजा की जाती है। कदाचित् ही ऐसा कोई भोजपुरी गाँव हो जिसमें शिव का मंदिर न पाया जाता हो। ग्रामीण जनता प्रातःकाल स्नान कर शिव के मंदिर में जाती है और 'हर हर महादेव शम्भो' के मंत्र का उच्चारण कर शिव जी की प्रतिमा पर एक लोटा जल चढ़ाती है। चन्दन, पुष्प, गंध और दीप से इनकी पूजा की जाती

है। शिव जी का दूसरा नाम 'आशुतोष' है अर्थात् ये शीघ्र ही प्रसन्न होकर भक्तो की मनोकामना की पूर्ति करते है। इसलिए सर्वसाधारण जनता बडे प्रेम से इनकी पूजा करती है। वृषभ या बैल इनका वाहन है। अत प्रत्येक मदिर मे इनके वाहन नन्दी की प्रतिमा पायी जाती है। फाल्गुन शुक्ल चतुर्दशी को महाशिवरात्रि का व्रत होता है। इस दिन शिव की पूजा-अर्चना का विशेष महत्त्व माना जाता है। काशी मे विश्वनाथ जी के मदिर मे भगवान शिव के दर्शन के लिए अपार भीड होती है। बिहार राज्य के भोजपुर जिले मे 'बरहपुर' नामक स्थान मे इस अवसर पर बडा भारी मेला लगता है जहा लाखो की सख्या मे लोग गगा मे स्नान कर भगवान् शिव का दर्शन करते है।

(४) **भैरव**—यह एक लोकप्रिय देवता है जो नगर के रक्षक माने जाते है। काशी मे कालभैरव का मदिर बहुत प्रसिद्ध है। ये वाराणसी नगर के कोतवाल है और काशी मे आनेवाले तथा यहा के निवासियो की रक्षा करते है। अत काशी मे तीर्थयात्रा के लिए आनेवाले प्रत्येक यात्री का यह कर्तव्य होता है कि वह सर्वप्रथम भैरव जी का दर्शन करे। ये लोगो की रक्षा करने के लिए अपने हाथ मे दण्ड (डण्डा) लिये रहते है। अत इन्हे 'दण्डपाणि' भी कहा जाता है। भैरव जी का वाहन कुत्ता है। जैसे शिव के मदिर मे उनके वाहन नन्दी की मूर्ति स्थापित की जाती है उसी प्रकार से भैरव के मदिर मे उनके वाहन कुत्ते की प्रतिमा भी रहती है। काशी के काल भैरव के मदिर के प्रधान द्वार पर कुत्ता बैठा रहता है जिसे लोग मिष्ठान्न खिलाते है।

जो लोग प्रेत-बाधा से पीडित रहते है उनकी झाड-फूक भी इस मदिर मे की जाती है। पुजारी लोग उन्हे गले मे पहिनने के लिए एक काला गण्डा देते है। इसके साथ ही मोर के पखो से बने हुए डण्डो से उनकी पीठ को थपथपाते है। ऐसा करने से यह विश्वास किया जाता है कि प्रेत बाधा दूर हो जाती है। छोटे बच्चो को भैरव जी का 'गण्डा' पहिनाया जाता है जिससे उन्हे नजर न लगने पाये। उनको विभूति (भस्म) भी लगायी जाती है। इस प्रकार भैरव का गण्डा तथा विभूति मनुष्य की रक्षा का अनन्य साधन माना जाता है।

भैरव की मूर्तिया अनेक रूपो मे पायी जाती है —

(१) काल भैरव (२) दण्डपाणि भैरव (३) लाट भैरव (४) बटुक भैरव। (५) नन्द भैरव (६) भूत भैरव (७) आस भैरव।

दण्डपाणि भैरव का मदिर काल भैरव के पास मे ही स्थित है जहाँ हाथ मे दण्ड लिए हुये इनकी मूर्ति स्थापित है।

लाट भैरव की प्रतिमा बनारस सिटी स्टेशन से सारनाथ को जानेवाली सडक पर है। बटुक भैरव का मदिर कमच्छा मुहल्ले मे सेण्ट्रल हिन्दू स्कूल के पास मे है। इसमे भैरव जी की प्रतिमा बालरूप मे अवस्थित है। इस देवता का दूसरा स्वरूप 'नन्द भैरव' है जिसमे कृष्ण और नन्द की कथा का सकेत मिलता है। भूत भैरव भूत-प्रेतो के देवता है। वे राक्षस, पिशाच तथा अन्य प्रेतात्माओ को दूर भगाते है।

भैरव शब्द का अर्थ भयानक है। चूकि ये प्रेत योनियो को प्राप्त भूत-प्रेतो को भगा देते है अत इनका नाम सार्थक है। भैरव की सहधर्मिणी 'भैरवी' की देवी के रूप मे पूजा की जाती है। तान्त्रिक पूजा मे 'भैरवी' का विशिष्ट स्थान माना जाता है जो तान्त्रिको की अधिष्ठातृ देवी है।

भैरव की पूजा दूध और मिष्ठान्न के द्वारा की जाती है। यो तो इनका दर्शन प्रत्येक दिन किया जाता है परन्तु रविवार के दिन इनके दर्शन का विशेष महत्त्व माना जाता है।

(५) बाबा सत्यनारायण

बाबा सत्यनारायण—जिसे गावो मे 'सत नरायन' कहा जाता है—ग्रामीण जनता के अत्यन्त लोकप्रिय देवता है। प्रत्येक मागलिक अवसरो—जैसे यज्ञोपवीत, विवाह, गवना आदि—पर सत्यनारायण की कथा का होना आवश्यक है। यदि कोई व्यक्ति बीमार पड गया तो नीरोग होने के लिए, यदि कोई विपत्ति आ गयी तो उसके निराकरण के लिए, सत्यनारायण बाबा की मनौती मानी जाती है। इतना ही नही बल्कि पुत्र जन्म के अवसर पर, मुकदमा जीतने पर, परीक्षा मे उत्तीर्ण होने पर, मनौती के रूप मे इनकी कथा 'कहवायी' जाती है।

इस कार्य के लिए गाँव के कुलगुरु अथवा पुरोहित जी बुलाये जाते है। वे अपनी पोथी लेकर आते है और इस पूजा के लिए आवश्यक सामग्री जुटाने का आदेश देते है। भगवान्—ठाकुर जी—को स्नान कराने के लिए पचामृत—जिसे दही, कच्चा दूध, घी, मधु और चीनी को मिलाकर तैयार किया जाता है—बनाया जाता है। कथा के पश्चात् भक्तो मे प्रसाद के रूप मे वितरण करने के लिए आम, अमरूद, केला, पनजीरी, भूना हुआ आटा, 'रोट' आदि बनाकर रख देते हैं। हवन के लिए धूप, जौ, तिल,

घी, गुड आदि सामग्री जुटायी जाती है। इन समस्त वस्तुओं के एकत्रित हो जाने के पश्चात् पण्डित जी कथा प्रारम्भ करते है। यह कथा दो से कही जाती है—पारायण तथा अर्थसहित। संस्कृत में लिखी गयी सत्यनारायण की कथा को केवल बाच देने को 'पारायण' कहा जाता है। परन्तु संस्कृत के श्लोकों को पढकर भक्तो को उसका अर्थ समझाने को अर्थ सहित कथा बाचना कहते है। पुरोहित जी जब एक अध्याय कथा कह चुकते है तब शख बजाया जाता है। यह क्रम कथा के अन्त (पाचवे या सातवे अध्याय) तक जारी रहता है। भक्तजन हाथ जोड कर कथा सुनते रहते है।

कथा की समाप्ति के पश्चात आरती होती है। आरती लेने के साथ ही भक्तजन पैसा भी देते है। इसके बाद हवन होता है और अन्त मे प्रसाद वितरण के पश्चात कथा समाप्त हो जाती है।

सत्यनारायण की कथा मे सत्य को ही देवता माना गया है। सत्य को ही भगवान्—नारायण के रूप मे पूजा जाता है। इनकी पूजा-अर्चा प्रत्येक घर मे की जाती है। सक्षिप्त रूप मे सत्यनारायण की कथा इस प्रकार है जिसमे सत्य तथा आस्था (निष्ठा या श्रद्धा) पर विशेष जोर दिया गया है।

(६) बाबा त्रिलोकीनाथ

हिन्दू धर्म एक प्रगतिशील धर्म है जिसमे नये-नये देवी-देवताओ की सृष्टि भी हुआ करती है। खोखी मइया और पिलेग मइया की चर्चा अन्यत्र की जा चुकी है। बाबा त्रिलोकीनाथ हिन्दू देवता मडल (Pantheon) के सबसे नये 'रिक्रूट' है। पिलेग मइया की ही भाति यह भी एक नये देवता है जिनकी पूजा का प्रचलन अब गावो मे बढता जा रहा है। पहिले ग्रामीण क्षेत्रो मे सत्यनारायण बाबा की कथा प्रचलित थी जिसमे प्रसाद के रूप मे केला, अमरूद, आम, पनजीरी, मिठाई आदि की आवश्यकता पडती थी। इसके अतिरिक्त 'ठाकुर' जी को स्नान कराने के लिए 'पचामृत'—दूध, दही, घी, चीनी और मधु का भी प्रबन्ध करना पडता था। इसके अतिरिक्त कथावाचक को कुछ दक्षिणा भी देनी पडती थी। निर्धन व्यक्ति के लिए इन साधनो को जुटाना कठिन था। अत इन्ही खर्चीले विविध-विधानो के सरलीकरण के बाबा त्रिलोकीनाथ का जन्म या सृष्टि हुई है।

बाबा त्रिलोकीनाथ की कथा मे किसी भी विधि-विधान को करने की आवश्यकता पडती है। इस कथा को कोई भी साधारण वित्त का व्यक्ति अपने घर कहवा सकता है। इनकी कथा मे न तो चरणामृत की आवश्यकता पडती है और न प्रसाद की। कथा कहनेवाले व्यक्ति को भी दक्षिणा के रूप मे कुछ देने की आवश्यकता नही पडती। बाबा त्रिलोकीनाथ पूर्णतया लोक देवता (Folk God) है। अत उनकी पूजा मे केवल तीन पैसा (आजकल महगी के समय मे केवल पाँच पैसा) खर्च करने से ही पूजा की आवश्यकीय सामग्री की पूर्ति की जा सकती है। इसमे से एक पैसे का गाँजा, एक पैसे का बताशा और एक पैसे का धूप खरीद कर इनकी पूजा की जाती है। बाबा त्रिलोकीनाथ को गाँजा बहुत ही प्रिय है अत इनकी कथा मे गाँजा का होना परम आवश्यक है। कोई भी व्यक्ति आठ-दस मिनट मे इनकी कथा कह सकता है। पहिले इनकी कथा मौखिक ही हुआ करती थी परन्तु अब तो पोथी भी छप गयी है जिसे पढकर इनकी कथा सुनायी जाती है। गाँवो मे सत्यनारायण बाबा की कथा का स्थान त्रिलोकीनाथ की कथा लेती जा रही है। इसका प्रधान कारण आर्थिक है। जब तीन पैसा मे काम चल जाता है तब तीन रुपया कौन खर्च करे?

(२) अनुच्छेद—दुर्गा

वर्ष भर मे दो बार नवरात्र मनाया जाता है। आश्विन शुक्ल तथा चैत्र शुक्ल प्रतिपद् से लेकर नवमी तक को नवरात्र कहा जाता है। इन दिनो मे दुर्गा जी की पूजा का बडा महत्त्व समझा जाता है। इनमे भी शारदीय नवरात्र की विशेष महत्ता है। इन दिनो दुर्गा जी का दर्शन, पूजा विशेष रूप से की जाती है। दुर्गा जी के नव स्वरूप है—नव दुर्गा प्रकीर्तिता। काशी मे इन सभी नवो दुर्गा के मदिर भिन्न-भिन्न मुहल्लो मे स्थित है जिनका दर्शन करना पुण्य कारक माना जाता है। कुछ लोग इन नौ दिनो तक प्रतिदिन 'दुर्गा सप्तशती' का पाठ करते है। ये दुर्गाकुण्ड पर अवस्थित दुर्गा जी के मदिर अथवा अन्नपूर्णा के मदिर मे जाकर कीले, कवच के साथ 'सप्तशती' का पारायण करते है। यदि किसी विशेष अभिप्राय से यह पाठ किया जाता है तो किसी मत्र-विशेष से दुर्गा सप्तशती के 'सम्पुट' पाठ करने का विधान है। विन्ध्याचल मे स्थित विन्ध्यवासिनी के मदिर इन पाठ करने वालो की भयकर भीड एकत्रित होती है जहाँ बैठने के लिए भी स्थान नही मिलता।

जो लोग संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ होने के कारण स्वय पाठ करने मे असमर्थ है वे किसी पण्डित के द्वारा पाठ करवाते है। इसके लिए वे उस पण्डित को प्रतिदिन भोजन कराते है और पाठ की समाप्ति पर उसे दक्षिणा प्रदान करते है। इस प्रकार पण्डितो के द्वारा पाठ करवा कर लोग अपने अभीष्ट अर्थ की सिद्धि करते है। चैत्र के शुक्ल पक्ष मे दुर्गा पाठ किया जाता है परन्तु वह इतना महत्त्वपूर्ण नही माना जाता।

(ख) लोक देवी की पूजा

ग्रामीण क्षेत्र मे अनेक देवी ओर देवताओ की पूजा प्रचलित है जिनमे काली माई, गगा माई, मीनला माई, सन्तोषी माई और सामे माई आदि अधिक प्रसिद्ध है।

(१) काली माई—भोजपुरी प्रदेश की यह सबसे प्रसिद्ध देवी है, जिनकी पूजा प्राय प्रत्येक गाव मे आर प्रत्येक घर मे की जाती है। ये 'दुर्गा' के नाम से भी जानी जाती हे। पुराणो मे दुर्गा का महिषासुरमर्दिनी के रूप मे वणन किया गया है। ये अपने भक्तो की रक्षा करने के लिए सदा उद्यत रहती है। ये बडे से बडे भयकर राक्षसो का बध कर भक्तजनो का उद्धार करती है। दुर्गा का मदिर प्राय प्रत्येक गाव मे पाया जाता है। इनकी प्रतिमा मे आठ भुजाएँ होती है जिनमे राक्षसो के काटे गये मुण्डो को ये धारण करती है। इसीलिए इनका नाम 'अष्ट भुजा' देवी है। मिर्जापुर जिले मे विध्याचल के पास पहाड पर अष्टभुजा देवी का प्रसिद्ध मदिर है जहा नवरात्र के दिनो मे लाखो की मख्या मे यात्री दर्शन के लिए जाते हैं। कही-कही दुर्गा की मूर्ति दो भुजाओ वाली भी पायी जाती है। विन्ध्याचल मे गगा के तट पर 'विन्ध्यवासिनी' देवी के सुप्रसिद्ध मदिर मे ऐसी ही प्रतिमा स्थापित है। आश्विन तथा चैत्र मास के दोनो नवरात्रो मे यहा दशनार्थियो की भीड हाती है। कितने भक्त गण अपनी मनोकामना की सिद्धि के लिए देवी के मदिर मे बकरा की बलि देने की मनौती भी मानते है। अत नवरात्र के दिनो मे विन्ध्यवासिनी के मदिर मे पशुबलि चढाने का दश्य देखा जा सकता है। लोगो की ऐसी धारणा है कि बलि चढाने से देवी स्तुष्ट होती है। इसी भावना से प्रभावित होकर यहाँ बलि का विधान किया जाता है। दुर्गा 'महिषासुर मर्दिनी' मानी जाती है। अत उत्तर प्रदेश के पवतीय भागो मे नवरात्र के अवसर पर कही-कही महिष अर्थात भैसा भी की भी बलि चढायी जाती है।

यो तो देवी की पूजा प्रत्येक मास की जाती है परन्तु आश्विन (कुवार) तथा चैत्र मास के प्रथम नव दिनो मे—जिसे नवरात्र कहते है—इनकी पूजा का विशेष महत्त्व माना जाता है। इन दिनो मे दुर्गा-सप्तशती के पाठ करने की बडी महिमा है। काशी के दुर्गा जी के तथा विन्ध्याचल के विन्ध्यवासिनी के मदिर मे पाठ करने वालो की लम्बी-लम्बी पक्तियाँ देखी जा सकती है जो उच्च स्वर से सप्तशती का सम्पुट या साधारण पाठ करते है। इस अवसर पर—

"पत्नी मनोरमा देहि मनोवृत्तानुसारणीम्।
रूप देहि, जय देहि, यशो देहि, द्विषो जहि।।"

के उद्घोष से सारा वायुमण्डल गूँज उठता है।

इस देवी की पूजा मे ऊडहुल का लालफूल, मिष्ठान्न, चूडिया और चूनरी विशेष रूप से चढायी जाती है। कुछ लोग नारियल और बताशा भी चढाते है।

इन दिनो मे भूत-प्रेत के लगने की बडी आशका रहती है। अत भोजपुरी माताएँ अपने छोटे बच्चो को नवरात्र मे घर से बाहर नही निकलने देती, अन्यथा उन्हे कोई प्रेतात्मा ग्रसित कर लेगी। वे कहती है कि आजकल देवी जी का रन्थ (रथ) चल रहा है। अत छोटे बच्चो का घर से बाहर निकलना खतरे से खाली नही है।

(२) सामे माई—यह भी एक प्रसिद्ध देवी है जिनकी एकरूपता तत्र-शास्त्र मे वर्णित 'श्यामा' से स्थापित की जा सकती है। काली माई के मदिर अथवा मण्डप मे सूखी मिट्टी का एक 'पिण्ड' स्थापित रहता है। यही मत् पिण्ड सामे माई की प्रतिमा का प्रतीक है। यह देवी उच्च वर्ण की स्त्रियो के साथ ही निम्न जाति की स्त्रियो के द्वारा भी पूजी जाती है। उनकी पूजा मे 'कराह' चढाया जाता है अर्थात् मिट्टी के एक पात्र मे दूध को उपले की आग पर गम किया जाता है। जब दूध ऊबल कर उस पात्र के बाहर गिरने लगता है तब यह माना जाता है कि देवी प्रसन्न हो गयी है और उन्होने पूजा को स्वीकार कर लिया। दूध मे उबाल न आना देवी की अप्रसन्नता का लक्षण माना जाता है।[1]

---

१ इस सम्बन्ध मे एक स्वानुभूत घटना का उल्लेख करना अनुचित न होगा। मेरी माता जी ने इस देवी की पूजा मे कराह चढाने की मनौती मानी थी। उन्होने मिट्टी के बडे पात्र मे थोडा-सा दूध रखकर उसे आग पर रख दिया, जिससे उस पात्र का दूध उबलकर नीचे नहीं गिर सका। माता जी ने यह समझा कि देवी रुष्ट हो गयी हैं इसीलिए उन्होने पूजा स्वीकार नही की। अत वे अत्यन्त उदासीन होकर बैठी हुई थीं। इतने ही देर मे मैं घर आ गया और माता जी की उदासीनता का कारण पूछा। वस्तुस्थिति को समझने मे मुझे देर नहीं लगी और मैंने माता जी से निवेदन किया कि देवी जी दूध अधिक चाहती हे। थोडे दूध से उन्हे सतोष नहीं है। फलस्वरूप उस 'कराह' (कडाही) मे अधिक दूध डालकर उसे खूब गर्म किया गया। अब की दूध उबलकर नीचे गिरने लगा। माता जी अब प्रसन्न हो गयीं कि देवी ने उनकी पूजा स्वीकार कर ली और उनकी मनौती सफल हो गयी।

(३) चटपटी माई

यह बडी ही जागत देवी है। इनकी पूजा करने से मनोकामना की चटपट अर्थात् शीघ्र ही पूर्ति हो जाती है। इसीलिए इनका नाम चटपटी माई है। इनका मन्दिर काशी मे रवीन्द्रपुरी (नयी कालानी) नामक मुहल्ले मे स्थित है।

(४) सन्तोषी माता

सन्तोषी माता मनोकामना की पूर्ति करने वाली देवी है। ये इतनी प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय देवी है कि इनकी कथा के आधार पर 'सन्तोषी माता' नामक फिल्म का ही निर्माण हो गया है। यह फिल्म काशी म इतनी लोकप्रिय हुई कि इसका प्रदशन (शो) पूरे एक वष तक काशी मे होता रहा। सन्तोषी माता का वाराणसी मे एक मदिर भी है जहा पूजा के लिए अनेक लोग जाया करते है।

(२) परिच्छेद

प्रकृति के देवता (Gods of Nature)

गाँवो मे ऐसे बहुत से देवताओ की पूजा की जाती है जिन्हे प्रकृति का देवता कहा जाता है। इन देवताओ म सूय, चद्रमा, धरती, पवत, विभिन्न प्रकार के नक्षत्र—विशेषकर शनि और मगल—तथा ध्रुवतारा आदि प्रसिद्ध है। गाँव के नीच वग के लोग राहु और केतु आदि की भी पूजा करते है। इसके अतिरिक्त बहुत से डीह, डीहवार, अस्थान (स्थान), चौरा और चबूतरा है जहाँ ग्रामीणजन अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करते है।

(१) सूर्य

प्रकृति के देवता मे सूर्य का स्थान सबसे अधिक महत्त्वपूण है। यह देवता हम प्रकाश प्रदान करता है, हमारे घरो के अन्धकार को दूर करता है, घनघोर जाडे के दिनो मे हम ऊष्मा (गर्मी) देता है और खेता क फसल का पकाता है। अत ऐसे उपयोगी देवता की पूजा करना स्वाभाविक ही है। यदि सूय न हो तो हमारा जीवन दूभर हो जाय। सारा ससार अन्धकार मे निमग्न हो जाय और किसी भी प्राणी का जीवित रहना असभव हो जाय।

प्राचीन काल म वैदिक आय सूर्य की उपासना किया करते थे जिसे 'सविता' कहा जाता था। गायत्री का सुप्रसिद्ध मत्र जिसे प्रत्येक ब्राह्मण को जपना आवश्यक माना जाता है—वास्तव मे सविता अथवा सूय का ही मत्र है। सूय-पूजा की यह परम्परा आज भी अक्षुण्ण रीति से चली आ रही है। आज भी प्रतिदिन प्रात काल काशी मे गगा के किनारे हजारो व्यक्ति प्रात तथा सायकाल गायत्री मत्र का जप करते हुए दिखाई पडते है। गायत्री का यह मत्र निम्नाकित है—

"ओम् भूर्भुव स्व तत्सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न प्रचोदयात्॥"

अर्थात् हम लोग सूर्य के उस श्रेष्ठ तेज का ध्यान करते हैं जिससे हमारी बुद्धि को प्रेरणा प्राप्त हो सके। गाँव के जो लोग नियमित रूप से सन्ध्या वन्दन नही करते वे भी प्रात काल स्नान करने के पश्चात् सूर्य को तीन अजुरि (अजलि) जल अघ्य रूप मे देते है और 'सूर्याय नम' कह कर प्रणाम करते है।

अनपढ ग्रामीण प्रात काल उठकर सूर्य को हाथ जोडकर प्रणाम करते है। वे इन्हे 'सूरज नरायन' के नाम से अभिहित करते हे। ग्रामीण स्त्रियाँ कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी के दिन व्रत करती है जो 'छठी के बरत' के नाम से प्रसिद्ध है। इस दिन वे पूरे चौबीस घटे का व्रत करती हैं। वे आज के दिन लकडी के साँचे पर कडा आटा चिपका देती है। जब उस पर सूय के रथ की आकृति उत्कीण हो जाती है तब उसे घी मे पकाया जाता है। इस पक्वान्न को "अघरवटा" कहते है। वे कार्तिक शुक्ल षष्ठी को सन्ध्या के समय किसी नदी या तालाब के किनारे जाती है और अस्त होते हुए सूर्य को जलाञ्जलि देती है। वे सप्तमी के प्रात काल भी वहाँ जाकर पुन उगते हुए सूर्य को अर्घ्य देती है। भगवान् भास्कर को अघ्य देते हुए वे नीचे लिखे श्लोक का उच्चारण करती है जो अशुद्ध होते हुए भी उनकी भावनाओ का पूर्ण प्रतीक है—

"हे सूरज सहस्सर नाम
तेजो रासि जगत् पत्यांग।"

इस मत्र का शुद्ध रूप यह है जिसे पण्डित लोग पढा करते है —

"एहि सूर्य ! सहस्राशो, तेजोराशे जगत्पते।
अनुकम्पय मा भक्त्या, गृहाणार्घं दिवाकर॥"

भोजपुरी प्रदेश मे सूय की पूजा का प्रचार है। परन्तु यह बडे आश्चय का विषय है कि इस क्षेत्र मे सूय के मदिरो का प्राय अभाव हे। उडीसा मे कोणाक का मदिर अवस्थित है जो अपनी कला के लिए ससार मे प्रसिद्ध है। उत्तरप्रदेश के अलमोडा जिले मे कटारमल का सूय मदिर विख्यात है जो आजकल जीण-शीण अवस्था मे विद्यमान है। सूय प्रत्यक्ष देवता है सभवत इसीलिए इनकी प्रतिमा को मदिर मे स्थापित करने की आवश्यकता न समझी गई होगी।

(२) चन्द्रमा

विशेष पर्वो तथा तिथियो पर चन्द्रमा की भी पूजा की जाती है। लोगो का ऐसा विश्वास है कि चन्द्रमा अमृत का कुण्ड है। इसे देवता लोग क्रमश पीते जाते है इसीलिए यह घटता बढता रहता है। शुक्ल पक्ष की द्वितीया के चन्द्रमा आकाश मे देखकर लोग हाथ जोडकर बडी श्रद्धा से उसे प्रणाम करते है। माघ मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को स्त्रियाँ व्रत रखती है। इस दिन चन्द्रमा को अघ्य दिया जाता है। अत आकाश मे उगने की बडी उत्कण्ठा से इसकी प्रतीक्षा की जाती है। इसे दूध, जल, पुष्प ओर फल के द्वारा पूजा की जाती है। सूय के समान ही चन्द्रमा का भी कोई मदिर इस क्षेत्र मे नही पाया जाता।

(३) अग्नि

अग्नि-पूजा की परम्परा बडी प्राचीन है। वैदिक आय अग्नि-पूजक थे। ऋग्वेद मे इन्द्र और सोम के अनन्तर अग्नि को ही महत्त्वपूण स्थान प्राप्त है जिसकी स्तुति मे सैकडो सूक्त कहे गये हैं। पारसी धम मे भी अग्नि-पूजा का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। आज भी इसकी पूजा की परम्परा अक्षुण्ण रीति से चली आ रही है।

सामान्य जनता प्रत्येक मागलिक अवसर पर अग्नि पूजा करती है। क्या यज्ञोपवीत और क्या विवाह इन सभी कार्यों मे 'अग्नि देवता' की पूजा की जाती है। विवाह मे 'सप्तपदी' के अवसर पर अग्नि की सात बार प्रदक्षिणा की जाती है। वर और बधू प्रत्येक बार प्रदक्षिणा करते अग्नि को साक्षी देकर यह प्रतिज्ञा करते है कि हम दोनो आजन्म एक हृदय होकर रहेगे और किसी दशा मे एक दूसरे का परित्याग नही करेंगे। इसी प्रकार जब वे सात बार अग्नि की प्रदक्षिणा करते है तब सप्तपदी की विधि सम्पूण समझी जाती है।

प्रत्येक अनुष्ठान के अन्त मे हवन की विधि सम्पादित की जाती है। इस समय जब, तिल, गुड और घी को एक साथ मिलाकर प्रज्वलित अग्नि मे इनका हवन किया जाता है। इसीलिए अग्नि को 'हुतभुक' भी कहा गया है। धार्मिक पुरुष बलि वैश्य देव की प्रतिदिन पूजा करते है। इसमे अग्नि को अन्न की बलि दी जाती है।

नवरात्र के दिनो मे दुर्गा, सप्तशती के पाठ की समाप्ति के पश्चात् उसकी पूर्णाहुति की जाती है। इस दिन अग्नि मे हवन किया जाता है। पुरोहित जी मन्त्र पढने के बाद 'अग्नेय स्वाहा' कहते है। उनके पश्चात् यजमान भी 'स्वाहा'-'स्वाहा' कह कर अग्नि मे हवन की सामग्री अर्पित (डालता) करता है तथा आज्य (घी) से भी आहुति करता है। गाँवो मे सत्य-नारायण भगवान् की कथा प्राय आये दिन हुआ करती है। उस दिन भी कथा की समाप्ति के पश्चात् अग्नि मे हवन करने का विधान है। आग मे नमकीन पदार्थों को डालना निषिद्ध माना जाता है। अत हवन के समय धूप मे घी, चावल, जौ और तिल मिलाकर 'अग्नये स्वाहा' किया जाता है। इसके पश्चात पूडी पर चीनी तथा एक नारियल रखकर भगवान् 'सर्वभक्षी हुताशन' को समर्पित करते है।

स्त्रियाँ जब किसी यज्ञ के प्रारम्भ मे पूडी या कचौडी बनाना प्रारम्भ करती है तब वे प्रथम पूडी को अग्निदेव को ही देती है। किम्बहुना रसोई बनाते समय दाल या चावल को पकाने के पहिले उसके कुछ दानो को आग मे अर्पित करना भोजपुरी महिला की दैनिक दिनचर्या है। हनुमान जी की पूजा के समय आग मे धूप, जलाया या डाला जाता है। अग्निदेव के समक्ष भूत-दूत नही आ सकते अत ओझा और सोखा अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए आग जलाकर उसकी पूजा करते है।

(४) ग्रहो की पूजा

विवाह आदि मागलिक अवसरो पर ग्रहो की पूजा की जाती है। जिससे वह काय निर्विघ्न समाप्त हो जाय। इन ग्रहो की सख्या नौ है जो 'नवग्रह' के नाम से प्रसिद्ध है —

(१) सूय (२) चन्द्रमा (३) बुध, (४) बृहस्पति (५) शुक्र (६) शनि (७) मगल (८) राहु और (९) केतु। इन ग्रहो मे मगल ओर शनि दुष्ट ग्रह समझे जाते हे। ये किसी मागलिक काय म विघ्न न उपस्थित कर दे अत इनकी पूजा करना आवश्यक समझा जाता हे। राहु और केतु भी अमगल करने वाले ग्रह की ही कोटि म समझे जात ह। इन खोटे तथा छोटे ग्रहो को पूजा आदि के द्वारा प्रसन्न करने की परम्परा बहुत दिना से चली आ रही हे। महाकवि बिहारी ने लिखा है कि लोग अच्छे ग्रहो की अचना नही करते बल्कि छोटे अर्थात क्रूर ग्रहो को प्रसन्न करने के लिए पूजा-पाठ किया करत ह—

"भले भले कहि छाण्डिये,
छोटे ग्रह जपदान।"

सत्यनारायण की कथा मे भी इन नवग्रहो की पूजा की जाती है। मिट्टी की वेदी के ऊपर सरकण्डे के नो छोटे छोटे टुकडे उस पर गाड दिये जाते ह। इनमे से प्रत्येक सरकण्डा एक एक ग्रह का प्रतिनिधित्व करता है। पत्र, पुष्प, नैवेद्य आदि समर्पित कर इनकी पूजा की जाती हे।

(५) ध्रुवतारा

राजा उत्तानपाद की दो रानियाँ थी। बडी रानी का नाम सुनीति था जिसका पुत्र ध्रुव था। छोटी रानी सुरुचि थी, जिसका लडका उत्तम था। राजा छोटी रानी को अधिक प्यार करते थे। एक दिन संयोग से ध्रुव अपने पिता की गोद म बैठ गया। इस पर क्रोधित होकर उसकी विमाता सुरुचि ने उसे राजा की गोद से हटा दिया। ध्रुव के लिए यह अपमान असह्य था। वह जगल मे चला गया और घनघोर तपस्या करने लगा। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होने उसके यश को अमर बनाने के लिए उसे आकाश मे ध्रुवतारा के रूप म स्थान दिया।

इस तारा की विशेषता यह है कि सदा एक ही स्थान पर रहता है। एक ही दिशा मे उगता है और कभी भी टस से मस नही होता। इस प्रकार यह निश्चितता तथा स्थिरता का प्रतीक है।

विवाह सस्कार के अवसर पर वर तथा वधू को ध्रुवतारा का दर्शन कराया जाता है। इस विधि का आशय यह है कि जिस प्रकार से आकाश मे ध्रुवतारा अटल तथा निश्चल है उसी प्रकार भ उनका विवाह सम्बन्ध भी अचल हो। इसी अभिप्राय से स्त्रियो को अरुन्धती का दशन कराना भी एक प्रधान विधि मानी जाती है। गांवो म वृद्ध लोग रात म शुक्रतारा—जिसे सुकवा कहते है—को देखकर समय का अनुमान लगाया करते ह। जब शुक्र का उदय नही होता उन दिनो म विवाह करना निषिद्ध माना जाता है।

(६) सप्तर्षि मण्डल

आकाश मे एक निश्चित दिशा मे सात ताराओ का एक मण्डल दिखाई पडता है जो एक नियत स्थान पर निश्चित प्रकार से अवस्थित दिखाई पडते है। इन्हे 'सप्तर्षि मण्डल' कहा जाता है। गाँवो म इन्हे 'रीछ' कहते है जो सस्कृत 'ऋक्ष' का अपभ्रंश रूप है। इन सात ऋषियो मे निम्नाकित की गणना की जाती है—

(१) गौतम (२) भारद्वाज, (३) विश्वामित्र (४) जमदग्नि (५) वशिष्ठ (६) काश्यप और (७) अत्रि। ये सभी प्रसिद्ध ऋषि है जिनके नाम से गोत्रो की उत्पत्ति हुई जो आज तक परम्परागत रूप मे चली आ रही है।

(७) धरती माता

भोजपुरी क्षेत्र मे धरती की पूजा विवाह के अवसर पर की जाती है। बारात जाने के एक दिन पहिले घर की स्त्रियाँ गाजे-बाजे के साथ जाती है और किसी खेत से अथवा पवित्र मिट्टी खोदने के स्थान—जिसे 'मटिखाना' कहते है—से मिट्टी घर ले आती है और उससे चूल्हा बनाया जाता है। इस कच्ची मिट्टी के चूल्हे पर 'कवरथ' का भात बनाया जाता है जिसे खाकर दूल्हा विवाह करने जाता है। मिट्टी खोदकर लाने की इस विधि को 'मॅंगराड' कहते हैं। नागा साधु जब प्रयाग मे कुम्भ के मेले मे जलूस बनाकर चलते है तब ग्रामीण लोग उनके पद के नीचे की पवित्र मिट्टी को हाथो मे लेकर अपने सिर पर चढ़ाते है। मिट्टी का पात्र बहुत पवित्र माना जाता है। कट्टर सनातनी पण्डित मिट्टी के पात्र मे भोजन बनाना और जल पीना उत्तम समझते है। कुछ धार्मिक व्यक्ति मिट्टी की छोटी-छोटी पिण्डियाँ बनाकर नियमित रूप से इनकी पूजा करते है जो पार्थिव पूजा के नाम से प्रसिद्ध है। सती का चबूतरा अथवा ब्रह्म का चौरा मिट्टी का ही बनाया जाता है। पण्डित लोग रात्रि मे

शयन के पश्चात् जब प्रात काल उठते है तब धरती पर पर रखने के पहिले निम्नाकित श्लोक पढकर पृथ्वी को हाथ से स्पश कर उसे प्रणाम करते है—

"समुद्रवसने देवि पवतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्य पादस्पश क्षमस्व मे॥

(३) परिच्छेद

रोगो के देवता

सामान्य जनता का यह विश्वास है कि देवी और दवताओ के प्रकोप से ही रोगो की उत्पत्ति होती है। जब देवता किसी व्यक्ति या स्थान विशेष से कुपित हो जाते हे तब वे उस व्यक्ति को रोग से पीडित कर देते है। हैजा आर प्लेग आदि बीमारियो के फैलने का कारण स्थानीय देवताओ का प्रकोप ही माना जाता है। अत उनको सतुप्ट तथा प्रसन्न करन के लिए अनेक विधि-विधान किये जाते है। इन देवताओ मे शीतला, ममान, पिलेग मइया, मर्ही आदि प्रसिद्ध ह।

(१) शीतला माता

शीतला माता चेचक रोग की अधिष्ठात देवी मानी जाती है। जब कोई व्यक्ति इस रोग से पीडित होता है तब ऐसा समझा जाता है कि शीतला का प्रकोप हो गया हे। अत इस देवता को प्रसन्न करने के लिए अनेक प्रकार के उपाय किये जाते है। यह रोग प्राय बच्चो को हुआ करता हे। माली शीतला देवी का सेवक माना जाता है। अत जब कोई बच्चा इस रोग से पीडित होता है तब माली बुलाया जाता है और देवी की आराधना के लिए उससे प्राथना की जाती है।

शीतला देवी का निवास-स्थान नीम का वक्ष है। वे इस वक्ष पर झूले मे बैठकर झूलती रहती है। जब इन्हे प्यास लगती हे तब ये मालिन की बिटिया को बुलाकर पानी लाने का आदेश देती है। भोजपुरी मे ऐसे अनेक लोक-गीत उपलब्ध होते है जिनमे शीतला के द्वारा पीने के लिए पानी मागने का वणन पाया जाता है। चूकि नीम का वृक्ष शीतला का प्रिय स्थान है अत माली अथवा उसकी स्त्री मालिन नीम की टहनियो को तोडकर लाती है और उससे रोगी को पखा झलती है। लोगो का ऐसा विश्वास है कि नीम की पत्तियो की हवा से शीतला का प्रकोप शान्त हो जाता है। नीम की पत्तियो को रोगी की शय्या पर बिछा दिया जाता है। इन्ही पत्तियो पर वह साता है। इस प्रकार नीम की पत्तियो के उपयोग से उसका रोग शान्त होने लगता है। चेचक-रोग से पीडित व्यक्ति को कोई दूसरी डाक्टरी दवा नही दी जाती क्योकि सामान्य जनता की यह दृढ धारणा है कि ऐसा करने से माता प्रकुप्त हो जाती है। अत माली ही इस रोग मे सबसे बडा डाक्टर है और माता की कृपा ही वह दवा है जिससे रोगी आरोग्य को प्राप्त होता है।

शीतला को माता कहा जाता है क्योकि वह माँ के समान दयालु तथा करुणाद्र है। वे जगरानी—जगत् की रानी तथा महाकाली के नाम से भी प्रसिद्ध है। गाँवो मे शीतला माता का कोई मदिर नही होता। किसी चबूतरे पर मिट्टी का एक लोदा रख दिया जाता है। यही इनका प्रतिनिधित्व करता है। परन्तु देवी के रूप मे इनकी पूजा मदिर मे की जाती है। काशी मे दशाश्वमेध घाट पर शीतला जी का मदिर बना हुआ है जहा दशनार्थियो की बडी भीड एकत्रित होती है। शीतला का बाहन गदहा है अत इनके मदिर मे इनके वाहन की मूर्ति स्थापित की जाती है। यो तो इनकी पूजा सदा की जाती है परन्तु शीतला-सप्तमी को इनकी आराधना का विशेष महत्त्व है।

शीतला वास्तविक अथ मे लोक-देवता है। गाँवो मे जब चेचक का प्रकोप होता है तब इनकी पूजा विशेष रूप से की जाती है। जन-जीवन से जितना इनका घनिष्ठ सम्बन्ध है उतना अन्य किसी देवता का नही। शीतला की छोटी प्रतिमा चादी पर उत्कीण कराकर स्त्रियाँ अपने गले मे पहिनती है और विशेष अवसरो पर उनकी पूजा करती है।

२ पिलेग मइया

पिलेग शब्द अग्रेजी के 'प्लेग' का अपभ्रश रूप है। भारतवष मे पहिले यह रोग नही होता था। परन्तु अग्रेजो के इस देश मे आने के पश्चात् इस रोग का आगमन यहाँ हो गया था। यह छूतहा रोग माना जाता है। गाँवो मे यह बीमारी गन्दगी के कारण फैलती है। इसका प्रकोप इतना भीषण होता है कि अनेक गाँवो मे सैकडो आदमी इससे एक साथ पीडित हो जाते है और मृत्यु को प्राप्त होने वाले लोगो की सख्या भी कुछ कम नही होती। ग्रामीण क्षेत्रो मे इस महामारी की रोकथाम का कुछ

विशेष प्रबन्ध न होने के कारण लोगो को घनघोर कष्ट उठाना पडता है। ऐसी दशा मे इस भीषण सक्रामक बीमारी को किसी देवी या देवता के प्रकोप का कारण मान लिया जाय तो कोई आश्चय नही है।

प्लेग रोग की अधिष्ठात देवी 'पिलेग मइया' मानी गयी है। अत गावो मे जब यह महामारी भीषण रूप मे फैलती है तब 'पिलेग मइया' की पूजा की जाती है। इनकी भी पूजा प्राय उन्ही विधि-विधानो के द्वारा की जाती है जैसी कि प्राय अन्य देवियो की होती है। हिन्दू देव मण्डल—'पैन्थियान' (Pantheon) मे इस देवी का आगमन लगभग पचास वर्षों से ही हुआ है। इसके पहिले इस देवी की पूजा नही होती थी। हिन्दू धम की प्रगतिशीलता का परिचय केवल इसी बात से होता है कि इसने एक विदेशी महामारी (प्लेग) को मइया (देवी) का रूप प्रदान किया है।

३ चटपटी माता

काशी मे भेलूपुर के पास न्यू कालोनी (रवीन्द्र पुरी) मे चटपटी माता का एक मदिर अवस्थित है जो बडा ही छोटा है। इसकी पश्चिमी दीवाल एक ताखे पर इनकी छोटी-सी मूर्ति रखी हुई है। यह भक्ता की मनोकामना को चटपट ही पूरा कर देती है। इसीलिए इनका नाम 'चटपटी माता' पड गया है। या तो इस माता का दशन प्रतिदिन किया जाता है परन्तु नवरात्र के दिनो मे इनके दशन का विशेष महत्त्व है। इनकी पूजा मे पुष्प, धूप, दीप, मिष्ठान्न आदि का प्रयोग किया जाता है। इस देवी को दही और चीनी अधिक प्रिय है। अत भक्त लोग इन्ही वस्तुओ का इन्हे भोग लगाते है। चटपटी बडी चलती देवी है। इसीलिए भक्त लोग अपनी कामना की पूर्ति के लिए इनकी मनौती मानते है।

(४) खोखी मइया

शीत ऋतु मे सर्दी की अधिकता से लोगो को प्राय ठडक लग जाती है जिसके कारण उन्हे खाँसी आने लगती है। इसी खासी को भोजपुरी मे 'खोखी' कहते है। 'खोखी' की अधिष्ठातृ देवी 'खोखी मइया' के नाम से प्रसिद्ध है। जब किसी व्यक्ति को खाँसी अधिक आने लगती है, और जब वह इस रोग से अत्यधिक पीडित होने लगता है तब यह समझा जाता है कि 'खोखी मइया' कुपित हो गई है और यह सब उन्ही के क्रोध के कारण से हो रहा है। अत इस देवी को प्रसन्न करने के लिए इनकी पूजा की जाती है। पुष्प, मिष्ठान्न, धूप, दीप आदि इन्हे समर्पित किया जाता है। इनकी पूजा करने के पश्चात् प्रसाद को भक्तो म वितरित कर दिया जाता है।

हिन्दू देव मण्डल (Pantheon) मे 'खोखी मइया' का आगमन अभी कुछ ही वर्षों पहिले हुआ है अत 'पिलेग मइया' की भाँति ये भी हिन्दू धम की 'अभिनव देवी' है।

(५) मनसा देवी

मनसा देवी मन की कामना को पूर्ण करने वाली देवी है। हरिद्वार मे हर की पैडियो के ठीक सामने पश्चिमी दिशा मे पवत की ऊँची चोटी पर इनका मदिर अवस्थित है। पहिले हरिद्वार नगर से इनके मदिर तक पहुँचने का माग बडा विकट था और थके माँदे यात्रियो के लिए वहाँ पानी पीने की भी कोई व्यवस्था नही थी, परन्तु अब सरकार ने मनसा देवी के माग को प्रशस्त बना दिया है और चोटी पर जल की भी सुन्दर व्यवस्था कर दी है।

मनसा देवी की सबसे बडी विशेषता यह है कि ये अपने भक्तो की मनोकामना को निश्चित रूप से पूण करती है। इनके मदिर के पास एक छोटा-सा वृक्ष है, जिसमे हजारो कपडे के छोटे-छोटे टुकडे लटके हुए दिखाई पडते है। जिन लोगो की कोई मनोकामना होती है वे उसकी पूर्ति के लिए यहाँ आते है और वे इसी वृक्ष मे एक छोटे से कपडे के टुकडे को बाँध देते है। जब उनकी मनोकामना पूरी हो जाती है तब वे यहाँ आकर उस गाँठ को खोल देते है।

इस प्रकार मनसा देवी मनोकामना की देवी है। इनकी उपासना से मन की अभिलाषा पूण होती है। भोजपुरी प्रदेश मे ऐसी देवियो के अनेक स्थान है जहाँ मन की इच्छा की पूर्ति के लिए लोग जाते है अ र उस मदिर के पास स्थित किसी वृक्ष या स्तम्भ मे अपनी कामना का प्रतीक कपडा बाँध देते है।

(४) परिच्छेद

भूत-प्रेतों की पूजा

हिन्दू धम मे जन्मान्तरवाद के सिद्धान्त को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। लोगो का यह विश्वास है मृत्यु के पश्चात यह जीव अपने कर्मों के अनुसार विभिन्न योनियो मे जन्म लेता है। यदि किसी मनुष्य ने पुण्य कर्म किया है तब उसका जन्म किसी

उच्च मनुष्य की योनि मे होगा। परन्तु उसका जीवन यदि गर्हित कर्मों के करने मे ही बीता है तो उसे पशु-पक्षी की नीच योनि प्राप्त होती है।

हमारे धर्म शास्त्रकारो ने आत्महत्या की बडी निन्दा की है। उपनिषदो मे तो यहा तक लिखा है जो लोग आत्मघाती है वे उस लोक को प्राप्त करते है जहा घोर अन्धकार होता है। इसी प्रकार जिनकी अकाल मृत्यु होती है, जो किसी दुर्घटना के कारण मृत्यु को प्राप्त करते है अथवा जिनकी किसी व्यक्ति के द्वारा हत्या कर दी जाती है, ये सभी लोग भूत योनि को प्राप्त होते है। किसी विशेष घटना या दुर्घटना के कारण पञ्चत्व को प्राप्त लोगो को विभिन्न भूतो की योनियो मे जन्म लेना पडता है। ये योनियाँ प्रधानतया निम्नाकित है—

(१) भूत, (२) प्रेत (३) पिशाच (४) राक्षस (५) ब्रह्मराक्षस (६) असुर (७) दैत्य (८) दानव (९) वीर या यक्ष (१०) जिन (११) शैतान (१२) बूडा (१३) मर्ही (१४) मसान (१५) चुडैले (१६) परी आदि।

(१) भूत

भूत शब्द का व्यवहार समस्त प्रेत योनि अथवा नीच योनियो (Lower spirits) के लिए किया जाता है। सस्कृत मे 'भूत' का प्रयोग उन सभी प्राणियो के लिए किया जाता है जो पैदा हुए है अथवा जिनका निर्माण किया गया है। इसीलिए शिव को 'भूतनाथ' या 'भूतपति' कहा जाता है। परन्तु भूत शब्द का प्रयोग प्रेत आत्माओ के अर्थ मे ही सीमित है।

प्रेत आत्माओ की विभिन्न श्रेणियाँ अथवा ग्रेड है। इन सभी के लिए भूत का व्यवहार किया जाता है। गाँव के लोग प्राय भूत-प्रेत की चर्चा किया करते है। वे सभी प्रकार की प्रेत आत्माओ को भूत शब्द से ही अभिहित करते हैं। परन्तु जो व्यक्ति आत्महत्या करके, दुर्घटना के कारण अथवा फासी की सजा पाकर मृत्यु को प्राप्त करता है, वास्तव मे उसी की प्रेत आत्मा को भूत कहा जाता है। यदि मृत्यु के पश्चात् इस प्रेत आत्मा का अन्तिम सस्कार विधिवत् नही किया जाता तो उसकी भयकरता तथा विनाश करने की शक्ति और भी अधिक बढ जाती है। इस सस्कार के अभाव का अनुभव उस प्रेत आत्मा को सदा होता रहता है जिसके कारण वह शान्ति को नही प्राप्त कर सकता। इसीलिए हिन्दू लोग इस आत्मा की शान्ति के लिए समय समय पर वार्षिक तथा मासिक श्राद्ध किया करते है।

जिस व्यक्ति को कोई पुत्र नही होता जो मृत्यु के पश्चात् पिता का दाह सस्कार तथा श्राद्ध सम्पन्न कर सके, उसकी प्रेत आत्मा को 'गयाल' कहते है। अत यह आत्मा बडी भयानक होती है और दूसरे व्यक्तियो के छोटे बच्चो के लिए बडी हानिप्रद है।

भूतो के लक्षण—भूतो के अनेक लक्षण होते है जिनके द्वारा उन्हे पहिचाना जा सकता है। वे कभी भी जमीन पर नही बैठते। चूँकि पृथ्वी (भूमि) की पूजा देवता के रूप मे की जाती है अत भूत उस पर बैठने का दुसाहस नही कर सकते। यही कारण है कि नीच जाति के लोग अपने मदिरो के पास लकडी की कुछ खूटियाँ गाड देते हैं अथवा दो-चार ईटे स्थापित करते है जिन पर भूत आकर सुखपूर्वक विश्राम कर सके। कभी कभी एक बॉस लटका दिया जाता है जिससे भूतो को बैठने का स्थान मिल सके।[1] उसी सिद्धान्त के कारण बिहार की उराँव नामक आदिम जाति के लोग अपने घर के सामने एक स्तम्भ को स्थापित करते है जिससे वह घट (Cinerary urn) लटकता रहता है जिसमे प्रेत आत्मा की अस्थियाँ स्थापित की गई रहती है। जो व्यक्ति किसी मृतक की अस्थियो—जिसे भोजपुरी मे 'फूला' कहते हैं—को तीर्थ स्थान मे विसर्जित करने के लिए ले जाता है वह स्वय जमीन पर भले ही सोये परन्तु वह अस्थि-पात्र को ऊँचे स्थान से टॉग कर रखता है। जहाँ प्रदत्त बलि को लेने के लिए भूतो के आने की अधिक सम्भावना हो वहाँ मदिर के निकट जमीन पर ही सोना चाहिए।

भूत काम-रूप होते हे अर्थात् वे अपनी इच्छा के अनुसार अपने शरीर को विशाल बना सकते है और क्षणभर मे ही अत्यन्त स्वल्प काया को धारण कर लेते है। लोक-कथाओ मे ऐसे अनेक उदाहरण पाये जाते है जहाँ भूतो की आकृति ताड वृक्ष से भी बडी पायी जाती है। सामान्यतया लोगो को भयभीत करने के लिए भूत विशाल रूप को ही प्राप्त करते है। ये कभी ताड के समान लम्बा और कभी पीपल के समान लम्बी चौडी आकृति को दिखलाकर रात मे निर्जन स्थान मे जाने वाले पथिक के हृदय मे भय का सचार करने मे समर्थ होते है।

भूतो की परिछाई नही होती अथवा वह दिखाई नही पडती। ताड के समान विशाल आकृति को धारण करने पर भी उनके प्रतिबिम्ब का पता नही चलता। यही इनकी सबसे बडी पहिचान है। इनकी दूसरी विशेषता यह है कि धूप अथवा अगरबत्ती या अन्य किसी सुगन्धित द्रव्य की सुगन्ध को ये कदापि सहन नही कर सकते। इसीलिए भूत से व्याप्त स्थान पर धूप,

---

१ कनिंघम—आर्क्योलाजिकल सर्वे रिपोर्ट भाग १७, पृ० १४७।

गुग्गुल या अगरबत्ती जलाई जाती है। लोगों का यह विश्वास है कि भूत इस सुगन्ध को सहन नहीं कर सकता और वह उस स्थान को छोड़कर भाग जाता है।

परन्तु भूतों की सबसे असली पहिचान यह है कि असली भूत सदा नाक से आवाज निकालता है। यह प्रत्येक शब्द का उच्चारण नाक से (Nasal sound) किया करता है। अतः इसकी भाषा सामान्य लोगों की बोली से उच्चारण वैशिष्ट्य के कारण पृथक् होती है। सम्भवतः इसीलिए इसकी बोली को पैशाची भाषा कहा जाता है। भाषा में जिन लोगों ने भूत देखा है उनका कहना है कि ये नाक से बोलते हैं। अतः इनकी भाषा नकियाती लगती है।

भूतों की आकृति प्रायः काली होती है जिससे रात्रि में और भी भयंकर बन जाती है। इसीलिए भोजपुरी में किसी काले व्यक्ति की उपमा "करिया भूत" से दी जाती है। कहीं कहीं इनका रंग भूरा और सफेद भी बतलाया गया है परन्तु इन्हें अपवाद ही समझना चाहिए।

भूतों का गला सूई के समान पतला तथा संकीर्ण होता है। सम्भवतः इसीलिए मुख से बोलने में असमर्थ होने के कारण ये नाक से ही बोलते हैं। परन्तु गला के संकीर्ण होने पर भी ये ... (किलो) ... पा सकते हैं। चुड़ैलों के समान इनका पैर आगे न होकर पीछे की ओर मुड़ा रहता है।

ताड़ के समान लम्बी और पतली आकृति, ... पीछे मुड़ा हुआ पैर और इसके बाद नाक से 'माईं गाईं' की आवाज—इन सबके सहयोग से भूत की आकृति ... तथा हृदय को कँपाने वाली बन जाती है।

भूत का भोजन तथा निवास—अन्य बुरी आत्माओं (evil spirits) के समान भूत का भोजन अत्यन्त गंदी वस्तुयें हैं। ये सर्वदा प्यासे रहते हैं। अतः जल कितना भी गन्दा क्यों न हो, ये उसको ... भी प्राप्त करने के लिए लालायित पाये जाते हैं। लोक-कथाओं में ऐसा वर्णन पाया जाता है कि जब कोई भूत किसी अजनबी बटोही को पाता है तब वह उससे पीने के लिए पानी माँगता है। ये दूध पीने के बड़े शौकीन होते हैं। इसलिए कोई पंजाबी माता ताजा दूध पीने के पश्चात अपने बच्चे को घर से बाहर जाना पसन्द नहीं करती।

भोजपुरी भूत 'खइनी'—जिसे सुरती भी कहा जाता है—के बड़े प्रेमी होते हैं। किसी अजनबी को रात में पाकर वे सबसे पहिले उससे खाने के लिए 'खइनी' मांगते हैं। "... खइनिया ..." इस प्रकार नाक से उच्चरित वाणी में वे खइनी देने की प्रार्थना करते हैं और इनकी आज्ञा का पालन न करने पर उसे बहुत परेशान करते हैं। अतः "भूत" से भेंट होने पर लोग उसे 'खइनी' देकर अपना पिण्ड छुड़ाते हैं।

भूत मंदिर में नहीं रहते परन्तु उसके आस-पास मंडराया करते हैं। यदि पुजारी सावधान न रहा तो वे मंदिर में चढ़ाये गये बलि को लेकर भाग जाते हैं। अर्धरात्रि के समय वे सुनसान स्थानों में घूमा करते हैं जिससे पथिकों से उन्हें खाने की सामग्री प्राप्त हो जाय। इनका प्रधान भोजन मांस है। इसीलिए भूतों का एक प्रकार 'पिशाच' कहा जाता है।

भूत का निवास—भूतों का निवास प्रायः अनेक स्थानों पर पाया जाता है। ये अधिकतर उजाड़ तथा जीर्ण-शीर्ण घरों में रहते हैं। ग्राम से दूर सुनसान बगीचों में ही इनका अड्डा पाया जाता है। लोगों का विश्वास है कि भूत प्रायः पुराने इमली के पेड़ पर रहा करते हैं। अतः गाँव के लड़के पुरानी इमली के पेड़ के पास जाने से डरते हैं। काशी में 'भूतही इमली' नामक एक मुहल्ला है जहाँ आज भी इमली का वृक्ष पाया जाता है। सामान्य जनता की यह धारणा है कि इस वृक्ष पर भूत रहा करते थे। इसीलिए सम्भवतः इसको 'भूतही' की संज्ञा प्रदान की गई हो।

भूतों का दूसरा निवास स्थान बबूल का पेड़ है। चूंकि यह गाँव की सीमा से दूर सुनसान खेत में खड़ा रहता है, इसलिए यह इनका प्रिय स्थान है। गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-चरित्र से ज्ञात होता है कि वे नित्य प्रति शौच के अवशेष जल को एक बबूल-वृक्ष की जड़ में डाल दिया करते थे जिससे उस पर रहनेवाला भूत बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उनसे वर माँगने के लिए कहा था।[1] जिस मकान में वर्षों से कोई आदमी नहीं रहता उसमें भूत का निवास माना जाता है। अतः ऐसे 'भूतहा' घर में कोई भी रहना नहीं चाहता। भोजपुरी प्रदेश में प्रचलित लोकोक्ति "बिन घरनी घर भूत का डेरा" इसी तथ्य की ओर संकेत करती है।

भूत को भगाने के उपाय—जब कोई भूत से आविष्ट हो जाता है तब उसे भगाने के लिए अनेक उपाय किये जाते हैं। भोजपुरी में एक कहावत कही जाती है कि "मारला से भूत भागला" अर्थात् मारने से भूत भग जाता है अतः जिन स्त्री या पुरुष के ऊपर भूत सवार हो जाता है उसे ओझा लोग अथवा झाड़फूँक करने वाले बड़ी निर्दयता से पीटते हैं। नवरात्र के दिनों में

---

१ डॉ० श्याम सुन्दर दास—गोस्वामी तुलसीदास

बिहार के भोजपुर जिले मे स्थित हरसू ब्रह्म के स्थान पर यह दृश्य देखा जा सकता है। भूत को भगाने का दूसरा साधन अग्नि है। जहाँ आग रहती है वहा भूत नही फटक सकते। इसीलिए किसी बच्चे के पैदा होने पर सूतिका-गृह के द्वार पर 'पोडी' (अँगीठी) मे दिन रात आग जलायी जाती है जिससे कोई बुरी आत्मा (evil spirit) या भूत-दूत उस घर मे प्रवेश न पा सके। यदि व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है और उसके शव का दाह-संस्कार शीघ्र नही हो पाता तब वहा आग जलाना आवश्यक होता है। भूत लोहे से भी डरता है। अत छोटे बच्चो को लोहे की अगूठी पहिनायी जाती है। मृत व्यक्ति का अन्तिम संस्कार करने वाले दाहो के लिए बास का दण्ड धारण करना आवश्यक है जिसमे लोहे की कील लगी रहती है। लोगो का ऐसा विश्वास है कि इस लोहे के कारण दाही के पास प्रेत व्यक्ति की आत्मा आने का दु साहस नही कर सकती। गायत्री मत्र का उपयोग भी भूतो को भगाने के लिए किया जाता है। ओझा लोग या तान्त्रिक गायत्री मत्र से अभिमन्त्रित जल मे आविष्ट व्यक्ति के भूत को झाडते है।

भूतो के विभिन्न प्रकार—भूतो के अनेक प्रकार होते है। ये विभिन्न रूपो के होते है तथा मनुष्यों को कष्ट दिया करते हैं। इन भूतो के बेताल, प्रेत, पिशाच, राक्षस आदि प्रसिद्ध है। 'बैताल पच विशतिका' नामक ग्रन्थ मे वैतालो की अनेक कहानियाँ दी गई है।

(२) **प्रेत**—प्रेत शब्द का अर्थ 'मृत' होता है। किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् तथा उसके श्राद्ध-कर्म की समाप्ति के मध्य मे उसकी आत्मा प्रेत योनि मे निवास करती है। प्रेत अपने मूल स्थान या निवास के चारो ओर दस कोस मे चक्कर लगाया करता है। उसका आकार मनुष्य के अँगूठे के समान छोटा होता है। मृत आत्मा के श्राद्ध के अवसर पर प्रतिदिन उसे जो पिण्ड प्रदान किया जाता है उससे प्रेत के शरीर का क्रमश निर्माण होता है। यह क्रम दस दिनो तक चलता रहता है। सपिण्डीकरण के पश्चात् प्रेत पितरो की कोटि को प्राप्त कर लेता है। गर्भ के निर्माण के समय उचित विधि-विधानो के न करने से जिन बच्चो की मृत्यु हो जाती है उनकी आत्मा प्रेत योनि मे चली जाती है।

साधारणतया प्रेत शब्द का प्रयोग उन मृत आत्माओ के लिए किया जाता है जो किसी प्रकार से असतुष्ट है। जीवन मे जिन्हे किसी प्रकार सतोष प्राप्त नही हो सका उनकी आत्माये प्रेत का रूप धारण कर लेती है। अत प्रेत को सतुष्ट करना आवश्यक समझा जाता है।

प्रेत जब उत्तेजित हो जाता है तब वह बडा भयानक तथा उत्पीडक सिद्ध होता है। परन्तु जीवित मनुष्यो को यह प्राय कष्ट नही देता। गया मे 'प्रेतशिला' पर प्रेत की पूजा की जाती है। पटना मे 'प्रतिया' नामक ब्राह्मण पाये जाते है जो किसी सन्त के प्रेत आत्मा की आराधना करते है। गावो मे भूत और प्रेत ये दोनो ही युगल शब्द माने जाते है और दोनो का प्रयोग प्राय समान अर्थ मे किया जाता है।

(३) **पिशाच**—पिशाच शब्द अर्थ मास को खाने वाला है। अत इससे स्पष्ट है कि इस श्रेणी की प्रेत आत्माये मास का भक्षण करती है। क्रुक के कथनानुसार पिशाच वे बुरी आत्माये (evil spirits) है जिनका निर्माण मनुष्य के बुरे कृत्यो से होता है। असत्य भाषी, व्यभिचारी, हत्या का अपराधी तथा पागल व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् उसकी आत्मा पिशाच योनि को प्राप्त होती है।

सोमदेव के कथा-सरित्सागर मे पिशाचो का उल्लेख पाया जाता है तथा इनकी पूजा का विधान बतलाया गया है। पिशाच स्वभावत बडे क्रूरकर्मा होते हैं। इनका स्वभाव बडा ही कठोर, निर्दयी और दुष्ट होता है। मनुष्यो मे जो दुष्ट और नृशस स्वभाव वाले लोग होते है उन्हे 'नरपिशाच' की सज्ञा प्रदान की जाती है। अत जो व्यक्ति इन पिशाचो से आविष्ट होते हैं उन्हे ये बडा ही कष्ट देते है।

(५) परिच्छेद

व्रत और त्यौहार

व्रत का अर्थ तथा विशेषता—धर्म और व्रत मे बडा गहरा सम्बन्ध है। कदाचित् ही कोई ऐसा धर्म होगा जिसमे व्रत के आचरण को महत्व न दिया गया हो। हमारे वैदिक धर्म मे व्रत की महती प्रतिष्ठा है। व्रतो का ठीक ठीक निर्णय करने के लिए तथा उनके उचित रूप से अनुष्ठान के लिए जितना आग्रह हमारे हिन्दू धर्म मे दिखाई पडता है उतना किसी भी धर्म मे नही है। इसीलिए हमारे धर्मशास्त्रो का एक विशेष अग व्रतो के निर्णय तथा अनुष्ठान को लेकर प्रवृत्त होता है।

निरुक्त-कार ने व्रत का सामान्य अर्थ 'कर्म' बतलाया है। यह कर्ता को शुभ अथवा अशुभ रूप से बाँध लेता है इसीलिए इसे 'व्रत' कहते है।

कोई व्यक्ति जो कर्म करता है उसका फल उसे भोगना पड़ता है। इसीलिए कर्म को व्रत कहते है। इस अर्थ मे इसका प्रयोग वैदिक संहिताओ मे अनेक बार हुआ है।[1]

व्रत शब्द का एक दूसरा भी अर्थ है। वह अर्थ है उपवास आदि नियम विशेष। लौकिक संस्कृत मे इसी अर्थ मे इसका विशेष प्रयोग दिखलाई पड़ता है। वेदो मे इस विशेष अर्थ मे भी यह शब्द व्यवहृत हुआ है।[2] यह निवृत्ति रूप व्रत उपवास आदि है जो तीन प्रकार का होता है—(१) नित्य (२) नैमित्तिक और (३) काम्य। नित्य व्रत वह है जिसका अनुष्ठान हमारे लिए अत्यन्त आवश्यक है, जैसे एकादशी का व्रत। नैमित्तिक व्रत किसी विशेष निमित्त, कारण या अवसर को लेकर प्रवृत्त होता है, यथा चान्द्रायण व्रत। काम्य व्रत किसी विशेष कामना की सिद्धि के लिए किया जाता है जैसे सूर्य-षष्ठी व्रत जो पुत्र-प्राप्ति की इच्छा से सम्पादित होता है।

व्रत का प्रधान उद्देश्य आत्म-शुद्धि तथा परमात्म-चिन्तन है। व्रत मे उपवास का विशेष विधान है। परन्तु केवल अन्न और जल के परित्याग से ही उपवास की पूर्ति नही होती। उपवास का शाब्दिक अर्थ है—उप समीपे वास। समीप मे रहना अर्थात् अपने इष्टदेव के पास मे रहना। सच्चा उपवास तो परमात्मा का चिन्तन करते हुए उनके साथ तन्मय होकर रहना है।

त्यौहार—व्रतो का सम्बन्ध ऋतुओ के परिवर्तन से विशेष रूप से है। नयी ऋतु के आगमन पर नये व्रत अथवा नवीन उत्सव का आयोजन प्रायः सर्वत्र पाया जाता है। जैसे वसन्त पञ्चमी और होली। व्रत मे जहाँ उपवास और परमात्म चिन्तन की प्रधानता रहती है वहाँ त्यौहारो मे आनन्द और उल्लास एवं उछाह की अधिकता पायी जाती है। व्रत और त्यौहार मे यही अन्तर है। उदाहरण के लिए एकादशी एक व्रत है परन्तु होली और दिवाली त्योहार माने जाते है। कुछ ऐसे भी पर्व हैं जिनमे व्रत और त्यौहार दोनो का सम्मिलन उपलब्ध होता है जैसे रामनवमी और कृष्ण जन्माष्टमी। इस दिन लोग व्रत भी रखते हैं और उत्सव भी मनाते है। अयोध्या मे रामनवमी पर और मथुरा मे कृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर बहुत बड़ा मेला लगता है।

इन व्रतो और त्यौहारो को प्रधानतया चार श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है।

(१) शुद्ध अध्यात्म सम्बन्धी व्रत

(२) देवी-देवता सम्बन्धी व्रत

(३) महापुरुष सम्बन्धी व्रत

(४) ऋतु सम्बन्धी व्रत

प्रथम कोटि के व्रतो मे एकादशी, महाशिवरात्रि आदि की गणना की जाती है। दूसरी श्रेणी मे उन व्रतो का अन्तर्भाव होता है जो किसी देवी, देवता अथवा महापुरुष से सम्बन्धित है जैसे हनुमान जयन्ती, वामन द्वादशी, गणेश चतुर्थी, शीतलाष्टमी, मातृनवमी आदि। तीसरी श्रेणी के व्रतो मे रामनवमी, कृष्ण जन्माष्टमी, भीष्माष्टमी, भीमसेनी एकादशी परशुराम जयंती की गणना की जाती है। ऋतु सम्बन्धी व्रत वे है जो किसी नवीन ऋतु के आगमन के अवसर पर मनाये जाते है—जैसे होली, दिवाली, दशहरा आदि। इन्हे व्रत न कहकर त्यौहार की संज्ञा प्रदान की जाय तो अधिक समीचीन होगा।

यदि इन व्रतो का श्रेणी विभाजन लिंग की दृष्टि से करना चाहे तो इन्हे तीन वर्गों मे विभक्त करना होगा—

(१) पुरुषो के व्रत (२) स्त्रियो के व्रत (३) उभय लिंगो के व्रत।

पुरुषो के व्रत वे है जो अधिकाश रूप मे पुरुषो के द्वारा ही सम्पन्न किये जाते है जैसे श्रावणी, महालया, रक्षाबंधन, अनन्त आदि। दूसरी कोटि के व्रत वे है जो केवल स्त्रियो के ही द्वारा सम्पादित होते है—जैसे वट-सावित्री, गनगौर, जीवित्पुत्रिका, अहोई और सूर्यषष्ठी व्रत आदि।

तीसरी श्रेणी मे उन व्रतो का अन्तर्भाव किया जा सकता है जिनका अनुष्ठान स्त्री और पुरुष दोनो—उभय लिंग—समान रूप से करते है यथा एकादशी, अक्षय नवमी, महाशिवरात्रि आदि। वर्णन की सुविधा के लिए यहाँ व्रतो का विभाजन इसी क्रम से किया गया है। अतः मास के क्रम से यहाँ व्रतो और त्यौहारो का विवरण निम्नांकित रूप से प्रस्तुत किया जा रहा है—

(१) पुरुषो के व्रत (२) स्त्रियो के व्रत (३) त्यौहार तथा (४) पर्व।

---

१ (क) यथा अथा वयमादित्यस्य व्रते तव। (ऋ० वे०)
(ख) ब्राह्मणा व्रत चारिण। ऋ० वे० ७।१०३।१
(ग) अवक्षामि वरुणस्य व्रतानि। (ऋ० वे०)
२ अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि। शु० यजु० सं० १।५

विजयादशमी

विजयादशमी का त्यौहार आश्विन शुक्ल दशमी को मनाया जाता है। इसे 'दशहरा' भी कहा जाता है। भवान् रामचन्द्र ने लका मे इसी दिन रावण का बध कर दिया था। अत इसी विजय के उपलक्ष मे यह विजयादशमी का त्यौहार सोल्लास मनाया जाता है। राम ने रावण का वध करके इस धराधाम पर राम राज्य की प्रतिष्ठा की। यह त्यौहार हमे अन्याय पर न्याय की असत्य पर सत्य की और अनाचार पर सदाचार की स्थापना का सन्देश देता है। यह कमठता तथा कमण्यता का उपदेश देना है।

समय तथा शास्त्रीय स्वरूप—'ज्योतिर्निबन्ध' नामक ग्रन्थ मे लिखा है कि आश्विन की शुक्ल पक्ष की दशमी को तारा उदय होने के समय 'विजय' नामक काल होता है। यह सब सिद्धि को देने वाला होता है[1]। अत इस दिन विजय की इच्छा करने वाले राजा को चाहिए कि वह हाथी, घोडा, शस्त्रादि तथा अपनी सेना को सुसज्जित करके सीमा का उल्लघन कर शत्रु पर आक्रमण करे।

हेमाद्रि ने लिखा है कि युद्ध का अवसर न होने पर भी राजा को अपने राज्य की सीमा का अतिक्रमण करना अपना परम कतव्य समझना चाहिए। सीमा के बाहर जाकर राजा पूवमुख खडे होकर शमी वृक्ष के मूल मे पृथ्वी पर जल छिडके और शमी वृक्ष की पूजा करे। इसके पश्चात शत्रु के विजय की भावना अपने हृदय मे करके अपने महल मे लौट आवे।

लौकिक स्वरूप—विजयादशमी का त्यौहार भारतवष के प्राय प्रत्येक राज्य मे मनाया जाता है। यह प्रधानतया क्षत्रियों तथा राजाओ का त्यौहार है। इसीलिए इसकी जो शोभा भूतपूव देशी रियासतो मे दिखाई पडती थी वह अब नही पायी जाती। राजस्थान के भूतपूव राजाओ के द्वारा यह त्यौहार बडे ही ठाट बाट के साथ मनाया जाता था। परन्तु मैसूर (आधुनिक कर्नाटक) राज्य का दशहरा भारतभर मे प्रसिद्ध था। इस दिन राजा लोग अपने प्राचीन अस्त्र-शस्त्रो को निकाल कर उनकी पूजा किया करते थे। घोडो को सुन्दर काठी तथा हाथियो को जरी के काम किये गये वेशकीमती झूलो से सजाकर जलूस मे निकाला जाता था। अम्बारी से सजाये गये गजराज पर महाराजाधिराज स्वय विराजमान रहते थे। उनके पीछे घुडसवारो तथा पैदल सैनिको की सेना बडे सजधज के साथ चलती थी। इस जलूस के आगे "मिलिटरी बैण्ड" बजता चलता था जो अपनी एक एक चोट पर, शत्रु पर टूट पडने के लिए प्रोत्साहित करता था। इस प्रकार विजयादशमी का यह त्यौहार भूतपूर्व राजाओ के द्वारा बडे ही शान-शौकत के साथ मनाया जाता था। परन्तु भारतीय सघ मे देशी राज्यो के विलयन के पश्चात् न तो वह राज्य ही रहा और राजा ही। अत दशहरे का वह राजकीय स्वरूप अब नही रहा जो पहिले था।

गाँवो की सामान्य जनता भी इस त्यौहार को बडे उत्साह के साथ मनाती है। प्रत्येक नगर मे छोटा बडा जलूस निकाला जाता है जिसमे दुर्गा जी की प्रतिमा को लोग पालकी पर ढोते है। पहलवान लोग तलवार भाँजकर, मुग्दर उठाकर, बनैठी घुमाकर अपनी शक्ति का प्रदशन करते है। इस जलूस मे लोगो का उत्साह देखते ही बनता है। काशी मे यह दृश्य देखते ही बनना है। यहाँ दुर्गा-पूजा के प्रत्येक स्थान से दुर्गा की मूर्ति के साथ जलूस निकाला जाता है जो दशाश्वमेध घाट तक आता है। यहाँ दुर्गा की प्रतिमा को गगा मे विसर्जित कर दिया जाता है जिसे "दुर्गा भसान" कहते है।

प्रयाग मे दशहरा का जलूस बडा ही शानदार रूप से निकलता है। इसमे सैकडो चौकियाँ निकलती हैं जिनमे पौराणिक, धार्मिक तथा राजनैतिक दश्यो की झाकी दिखलायी जाती है। प्रयाग की चौकियो का जलूस बडा प्रसिद्ध है जिसमे हजारो व्यक्ति सम्मिलित होते है और लाखो नर-नारी दशक के रूप मे उपस्थित रहते हैं।

रात्रि मे रामलीला होती है जिसका प्रारम्भ आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से ही हो जाता है। इस दिन राम लका पर आक्रमण करके रावण का बध करते है। बाँस और कागज की सहायता से रावण की भीमकाय कागजी प्रतिमा बनायी जाती है जिसमे आग लगाकर राम के द्वारा रावण का बध कराया जाता है। यह दृश्य बडा ही प्रभावशाली होता है। वाराणसी के पास स्थित रामनगर की रामलीला बहुत ही प्रसिद्ध है। इसके सम्बन्ध मे कहा जाता है कि—

"लीला रामनगर की भारी,
कजली मिर्जापुर सरदार।"

काशी राज्य के विलयन के पूव रामनगर मे दशहरा के दिन राजकीय जलूस बडे ही ठाट बाट से निकलता था। यहाँ रामलीला आज भी बडे धूमधाम से मनायी जाती है।

---

१ आश्विनस्य सिते पक्षे दशम्यां तारकोदये। स काल विजयो ज्ञेय', सर्व कार्यार्थ सिद्धये।।

गावों में दशहरा के दिन लोग नये वस्त्र धारण करते [illegible] आनन्द से राम लीला देखते हैं। [illegible] पकड़ कर प्रत्येक [illegible] लोगों को [illegible] रवि ने इस [illegible]

काल्ह [illegible] । [illegible] ।
छिपे फिरत [illegible] ।

दशहरे के दिन नीलकण्ठ [illegible] ।

महत्त्व—विजयादशमी [illegible] हमारी संस्कृति का द्योतक व्रत है। विजयादशमी का त्योहार हम [illegible] करते थे। उनके हृदय में अपनी [illegible] एक आर्य सती स्त्री का छल से चुरा लिया था। मर्यादापुरुषोत्तम राम [illegible] तथा भालुओं की अपनी सेना को लेकर सागर को पार किया और रावण पर [illegible] में मिला दिया। और रणक्षेत्र में रावण को अकेले [illegible] किया। यह था एक आर्य स्त्री के अपहरण का फल! रावण [illegible] रखा था। अतः राम ने अन्यायी रावण का वध [illegible] न्याय और [illegible], अन्याचार तथा उत्पीड़न का विनष्ट [illegible] ही विजयादशमी का सन्देश है। यही उपदेश है। यही आदर्श है।

दिवाली

दीपावली हमारा सामाजिक त्योहार है। [illegible] दिवाली शब्द दीपावली का अपभ्रंश रूप है। चूँकि उस दिन [illegible] जाता है अतः उसे दीपावली कहते हैं। यह त्योहार कार्तिक मास की [illegible] अमावस्या [illegible] मनाया जाता है।

धनतेरस—इस त्योहार के साथ [illegible] सम्बद्ध हैं जैसे धनतेरस और अन्नकूट आदि। [illegible] दिवाली [illegible] प्रारम्भ हो जाता है। यह शब्द 'धन त्रयोदशी' का अपभ्रंश रूप है। धनतेरस [illegible] छोटी दिवाली [illegible] यमराज की प्रसन्नता के लिए दीपदान किया जाता है। लोग अपने घर [illegible] दीपक जलाते हैं [illegible] इसीलिए [illegible] इसे छोटी दिवाली कहा जाता है। उस दिन [illegible] बाजार में [illegible] प्रदर्शन के लिए सजाया जाता है जिसकी बड़ी ही सुन्दर शोभा होती है। यह दृश्य बड़ा ही रमणीय [illegible] है। इस दिन नये बरतनों का खरीदना शुभ माना जाता है। [illegible] अवश्य खरीदते हैं। लोगों का ऐसा विश्वास है कि इस दिन बरतन खरीदने से घर में लक्ष्मी (धन) का आगमन [illegible] है। [illegible] दिन यमराज की पूजा की जाती है जिससे वे प्रसन्न रहें तथा असामयिक मृत्यु का निवारण करते रहें। गाँवों में प्रायः छोटी दिवाली नहीं मनायी जाती। बर्तन की दूकानों के अभाव में नये बरतनों का खरीदना भी आवश्यक नहीं माना जाता।

दीपावली—इस त्योहार को मनाने के लिए महीनों पहिले मकान की सफाई की जाती है। पक्के मकानों में टूटे-फूटे स्थानों की मरम्मत करके उनकी चूना से पोताई की जाती है। कच्चे घरों की दीवारों को गोबर और मिट्टी से लीपा जाता है। घर का सालभर का कूड़ा करकट बटोर कर उसे बाहर फेंक दिया जाता है और इस प्रकार घर को पवित्र तथा स्वच्छ किया जाता है।

दीपावली के दिन सायंकाल को लक्ष्मी की पूजा की जाती है। मिट्टी की बनी हुई गणेश और लक्ष्मी की प्रतिमा का पूजन है। नाना प्रकार के नवीन वस्त्रों से लक्ष्मी का मण्डप बनाकर और उसे रत्न-पुष्पों से सुसज्जित करके भगवती लक्ष्मी की षोडशोपचार पूजा करने का इस दिन विधान बतलाया गया है। दीपों के समूह के द्वारा वृक्ष की आकृति [illegible] खजाने में अथवा अन्य किसी स्थान पर लक्ष्मी की प्रतिमा को स्थापित करके विधिवत् पूजन करना चाहिए। इस पूजा से घर [illegible] की वृद्धि होती है ऐसा लोगों का विश्वास है। इसीलिए अनेक व्यक्ति लक्ष्मी के आगमन के लिए अपने घर का द्वार रात भर खोले रखते हैं और पूरी रात्रि में जागरण करते रहते हैं।

दीपावली के दिन प्रत्येक व्यक्ति अपने घर में दीपक जलाता है। धनी मानी व्यक्तियों की तो बात ही दूसरी है, गरीब

आदमी भी दो चार दीपक अवश्य ही जलाता है। होली की ही भांति इस त्यौहार को सभी वर्ण तथा जातियों के लोग बडे उत्साह से मनाते हैं। होली को छोडकर यही हमारा सर्वप्रिय और लोक प्रचलित पर्व है। यह गाँवो तथा नगरो मे समान रूप से मनाया जाता है। अमावस्या की काली रात मे असख्य दीपको का प्रकाश सचमुच ही बडा सुहावना मालूम पडता है। यह अन्धकार का तो नाश करता ही है इसके साथ ही हमारी गन्दगी को भी दूर करता है।

वर्तमान स्वरूप—ऐसा कहा जाता है भगवान् रामचन्द्र ने रावण का वध करके सीता का उद्धार किया था। अधर्म पर धर्म की इस विजय के उपलक्ष मे लोगो ने अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने के लिए दीपको का जलाया। तभी से दीपावली का यह त्योहार प्रचलित हो गया। यह परम्परा आज अक्षुण्ण रीति से चली आ रही है। यो तो प्रत्येक स्थान की दिवाली दर्शनीय होती है परन्तु काशी, बम्बई तथा अमृतसर (पजाब) की दीपावली प्रसिद्ध मानी जाती है। बम्बई मे जलते हुए दीपो का अगणित प्रकाश जब समुद्र मे पडता है तब उसकी अलौकिक शोभा होती है।

आजकल बिजली के युग मे अनेक धनी व्यक्ति दीपको के स्थान पर लाल हरे, पीले रगीन बल्बो को जलाकर इस उत्सव को मनाते है। इस दिन मित्रगण आपस मे एक दूसरे से मिलते है और एक दूसरे के घर मिठाइयाँ भिजवाते है। इन दिनो सडको तथा गलियो मे छोटे छोटे बच्चे "एक लगाओ, तीन पाओ" की आवाज लगाते हुए जुआ खेलते दिखाई पडते है। गाँवो मे कौडी के द्वारा लोग जुआ खेलते है जिसमे कुछ व्यक्ति अपना सर्वस्व गँवा देते है।

वैश्य लोगो के लिए यह त्यौहार उनके व्यापार का प्रथम दिन समझा जाता है। वे इसी दिन से अपना हिसाब किताब चुकता करके अपनी नयी बही बनाते और नया खाता चालू करते है। जिस प्रकार दशहरा क्षत्रियो का त्यौहार है उसी प्रकार दीपावली प्रधानतया वैश्यो का त्यौहार माना जाता है, यद्यपि इसमे सभी वर्गो के लोग समान रूप से भाग लेते है।

महत्त्व—जहाँ हमारे अन्य व्रत और त्यौहार आतरिक शुद्धि तथा पवित्रता की ओर ध्यान देते है वहा यह त्यौहार वाह्य पवित्रता तथा स्वच्छता के लिए मनाया जाता है। वर्षाऋतु की गदगी और कूडा-करकट को दूर कर हम इसे मनाते हैं जिससे वातावरण शुद्ध और पवित्र हो जाता है। दीपावली हमे सिविक सेन्स (नागरिक आचरण) की शिक्षा देती है। यह वाह्य शुद्धि तथा स्वच्छता का त्यौहार है।

दलिद्दर खेदना—गावो मे दीपावली के दूसरे दिन प्रात काल मे दरिद्रा—नि सारण की प्रथा प्रचलित है जिसे भोजपुरी भाषा मे "दलिद्दर खेदना" कहा जाता है। इस दिन घर की सबसे बूढी स्त्री अपने बाये मे सूप और दाहिने हाथ मे बाँस की छडी लेकर उस सूप को पीटती अर्थात् ढबढबाती चलती है। वह सूप को पीटते हुए वह प्रत्येक घर के कोने कोने मे जाती है और इस निम्नांकित वाक्य को बार बार दुहराती जाती है—

इस्सर पइससु, दलिद्दर निकससु।
अवरू लछिमी जी डेहरि चढि बइठसु॥"

अर्थात् दरिद्रता मेरे घर से निकल जाय और ऐश्वर्य रूपी भगवान् गृह मे प्रवेश करे। भगवती लक्ष्मी मेरे घर के द्वार पर चढ़ कर बैठें अर्थात् गृह मे आगमन करे। इस मत्र का पढते हुए घर की बुढिया सूप का घर से बाहर फेक आती है और वह समझती है अब मेरे घर की दरिद्रता दूर हो गई। इसी प्रथा को लक्षित करके हिन्दी मे यह कहावत प्रचलित हो गई है कि—"सूप के ढकढकाने से दरिद्रता दूर नहीं होती।" परन्तु ग्रामीण जनता का यह दृढ विश्वास है कि "दलिद्दर खेदना" की इस प्रथा मे घर की दरिद्रता नष्ट हो जाती है।

अन्नकूट—कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को अन्नकूट का महोत्सव मनाया जाता है। वास्तव मे अन्नकूट का उत्सव गोवर्धन पूजा का त्योहार है। प्राचीन काल मे जनता इन्द्र की पूजा किया करती थी। इन्द्र भगवान् को भोग लगाने के लिए अनेक प्रकार के पक्वान्न तथा मिठाइया बनायी जाती थी। इन्द्र इनको ग्रहण कर प्रसन्न होकर लोगो का कल्याण करते थे।

ब्रजमण्डल मे विशेषतया गोवर्धन मे अन्नकूट का त्यौहार बडे ठाट-बाट से मनाया जाता है। उस दिन अनेक प्रकार के पक्वान्नो तथा मिष्ठान्नो का भोग लगाया जाता है। राजस्थान मे नाथद्वारा मे इस त्यौहार का वैभव दर्शनीय होता है। इस दिन भगवान को छप्पन प्रकार का नही बल्कि सैकडो प्रकार का भोग लगाया जाता है। वाराणसी मे विश्वनाथ और अन्नपूर्णा जी के मदिरो मे इस दिन पक्वान्नो तथा मिष्ठान्नो की विभिन्नता दर्शनीय होती है। इसी दिन अन्नपूर्णा का नाम सार्थक प्रतीत होता है। विश्वनाथ जी के मदिर मे मिठाई का पहाड दर्शनीय होता है। तुलसी मानस मदिर मे कलात्मक ढग से मिष्ठान्नो को सजाया जाता है। सचमुच यह त्यौहार हमारे देश की वैभव, सम्पन्नता का सूचक था। परन्तु इस भीषण महगाई मे इसका ह्रास हो रहा है।

गावो मे दशहरा के दिन लोग नये वस्त्र धारण करते तथा पूजा, पूड़ी बनाकर खाते है। रात मे बड़े आनन्द से रामलीला देखते है। लोगो का ऐसा विश्वास है कि आज नीलकण्ठ का दर्शन करना शुभ है। अतः इसलिये नीलकण्ठ को पकड़ कर प्रत्येक घर पर ले जाकर लोगो को इसका दर्शन कराते है। ऐसा ज्ञात होता है यह प्रथा बहुत पुरानी है। हिन्दी के एक कवि ने इस लोक विश्वास को और निम्नलिखित दोहे में व्यक्त किया है।

काल्हि दशहरा बीतिहै, धरु बौरज हिय लाज।
छिपे फिरत तुम का‍हे मे नीलकण्ठ बिन काज।"

दशहरे के दिन नीलकण्ठ के दर्शन को क्या शुभ माना जाता है उसके रहस्य का बतलाना कठिन है।

महत्त्व—विजयादशमी का त्योहार हमारा परम पुनीत पर्व है। यह हमारा राष्ट्रीय त्योहार है। यह हमारी संस्कृति का द्योतक व्रत है। विजयादशमी का त्योहार हमे यह बतलाता है कि प्राचीन आर्य हिन्दू अपनी स्त्रियो का कितना सम्मान करते थे। उनके हृदय मे अपनी ललनाओ के प्रति कितना आदर था। दुष्ट रावण ने आर्या सीता का अपहरण किया था। उसने एक आर्य सती स्त्री का छल से चुरा लिया था। मर्यादापुरुषोत्तम राम भला इस अपमान को कैसे सह सकते थे? उन्होने बन्दरो तथा भालूओ की अपनी सेना को लेकर सागर को पार किया और रावण पर आक्रमण कर उसकी सोने की लंका को धूल मे मिला दिया। और रणक्षेत्र मे रावण को अकेले ही नहीं बल्कि सपरिवार यमलोक का टिकट कटाकर उसे विदा कर दिया। यह था एक आर्य स्त्री के अपहरण का फल। रावण ने देवताओ पर अनेक अत्याचार कर अन्याय का राज्य फैला रखा था। अतः राम ने अन्यायी रावण का वध कर इस लोक मे न्याय और धर्म की स्थापना की। अन्याय का समूल नाश कर, अत्याचार तथा उत्पीड़न का विनष्ट कर और अनाचार का अन्त कर इस धरा धाम पर न्याय, धर्म, और सदाचार की प्रतिष्ठा करना ही विजयादशमी का सन्देश है। यही उपदेश है। यही आदर्श है।

दिवाली

दीपावली हमारा सामाजिक त्योहार है। यह जनसाधारण मे दिवाली के नाम से प्रसिद्ध है। दिवाली शब्द दीपावली का अपभ्रंश रूप है। चूंकि उस दिन दीपो की पंक्ति अर्थात समूह—अनेक दीपो—को एक साथ जलाया जाता है अतः उसे दीपावली कहते है। यह त्योहार कार्तिक मास की (कृष्ण पक्ष की) अमावस्या को प्रतिवर्ष मनाया जाता है।

धनतेरस—इस त्योहार के साथ अन्य छोटे छोटे त्योहार और अनेक उत्सव सम्बद्ध है जैसे धनतेरस और अन्नकूट आदि। सच तो यह है कि दिवाली का त्योहार धनतेरस से ही प्रारम्भ हो जाता है। यह शब्द 'धन त्रयोदशी' का अपभ्रंश रूप है। धनतेरस को छोटी दिवाली भी कहते है। इस दिन यमराज की प्रसन्नता के लिए दीपदान किया जाता है। लोग अपने घर मे दीपक जलाते है परन्तु अल्प मात्रा मे। इसीलिए सम्भवतः इसे छोटी दिवाली कहा जाता है। इस दिन बाजार मे सामग्री सजाई जाती है तथा बर्तनो का प्रदर्शन के लिए सजाया जाता है जिसकी बड़ी ही सुन्दर शोभा होती है। यह दृश्य बड़ा ही रमणीय तथा चित्ताकर्षक होता है। इस दिन नये बर्तनो का खरीदना शुभ माना जाता है। ... सभी लोग छोटा या बड़ा बर्तन इस दिन अवश्य खरीदते है। लोगो का ऐसा विश्वास है कि इस दिन बर्तन खरीदने से घर मे लक्ष्मी (धन) का आगमन होता है। इस दिन यमराज की पूजा की जाती है जिससे वे प्रसन्न रहे तथा असामयिक मृत्यु का निवारण करते रहे। गावो मे प्राय छोटी दिवाली नहीं मनायी जाती। बर्तन की दुकानो के अभाव मे नये बर्तनो का खरीदना भी आवश्यक नहीं माना जाता।

दीपावली—इस त्योहार को मनाने के लिए महीनो पहिले मकानो की सफाई की जाती है। पक्के मकानो मे टूटे-फूटे स्थानो की मरम्मत करके उसकी चूने से पोताई की जाती है। कच्चे घरो की दीवारो को गोबर और मिट्टी से लीपा जाता है। घर का सालभर का कूड़ा करकट बटोर कर उसे बाहर फेंक दिया जाता है और इस प्रकार घर को पवित्र तथा स्वच्छ किया जाता है।

दीपावली के दिन सायकाल को लक्ष्मी की पूजा की जाती है। मिट्टी की बनी हुई गणेश और लक्ष्मी की प्रतिमा को पूजते है। नाना प्रकार के नवीन वस्त्रो से लक्ष्मी का मण्डप बनाकर और उसे पत्र-पुष्पो से सुसज्जित करके भगवती लक्ष्मी की षोडशोपचार पूजा करने का इस दिन विधान बतलाया गया है। दीपो के समूह के द्वारा वृक्ष की आकृति बनाकर खजाने मे अथवा अन्य किसी स्थान पर लक्ष्मी की प्रतिमा को स्थापित करके विधिवत पूजन करना चाहिए। इस पूजा से धन-धान्य की वृद्धि होती है ऐसा लोगो का विश्वास है। इसीलिए अनेक व्यक्ति लक्ष्मी के आगमन के लिए अपने घर का द्वार रात भर खोल रखते है और पूरी रात्रि मे जागरण करते रहते है।

दीपावली के दिन प्रत्येक व्यक्ति अपने घर में दीपक जलाता है। धनी मानी व्यक्तियो की तो बात ही दूसरी है, गरीब

आदमी भी दो चार दीपक अवश्य ही जलाता है। होली की ही भांति इस त्यौहार को सभी वर्ण तथा जातियो के लोग वडे उत्साह से मनाते है। होली को छोडकर यही हमारा सर्वप्रिय और लोक प्रचलित पर्व है। यह गावो तथा नगरो मे समान रूप से मनाया जाता है। अमावस्या की काली रात मे असख्य दीपको का प्रकाश सचमुच ही बडा सुहावना मालूम पडता है। यह अन्धकार का तो नाश करता ही है इसके साथ ही हमारी गन्दगी को भी दूर करता है।

वर्तमान स्वरूप—ऐसा कहा जाता है भगवान् रामचन्द्र ने रावण का वध करके सीता का उद्धार किया था। अधर्म पर धर्म की इस विजय के उपलक्ष मे लोगो ने अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने के लिए दीपको को जलाया। तभी से दीपावली का यह त्याहार प्रचलित हो गया। यह परम्परा आज अक्षुण्ण रीति से चली आ रही है। या तो प्रत्येक स्थान की दिवाली दर्शनीय होती है परन्तु काशी, बम्बई तथा अमृतसर (पजाब) की दीपावली प्रसिद्ध मानी जाती है। बम्बई मे जलते हुए दीपो का अगणित प्रकाश जब समुद्र मे पडता है तब उसकी अलौकिक शोभा होती है।

आजकल बिजली के युग मे अनेक धनी व्यक्ति दीपको के स्थान पर लाल, हरे, पीले रगीन बल्बो को जलाकर इस उत्सव को मनाते हे। इस दिन मित्रगण आपस मे एक दूसरे से मिलते है ओर एक दूसरे के घर मिठाइयाँ भिजवाते है। इन दिनो सडको तथा गलियो मे छोटे छोटे बच्चे "एक लगाओ, तीन पाओ" की आवाज लगाते हुए जुआ खेलते दिखाई पडते है। गाँवो मे कौडी के द्वारा लोग जुआ खेलते हे जिसमे कुछ व्यक्ति अपना सर्वस्व गँवा देते है।

वैश्य लोगो के लिए यह त्यौहार उनके व्यापार का प्रथम दिन समझा जाता है। वे इसी दिन से अपना हिसाब किताब चुकता करके अपनी नयी बही बनाते और नया खाता चालू करते है। जिस प्रकार दशहरा क्षत्रियो का त्यौहार है उसी प्रकार दीपावली प्रधानतया वैश्यो का त्यौहार माना जाता है, यद्यपि इसमे सभी वर्गो के लोग समान रूप से भाग लेते हे।

महत्त्व—जहाँ हमारे अन्य व्रत और त्यौहार आन्तरिक शुद्धि तथा पवित्रता की ओर ध्यान देते है वहाँ यह त्यौहार वाह्य पवित्रता तथा स्वच्छता के लिए मनाया जाता है। वर्षाऋतु की गदगी और कूडा-करकट को दूर कर हम इसे मनाते हैं जिससे वातावरण शुद्ध और पवित्र हो जाता है। दीपावली हमे सिविक सेन्स (नागरिक आचरण) की शिक्षा देती है। यह वाह्य शुद्धि तथा स्वच्छता का त्यौहार है।

दलिद्दर खेदना—गावो मे दीपावली के दूसरे दिन प्रातःकाल मे दरिद्रा—निःसारण की प्रथा प्रचलित है जिसे भोजपुरी भाषा मे "दलिद्दर खेदना" कहा जाता है। इस दिन घर की सबसे बूढी स्त्री अपने बाये मे सूप और दाहिने हाथ मे बाँस की छडी लेकर उस सूप को पीटती अर्थात् डबडवाती चलती है। वह सूप को पीटते हुए वह प्रत्येक घर के कोने कोने मे जाती है और इस निम्नांकित वाक्य को बार बार दुहराती जाती है—

> **इस्सर पइससु, दलिद्दर निकससु।**
> **अवरू लछिमी जी डेहरि चढि बइठसु।।"**

अर्थात् दरिद्रता मेरे घर से निकल जाय ओर ऐश्वर्य रूपी भगवान् गृह मे प्रवेश करे। भगवती लक्ष्मी मेरे घर के द्वार पर चढ कर बैठ अर्थात गृह मे आगमन करे। इस मत्र का पढते हुए घर की बुढिया सूप का घर से बाहर फेक आती है और वह समझती है अब मेरे घर की दरिद्रता दूर हो गई। इसी प्रथा को लक्षित करके हिन्दी मे यह कहावत प्रचलित हो गई है कि— "सूप के ढमढमाने से दरिद्रता दूर नही होती।" परन्तु ग्रामीण जनता का यह दृढ विश्वास है कि "दलिद्दर खेदना" की इस प्रथा से घर की दरिद्रता नष्ट हो जाती है।

अन्नकूट—कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को अन्नकूट का महोत्सव मनाया जाता है। वास्तव मे अन्नकूट का उत्सव गोवर्धन पूजा का त्याहार है। प्राचीन काल मे जनता इन्द्र की पूजा किया करती थी। इन्द्र भगवान् को भोग लगाने के लिए अनेक प्रकार के पक्वान्न तथा मिठाइया बनायी जाती थी। इन्द्र इनको ग्रहण कर प्रसन्न होकर लोगो का कल्याण करते थे।

ब्रजमण्डल मे विशेषतया गोवर्धन मे अन्नकूट का त्यौहार बडे ठाट-बाट से मनाया जाता है। उस दिन अनेक प्रकार के पक्वान्नो तथा मिष्ठान्नो का भोग लगाया जाता है। राजस्थान मे नाथद्वारा मे इस त्योहार का वैभव दर्शनीय होता है। इस दिन भगवान को छप्पन प्रकार का नही बल्कि सैकडो प्रकार का भोग लगाया जाता है। वाराणसी मे विश्वनाथ और अन्नपूर्णा जी के मदिरो मे इस दिन पक्वान्नो तथा मिष्ठान्नो की विभिन्नता दर्शनीय होती है। इसी दिन अन्नपूर्णा का नाम सार्थक प्रतीत होता है। विश्वनाथ जी के मदिर मे मिठाई का पहाड दर्शनीय होता है। तुलसी मानस मदिर मे कलात्मक ढग से मिष्ठान्नो को सजाया जाता है। सचमुच यह त्यौहार हमारे देश की वैभव, सम्पन्नता का सूचक था। परन्तु इस भीषण महगाई मे इसका ह्रास हो रहा है।

होली

फाल्गुन मास की पूर्णिमा को होली का त्योहार मनाया जाता है। इसे 'होलिकोत्सव' भी कहा जाता है। होली हमारा सबसे बडा, प्रसिद्ध तथा सर्वाधिक लोकप्रिय त्योहार है। इसे आबाल-वृद्ध-वनिता सभी बडे ही उत्साह के साथ मनाते है। इसके समान आनन्द, उछाह तथा प्रसन्नता देने वाला कोई अन्य त्योहार नही है। हमारे प्रसिद्ध त्योहारो की त्रयी—होली, दशहरा तथा दिवाली मे होली का स्थान सर्वप्रथम है। यह हमारे सामाजिक त्योहारो मे सर्वश्रेष्ठ, सर्वप्रसिद्ध तथा सबसे अधिक लोक-प्रचलित है। आज के दिन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—सभी वर्णों के लोग बडे आनन्दित दिखाई देते है। इस त्योहार मे न तो कोई जाति-भेद माना जाता है ओर न वर्ग-भेद। सभी लोग आज के दिन ऊँच-नीच के भावो को भुलाकर एक दूसरे के गले मिलते है ओर इस प्रकार प्रेम का प्रदर्शन करते है। जो उत्साह ओर आनन्द ईसाई लोग क्रिसमस (बडे दिन) के त्यौहार मे मनाते है उससे कई गुना आनन्द इस त्योहार के दिन सभी वर्णों के लोग प्राप्त करते है।

वसन्त की ऋतु ओर फागुन का मादक तथा मनभावन महीना इसके आनन्द मे शताधिक वृद्धि कर देता है। इस त्यौहार की सबसे बडी विशेषता है, मस्ती, मोज ओर आनन्द। फागुन का मास यो ही मस्ती का महीना माना जाता है, फिर होली के दिन क्या कहना है? इस मास मे बूढो की नसो मे भी जवानी का खून दौडने लगता है ओर उनके मुरझाये तथा खूसट मन मे भी जवानी का जोश जाग पडता है। उनकी तबीयत हरी हो जाती है तथा वे भी हास-परिहास मे रस लेने लगते है। इसीलिए गाँवो मे यह कहावत प्रचलित है कि—

'भरि फागुन बुढवा देवर लागें"

अर्थात फागुन के महीना मे बूढ भी देवर के समान हँसी-मजाक करने लगते है।

शास्त्रीय स्वरूप—प्रतिपदा, चतुर्दशी की तिथि मे भद्रा मे, दिन मे होली जलाना सर्वथा निषिद्ध है। होलिका दहन के समय काष्ठ का संग्रह करके उसे जलाना चाहिए। इस दिन व्रती को चाहिए कि वह प्रात स्नानादि के अनन्तर होलिका के दहन-स्थान को जल के प्रोक्षण से शुद्ध करे। पश्चात सायंकाल मे समस्त नगर या ग्रामवासियो के साथ होलिका के पास जाकर पूर्व या उत्तर की ओर मुँह करके आसन पर बैठे। इसके पश्चात् होलिका पूजन का संकल्प करके पूर्णिमा तिथि के होने पर किसी अछूत के घर से अथवा सूतिका-गृह से किसी बालक के द्वारा अग्नि मगवा कर होलिका को जलावे। आग के प्रचण्ड रूप धारण करने पर मंत्र पढते हुए तीन बार उसकी प्रदक्षिणा करें और अर्घ्य दे। उसके बाद गेहूँ, चने और जौ की बाल को इस अग्नि की ज्वाला मे सेंके तथा पकाये गये उस नये अन्न को तथा होलिका-दहन के भस्म को लेकर घर लौट आवे।

फाल्गुनी पूर्णिमा को वैष्णव लोग दोलोत्सव मनाते है। ब्रह्मपुराण मे लिखा है कि इस दिन गोविन्द पुरुषोत्तम को जो मनुष्य हिंडोले मे झुलाता है वह वैकुण्ठ मे जाता है। यह उत्सव होली मनाने के बाद किया जाता है।

लौकिक स्वरूप—वसन्त का आगमन तो माघ शुक्ल पंचमी—अर्थात् वसन्त पञ्चमी से ही माना जाता है परन्तु होली की तैयारी फाल्गुन मास के प्रारम्भ से ही शुरू हो जाती है। गाँव के नटखट लडके किसी के घर से लकडी और किसी झोपडी से उपले (गोइंठा) चुराकर ले जाते है और उसे चौराहे पर होलिका मे जलाने के लिए एकट्ठे करने जाते है। होलिका दहन के दिन तो ये लोग किसी के घर की खाट, काठ उठा लाते है ओर किसी गरीब का छप्पर लाकर होलिका मे जला देते है। होलिका के चारो ओर प्रदक्षिणा कर इसमे आग लगा दी जाती है और थोडी ही देर मे यह जल कर भस्म हो जाती है। इसीलिए हिन्दी के किसी कवि ने ठीक ही कहा है कि—

चोरी करि होरी रची,
भई तनक मे छार।"

जब होलिका जलती रहती है उस समय गाँव के लडके, कच्चे बाँस की छडी मे बाँस की सूखी हुई पत्तियो को छेदकर इकटठी करते है फिर उसमे आग लगाकर इधर उधर दौडते हुए भाँजते है जिसे 'बनैठी भाँजना' कहा जाता है। सामान्य जनता का यह विश्वास है कि यदि होलिका मे बालको को उबटन लगाकर इसमे जला दिया जाय तो वे सालभर तक स्वस्थ रहते है। अत माताये अपने छोटे बच्चे के शरीर मे उबटन या बुकवा लगाकर उसकी झिल्ली को आग मे जला देती है।

होलिका दहन के दूसरे दिन होली मनाई जाती है। शहरो मे यह प्रथा है कि पूर्वान्ह मे गुलाल अथवा पीले रग को पानी मे घोलकर एक दूसरे पर रग डालते है। अपने मित्रो तथा परिचितो को रंग से शराबोर कर देते हैं। अपरान्ह मे सूखे रग से होली खेली जाती है। परन्तु गाँवो मे इस प्रथा मे कुछ भिन्नता पायी जाती है। वहाँ दिन के पूर्वान्ह मे मिट्टी, गोबर तथा कीचड आदि एक दूसरे के शरीर मे लपेट कर होली खेली जाती है तथा अपरान्ह मे गीले तथा सूखे रंग से।

इस दिन गाव के बालक तथा बनितायें नया वस्त्र धारण करती हे। वालका के लिए मलमल का कुर्ता सिलवाया जाता है जिसको धारण कर वे होली खेलते है। इस दिन गरीव व्यक्ति के घर मे भी पूडी, पुआ आर खीर खाया जाता हे। फिर धनी तथा समृद्ध लोगो का क्या कहना? बहुत लोग होली के दिन भाँग भी छानते है।

इस दिन होली भी गायी जाती है जिसे भोजपुरी प्रदेश मे 'फगुआ' भी कहा जाता है। गवैयो का दल होली गात हुए गाव मे घर घर घूमता है। इन गावो मे 'कबीर' और गालियो की ही अधिकता होती है। इस दिन की गाली को कोई बुरा नही मानता। यह कहावत प्रसिद्ध हे कि —

"भाइ बुरा न मानो होली"

ऐसा ज्ञात होता है कि इस दिन मजाक करने तथा गाली देने के लिए सबको छूट मिल गयी है। गावा म किसी धनी व्यक्ति के घर रात मे होली गान का उत्सव मनाया जाता है।

वाराणसी म होली के दिन दशाश्वमेध घाट पर स्थित चौसट्ठी देवी का दशन करना आवश्यक माना जाता ह। अत इम मदिर मे बडी भीड होती है। कुछ लोग अपने परिचितो के गाल मे गुलाल मलते हुए दिखाई पडते ह आर माज मे आकर गाली भी बकते हे। होली हमारी मस्ती तथा मौज का त्योहार है। हम वष भर के अपने समस्त दु खो का भुलाकर वैर ओर ईर्ष्या को दूर कर सबसे प्रेम से मिलते है। इस प्रकार सावजनीन प्रेम ओर मस्ती ही होली का सन्देश हे।

रथ-यात्रा

आषाढ शुक्ल द्वितीया को रथयात्रा का उत्सव मनाया जाता है। इस दिन पुष्य नक्षत्र मे सुभद्रा सहित भगवान् को रथ मे बैटाकर यात्रा करनी चाहिए। यो तो भारतवष मे सवत्र ही रथ-यात्रा का महोत्सव मनाया जाता है परन्तु इस दिन जो बृहत् समारोह उडीसा राज्य के पुरी नामक नगर मे मनाया जाता है वैसा अन्यत्र दिखाई पडना कठिन हे। भगवान् जगन्नाथ के इस महोत्सव के कारण इस नगर का नाँव जगन्नाथपुरी पड गया है।

इम पुरी का सबसे बडा आकषण भगवान् जगन्नाथ का मन्दिर है। इस मदिर का बाहरी घेरा ६६६ फीट लम्वा और ६४५ फीट चोडा है। इसका कगूरेदार प्राकार (चहारदिवारी) लगभग २२ फीट ऊँचा है। मिहद्वार के सामने एक ही पापाण खण्ड का बना हुआ ३५ फीट ऊँचा एक अरुण-स्तम्भ है जिसके सिरे पर सूय और उनके रथ के सारथी अरुण देवता की मूर्ति स्थापित है। बाहरी प्राकार के भीतर ४५० फीट लम्बा और ३०० फीट चौडा एक दूसरा दीवालो का घेरा बना है जिमके भीतर जगन्नाथ जी तथा अन्य देवताओ की मूर्तियाँ स्थापित है। कहा जाता है वतमान मदिर का निर्माण ११८४ ई० से लेकर ११९८ ई० तक किया गया था।

जगन्नाथ जी के मदिर मे भगवान् जगन्नाथ, बलराम तथा सुभद्रा तीनो की मूर्तिया विराजमान है। ये मूर्तिया पाषाण की न होकर लकडी से बनायी गयी है अत इन्हे 'दारुमय' कहा जा सकता है।

इस नगरी का सबसे बडा त्यौहार रथयात्रा है। इस दिन भगवान् के दशन के लिए यात्रियो की अपार भीड देश के कोने कोने से आकर एकत्रित होती है। इस दिन भगवान् रथ मे बैठ कर यात्रा करते है। इस विशाल रथ को खीचने के लिए ४२०० व्यक्ति लगाये जाते है जिन्हे मदिर की ओर से माफी जमीन मिली है। परन्तु इनके अतिरिक्त भगवान् के रथ को लाखो आदमी मिल कर खीचते है। भगवान के रथ को खीचना बडा ही पुण्यदायक माना जाता है अत लाखो दशनार्थियो की एकमात्र यही लालसा रहती है कि वह जगन्नाथ जी के रथ को स्वय खीचे। भगवान् रथ मे बैठकर जनकपुर जाते है और वहा तीन दिन रहकर पुन लौट आते है। रथयात्रा का यह दृश्य बडा ही दिव्य तथा दशनीय होता है। काशी मे भी यह उत्सव मनाया जाता है, जहा रथयात्रा की चौमुहानी पर लगता है। रथयात्रा के दिन ऊँच-नीच का भेद-भाव भुलाकर सभी वण एव जाति के लोग भगवान् के रथ को खीचते है एव छूआछूत की भावना को भगाकर भगवान का प्रसाद (पकाया हुआ भात) ग्रहण करते हे। समानता, मित्रता एकता की यही भावना इस त्यौहार का सन्देश है।

नाग-पचमी

श्रावण शुक्ला पचमी को नाग-पचमी कहा जाता है इसका कारण यह है कि इसी दिन नाग अर्थात् सप की पूजा की जाती है। इस पूजा का सर्वत्र प्रचार पाया जाता है।

इम दिन प्रात काल उठकर घर की लडकियाँ अथवा स्त्रिया गोवर से सारे घर को आवेष्टित् करती है और घर की सभी बाहरी दीवालो पर गोबर से रेखा बनाती है। इसके पश्चात् वे गृह के प्रधान द्वार के दोनो ओर नाग की दो प्रतिमाओ

को चित्रित करती है। शहरो मे जहा गोबर उपलब्ध नही होता वहा वे नाग के कागज पर बने चित्रा को द्वार पर चिपका दिया जाता है। वाराणसी नगर मे आज के दिन प्रात काल छोटे-छोटे बच्चे "नाग लो भाई नाग लो। छोटे गुरु का बडे गुरु का नाग लो भाई नाग लो" चिल्लाते हुए पाये जाते है। नाग की प्रतिमा के निर्माण के पश्चात् उनकी विधिवत् पूजा की जाती है। एक कटोरे मे धान का लावा और दूध भरकर किसी एकान्त स्थान मे घर के कोने मे रख दिया जाता है। लोगो का यह विश्वास है कि नाग देवता आज स्वय प्रकट होते है ओर दूध पीते है। जनता की ऐसी दृढ धारणा है कि जो इस दिन अर्थात् नाग पचमी को नाग की पूजा करते है उन्हे सर्पदश का भय नही रहता। कदाचित् सर्प काट भी दे तो उसके विष का कुछ असर नही होता।

इस तिथि को 'नाग पचैंयाँ' भी कहते है जो नागपचमी का ही अपभ्रश रूप है। कही कही उस दिन कुश्ती का दगल भी होता है जिसमे बडे बडे पहलवान भाग लेकर अपनी शारीरिक शक्ति का प्रदर्शन करते है। काशी मे इस दिन 'नागकुँआ' नामक स्थान मे सस्कृत के पण्डितो का जमघट होता है जहाँ वे आपस मे शास्त्रार्थ करते है और अपनी पण्डिताई का परिचय देते है। इस दिन वहा एकत्रित लोग 'नागकुँआ' का जल पीते है और नाग देवता का दर्शन कर घर लौटते है।

नागपचमी का त्यौहार हमारी उदारता तथा विशाल हृदयता का स्मरण दिलाता है। ससार मे सभवत हिन्दू ही इतने उदार है कि वे सर्प जैसे दुष्ट जीव की पूजा करते है और उन्हे दूध पिलाते है। धार्मिक सहिष्णुता की भावना हमारे हृदय मे इतनी अधिक मात्रा मे विद्यमान है कि हम शत्रु रूप के प्रतीक हिंसक जीवो को केवल आश्रय ही नही देते बल्कि उनकी पूजा भी करते है। अत इस त्यौहार से हमे उदारता तथा सहिष्णुता की शिक्षा लेनी चाहिए और अपने जीवन मे इन दोनो सद्गुणो को व्यावहारिक रूप देना चाहिये।

रक्षा-बन्धन

श्रावण की पूर्णिमा को यह त्यौहार मनाया जाता है। गाँवो मे यह राखी के नाम से विख्यात है। उत्तरप्रदेश के पश्चिमी जिलो मे यह 'सलूनो' के नाम से जाना जाता है। यह वास्तव मे भाई और बहिन के स्वाभाविक प्रेम का द्योतक त्यौहार है।

राखी का त्योहार प्राय पूरे देश मे मनाया जाता है। आज के दिन पण्डित लोग पीले रग मे रँगा हुआ सूत अपने यजमानो के हाथ मे बाधते है और फलस्वरूप ये इन्हे दक्षिणा देते है। परन्तु आजकल रेशम और प्लास्टिक की राखियाँ भी चल पडी है जिसे शौकीन लोग अपने हाथो मे बाँधते है।

राखी के दिन बहिन अपने भाई के भाल मे पहिले तिलक लगाती है। फिर उसे नारियल और मिष्ठान्न देती है। उसके बाद उसके हाथ मे राखी बाँधती है। इस रक्षा सूत्र के बाँधने का रहस्य यह है कि बहिन अपने भाई की रक्षा की कामना करती है। मध्यकाल मे भी इस त्यौहार की परम्परा पायी जाती है। यदि कोई स्त्री किसी दूसरे व्यक्ति के भी हाथ मे यदि राखी बाध देती थी तो वह उसका 'राखीबन्ध भाई' हो जाता था और उसका यह कर्तव्य होता था कि वह अपनी 'बहिन' की प्रतिष्ठा और इज्जत की रक्षा करे। ऐसी अनेक घटनाओ से मध्ययुगीन भारत का इतिहास भरा पडा है।

कजरी

यह त्यौहार भाद्रकृष्ण तृतीया को मनाया जाता है? इसीलिए इसे कजरी तीज भी कहते है। यह स्त्रियो का बहुत बडा त्यौहार है। इस दिन स्त्रियाँ नवीन वस्त्र धारण करती है और अपने शरीर को आभूषणो से सुसज्जित करती है। वे सौन्दर्य वृद्धि के लिए अपनी आँखो मे काजल और हाथो मे मेहदी लगाती है। इस दिन स्त्रियाँ रात्रि मे जागरण करती हुई रात भर कजली गाती रहती है। वाराणसी मे तीज के दिन प्राय सभी स्त्रियाँ 'मगला गौरी' नामक देवी का दर्शन करती है जो मगल को देनेवाली मानी जाती है।

यो तो कजली सर्वत्र मनायी जाती है परन्तु वाराणसी तथा मिर्जापुर मे इसका विशेष प्रचार है। मिर्जापुर मे तो इस दिन बहुत बडा मेला लगता है जहाँ रातभर कजली के दगल हुआ करते है। स्त्रियाँ पेडो पर झूला लगाकर झूलती है और कजली गाती रहती है। मिर्जापुरी कजली के सम्बन्ध मे यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि —

"लीला रामनगर की भारी,
कजली मिर्जापुर सरनाम।"

यह कजली का त्यौहार आनन्द उछाह और मस्ती का पर्व है जिसे सभी समान रूप से मनाते है।

बहुला व्रत

यह व्रत भाद्रमास की कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को किया जाता है। इसे जनपदीय भाषा म 'बहुरा' कहत ह। इस दिन कन्याये तथा युवती स्त्रिया दिन भर व्रत रखती है और सायकाल किसी नदी या जलाशय मे स्नान कर बहुला, उनके बच्चे तथा सिह को मिट्टी अथवा बालू की प्रतिमा बनाकर इनका पूजन किया जाता है। इसके बाद स्त्रिया बहुला की कथा सुनती है। वे जौ का सत्तू तथा गुड सन्ध्या समय खाती है। यह व्रत सन्तान का दाता और ऐश्वय का बढाने वाला माना जाता है।

बहुला की कथा उत्कट सतति प्रेम का जीता जागता उदाहरण है। इस व्रत से हमे माता की पुत्र के ऊपर अगाध प्रेम का पता चलता हे। इस व्रत से सत्य बोलने तथा दढप्रतिज्ञ होने की शिक्षा मिलती है। अनाथ की रक्षा करना भी हमारा धम है। जो स्त्रियाँ अनाथो का अपने पुत्र के समान पालन करती है वे धन्य है तथा उनके सब मनोरथ पूण होते है। बहुला की कथा मे सत्य की महान् महिमा का उद्घाटन किया गया है। मनुष्य को दृढ प्रतिज्ञ होना चाहिए यही इस कथा का सन्देश है।

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी

भाद्रपद (भादो) मास की कृष्ण पक्ष की अष्टमी को कृष्ण जन्माष्टमी का पव मनाया जाता है। चूकि भगवान् कृष्ण का जन्म इसी तिथि को हुआ था। अत यह 'जन्माष्टमी' के नाम से प्रसिद्ध है। भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म मथुरा मे कस के कारागार मे हुआ था। आज भी मथुरा मे वह स्थान सुरक्षित है जहाँ श्रीकृष्ण ने इस धराधाम पर अवतार लिया था। यह स्थान आजकल 'केशव-कटरा' के नाम से प्रसिद्ध है जहाँ दानवीर बिडला बन्धुओ ने भगवान् का एक आधुनिकतम सुन्दर मदिर बनवा दिया है।

कृष्ण जन्माष्टमी के दिन प्रात काल किसी पवित्र नदी मे स्नान करना चाहिए। आज व्रती को दिनभर उपवास करना चाहिए। जो लोग उपवास रखने मे समथ न हो वे फलाहार भी कर सकते है। यह त्यौहार गाँवो तथा नगरो मे समान रूप से बडे धूमधाम के साथ मनाया जाता है। लोग फूल-पत्तियो से श्रीकृष्ण के मदिर को खूब सजाते है तथा उनकी सुन्दर झाकी तैयार करते है। जिस मदिर मे भगवान् की जितनी ही सुन्दर झाँकी तैयार की जाती है वहाँ दशनार्थियो की उतनी अधिक भीड लगती है। रात्रि मे भगवान् के मदिर मे एक खीरा रख दिया जाता है। जब रात को बारह बज जाते है तब समझ लिया जाता है कि भगवान् का जन्म हो गया। इसके बाद घडी घटा, डमरू और शख आदि बजाकर भगवान् के जन्मोत्सव को मनाया जाता है। पश्चात् भक्तो मे पजीरी, पचामृत, खीरा और सिघाडा का हलुआ का प्रसाद वितरित किया जाता है। यो तो कृष्ण जन्माष्टमी सभी नगरो मे मनाया जाता है मथुरा तथा वन्दावन मे जन्माष्टमी का उत्सव बडे ठाट-बाट से सम्पन्न होता है। इस दिन मथुरा मे द्वारिकाधीश के मदिर मे सवा लाख रुपयो की कीमत वाला स्वण तथा रत्नो से जटित भगवान् का झूला निकाला जाता है जिस पर बाल गोपाल झूलते हुए दिखायी पडते है। यह त्यौहार इस नगर मे भगवान की बरही तक मनाया जाता है। यहाँ प्रतिदिन भक्तो को प्रसाद वितरित होता है। रामनवमी की अपेक्षा कृष्ण जन्माष्टमी का त्यौहार अधिक लोकप्रिय है।

भगवान् कृष्ण का चरित्र अद्भुत और अलौकिक है। इनके चरित्र मे इतनी लोकोत्तर तथा असाधारण बाते पायी जाती है कि प्राचीन शास्त्र इन्हे अवतार न मानकर साक्षात भगवान् ही मानते हैं—कृष्णास्तु भगवान् स्वयम् इनके चरित्र मे अलौकिकता के कारण इनके लीला के रहस्य को समझना बडा कठिन है। कृष्ण ने पाण्डव की सहायता कर अन्याय पर न्याय के विजय की स्थापना की। इसी प्रकार कश का नाश कर इन्होने अधम पर धम की विजय दिखायी। अन्याय, अधम से सदा सघर्ष करना ही कृष्ण जयन्ती का उपदेश है।

गणेश चतुर्थी

भाद्रपद मास की शुक्ल पक्ष की चतुर्थी के दिन यह व्रत किया जाता है गाँवो मे यह 'गनेस चउथि' के नाम से प्रसिद्ध है जो 'गणेश चतुर्दशी' का ही अपभ्रश रूप है। गणेश जी सभी देवताओ मे श्रेष्ठ तथा लोक-प्रिय देवता है। अत किसी भी मागलिक कार्य मे ये सदा विराजमान रहते है। चाहे पुत्र जन्म हो या मुण्डन, यज्ञोपवीत हो अथवा गणेश जी की पूजा विघ्न की शान्ति के लिए सदा की जाती है। इसीलिए ये 'विघ्ननाशक विनायक' के नाम से प्रसिद्ध है। गणेश जी व्यापारियो की बही और प्रधान द्वार के ऊपरी भाग मे सदा विराजते रहते है। 'श्री गणेशाय नम' लिखकर ही पत्र अथवा पुस्तक के लिखने का काय प्रारम्भ किया जाता है।

गणेश चतुर्थी के दिन प्रात काल स्नान आदि से निवृत्त होकर गणेश की प्रतिमा की पूजा करनी चाहिए। किसी गणेश मदिर के अभाव मे उनकी मिट्टी अथवा गोबर की प्रतिमा बनाकर ही पूजन किया जा सकता है। गोबर की प्रतिमा

बनाने, के कारण ही 'गोबर गणेश' शब्द का निरुक्ति मानी जाती है। नये कलश मे जलभर कर उसके ऊपर नवीन वस्त्र रखा जाता है। पुन गणेश की प्रतिमा की स्थापना करके उसकी षोडशोपचार पूजा करनी चाहिए। उसके बाद धूप, दीप, नवेद्य, ताम्बूल आदि उन्हे समर्पित करना चाहिए। गणेश जी की पूजा म २१ लड्डू चढाना आवश्यक है। रात्रि म चन्द्रोदय होने पर चन्द्रमा की यथाविधि पूजा करके उन्हे अघ देना चाहिए। बाद मे ब्राह्मणा का दक्षिणा दकर गणेश जी का विसजन किया जाता है।

गणेश का दूसरा नाम गणपति भी है। अत ये समस्त गणा के अधिपति अर्थात स्वामी मान जात है। ये सभी दवताओ के अग्रणी देवता है। अत इनका महत्त्व सवाधिक है। वाराणसी नगर मे गणेश चतुर्थी के दिन लोहटिया मुहल्ले मे स्थित बडे गणेश के मदिर म भगवान् गणेश का दशन के लिए बडी भीड होती है। लोकमान्य तिलक न महाराष्ट्र मे गणेश चतुर्थी को 'गणपति महोत्सव' के रूप मे इसे राष्ट्रीय उत्सव का रूप प्रदान किया है। उसीदिन महाराष्ट्र मे बडा ही उत्सव मनाया जाता है। गणेश की प्रतिमा को लेकर बडे बडे जलूस निकाले जाते है। विद्वानो के भाषण होते है जिनमे गणेश की पूजा के महत्त्व का प्रतिपादन किया जाता है।

गणेश जी बुद्धि के देवता है। वह विवेचनात्मक बुद्धि क। आज हमारा समाज अन्धविश्वास, दूषित परम्पराओ और गर्हित प्रथाओ से बुरी तरह से जकडा हुआ है। ऐसी परिस्थिति मे गणेश की पूजा नितान्त आवश्यक है जिससे हम सदबुद्धि मिले ओर हम इन बुराइयो का नाश कर सके।

ऋषि-पचमी

भाद्र मास की शुक्ल पक्ष की पचमी को ऋषि पचमी, कहा जाता है। इस दिन पूरे दिन भर व्रत रखा जाता है और हल से जोतने स उत्पन्न अन्न को नही खाया जाता। इस तिथि को व्रती स्त्री अथवा पुरुष को चाहिये कि वह प्रात काल अपामाग—जो लोक मे चिचिरी के नाम से प्रसिद्ध है—के पोधे की १०८ दतौन से बारी बारी से मुह धोवे तथा सारे शरीर मे मिट्टी लगाकर स्नान करे। इसके बाद पचगव्य का पान करे बाद मे घर आकर कलश की स्थापना कर, उसमे पचरत्न फूल और अक्षत डालकर, उसी स्थान पर सप्त ऋषियो की षोडशोपचार' पूजा करे तथा ब्राह्मणो को दान करे। इस दिन 'तिन्ना का चावल' खाने का विशेष माहात्म्य है क्योकि यह हल स जात उत्पन्न किया गया चावल नही है बल्कि तालाब आदि मे आपसे आप उत्पन्न होता है। गाँवो म इसे साठी का चावल भी कहा जाता है। आज के दिन नमक खाना निषिद्ध है अत व्रती साठी के भात का दही मिलाकर खात है। एक भुक्त रहने क नियम के कारण रात्रि का भोजन नही किया जाता।

यह व्रत शरीर के द्वारा किये गये स्पर्शास्पश तथा अन्य पापा के प्रायश्चित्त के रूप मे किया जाता है। शरीर की शुद्धता और पवित्रता को बनाये रखना ही इस व्रत का प्रधान उद्देश्य है। प्राचीन काल म जगलो म रहन वाले ऋषि इस व्रत को करते थे अत ऋषिपचमी नाम पड गया।

अनन्त चतुर्दशी

भाद्रपद (भादो) मास के शुक्ल पक्ष की चतुदशी को 'अनन्त चतुदशी' कहा जाता है। इस दिन अनन्त भगवान् की पूजा होती है इसीलिए यह चतुदशी उन्ही के नाम से प्रसिद्ध है। इस दिन प्रात काल किसी नदी मे स्नान करना चाहिए। फिर पूजा-पाठ करके अनन्त भगवान् का ध्यान करना चाहिए। पश्चात् किसी पवित्र स्थान पर गोबर से चौका लगाकर कलश की स्थापना कर नये वस्त्रो से उसे ढँक देना चाहिए। कलश के पास एक वेदी की स्थापना कर उसमे वरुण देवता का आवाहन करे। पश्चात् आसन, पाद्य, अघ, पचामृत धूप, दीप और पुष्प से भगवान् अनन्त की पूजा करे। विष्णु १०८ नामो का पाठ करके बुरे धर्मों के लिए क्षमा की प्राथना करे।

आजकल अनन्त चतुदशी के दिन दोपहर तक उपवास किया जाता है। ब्राह्मण लोग स्थान स्थान पर आज के दिन अनन्त भगवान् की कथा कहते है जिसे सुनने के लिए सभी लोग जाते है। नयी ब्याही बधू—जो पर्दा प्रथा के कारण कथासुनने के लिए नही जा सकती—अपना कोई गहना अथवा वस्त्र अपने प्रतिनिधि के रूप मे वहाँ भेज देती है। ऐसा स्त्रियो का विश्वास है कि ऐसा करने से उन्हे कथा-श्रवण का पूरा फल मिलेगा। पण्डित जी अनन्त भगवान् की कथा सुनाते है। कथा की समाप्ति पर सभी लोग थाली मे पानी रखकर अपने हाथो से उसमे किसी वस्तु के टटोलने का अभिनय करते है। पण्डित जी स्त्रियो से पूछते है—का ढूँढत बाडू ? (क्या खोज रही हो)। स्त्रियाँ उत्तर देती है—अनत फल अर्थात अनन्त भगवान् का कथा श्रवण का फल। पुन पडित जी पूछते हैं—पवलू ? (तुमने उसे पा लिया। स्त्रियाँ उत्तर देती है—हाँ पवली (हाँ प्राप्त कर लिया)। इस अभिनय के पश्चात् श्रोताओ मे प्रसाद का वितरण किया जाता है। व्रती लोग अब एक नये सूत्र को—जिसे 'अनन्त'

कहा जाता है—अपने हाथ के मध्यभाग मे बाधते है। इस सूत्र मे चौदह गाठे पडी रहती है जो चादह वर्षो तक लगातार कथा सुनने का प्रतीक है। दोपहर के पश्चात् लोग पुआ, पूडी कचौडी तथा मिष्ठान्न का भोजन करते है।

इस दिन पक्वान्न तथा मिष्ठान्न खाने का विधान है। इसीलिए गॉवो मे यह कहावत प्रचलित है कि मनुष्यो का पेट या तो होली त्योहार के दिन भरता है अथवा अनन्त व्रत के दिन।

"की पेट भरे होलिया माई।
की पेट भरे अननता भाई।।"

इस प्रकार अनन्त चतुदशी के दिन पक्वान्न तथा मिष्ठान्न भोजन के लिए मिलन के कारण यह व्रत बडे उल्लास तथा प्रसन्नता से मनाया जाता है।

जीवित पुत्रिका व्रत

भोजपुरी प्रदेश मे यह व्रत 'जिउतिया' के नाम से प्रसिद्ध है। यह व्रत पुत्र की प्राप्ति तथा उसके जीवन की रक्षा तथा आयुष्य के लिए किया जाता है। आश्विन मास की कृष्ण पक्ष की अष्टमी को इसका विधान बतलाया गया हे। इस व्रत को प्राय वे ही स्त्रिया करती है जिन्हे पुत्र-रत्न की प्राप्ति हो चुकी है। इस दिन स्त्रियाँ प्रात काल गगा अथवा किसी अन्य नदी मे स्नान करती हे तथा दिन भर निराहार तथा निजल व्रत करती है। बिना जल पीये दिन भर व्रत करना बडा कठिन काय माना जाता है। इस प्रकार व्रत रखने के प्रकार को 'खर जिउतिया' कहा जाता है।

सन्ध्या के समय स्त्रिया सूत की बनी हुई 'जिउतिया' पहिन कर कथा सुनती है। धनी घर की महिलाये सोने की 'जिउतिया' गले मे धारण करती है। हसुली के रूप मे चादी की 'जिउतिया' भी पहिनने की प्रथा है। इस व्रत को करने से पुत्र दीर्घायु होता है ओर वह आकस्मिक विपत्ति अथवा खतरे से बच जाता है। यदि किसी स्त्री का पुत्र भयकर आपत्ति अथवा किसी दुघटना से बच जाता है तब उसके विषय मे कहा जाता है कि उसकी मॉ ने 'खर जिउतिया' का व्रत किया था। इस दिन चील और सियारिन की कथा कही जाती है।

मातृ नवमी

यह व्रत आश्विन मास के कृष्ण पक्ष की नवमी को किया जाता है। साधारणतया पितृपक्ष मे जिस तिथि को जिस व्यक्ति की माता की मृत्यु हुई रहती है उसी दिन माता का श्राद्ध किया जाता है। परन्तु मातृनवमी वह सामान्य तिथि जिस दिन माता का श्राद्ध सवसाधारण लोग किया करते है। यह मातृ शक्ति की आराधना का व्रत है। और परलोक धाम मे विराजमान अपनी माता को स्मरण करने का पावन पव है।

इस दिन प्रात काल नदी या जलाशय मे स्नान करके अपनी माता का श्राद्ध करना चाहिए। मध्यान्ह मे ब्राह्मणो को बुलाकर उन्हे भर पेट भोजन कराना चाहिए। उन्हे ताम्बूल और दक्षिणा भी देनी चाहिए। ब्रह्मभोज के पश्चात् व्रती को पारण करना चाहिए।

महालया

आश्विन (कुआर) मास का कृष्णपक्ष पितृपक्ष के नाम से प्रसिद्ध है। इसका कारण यह है कि इस पक्ष मे मृत पितरो का तपण किया जाता है और उन्हे पिण्डदान प्रदान किया जाता है। पितृहीन पुरुष ही इसे करते है। तपण करने वाला व्यक्ति प्रतिदिन प्रात काल किसी नदी मे स्नान करके अपने हाथ तिल, मे अक्षत, कुशा लेकर मत्रो के द्वारा अपने पितरो को जलाजलि प्रदान करता है। जो लोग स्वय मत्र पढने मे असमर्थ है उन्हे पुरोहित या पण्डा मत्रोच्चारण करके तपण कराता है। पितृपक्ष मे वाराणसी नगरी मे प्रात काल तपण करने वाले लोगो का समुदाय देखा जा सकता है। पितरों को जलाजलि देने का यह क्रम आश्विन कृष्ण प्रतिपदा से अमावस्या तक पूरे पन्द्रह दिनो तक चलता रहता है। अमावस्या के दिन—जिसे महालया कहा जाता है—प्रात काल तपण करने के पश्चात् अपना मुण्डन कराता है। दोपहर मे वह पितरो को पिण्डदान देकर अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मण भोजन कराता है। जो लोग ब्राह्मण भोजन कराने मे असमथ है वे 'सीधा' दे देते है।

महालया पितरो को स्मरण कराने वाला व्रत है—यह प्रत्येक पुरुष को उसके पिता का स्मरण दिलाता है। उनकी स्मृति को जगाये रखने के लिए यह हमे सतत प्रेरणा प्रदान करता है।

करवा चौथ

इस व्रत को 'करक चतुर्थी' भी कहा जाता है। यह व्रत कार्तिक कृष्ण चतुर्थी को सम्पन्न होता है। इस व्रत को करने का अधिकार केवल स्त्रियों को है। व्रती स्त्री को चाहिए कि वह किसी नदी अथवा तालाब मे स्नान करके इस व्रत का सकल्प करे। इस व्रत मे चन्द्रमा की प्रतिमा बनाकर उनकी षोडशोपचार पूजा का विधान है। पूजन के पश्चात तावे अथवा मिट्टी के पात्र मे पुओ (अपूप) को रखकर ब्राह्मणो को दान करे। चन्द्रमा के उदय के पश्चात उन्हे अर्घ देकर कथा सुने। इसके पश्चात् व्रती स्त्री को पारण करना चाहिए।

पिंडिया का व्रत

अन्य व्रत एक या दो दिन मे समाप्त हो जाते है परन्तु पिडिया के ही व्रत की यह विशेषता है कि यह पूरे एक मास तक चलता रहता है। कार्तिक मास के शुक्ल प्रतिपदा से यह व्रत प्रारम्भ होता है और अगहन शुक्ल प्रतिपदा को समाप्त होता है। इस प्रकार यह पूर्ण एक मास तक रहता है। कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा के दिन गोधन की जो गोबर की मूर्ति बनाकर उनकी पूजा की जाती है उसी गोबर मे से थोडा सा अश लेकर कुँवारी लडकियाँ पिडिया लगाती है। गोबर के छोटे छोटे पिण्ड को ही पिंडिया कहा जाता है।

घर की भीतरी दीवाल पर गोबर की छोटी-छोटी सैकडो पिण्डिया मनुष्य की आकृति की बनायी जाती है। इसके साथ ही उनकी दीवालो पर आटे के द्वारा चित्र कम भी किया जाता है। इन छोटी-छोटी पिण्डिया को दीवाल पर चिपका दिया जाता है। इस पूरी प्रक्रिया को 'पिण्डिया लगाना' कहते है। पिडिया शब्द पिड का ही अपभ्रंश रूप है जिसमे लघु अर्थ मे 'इया' प्रत्यय लगाकर 'पिडिया' की निष्पत्ति की गयी है। दीवालो पर गोबर की जो आकृति, बनायी जाती है वह पिण्ड के समान गोली-गोली होती है। इसी कारण इस व्रत का नाम कदाचित् 'पिडिया' पड गया है।

यह व्रत बहिनो के द्वारा अपने भाई की मगल कामना के लिए किया जाता है। इसे केवल कुवारी कन्याये ही सम्पादित करती है। वे प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर, स्नानादि करके घर की किसी बूढी स्त्री से पिडिया की कथा सुनती है। वे बिना कथा सुने अन्न ग्रहण नही कर सकती। यदि किसी दिन किसी लडकी ने गलती से भोजन कर लिया तो दूसरे दिन उसे इसका प्रायश्चित्त करना पडता है। रात्रि को भी वे पिडिया की कथा सुन करके ही भोजन करती है। यही क्रम पूरे एक मास तक चलता रहता है। अगहन शुक्ल प्रतिपदा को पिडिया की समाप्ति होती है। इस दिन लडकियाँ नये चावल और नये गुड से बनी हुई खीर खाती है जिसे गावो मे 'रसियाव' कहा जाता है। इस समय वे अपने कानो मे रूई ठूँस लेती है जिससे भोजन करते समय कोई शब्द सुनायी न पडे। भोजन के समय यदि कोई शब्द सुनायी पड गया तो वे भोजन करना छोड देती है। दूसरे दिन दीवाल पर चिपकायी गयी उन पिंडियो को वे नष्ट कर देती है और उन्हे किसी नदी मे बहा देती है। इस प्रकार यह मासिक व्रत समाप्त हो जाता है।

पिंडिया का व्रत बहिनो के द्वारा अपने भाई के प्रति अटूट प्रेम का प्रतीक है। पिंडिया व्रत से सम्बन्धित अनेक लोक-गीत पाये जाते है जिनमे भाई के प्रति प्रेम तथा उसकी मगल कामना का वर्णन उपलब्ध होता है। परन्तु दुःख है कि पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से इस व्रत का लोप होता जा रहा है।

भ्रातृ द्वितीया

यह व्रत "भइयादूज" के नाम से लोक मे प्रसिद्ध है। इस व्रत का प्रधान उद्देश्य भाई और बहिन मे अटूट प्रेम सम्बन्ध की स्थापना है। आज के दिन भाई अपनी बहिन के घर जाता है, उसके यहाँ भोजन करता है। फलस्वरूप भाई अपनी बहिन को उपहार रूप फल, मिष्ठान्न तथा द्रव्य आदि प्रदान करता है। जिस प्रकार बहुला माता और पुत्र के प्रेम का द्योतक व्रत है उसी प्रकार 'भैयादूज' भाई और बहिन के स्वाभाविक प्रेम का प्रकट करने वाला पर्व है।

इस दिन गोधन कूटा जाता है। स्त्रियाँ गोबर से किसी व्यक्ति की प्रतिमा बनाती है। उसकी छाती पर ईंट रखी जाती है और उसी को स्त्रियाँ मूसल से कूटती है। इस दिन स्त्रियाँ रूम, भटकटैया (घमोई का कँटीला पौधा) और चना लेकर अपने घर के प्रत्येक पुरुष को 'सरापती' है अर्थात् घर के प्रत्येक पुरुष का नाम लेकर कहती है कि 'इसको खाँव इसको चबाँव'। घर ही नही बल्कि पास-पडोस के व्यक्तियो को भी वे इसी प्रकार खाती और चबाती हैं अर्थात् उनकी मृत्यु की कामना करती है। इसके पश्चात अपनी जीभ को भटकटैया के काँटे से दागती है। इसके बाद वे इन सब वस्तुओ को लावा और मिठाई के साथ 'गोधन बाबा' के स्थान पर भेजती है। वहाँ गोधन कूटने के स्थान पर अनेक घरो की स्त्रियाँ एकत्रित हो जाती है और कहती है कि जिन व्यक्तियो को हमने खाया और चबाया है वे सभी जीवित हो जाएँ और उन्हे "हनुमन्ते (हनुमान्) का बल"

प्राप्त हो जाय। गोधन कूटने के कम के पश्चात् स्त्रिया वहा से चरणामृत लेकर पीती ह तथा अपन घर चली आती है। यह सब पूजन काय मध्याह्न के पूव समाप्त कर लिया जाता है।

दोपहर के बाद बहिन अपने भाई को मिठाइया खिलाती है। सव प्रथम वह भाई को चना चवान के लिए दती है, फिर मिष्ठान्न और इसके बाद पक्वान्न खिलाती है। भाई मिष्ठान्न तथा पक्वान्न को खाकर अपन प्रेम क प्रतीक के रूप मे उसे यथाशक्ति रुपया-पैसा देता है।

ऐसी प्रसिद्धि है कि इसी दिन सूयपुत्री यमुना अपने भाई यमराज से मिलने के लिए गयी थी। यमराज ने यमुना से कहा कि बहिन ! मै आज तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। अत जो तुम्हारी इच्छा हो वह वर माँगो। यमुना ने कहा भैया ! यदि तुम सचमुच मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो मुझे यही वरदान दो कि आज के दिन जो भी व्यक्ति मेरे जल मे स्नान करेगा वह यमलोक मे न जाय। यमराज ने इसे सहष स्वीकार कर लिया। उसी दिन से कार्तिक शुक्ल द्वितीया का जा भी व्यक्ति यमुना मे स्नान करता है वह स्वगलोक को जाता है यह विश्वास दृढ हो गया। इसी कारण भैया दूज के दिन मथुरा मे विश्रामघाट मे लाखो की सरया म स्नानार्थियो की भीड एकत्रित होती है। लोगो का यह विश्वास है कि आज के दिन भाई आर बहिन यदि साथ ही यमुना मे स्नान करे तो वे सीधे स्वग जाते है। इसीलिए इस दिन भाई-बहिन दोनो का साथ ही यमुना मे स्नान का विशेष महत्त्व हे। भाई और बहिन के स्वाभाविक तथा अलौकिक प्रेम का द्यातक यह व्रत अद्वितीय तथा अप्रतिम है।

सूय षष्ठी व्रत

यह व्रत कार्तिक शुक्ल षष्ठी को किया जाता है। गावो मे इसे 'छठी माता का व्रत' कहा जाता है। यह 'डाला छट' के नाम से भी प्रसिद्ध है। चूकि पूजा की समस्त सामग्री इस दिन डाल मे रखी जाती है। इसीलिए इसका उपर्युक्त नाम-करण हो गया है। यह व्रत पुत्र की प्राप्ति के लिए तथा उसके दीघ आयुष्य की कामना के लिए सम्पादित होता है। इस व्रत का विधान बडा ही कठिन है। क्योकि इसमे प्राय तीन दिनो तक उपवास रखना पडता है।

इस व्रत को करनेवाली स्त्रियाँ पचमी के दिन केवल एक बार बिना नमक का भोजन करती है। दूसरे दिन षष्ठी का स्त्रिया बिना जल ग्रहण किये दिन भर उपवास करती है। इस दिन सन्ध्या के समय सूय को अघ्य दिया जाता है। सूय की पूजा के निमित्त विविध प्रकार के फल, नारियल, केला, सरीफा आदि को डाल मे सजाया जाता है। इस दिन एक विशेष प्रकार का पक्वान्न पकाया जाता है जिसे गावो मे 'अघरवटा' कहते है। काठ के बने साँचे पर—जिस पर सूय के चक्र की आकृति बनी रहती हे—आटे को चिपका कर इस पक्वान्न को बनाया जाता है। फल तथा इसी पक्वान्न को सूय को चढाया जाता है।

दूसरे दिन सप्तमी को प्रात काल स्त्रिया किसी नदी अथवा तालाब के किनारे जाती है तथा नदी मे स्नान करके सूय को अघ्य देने के लिए जल मे खडी रहकर भगवान् सविता के उदय की प्रतीक्षा करती है। इस समय वे एक लोक-गीत गाती हे जिसमे शीघ्र उदय लेने के लिए सूय से प्राथना की जाती है। ठण्डे जल मे खडे रहकर सूय की प्रतीक्षा करने का समय बडा ही कठिन होता है सूय के उदय होते ही वे दूध से उन्हे अघ्य प्रदान करती है। इस पूजा के पश्चात् ही यह व्रत समाप्त हाता हे।

इस व्रत को प्रधानतया पुत्र-प्राप्ति की अभिलाषिणी स्त्रिया ही करती है। मिथिला मे इस व्रत को बडे उत्साह से मनाया जाता हे। छटी माता—जो 'सूय षष्ठी व्रत' कहा जाता है—की स्तुति मे अनेक लोक-गीत प्रसिद्ध है जो इस अवसर पर गाये जाते हे। वास्तव मे यह व्रत सूय की पूजा से सम्बन्धित है परन्तु षष्ठी तिथि के दिन किये जाने के कारण इस 'छठी माता का व्रत' कहा जाता है।

अक्षय नवमी

कातिक शुक्ला नवमी को 'अक्षय-नवमी' कहा जाता है। इस दिन जो दान दिया जाता है उसका अक्षय फल होता है। इसीलिए इसे अक्षयनवमी कहते है। इसे धात्री-नवमी अथवा कुष्माण्ड नवमी के नाम से भी पुकारते है। आज के दिन कुष्माण्ड अर्थात् भतुआ (पेठा) दान करने का बडा माहात्म्य माना जाता है। आज के दिन किया गया पूजा-पाठ तथा दान-पुण्य का कभी क्षय नही होता। गाय, भूमि, सोना वस्त्र और आभूषण इस दिन दान किया जाता है।

इस व्रत को धातृनवमी भी कहते है। अत धातृवृक्ष अर्थात् आँवला वृक्ष के नीचे पूर्व की ओर बैठकर 'ओऽम् धातृयैनम' इस मत्र से आवाहन करके पुष्प, गन्धादि से पूजा करके इस वृक्ष के मूल मे दूध की धारा देनी चाहिए। आज के दिन आँवले के वृक्ष के नीचे ब्राह्मणो को भोजन कराना तथा कुष्माण्ड का दान करना बडा पुण्यदायक माना जाता है। शहर मे जहाँ

आँवले का वृक्ष नही होता वहा दूर के किसी बगीचे मे जाकर आवले के नीचे लोग स्वय भोजन करते और ब्राह्मणो को कराते है। कुष्माण्ड के भीतर गुप्त रूप से सोना या चादी रखकर दान देना विशेष फलदायक है।

प्रबोधिनी एकादशी

कार्तिक शुक्ला एकादशी को प्रबोधिनी एकादशी कहा जाता है। लोगो का यह विश्वास है कि भगवान् विष्णु आषाढ शुक्ला एकादशी को क्षीरसागर मे शयन करते हे और ठीक चार मास के बाद कार्तिक शुक्ला एकादशी को जागते है। अत पहिली एकादशी को 'हरिशयनी' ओर कार्तिक की एकादशी को 'हरिप्रबोधिनी' के नाम से पुकारा जाता है। जिन चार महीनो मे विष्णु क्षीरसागर म शयन करते है उनमे कोई मागलिक काय—विवाह आदि नही किया जा सकता। अत भगवान की दीघ निद्रा त्याग करने की इस तिथि को त्योहार के रूप मे मनाया जाना स्वाभाविक ही है। ग्रामीण क्षेत्र मे इस त्यौहार 'देव ठन' के नाम से प्रसिद्ध है जो 'देवोत्थान' का अपभ्रश रूप है।

इस पवित्र दिन को सभी लोगो को उपवास करना चाहिए। परन्तु जो लोग किसी कारण से उपवास नही कर सकते वे फलाहार कर सकते है। फलाहार के लिए आज के दिन कन्द और सुथनी (एक प्रकार का फल जो कन्द के समान जमीन के अन्दर पैदा होता है) की प्रधानता मानी जाती है। रात्रि के समय सोते हुए विष्णु को जगाने के लिए स्तोत्र पाठ, भगवत कथा, विविध वाद्यो को बजाकर विष्णु को जगाना चाहिए। इस प्रकार व्रत और कीतन के द्वारा इसे मनाया जाता है।

हरिप्रबोधिनी का त्यौहार वास्तव मे हमारी जागृति का दिन है। यह अनेक शताब्दियो से चली आ रही हमारी अलसता, निरुद्यमता तथा निरक्षरतारूपी मोहनिद्रा को तोडकर जागृति का पुण्य पव है। अत इस त्योहार को पूणरूप से मनाने के लिए हमे अपनी कुम्भकर्णी निद्रा को छोडना पडेगा, कमयोग का पाठ पढाना पडेगा और आलस्य को भगाना पडेगा। तभी हम इसके मनाने के सच्चे अधिकारी हो सकेंगे।

प्रबोधिनी एकादशी के ही दिन एक दूसरे व्रत का प्रारम्भ होता है जिसे 'भीष्म पचक' कहा जाता है। यह व्रत एकादशी से प्रारम्भ होकर कार्तिक पूर्णिमा तक अर्थात् पूरे पाँच दिन तक चलता है। इन दिनो म व्रती उपवास रहकर विष्णु भगवान का पूजन करता है। इस दिन विष्णु स्तोत्र के पाठ का विशेष विधान है। महाभारत म जब भीष्म पितामह शरशय्या पर पडे हुए थे तब पाचो पाण्डव उनके पास उपदेश लेने के लिए आये। पाच दिनो तक भीष्म ने उन्हे राजधम का उपदेश दिया। तभी स य पाँच दिन 'भीष्म पचक' के नाम से प्रसिद्ध हो गये। काशी म इन दिनो भीम (भीष्म के स्थान पर) की विशालकाय मिट्टी की मूर्ति बनायी जाती है जिसकी पूजा स्त्रियाँ करती है।

कार्तिकी पूर्णिमा

इस पूर्णिमा को गगास्नान की पूर्णिमा कहे तो अत्युक्ति न होगी। इस दिन गगा मे स्नान तथा दीप दान का बडा माहात्म्य है। आज के दिन गगा जी के किनारे असख्य नर-नारी स्नान करने के लिए आकर और पतितपावनी गगा मे डुबकी लगाकर अपने को कृतकृत्य मानते है। हरिद्वार, गढमुक्तेश्वर, राजघाट, अनूपशहर कानपुर-प्रयाग, काशी, बलिया, बक्सर और पटना मे गगा स्नान का जो मेला लगता है उसका वर्णन करना कठिन है विशेषकर गढमुक्तेश्वर (जिला मेरठ) राज घाट (जिला मुरादाबाद) भृगु आश्रम (जिला बलिया) तथा हरिहर क्षेत्र (जिला सारन, बिहार) मे आज के दिन बडा भारी मेला लगता है और लाखो आदमी एकत्रित होते है। इन सब यात्रियो का एक मात्र ध्येय होता है गगा मे स्नान। गढमुक्तेश्वर का मेला पन्द्रह दिनो तक रहता है जहाँ गगा के किनारे लाखो नर-नारी झोपडियो म रहते और प्रातकाल गगा स्नान करते है।

बलिया मे आज के दिन ददरी का मेला लगता है। लोग आज गगा मे स्नान कर भृगु मुनि का दशन करते है। इसी प्रकार सोनपुर मे हरिहर क्षेत्र का मेला जुडता है जो ससार मे अद्वितीय है। यहाँ स्नान कर हरिहर महादेव का दशन का माहात्म्य है। इस मेले को देखकर गगा की महिमा तथा उसकी लोकप्रियता का कुछ अनुमान किया जा सकता है।

मकर सक्रान्ति

सक्रान्ति अर्थ सक्रमण होता है अर्थात् एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना। जब सूय मकर राशि मे प्रवेश (सक्रमण) करता है तब उसे मकर सक्रान्ति कहा जाता है। पौष मास के चान्द्रमास मे जो सक्रमण होता है वह इसी नाम से प्रसिद्ध है।

मकर सक्राति के पहले दिन एक ही समय भोजन करना चाहिए तथा दूसर दिन तिलो से तैलाभ्यग करके स्नान करना

चाहिए। इस तिथि को तिल का बडा माहात्म्य है। अत इस दिन तिल को ही खाना चाहिए। तिल का उवटन लगाकर तिल ही से स्नान करना उचित है।

उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलो मे मकर सक्राति को खिचडी सक्रान्ति कहते है। इसका कारण यह हे कि इस दिन लोग गगा मे स्नान करके उडद के दाल की खिचडी खाते है। ब्राह्मणो को खिचडी ही दान मे दी जाती है। इस दिन तिल का लड्डू और धान का तिलवा खाने का विशेष माहात्म्य है। इस तिथि को गगा तथा अन्य नदियो मे स्नान करने के लिए लाखा आदमियो की भीड एकत्रित होती है। प्रयाग, काशी तथा बक्सर मे इस दिन बडा मेला जुडता है। यह गगा स्नान तथा खिचडी खाने का त्यौहार है।

मौनी अमावस्या

माघ मास की अमावस्या मौनी अमावस्या के नाम से प्रसिद्ध है। इस दिन मौन धारण करके गगा मे स्नान करने का विधान है। अत भक्तगण गगा मे स्नान करने के पूव एक भी शब्द नही बोलते है। यदि यह तिथि सोमवार के दिन पड जाय तो उसका माहात्म्य शताधिक बढ जाता है। माघ के महीने मे प्रयागराज मे त्रिवेणी म स्नान करना अक्षय पुण्य का दायक होता है। अत अनेक भक्त नर-नारी यहा माघ मे पूरे मास तक सगम के किनारे कुटिया बनाकर उसमे बास करते है। जिसे 'कपिलवास' कहा जाता है। सभवत यह 'कल्पवास' का अपभ्रश रूप है।

माघ मे कुछ लोग पूरे महीने भर व्रत करते है, कुछ केवल फलाहार करत हे और कुछ केवल एक-मुक्त रहते हैं। कल्पवासियो के लिए जमीन के ऊपर चटाई पर सोना, तेल न लगाना, किसी प्रकार का शृगार न करना तथा ब्रह्मचय पूवक रहना अत्यन्त आवश्यक है। माघ मास मे गगास्नान का सबसे बडा पव मोनी अमावस्या है। इस दिन प्रयाग मे सगम पर लाखा की सख्या मे स्नानार्थी एकत्रित होते है। इस अवसर पर गगा स्नान करना मोक्षदायक होता है। प्रयाग के अतिरिक्त अन्य तीथ-स्थानो पर भी आज के दिन भक्तगण स्नान के लिए जाकर अपनी काया को पवित्र तथा आत्मा को मुक्त बनाते है।

वसन्त पचमी

वसन्त पचमी का त्यौहार माघ मास के शुक्ल पक्ष की पचमी को मनाया जाता है। इस त्यौहार की सबसे बडी विशेषता यह हे कि यह होली की ही भाति सामाजिक त्यौहार है। यह वसन्त ऋतु के शुभ आगमन के उपलक्ष मे मनाया जाता है।

वसन्त पचमी का दूसरा नाम 'श्री पचमी' भी है। इस दिन विद्या की अधिष्ठातृ देवी सरस्वती की पूजा का विशेष विधान है। इस दिन प्रात काल मे स्नान करके सन्ध्या, तपण आदि नित्यकर्मो से निवृत्त होकर भक्तिपूवक कलश की स्थापना करके धूप, दीप, नैवेद्य से सरस्वती की पूजा करनी चाहिए।

आजकल विद्या के आलय स्कूल और कालेज मे भी सरस्वती की पूजा की जाती है जो उचित ही है। आज के दिन लोग अपने सिर गुलाल लगाते और पीला वस्त्र धारण करते है जो वसन्त के आगमन का प्रतीक माना जाता है। इस प्रदेश के पूर्वी जिलो मे आज स ही 'ताल ठोका' जाता है अर्थात् होली गाना प्रारम्भ होता है। यह क्रम आज से फाल्गुन पूर्णिमा तक अक्षुण्ण रीति से चलता रहता है। किसान लोग अपने खेत से गेहूँ और जौ की बालि लाते है और उसमे घी तथा गुड मिलाकर अग्नि मे हवन करते है। आज से वे लोग नवान्न का खाना प्रारम्भ कर देते है। यही वसन्त पचमी का लोकिक रूप है।

महाशिवरात्रि

फाल्गुन कृष्ण चतुदशी को महाशिवरात्रि का व्रत मनाया जाता है। यो तो प्रत्येक मास मे शिवरात्रि का व्रत होता है परन्तु फाल्गुन की शिवरात्रि ही महाशिवरात्रि कही जाती है। यह शिव का सबसे बडा व्रत है। इस दिन अधिकाश लोग दिनभर उपवास करते है और रात्रि मे शिव का दशन कर अपने को धन्य मानते है। कुछ लोग रात्रिभर जागरण करते और शिव की आराधना मे समय बिताते है।

त्रयोदशी के दिन एक समय भोजन करके, चतुदशी को निराहार व्रत का विधान करे। वस्त्र तथा पुष्पो से मण्डप सजा करके उसमे पावती सहित महादेव की मूर्तियो की स्थापना करनी चाहिए। पुन इनकी मूर्तियो को पुष्प, चन्दन आदि से पूजा करके विल्व पत्र अर्पित करे। इस दिन शिव की मूर्ति का पूजन ओर उसके दशन का विशेष माहात्म्य माना जाता है। आज के दिन काशी मे विश्वनाथ जी के दशन के लिए दशनार्थियो की भयकर भीड एकत्रित होती है जिसका नियत्रण, पुलिस के सिपाही करते है। महाशिवरात्रि के दिन गगा जल से शिव की प्रतिमा का अभिषेक कराना अत्यन्त पुण्यदायक माना जाता

हे। अनेक भक्तगण हरिद्वार से गगा का जल कावर मे सैकडो मील पैदल ले जाकर गोलागोकर्णनाथ मे स्थित शिव पर चढाते हे।

राम-नवमी

चैत्र शुक्ला नवमी को राम नवमी कहा जाता है। क्योकि इसी दिन मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र का इस धरा धाम पर अवतार हुआ था। यह हमारे त्यौहार मे अत्यन्त महत्त्वपूण स्थान रखता हे। रामनवमी के व्रत मे मध्याह्न तिथि लेनी चाहिए अर्थात् जिस दिन दोपहर को रामनवमी पडे उसी दिन व्रत का विधान करना चाहिए।

इस तिथि को दिनभर उपवास रखना चाहिए। व्रती प्रात काल मे स्नान करके भगवान रामचन्द्र का पूजन करे तथा उनके भजन-कीतन मे दिन बिताना चाहिए। इस दिन रामचन्द्र जी के मदिरो मे बडा श्रृगार होता हे। मदिरो मे सजावट के साथ रोशनी का भी प्रबन्ध होता है। सन्ध्या समय भक्त जनता भगवान राम का दशन कर अपने को कृतकृत्य मानती है। कही कही इस दिन विमान भी निकलते हे। दक्षिण भारत मे तिरुपति और रामेश्वरम् मे यह महोत्सव बडे धूमधाम से मनाया जाता है।

उत्तर प्रदेश मे अयोध्या, जो भगवान् रामचन्द्र का जन्मस्थली है, मे रामनवमी के दिन बहुत बडा मेला लगता है। इस दिन भारतवष के विभिन्न राज्यो से लाग आकर सरयू मे स्नान कर राम के जन्मस्थान का दशन करते है जिसे जन्म-स्थली कहा जाता हे। राम के भक्त हनुमान् का भी यहाँ मदिर है जो 'हनुमान गढी' के नाम से प्रसिद्ध हे। इस अवसर पर अयोध्या मे मेला जुडता हे उसका वणन करना कठिन है। जन-समुदाय के हृदय मे भगवान् राम के प्रति प्रगाढ भक्ति ओर श्रद्धा है इसका पता इस मेले से लगता है। जो लोग किसी कारण से अयोध्या नही जा सकते वे किसी नदी मे स्नान कर तथा राम का दशन कर अपने को कृताथ समझते है।

रामनवमी का त्यौहार हमारा राष्ट्रीय पव है। यह हमारी राष्ट्रीय चेतना को जागृत करनेवाला पुनीत दिवस है। सामाजिक विषमता मे वर्तमान, तथा दूषित प्रथाओ से उत्पीडित हिन्दू जनता के लिए यह पव बल और सम्बल है। यह भारत के समृद्ध साम्राज्य को कन्दुक के समान ठुकरा देनेवाले मर्यादा पुरुषोत्तम राम की पुण्यतिथि है। मातृप्रेम के अलौकिक आदश को स्थापित करनेवाले, मनुष्य के कतव्यो की मर्यादा की नीव डालनेवाले, आदशपुत्र, आदश पति और आदश राजा रामचन्द्र की यह जयन्ती है। इस त्यौहार से हमे यह उपदेश ग्रहण करना चाहिए कि हम राम के समान ही पिता की आज्ञा के पालक, एक पत्नी व्रती, आदर्श मातृप्रेमी, प्रजापालक तथा मातृभूमि के सेवक बनें। रामनवमी का पव हमारे लिये तभी सार्थक हो सकता है जब हम इस धराधाम पर रामराज्य की अवतारणा कर सकें। यही राम नवमी का वास्तविक सन्देश है।

वट-सावित्री व्रत

यह व्रत ज्येष्ठ मास की अमावस्या को किया जाता है। इस व्रत का उद्देश्य सौभाग्य की रक्षा और पुत्र की प्राप्ति है। सावित्री और सत्यवान् की कथा तो प्रसिद्ध ही है। सावित्री ने अपनी तपस्या और त्याग के बल से अपने पति सत्यवान को यमराज के पाश से मुक्त किया था। इसी सावित्री की पुण्य स्मृति मे यह व्रत किया जाता है।

आज के दिन स्त्रियाँ स्नान करके वट वृक्ष के समीप जाकर उसके मूल मे जल चढ़ाती है। वही सावित्री और सत्यवान् की मिट्टी की प्रतिमा बनाकर उनकी पूजा करती है। पूजा मे विशेषतया हल्दी, गन्ध, पुष्प, अक्षत, कुकुम और सिन्दूर का प्रयोग किया जाता है। स्त्रियाँ वटवृक्ष के चारो ओर १०८ बार प्रदक्षिणा करती है और प्रत्येक बार उस वृक्ष के तने मे सूत्र (रक्षा सूत्र) लपेटती जाती है। इस दिन वटवृक्ष की प्रदक्षिणा करते हुए स्त्रियो का झुण्ड अद्भुत दृश्य उपस्थित करता है। चूकि इस दिन सती शिरोमणि सावित्री की स्मृति मे वटवृक्ष की प्रदक्षिणा तथा पूजा की जाती है इसीलिए इसे 'वट-सावित्री व्रत' कहते है। यह सौभाग्यदायक पव माना जाता है अत सौभाग्यवती स्त्रियाँ इसे निश्चित रूप से करती है।

एकादशी व्रत

एकादशी का व्रत प्रत्येक मास के प्रत्येक पक्ष की एकादशी तिथि को किया जाता है। बहुत से लोग कृष्णपक्ष की एकादशी की अपेक्षा शुक्ल पक्ष की एकादशी को व्रत रखना उत्तम समझते है। यो तो प्रत्येक मास की एकादशी का महत्त्व एक समान है परन्तु आषाढ शुक्ल पक्ष की एकादशी—जिसे हरिशयिनी भी कहा जाता है—तथा कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी—जो 'देवोत्थानी एकादशी' के नाम से प्रसिद्ध है, विशेष महत्त्व रखती हैं। पद्मपुराण मे प्रत्येक एकादशी की पूजा का विधान बडे विस्तार के साथ वर्णित है।

एकादशी के दिन निराहार व्रत करने का अतिशय फल बतलाया गया है। परन्तु जो व्यक्ति किसी कारण से निराहार

नही रह सकते वे फलाहार भी कर सकते है। इस दिन प्रात काल उठकर स्नान करके भगवान् विष्णु की षाडशोपचार पूजा करनी चाहिए। रात्रि को जागरण करके भगवान् का कीतन, स्तवन तथा भजन करके ममय बिताना चाहिए। एकादशी तिथि विष्णु को अत्यन्त प्रिय है। अत इस दिन इनका भजन-पूजन करना आवश्यक है। हरिशयिनी और देवोत्थानी एकादशी को विष्णु की पूजा का विशेष विधान पाया जाता है।

प्रदोष व्रत

इस व्रत का विधान प्रत्येक मास के दोनो पक्षो की त्रयोदशी को किया जाता है। इसे स्त्री-पुरुष दोना ही समानरूप से करते है। प्रदोष शब्द का अथ रात्रि का प्रारम्भ है। प्रदोपो रजनीमुखम। चूकि इसी काल मे इस व्रत के पूजन का विधान हे, अत इसे प्रदोषव्रत कहते हे। विशेषतया यह व्रत सन्तान की कामना के लिए किया जाता है।

इस व्रत के उपास्य देवता महादेव शकर भगवान् है जिनकी प्रदोष काल मे विधिवत् पूजा करनी चाहिए। व्रती को दिनभर उपवास करना चाहिए। वह सन्ध्या समय शकर की पूजा करने के पश्चात् ही अन्न ग्रहण कर सकता है। प्रत्येक मास के दोनो पक्षो मे पडनेवाले प्रदोष की अपेक्षा कृष्णपक्ष का प्रदोष व्रत यदि शनिवार को पडे तो यह शनि-प्रदोष विशेप फल-दायक माना जाता है। इसी प्रकार यदि सोमवार को प्रदोष हो तो यह सोमप्रदोष अतिशय मगल का दायक माना जाता है। श्रावण मास का प्रत्येक सोमवार प्रदोष के निमित्त बडा उपादेय होता है। वाराणसी मे श्रावण मास के प्रत्येक सोमवार को यह व्रत विशेष समारोह के साथ मनाया जाता है। यह व्रत सुख, समृद्धि तथा मगल का विधायक है।

सत्यनारायण व्रत

यह व्रत सावकालिक है अर्थात् इसका विधान किसी भी मास मे किसी भी तिथि को किया जा सकना है। परन्तु विशेष-कर इस व्रत का विधान एकादशी और पूर्णिमा को ही होता है। इस व्रत मे सत्य की नारायण या ईश्वर के रूप मे पूजा की जाती है।

प्रारम्भ मे गौरी-गणेश तथा नवग्रहो की पूजा की जाती है। इसके अनन्तर विष्णु भगवान् का विधिवत् अजन तथा पूजन होता है। प्रसाद के लिए फल, चीनी मिश्रित भूना हुआ आटा का चूण, मिष्ठान्न तथा चरणामृत की व्यवस्था की जाती है। पूजा के बाद सत्यनारायण की कथा होती है। अन्त मे भगवान् की आरती करके प्रसाद का वितरण किया जाता है।

भोजपुरी प्रदेश के गाँव-गाँव तथा घर-घर मे सत्यनारायण बाबा की कथा कही और सुनी जाती है। सच तो यह है कि गॉवो मे बाबा सत्यनारायण की कथा जितनी लोक-प्रिय तथा प्रसिद्ध है उतनी अन्य कथा नही है। इस कथा मे सत्य की महिमा का वर्णन पाया जाता है। भगवान् स्वय सत्यस्वरूप है। सत्य ही नारायण है इस बात का स्मरण कर हमे अपने कार्यों मे प्रवृत्त होना चाहिए। 'सत्यमेव जयते नानृतम्' यही इस कथा का तत्त्व या सार है।

व्रतो की सूची

(क) पुरुष

(१) विजयादशमी
(२) होली
(३) दिवाली
(४) अक्षय नवमी
(५) प्रबोधिनी एकादशी
(६) एकादशी व्रत
(७) सत्यनारायण व्रत
(८) प्रदोष व्रत
(९) नाग पचमी
(१०) रथ यात्रा
(११) मकर सक्राति
(१२) महाशिवरात्रि

हे। अनेक भक्तगण हरिद्वार से गगा का जल कॉवर मे सैकडो मील पैदल ले जाकर गोलागोकणनाथ म स्थित शिव पर चढाते हे।

राम-नवमी

चैत्र शुक्ला नवमी को राम नवमी कहा जाता हे। क्योकि इसी दिन मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र का इस धरा धाम पर अवतार हुआ था। यह हमारे त्यौहार मे अत्यन्त महत्त्वपूण स्थान रखता हे। रामनवमी के व्रत मे मध्याह्न तिथि लेनी चाहिए अर्थात् जिस दिन दोपहर का रामनवमी पडे उसी दिन व्रत का विधान करना चाहिए।

इस तिथि को दिनभर उपवास रखना चाहिए। व्रती प्रात काल मे स्नान करके भगवान रामचन्द्र का पूजन करे तथा उनके भजन-कीतन मे दिन बिताना चाहिए। इस दिन रामचन्द्र जी के मदिरो मे बडा श्रृगार होता हे। मदिरो मे सजावट के साथ रोशनी का भी प्रबन्ध होता है। सन्ध्या समय भक्त जनता भगवान राम का दशन कर अपने को कृतकृत्य मानती है। कही कही इस दिन विमान भी निकलते हे। दक्षिण भारत मे तिरुपति और रामेश्वरम् मे यह महोत्सव बडे धूमधाम से मनाया जाता है।

उत्तर प्रदेश मे अयोध्या, जो भगवान् रामचन्द्र की जन्मस्थली है, मे रामनवमी के दिन बहुत बडा मेला लगता है। इस दिन भारतवष के विभिन्न राज्यो से लोग आकर सरयू मे स्नान कर राम के जन्मस्थान का दर्शन करते है जिसे जन्म-स्थली कहा जाता है। राम के भक्त हनुमान् का भी यहॉ मदिर है जो 'हनुमान गढी' के नाम से प्रसिद्ध हे। इस अवसर पर अयोध्या मे मेला जुडता है उसका वणन करना कठिन है। जन-समुदाय के हृदय मे भगवान् राम के प्रति प्रगाढ भक्ति और श्रद्धा है इसका पता इस मेले से लगता है। जो लोग किसी कारण से अयोध्या नही जा सकते वे किसी नदी मे स्नान कर तथा राम का दशन कर अपने को कृताथ समझते है।

रामनवमी का त्यौहार हमारा राष्ट्रीय पव है। यह हमारी राष्ट्रीय चेतना को जागृत करनेवाला पुनीत दिवस है। सामाजिक विषमता मे वर्तमान, तथा दूषित प्रथाओ से उत्पीडित हिन्दू जनता के लिए यह पव बल और सम्बल है। यह भारत के समृद्ध साम्राज्य को कन्दुक के समान ठुकरा देनेवाले मर्यादा पुरुषोत्तम राम की पुण्यतिथि है। मातृप्रेम के अलौकिक आदश को स्थापित करनेवाले, मनुष्य के कतव्यो की मर्यादा की नीव डालनवाले, आदशपुत्र, आदश पति ओर आदश राजा रामचन्द्र की यह जयन्ती है। इस त्यौहार से हमे यह उपदेश ग्रहण करना चाहिए कि हमे राम के समान ही पिता की आज्ञा के पालक, एक पत्नी व्रती, आदर्श मातृप्रेमी, प्रजापालक तथा मातृभूमि के सेवक बने। रामनवमी का पव हमारे लिये तभी साथक हो सकता है जब हम इस धराधाम पर रामराज्य की अवतारणा कर सके। यही राम नवमी का वास्तविक सन्देश है।

वट-सावित्री व्रत

यह व्रत ज्येष्ठ मास की अमावस्या को किया जाता है। इस व्रत का उद्देश्य सौभाग्य की रक्षा और पुत्र की प्राप्ति है। सावित्री और सत्यवान् की कथा तो प्रसिद्ध ही है। सावित्री ने अपनी तपस्या और त्याग के बल से अपन पति सत्यवान् को यमराज के पाश से मुक्त किया था। इसी सावित्री की पुण्य स्मृति मे यह व्रत किया जाता है।

आज के दिन स्त्रियाँ स्नान करके वट वृक्ष के समीप जाकर उसके मूल मे जल चढाती है। वही सावित्री और सत्यवान् की मिट्टी की प्रतिमा बनाकर उनकी पूजा करती है। पूजा मे विशेषतया हल्दी, गन्ध, पुष्प, अक्षत, कुकुम और सिन्दूर का प्रयोग किया जाता है। स्त्रियाँ वटवृक्ष के चारो ओर १०८ बार प्रदक्षिणा करती है और प्रत्येक बार उस वृक्ष के तने मे सूत्र (रक्षा सूत्र) लपेटती जाती है। इस दिन वटवृक्ष की प्रदक्षिणा करते हुए स्त्रियो का झुण्ड अद्भुत दृश्य उपस्थित करता है। चूकि इस दिन सती शिरोमणि सावित्री की स्मृति मे वटवृक्ष की प्रदक्षिणा तथा पूजा की जाती है इसीलिए इसे 'वट-सावित्री व्रत' कहते है। यह सौभाग्यदायक पव माना जाता है अत सौभाग्यवती स्त्रियाँ इसे निश्चित रूप से करती है।

एकादशी व्रत

एकादशी का व्रत प्रत्येक मास के प्रत्येक पक्ष की एकादशी तिथि को किया जाता है। बहुत से लोग कृष्णपक्ष की एकादशी की अपेक्षा शुक्ल पक्ष की एकादशी को व्रत रखना उत्तम समझते हैं। यो तो प्रत्येक मास की एकादशी का महत्त्व एक समान है परन्तु आषाढ शुक्ल पक्ष की एकादशी—जिसे हरिशयिनी भी कहा जाता है—तथा कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी—जो 'देवोत्थानी एकादशी' के नाम से प्रसिद्ध है, विशेष महत्त्व रखती है। पद्मपुराण मे प्रत्येक एकादशी की पूजा का विधान बडे विस्तार के साथ वर्णित है।

एकादशी के दिन निराहार व्रत करने का अतिशय फल बतलाया गया है। परन्तु जो व्यक्ति किसी कारण से निराहार

नही रह सकते वे फलाहार भी कर सकते है। इस दिन प्रात काल उठकर स्नान करके भगवान् विष्णु की षाडशोपचार पूजा करनी चाहिए। रात्रि को जागरण करके भगवान् का कीतन, स्तवन तथा भजन करके समय बिताना चाहिए। एकादशी तिथि विष्णु को अत्यन्त प्रिय है। अत इस दिन इनका भजन-पूजन करना आवश्यक है। हरिशयिनी और देवोत्थानी एकादशी का विष्णु की पूजा का विशेष विधान पाया जाता है।

प्रदोष व्रत

इस व्रत का विधान प्रत्येक मास के दोनो पक्षो की त्रयोदशी को किया जाता है। इसे स्त्री-पुरुष दाना ही समानरूप से करते है। प्रदोष शब्द का अथ रात्रि का प्रारम्भ है। प्रदोषो रजनीमुखम्। चूकि इसी काल मे इस व्रत के पूजन का विधान है, अत इसे प्रदोषव्रत कहते हे। विशेषतया यह व्रत सन्तान की कामना के लिए किया जाता है।

इस व्रत के उपास्य देवता महादेव शकर भगवान् है जिनकी प्रदोष काल मे विधिवत पूजा करनी चाहिए। व्रती को दिनभर उपवास करना चाहिए। वह सन्ध्या समय शकर की पूजा करने के पश्चात् ही अन्न ग्रहण कर सक्ता है। प्रत्येक मास के दोनो पक्षो मे पडनेवाले प्रदोष की अपेक्षा कृष्णपक्ष का प्रदोष व्रत यदि शनिवार को पडे तो यह शनि-प्रदोष विशेष फल-दायक माना जाता हे। इसी प्रकार यदि सोमवार को प्रदोष हो तो यह सोमप्रदोष अतिशय मगल का दायक माना जाता है। श्रावण मास का प्रत्येक सोमवार प्रदोष के निमित्त बडा उपादेय होता है। वाराणसी मे श्रावण मास के प्रत्येक सोमवार का यह व्रत विशेष समारोह के साथ मनाया जाता है। यह व्रत सुख, समृद्धि तथा मगल का विधायक है।

सत्यनारायण व्रत

यह व्रत सावकालिक है अर्थात् इसका विधान किसी भी मास मे किसी भी तिथि को किया जा सकता है। परन्तु विशेष-कर इस व्रत का विधान एकादशी और पूर्णिमा को ही होता है। इस व्रत मे सत्य की नारायण या ईश्वर के रूप मे पूजा की जाती है।

प्रारम्भ मे गौरी-गणेश तथा नवग्रहो की पूजा की जाती है। इसके अनन्तर विष्णु भगवान् का विधिवत् अजन तथा पूजन होता है। प्रसाद के लिए फल, चीनी मिश्रित भूना हुआ आटा का चूण, मिष्ठान्न तथा चरणामृत की व्यवस्था की जाती हे। पूजा के बाद सत्यनारायण की कथा होती है। अन्त मे भगवान् की आरती करके प्रसाद का वितरण किया जाता है।

भोजपुरी प्रदेश के गाँव-गाँव तथा घर-घर मे सत्यनारायण बाबा की कथा कही और सुनी जाती है। सच तो यह है कि गावो मे बाबा सत्यनारायण की कथा जितनी लोक-प्रिय तथा प्रसिद्ध है उतनी अन्य कथा नही है। इस कथा मे सत्य की महिमा का वणन पाया जाता है। भगवान स्वय सत्यस्वरूप है। सत्य ही नारायण है इस बात का स्मरण कर हमे अपने कार्यों मे प्रवृत्त होना चाहिए। 'सत्यमेव जयते नानृतम्' यही इस कथा का तत्त्व या सार है।

व्रतो की सूची

(क) पुरुष

(१) विजयादशमी
(२) होली
(३) दिवाली
(४) अक्षय नवमी
(५) प्रबोधिनी एकादशी
(६) एकादशी व्रत
(७) सत्यनारायण व्रत
(८) प्रदोष व्रत
(९) नाग पचमी
(१०) रथ यात्रा
(११) मकर सक्राति
(१२) महाशिवरात्रि

(१३) मौनी अमावस्या
(१४) वसन्त पंचमी
(१५) कार्तिकी पूर्णिमा
(१६) रक्षाबन्धन
(१७) राम नवमी
(१८) कृष्ण जन्माष्टमी
(१९) गणेश चतुर्थी
(२०) अनन्त चतुर्दशी
(२१) ऋषि पञ्चमी
(२२) महालया

(ख) स्त्री

(१) वट सावित्री व्रत
(२) बहुला व्रत
(३) जीवित्पुत्रिका व्रत
(४) करवा चौथ
(५) मातृनवमी
(६) भ्रातृ द्वितीया
(७) सूर्यषष्ठी व्रत
(८) कजरी तीज
(९) पिड़िया



अध्याय १७

दार्शनिक जीवन

००

भोजपुरी जनता का जीवन दशनमय है। इनका विश्वास है कि ससार मे जा कुछ काय हा रहा है वह किमी दैवी गक्ति के कारण हे। ससार मे भगवान् की इच्छा के विना कोई भी काय नही हा सकता, यह इनका दृढ विश्वास है। य लाग भाग्यवाद पर अटूट विश्वास रखते है। यद्यपि भोजपुरी जनता बडी कमठ, साहसिक तथा उद्योगशील ह परन्तु इनकी आस्था भाग्यवाद म दृढ मूल है। इसी प्रकार ये जन्मान्तरवाद मे भी विश्वास रखते हे।

भोजपुरी लोगो के दाशनिक जीवन की जो मूल आस्थायें है उन्हे तीन श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है जा निम्नाकित है—

(१) कमवाद
(२) भाग्यवाद
(३) जन्मान्तरवाद

दार्शनिक अवस्था

भाजपुरी प्रदेश मे शिक्षा का प्रचुर प्रचार है। इस क्षेत्र के प्रत्येक जिले मे बीसियो हाईस्कूल तथा इण्टर कालेज पाये जाते है जहाँ हिन्दी तथा अग्रेजी की शिक्षा बालको को दी जाती है। इसके अतिरिक्त गॉवो मे अनेक सस्कृत पाठशालाये है जहाँ छात्र सस्कृत विद्या का अध्ययन करते है। शिक्षा के प्रचार की इतनी व्यवस्था होने पर भी यह प्रदेश शिक्षा के क्षेत्र मे पिछडा हुआ हे। विशेषतया स्त्रियो की शिक्षा का बहुत कम प्रचार है। अत साधारणतया ग्रामीण जनता उतनी शिक्षित नही है जितना उसे होना चाहिए।

उच्च शिक्षा का प्राय अभाव होने पर भी ग्रामीण जनता का जीवन धार्मिक विधि-विधानो तथा दाशनिक विचारो स व्याप्त है। एक साधारण किसान भी दशन शास्त्र की इतनी ऊँची बाते करता है कि दातो तले अँगुली दबानी पडती है। वह अद्वैत वेदान्त की चर्चा करके लोगो को आश्चर्यित कर देता है। कही वह कमवाद की चर्चा करता है और कही जन्मान्तरवाद की। कभी वह ससार को ही मिथ्या बतलाता है और कही जीवन को नश्वर कहता है। कहने का आशय केवल यही है कि किसान का जीवन धार्मिक रूढियो तथा दाशनिक विचार-धारा मे ओत-प्रोत है।

(१) कर्मवाद

गाव के सब साधारण लोगो की आस्था कमवाद मे पूर्णतया पायी जाती है। वे समझते है कि कम, जिसे वे 'करम' कहते हे, मे जो कुछ लिखा है उसे कोई मिटा नही सकता। सामान्य लोगो का यह दढ विश्वास है कि जब मनुष्य पैदा होने लगता है तब ब्रह्मा उसके ललाट मे उसका भाग्य लिख देते है। उसकी भाग्य लिपि के अनुसार उसका जीवन परिचालित होता है। गावो मे प्राय यह कहते हुए लोग सुने जाते है कि "जवन भाग मे लिखल बाटे ओकरा के मिटा सकेला।" अर्थात् जा भाग्य मे लिखा है उसे भला कौन मिटा सकता है। सस्कृत के किसी कवि ने भी कहा है कि "लिखितमपि ललाटे प्रोज्झित क समर्थ ॥ नैषधीय चरितम् महाकाव्य के रचयिता श्रीहष ने भी लिखा है कि—

"अय दरिद्रो भवितेति वैधसीं,
लिपिं ललाटेऽर्थिजनस्य जाग्रतीम्।"

अर्थात ब्रह्मा मनष्य के ललाट मे ही लिख देता है कि यह दरिद्र होगा।

(२) **भाग्यवाद**

गाँव के लोग बडे ही भाग्यवादी होते है। वे समझते हे कि जो भाग्य मे होगा वह हाकर ही रहेगा। अत व्यथ मे परिश्रम और प्रयास करने से क्या लाभ? वे गोस्वामी तुलसीदास जी की यह चौपाई प्राय कहते है कि—

"होइहे वही जो राम रचि राखा।
को करि तर्क बढ़ावै साखा।"

वह भाग्य पर इतना अधिक विश्वास करता है कि सभी कार्या को 'भाग के भरोसे' छाडकर चैन की नीद सोता है। वह अपने भाग्यवाद के सिद्धान्त के प्रतिपादन म मलूकदास जी के उस दोहे का भी प्रस्तुत करता है—

"अजगर करे न चाकरी, पछी करे न काम।
दास मलूका कहि गयो कि सबके दाता राम।।"

जो लोग गरीब है, धन-सम्पत्ति से वचित हैं वे इसका दोप अपन भाग्य को देते है। जो लडका पढने मे मन्द है उसके विषय मे घर के लोग यह कहते है कि इसके भाग्य मे विद्या नही हे। यदि किसी स्त्री का पति मृत्यु का प्राप्त हो गया तो यह दुघटना भी भाग्य के वश ही समझती जाती है। किंबहुना यदि बिल्ली ने दूध पी लिया और कुत्ता ने भाजन जूठा कर दिया तो लोग इन तुच्छ घटनाओ को अपने दुर्भाग्य के सिर मढते है। कहने का आशय यह है कि छोटे से-छोटा और बडा-से-बडा काय भी भाग्य के द्वारा ही परिचालित माना जाता है।

कर्मा के अनुसार मनुष्यो को योनि प्राप्त होती हे, उसी के अनुमार व ससार मे धन वैभव अथवा निधनता का प्राप्त करते है यह भावना लोगो के हृदय मे कूट-कूट कर भरी हुई है। भाजपुरी की एक कहावत है—"जैसी करनी वैसी भरनी" अर्थात् मनुष्य जैसा कार्य करता है उसे वैसा ही फल मिलता है। मनुष्य प्रतिदिन जो कुछ भोजन करता है वह भी उसके भाग्य का ही परिणाम है। यह कहावत प्रचलित है कि "दाने दाने पर लिखा है, खानेवाले का नाम।" जिसक भाग्य मे जो कुछ भोजन, वसन, आदि बदा है उसे वही प्राप्त होता है।

भोजपुरी लोक-गीतो मे भाग्यवाद की अमिट रेखा खिंची हुई दिखाय। पडती है। पिता अपनी पुत्री का विवाह किसी अयोग्य व्यक्ति से कर देता है जिसके फलस्वरूप वह दुखी तथा असतुष्ट है। इस पर उसका पिता कहता है कि ए बेटी! यदि वर्तन और गहना होता तो मैं उसे बदल देता परन्तु तुम्हारे भाग्य का कैसे बदल सकता हूँ। वह तो दुनिवार है, वह नही बदला जा सकता।[1]

भोजपुरी-प्रदेश के लोग भाग्यवाद मे अटूट आस्था रखते है। ये प्राय कहा करते है कि जो भगवान् चाहेगा वही काय होगा। अत व्यर्थ मे झझट करने तथा परेशान होने से क्या लाभ? ये लोग तुलसीदास जी की इस चौपाई को प्राय कहा करते हैं—

"होइहैं वही जो राम रचि राखा।
को करि तर्क बढ़ावै शाखा।।"

गाँव के लोग प्राय कहते है कि ब्रह्मा की लिपि को भला कौन मिटा सकता है। जो कुछ होना हागा वह होकर रहेगा। फ्रास देश का सम्राट नेपोलियन बडा ही कमठ व्यक्ति और कुशल सेनापति था। परन्तु इसके साथ ही वह प्रचण्ड भाग्यवादी था। वह कहा करता था कि ससार मे अभी ऐसी गोली (बुलेट) नही बनी है जिससे मैं मारा जा सकूँ। इसी प्रकार से भोजपुरी जनता नितान्त कमठ होते हुए भी अटूट भाग्यवादी है। ये लोग बात-बात पर भाग्य की दोहाई देते है। यदि किसी काय मे सफलता नही मिली तब अपने भाग्य को ही दोषी ठहरावेगे। इसी प्रकार से ये प्रत्येक कार्य को भाग्य के द्वारा ही निष्पन्न मानते है। इनका अटूट सिद्धान्त है कि—

"भाग्य के लिखा ना मेटल जाई।"

(३) **जन्मान्तरवाद**

भाग्यवाद की ही भाँति जन्मान्तरवाद मे भी लोगा की अटूट आस्था है। प्रत्येक व्यक्ति यह विश्वास करता है कि

---

१ डा० कृष्णदेव उपाध्याय—भो० लो० गी० भाग १।

मृत्यु के पश्चात् मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार दूसरी योनि मे जन्म लेता है। इसीलिए मृत व्यक्ति के श्राद्ध के समय उसे अन्न, वस्त्र, शय्या, ओढना, बिछौना आदि उन सभी वस्तुओ को प्रदान किया जाता है जो उसे इस लोक मे प्रिय थी।

स्त्रियाँ अगले जन्म मे सुन्दर रूप को प्राप्त करने के लिए देवी और देवताओ को सफेद तथा सुन्दर पुष्प चढाती है। वे दूसरे लोक मे अपने वतमान पति को प्राप्त करने के लिए सोमवती अमावस्या के दिन पीपल की १०८ बार प्रदक्षिणा करती है। बहुत से लोग इस जन्म मे अनेक पुण्य काय करते ह, गरीबो को धन धा य देते है, सावजनिक हित के लिए लाखो रुपये इसलिए खच करते है कि अगले जन्म मे समृद्धि प्राप्त हो तथा वे उच्च कुल मे उत्पन्न हो।

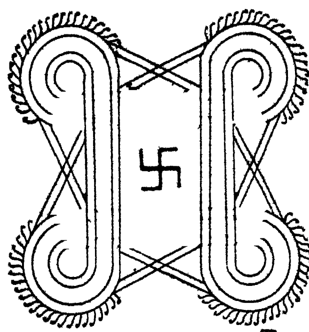
निधन व्यक्ति प्राय यह कहते सुने जाते है कि उनकी गरीबी उनके पूव ज म के पाप के कारण ह। वे इस बात से सन्तोष को प्राप्त करते है कि उन्हे अगले जन्म मे सुख और समृद्धि प्राप्त होगी। कमवाद और ज मान्तरवाद के सिद्धा तो ने हिन्दू जनता को अभूतपूव सुख ओर शान्ति प्रदान की है। मनुष्य अपनी वतमान दीनता ओर दुदशा का कारण अपने भाग्य को समझकर सन्तोष करता है और अगले जन्म मे उसे सुख और वैभव प्राप्त होगा इस आशा से अपने जीवन को धारण करता रहता है।

(४) ससार की असारता

लोगो का यह विश्वास है कि ससार अनित्य है, दृश्यमान जगत का नाश अवश्यम्भावी है। शरीर का धम विनशनशील है। अत यह एक-न-एक दिन अवश्य नष्ट होता है। मानव देह की उपमा कागज की पुडिया से दी गयी है जो एक बूद जल के पडने से ही गल जाता है। लोग अक्सर यह कहते है कि—

"इह देहिया कागज की पुडिया,
बूद परत मिहिलानी।"

ग्रामीण जनता जानती है कि यह शरीर मिट्टी का बना हुआ है और यह अन्त मे मिट्टी मे ही मिल जायेगा। अत जब किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तब इस समाचार को सुनकर लोग अनासक्त भाव से कहते हैं कि "मिट्टी के देह मिट्टी मे मिल गइल।" भोजपुरी महिलाये जब किसी व्यक्ति पर क्रोधित होती है तब उसको गाली देती हुई कहती है कि "तोहार माटी लागो" अर्थात् तुम मिट्टी मे मिल जाओ। इसका भाव यही है कि तुम्हारा नाश हो जाय अथवा तुम्हारी मृत्यु हो जाय। इस प्रकार से भोजपुरी गारियो मे भी दाशनिकता का पुट पाया जाता है। जब कोई व्यक्ति बडा बूढा हो जाता है और रोगो के कारण कष्ट पाने लगता है तब वह भगवान् से यही प्रार्थना करता है कि "ए भगवान्! अब हमरा के उठाव" अर्थात् मृत्यु प्रदान कर जीवन के कष्टो का अन्त कर दो।



अध्याय १८

भोजपुरी लोक-संस्कृति का बदलता स्वरूप

पाश्चात्य सभ्यता और आधुनिक शिक्षा का प्रभाव भोजपुरी लोक-संस्कृति के प्रत्येक अग पर प्रचुर परिमाण मे पड रहा है। सामाजिक सस्थाओ तथा प्रथाओ, धार्मिक विश्वासो तथा अनुष्ठानो, आर्थिक अवस्थाओ एव राजनैतिक परिस्थितिया आदि सभी पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव परिलक्षित होता है। किंबहुना हमारे दार्शनिक विचारो और सिद्धान्तो मे भी परिवर्तन दिखायी पडता है। कहने का आशय यह है कि भोजपुरी जन-जीवन का कोई भी अग ऐसा नही जो पाश्चात्य सभ्यता के चाकचिक्य से अछूता रह गया हो।

भोजपुरी जीवन म जो परिवर्तन हो रहे है उनका वर्गीकरण निम्नाकित वर्गों म किया जा सकता है।

(१) सामाजिक जीवन म परिवर्तन

(२) धार्मिक जीवन मे परिवर्तन

(३) आर्थिक जीवन मे परिवर्तन

(४) राजनैतिक जीवन मे परिवर्तन

(५) दार्शनिक विचारो मे परिवर्तन

अगले पृष्ठो मे परिवर्तन का वर्णन स्थानाभाव के कारण अत्यन्त सक्षिप्त रूप मे प्रस्तुत किया जाता है।

वर्ण मे परिवर्तन

प्राचीन काल मे जो जिस वर्ण मे पैदा होता था जीवनपर्यन्त वही उसका वर्ण माना जाता था। उसमे परिवर्तन होना सम्भव नही था। परन्तु आज कल नीची जाति के लोग वर्ण की सस्था को मानने के लिए तैयार नही है। बहुत सी छोटी जाति के लोग अब अपने को उच्च वर्ण मे उत्पन्न घोषित करते है। उदाहरण के लिए नाइयो को लिया जा सकता है जिनका कहना है हम लोग पहिले ब्राह्मण थे परन्तु क्षौर कर्म को पेशा के रूप म स्वीकार करने के कारण नाई हो गये। ऐसे लोग अपनी जाति 'नाई-ब्राह्मण' बतलाने लगे है। इसी प्रकार से बढ़ई भी अब जनेऊ पहिन कर ब्राह्मण बनने का दावा करने लगे है। अहीर जाति के लोग जो अपने नाम के आगे उपाधि के रूप मे यादव लिखते है अपने को भगवान् श्रीकृष्ण का वशज बतलाते है। श्रीकृष्ण के लिए भागवत मे 'यादवाना कुले जात ' लिखा है। वे यादव 'कलान' के वृष्णि वश म उत्पन्न हुए थे। अतएव ये अहीर लोग अब क्षत्रिय बनने का प्रयास कर रहे है। लोहार और बढई जातिवाले अपने को विश्वकर्मा का वशज बतलाने मे नही हिचकते। इसी प्रकार से सभी नीची जातियाँ ब्राह्मण और क्षत्रिय बनने का प्रयास कर रही है।

इन नीची जातियो के लोगो ने, जो उच्च वर्णों की श्रेणी मे अपना प्रवेश पाने के इच्छुक है, ब्राह्मणो की तरह आचरण भी करना प्रारम्भ कर दिया है। वे अब यज्ञोपवीत धारण करते है। नियमित रूप से गगा स्नान करना तथा पूजा पाठ मे समय लगाना उनके दैनिक जीवन का कार्यक्रम बन गया है। कुछ लोग ब्राह्मणो की तरह टीका भी लगाते है और उन्ही की तरह पवित्र जीवन बिताने का प्रयास करते है।

वर्णो के कर्तव्यो मे तो महान् व्यत्यय उत्पन्न हो गया है। मनु ने चारो वर्णों के धर्मों तथा कर्तव्यो का जो परिगणन किया था उसमे से एक का भी कोई आचरण नही कर रहा है। उदाहरण के लिए ब्राह्मणो को ही लीजिये। मनु ने ब्राह्मणो के लिए अध्ययन, अध्यापन, यजन याजन दान लेना और दान देना इन छ कर्मो का विधान किया है। परन्तु ब्राह्मण अब अपने कर्मों को छोडकर दूध बेचते है, गल्ला की दूकान करते है और दफ्तरो मे किरानी बाबू और रेलवे स्टेशनो पर 'पानी पाडे' का भी काम करने लगे है। अब चमार और भगी भी अध्यापन कर्म मे प्रवृत्त है और लडाई के मैदान मे लडने के लिए बन्दूक ले कर चलने का हौसला रखते है। इस प्रकार वर्णों के कर्तव्यो मे महान् परिवर्तन हो गया है।

आश्रम धर्म मे व्यत्यय—प्राचीन काल मे मानव जीवन को चार भागो म विभाजित किया गया था और प्रत्येक आश्रम मे (२५) पच्चीस वर्षों तक रहकर मनुष्य एक निश्चित कम को करता था। उदाहरणाथ ब्रह्मचर्याश्रम मे प्रत्येक हिदू (द्विज) पच्चीस वर्षों तक ब्रह्मचय व्रत का पालन करता था। इस अवधि म वह गुरुकुल मे जाकर अध्ययन करता था ओर एकनिष्ठा से गुरु की सेवा मे दत्तचित्त रहता था। परन्तु आज इस आश्रम का सवथा विनाश हो रहा है। माता-पिता विद्यार्थी अवस्था मे ही अपने बच्चो का विवाह कर देते है। फलस्वरूप वे विद्याअध्ययन की समाप्ति के पहिले ही अनेक बच्चो के पिता बनकर गहस्थाश्रम मे दीक्षित हो जाते है। इस प्रकार ब्रह्मचय और गृहस्थ आश्रम का ऐसा मिश्रण हो गया है जिसके सम्बन्ध मे कुछ लिखना ही व्यथ है।

अब कोई भी गृहस्थ वानप्रस्थ आश्रम को धारण नही करता। अत इस आश्रम का तो बिल्कुल लोप ही हो गया है। हा, कुछ व्यक्ति जिनकी सख्या लाखो मे शायद एक हो—सन्यासाश्रम मे अवश्य प्रविष्ट पाये जाते हे। परन्तु प्राय ये लाग भी वैसे ही है जिनके विषय मे गोस्वामी जी ने लिखा है—

"नारि मुई गृह सपति नासी।
मूड मुडाई भये सन्यासी॥"

वाराणसी मे 'दण्डी आश्रम' नामक भवन मे अनेक सन्यासी रहते हे जिन्हे मुफ्त मे आवास आर भोजन मिलता है। धम की प्रेरणा से प्रेरित होकर सन्यास धम को ग्रहण करनेवाले बहुत कम व्यक्ति होगे। फिर इन सन्यासियो की अपनी उदरदरी की पूर्ति के लिए जो दुगति हो रही है उसे देखकर बडी निराशा होती है। इसीलिये अनेक वीतराग व्यक्ति भी इस आश्रम मे जाने मे हिचकते है।

वण और आश्रम मे जितनी गडबडी, जितनी अव्यवस्था तथा जितनी क्रान्ति आजकल दिखायी पडती है उतनी समवत कभी भी नही हुई थी। आज न कोई वण धम का पालन करता हुआ दिखायी पडता है और न आश्रम धम का। ऐसा ज्ञात होता है कि निकट भविष्य मे इन दोनो की सत्ता ही नष्ट हो जायेगी।

(१) अनुच्छेद—सयुक्त परिवार

भोजपुरी प्रदेश का सामाजिक सगठन सयुक्त परिवार की दृढ भित्ति पर अवस्थित है। इस समाज मे सयुक्त परिवार की प्रथा अभी तक जीवित है जहा एक ही छत के नीचे रहनेवाले तथा एक ही चूल्हे मे बने हुए तथा एक ही साथ भोजन करनेवाले घर के सदस्यो की सख्या तीस-चालीस तक होती है। किसी-किसी परिवार मे तो घर के सदस्यो की सख्या एक सौ तक पहुँच जाती है। परिवार के सभी व्यक्ति गृहपति के अनुशासन मे रहते है जो उनके पालन-पोषण, भोजन-छाजन तथा शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करता है। वह सदस्यो को समान दृष्टि से देखता है तथा सभी की उचित आवश्यकताओ की पूर्ति करता है। इस प्रकार गृहपति जिसे लोग भाषा मे 'मालिक' कहते है—को छोडकर सभी सदस्य खान-पीने की चिन्ता से मुक्त होकर सुख की नीद से सोते है। न तो उन्हे कमाने की चिन्ता सताती है और न घर जाडने की। वे शान्ति-पूवक जीवन बिताते है। इस प्रकार 'मालिक' को छोड कर सभी सदस्यो का जीवन सुखी और शान्त होता है।

परन्तु पाश्चात्य शिक्षा के प्रताप के कारण अब सयुक्त परिवार विघटित होने लगा है। सयुक्त परिवार का जो प्रासाद आज हजारो वर्षों से अक्षुण्ण खडा था अब जीण-शीण होकर भूमिसात् हो रहा है। इसमे कुछ आश्चय नही कि यह कुछ ही वर्षो मे धराशायी न हो जाय। पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षा के अतिरिक्त सयुक्त परिवार के विघटन के प्रधानतया निम्नाकित कारण भी है—

(१) औद्योगीकरण
(२) जनसख्या मे वृद्धि
(३) पाश्चात्य आदर्शो के प्रभाव मे वृद्धि
(४) सयुक्त परिवारो के कार्यों का हस्तान्तरण
(५) परिवहन तथा सचार का विकास
(६) स्त्रियो मे शिक्षा का प्रसार।
(७) सयुक्त परिवारो का विघटित पर्यावरण

संयुक्त परिवारों को विघटित करनेवाले कारकों में औद्योगीकरण तथा नगरीकरण से उत्पन्न परिस्थितियों का प्रभाव सबसे अधिक है। रोजगार के अवसरों में वृद्धि होने के कारण अब गावों के लोग कलकत्ता और बम्बई में जाकर चटकलों तथा रूई मिलों में मजदूरी का काम करने लगे हैं। नगरों में नौकरी के अधिक अवसर मिलने के कारण लोग गाँवों को छोड़कर नगर की ओर भागने लगे हैं। जनसंख्या की वृद्धि भी संयुक्त परिवार के विघटन का कारण बन रही है। पहिले लोग खेती करते थे और उससे उत्पन्न अन्न को खाकर अपना जीवनयापन करते थे। परन्तु परिवार के सदस्यों की अत्यधिक वृद्धि के कारण खेती से परिवार का खर्च पूरा नहीं पड़ता। अतः खेती के अलावा जो व्यक्ति अधिक हैं उन्हें पेट पालने के लिए किसी दूसरे स्थान की शरण लेनी पड़ती है। भारत में अंग्रेजों के शासन के कारण हमारे विचारों, मनोवृत्तियों तथा जीवन-दर्शन पर पाश्चात्य संस्कृति का व्यापक प्रभाव पड़ा है। अब सामूहिकता के स्थान पर वैयक्तिकता की प्रधानता हो गयी है। अतः कोई भी व्यक्ति समुदाय या परिवार में रहना नहीं चाहता।

आजकल परिवहन, यातायात तथा संचार की सुविधा बहुत अधिक बढ़ गयी है। वायुयान, रेल, बस, मोटर कार तथा पानी के जहाजों के आविष्कार के कारण अब देश में एक स्थान से दूसर स्थान की यात्रा करना बड़ा सरल हो गया है। किंबहुना केवल चौबीस घंटों के भीतर संसार के एक कोने से दूसरे कोने में कोई भी व्यक्ति वायुयान (जेट प्लेन) की कृपा से पहुँच सकता है। पहिले जब देश में न रेलें थीं, न वायुयान, जब न सड़कें थीं और न राजपथ, तब एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना अत्यन्त कठिन था। अतः लोग अपने परिवार में ही रहते थे और खेती कर अपनी जीविका चलाते थे। परन्तु अब यातायात की सुविधा के कारण लोग अपना पुश्तैनी घर छोड़कर परदेस कमाने के लिये चले जाते हैं।

स्त्रियों में शिक्षा के प्रचार ने भी संयुक्त परिवार को काफी धक्का पहुँचाया है। आज की शिक्षित स्त्री संयुक्त परिवार के मनमाने शोषण और अमानवीय व्यवहार को अपना दुर्भाग्य समझकर चुपचाप नहीं बैठ रहती, बल्कि मानवोचित अधिकारों की माँग करने लगी है। वह स्कूलों तथा कालेजों में नौकरी करने के लिए अपने घर को छोड़कर बाहर चली जाती है। पहिले स्त्री ही संयुक्त परिवार की नींव समझी जाती थी। परन्तु जब नींव ही हिल गयी तब उस पर बना हुआ प्रासाद कैसे खड़ा रह सकता है?

पहिले संयुक्त परिवार का मालिक बड़ा ईमानदार होता था और वह सब को समान दृष्टि से देखता था परन्तु अब वह स्वयं न्यायप्रियता से बहुत दूर आगे निकल गया है। घर का जो अर्थोपार्जन करनेवाला 'कमासुत' सदस्य है उसकी स्त्री तथा बालबच्चों का तो वह बड़ा सम्मान तथा सत्कार करता है परन्तु जो 'कमासुत' नहीं है उसको वह फूटी आँख से भी नहीं देखता। मालिक के द्वारा सबके साथ समान व्यवहार न करना ही संयुक्त परिवार के विघटन का प्रधान कारण बन गया है।

इन परिवारों का विषाक्त वातावरण तथा दूषित पर्यावरण भी इसके विनाश में सहायक हो रहा है। इनकी कार्य प्रणाली, भेदभाव की नीति, कुछ इस प्रकार की हो गयी है कि संयुक्त परिवार के सदस्यों में कलह और आन्तरिक विद्वेष अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया है। स्त्रियों का आपस में एक दूसरे से झगड़ना, घर में सदा राम-रावण युद्ध मचाते रहना, बच्चों को एक-दूसरे के विरुद्ध भड़काना, पुरुषों का आपस में छोटी-छोटी बातों के लिए लड़ना, ये ऐसी बातें हैं जिनसे संयुक्त परिवार के प्रासाद के स्तम्भ टूट-टूट कर गिर रहे हैं। पहिले परिवार में दादा से लेकर प्रपौत्र चार पाँच पीढ़ी के लोग साथ रहते थे परन्तु अब विघटित परिवार के सदस्य मियाँ-बीबी ही केवल माने जाते हैं।

माता-पिता की उपेक्षा—पहिले संयुक्त परिवार में माता और पिता पूजनीय समझे जाते थे। वे परम आदर तथा श्रद्धा के पात्र माने जाते थे। परन्तु विघटित परिवार में माता और पिता का अनादर होने लगा है। जब से भोजपुरी लड़का अपनी स्त्री का मुँह देखता है उसी दिन से माता-पिता को वह अपना परम शत्रु मानने लगता है और स्त्री ही एकमात्र उसके प्रेम, श्रद्धा तथा भक्ति की अधिकारिणी बन जाती है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने ठीक ही लिखा है कि—

"ससुरारि पियारि लगी जबते
रिपु-रूप कुटुम्ब भये तबते।।"

गोस्वामी जी का यह कथन आजकल की परिवर्तित परिस्थिति में पूर्णतया चरितार्थ हो रहा है।

जहाँ पुत्र अपने मातापिता की उपेक्षा करने लगा है वहाँ उसकी वधू अपनी सास और ससुर को अपना परम विरोधी समझती है। सास से तो उसे ननिक भी नहीं पटता और ननद से वह सदा झगड़ा मोल लिये रहती है। ऐसी विषम परिस्थिति में संयुक्त परिवार की सदा सुहावनी तथा हरी-भरी वाटिका अब सूखने लगी है। उसकी पत्तियाँ मुरझाने लगी हैं। आशंका तो यह है कि निकट भविष्य में कदाचित स्थूण मात्र शेष न रह जाय।

पति-पत्नी के प्रेम में वृद्धि—आजकल पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव में आकर नारी स्वतन्त्रता के वातावरण में विचर

रही है। विघटित परिवार की 'पति-पत्नी' ही इकाई है। पत्नी अपने पति को ही सर्वस्व समझती है। फलस्वरूप पति उसे अपनी सतत सहचारिणी मानता है। सयुक्त परिवार मे पति-पत्नी को आपस मे मिलने का बडा कम समय मिलता था। पर्दा-प्रथा के कारण दिन मे तो इसकी सभावना ही नही थी, हाँ रात्रि मे लुक छिपकर मिलन हो सकता था, वह भी केवल दो चार घंटो के लिए। ऐसी परिस्थिति मे दाम्पत्य-प्रेम का पौधा अविकसित ही रह जाता था। उसमे फूल भी नही लग पाते थे फल की तो कथा ही दूर रही।

परन्तु अब एकाकी परिवार मे पति-पत्नी को सतत साहचर्य का अवसर मिलता है। एक दूसरे के कार्यो स्वभाव तथा चरित्र से परिचित होने का अधिक अवकाश प्राप्त होता है। अत पूर्व की अपेक्षा अधुना पति-पत्नी मे पारस्परिक प्रेम का आधिक्य हो तो इसमे कोई सन्देह नही। आज पति-पत्नी का जुगल-जोडा प्रेम का प्रतीक और साहचर्य का साक्षी बन गया है।

समाज मे स्त्री की दशा मे परिवर्तन

समाज मे स्त्रियो की दशा मे बहुत बडा परिवर्तन हो गया है। इसे हम दो वर्गो मे विभक्त कर सकते है। (१) सामाजिक और (२) आर्थिक। पहिले पुरुष बिना किसी उचित कारण के तथा प्रधानतया अपनी कामवासना की तृप्ति के लिए ही बहु-विवाह किया करते थे। प्रथम पत्नी की मृत्यु हो जाने पर दूसरी का हाथ पकडना तो कुछ हद तक अनुचित नही माना जा सकता परन्तु पहिली पत्नी के जीवित रहते हुए दूसरी स्त्री से विवाह करना अनुचित कार्य था। बहुविवाह की इस प्रथा मे स्त्री का मान घट जाता था। परन्तु केन्द्रीय सरकार के द्वारा बहुविवाह का कानून द्वारा निषेध कर दिये जाने के कारण स्त्रियो के गौरव मे वृद्धि हुई है। अब पुत्री भी पैतृक सम्पत्ति की अधिकारिणी मानी जाती है। इस प्रकार अब स्त्रियो के आर्थिक अधि-कार मे भी वृद्धि हुई है। अब स्त्री भी किसी को गोद ले सकती है और कुमारी लडकी भी गोद लिये जाने की अधिकारिणी होती है। इन सामाजिक तथा आर्थिक कानूनो के द्वारा हिन्दू समाज मे अब स्त्री का स्तर बहुत ऊँचा उठ गया है और वह सम्मान तथा आदर की अधिकारिणी हो गयी है।

(२) अनुच्छेद—भोज्य पदार्थ—(क) चावल

भोजपुरी लोगो का प्रधान भोज्य पदार्थ चावल है। इसका मुख्य कारण यह है कि इस प्रदेश मे चावल की पैदावार प्रचुर रूप मे होती है। चावल के दो प्रधान भेद है (१) उसीना और (२) अरवा। इनमे से उसीना चावल का ही विशेष प्रयोग किया जाता है। कितने घरो मे सबेरे और शाम दोनो 'जून' उसीना चावल का ही भात खाया जाता है। इस प्रदेश मे यद्यपि गेहू की उपज भी कुछ कम नही होती परन्तु इन लोगो की आदत गेहूँ की अपेक्षा चावल खाने की ही अधिक है। परन्तु अब धीरे धीरे लोग इसमे परिवर्तन कर रहे है और चावल के साथ ही गेहूँ को भी प्रधान भोज्य पदार्थो की सूची मे स्थान दे रहे है।

भोजपुरिया का दूसरा भोज्य अन्न मक्का है जिसे लोक-भाषा मे जनेरा कहा जाता है। भादो के महीने मे पैदा होने के कारण इसे 'भदई' भी कहते है। पहिले मक्का को जाते मे 'दर करके' उसका भात बनाया जाता था जो रग मे पीला होता था। इसे दही अथवा मट्ठे की सहायता से लोग खाते थे। परन्तु अब 'जनेरा का भात' खाने की प्रथा धीरे-धीरे उठने लगी है। अब सभी वर्ग के लोग चावल का भात और गेहूँ की रोटी खाने लगे है। अब कोई मक्का का प्रयोग करता भी है तो रोटी के रूप मे, भात के रूप मे बिल्कुल नही।

पूडी—भोजपुरी बारातो मे बरातियो को खिलाने के लिए जो पूडी पकायी जाती थी वह लम्बाई और चौडाई मे बहुत ही बडी होती थी जिसकी उपमा हाथी के कानो से ही दी जा सकती थी। ये पूडियाँ—जिन्हे लुचुई कहते है—एक सेर मे केवल चार ही पकायी जाती थी अर्थात् एक पूडी का वजन पूरे पाव भर—आजकल की तौल मे ढाई सौ ग्राम—होती थी। यद्यपि ये देखने मे मोटी और भद्दी लगती थी परन्तु भोजन करने मे बहुत स्वादिष्ट, मुलायम और सरस होती थी। परन्तु नफासत के प्रचार के साथ इन पूडियो की विशालता मे कमी आ गयी है और आजकल बारातियो के लिए भी छोटी-छोटी पुडियाँ बनने लगी है।

सत्तू—'सत्तू भोजपुरियो का राष्ट्रीय भोजन है' इस कथन मे तनिक भी अत्युक्ति नही है। किसान लोग खेत-खलिहान से आकर अपना मध्यकालीन भोजन सत्तू को ही किया करते थे। कुछ वर्षो पूर्व बलिया और आरा नगरो के प्रधान बाजारो मे सत्तू की दूकानो की भरमार थी और "तुरन्ता भोजनालयो"—जहा भोजन के लिए सत्तू मिलता था—की भी कुछ कमी नही थी। परन्तु आज हमारा यह राष्ट्रीय भोजन अपने प्राचीन आदर के स्थान से गिर गया है और उपेक्षित अवस्था मे अपने दिनो को बिता रहा है। फिर भी यह आज भी गरीबो तथा मजदूरो का बल और सम्बल बना हुआ है।

पक्वान्न—पक्वान्नो मे दहिरोरी का पहिले बडा प्रचार था। यह उस आटे मे जिसमे खमीर उत्पन्न हो गई है—गुड मिला कर घी मे पकाया जाता था जो बहुत ही मुलायम, मीठा और स्वादिष्ट लगता था। परन्तु अब इसके स्थान मे पूआ खाने की प्रथा चल पडी है जो स्वाद मे मीठा होने पर भी उतना मुलायम नही होता। भोजपुरी माताये अपनी विवाहिता पुत्रियो के पास 'करनी' के रूप मे इसी दहिरौरी को पका कर भेजा करती थी।

दहिरोरी के साथ 'ठेकुआ' पकाने और खाने की प्रथा भी लुप्त होती जा रही है। आजकल इसका भग्नावशेष 'अवरोटा' के रूप मे सुरक्षित रह गया है जो कार्तिक शुक्ल षष्ठी के दिन 'छठी माता' की पूजा मे चढाया जाता है।

पानी मे चावल को पकाकर उसमे गुड डालकर जो भोज्य पदार्थ बनाया जाता था उसे 'रसियाव' कहते थे। विवाह अथवा गवना के अवसर पर चने की उबाली हुई दाल को पीसकर और आटे मे भर कर जो 'दालपूरी' बनायी जाती थी उसके साथ 'रसियाव' का बनाना आवश्यक समझा जाता था। परन्तु आजकल की लडकियाँ तथा लडके 'रसियाव' के नाम से बिल्कुल अपरिचित हो गये है और इसका स्थान अब खीर ने ले लिया है जो अपने सुस्वाद के कारण बहुत लोकप्रिय होती जा रही है।

मिष्ठान्न—पहिले भोजपुरी मिठाइयो मे टिकरी, जलेबी, अनरसा, पटउरा, कुटुकी, खुरमा और लकठो का अधिक प्रचार था। छोटे-छोटे बच्चे एक पैसा की टिकरी अथवा लकठो को खरीदकर जलपान किया करते थे। बडे लोग जलेबी और अनरसा का प्रयोग नाश्ता के लिए किया करते थे। किसी अतिथि का भी टिकरी और पटउरा से स्वागत किया जाता था। परन्तु आजकल जलेबी तो अपनी परम्परा को जीवित रखते हुए मिष्ठान्न के रूप मे अक्षुण्ण रीति से चली आ रही है। परन्तु अब टिकरी का सदा के लिए टिकट कट गया, अनरसा का अन्त हो गया, पटउरा पटपटा कर रह गया, कुटुकी का कत्लेआम हो गया और खस्ट खुरमा को कोई पूछता भी नही। लकठा के पीछे लुकाठ दिखाकर उसे भगा दिया गया। लाटा और गाटा को तो अब कोई जानता भी नही।

अब इन मिठाइयो का स्थान शहर के नये ढग के मिष्ठान्नो ने ले लिया है। अब पेडा, इमिरिती, मोतीचूर, रसगुल्ला, पनतुआ, मोहन भोग और सन्देश का साम्राज्य है। ठेठ, देसी भोजपुरी मिठाई अब गाँवो मे भी देखने को नही मिलती। ऐसा भय है कि कुछ दिनो मे यह शोध का विषय बन जायेगी।

शाक सब्जी—भोज्य वस्तुओ मे परिवर्तन के साथ ही शाक-सब्जी का खाने की रुचि मे भी अन्तर दिखायी पडता है। आज से लगभग पचास वर्ष पहिले गाँवो मे कोई टमाटर नही खाता था। घर के वृद्ध पुरुष तथा स्त्रियाँ लाल टमाटर का मास का प्रतिरूप समझ कर इसे खाना निषिद्ध मानती थी। बच्चा टमाटर को 'विलायती' भण्टा' कहा जाता था। अत विलायती होने के कारण उसे कोइ नही खाता था। उन दिनो मे टमाटर टके सेर बिकता था जबकि आजकल यह दो रुपये और कभी-कभी तो १६ रुपये मे भी मिलना कठिन है। आज कोई घर नही जहाँ टमाटर न खाया जाता हो। प्राचीन धारणा के ठीक विपरीत, अब इसका प्रयोग शिष्टता तथा शौकीनी का परिचायक माना जाता है।

कुछ वर्षों पूर्व पितृपक्ष के दिनो मे नेनुआ की तरकारी खाना निषिद्ध था। कोई भी व्यक्ति इसे नही खाता था। क्योकि यह धर्म विरुद्ध समझा जाता था। इसीलिए बाजार मे यह टके सेर बिका करता था। परन्तु आज नेनुआ को पितृपक्ष मे भी ग्रहण किया जा रहा है और कोई भी व्यक्ति इसे खाने मे आपत्ति नही करता।

लहसुन और प्याज के सम्बन्ध मे भी यही बात समझनी चाहिए। प्याज अपनी दुर्गन्ध और लाल रग होने के कारण जहाँ त्याज्य था वहाँ अब इसका भोजन मे स्वागत किया जाता है। नवयुवक इसका सलाद बनाकर बडे प्रेम से खाते है। लहसुन की चटनी बडी स्वादिष्ट होती है। अत लोग बडे प्रेम से आस्वाद लेते है। लहसुन और प्याज के प्रति जो घृणा की भावना थी वह अब लुप्त होती जा रही है।

पेय पदार्थ—पहिले भोजपुरी प्रदेश मे पेय पदार्थ के रूप मे शर्बत—और वह भी गुड का शर्बत—का प्रचुर प्रचार था। किसी अतिथि, अभ्यागत अथवा सम्बन्धी के आने पर उसके स्वागत के रूप मे उसे गुड का शर्बत पिलाया जाता था। चाहे गर्मी का दिन हो अथवा जाडे का समय, सभी ऋतुओ और सभी कालो—प्रात काल तथा सन्ध्या—मे गुड का बना शर्बत ही स्वागत का एक मात्र माध्यम था। हाँ जाडे के दिनो मे जब ऊख (ईख) की पेराई चालू रहती थी उस समय अतिथियो को ईख का तत्काल पेरा गया रस भी पिलाया जाता था। पुत्री के विवाह मे 'मँडवानि' के दिन मण्डप छाने वालो को गुड का ही शर्बत दिया जाता था।

परन्तु आज इस शर्बत का स्थान चाय ने ले लिया है। अब गाँवो मे भी किसी अतिथि अथवा सम्बन्धी के आने पर शर्बत के स्थान पर चाय से ही उसका स्वागत किया जाता है। यदि कभी किसी को शर्बत दिया भी जाता है तो वह खाँड या चीनी का होता है गुड का नही। चाय ने मागलिक अवसरो के स्वागत विधि मे भी चचु प्रवेश कर लिया है। पहिले बारातियो के

आने पर उन्हे पूडी तथा चीनी से जलपान कराया जाता था। परन्तु आजकल उनके स्वागत की विधि चाय तथा नमकीन क द्वारा ही समाप्त कर दी जाती है।

शुद्ध घी और दूध का अभाव—प्राचीन काल मे इस देश मे दूध और घी की नदियाँ वहती थी। आज मे पचास वष पूव घी तथा दूध काफी सस्ता था और शुद्ध रूप मे प्रचुर परिमाण मे उपलब्ध होता था। परन्तु जब से डाल्डा का जन्म हुआ हे तब से शुद्ध घी का विनाश हो गया। अब बाजार मे घी का दशन भी दुलभ हो गया है ओर उसके स्थान पर बनस्पति घी के अनेक प्रकार जैसे नम्बर वन, रथ, कुसुम आदि प्रचलित हो गये ह। अब देशी घी को द्योतित करने के लिए 'शुद्ध' शब्द का विशेषण लगाना आवश्यक हो गया। अब वे दिन दूर नही है जब शुद्ध घी वैद्यो के आपधालयो मे दवा बनाने के लिए ही प्राप्त हो।

दूध के सम्बन्ध मे भी यही बात कही जा सकती है। अब शुद्ध दूध बाजारो मे उपलब्ध नही होता। हा मक्खन निकाला गया दूध अवश्य मिल सकता है जो 'मखनिया' दूध के नाम से प्रसिद्ध है। इस दूध से जमायी गयी दही को 'सेपरेटा' कहते है क्योकि इसका मक्खन पहिले ही 'सेपरेट' अर्थात् अलग कर दिया जाता है। इस प्रकार मखनिया दूध आर सेपरेटा दही का सवत्र सामाज्य हे। शुद्ध घी ओर दूध का अब दर्शन नही हो सकता।

(३) अनुच्छेद—वस्त्र या वेश-भूषा

मोजन के समान वेश-भूषा के क्षेत्र मे भी कुछ कम परिवतन नही हुआ है। पहिले साधारण भोजपुरिया की धोती और कुर्ता मामान्य वेशभूषा थी। वह घुटने से ऊपर तक की धोती पहिनता और 'मोटिया' का कुर्ता धारण करता था। उन दिनो मे खद्दर का आविष्कार नही हुआ था। अत सभी लोग मोटे सूत की धोती और कुर्ता पहिनते थे। कन्धे पर एक गमछी रहती थी जो स्नान करते समय अस्थायी धोती का काम करती थी। पैरो मे किसान चमरौधा जूता पहिनता था जो गाँव के ही चमार का बनाया हुआ होता था। गाँव का पण्डित तथा पुरोहित धोती के साथ अपन शरीर मे कुर्ता के स्थान पर बगलबण्डी पहिनता था जिसमे बटन के स्थान पर चार बन्द लगे रहते थे। इसी कारण यह 'चौबन्दा' भी कहा जाता था। पण्डित जी सिर पर पगडी बाधते थे और गले मे लम्बी चादर लटकाये रहते थे जिसे उत्तरीय कहते थे।

परिधान—आजकल किसान की वेशभूषा मे तो विशेष परिवर्तन नही हुआ है परन्तु पुरोहित जी ने अपना पुराना चोला बदल दिया हे और नये प्रकार के वस्त्रो को धारण करना प्रारम्भ किया है। अब गाँवो मे भी शायद ही कोई पण्डित अथवा पुरोहित बगलबन्दी या चौबन्दा धारण करता हो। कुर्ता ने इन दोनो का स्थान ले लिया है। अब पण्डित लोग अपने सिर पर पगडी भी नही बाँधते। उनके गले मे दुपट्टा तो अवश्य दिखायी पडता है परन्तु धीरे-धीरे उसकी भी गति 'अदशन लोप' की हो रही है। चमरौधा जूता के स्थान पर अब पम्पशू ऑर सैण्डिल का प्रचार हो रहा है। बाटा के चप्पल का तो सर्वत्र एक-छत्र साम्राज्य दिखायी पडता है।

नवयुवको ने धोती और कुर्ता को तिलाजलि देकर अब पैण्ट और बुशशर्ट को अपना लिया है। पाजामा और कमीज ने धोती-कुर्ता को बेदखल कर अपना कब्जा जमा लिया है। स्कूल और कालेजो मे धोती-कुर्ता पहिने हुए कदाचित कोई विद्यार्थी मिल भी जायँ परन्तु विश्वविद्यालयो मे ऐसे छात्रो का अत्यन्ताभाव ही समझना चाहिए। सबसे बडी दुख की बात यह है कि अपनी देशी वेशभूषा धारण करने मे शिक्षार्थी की उपमा 'बे दाल के बूदम' से दी जाती है। नयी रोशनी के इन पतिगो ने तो पगडी का तो सदा के लिए पत्ता ही काट दिया। उत्तरीय उत्तर को न जाकर दक्षिण दिशा का अतिथि हो गया है। इस प्रकार अपनी प्राचीन वेश-भूषा से विरहित और आधुनिक कोट-पैण्ट और टाई से समन्वित भोजपुरी युवक काली चमडी को छोडकर अपने आचार-विचार तथा वेश-भूषा मे विदेशी हो गया है।

गाँव के छोटे-छोटे बच्चे अब घुटन्ना हाफ पैण्ट और गजी पहिनते है। कुछ बडे होने पर वे शर्ट (कमीज) और शाट (आधी कमीज) पहिनने लगते हे। गमछी का स्थान अब तौलिया ने ले रखा है। पहिले युवक कमर मे लँगोट लगाते थे जिनके विषय मे शकराचाय ने लिखा है कि "कौपीनवन्त खलु भाग्यवन्त।" परन्तु अब कौपीन (लँगोट) के स्थान पर अण्डर वियर का प्रचार हो गया है। अब भोजपुरी प्रदेश का शायद ही कोई खूसट नौजवान हो जो पैण्ट के नीचे लँगोट पहिनता हो। कुछ नवयुवक चूडीदार पैंजामा और शेरवानी भी पहिनने लगे है। परन्तु इसका प्रचार अभी अधिक नही है।

गाँवो मे खडाऊँ पहिनने का पहिले बहुत प्रचार था। पण्डित लोग पूजा-पाठ तथा स्नान के समय सदा खडाऊँ का प्रयोग करते थे और किसान लोग एक प्रकार का ऊँचा खडाऊँ इस्तेमाल मे लाते थे जिसमे खूटी के स्थान पर बाध होता था जिसे ग्रामीण भाषा मे 'बधौरा' कहते थे। परन्तु आज खडाऊँ के स्थान पर बाटा का चप्पल पहिना जाने लगा है और 'बधौरा'

का प्रयोग सदा के लिए बन्द हो गया। कुछ लोग काठ की बनी हुई 'चटाकी' खडाऊँ के स्थान पर पहिन कर चला करते थे परन्तु चप्पल ने सबको चपतिया दिया है।

पहिले विवाह करने के लिए जाने वाले वर की वेशभूषा जोडा और जामा था। जामा एक घाघरा नुमा वस्त्र था जिसे वर अपनी कमर मे बाँध लेता था। यह अपने शरीर मे अगरखानुमा वस्त्र धारण करता था। इन दोनो वस्त्रो का रंग लाल होता था तथा उसकी धोती का रंग पीला था। ये दोनो ही रंग मांगलिक माने जाते है। इस अवसर पर वर जिस जूते को पहिनता था उसका भी रंग लाल होता था और उस पर जरी का काम किया गया रहता था। इस प्रकार वर की वेशभूषा परम्परागत होती थी और वह मांगलिक वस्त्रों को ही धारण करता था।

परन्तु आजकल भोजपुरी वर की वेशभूषा मे महान् परिवर्तन हो गया है। आज का वर जोडा और जामा को न पहिनकर कोट और पैण्ट को ठाट से धारण करता है। कोई-कोई वर तो ईसाई धर्म के पवित्र चिन्ह क्रास का प्रतीक टाई भी पहिन लेते है। सूट के रंग के विषय मे कुछ भी ध्यान नही दिया जाता। कभी-कभी तो वर 'ब्लैक सूट' मे विवाह करने के लिए जाते दिखायी पडते है जो अमांगलिक है। वर के लिए 'मौर' का धारण करना आवश्यक है। परन्तु कुछ फैशनबुल वर अपने बालो की सजावट के नष्ट होने के भय से सिर पर 'मौर' भी धारण नही करते। इस प्रकार 'मौर' का प्रयोग औपचारिक हो गया है।

(४) अनुच्छेद—आभूषण

आभूषण स्त्रियो की परमप्रिय वस्तु है। विवाह मे स्त्रियो को जितना ही अधिक गहना मिलता है वे अपने को उतना ही अधिक सौभाग्यशालिनी समझती है। स्त्रियाँ नख से शिख तक पहिले गहना पहिनती थी जिनमे लटकन, झबिया, चन्द्रहार, डडा, पावजेब, बिछिया, हँसुली, कठा और कठेसरि प्रधान माने जाते थे। ये गहने इतने भारी और बोझिल होते थे कि इनको पहिन कर चलना भी उनके लिए कठिन था।

परन्तु अब समय की गति के साथ स्त्रियो की आभूषण-प्रियता मे भी परिवर्तन होने लगा है। पहिले स्त्रियो को आभूषण ही प्रिय था। वे अपनी वेशभूषा पर उतना ध्यान नही देती थी जितना आभूषण पर। परन्तु आज गहने को प्रधानता न देकर वस्त्रो को महत्त्व दिया जाने लगा है। अब पुराने गहनो का फैशन सदा के लिए लद गया और उसके स्थान पर नवीन डिजाइन के आभूषणो का प्रयोग होने लगा है। पुराने गहने, भारी भरकम होते थे परन्तु आधुनिक आभूषण हल्के, सुन्दर तथा आकर्षक होते है।

आजकल पुराने गहनो का स्थान नये गहनो ने ले लिया है जिसकी सूची नीचे दी जाती है।

गहने पहिनने का स्थान	पुराना गहना	नया प्रचलित गहना
कान	कर्णफूल	इयररिंग तथा टाप
नाक	नक बूली	कील, लवंग
गला	चन्द्रहार	नेकलेस
हाथ	पहुँची, बगुरी	सोने की चूडी
अँगुली	हथसकर	अँगूठी
पैर	पावजेब	पायल
पैर की अगुली	बिछिया	कुछ नही।

पहिले के अनेक आभूषणो का आज पूर्णतया बहिष्कार कर दिया गया है। आजकल की स्त्रियाँ अब इन्हे बिल्कुल भी नही पहिनती। फैशन के बाजार मे अब इनका कोई मूल्य नही है। इन आउट-आफ-डेट गहनो की तालिका निम्नांकित है।

पहिनने का स्थान	गहने का नाम
१ सिर	मँगटीका
२ गर्दन	हसुली, कठा, कठेसरि
३ कान	कनफूल, झूमक, सिकडी
४ नाक	नथिया, नथनी
५ नाक निचला भाग	बुलाक, झुलनी

६ छाती	चन्द्रहार
७ बाह	लटकन, झबिया
८ हाथ	हथ सकर
९ कमर	डडा, करधनी
१० पैर	पावजेब, गोडाव,
११ पर की अँगुलिया	बिछुआ

कहने का आशय यह है कि अब स्त्रियो के गहनो की सख्या मे ही कमी नही आयी हे वल्कि वे हल्के और सुन्दर भी दिखायी पडते ह। प्राचीन काल की स्त्रियो की आभूपण-प्रियता ने अब परिधान प्रियता के स्वरूप को धारण कर लिया है। अत अब गहनो का प्रचार कम होता जा रहा ह और साडियो के लिए शोक बढता जा रहा है। पहिले स्त्रियो के आभूपण सोना, चादी, दरब (Alloy) तथा पीतल के धातु से बनाये जाते थे। गाव की गरीब स्त्रिया दरब (मिश्रित धातु) का गाडाव (पैर का आभूषण), पहिनती थी। परन्तु अब केवल सोने के गहने का ही, प्रयोग होने लगा है। यद्यपि पहिले की अपेक्षा आजकल सोना पचास गुना से भी अधिक महँगा हो गया है परतु आधुनिक स्त्रिया महँगाई की तनिक भी चिता न करके केवल सोने का ही गहना पहिनने लगी हे। किबहुना गॉवो मे निधन तथा नीच जाति की स्त्रिया भी अब गले मे सान की हँसुली और हाथो मे सोने की ही चूडियाँ अथवा बेरा पहिनती है।

आभूषण-प्रियता का अभाव अब पुरुष वग मे भी दिखायी पडने लगा है। पहिले छोट-छोट लडको का कान मे बाला, हाथ मे बेरा और पैरो मे 'गोडाव' नामक आभूषण पहिनाया जाता था। वे जब विवाह करने के लिए जात थे तब भी इन गहनो से सुशोभित रहते थे। इनके अतिरिक्त वे हाथ मे सोने की अँगूठी ओर गले मे हार भी पहिन लिया करते थे। वर का गहनो से अलकृत होना आवश्यक समझा जात। था।

परन्तु आजकल गाँवो मे कोई भी लडका बाला, गोडाव और बेरा नही पहिनता ओर विवाह के लिए जाने वाला वर भी केवल अँगूठी पहिन कर ही आत्म सतोष कर लेता है। इसका कारण कुछ यह भी है कि पहिले लडका का विवाह बहुत छोटी आयु मे होता था, अत उनके लिए गहना उनके सौन्दय का आवश्यक अग समझा जाता है। परन्तु अब मुछन्दर लडका का ही विवाह होने लगा है। अत इनके लिए आभूषण के स्थान पर वस्त्रो की ही प्रधानता होती है। कहने का आशय यह है कि अब गहना फैशन की सूची से नीचे गिरता जा रहा है और इसका स्थान धीरे-धीरे नये डिजाइन तथा नये प्रकार के वस्त्र लेते जा रहे है।

(५) अनुच्छेद—(क) गृह निर्माण

गॉवा मे पहिले कच्चे मकान बनते थे जिनकी दीवाले मिट्टी की बनी होती थी और ऊपर नरिया तथा खपडा से उन्हे छा दिया जाता है। इन्हे खपरैल का मकान भी कहा जाता है। जो व्यक्ति अधिक गरीब ह वे छप्पर का मकान बनवाते है जिसकी दीवाले अरहर के सूखे पौधे—रहरेठा—की होती है और ऊपरी भाग सरकण्डे से छाया जाता है। गगा अथवा अन्य किसी नदी के किनारे जो मकान बनाये जाते है वे प्राय छप्पर के ही होते है क्योकि बाढ आने के कारण प्रतिवष उनके गिर जाने का भय बना रहता हे। इन्ही छप्पर के मकानो की अधिकता के कारण कितने भोजपुरी प्रदेश के गॉवो का नाम 'छपरान्त' पड गया है। जैसे दया छपरा, दूबे छपरा, करन छपरा तथा लछुमन छपरा आदि।

परन्तु आजकल जो मकान बनाये जा रहे हे वे प्राय पक्के होते है। अर्थात् उनकी दीवाले ईंट की होती है और उसका ऊपरी भाग पत्थर की पटिया देकर पाट दिया जाता है अथवा लिण्टल करके पक्का सीमेण्ट का बना दिया जाता है। कुछ लोग ईंटो की दीवालो को बनाकर घर को खपरैल से भी छा देते है। परन्तु लिण्टल करने का फैशन अब अधिक जोर पकडता जा रहा है। अब प्राय प्रत्येक गाँव मे दो चार पक्के मकान देखने को मिल सकते है। नये धनी व्यक्ति तो अब कच्चा मकान बनवाते ही नही। सभवत पक्का मकान उनकी समृद्धि का मापदण्ड माना जाता है।

अब गृह निर्माण की सामग्री अथवा उपकरण मे ही परिवतन नही हो रहा है बल्कि गृह-रचना की प्रणाली मे भी अनेक सुधार किये जा रहे है। कच्चे मकानो मे खिडकियो का प्राय अभाव हुआ करता था। अतएव मकान के भीतर वायु तथा प्रकाश के प्रवेश करने का अवसर ही नही मिलता था। मकान मे लगे हुए दरवाजे बहुत छोटे होते थे जिनमे वामन भगवान् का कोई बिरादर ही आसानी से घुस सकता था। लम्बे आदमियो की तो मुसीबत ही थी। इसके अतिरिक्त घर मे न तो कोई आलमारी होती थी, और न ताखा। पुराना घर क्या था पूरा जेलखाना था।

परन्तु आजकल जो पक्के मकान बनाये जा रहे है उनमे प्रचुर संख्या मे खिडकिया होती है जिससे वायु और प्रकाश मिल सके। प्रत्येक कमरे मे आलमारी होती है। कुछ घरो मे धुआ के बाहर निकलने के लिए 'धुआकस' भी बने रहते है जिनका पहले नितान्त अभाव था।

अब राज्य सरकार की कृपा से अनेक गावो मे टीबुल (ट्यूबवेल) भी लग गये है जहा बिजली से पानी खीचा जाता है। कुछ धनी मानी लोगो ने इन ट्यूबवेलो से बिजली लेकर अपने घरो मे भी लगा ली है। अत उनके अधेरे घरो मे अब बिजली का प्रकाश दिखायी पडता है। अब वह दिन दूर नही है जब गाँवो के सारे घर बिजली की रोशनी से चमचमा उठेगे।

(ख) गृह सामग्री

अब गँवई के लोगो के घरेलू सामान मे भी अन्तर दिखाई पडने लगा है। पहिले घर मे केवल बाध की चारपाई होती थी जो मूज की रस्सी से बुनी जाती थी। यह बडी कर्कश होती थी। अत बाध की खुरहरी खाट पर सोना कठोर तपस्या करने से कुछ कम कठिन नही था। कुछ समृद्ध घरो मे ही सुतली की चारपाई पायी जाती थी। परन्तु आज गाँवो मे भी पलँग का प्रचार होने लगा है। धनी लोग नेवार से बुने हुए पलँग पर सोते है और धीरे-धीरे बाध तथा सुतली की चारपाई का स्थान पलँग लेने लगा है। पहिले विवाह के अवसर पर कन्या के गवना के समय सुतली की चारपाई दी जाती थी। परन्तु अब गरीब और अमीर सभी लोग पलँग देने मे ही अपनी शान समझते है।

गाँवो मे अतिथि के बैठने के लिए काठ की बनी चौकी दी जाती थी। परन्तु अब कुर्सी का प्रबन्ध किया जाता है। बिछाने के लिये प्रयुक्त होने वाली दरी और लेवा के स्थान तोसक ने ले लिया है। ओढने के लिए रजाई के स्थान पर लिहाफ और दोहरि के स्थान रैपर पर का प्रयोग किया जाने लगा है। धनी लोग शाल भी ओढते है।

(६) अनुच्छेद—मनोरंजन के साधन

गाँवो मे मनोरंजन का साधन पहिले कथा या कहानी सुनना था। गाँव के बूढे सन्ध्या के समय अपने द्वार पर जाडे के दिनो मे आग जला कर तापा करते थे जिसे 'कउडा' कहा जाता था। इसी समय उस मुहल्ले के लडके एकत्रित होते थे और उस 'कउडा' के चारो ओर आग तापने के लिए बैठ जाते थे। बूढे बाबा बच्चो के मनोरंजन के लिए कोई कहानी सुनाया करते थे जिसे सुनकर बच्चे लोट लोट हो जाते थे। यही क्रम जाडे भर तक, पाँच छ मास तक चलता रहता था। इसके अतिरिक्त कोई कथा वाचक गाँव मे रामायण की कथा कहने लगता था तो उसे सुनने के लिए गाँव के बाल-वृद्ध नियमित रूप से जाते थे। इस प्रकार धार्मिक कथाओ तथा लोक-कहानियो के द्वारा लोगो का मनोरंजन हुआ करता था। युवकगण ताश खेल कर अपना समय बिताया करते थे।

परन्तु अब स्थिति बिल्कुल बदल गयी है। अब जाडे के दिनो मे न तो 'कउडा' जलाया जाता है और न उन हास्य रसोत्पादक कहानियो के कहने वाले बूढे ही रह गये है। जो वृद्ध अवशिष्ट बच गये है वे काल के गाल मे जाने के लिए अपने दिन गिन रहे है। जनता की धर्म मे श्रद्धा तथा भक्ति मे ह्रास के कारण अब धार्मिक कथावाचको ने भी गाँवो मे जाना छोड दिया है। क्योकि अब न तो गाँवो मे धार्मिक कथाओ को सुननेवाले श्रोता ही मिलते है और न उन्हे कोई आर्थिक लाभ ही होता है। ऐसी दशा मे कथा और कहानी के द्वारा जन मन का अनुरंजन होना सम्भव नही है।

अब गाँवो मे रेडियो का प्रचार धीरे-धीरे बढ़ रहा है। प्रत्येक ग्राम-प्रमुख को सरकार की ओर से एक रेडियो सेट दिया गया है जिससे जनता को नये समाचार मिल सके। और उनका मनोरंजन भी हो सके। गाँव के लोग रात को ग्राम-प्रमुख के घर एकत्रित होते है और बडे प्रेम से रेडियो पर गाना सुनते है। ग्रामीणो के मनोरंजन का दूसरा साधन नाटक करनेवाली कम्पनियाँ (थियेट्रिकल कम्पनी) है जो मेला ठेला मे आकर अपने नाटको का अभिनय दिखा कर लोगो के दिल को प्रसन्न कर देती है। इन कम्पनियो मे हाथरस की नौटकी प्रसिद्ध है। मनोरंजन का अन्य साधन नाच पार्टियाँ है जो विवाह के अवसर पर अपनी कला का प्रदर्शन करती है। इन पार्टियो मे अधिकतर कमसीन लडके होते है जिन्हे 'लौंडा' कहा जाता है। ये अपनी कृत्रिम वेशभूषा के द्वारा स्त्रियो का अनुकरण कर नाचते, गाते और अभिनय करते है।

खेल—गाँवो मे पहिले कबड्डी, गुल्ली-डंडा, चीका आदि खेलो का प्रचुर प्रचार था। बच्चो के अतिरिक्त वयस्क लोग भी कबड्डी मे भाग लिया करते थे। स्वयं इन पंक्तियो के लेखक ने अपने लडकपन मे कबड्डी तथा गुल्ली-डंडा का खेल खूब खेला है। परन्तु अब इन देशी खेलो के स्थान पर विदेशी खेल हाकी, फुटबाल और क्रिकेट का भी गाँवो मे प्रवेश हो गया है। गाँवो मे खुले मैदानो की कुछ कमी नही है। अत गँवई के लडके कभी भी 'गोल' की स्थापना करके फुटबाल और हाकी का खेल खेलना

शुरू कर देते है। फुटबाल खेलने के लिए वे कही से रबर का गेना (गेद) प्राप्त कर लेते है। यदि इसकी प्राप्ति सभव न हो सकी तो कपडे का बना हुआ 'गेना' ही वे प्रयोग मे लाते है आर इसी को पैरो से 'किक' करके फुटवाल खेलने की अपनी 'साध' मिटाते है।

हाकी खेलने का भी गॉवो मे प्रचार हो चला है परन्तु फुटबाल की अपक्षा वह कम है। इसका प्रधान कारण इस खेल के साधनो की अनुपलब्धि है। गावो मे हाकी की स्टिक कीमती होने के कारण उपलब्ध नही होती। अत इस खल के शौकीन बालक किसी ऐसी लकडी को काटकर हाकी बनाते है जिसका अगला सिरा मुडा रहता है। हाकी के कडे गेद के अभाव मे वे 'कैथा' के फल का प्रयोग करते है जो हाकी के बाल की ही तरह गोल आर कठोर होता है। इन्ही बालको मे से एक रेफरी बन जाता है और खेल का काय सुचारु रूप से सचालित होने लगता है।

गावो मे बच्चे अब क्रिकेट का भी खेल खेलते है। परन्तु विकेट ओर बल्ला के अभाव म उन्हे बहुत कठिनाई का सामना करना पडता है। विकेट के स्थान पर तीन छोटी छोटी लकडियो को काट कर वे स्थापित कर देते है आर बल्ला के स्थान पर वे लकडी की एक चौडी पट्टी ले लेते है। वे रबर अथवा कपडे की बनी गेद को अपने बल्ले से मारते है आर इस प्रकार अपना 'रन' बनाते है। अधिक सामग्री की आवश्यकता होने के कारण यद्यपि इसका प्रचार अभी कम ह परन्तु इसका शौक बढता जा रहा है।

गॉवो मे कौडियो के द्वारा जुआ खेलने का प्रचार था। परन्तु इसका स्थान अब ताश का जुआ लेता जा रहा है। अब लोग, विशेषकर नवयुवक, ताश खेलते समय उसके पत्तो पर दाँव लगाते और जुआ खेलते है। पहिले निठल्ले लोग शतरज का खेल खेला करते थे परन्तु इसकी प्रथा अब धीरे-धीरे उठ रही है। नवयुवक कैरेमबोड पर कैरम वा खेल खेलकर अपना मनोरजन किया करते है।

(२) परिच्छेद

आर्थिक जीवन में परिवर्तन

भोजपुरी जनता के आर्थिक जीवन मे भी बहुत बडा परिवर्तन हो रहा है। यद्यपि अनेक अनुसधानो के होने तथा अनेक साधनो के उपलब्ध होने पर भी जनता की गरीबी अभी दूर नही हुई है, वह पैर तोडकर आसन जमाये हुए है। परन्तु कृषि सम्बन्धी अनेक सुविधाओ के प्राप्त होने के कारण कृषको का जीवन समृद्धि के पथ की ओर अग्रसर हो रहा है। यो तो ग्रामीण जनता के जीवन मे सर्वाङ्गीण परिवतन के चिन्ह दिखायी पड रहे है परन्तु कृषि के क्षेत्र मे यह सर्वाधिक दृष्टिगोचर होता है।

(१) अनुच्छेद—(क) खेत जोतने का साधन

पहिले ग्रामीण अपने हल और बैल की सहायता से अपने खेतो की जुताई करते थे। दिन रात परिश्रम करने के पश्चात् भी वे एक बीघा खेत को भी एक दिन मे नही जोत पाते थे। परन्तु ट्रैक्टर के आविष्कार से उनकी यह कठिनाई अब दूर हो गयी है। ट्रैक्टर मोटर से चालित वह मशीन है जिसके पिछले भाग मे लोहे के बीसियो हल (लोहे के फाल) लगे रहते है। मोटर के चलने पर ये फाल जमीन मे घुसकर एक या दो फीट नीचे की धरती की मिट्टी को उखाड देते है। इस प्रकार एक ट्रैक्टर एक दिन मे बीसियो बीघा खेत जोत सकता है। अब किसान को जेठ की दुपहरी मे अपनी काञ्चन काया को जलाने की आवश्यकता नही है। वह इस ट्रैक्टर की सहायता से सैकडो बीघा खेत को दो-चार दिनो मे जोत कर इस काम से छुट्टी पा सकता है।

यद्यपि गॉवो मे हल और बैलो के द्वारा आज भी खेतो की जुताई होती है परन्तु वह दिन दूर नही है जब ट्रैक्टरा से सभी खेतो की जुताई होने लगेगी। ट्रेक्टरो का मूल्य आज कल बहुत अधिक है। गरीब किसान चालीस हजार रुपयो को खच करके ट्रैक्टर खरीदने मे अभी असमथ है। परन्तु किसी धनी किसान से किराये पर ट्रैक्टर लेकर वह भी अपन खेतो को जुतवा रहा है।

खेतो की कटाई, दवाँई और ओसाई के नवीन साधन

खेतो की कटाई, दवाँई और ओसाई के नवीन साधन—खेतो के पक जाने पर उसको काटन के लिए मजदूरो की एक पूरी सेना जुटानी पडती थी और उसे निश्चित समय के भीतर काटना आवश्यक होता था। अत किसानो को बडी कठिनाई का सामना करना पडता था। इसी प्रकार कटे अन्न को खलिहान मे रखा जाता था जिसकी बैलो के द्वारा दवँरी की जाती थी।

परन्तु आजकल जो पक्के मकान बनाये जा रहे हे उनमे प्रचुर सख्या मे खिड़किया होती है जिससे वायु ओर प्रकाश मिल सके। प्रत्येक कमरे म आलमारी होती है। कुछ घरो मे धुआ के बाहर निकलने के लिए 'धुआकस' भी बने रहते हे जिनका पहले नितान्त अभाव था।

अब राज्य सरकार की कृपा से अनेक गावो मे टीबुल (ट्यूबवेल) भी लग गये हे जहा बिजली स पानी खीचा जाता है। कुछ धनी मानी लोगो ने इन ट्यूबवेलो से बिजली लेकर अपने घरो मे भी लगा ली है। अत उनके अधेरे घरो मे अब बिजली का प्रकाश दिखायी पडता है। अब वह दिन दूर नही है जब गावो के सारे घर बिजली की रोशनी से चमचमा उठेगे।

(ख) गृह सामग्री

अब गॅवई के लोगो क घरेलू सामान मे भी अन्तर दिखाई पडने लगा है। पहिले घर मे केवल बाध की चारपाई होती थी जो मूज की रस्सी से बुनी जाती थी। यह बडी ककश होती थी। अत बाँध की खुरहरी खाट पर सोना कठोर तपस्या करने से कुछ कम कठिन नही था। कुछ समृद्ध घरो मे ही सुतली की चारपाई पायी जाती थी। परन्तु आज गांवा मे भी पलँग का प्रचार होने लगा है। धनी लोग नेवार से बुने हुए पलँग पर सोते है और धीरे-धीरे बाध तथा सुतली की चारपाई का स्थान पलँग लेने लगा है। पहिले विवाह के अवसर पर कन्या के गवना के समय सुतली की चारपाई दी जाती थी। परन्तु अब गरीब और अमीर सभी लोग पलँग देने मे ही अपनी शान समझते है।

गाँवो मे अतिथि के बैठने के लिए काठ की बनी चौकी दी जाती थी। परन्तु अब कुर्सी का प्रबन्ध किया जाता है। बिछाने के लिये प्रयुक्त होने वाली दरी और लेवा के स्थान तामक ने ले लिया है। ओढने के लिए रजाई के स्थान पर लिहाफ और दोहरि के स्थान रैपर पर का प्रयोग किया जाने लगा है। धनी लोग शाल भी ओढते है।

(९) अनुच्छेद—मनोरंजन के साधन

गाँवा मे मनोरजन का साधन पहिले कथा या कहानी सुनना था। गाँव के बूढे सन्ध्या के समय अपने द्वार पर जाडे के दिनो मे आग जला कर तापा करते थे जिसे 'कउडा' कहा जाता था। इसी समय उस मुहल्ले के लडके एकत्रित होते थे और उस 'कउडा' के चारो ओर आग तापने के लिए बैठ जाते थे। बूढे बाबा बच्चा के मनोरजन के लिए कोई कहानी सुनाया करते थे जिसे सुनकर बच्चे लोट पोट हो जाते थ। यही क्रम जाडे भर तक, पाँच छ मास तक चलता रहता था। इसके अतिरिक्त कोई कथा वाचक गाँव मे रामायण की कथा कहने लगता था तो उसे सुनने के लिए गाँव के बाल-वृद्ध नियमित रूप से जाते थे। इस प्रकार धार्मिक कथाओ तथा लोक-कहानियो के द्वारा लोगो का मनोरजन हुआ करता था। युवकगण ताश खेल कर अपना समय बिताया करते थे।

परन्तु अब स्थिति बिल्कुल बदल गयी है। अब जाडे के दिनो म न तो 'कउडा' जलाया जाता है और न उन हास्य रसोत्पादक कहानियो के कहने वाले बूढ ही रह गये है। जो वृद्ध अवशिष्ठ बच गये है वे काल के गाल म जाने के लिए अपने दिन गिन रहे है। जनता की धर्म मे श्रद्धा तथा भक्ति मे ह्रास के कारण अब धार्मिक कथावाचको ने भी गावो म जाना छोड दिया है। क्योकि अब न तो गाँवो मे धार्मिक कथाओ को सुननेवाले श्रोता ही मिलते है और न उन्हे कोई आर्थिक लाभ ही होता है। ऐसी दशा मे कथा और कहानी के द्वारा जन मन का अनुरजन होना सभव नही है।

अब गाँवो मे रेडियो का प्रचार धीरे-धीरे बढ़ रहा है। प्रत्येक ग्राम-प्रमुख का सरकार की ओर स एक रेडियो सेट दिया गया है जिससे जनता को नये समाचार मिल सके। और उनका मनोरजन भी हो सके। गाँव के लोग रात को ग्राम-प्रमुख के घर एकत्रित होते है और बडे प्रेम से रेडियो पर गाना सुनते है। ग्रामीणो के मनोरजन का दूसरा साधन नाटक करनेवाली कम्पनियाँ (थियेट्रिकल कम्पनी) है जो मेलो ठेलो मे आकर अपने नाटको का अभिनय दिखा कर लोगो के दिल को प्रसन्न कर देती है। इन कम्पनियो मे हाथरस की नौटकी प्रसिद्ध है। मनोरजन का अन्य साधन नाच पार्टियाँ है जो विवाह के अवसर पर अपनी कला का प्रदर्शन करती है। इन पार्टियो मे अधिकतर कमसीन लडके होते है जिन्हे 'लौडा' कहा जाता है। ये अपनी कृत्रिम वेशभूषा के द्वारा स्त्रियो का अनुकरण कर नाचते, गाते और अभिनय करते है।

खेल—गाँवो मे पहिले कबड्डी, गुल्ली-डडा, चीका आदि खेलो का प्रचुर प्रचार था। बच्चो के अतिरिक्त वयस्क लोग भी कबड्डी मे भाग लिया करते थे। स्वय इन पक्तियो के लेखक ने अपने लडकपन म कबड्डी तथा गुल्ली-डडा का खेल खूब खेला है। परन्तु अब इन देशी खेलो के स्थान पर विदेशी खेल हाकी, फुटबाल और क्रिकेट का भी गाँवो म प्रवेश हो गया है। गाँवो मे खुले मैदानो की कुछ कमी नही है। अत गँवई के लडके कभी भी 'गोल' की स्थापना करके फुटबाल और हाकी का खेल खेलना

शुरू कर देते है। फुटबाल खेलने के लिए वे कही से रबर का गेना (गेद) प्राप्त कर लेते है। यदि इसकी प्राप्ति सभव न हो सकी तो कपडे का बना हुआ 'गेना' ही वे प्रयोग मे लाते है और इसी को पैरो से 'किक' करके फुटबाल खेलने की अपनी 'साध' मिटाते है।

हाकी खेलने का भी गाँवो मे प्रचार हो चला है परन्तु फुटबाल की अपेक्षा वह कम है। इसका प्रधान कारण इस खेल के साधनो की अनुपलब्धि है। गावो मे हाकी की स्टिक कीमती होने के कारण उपलब्ध नही होती। अत इस खेल के शौकीन बालक किसी ऐसी लकडी को काटकर हाकी बनाते है जिसका अगला सिरा मुडा रहता है। हाकी के कडे गेद के अभाव मे वे 'कैथा' के फल का प्रयोग करते है जो हाकी के बाल की ही तरह गोल और कठोर होता है। इन्ही बालको मे से एक रेफरी बन जाता है और खेल का काय सुचारु रूप से सचालित होने लगता है।

गावो मे बच्चे अब क्रिकेट का भी खेल खेलते है। परन्तु विकेट और बल्ला के अभाव मे उन्हे बहुत कठिनाई का सामना करना पडता है। विकेट के स्थान पर तीन छोटी छोटी लकडियो को काट कर वे स्थापित कर देते है और बल्ला के स्थान पर वे लकडी की एक चौडी पट्टी ले लेते है। वे रबर अथवा कपडे की बनी गेद को अपने बल्ले से मारते है और इस प्रकार अपना 'रन' बनाते है। अधिक सामग्री की आवश्यकता होने के कारण यद्यपि इसका प्रचार अभी कम है परन्तु इसका शौक बढता जा रहा है।

गाँवो मे कौडियो के द्वारा जुआ खेलने का प्रचार था। परन्तु इसका स्थान अब ताश का जुआ लेता जा रहा है। अब लोग, विशेषकर नवयुवक, ताश खेलते समय उसके पत्तो पर दाव लगाते और जुआ खेलते है। पहिले निठल्ले लोग शतरज का खेल खेला करते थे परन्तु इसकी प्रथा अब धीरे-धीरे उठ रही है। नवयुवक कैरेमबोड पर कैरम का खेल खेलकर अपना मनोरजन किया करते है।

(२) परिच्छेद

आर्थिक जीवन मे परिवर्तन

भोजपुरी जनता के आर्थिक जीवन मे भी बहुत बडा परिवतन हो रहा है। यद्यपि अनेक अनुसधानो के होने तथा अनेक साधनो के उपलब्ध होने पर भी जनता की गरीबी अभी दूर नही हुई है, वह पैर तोडकर आसन जमाये हुए है। परन्तु कृषि सम्बन्धी अनेक सुविधाओ के प्राप्त होने के कारण कृषको का जीवन समृद्धि के पथ की ओर अग्रसर हो रहा है। यो तो ग्रामीण जनता के जीवन मे सर्वाङ्गीण परिवतन के चिन्ह दिखायी पड रहे है परन्तु कृषि के क्षेत्र मे यह सर्वाधिक दृष्टिगोचर होता है।

(१) अनुच्छेद—(क) खेत जोतने का साधन

पहिले ग्रामीण अपने हल और बैल की सहायता से अपने खेतो की जुताई करते थे। दिन रात परिश्रम करने के पश्चात् भी वे एक बीघा खेत को भी एक दिन मे नही जोत पाते थे। परन्तु ट्रैक्टर के आविष्कार से उनकी यह कठिनाई अब दूर हो गयी है। ट्रैक्टर मोटर से चालित वह मशीन है जिसके पिछले भाग मे लोहे के बीसियो हल (लोहे के फाल) लगे रहते है। मोटर के चलने पर ये फाल जमीन मे घुसकर एक या दो फीट नीचे की धरती की मिट्टी को उखाड देते है। इस प्रकार एक ट्रैक्टर एक दिन मे बीसियो बीघा खेत जोत सकता है। अब किसान को जेठ की दुपहरी मे अपनी काञ्चन काया को जलाने की आवश्यकता नही है। वह इस ट्रैक्टर की सहायता से सैकडो बीघा खेत को दो-चार दिनो मे जोत कर इस काम से छुट्टी पा सकता है।

यद्यपि गाँवो मे हल और बैलो के द्वारा आज भी खेतो की जुताई होती है परन्तु वह दिन दूर नही है जब ट्रैक्टरो से सभी खेतो की जुताई होने लगेगी। ट्रेक्टरो का मूल्य आज कल बहुत अधिक है। गरीब किसान चालीस हजार रुपयो को खच करके ट्रैक्टर खरीदने मे अभी असमथ है। परन्तु किसी धनी किसान से किराये पर ट्रैक्टर लेकर वह भी अपने खेतो को जुतवा रहा है।

खेतो की कटाई, दवाँई और ओसाई के नवीन साधन

खेतो की कटाई, दवाँई और ओसाई के नवीन साधन—खेतो के पक जाने पर उसको काटने के लिए मजदूरो की एक पूरी सेना जुटानी पडती थी और उसे निश्चित समय के भीतर काटना आवश्यक होता था। अत किसानो को बडी कठिनाई का सामना करना पडता था। इसी प्रकार कटे अन्न को खलिहान मे रखा जाता था जिसकी बैलो के द्वारा दवँरी की जाती थी।

दिन भर, किसान दो-तीन दिनो तक एक 'पैर' की दवरी करते रहते थे। तब कही जाकर वह तैयार होता था। इसके पश्चात 'ओसावनि' की बारी आती थी। इसके लिए हवा के रुख की प्रतीक्षा कई दिनो तक करनी पडती थी। क्योकि किसानो का विश्वास है कि पछुआ हवा मे ही ओसावनि हो सकती है। पुरुवा इसके लिए उपयुक्त नही है। फिर सूप से ओसावनि का क्रम महीनो तक चलता रहता था।

परन्तु अब इन कामो के लिए मशीन का आविष्कार हो जाने के कारण इनमे बडी सहूलियत हो गयी है। काटने वाली मशीनो से घटो मे खेत मे खडी फसल काटी जा सकती है और 'थ्रेशर' नामक यत्र के द्वारा दवरी और ओसावनि एक ही साथ होती चलती है। इस यत्र मे से एक ओर भूसा गिरता जाता है और दूसरी ओर अन्न। इस प्रकार महीनो का काय अब कुछ ही दिनो मे समाप्त हो जाता है। किसान को अब तो दॅवरी करने के लिए बैलो की आवश्यकता है और न 'ओसावनि' के लिए हवा के रुख की प्रतीक्षा करनी पडती है।

पहिले खेतो मे से कटी हुई फसल को खलिहान म लाने मे या तो बैलगाडी का प्रयोग किया जाता था अथवा मजदूर अपने सिर पर रखकर उस 'बोझा' को लाता था। परन्तु ट्रैक्टर मे लगे हुए 'ट्रेलर' के द्वारा अब यह समस्या भी दूर हो गयी है। ट्रेलर मे जितना चाहे उतना बोझा लाद कर खलिहान म कुछ मिनटो के अन्दर पहुचाया जा सकता है। ट्रैक्टर के द्वारा याता यात मे भी बडी सुविधा उत्पन्न हो गयी है। किसान अपने ट्रैक्टर मे बैठकर खेतो पर जा सकता है और ट्रेलर मे सब पैदावार को लाद कर यथेच्छित स्थान को पहुँचा सकता है।

गाँवो मे पहिले गोबर की खाद ही खेतो मे डाली जाती थी। खेतो की उत्पादन शक्ति को बढ़ाने का यही एकमात्र साधन था। परन्तु अब 'यूरिया' के द्वारा खेतो की उवरा शक्ति मे शताधिक वृद्धि की जा सकती है। अब गाँवो म 'कम्पास्ट' की खाद भी तैयार की जाने लगी है जो बहुत सस्ती तथा सरल पडती है।

यूरिया के अतिरिक्त अमोनिया सलफेट तथा अन्य रासायनिक खादो का भी प्रयोग किया जाने लगा है जिससे खेतो की पैदावार मे आशातीत वृद्धि हुई है। धान और गेहूँ की खेती मे इन खादो का प्रयोग बडा ही सफल सिद्ध हुआ है।

(ख) सिंचाई के साधन

पहिले सिंचाई के प्रधान साधन मोट और रहट थे जिनका पहिले उल्लेख किया जा चुका है। परन्तु सरकार ने अब ट्यूबवेलो की स्थापना गाँवो मे कर दी है। इन ट्यूबवेलो से खेतो म पानी को ले जाने के लिए पक्की नालियाँ बनायी गयी है जिससे पानी सभी जगह सरलता से जा सके। जहाँ पहिले एक बीघा खेत को मोट से सीचने म दो दिन लग जाते थे वहाँ अब केवल एक घटे मे ही एक बीघे का पूरा खेत सीचा जा सकता है। इस प्रकार किसानो को बिजली के द्वारा यह सिंचाई सस्ती और सुलभ है।

कुछ धनी तथा समृद्ध लोग अपने खेत मे पम्पिग सेट लगा लेते है जिससे सरकारी ट्यूबवेलो—जिसे लोक-भाषा मे, 'टीबुल' कहा जाता है—की उन्हे अपेक्षा नही रहती और वे स्वतत्र रूप से अपने खेतो की सिंचाई आवश्यकतानुसार जब चाहे कर सकते है। यद्यपि सरकार द्वारा बिजली की सतत 'सप्लाई' न होने के कारण इस सिंचाई म बाधा उपस्थित हो जाती है फिर भी इन साधनो से किसानो को प्रचुर सुविधा प्राप्त हो गयी है।

(ग) बीजो के उन्नत प्रकार

खेती मे पहिले पुराने बीजो का ही प्रयोग किया जाता था जिससे पैदावार मे कुछ विशेष उन्नति नही होती थी। परन्तु अब धान और गेहूँ के विभिन्न प्रकार के बीज आविष्कृत किये गये है तथा कुछ विदेशो से मँगाये गये है जिससे फसल मे अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। उदाहरण के लिए 'टाइचून' धान को लिया जा सकता है जो जापानी धान का एक प्रकार है। इसका पौदा बहुत छोटा होता है और इसमे बहुत 'बाल' लगती है। यह दो-तीन मास मे ही पक कर तैयार हो जाता है। इस प्रकार इस धान की पैदावार अधिक होती है। यह साठी चावल की भाँति साठ दिन मे तैयार हो जाता है।

इसी प्रकार से 'के-६८' नामक गेहूँ का बीज अधिक उपजाऊ होता है। 'नरमा' गेहूँ पैदा तो अधिक मात्रा मे होता है परन्तु इसका छिलका बडा कडा होता है। गेहूँ के अन्य बीजो के कुछ किस्मो के नाम अनेक है जिनके द्वारा किसानो को बहुत लाभ होता है। पहिले खेती श्रमसाध्य थी परन्तु अब अर्थ साध्य हो गयी है। नये बीजो के द्वारा अत्यधिक पैदावार होने के कारण खेती ने अब जीविका के साधन के स्थान पर व्यवसाय या व्यापार का रूप धारण कर लिया है।

अब खेती की प्राचीन पद्धति को तिलाञ्जलि देकर जापानी पद्धति से धान की खेती होने लगी है। इस पद्धति के अनु

सार धान के पौधे एक नियमित दूरी पर बोये जाते है जिससे उनकी पैदावार अधिक होती है। गेहूँ को बोने मे भी कुछ नियमो का पालन करना पडता है जो अधिक फलदायी होता है।

गन्ने की नयी किस्मो का भी आविष्कार किया गया है जिनमे अधिक रस रहता है। इससे गुड को बडी मात्रा मे बनाया जा सकता है। अब दो प्रकार के गन्ने पैदा किये जाते है। (१) सरस तथा स्वादिष्ट जिनका उपयोग प्रधानतया चूसने के लिए किया जाता है। (२) दूसरे वे जिनसे अधिक गुड बनाया जा सकता है।

अन्नो के समान ही शाक-सब्जी के भी अब नये बीज प्रयोग मे लाये जाते है। आलू, गोभी, टमाटर और बैंगन के नये बीजो के कारण इनके आकार-प्रकार मे अत्यधिक वृद्धि हो गयी है। अब एक आलू सौ ग्राम, पाच सौ ग्राम किंवा एक किलो वजन तक बडा पैदा किया जाता है। गोभी भी बहुत बडी तैयार की जाती है। रामनगरी बैंगन अपनी भारी-भरकम आकृति के लिए प्रसिद्ध है। टमाटर के रूप मे तो अभी अधिक वद्धि नही हुई है परन्तु इसकी पैदावार बहुत अधिक बढ गयी है। यह सब नये बीज तथा यूरिया खाद का प्रसाद है। किसान लोग अब शाक-सब्जी व्यावसायिक रूप मे उगाने लगे है।

(२) अनुच्छेद—यातायात के साधन

पहिले यातायात के साधन बहुत सीमित थे। एक नगर से दूसरे नगर को जाने के लिए कवल कच्ची सडक थी और गाँव को जाने के लिए केवल पगदण्डी ही एक मात्र साधन थी। परन्तु बरसात के समय मे इनका भी उपयोग करना कठिन था। कितने गाँव ऐसे थे जहाँ से रेलवे स्टेशन बीसियो मील दूर था। अत रेल तथा सडको के अभाव मे जन-जीवन बहुत सकुचित तथा कष्टमय था।

परन्तु अब यातायात मे प्रचुर उन्नति हुई है। अब गाँवो तक जाने के लिए सडके बन गयी है तथा बनायी जा रही है। इक्का, रिक्शा और ताँगो के साधन से अब किसी भी गाँव मे पहुँचना कठिनन ही है। अनेक प्रधान सडको को पक्का बना करके उन्हे 'प्राविशियालाइज' कर दिया गया है अर्थात् उनकी देखरेख और मरम्मत का काय राज्य सरकार के जिम्मे आ पडा है। इसी प्रकार रेलो का जाल भी बिछाया जा रहा है। अनेक स्थानो पर जहाँ रेले नही थी वहाँ उसका निर्माण कर जन-जीवन को सुखी और समृद्ध बनाने का उपाय सरकार पर रही है। भोजपुरी प्रदेश मे मीटर गेज (छोटी लाइन) की प्रधानता है उसके स्थान पर ब्राड गेज (बडी लाइन) को पटरी बिछाई जा रही है।

भाजपुरी क्षेत्र मे नदियो पर पुल न होने के कारण अन्य नगरो मे जाने के लिए बडी कठिनाई का सामना करना पडता था। विशेषकर सोनपुर और पटना, के बीच मे गगा पर पुल न होने के कारण बिहार के दोनो भागो के लोग महती कठिनता का अनुभव कर रहे थे। स्टीमरो के डूब जाने के कारण सैकडो व्यक्तियो का जीवन नष्ट हो गया। केन्द्रीय तथा राज्य सरकार ने जनता की इस दुख तथा कठिनाई को देखकर गगा के ऊपर पुल बनाने का शुभारम्भ किया जो अब तैयार हो गया है। इसी प्रकार से बक्सर, गाजीपुर तथा मिर्जापुर के पास गगा मे पुल के अभाव मे अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडा है। अन्य अनेक स्थानो पर भी पुल बनाने की योजना तैयार कर ली गयी है। इन पुलो के बन जाने से यातायात मे बडी सुविधा हो जायेगी तथा इस क्षेत्र की समृद्धि मे भी वृद्धि होगी।

बसो के चलने से भी आवागमन मे बडी सुविधा हो गयी है। अब भोजपुरी प्रदेश के सभी नगरो मे बसो का जाल बिछ गया है और एक नगर से दूसरे स्थान को जाना सरल है। इस प्रकार सडक तथा रेलो एव पुलो के निर्माण से तथा बसो के चलने से यातायात की समस्या हल हो गयी है।

(३) अनुच्छेद—बाट और माप मे परिवर्तन

पहिले किसी वस्तु को तोलने की सबसे छोटी इकाई छटाँक थी। इसके पश्चात् पावभर, अधसेरा, सेर, पसेरी, तथा मन तथा टन हुआ करता था। परन्तु अब इसके स्थान पर ग्राम, किलो ग्राम, क्विन्टल तथा मैट्रिक टन हो गया है। इसी प्रकार चाँदी तथा सोना आदि धातुओ के तौल के लिए रत्ती, माशा और तोला का प्रयोग किया जाता था। परन्तु इनका स्थान अब ग्राम तथा दस ग्राम ने लिया है। पहिले सोना तोला के भाव से बिका करता था परन्तु अब दस ग्राम के तौल से बिकता है।

पहिले दूध और घी आदि द्रव पदार्थों के 'तोलने के लिए छँटाक, सेर, पसेरी को ही प्रयोग मे लाया जाता था। परन्तु अब लीटर मे उनका माप किया जाना है। इसी प्रकार से कपडा को इच, गिरह और गज के द्वारा नापते थे परन्तु अब इसके स्थान को मीटर ने ले लिया है। खेतो का विस्तार धूरि, कट्ठा (डिसमिल) और बीघा आदि नापो के द्वारा जाना-जाता

था परन्तु अब बीघा के स्थान पर एकड़ तथा हेक्टेयर का प्रचार हो गया है। इस प्रकार हमारे देसी बाटों और मापों में आमूल परिवर्तन करके दशमलव प्रणाली (डिसमल सिस्टम) की स्थापना की गयी है जो विदेशी प्रणाली का अनुकरण मात्र है।

(४) अनुच्छेद—सिक्का

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पूर्व इस देश में रुपया, आना, पैसा आदि सिक्कों का प्रचलन था। गोरखपुरिया 'डेबुआ' भी गावों में चलता था। परन्तु अब शिक्षा में दशमलव प्रणाली का प्रयोग होने के कारण आना को विनिमय की प्रणाली से बिल्कुल हटा दिया गया है और अब रुपया और पैसा का ही प्रयोग होने लगा है। पहिले एक रूपये में चोसठ पैसे होते थे परन्तु अब सौ पैसों का एक रुपया होता है। पहिले नोटों की सबसे छोटी इकाई एक और अन्तिम इकाई दस हजार होती थी। परन्तु अब बीस और पचास रुपयों के नोट भी चालू हो गये हैं। उसी प्रकार से चादी के रुपया की उच्चतम इकाई एक थी परन्तु अब महात्मा गाधी के स्मारक में शुद्ध चाँदी के दस रुपया का सिक्का प्रचलित किया गया है।

स्वराज मिलने के पश्चात् देशी बाट, माप तथा सिक्कों में आमूलचूल परिवर्तन कर दिया गया है। यद्यपि लीटर, मीटर और ग्राम को समझने में ग्रामीणों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है परन्तु परिवर्तन के नाम पर अब इस नवीन दशमलव प्रणाली ने अपना स्थान बना लिया है और धीरे धीरे यह स्थायिता को प्राप्त कर रही है।

(३) परिच्छेद
धार्मिक जीवन में परिवर्तन

पाश्चात्य शिक्षा के कारण हमारे धार्मिक जीवन में भी बड़ा परिवर्तन उपस्थित हो गया है। अब न लोगों की धर्म में आस्था है और न गुरु तथा 'उपरोहित' में श्रद्धा। आज कल स्कूलों और कालेजों में जो शिक्षा दी जा रही है उसमें धर्म का तनिक भी लेश नहीं है। प्राचीन काल में गुरुकुलों में धार्मिक शिक्षा दी जाती थी जिससे छात्र अपने धर्म, साहित्य और संस्कृति से परिचित होते थे। परन्तु आजकल शिक्षा के क्षेत्र में धर्म का बहिष्कार कर दिये जाने के कारण आधुनिक युवक अधार्मिक बनता जा रहा है।

भारत सरकार ने इस देश को 'धर्म निरपेक्ष' राष्ट्र घोषित किया है। इसका बहुत से लोग 'अधार्मिक राष्ट्र' अर्थ लगाने लगे हैं। सरकार के द्वारा धर्म के सम्बन्ध में यह 'तटस्थता' बड़ी घातक सिद्ध हो रही है। लोगों की भावना धर्म से हटती जा रही है। यही कारण है कि हमारे धर्मशास्त्रियों के द्वारा सम्स्थापित वर्णाश्रम धर्म में व्यत्यय पैदा हो गया है जो समाज की नींव थी। ऐसी दशा में हमारे धार्मिक जीवन में उथल पुथल का स्वाभाविक ही है।

हमारे धर्मशास्त्रियों ने षोडश संस्कारों का विधान किया है जिनमें से कुछ सन्तति के जन्म के पहिले किये जाते थे और कुछ बाद में। जन्म से पूर्व के संस्कारों में 'पुंसवन-संस्कार' प्रसिद्ध है। जन्म के पश्चात् पुत्रजन्म, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह, गवना और मृत्यु संस्कार प्रधान रूप से आज भी प्रचलित हैं।

परन्तु इन संस्कारों में आज महान् परिवर्तन हो गया है। आज पुत्रजन्म के पहिले कोई भी शास्त्रीय संस्कार नहीं किया जाता। हाँ, पुत्रजन्म के पश्चात वाले संस्कार अवश्य ही सम्पादित किये जाते हैं परन्तु उनका भी रूप बड़ा ही विकृत और परिवर्तित हो गया है।

(१) अनुच्छेद—पुत्र जन्म

भोजपुरी प्रदेश में पुत्र जन्म के अवसर पर अनेक प्रकार के विधि-विधान किये जाते थे। बहुत से निषेधों (Taboo) का पालन किया जाता था। बच्चा को जनने के लिए एक विशेष घर निश्चित रहता था जिसमें परिवार की सभी स्त्रियाँ बच्चा जनती थी। ऐसे घर को 'सउरि' कहा जाता था। बच्चा पैदा होने पर कोई भी व्यक्ति इस सूतिका गृह (सउरि) में प्रवेश नहीं कर सकता था। यदि चमाइन (रगडिन) तथा घर की स्त्रियाँ जाती भी थी तो पैर धोकर तथा पवित्र होकर ही प्रवेश पा सकती थी अन्यथा नहीं। सूतिका गृह के द्वार पर चौबीस घंटे 'घौंडी' में आग जलती रहती थी जिससे कोई दुष्ट आत्मा (Evil spirit) सउरि में प्रवेश न कर सके। घर का दरवाजा कभी खोला नहीं जाता था। स्त्रियों का ऐसा विश्वास था कि हवा के साथ 'जम' (यमराज) 'सउरि' में प्रवेश कर जाता है और नव जात शिशु को मार डालता है।

परन्तु आज ये परम्परायें धीरे-धीरे नष्ट होती जा रही हैं। आज गांवों में भी मातृरक्षा गृह (मटर्निटी सेंटर) खुलते जा रहे हैं जिनका उद्देश्य गर्भवती स्त्रियों को सुविधा प्रदान करना है। अब स्त्रियाँ अपने घर के 'सउरि' में बच्चा पैदा न करके

अस्पतालो मे अथवा मातृरक्षा गृहो मे जनती है। यहा जच्चा और बच्चा दोनो को स्वच्छ कमरे मे रखा जाता है। ताजी हवा के आने देने के लिए कमरा के दरवाजे सदा खुले रहते हैं। कोई भी व्यक्ति नर्स, धाय, डाक्टरिनी आदि वहाँ अप्रतिनिषिद्ध प्रवेश कर सकता हे। अब न तो हास्पिटल मे आग जलायी जाती है ओर न दरवाजा ही ब द रखा जाता हे। अब न तो वहाँ जमराज के आने का डर है और न बुरी आत्माओ के प्रवेश का भय। इस प्रकार मातृरक्षा गह अथवा अस्पताल मे बच्चा पैदा होने से हमारी पुरानी मान्यतायें नष्ट होती जा रही है।

पहिले पुत्र के पैदा होते ही गॉव के पुरोहित जी बुलाये जाते थे। वे बालक की कुण्डली तैयार करते थे और उसका फल भी बतलाते थे। वे जच्चा के सूतिकागह से बाहर निकलने की तिथि तथा उसक स्नान के लिए पवित्र दिन का निणय करते थे। परन्तु अस्पताल मे बच्चा पैदा होने के कारण अब इस दिन का निणय लेडी डाक्टर अथवा नस करती ह।

धनी मानी व्यक्ति पुत्र जन्म के उत्सव के फलस्वरूप अपन घर पर 'पवँरिया' का नाच करवाते थे जो अनक दिना तक लगातार चलता रहता था। इस अवसर पर समद्ध लोग गॉव के ब्राह्मणो को अन्न आर धन दक्षिणा म दिया करते थे। परन्तु अब कमरतोड मँहगाई के कारण यह प्रथा धीरे धीरे नष्ट होती जा रही हे।

स्त्रिया पुत्र की उत्पत्ति के लिए षष्ठी माता तथा जीवित पुत्रिका का व्रत करती थी और भगवान से कम से कम सात पुत्रो का देने की प्राथना करती थी। परतु अब पुत्रोत्पत्ति के लिए शायद ही कोई स्त्री व्रत करती है। क्योकि युवावस्था मे विवाह होने के कारण अब पुत्र की प्राप्ति अनायास ही हो जाती है। अब षष्ठी व्रत मे पानी मे घटो खडे रह कर पुत्र के लिए प्राथना की आवश्यकता नही है।

(२) अनुच्छेद—मुण्डन

गावा मे जब बालक एक वष अथवा तीन वर्ष का हो जाता है तब उसका मुण्डन सस्कार किया जाता था। यह सम्कार किमी नदी के तट पर अथवा किसी पवित्र तीथ स्थान पर सम्पादित होता था। यह सस्कार अत्यन्त आवश्यक था। परन्तु अब इस सस्कार को भी कोई नियमित रूप से नही करता। पुत्री का मुण्डन सस्कार कोई करता ही नही। हाँ पुत्र का अवश्य किया जाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय तो इस सस्कार पर कुछ ध्यान देते हैं परन्तु नीची जातियो मे इसका विधान नही पाया जाता। वे यदि कदाचित् करते भी है तब विषम वष का विचार न कर अपनी इच्छानुसार इसे सम्पादित कर देते है।

(३) अनुच्छेद—यज्ञोपवीत सस्कार

शास्त्रकारो ने द्विजो—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिए यज्ञोपवीत सस्कार का विधान किया है। ब्राह्मण-पुत्र के लिए आठवे वष मे, क्षत्रिय के लिए बारहवे वष और वैश्य बालक के लिए सोलहवे वष मे जनेऊ का होना आवश्यक बतलाया गया हे। प्रत्येक यज्ञोपवीती को गायत्री मत्र का जप करना चाहिए और शौचादि करते समय शुद्धता की दृष्टि से जनेऊ को अपने दाहिने कान पर चढा लेना चाहिए। यज्ञयागादि के विधान मे तथा श्राद्धादिकम करते समय यज्ञोपवीत की अत्यन्त आवश्यकता पडती है। क्योकि उसमे सव्य तथा अपसव्य होने का उल्लेख पाया जाता है। यज्ञोपवीत सस्कार के बाद ही द्विजातियो के पुत्रो का अक्षरारम्भ सस्कार सम्पादित होता था और वे गुरुकुल मे पढने के लिए जाया करते थे।

परन्तु आजकल इस सस्कार की कितनी छीछालेदर पायी जाती है उतना अन्य किसी की भी नहीं। जिन द्विजातियो के लिए मनु ने इस सस्कार को अनिवाय बतलाया है उनमे से कोई भी जाति इस सस्कार को अब नही करती। किंबहुना ब्राह्मण जाति जो अग्रजन्मा है, जो धार्मिक क्रियाकलापो की सरक्षिका मानी जाती है, वह भी अपने पुत्रो का यज्ञोपवीत सस्कार नियमपूर्वक नही करती। मनु के अनुसार ब्राह्मण-बालक का यज्ञोपवीत सस्कार आठवें वष म हो जाना चाहिए। यदि सोलह वर्षों तक यह सस्कार सम्पादित न किया जाय तब बालक व्रात्य हो जाता है और उसके सस्कार करने की आवश्यकता नही रहती।

परन्तु अब परिस्थिति यह है कि आठ वष की कौन कहे अब अठारह वष तक ब्राह्मण-बालको का भी यज्ञोपवीत सस्कार नही होता। इसका कारण धार्मिक सस्कारो के प्रति घोर उपेक्षा और समधिक अनास्था ही समझनी चाहिए। अब पढे लिखे विद्वान ब्राह्मण भी इस सस्कार की उपेक्षा कर अपने बालको का जनेऊ नही करते।[1] कुछ आर्थिक कारणो से भी विवाह के एक

---

१ इन पक्तियो का लेखक काशी के एक महान सस्कृत के विद्वान को जानता है जिन्होंने अपने पुत्र का २५ वर्षों तक यज्ञोपवीत सस्कार नहीं किया था और विवाह के एक दिन पूर्व असमय मे ही इस रस्म की अदायगी विन्ध्याचल में जाकर कर दी।

दिन पूव ही अपने पुत्रो का जनेऊ कर देते है। परन्तु जनेऊ न करने का कारण उतना आर्थिक नही है जितना धार्मिक। अब न तो धम के प्रति किसी की आस्था है और न सस्कारो के प्रति अनुराग। यही इस उपेक्षा का प्रधान कारण समझना चाहिए।

प्राचीन काल मे यज्ञोपवीत, विद्यारम्भ और समावतन तीन पथक पथक सस्कार थे जो अनेक वर्षो के अन्तराल पर किये जाते थे। यज्ञोपवीत आठ वष की अवस्था मे किया जाता था और समावतन सस्कार ,बालक के विद्याध्यन समाप्त करने के पश्चात् पचीस वष की आयु मे सम्पन्न होता है। परन्तु आजकल जो यज्ञोपवीत सस्कार होता है उसमे उपर्युक्त तीनो सस्कार कुछ चन्द घटो के अन्दर ही समाप्त कर दिये जाते है। ब्रह्मचारी अपनी पटरी और पोथी लेकर विद्याध्यन के लिए काशी जाने का अभिनय दो चार पग चलकर करना ही चाहता है कि इतने मे उसे बुला लिया जाता है। उसके समावतन सस्कार की तैयारी भी की जाने लगती है। इस प्रकार यह सस्कार अब विडम्बना मात्र रह गया है।

जिन बालको का यज्ञोपवीत सस्कार किया जाता है वे न तो गायत्री का मत्र जानते है और न इसके जानने की कभी कोशिश करते है। गायत्री मत्र का जप करने की बात तो बहुत दूर रही। इसी प्रकार वे सस्कार के पश्चात जनेऊ को निकाल कर फेंक देते है ओर यदि कदाचित् धारण भी करते है तो शौचादि के समय कान पर नही चढाते। अब जनऊ का एकमात्र उपयोग उसम चाभी बाँधना ही रह गया है। इस प्रकार जनेऊ अब आडम्बर हो गया है। अत इसे कोई करना नही चाहता।

(४) अनुच्छेद—विवाह

विवाह हमारा सबसे प्रसिद्ध तथा लोक-प्रिय सस्कार है। अत इसे किसी न किसी रूप मे सभी लोग अवश्य मनाते है। पहिले बाल-विवाह की प्रथा भयकर रूप से प्रचलित थी। आठ-दस वष के लडका तथा लडकिया का विवाह आठ-दस वर्षों मे निश्चित रूप से सम्पन्न हो जाता था। किमधिकम् दो तीन वष की आयु के बच्चे भी दुल्हा बनकर विवाह के लिए जाते दिखायी पडते थे। ये विवाह के अवसर पर रात्रि मे सो जाते थे और 'सुमगली' विधि का विधान नाउन अथवा दाई उन बच्चो के स्थान पर किया करती थी। इस दूषित प्रथा के साथ वृद्धविवाह भी प्रचलित था। 'गलितनखदन्त' सफेद बाल और पोपले मुह वाले वृद्ध बाबा भी अपने चौथा या पाँचवाँ विवाह करने के लिए वर बन कर जाते थ।

परन्तु अब बाल और वृद्धविवाह की घणित, निन्दित तथा दूषित प्रथा का प्राय अन्त हो गया है और अब इसके ठीक विपरीत प्रौढ विवाह की प्रथा का प्रचार हो रहा है। अब कुछ लडके तो तीस और चालीस वष तक कुवारे ही रहते है।

विवाह मे पहिले लडकीवाला लडकेवाले से विवाह का प्रस्ताव करते समय उससे बच्चे की जन्मकुण्डली माँगता था जिसे 'टीपन' कहते थे। इस कुण्डली के साथ अपनी लडकी की कुण्डली का वह किसी ज्योतिषी से मिलान करता था जिसमे दोनो के गुण, वण और नाडी पर विचार किया जाता था। कन्या और वर मगली तो नही है इसका भी पता लगाना आवश्यक समझा जाता था। सभी प्रकार से दोनो की कुण्डली मिलने के पश्चात् ही विवाह सबध स्थापित किया जाता था।

पहिले विवाह-सबध स्थापित करने के पूव वर तथा कन्या दोनो पक्षवाले एक दूसरे की कुलीनता का पता लगाते थे। दोनो के कुलीन तथा ब्राह्मण होने पर ही यह सम्बन्ध किया जाता था। जिस प्रकार कान्यकुब्ज ब्राह्मणो मे 'विस्वा' कुलीनता का मापदण्ड है उसी प्रकार सरयूपारीण ब्राह्मणो मे 'तीन-तेरह' का विचार किया जाता था। गर्ग, गौतम और शाण्डिल्य इन तीन गोत्रवाले ब्राह्मण अपने को अत्यन्त उत्तम मानते थे तथा अन्य तेरह गोत्रवालो को निकृष्ट समझते थे। इसी प्रकार से गोरख-पुर तथा देवरिया जिलो के निवासी ब्राह्मण अपने को 'पक्तिपावन ब्राह्मण' घोषित करते हुए अपनी कुलीनता तथा उत्तमता की डुगडुगी पीटते थे, जब कि उनका खान-पान तथा नैतिक आचरण अत्यन्त निकृष्ट था।

परन्तु अब समय के परिवर्तन के साथ ही इन विचारो मे भी बडा परिवर्तन हो गया है। अब जन्मकुण्डली का वह महत्त्व नही रह गया जो पहिले था। आज भी वर-कन्या की जन्मकुण्डली मिलायी जाती है लेकिन यह बिल्कुल ही औपचारिक है। अनेक स्थानो पर तो कन्या की बोगस (फर्जी) जन्मकुण्डली बनाकर मिलान करने का अभिनय किया जाता है। अब कुण्डली मे गुण, नाडी और वण की भी कोई चिन्ता नही करता। यदि कुण्डली का अभाव हो तो भी विवाह मे कोई बाधा उपस्थित नही होती।

पहिले वर तथा कन्या की कुलीनता पर विशेष ध्यान रखा जाता था। परन्तु इसका विचार भी प्राय अब कोई नही करता। अब विवाह का एक मात्र निर्णायक तत्व धन रह गया है। यदि कोई गाँठ का पूरा लडकी वाला मुँहमाँगा तिलक दहेज देने के लिए तैयार है तो जन्मकुण्डली मिले या न मिले विवाह अवश्य हो जाता है। ऐसी दशा मे कुलीनता को भी तिलाजलि दे दी जाती है और "तीन-तेरह" के विचार को ताक पर रख कर आँख मूँदकर विवाह कर लिया जाता है।

आज कल तिलक दहेज की प्रथा इतने भयकर रूप से प्रचलित हो गयी है कि इसके आगे सभी सामाजिक बन्धन तथा वैवाहिक नियम शिथिल तथा ध्वस्त हो जाते है। लालची वर का पिता तिलक के रूप मे मिलनेवाली धन की राशि के सामने कन्या पक्ष के सभी दुगुणो अर्थात् उसकी अकुलीनता, असास्कृतिकता तथा अपने से हीनता का तनिक भी ख्याल न करके सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। कहने का आशय यह है कि पहिले विवाह का निर्णायक तत्त्व कुलीनता थी परन्तु अब उसका एकमात्र कारण वह विपुल धन की राशि है जो वर के पिता को कन्या के पिता से 'फोकट' मे मिलती है।

विवाह के विधि-विधानो तथा रीति रिवाजो मे भी अब अन्तर आने लगा है । पहिले बारातियो की सख्या तीन-चार सौ से कम नही होती थी जिसमे हाथी, घोडे, ऊँट, बैलगाडीत था पैदल चलने वाले लोग चतुरगिणी सेना का दृश्य उपस्थित करते थे। बारात मे हाथियो की सख्या जितनी अधिक होती थी उसकी उतनी ही प्रशसा होती थी। परन्तु महँगाई के इस भीषण युग मे बारातिया की सख्या अँगुलियो पर गिनने लायक हो गयी है तथा हाथी और घोडे की सख्या भी शून्यता को प्राप्त हो गयी है।

पहिले विवाह मे कन्या और वर का कुछ मे हाथ नही रहता था। माता-पिता ही विवाह का निश्चय कर लिया करते थे। परतु अब प्रौढ लडको का विवाह होने लगा है जो शिक्षित होने के साथ ही अथ की चिन्ता से मुक्त है। ऐसी दशा मे पिता अपने पुत्र से बिना राय लिये, उसकी सम्मति को बिना जाने कही विवाह तय करने की हिम्मत नही कर सकता। यद्यपि लड-किया इस सम्बन्ध मे आज भी इतनी मुखर तथा स्वतत्र नही है फिर भी अप्रत्यक्ष रूप से ही सही, उनकी भी सम्मति लेनी पडती है।

पचास वर्षों पूव विवाह के पूव कन्या को देखने की प्रथा नही थी। परन्तु आजकल कन्या को बिना देखे विवाह होना सभव नही है। आधुनिक वर अपनी भावी पत्नी के दशन के लिए नाना प्रकार के उपाय रचते है। वे गगा के तट पर स्नान करने वाली अथवा मदिर मे दशन के लिए जानेवाली अपनी प्रियतमा की बॉकी झॉकी पाने के लिए माग मे घटो प्रतीक्षा करते रहते है। कुछ अधिक साहसिक वर कन्या का निरीक्षण उसके पिता के घर मे ही करते है। इस प्रकार कन्या को पहिले देखकर विवाह करना तथा इस सम्बन्ध मे वर की सम्मति की प्रधानता का होना ये दो नयी बाते है जिनका पहिले प्रचार नही था।

(५) अनुच्छेद—गवना

पहिले विवाह होने के पश्चात प्रथम, तृतीय, पचम, सप्तम तथा नवम अर्थात् विषम वर्षो मे लडकी की बिदाई की जाती थी जिसे 'गवना' कहते थे। चूकि उन दिनो छोटी छोटी बच्चियो का ही विवाह कर दिया जाता था अत पाच या सात वर्षों के पश्चात उनका गवना होना उचित ही था। परन्तु इस प्रथा मे बुराई यह थी कि विवाह के बाद इतने वर्षो तक गवना न होने के पहिले वर स्वगलोक की यात्रा करने चला जाता था। इस प्रकार उस बाल विधवा को आजीवन वैधव्य की नरक यातना भुगतनी पडती थी।

परन्तु आज बच्चो के स्थान पर प्रौढ लडको का विवाह होने लगा है। लडकिया भी युवावस्था प्राप्त करने पर ही विवाह के योग्य समझी जाती है। ऐसी स्थिति मे वर और कन्या दोनो के वयस्क होने के कारण गवना के लिए इतने वर्षा की प्रतीक्षा करने के आवश्यकता ही नही समझी जाती। आजकल जो विवाह हो रहा है उनमे कन्या की बिदाई विवाह के समय ही कर दी जाती है। परन्तु यदि किसी विशेष कारण से उस समय बिदाई न हो सकी तो एक वष के भीतर उसका होना प्राय अनिवार्य है। आजकल के युवक और युवतियाँ विवाह के बाद पाच-सात साल तक मिलन की प्रतीक्षा नही कर सकते।

(६) अनुच्छेद—मृत्यु सस्कार

यह मानव जीवन का अन्तिम सस्कार है। पहिले जब कोई अधिक बीमार हो जाता था और उसके जीवन की आशा बिल्कुल जाती रहती थी तब उसके परिवार के लोग उसे चारपाई से उठाकर जमीन पर सुला देते थे जिसे 'भुँई सेज' देना कहते थे। उसके मुँह मे गगा जल और तुलसी का दल डाला जाता था तथा उससे रामनाम कहने के लिए कहा जाता था। लोगो का ऐसा विश्वास था ऐसा करने से मृत आत्मा को सद्गति प्राप्त होती है।

परन्तु आजकल जो धनीमानी और समद्ध व्यक्ति है वे अपने परिवार के किसी सदस्य के बीमार होने पर उसे अस्पताल मे दाखिल कर देते है। इससे उसके औषधि के प्रबन्ध मे सुविधा होती है तथा सदा अनुभवी डाक्टरो की सहायता प्राप्त होती रहती है। परन्तु बीमारी के असाध्य होने पर अस्पताल की चारपाई पर ही इनकी मत्यु हो जाती है। ऐसी परिस्थिति मे उन्हे 'भुँईसेज' देने और उनके मुख मे गगाजल डालने की नौबत ही नही आती। आजकल अधिकाश धनी व्यक्तियो की मृत्यु अस्प-

ताल मे हो रही है जहा मरन क पूव किये जानवाल धार्मिक विधि-विधानो को करन क लिए न ता अवकाश हो होता है और न स्थान ही।

मृत्यु के पूव गोदान करने की परम्परा थी। मरते हुए व्यक्ति क हाथ म गाय की पूछ देकर उसका दान कर ब्राह्मण को दे दिया जाता था। लोगो का यह विश्वास है कि इससे बैतरणी तैरने मे सहायता मिलती है। परन्तु अब गायो का मूल्य अत्यधिक हो जाने के कारण अब धनी तथा समृद्ध व्यक्ति ही इस प्रथा का निर्वाह करने मे समथ हो सकते है। निधन तथा सामान्य व्यक्ति के लिए गोदान करना उसकी सामथ्य के बाहर है।

पहिले मृतक का अन्त्यष्टि बड ठाट बाट स की जाती थी। ब्राह्मण तथा महाब्राह्मण को हजारो रुपया का सामान—अन्न, वस्त्र तथा बतन आदि—दिया जाता था। ब्रह्मभोज मे सैकडा ब्राह्मणा को बुलाया जाता था। इस मृत्यु-भाज मे जितने ही अधिक ब्राह्मणा को खिलाया जाता था उतना ही प्रशसा का विषय माना जाता था। परन्तु इस सम्बन्ध मे लोगो की भाव नाओ मे बडा परिवतन आ गया है। अन्त्येष्टि के विभिन्न विधि-विधाना को अब पढ लिख तथा विद्वान् 'टिटिम्मा' कहकर इसकी उपेक्षा करन लग है। मृत्युभोज म ब्राह्मणा की सख्या मे भी बडा सकाच हो गया है और अब 'तरही' क दिन तरह ब्राह्मणा को खिलाना ही पर्याप्त समझा जाता है। कुछ आर्थिक कारणा तथा कुछ श्रद्धा क अभाव स इस सस्कार म शिथिलता आने लगी है।

(७) अनुच्छेद—धार्मिक जीवन मे परिवर्तन

व्रतो के विधान का अभाव—हमार धमशास्त्रकारा न अनेक व्रता तथा त्योहारा का विधान धम का अग बतलाया है। पहिले रामनवमी, कृष्ण जन्माष्टमी, महाशिवरात्रि, अक्षय नवमी, रक्षाबन्धन आदि अनक व्रतो का बडी श्रद्धा स किया जाता था। भक्त गण दिनभर उपवास करते थे और रात्रि मे जागरण कर भगवान के भजन मे लगे रहत थ। परन्तु आजकल इन व्रतो का महत्त्व श्रद्धा के अभाव मे नितान्त क्षोण होता जा रहा है। गाँवा मे इन व्रतो का विधान भले ही कुछ लाग करते हो परन्तु शहरो मे इनका क्रमश अभाव दिखायी पडता है। अक्षय नवमी को आँवले क वृक्ष क नीच ब्राह्मणा का खिलाना तथा स्वय भाजन करना पुण्यदायक माना जाता था। परन्तु शहरो म आँवले के वृक्ष के अभाव क कारण न ता कोई ब्राह्मणा का भाज दता है और न स्वय ही इस पुण्यकाय को करता है।

रक्षाबन्धन क दिन श्रावणी कम का विधान ब्राह्मणा क लिए अत्यन्त आवश्यक बतलाया गया है। परन्तु शायद ही किसी सामान्य ब्राह्मण न 'श्रावणी' का नाम भी सुना हो। इस कम को करन की बात तो कोसा दूर रही ब्राह्मणा का यह व्रत अब अज्ञानता क कारण सवथा नष्ट होता जा रहा है।

नवरात्र के दिना म दुर्गा सप्तशती क पाठ का विधान बतलाया गया है। इन दिना म उपवास भी रखना चाहिए। परन्तु गाँवा तथा नगरा मे शायद ही दो-चार ब्राह्मण एसे हो—काशी नगरी को छाडकर—जो इसका पाठ करत हो। निर्जला एकादशी, महाशिवरात्रि, रामनवमी आदि क दिन उपवास बहुत ही कम लोग करत है।

स्त्रिया के कई व्रतो का भी धीर धीर ह्रास किवा नाश हो रहा है। पिडिया एक ऐसा ही व्रत है जिस कुवारी लडकियाँ अपने भाई की मगल कामना के लिए किया करती थी। इस व्रत का एक मास तक किया जाता था और प्रात तथा साय पिडिया की कथा को सुनकर लडकियाँ अन्न ग्रहण करती थी अन्यथा नही। परन्तु इस व्रत का अब अभाव हो गया है और नयी कालेज की शिक्षिता लडकियाँ इस व्रत के नाम स भी परिचित नही है। इसके विधान करन की कथा तो दूर की बात है। इसी प्रकार से 'खर जिउतिया' (जीवित पुत्रिका) व्रत का भी लोप हो रहा है। परिवार नियोजन क इस युग म स्त्रियो को अधिक पुत्रो के प्राप्ति की कामना अब नही रही। अब केवल होली, दिवाली और दशहरा—ये ही हमारे प्रधान त्योहार है इसम कुछ भी आश्चय नही कि निकट भविष्य मे व्रतो का सवथा लोप हो जायगा तथा कोई उपवास नही रखेगा।

पितृपक्ष के दिना मे पितृहीन व्यक्ति के लिए पितरो को जलाजलि देना आवश्यक धार्मिक काय समझा जाता था। जिस दिन अथवा तिथि को माता-पिता की मृत्यु हुई रहती थी उस तिथि का अथवा महालया के दिन ब्राह्मणा को भोजन कराया जाता था। परन्तु अब न तो कोई पितरो को तिलाजलि देता है और न उनके नाम पर ब्राह्मण भोजन ही कराता है। काशी मे इसकी परम्परा अवश्य अभी भी चली आ रही है परन्तु इसे अपवाद ही समझना चाहिए, सामान्य नियम नही।

लोक विश्वासो मे ह्रास—हमारे शास्त्रो मे अनेक लोक-विश्वासो का वणन पाया जाता है। तेल लगाने, क्षौरकम करने, किसी स्थान से प्रस्थान करन क सम्बन्ध म अनक विधि-निषेध बतलाये गये है। किस दिन तल लगाना उचित है, किस तिथि को क्षौर कर्म करना निषिद्ध है, किस दिन तथा नक्षत्र मे यात्रा करना शुभ अथवा अशुभ है इन विषयो का विस्तृत विवेचन शास्त्रो मे पाया जाता है।

परन्तु समय की परिवर्तित गतिविधि के कारण इन लोक-विश्वासो मे महान् परिवतन उपस्थित हो गया है। अब कोई व्यक्ति तेल लगाते समय न तो तिथि का विचार करता है और न हजामत बनाते समय दिन का। यात्रा करनी आवश्यक होने के कारण अब दिग्शूल के विचार को भी तिलाजलि दे दी गयी है। इस मशीन युग के व्यस्त मानव को अब तिथि, दिन तथा नक्षत्र के शुभाशुभ होने की न तो कोई चिन्ता है और इन विधिनिषेधा का पालन करन का अवकाश। वह अपनी आवश्यकता तथा स्वतत्र इच्छा से उपर्युक्त कार्यो को करता है। यदि वह यात्रा के लिए शुभ मुहूत दखन लग ता उसके जीवन की गाडी हा छूट जाय। इस प्रकार नयी परिस्थितियो के कारण लाक-विश्वासा म क्रमिक ह्रास होना जा रहा है।

परिवार नियोजन—इधर अनक वर्षा से हमारी केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो न परिवार नियोजन (फेमिली प्लानिग) की योजना चालू कर रखी हे। परिवार नियोजन की स्कीम को वास्तव मे 'परिवार सकोचन' ही कहना चाहिए जिसका प्रधान उद्देश्य यह है कि अधिक बच्चे न पैदा किये जाय। सरकारन केवल दो बच्चो को ही पैदा करन की अनुमति प्रदान की है। परन्तु भूल-चूक से यदि तीसरा भी बच्चा पैदा हो जाय ता वह क्षन्तव्य हे। परतु इससे अधिक बच्चो का पैदा करना अपराध है। सरकार अब दो से अधिक बच्चो का पैदा करने वाले लोगो को हतोत्साहित करती है। पहिले सरकारी नाकरी मे रहन वाली स्त्रियो को प्रत्येक बच्चा के पैदा होने के अवसर पर "मेटर्निटी लीव" दिया करती थी परन्तु अब यह छुट्टी केवल दो ही बच्चो के लिये ही दी जाती है। यदि कोई सरकारी नौकरी मे निरत महिला तीसरा बच्चा पैदा करती है तो उसे अब 'मेटर्निटी लीव' नही दी जाती।

सरकार ने परिवार नियोजन के लिये एक दूसरा उपाय भी निकाल रखा है और वह उपाय है—गभपात। ब्रिटिश सरकार के जमाने म गभपात कराना नैतिक पतन के साथ ही कानूनी जुम भी था और यह दण्डनीय अपराध माना जाता था। परन्तु हमारी सरकार ने इस कानूनी अपराध को अब वैधता प्रदान कर दी है। इतना ही नही, अनेक सरकारी अस्पतालो मे गभपात कराने की अनेक सुविधाये कर दी गयी है जहा जाकर स्त्रियाँ आसानी से यह काय कर सकती है।

धार्मिक दृष्टि से विचार किया जाय तो गभपात कराना एक अनैतिक काय है। भ्रूण की हत्या कराने का न तो हमे नैतिक अधिकार प्राप्त है ओर न कानूनी ही। परतु इस काय को वैधता प्रदान किये जाने के कारण अब इस कम का सारा कलुष घुल कर नष्ट हो गया है। अब कुमारी लडकिया भी इस कम को करने मे कुछ सकोच नही करती। पहिले अविवाहित मातृत्व घोर निन्दा का कारण माना जाता था परन्तु अब यह एक सामान्य घटना बन गया है। इससे समाज मे अनाचार का प्रचार होता जा रहा हे और यह आशका है कि निकट भविष्य मे नैतिक बन्धन यूरोप की ही भाँति, नितान्त शिथिल पड जायेगे। अभी गाँवो मे यह रोग नही फैला है परन्तु यह भय है कि शीघ्र ही इसका प्रचुर प्रचार हो जायेगा।

(४) परिच्छेद

(क) सास्कृतिक जीवन मे परिवर्तन

पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से हमारी सस्कृति मे भी महान् परिवर्तन परिलक्षित होता है। सच तो यह है कि पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव से हमारी सस्कृति की नीव ही हिल उठी है। हमे अपनी सस्कृति के प्रति घोर उपेक्षा और उदासीनता ही नही उत्पन्न हो गयी है बल्कि हम इसे घृणा की दृष्टि से भी देखने लगे है। आज का नवयुवक भारतीय सस्कृति से इतना परान्मुख हो गया है कि उस अपनी प्राचीन सास्कृतिक धरोहर से वितष्णा हो गयी है। वह अपने प्राचीन आदर्शो को भूलकर पश्चिमी सभ्यता की अन्धाधुन्ध नकल कर रहा है। अनुकरण की इस दौड मे वह अपनी बुराइयो को छोडने के स्थान पर अपनी सास्कृतिक विरासत का ही तिलाजलि दे रहा है। ऐसी विषम परिस्थिति मे भारतीय सस्कृति का भविष्य बडा ही अन्धकारपूण दिखायी पड रहा है।

(१) माता और पिता की घनघोर उपेक्षा

हमारे प्राचीन शास्त्रो मे लिखा है कि माता, पिता और गुरु को देवता के समान समझो। प्राचीन काल मे गुरुकुलो मे समावर्तन सस्कार के अवसर पर कुलपति यह उपदेश देता था कि 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचाय देवो भव।" माता, पिता और गुरुओ का आदर-सत्कार करना, उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति प्रदर्शित करना हमारी सस्कृति का अभिन्न अग था।

परन्तु आजकल के नवयुवक अपने पिता तथा माता की घोर उपेक्षा कर रहे है। सयुक्त परिवार मे पिता का महत्त्वपूण स्थान था। परन्तु हिन्दू सयुक्त परिवार के विघटन के साथ ही माता तथा पिता के प्रति श्रद्धा का भी विघटन हो रहा है। आज का नवयुवक यूरोप की नकल करता हुआ व्यक्ति स्वातत्र का पुजारी है। अत वह विवाह होते ही अपने स्त्री को लेकर

अपनी नोकरी पर चला जाता है ओर बूढे माता-पिता को अपने भाग्य पर रोने के लिए उन्हे घर पर छोड जाता है। वह न तो आर्थिक सहायता करता है ओर न उनकी सुधि-बुधि ही लेता है। इस प्रकार उस बूढे पिता या बुढापा की लाठी सदा के लिए नष्ट हो जाती है। कितने धनवान् पुत्रो के वृद्ध माता-पिता आज भोजन के लिए तरस रहे है। दाने दाने के लिए मोहताज हो रहे है परन्तु 'काले साहब' को इसकी तनिक भी चिन्ता नही होती।

(२) गुरुओ के प्रति विद्रोह

भारतीय संस्कृति मे माता और पिता के पश्चात् गुरु का ही स्थान माना जाता था। 'आचार्य देवो भव' का उपदेश देकर ऋषियो ने गुरु को देवता का स्थान प्रदान किया है। परन्तु अब गुरु अपने प्राचीन पद से गिर गया है। समाज मे गुरु का अब वह आदर, सम्मान तथा प्रतिष्ठा नही है जो पहिले थी। आज के छात्र-विशेषकर महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय के विद्यार्थी—गुरुओ का आदर नही करते। उनकी आलोचना करना ही छात्रो का एकमात्र काम है। विश्वविद्यालयो मे आये दिन हडताल का होना इस बात का प्रमाण है कि गुरुओ के प्रति कितनी उपेक्षा है।

समाज मे अध्यापक, बेचारा तथा निरीह जीव समझा जाता है। उसका न तो समुचित आदर होता है ओर न वह सम्मान का ही अधिकारी है। इस प्रकार जो प्राचीन श्रद्धा और भक्ति गुरु के प्रति थी उसका सर्वथा ह्रास होता जा रहा है। अब आवश्यकता इस बात की है कि गुरु को पुन उसके प्राचीन उच्च स्थान पर प्रतिष्ठापित किया जाय। तभी अनुशासन की समस्या का समाधान हो सकता है अन्यथा नही।

(३) प्राचीन आदर्शों का ह्रास

प्राचीन भारतीय लोगो का आदर्श "साधारण जीवन और उच्च विचार" (सिम्पुल लिविंग एण्ड हाई थिंकिंग) था। वे अपना जीवन अत्यन्त सादा और विचारो को अत्यन्त उन्नत रखते थे। जगल मे निवास करनेवाले ऋषि और मुनि, कोपीन धारण करके, महान् दार्शनिक समस्याओ को सुलझाया करते थे। वे ब्रह्म, जीव और जगत सम्बन्धी सिद्धान्तो पर विचार करते तथा उसके अनुरूप अपनी जीवन चर्या को बनाते थे। सादगी हमारी संस्कृति का मूल आधार था और उच्च विचार उसका फल था।

परन्तु आज कल इस सिद्धान्त मे नितान्त परिवर्तन हो गया है। आज का नवयुवक उच्च जीवन और सादा विचार (हाई लिविंग एण्ड सिम्पुल थिंकिंग) मे विश्वास करता है। वह बहुमूल्य वस्त्रो को धारण करता है। पाश्चात्य देशो का अनुकरण कर वह कोट, पैण्ट और टाई पहिनता है और वह भी बेशकीमती। उसके विचार की सरणी बहुत सीधी सादी है। वह 'फैशनपरस्ती' के जीवन मे विश्वास करता है। परन्तु आचरण को पूत और पवित्र बनाने की चिन्ता नहीं करता। 'अक्षीण वित्तत क्षीणो, वृत्ततस्तु हतो हत' इस प्राचीन आदर्श को उसने भुला दिया है और झूठे पश्चिमी आदर्शों पर आस्था करता है।

(४) देवी देवताओ मे अनास्था

आजकल लोगो मे अपने देवी और देवताओ के प्रति घोर अनास्था उत्पन्न हो गयी है। विशेषकर नवयुवको मे आस्था का नितान्त अभाव पाया जाता है। वे किसी प्राचीन धार्मिक विधि-विधानो को मानने के लिए तैयार नही है और न प्राचीन मान्यताओ को स्वीकार करते है। साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित नवयुवक तो धर्म को अफीम (आपियम) मानते है और इसे समाज को विघटित करने का प्रधान कारण बताते है। ऐसी दशा मे अपनी संस्कृति मे आस्था रखना, अपने देवी-देवताओ के प्रति सम्मान दिखलाने की उनसे आशा करना दुराशा मात्र है। माता और पिता को देवता माना जाता है। परन्तु जब आज का युवक घर के देवता का ही आदर नहीं करता तब मंदिर के देवता के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करना उसके लिए असभव ही है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि बहुत से देवताओ के मंदिर दर्शनार्थियो के अभाव मे यो ही सूने पडे हुए है और उनमे किसी प्रकार के राग-भोग का भी प्रबन्ध नही है। ऐसी विषम परिस्थिति मे धर्म का ह्रास हो रहा है और हमारी संस्कृति का स्वरूप धूमिल पडता जा रहा है।

प्राचीन काल मे ब्रह्मचर्य व्रत का पालन पचीस वर्षों तक करना आवश्यक था। परन्तु अब दस पन्द्रह वर्ष की आयु मे ही विवाह हो जाने के कारण ब्रह्मचर्य का पालन कठिन हो गया है यदि कोई नवयुवक बीस-पचीस वर्षो तक कुँवारा रह भी जाता है तो वह इस व्रत का पालन कितनी मात्रा से करता है यह कहना कठिन है।

(५) अपरिग्रह का अभाव—आज सभी लोग अर्थ-संग्रह की चिन्ता से ग्रस्त हैं। सभी येन-केन प्रकारेण अपनी 'घर-गिरहस्ती' जोडने मे लगे हुए है। अत अपरिग्रह की भावना का सर्वथा अभाव हो गया है। गृहस्थो की बात तो दूर रही, जो लोग

साधु-सन्यासी का बाना धारण कर अपने को तथाकथित बीतरागी होने का दावा करत ह, वे लोग भी परिग्रह की भावना से बुरी तरह से पीडित हे। आज सन्यासियो का 'सिंहासनारुढ' होना और महन्तो का 'तख्तनशीन' होना उनकी अपरिग्रह-भावना को झुठला रहा है। अब धम के ठीकादारो की यह दशा है तब सामान्य जनना के विषय मे कुछ कहना ही व्यथ है।

आज अहिंसा व्रत का पालन केवल शब्दकोष का विषय बन गया है। हिंसा के कारण हमारे चारो ओर का वातावरण इतना विषाक्त हो गया है कि शुद्ध वायु मे साँस लेना भी कठिन है।

(६) प्राचीन आदर्शों के प्रति उदासीनता

हमारी प्राचीन सस्कृति के स्तम्भ थे—सत्य का पालन, धर्म का आचरण, हिसा न करना, अपरिग्रह व्रत का धारण, शौच का आचरण, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन, क्षमा, दया, और करुणा आदि सद्गुणा का आचरण। मनु ने धम के जो दश लक्षण बतलाये हे वे ही हमारी सस्कृति की आधारशिला थी। उनका पालन करके हम सस्कृति की रक्षा मे तत्पर रहते थे।

परन्तु अब ऐसा ज्ञात होता है कि हमारी सस्कृति की आधारशिला को ही मानो किसी ने झकझार दिया हो। हमारी सस्कृति का महान् प्रासाद ताश के घर की तरह अथवा बालू की भीति की भाति भरभरा कर गिरना जा रहा है आर इसमे कोई आश्चय नही कि यह कुछ ही वर्षो मे भूमिसात् न हो जाय।

जहाँ तक सत्य के पालन का प्रश्न है इसके सम्बन्ध मे इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि अब हम सत्य के माग स बहुत दूर हट गये हैं। हमारा जीवन असत्य भाषण से ओत-प्रोत है। ऐसी ही अवस्था का वर्णन गोस्वामी जी ने निम्नांकित पक्तियो मे किया है

"झूठे ही ओढन, झूठेहि डासन।" आदि।

आज छोटी-छोटी बातो के लिए झगडा-टटा, मार-पीट, खून खच्चर हो रहा है। सूई के नोक के बराबर भी जमीन के लिए हाईकोट तथा सुप्रीम कोट का दरवाजा खटखटाया जा रहा है।

दया और करुणा जैसी सात्विक वृत्तियो के लिए किसी के हृदय मे अवकाश ही नही रह गया है। इन उदात्त वृत्तियो का ह्रास हो जाने के कारण अब किसी निधन को देखकर करुणा की वृत्ति जाग्रत नही होती और न किसी दुखिया को देखकर उसकी दशा पर दया ही आती है। दरिद्रो को दान देना और उनकी सहायता करना धर्म बतलाया गया हे परन्तु अब शायद ही कोई दीन-दुखिया की सहायता करने के लिए अपनी थैली की डोरी को खीचता या सरकाता है।

इन्द्रिय निग्रह के सम्बन्ध मे मौन का अवलम्बन ही श्रेयस्कर है। आज देश मे इतना अनाचार और व्यभिचार फैला हुआ है जिससे सदाचार का सवथा लोप दिखायी पडता है। इन्द्रिय लोलुपता की अनेक घटनाये रोज ही सामने आती है। कामाचारी लोगो की अधिकता के कारण इन्द्रिय निग्रह करना अत्यन्त कठिन हो गया है। इस प्रकार हमारी सास्कृतिक भावना के ह्रास के कारण अपनी पुरातन सस्कृति का पतन हो रहा है। सर्वत्र इस सस्कृति का सर्वागीण सवनाश उपस्थित हो गया है।

(ख) राजनैतिक जीवन मे उथल-पुथल

भारतीय स्वतत्रता की प्राप्ति के पूर्व हमारा ग्रामीण जीवन सुखद और शान्त था। उसमे शान्ति का अखण्ड साम्राज्य विराजमान था। लोग सुख की नीद सोते थे और बडे चैन से दिन बिताते थे।

परन्तु स्वतन्त्रता की प्राप्ति के पश्चात बालिग मताधिकार सभी के लिए सुलभ कर दिया और फेकरू, घुरहू और कतवारू सभी लोग पाँच वर्षो मे एक बार मतदान करने लगे। फिर भी लोग राजनीति के चक्कर से अप्रभावित थे। बालिग मताधिकार की प्राप्ति के पश्चात गाँवो मे पचायतराज भी लागू कर दिया गया जिसके अनुसार गाँव का प्रत्येक बालिग व्यक्ति ग्राम पचायत मे वोट देने का अधिकारी बन गया है। पहिले पचायत, का चुनाव 'नान-पार्टी बेसिस' (दल विहीन-आधार) पर किया जाता था। परन्तु अब गाँवो मे भी काग्रेस, सोशलिस्ट तथा कम्युनिस्ट पार्टियो का प्रवेश हो गया है। ये पार्टियाँ पचायत के चुनाव मे भी अब भाग लेने लगी है और विषाक्त राजनैतिक प्रचार करके ग्रामीण वातावरण को दूषित करने लगी है। अब गाँव मे कोई व्यक्ति काग्रेसी है तो कोई जनसघी, कोई सोशलिस्ट है तो कोई कम्युनिस्ट।

गाँवो मे राजनीति के प्रवेश के कारण अनेक दुष्परिणाम दिखायी पड रहे है। सबसे बडी बुराई तो यह पैदा हो गयी है कि गाँव की शान्ति सदा के लिए नष्ट हो गयी। जो ग्रामीण पहिले शान्तिपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करता था, वह अब इस ग्रामीण राजनीति के चक्कर मे पड गया है और इसकी परेशानी के कारण उसकी नीद हराम हो गयी है।

उसका दूसरा दुष्परिणाम सहयोग तथा एकता का अभाव है। ग्रामीण जीवन की गाडी सहयोग तथा सहानुभूति के दो पहियो पर चला करती थी। विवाह आदि मे सभी लोग समान रूप से एक दूसरे का सहयोग करते थे और एक दूसरे के दुख

मे सहानुभूति दिखलाते थे। गाँव के व्यक्तियो का जीवन सहकारिता की दृढ नीव पर आश्रित था। एक आदमी की इज्जत गाँव की इज्जत समझी जाती थी और उसका अपमान पूरे गाँव का अपमान या बेइज्जती थी। परन्तु अब गाँवो मे न तो सहकारिता की भावना शेष रह गयी है न सहयोग की। सब की 'अलग अलग दफली और अपना अपना राग' है। शहरो की भाँति अब गाव मे भी किसी का दूसरे से विशेष प्रेम अथवा अनुराग नही है। जब लगाव ही नही तो राग कहा से होगा।

गावो मे राजनीति के प्रवेश का तीसरा दुष्परिणाम सामाजिक सगठन मे उच्छृखलता और असतुलन का प्रवेश है। पहिले सभी वर्ण अपने-अपने कर्तव्यो का पालन करते हुए सन्तोष लाभ करते थे। परन्तु 'पचायत घर' की राजनीति के कारण बडी अव्यवस्था उत्पन्न हो गयी है। अब सभी चुनाव बहुमत से होते है। उच्च वर्ण के लोगो मे एकता के अभाव के कारण, नीच जाति के लोग अपनी सख्या गत अधिकता तथा सगठन शक्ति के कारण चुनाव मे विजयी हो जाते है जिसके परिणामस्वरूप चिथरू चमार और मँगरू धोबी ग्राम पचायत के प्रधान हो जाते है। इस कारण उच्च जातियो मे असतोष फैलता है और गाँवो मे घृणा और वैमनस्य के बीज का वपन हो रहा है। यह सत्य है कि लोकतत्र मे अधिक मत पानेवाले की ही विजय होती है परतु इस चुनाव की प्रथा का गाँवो मे भी प्रचार होने के कारण, गँवई के लोगो मे परस्पर घृणा और विराग की भावना व्याप्त हो रही है। इससे समाज का सामाजिक सगठन टूटता जा रहा है। लोगो मे न तो सहयोग की भावना रह गयी है और न पारस्परिक प्रेम की। सहकारिता का भाव तो अब सदा के लिए नष्ट ही हो गया।

उपसहार—गत पृष्ठो मे भोजपुरी समाज मे जो परिवर्तन आ गये है तथा जो धीरे-धीरे आ रहे है उनका एक सक्षिप्त लेखा जोखा प्रस्तुत किया गया है। यह परिवर्तन समाज के क्षेत्र मे सबसे अधिक परिलक्षित होता है। सच तो यह है कि समाज का कोई भी ऐसा अग नही है जो आधुनिक सभ्यता से प्रभावित न हो। क्या खान-पान और क्या वेशभूषा, क्या सस्कार तथा क्या प्रथाये, क्या रहन-सहन और क्या विधि-विधान सभी मे पाश्चात्य सस्कृति का रग गहरा दिखायी पडता है।

आर्थिक क्षेत्र मे परिवर्तन हो गया है। कृषि के साधनो मे उन्नति, सिंचाई की नवीन विधियाँ, सुधारे गये नये बीज, खाद की व्यवस्था के कारण खेती मे अभूतपूर्व उन्नति हुई है। इसी प्रकार बाट और माप एव आदान प्रदान के साधन स्वरूप सिक्को पर दशमलव प्रणाली का सिक्का जम गया है।

धर्म तथा दर्शन के विभाग मे भी परिस्थिति बदली हुई दिखायी पडती है। धर्म मे अश्रद्धा और दर्शन मे अनास्था इस बात का प्रमाण है। हमारी सस्कृति के आदर्शो के प्रति भी उदासीनता व्याप्त है। इस प्रकार हमारी प्राचीन सस्कृति मे चतुर्दिक परिवर्तन हो रहा है और इसमे 'चेन्ज' की व्याकुलता दृष्टिगोचर होती है।



अध्याय १९

भोजपुरी जनता का स्वभाव और चरित्र

००

(१) परिच्छेद

स्वभाव

भोजपुरी प्रदेश के निवासियो का स्वभाव सीधा और सरल है। ये सच्ची बात को स्पष्ट रूप से कहने मे तनिक भी नही हिचकते। इन लोगो के हृदय मे अपने विश्वासो के प्रति अविचल आस्था पायी जाती है। इसीलिए ये लोग अपने हृदय की बातो को निर्भीक होकर प्रकट करने मे तनिक भी सकोच नही करते। अग्रेजी मे एक मुहावरा है कि कुदाली को कुदाली ही कहना।[1] अर्थात् जो वस्तु जैसी है उसका उसी रूप मे वणन करना। भोजपुरी लोगो पर यह मुहावरा पूर्णतया चरिताथ होता है। जिस वस्तु का जो सत्य रूप है उसको उसी रूप मे बिना किसी लाग-लपेट के प्रकाशित करना भोजपुरियो की सबसे बडी विशेषता है।

१ **स्पष्टवादिता**—सस्कृत मे एक लोकाक्ति प्रसिद्ध है कि "स्पष्ट वक्ता न वन्चक" अर्थात स्पष्ट या खरी बातो को कहन वाला व्यक्ति कभी वचक—धोखेबाज नही" होता। इस प्रदेश के लोगो ने इस सूक्ति को अपने जीवन मे चरितार्थ कर दिखाया है। ये लोग अपनी स्पष्टवादिता के लिए कुख्यात है। कभी-कभी यह स्पष्टवादिता सामान्य शिष्टाचार का अतिक्रमण करती हुई दिखायी पडती है। इनकी स्पष्ट उक्तियाँ अ य लोगो के हृदय मे शुष्कता तथा रुक्षता का आभास पैदा करने मे समथ होती हे। भोजपुरियो की वाणी मे रुक्षता भले ही हो परन्तु इनके स्वभाव मे बन्चकता का नितान्त अभाव पाया जाता है।

नीति तथा धमशास्त्रकार मनु ने लिखा है कि—

सत्य ब्रूयात, प्रिय ब्रूयात,
न ब्रूयात्, सत्यमप्रियम।।

अर्थात् सत्य बोलो परन्तु इसके साथ ही प्रिय बचन भी बोलो। भोजपुरिया सत्य तो अवश्य बोलता है। परन्तु वह प्रिय बोलना नही जानता। इसीलिए उसकी बाते उदण्डता से भरी हुई मालूम होती है। कभी-कभी उसका कथन लट्ठमार सा लगता है। परन्तु जो लोग इनके स्वभाव से परिचित हैं वे जानते हैं कि वाणी की यह रुक्षता इनके स्वभाव मे ही व्याप्त है।

२ **वीरता**—भोजपुरी लोगो की इस रुक्षता से परिचित होने के लिए उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। भोजपुर की भूमि सदा से वीर-प्रसविनी रही है और आज भी उसकी यह विशेषता सुरक्षित है। भोज-पुरी सिपाही सदा से रणबाकुरे रहे है।

मुगलो की सेनाओ मे भोजपुरी जवान सदा विशेष आदर से भर्ती किये जाते थे। शेरशाह सूरी की सेना के भोजपुरी बहादुरो ने हुमायू को भगाकर दिल्ली का तख्ता ही पलट दिया था। इन्होने अफगान सरदार शेरशाह की अध्यक्षता मे मुगलो की राजधानी दिल्ली पर कब्जा कर लिया और अपने स्वामी को 'तख्त ताउस' पर प्रतिष्ठापित किया था। अग्रेजो के शासन मे भी भोजपुर का प्रदेश उनकी सेनाओ के लिए 'भर्ती का केन्द्र' (रिक्रूटिंग ग्राउण्ड) था। सन् १८५७ ई० की स्वतन्त्रता की प्रथम

---

१ To call a spade a spade

चिनगारी को प्रज्वलित करने वाला वीर सेनानी मगल पाण्डेय एक भोजपुरिया जवान था जो बलिया जिले का निवासी था। अंग्रेजी सरकार का छक्का छुडानेवाले तथा अंग्रेजी सेना से जमकर लोहा लेनेवाले, वीराग्रणी बाबू कुंवर सिंह यही की मिट्टी मे पैदा हुए थे। शाहाबाद (अब जिला भोजपुर) के निवासी इस वीर-सेनानी ने उस समय जो वीरता, साहस और त्याग दिखलाया वह भारतीय इतिहास की गोरवपूण घटना है—अमर कहानी है।[1]

"सन सत्तावन के बाति याद,
सुनि कुँवर सिंह के सिंहनाद।
सब भागि चलल बैरी समूह
छा गइल उहाँ घर घर बिसाद।।"[1]

इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय आन्दोलनो मे भी इस प्रदेश के निवासियो का योगदान कुछ कम नही रहा है। सन् १९४२ ई० के 'भारत छोडो' आन्दोलन के अवसर पर तो बलिया जिला के निवासियो ने, कुछ दिनो के लिए ब्रिटिश सत्ता को नष्ट कर पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी थी। इसके पूर्व सन् १९२० ई० के असहयोग आन्दोलन मे गोरखपुर जिले (अब देवरिया) के लोगो ने चौरा चोरी नामक स्थान पर अपनी वीरता का जो उदाहरण प्रस्तुत किया वह भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास मे सदा अमर रहेगा। महात्मा गाँधी ने स्वतन्त्रता के युद्ध के लिए जब जब रणभेरी बजाई तब तब भोजपुरियो ने अपनी अलौकिक शूरता का परिचय दिया और ये सदा स्वतन्त्रता सेनानियो की प्रथम पक्ति मे खडे रहे।[2]

"जब जब बापू कइलन पुकार
रण मे बाजल बिगुल तोहार।
सिर बाँधि बाँधि कफनी आपन
हम छाडि दउरली घर दुआर।।
रण मे हमार अगली कतार।"

कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार राजस्थान की धरती 'राजपूती वीरता' के लिए प्रसिद्ध है उसी प्रकार से भोजपुरी-भूमि भी शौर्य एव वीरता मे अपना सानी नहीं रखती। इस वीरतापूर्ण आचरण के कारण भोजपुरिया के स्वभाव मे यदि स्पष्टवादिता किम्बा रूक्षता आ गयी हो तो कुछ आश्चर्य नही समझना चाहिए।

३ **वीर-पूजा**—भोजपुरी लोगो की तीसरी विशेषता है वीरता की पूजा। भोजपुरिया शक्ति का उपासक है। वह अपनी वाणी मे उतना विश्वास नही रखता जितना अपनी लाठी मे आस्था। वह "राइट इज माइट (Right is might) की नीति मे विश्वास न रखकर Might is right (शक्ति ही उचित है) के सिद्धान्त का पुजारी है। इसलिए वह "जिसकी लाठी उसकी भैंस" इस नीति का परम उपासक है। शास्त्रो मे लिखा है कि "वीर भोग्या वसुन्धरा" अर्थात् यह पृथ्वी वीर मनुष्यो के ही उपभोग के लिए है। भोजपुरी लोगो ने अपने आचरण से यह दिखला दिया है कि वे शास्त्र के उपर्युक्त वचन का अक्षरश पालन करनेवाले है। डॉ० ग्रियसन ने एक स्थान पर लिखा है कि भारत मे सभ्यता का प्रचार करनेवाली दो ही जातियाँ है प्रथम बगाली और दूसरी भोजपुरी। बगालियो ने इस काम को अपनी लेखनी के बल से किया परन्तु भोजपुरियो ने इस कार्य को अपने डण्डे के जोर से सम्पादित किया है।[3]

जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है भोजपुरी लोग डण्डे के सिद्धान्त मे विश्वास करते हैं। उनकी यह विशेषता उनके लोक-साहित्य मे भी प्रतिबिम्बित दिखायी देती है। भोजपुरी की कहावत है—

"सौ पुराचरण, ना एक हूराचरन।"

अर्थात् किसी व्यक्ति को मारने अथवा उसे नष्ट करने के लिए सौ 'पुराचरण' की अपेक्षा लाठी के 'हूरा' से मारना कही अधिक कार्य की सिद्धि करनेवाला है। एक दूसरी कहावत है—

"बरियार के पनही कपार पर"

---

१ प्रसिद्ध नारायण सिंह—स्वागत गान

२ वही

३ ग्रियर्सन—लि० स० इ० भाग-५ खण्ड २ पृ० ४।

अर्थात् शक्तिशाली व्यक्ति का जूता सिर पर रहता है। भाव यह है कि बलशाली की आज्ञा को सभी शिरोधाय करते है। शक्ति के सम्प्रदाय को प्रतिपादित करनेवाली एक अन्य लोकोक्ति इस प्रकार है—

"जेकरा हाथे जोर, ओकरा हाथे बटोर"

अर्थात् जिसके हाथ मे शक्ति है उसी के सभी लोग अनुगामी होते है। "जेकर लाठी ओकर भइसि" मे भी इसी भाव की अभिव्यक्ति होती है।

भोजपुरी लोगो की वीरता के सम्बन्ध मे यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि भागलपुर के भगेलुआ (बदमाश), कहल गाव के ठग्ग और पटना के दिवालिये ये तीनो ही कुप्रसिद्ध हे। परन्तु यदि किसी भोजपुरिया से इनका पाला पडे ता वह तीनो की कमर तोड देगा।

"भागलपुर का भगेलुआ, औ कहलगाँव का ठग्ग।
पटना के दीवालिया, ई तीनू नामजद्।
सुनि पावे भोजपुरिया, त तूरे तीनो के रग।।"

४ साहसिकता

भोजपुरी लोग वीर प्रकृति के जीव है। अत ये उचित स्थान पर तो अपनी वीरता दिखलाते ही है परन्तु कही-कही अनुचित स्थान पर भी अपने बल का प्रदर्शन करते फिरते है। भोजपुरी प्रदेश मे यह कहावत अत्यन्त प्रसिद्ध है कि—

"तसलवा तोर कि मोर"

दूसरे के 'तसले' को हथिया लेना और न देने पर मारने की धमकी देना भोजपुरियो के स्वभाव की एक विशेषता है। ये लोग बडे ही "साहसिक" होते है। यदि कोई अपरिचित व्यक्ति भोजपुर जिले मे चला गया और गलती से वही रात्रि मे वही सो गया तो फिर उसकी खैरियत नही है। उसे अपने समूचे माल-असबाब से हाथ धोना पडेगा। इसीलिए नये व्यक्ति को इस जिले मे जाने का निषेध किया गया है। इस सम्बन्ध मे यह लोकोक्ति लोगो मे बहुत प्रचलित है।

"भूले भोजपुर जइह मत।
जइबो करिह त रहिह मत।
रहबो करिह त खइह मत।
खइबो करिह त सूतिह मत।
सूतबो करिह त टोइह मत।
टोइबो करिह त रोइह मत।"

कहने की आवश्यकता नही कि इस कहावत मे भोजपुरियो की "साहसिक" प्रवृत्ति का बडा ही सुन्दर चित्रण किया गया है।

भोजपुरियो की स्पष्टवादिता कही कही अशिष्टता की सीमा को स्पश करने लगती है। कोई कहता है कि बात स्पष्ट कहनी चाहिए, चाहे वह मीठी लगे अथवा मिर्चा की तरह तीत (तीक्ष्ण, तेज) ही क्यो न लगे—

"बात कही फरिछा, मीठ लागे चाहे मरिचा"[१]

भोजपुरिया स्वभाव से ही स्पष्टवादी होता है। अत अपनी सरलता के कारण वह किसी को चकमा देने मे असमर्थ होता है। अपनी इसी सहज प्रकृति के कारण ये लोग 'बात करना' तो जानते है परन्तु 'बात बनाना' नही जानते। उनकी यह दृढ धारणा है कि काठ को 'गढने' अर्थात छीलने से वह चिकना होता है परन्तु बात को 'गढने' से अर्थात् किसी तथ्य मे नमक मिर्च मिला कर कहने से वह रुक्ष (रूखर) अर्थात् विरूप हो जाता है।

"काठे गढले चीकन होला,
बात गढले रुखर होला।"[२]

---

१ डॉ० मुक्तेश्वर तिवारी—भो० लो० मु० पृ० ६५

२. वही

स्पष्टवादी होने के कारण भोजपुरी लोग किसी तथ्य का कथन निर्णयात्मक रूप से करते हैं। "नरो वा कुंजरो वा" का सिद्धान्त उन्हें नितान्त अमान्य है। ये किसी एक ही पक्ष का समर्थन करते हैं चाहे वह 'अस्ति' हो अथवा 'नास्ति'। एक कहावत में इनकी यही प्रवृत्ति लक्षित होती है—

"भरि हाथ चूरी, ना त पट दे राँडि"

भोजपुरी सधवा स्त्रियाँ अपने दोनों हाथों में चूड़ियाँ पहिनती हैं। परन्तु जैसे ही उनका पति पञ्चत्व को प्राप्त होता है, वैसे ही तत्काल ही उनके हाथों की चूड़ियाँ—जो उनके सधवापन का प्रतीक हैं—फोड़ दी जाती हैं। उपर्युक्त लोकोक्ति इसी तथ्य की ओर संकेत करती है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में स्थितप्रज्ञ का लक्षण बतलाते हुए उसे 'यतात्मा' और 'दृढ़ निश्चय' कहा है। यहाँ के निवासी भी अपने निश्चय पर अटल रहते हैं। किसी बात को जब इन्होंने अपने मुँह से कह दिया तब वह पत्थर की लकीर बन जाती है। सुप्रसिद्ध वीर राणा हम्मीर के विषय में कहा गया है कि—

"तिरिया, तेल, हमीर हठ, चढ़े न दूजी बार।।

कुछ-कुछ ऐसा ही स्वभाव इन भोजपुरियों का भी समझना चाहिए जो "प्राण जाय पर बचन न जाहीं" को अपने जीवन का सिद्धान्त बनाकर उसका पालन करते हैं।

५ कर्मठता

भोजपुरियों की तीसरी चारित्रिक विशेषता है इनकी साहसिकता। ये लोग बड़े ही साहसी होते हैं। अत्यन्त विषम परिस्थितियों का विचार न करते हुए भी, ये अपने अदम्य उत्साह तथा अलौकिक साहस के कारण भारत की सीमा का अतिक्रमण कर, सुदूर विदेशों में जाकर बसे हुए हैं। भोजपुरी लोग कलकत्ता, बम्बई और आसाम के चाय बागानों में लाखों की संख्या में निवास करते हैं। परन्तु इसके अतिरिक्त रंगून, हाँगकाँग, फीजी, मारीशस, सूरिनाम, ब्रिटिश गाइना, केनिया, दक्षिण अफ्रीका आदि अनेक देशों में भी अपना उपनिवेश बसाया है। इन्होंने अपने घनघोर परिश्रम, सतत अध्यवसाय और कठोर एवं अदम्य उत्साह के बल पर जहाँ जंगल था वहाँ मंगल कर दिया है। आज (१९८४ ई०) मारिशस द्वीप के प्रधानमंत्री सर राम गुलाम हैं जो भोजपुरिया हैं।

ये लोग जीविकोपार्जन के लिए पूर्व दिशा में—कलकत्ता, रंगून की ओर जाया करते हैं और अपने बाहुबल से कठोर श्रम करके द्रव्य का संचय करते हैं। भोजपुरी लोक-गीतों में इनके साहसिक स्वभाव (Adventurous spirit) की प्रतिध्वनि सुनायी पड़ती है।

कोई स्त्री अपने पति से पूछती है कि ए रावल! यदि तुम पूर्व दिशा में व्यापार करने के लिए जावोगे तो मेरे लिए क्या लाओगे—

"जो तुहु जइब रावल! पुरबी बनिजिया हो,
हमरा के का तू ले अइब रावल मुनिया।"

किम्बहुना भोलेबाबा—महादेव—भी इस साहसिक प्रवृत्ति के शिकार हुए बिना नहीं रहते। वे भी "पुरबी बनिजिया" को जाते हुए चित्रित किये गये हैं और बारह वर्षों तक परदेस में रहने के पश्चात् ही घर लौटते हैं। महादेव-शिव—का यह साहस कितना सराहनीय है—

"महादेव चलले हा पुरबि बनिजिया
बितेला महीनवा चारि रे।
बारह बरीस पर लवटेला महादेव,
भइले दुअरवा पर ठाढ़ रे।"

जिस प्रदेश के बैल पर चढ़ कर यात्रा करनेवाले, भोले भाले देवता भी इतने सक्रिय, साहसी और चंक्रमणशील दिखायी पड़ें उस स्थान के निवासियों की 'सक्रियता और चालूपन' की चर्चा ही व्यर्थ है। यही कारण है कि आज भोजपुरी लोगों के लिए कोई पर्वत अलंघ्य नहीं है और न कोई देश अगम्य है। महासागर की उत्ताल तरंगें भी इनकी जिगिमिषा, संचरणशीलता में बाधा पहुँचाने में नितान्त असमर्थ हैं।

(२) परिच्छेद

चरित्र

भोजपुरी लोगो की वीरता के विषय मे ग्रियसन का मत। डॉ० ग्रियसन ने भोजपुरियो की प्रधान विशेषताओ का वणन करते हुए कितना सत्य तथा सटीक लिखा है कि—

"भोजपुरी भाषाभाषी क्षेत्र उस जाति का प्रदेश है जो अपने अन्य बिहारी भाषाभाषी भाइयो से एक विलक्षण तथा पथक् स्वभाव की है। यह जाति भारतवष की लडाकू जाति है। इनमे स्वभाव से ही, सहज रूप मे चैतन्य रहने वाली, जातीयता पायी जाती है जिसमे दोष बहुत ही नगण्य है और गुण एव योग्यता अत्यधिक मात्रा मे विद्यमान है। ये लोग युद्ध से केवल युद्ध-मात्र करने के लिए प्रेम करते है। ये समग्र भारत मे फैले हुए है। यहाँ का प्रत्येक मनुष्य, किसी भी सयोग अथवा कुयोगपूण घटना के वश—जो स्वय उसके सम्मुख आकर उपस्थित होती है—अपने भाग्य को कसौटी पर कसने के लिए और अपनी जीविका के उपाजन हेतु सदा प्रस्तुत रहता है। इस जाति का निवास स्थान (भोजपुरी प्रदेश) भारतीय सेना के सैनिको की भर्ती करने के लिए उपयुक्त केन्द्र-स्थल है। परन्तु साथ ही, इसके ठीक विपरीत, सन् १८५७ ई० की क्रान्ति मे इस जाति ने प्रमुख भाग लिया था।

"भोजपुरी लोग अपनी लाठी से उतना ही प्रेम करते है जितना आयरिश लोग अपनी छडी (स्टिक) से। बडी, मोटी और लम्बी हड्डियोवाला, और लम्बा कदवाला भोजपुरिया जवान अपनी मोटी लाठी के साथ, अपने लम्बे कदमो से, सुदूर खेतो मे घूमता हुआ सदा देखा जा सकता है। हजारो भोजपुरिया सुदूर ब्रिटिश उपनिवेशो मे जाकर परिश्रम के साथ काम करके, वन का उपाजन कर, वहाँ से धनी बनकर अपने देश लौट है। प्रत्येक वष ये बहुत बडी सख्या मे उत्तरी बगाल मे जाते है और वहाँ ईमानदारी के साथ नौकरी करके जीविका का उपाजन करते है। बगाल के लोग, विशेषकर कलकत्ता के निवासी इनसे सदा डरते रहते है क्योकि ये शक्ति मे उनसे अधिक बलवान् होते है। कलकत्ता भोजपुरी जाति के लोगो से भरा पडा है। बगाल के सभी जमीदार अपनी प्रजा (रियाया) मे शान्ति की स्थापना के लिए इन भोजपुरियो को सम्मानपूवक अपने यहा रक्षक के रूप मे रखते है।"[१]

इसी प्रकार से भोजपुरी भाषा के प्रसग मे डॉ० ग्रियसन ने भोजपुरी लोगो की वीरता की भूरि-भूरि प्रशसा की है और इन्हे हिन्दुस्तान मे सम्यता का प्रचारक कहा है। इस काय को इन्होने अपनी सर्वशक्तिमती लाठी के जोर से, डण्डे के बल से किया है, यही इनकी प्रधान विशेषता है।[२]

---

1 "The Bhojapuri speaking country is inhabited by a people curiously different from the others who speak Bihari dialects They form the fighting nation of Hindustan An alert and active nationality, with few scruples and considerable abilities, dearly loving a fight for fightings sake, they have spread all over Aryan India Each man is ready to carve his fortune out of any opportunity which may present itself to him They furnish a rich mine of recruitment to the Hindustani army, and on other hand, they took a prominent part in the mutiny of 1857

As fond as an Irish is of a stick, the long-boned, stalwart, Bhojapuri with his staff in hand, is a familiar object striding over fields far from his home Thousands of them have emigrated to British colonies and have returned richmen Every year still larger numbers, wander over Northern Bengal and seek employment, either honestly as Palki-bearers, or otherwise as decoits Every Bengali Zamindar keeps a posse of these men, enphemistically termed "Darwans", to keep his tenents in order Calcutta, where they are employed and feared by the less heroic natives of Bengal, is full of them

Such are the people who speak Bhojapuri and it can be understood that their language is a handy article made for current use and not two much encumbered by grammatical subtilties

Dr G A Grierson—Linguistic survey of India Vol 5, Part II, Page 5

2 Bhojapuri is the practical language of an energetic race, which is ever ready to accomodate itself to circumstances, and which has made its influence felt all over India The Bengali and the

भोजपुरीप्र देश की गोरव-गाथा का यशोगान करते हुए इस विदेशी विद्वान् ने कितना समुचित तथा सटीक लिखा है कि—

"शाहाबाद (आधुनिक भोजपुर) के जिला-जहाँ ये भोजपुरिया निवास करते हे—को द्वितीय राजपूताना की सज्ञा दी जा सकती हे। यह भूमि वीर क्षत्राणी भगवती देवी के रुधिर से पवित्र की गयी है जिसने अपने भाई को आततायी मुगलो (मुसलमानो) के हाथा से रक्षा करने के लिए, जल मे डूब कर अपने प्राणो का उत्सग कर दिया था। इसे महोबा के वीराग्रणी आल्हा और ऊदल की जन्म-स्थली होने का गोरव प्राप्त हे। पश्चात् काल म सन्, ५७ ई० के सिपाही विद्रोह मे वीर तथा वृद्ध कुँवर सिह ने शाहाबाद के राजपूता का नेतृत्व किया था। यह भूमि वीर तथा रण-बाँकुरो का देश है। अत मथुरा के कृष्ण नही, बल्कि अयोध्या के राम ही इस देश के आराध्य देवता है।'"

इस प्रकार ग्रियसन ने भोजपुरी भाषा, भोजपुरी लोग तथा भोजपुरी देश (प्रदेश) की मुक्त कण्ठ से जो प्रशसा की है वह भारतीय इतिहास मे अलौकिक तथा अद्वितीय हे। जब ग्रियसन जैसा धीर, गम्भीर विद्वान् भोजपुरियो की वीरता की प्रशसा करता है तब निश्चय ही इस प्रदेश के लोगो के लिए यह गोरव और गव का विषय है। भोजपुरी प्रदेश की द्वितीय राजस्थान से तुलना कर इस मनीषी ने सचमुच ही भोजपुरी वीरता को एक ऐतिहासिक प्रतिष्ठा प्रदान की है। सच तो यह है कि इस महान् भाषा-शास्त्री विद्वान् के समान भोजपुरी सस्कृति का ज्ञाता तथा प्रशसक अन्य व्यक्ति मिलना सम्भव नही है।

भोजपुरी के किसी कवि ने भोजपुरिया लोगो की स्वभावगत विशेषताओ तथा चारित्रिक विशिष्टताओ को एकत्रित कर मानो एक ही पद्य मे निबद्ध कर दिया है। कवि कहता है कि भोजपुरी लोग झूठ बोलना नही जानते, वे छुआछूत मे विश्वास रखते है। वे सभी श्रेष्ठजनो तथा परिजनो एव पुरजनो का आदर-सत्कार करने की पद्धति से परिचित है परन्तु किसी की जी-हुजूरी नही करते। वे अखाडे मे जाकर अपने शरीर मे धूल मलकर पहलवानी करते है, युद्ध-क्षेत्र मे किसी को पीठ नही दिखाते अर्थात् कभी पराजय स्वीकार नही करते। वे परायी स्त्री को बुरी निगाह—दूषित दृष्टि से नही देखते। भोजपुरी लोग अपनी आन और शान की रक्षा के लिए लड जाते है और इसलिए वे अपनी जान को जान नही जानते अर्थात् प्राणो का परित्याग करने के लिए सदा तत्पर रहते है। वे छाती को उतान (आगे निकाल कर) करके गव से अपनी लाठी को 'तान' कर चलते है। वे मर्दों की वाणी को बोलते है तथा मस्तानी चाल से चलते है। इस प्रकार भोजपुरिया जवान एक पानी का होता है अर्थात् वह अपनी बात का धनी और प्रण का पक्का होता है।'

"झूठ ना बखाने जाने, छूत-छात माने जाने,
माने जाने सबके, ना जाने जी हुजूरिया।
धूरिया चढ़ावे जाने, पीठ ना दिखावे जाने,
डीठ ना लगावे जाने, आन के बहुरिया।।
आन पै लडावै जानै, जान के ना जान आनै;
चले के उतान जाने, तानि के लउरिया।
बानी मरदानी जाने, चाल मस्तानी जाने,
होला एक पानी के मरद भोजपुरिया।।"

कहने की आवश्यकता नही कि इस एक ही पद्य मे इस कवि ने भोजपुरियो की समस्त चारित्रिक विशेषताओ का एकत्र सकलन कर दिया है।

Bhojapuri are two of the great civilizers of Hindustan, the former with his pen, and the latter with his cudgel डॉ० ग्रियर्सन लि० स० इ० भाग ५, पार्ट २, पृ० ४।

१ "Shahabad, the district in which they (Bhojapuri people) dwell, might almost be called a second Rajaputana It is the land made holy by the blood of Bhagawati—the Rajaputani—who drowned herself to save her brother from the hands of the Musalmans, and it is the birth-land of Alha and Rudal the heroes of Mahoba In later times, too, tough-hearted old Kunwar Singh, led the Shahabad Rajputs against the English in the Mutiny It is a country of fighting men and as such Rama of Ayodhya and not Krishna of Mathura is the god of the land"

डॉ० ग्रियसन—जे० आर० ए० एस० भाग १८ (XVIII) १८८६ ई०, पृ० २११।

२ 'भोजपुरी' मासिक पत्रिका वर्ष १, अक ६, पृ० ४८ (भोजपुरी कार्यालय, आरा)

● ●

अध्याय २०

उपसंहार

○○

गत पृष्ठो मे भोजपुरी प्रदेश की सस्कृति का परिचय देने का विनम्र प्रयास किया गया है। इस प्रदेश के जन-जीवन से सम्बन्धित जितने भी पहलू हो सकते है उनका सक्षिप्त परन्तु प्रामाणिक वणन प्रस्तुत करने की चेष्टा की गयी है। इस मण्डल मे निवास करनेवाली जनता के रीति-रिवाज, रहन-सहन, आचार-विचार, वेश-भूषा, खान-पान, अलकरण-प्रसाधन और रीति-नीति की विशद चर्चा की गयी है।

समाज के अन्तर्गत चारो वर्णों और आश्रमो का वणन करने के पश्चात् समाज मे स्त्रियो की दशा पर विचार किया गया है। भोजपुरी समाज मे स्त्री अनेक रूपो मे दिखायी पडती है। कभी वह सती-साध्वी के रूप मे हमारे सामने आती है तो कभी कुलटा और व्यभिचारिणी का रूप प्रकट होता है। इस समाज मे स्त्रियो की दशा अन्य समाजो की अपेक्षा दीन और हीन है, यह कथन कुछ भी अनुचित नही होगा। समाज मे सम्पन्न किये जानेवाले विभिन्न सस्कारो का यहाँ उल्लेख हुआ है। यद्यपि शास्त्रकारो ने षोडश सस्कारो का उल्लेख किया है परन्तु जन-जीवन मे केवल तीन ही सस्कारो का विशेष प्रचार पाया जाता है—ये हैं पुत्र जन्म और विवाह तथा अन्तिम सस्कार अन्त्येष्टि।

विवाह सस्कार के अन्तगत शास्त्रीय विधि-विधानो की चर्चा के पश्चात् अनेक लौकिक विधानो का भी वर्णन किया गया है। अन्त्येष्टि जीवन का अन्तिम सस्कार है जिसका विवेचन विशद रूप से किया गया है।

भोजपुरी लोगो के खान-पान का जितना विस्तत तथा प्रामाणिक वर्णन यहाँ पाया जाता है उतना अन्यत्र उपलब्ध नही है। कच्चे और पक्के भोजनो का विवेचन करके उनकी पाक-प्रक्रिया पर भी प्रकाश डाला गया है। मिष्ठानो के प्रकरण मे भोजपुरी गाँवो मे उपलब्ध केवल उन्ही मिठाइयो का वणन किया गया है जो अन्यत्र उपलब्ध नही होती।

वेश-भूषा के प्रकरण मे जनता सामान्य तथा विशेष अवसर—जैसे विवाह आदि—पर पहिने जानेवाले परिधान का विवरण प्रस्तुत किया गया है। स्त्रियो तथा पुरुषो की वेश भूषा का पथक्-पृथक् वर्णन के पश्चात् साधुओ और सन्यासियो के पहिनावे की चर्चा की गयी है।

अलकार के प्रकरण मे भोजपुरी स्त्रियो के द्वारा पहिने जानेवाले उन समस्त अलकारो की चर्चा की गयी है जिनमे से कितने आज आउट-आफ-डेट और आउट-आफ-फैशन हो गये है। ये अलकार किस धातु से बनाये जाते है, शरीर के किन-किन अगो मे पहिने जाते है, इनकी आकृति कैसी होती है आदि विषयो को प्रस्तुत किया गया है।

अलकरण और प्रसाधन के अन्तगत उन समस्त उपादानो तथा साधनो की चर्चा की गयी है जिनके प्रयोग से भोजपुरी स्त्रियो के कोमल कलेवर के सौन्दय का वर्द्धन होता है। काजल, उबटन, तिलक, महावर, मेहदी, मिस्सी आदि उपादानो का वणन किया गया है।

पुरुषो तथा बालको के द्वारा जो 'आउट-डोर' खेल खेले जाते है उनका विवरण प्रस्तुत करके लडकियो के 'इन-डोर' गेम्स की भी चर्चा की गयी है। इस प्रकार सामाजिक जीवन के जितने पक्ष (आसपेक्ट्स) हो सकते है उनका विवेचन बडे ही विस्तार के साथ किया गया है।

आर्थिक जीवन के अन्तगत ग्रामीण जनता की आर्थिक स्थिति के ऊपर प्रकाश डाला गया है। इसके पश्चात् बाट, माप, तौल आदि की चर्चा की गयी है। भोजपुरी प्रदेश मे पहिले किन सिक्को का प्रयोग किया जाता है और अब उनका स्थान किन सिक्को ने ले लिया है इसका वणन यथास्थान हुआ है। कृषक जीवन की बाकी झाँकी देने के पश्चात् सिचाई के विभिन्न साधनो का वर्णन उपलब्ध होता है। यातायात के अनेक साधनो के वणन के पश्चात् ग्रामीण अथ-व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार से सक्षिप्त रूप से ग्रामीणो की आर्थिक स्थिति की मीमासा की गयी है।

धार्मिक जीवन के अन्तगत भोजपुरी प्रदेश मे पाये जानेवाले अनेक धार्मिक सम्प्रदायो का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस प्रदेश मे शैव, शाक्त, वैष्णव आदि धर्मों के अनुयायी पाये जाते है। इसके अतिरिक्त साधु-सन्यासी, उदासी, वैरागी तथा कनफटा योगियो की भी कुछ कमी नही है। इस मण्डल मे सवसाधारण जनता शिव, विष्णु और हनुमान् की पूजा करती है। सीता-राम और राधा-कृष्ण के मदिर की प्रचुरता इस तथ्य का प्रमाण है। प्रत्येक गाँव मे महादेव (शिव) जी का मदिर और हनुमान की मढिया पायी जाती है।

परन्तु कुछ लोग ऐसे भी है जो भूत, दूत, पिशाच, ब्रह्मराक्षस, दैत्य, भोकस और राकस आदि प्रेत योनियो मे विश्वास करते है। वे अपने विश्वास के अनुसार गाँव के बाहर चौरा बनाकर उनकी पूजा करते ह। ओझा, सोखा, नैद आदि गाव के आध्यात्मिक डॉक्टर है जिनकी सेवा ग्रामवासियो के लिए सदा उपलब्ध रहती है।

ग्रामीण जनता के दार्शनिक जीवन पर भी प्रकाश डाला गया है। वे जन्मान्तरवाद, कमवाद और भाग्यवाद पर भरोसा रखते है और अवतारवाद मे उनका अटूट विश्वास है। उनके जीवन का परिचालन भाग्यवाद के मूलसूत्र "होइहै वही जो राम रचि राखा" के द्वारा हुआ करता है। नियतिवाद ही उनका जीवन-दशन है और परिचालक शक्ति।

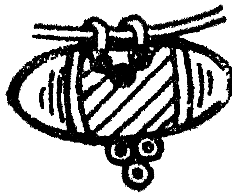
इस प्रकार पिछले पृष्ठो मे भोजपुरी लोगो के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा दाशनिक एव आध्यात्मिक जीवन का विशद, प्रामाणिक तथा साधिकार वर्णन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

सभवत भोजपुरी जनता के जीवन के विविध पहलुओ का इतना सागोपाग विवेचन अन्यत्र उपलब्ध नही है। भोजपुरी जनता के सामान्य जीवन से सम्बन्धित कोई भी ऐसी वस्तु नही है जिसका वणन यहाँ न किया गया हो। शतसाहसी सहिता के रचयिता भगवान् व्यास ने यह बडे गर्व के साथ लिखा है कि जो कुछ महाभारत मे वर्णित है उसका उल्लेख अन्य स्थानो पर भी मिल सकता है परन्तु जो कुछ इसमे नही है वह दूसरी जगह उपलब्ध कदापि नही हो सकता।

"यदिहास्ति तदन्यत्र,
यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्"

कृष्ण द्वैपायन व्यास के शब्दो मे थोडा-सा परिवर्तन करके इस ग्रन्थ के विषय म भी बडी विनम्रता के साथ यह घोषणा की जा सकती है कि—

"यदिहास्ति तन्नान्यत्र
यन्नेहास्ति न तत् क्वचित् ॥"



परिशिष्ट (१)

संशोधन तथा परिवर्धन

○○

इस ग्रन्थ का निर्माण आज से लगभग बीस वर्षो पहिले किया गया था। इस अन्तराल मे अनेक वस्तुओ मे परिवतन आ गया है, जैसे तिलक ओर दहेज के आदान-प्रदान मे महान् परिवतन उपस्थित हो गया है। आज भी भीषण महँगाई के साथ विवाह के लिए योग्य वर के मूल्य मे भीषण वृद्धि हो गयी है। इस पुस्तक मे तिलक-दहेज का जो भाव पहिले दिया गया था वह अब बहुत पुराना पड गया है। अत उसके स्थान पर वर का आधुनिक बाजार-भाव दिया गया है।

स्त्रियो के चित्रण के अध्याय मे फूहड, ककशा तथा बतकट स्त्रियो का वणन जोडना पडा है। भोजपुरी प्रदेश मे ऐसी भी स्त्रियाँ होती है। अत उनका वणन यहा जोड देना आवश्यक प्रतीत हुआ। सस्कारो के सम्बन्ध मे अनेक पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग होता है जैसे परिछावन, रोका, कोहबर आदि। उनके अथ को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक टिप्पणिया यथास्थान जोड दी गयी है। इस प्रकार इस प्रथम परिशिष्ट मे कुछ पुराने कथनो मे सशोधन और परिवद्धन प्रस्तुत करने के साथ ही कठिन, ठेट तथा पारिभाषिक शब्दो को टिप्पणियो मे स्पष्ट कर दिया गया है।

नारी–फूहड़ स्त्री के रूप मे

भोजपुरी नारी-समाज मे फूहड स्त्री का कुछ कम महत्त्व नही है। यह अपनी आकृति, रहन-सहन तथा स्वभाव के कारण बडी सरलता से परिलक्षित हो जाती है। भोजपुरी मे ऐसी स्त्री को 'फूहरि' कहा जाता है। यद्यपि समाज मे ऐसी स्त्रियो की सख्या अत्यधिक नही है फिर भी यदि कोई इसका दशन करना चाहे तो उस व्यक्ति को निराश नही होना पडेगा। क्योकि इनका दशन सवत्र सुलभ है। फूहडपन का प्रधान कारण गरीबी ही समझनी चाहिए। परन्तु कही-कही यह स्वभाव-जन्य आलस्य तथा नारी-धम का सम्यक् बोध न होने के कारण भी होता है।

'फूहरी' परम आलसी होने के साथ ही अत्यन्त असावधान भी होती है। उसे किसी बात की तनिक भी चिन्ता नही रहती। उसका छोटा बच्चा घर मे कहाँ सोया है इसका पता उसे नही होता। वह गाँव भर मे उसके खो जाने का ढिढोरा पीटती फिरती है, चाहे वह बच्चा उसकी बगल मे पलँग पर ही क्यो न सोया हो। फूहड स्त्री भोजन बनाने मे तो चतुर नही होती परन्तु दूसरो के द्वारा पकाये गये अन्न का भक्षण करने मे बडी दक्ष होती है। उसकी भोजन-भट्टता प्रसिद्ध है। उसके इन्ही गुणो का वणन अगले पृष्ठो मे उदाहरण सहित प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया जाता है।

(१) फूहड स्त्री का स्वरूप

फूहड स्त्री बहुत गन्दी रहती है। गन्दगी उसका स्वभावजन्य गुण या अवगुण है। उसके उठने-बैठने, चलने-फिरने तथा बात करने पर उसका फूहडपन प्रकट होता है। वह जाडे से बहुत डरती है। अत शीतऋतु उसके लिए बहुत कष्टदायी होती है। वह होली और दिवाली आदि त्यौहारो को छोडकर कदाचित ही स्नान करती है। नहाना उसके दैनिक जीवन का कम नही है।[1] अत उसके शरीर तथा वस्त्रो का गन्दा रहना स्वाभाविक है। गर्मी के दिनो के आने पर ही उसके शरीर की गन्दगी छूटती है। वह आलस्य के कारण अपने गन्दे कपडे मे कभी साबुन भी नही लगाती। उसके सिर के बाल सदा सूखे तथा बिखरे रहते है क्योकि महीनो तक वह अपने बालो मे तेल लगाने का कष्ट नही करती। फिर उनके सँवारने तथा 'चोटी

---

१ फूहरि का मइल फागुन मे छूटत है।

करने' की कथा ही दूर है। अपने इन्ही गुणो के कारण उसका नाम पास-पडोस के घरो मे फैल जाता है। उसकी चर्चा सर्वत्र होने लगती है और सभी लोग उसे जानते रहते है।[१]

(२) फूहड मे आलस्य की प्रधानता

फूहड स्त्री की सबसे बडी विशेषता (Characteristic) है कि वह परम आलसी होती है। वह स्वभाव से ही आलसी, सुस्त तथा कामचोर होती है। वह प्रात काल सूर्य के उदय हो जाने के पश्चात ही जागती है। परन्तु प्रात काल मे यदि सूर्य बादलो से आच्छादित रहे तब उसके सोकर उठने का कोई समय निश्चित नही रहता। घर के आगन मे घाम अर्थात कडी धूप हो जाने पर भी वह सोती रहती है। भोजपुरी के एक लोक-गीत मे इसका वर्णन बडी ही सुन्दर रीति से किया गया है।[२] प्रात काल मे सूर्य के बादलो मे आच्छादित होने के कारण दिखाई न देने पर वह कहती है कि अभी आधी रात है।[३] अवधी के एक लोक-गीत से पता चलता है कि धूप निकलने पर भी जगाने पर वह अपने पति (खसम) को बेईमान कहती है क्योकि सभवत वह उसको जगाने का कारण है।[४]

प्रात काल मे सूर्योदय के पश्चात् भी देर तक सोते रहना फूहड स्त्री का स्वभाव होता है। वह सात घडी दिन बीत जाने पर भी सोती रहती है और उठते ही हाथ मे झाड़ू लेकर घर बुहारने लगती है। फिर आँगन मे बैठकर रोने लगती है मानो झाड़ू लगाना उसके लिए अत्यन्त दु खदायी तथा परिश्रमजन्य कार्य हो।[५] वह घर मे झाड़ू लगाकर उसे साफ सुथरा रखना नही चाहती। अत पुरवैया तथा पछुआ हवा से प्रार्थना करती है कि तुम मेरे भाई अर्थात सहायक हो। मेरे घर का कूडा-करकट साफ कर ले जाओ।[६] फूहड स्त्री इतनी सुस्त होती है कि यदि दिन मे धूप न दिखाई पडे तो भोजन बनाने के लिए, जाँत मे आटा पीसने के लिए वह उठे ही नही। सदा सोती रहे।[७]

सायकाल होते ही वह फूहड स्त्री खाट पर सो जाती है। घर के बर्तन तथा भाण्डे मे मक्खियाँ भिनभिनाती रहती हैं। अत सभवत भुक्तभोगी घाघ ने ऐसी स्त्री को पानी मे डुबो देने को कहा है।[८]

(३) फूहड स्त्री की असभ्यता

फूहड स्त्री अत्यन्त अशिष्ट तथा असभ्य होती है। उसकी इसी अशिष्टता के कारण उसका पति उसकी पीठ-पूजा भी करता है फिर भी वह अपने काम तथा स्वभाव से बाज नही आती। वह अपने पति से कहती है कि "तुम मुझे जितना चाहे मारो-पीटो किन्तु मैं जैसी हूँ वैसी ही रहूँगी।"[९] "तुम मुझे पीट-पीट कर ककाल मात्र भले ही बनाओ, परन्तु मेरे स्वभाव मे

---

१ फूहरि चलै तो नौ घर हालै।
(लेखक का निजी सग्रह)

२ फूहरी ना जागै छिटिकि गइल घमवा।

३ बदरी बदरी भा भिनुसार।
फूहरी कहै अबै आधी रात।।

४ फूहरी ना जागी, निकरि आये घमवा।
जब जागी तब मुँह फैलाये।
खसम को कहे बेइमनवा।।"

५ सात घरी तक फूहरि सोवे।
लइ बढ़नी अँगना माँ रोवे।।

६ पुरवां, पछुवा तें मोर भाय।
लइजा करकट अँगने बहाय।।

७ न दिन दिक्खे, न फूहरि पिस्से।

८ "साँझे ते परि रहती खाट।
परी भडेसरि बाराबाट।
घर-आँगन सब घिन घिन होय।
घग्घा गहरे देव डुबोय।।"
रा० न० त्रि०—घाघ और भड्डरी

९ मोर पिया चाहे जेतना। मे ओतनी का ओतना।।

कोई परिवतन नही आ सकता।"[१] इस कथन से उसकी हठधर्मिता का पता चलता है। वह अपनी सास से कहती है कि 'तुम चाहे जितना भी डाटो, मै तो मोटा आटा ही पीसूगी और मोटा ही खाऊँगी। मैं सोलह दिनो मे सोल्ह वस्त्र—साडी को पहिन कर फाड डालूँगी। तुम्हारा मन हो तो मुझे अपने घर मे रखो अथवा मत रखो।"[२]

(४) फूहड की असावधानता

फूहड स्त्री अत्यन्त असावधान रहती है। कौन-सी वस्तु घर मे कहा रखी है, इसका उसे पता नही रहता। किंबहुना, उसने अपने पुत्र को घर मे कहा सुला दिया है इसका भी पता उसे नही रहता और पुत्र के न मिलने पर गाँव-घर मे गोहार लगाती फिरती है।[३] बगल मे सोये हुए लडके को खोजने के लिए वह सारे गाव मे ढिंढोरा पीटती फिरती है।[४]

कभी-कभी गर्मी के दिनो मे गाव मे आग लग जाती है जिससे सारा गाव ही जल जाता है। इस भीषण अग्निकाण्ड को शान्त करने के लिए उसे बुझाने के लिए, गाँव के समस्त नर-नारी अपने प्राणो की बाजी लगा देते हे। परन्तु फूहड स्त्री को इसका पता ही नही चलता। वह कहती है कि कही कपडा जलने की गध आ रही हे।

उसे अपने शरीर के श्रृगार करने की इच्छा तो होती है परन्तु उसे इसका ढग ही नही मालूम। उसे प्रसाधन करने का भी ठीक-ठीक ज्ञान नही होता वह सिन्दूर लगाने के स्थान पर अपनी माग मे ईंट को तोडकर उसका चूरा (चूर्ण) लगाती है।[७] वह कभी-कभी इतनी शीघ्रता मे रहती है कि विवाह के अवसर पर भी वह माँग के स्थान मे अपनी कनपटी मे सिन्दूर लगा लेती है।[८] अवधी मे भी इसी प्रकार की एक लोकोक्ति पायी जाती है। वह इतनी असावधान है कि घर मे कजरौटा के रहते हुए भी कभी काजल नही पारती।[१०]

(५) फूहड स्त्री के द्वारा भोजन बनाना

फूहड स्त्री के काम करने का कोई निश्चित समय नही होता। वह अपने स्वतन्त्र मन के अनुसार कार्य करती है। वह समय (टाइम) के बन्धनो से परे होती है। कभी तो वह सूर्योदय के पश्चात् भी कुम्भकर्णी निद्रा मे सोयी रहती है और कभी रात्रि के पिछले पहर मे उस समय भोजन बनाना प्रारम्भ कर देती है जब कि सारा गाँव गहरी नीद मे सोया रहता है।[११] इसी प्रकार रात मे जब सब लोग सोने चलते है तब वह रोटी पोने चलती है।[१२]

इसके भोजन बनाने का तरीका इतना गलत होता है, इसकी पाक-प्रक्रिया इतनी अव्यवस्थित रहती है कि भगवान ही उसको पार लगावे।[१३]

---

१ मार मार हिकनी। म जितनी क तितनी।
२ अर्रा पीसबि, दर्रा खाब।
सुन स्वामी सुन सासु रे॥
सोरह दिन माँ सोरह चीरबि
मन चाहे तो राखु रे॥
३ कथरी माँ लरिका, गाँव माँ गोहार।
४ बगल माँ छोरा, गाँव माँ ढिंढोरा॥
५ सगरे गाँव जलिगा।
फूहरि कहेन कहूँ लत्ता गधान॥
६ सहूर हइये नाँ, हुसुन इतना बडा।
७ फूहरी करे सिगार, माँग ईंटा से फोरे।
८ हडबडी मे बिआह, कनपटी मे सेनुर॥
९ लबलबी का विवाह, कनपटी माँ सेनुर।
१० काजर हइये नाँ, कजरौटा नौ ठे।
११ सगरे गाँव सोवे, फूहरी तब रोटिया पोवै।
१२ दुनिया चली सोने, फुहरी चली पोव॥
१३ फूहरी करे बइठी रोसइया।
पार लगावे, गोसँइयाँ॥

करने' की कथा ही दूर है। अपने इन्ही गुणो के कारण उसका नाम पास-पडोस के घरो मे फैल जाता है। उसकी चर्चा सर्वत्र होने लगती है और सभी लोग उसे जानते रहते है।[१]

(२) फूहड मे आलस्य की प्रधानता

फूहड स्त्री की सबसे बडी विशेषता (Characteristic) है कि वह परम आलसी होती है। वह स्वभाव से ही आलसी, सुस्त तथा कामचोर होती है। वह प्रात काल सूय के उदय हो जाने के पश्चात् ही जागती है। परन्तु प्रात काल मे यदि सूर्य बादलो से आच्छादित रहे तब उसके सोकर उठने का कोई समय निश्चित नही रहता। घर के आगन मे घाम अर्थात कडी धूप हो जाने पर भी वह सोती रहती है। भोजपुरी के एक लोक-गीत मे इसका वर्णन बडी ही सुन्दर रीति से किया गया है।[२] प्रात काल मे सूय के बादलो से आच्छादित होने के कारण दिखाई न देने पर वह कहती है कि अभी आधी रात है।[३] अवधी के एक लोक-गीत से पता चलता है कि धूप निकलने पर भी जगाने पर वह अपने पति (खसम) को बेईमान कहती है क्योकि सभवत वह उसको जगाने का कारण है।[४]

प्रात काल मे सूर्योदय के पश्चात् भी देर तक सोते रहना फूहड स्त्री का स्वभाव होता है। वह सात घडी दिन बीत जाने पर भी सोती रहती है और उठते ही हाथ मे झाड़ू लेकर घर बुहारने लगती है। फिर आंगन मे बैठकर रोने लगती है मानो झाड़ू लगाना उसके लिए अत्यन्त दु खदायी तथा परिश्रमजन्य काय हो।[५] वह घर मे झाड़ू लगाकर उसे साफ सुथरा रखना नही चाहती। अत पुरवैया तथा पछुआ हवा से प्रार्थना करती है कि तुम मेरे भाई अर्थात सहायक हो। मेरे घर का कूडा-करकट साफ कर ले जाओ।[६] फूहड स्त्री इतनी सुस्त होती है कि यदि दिन मे धूप न दिखाई पडे तो भोजन बनाने के लिए, जाँत मे आटा पीसने के लिए वह उठे ही नही। सदा सोती रहे।[७]

सायकाल होते ही वह फूहड स्त्री खाट पर सो जाती है। घर के बर्तन तथा भाण्डे मे मक्खियाँ भिनभिनाती रहती हैं। अत सभवत भुक्तभोगी घाघ ने ऐसी स्त्री को पानी मे डुबो देने का कहा है।[८]

(३) फूहड स्त्री की असभ्यता

फूहड स्त्री अत्यन्त अशिष्ट तथा असभ्य होती है। उसकी इसी अशिष्टता के कारण उसका पति उसकी पीठ-पूजा भी करता है फिर भी वह अपने काम तथा स्वभाव से बाज नही आती। वह अपने पति से कहती है कि "तुम मुझे जितना चाहे मारो-पीटो किन्तु मैं जैसी हूँ वैसी ही रहूँगी।"[९] "तुम मुझे पीट-पीट कर ककाल मात्र भले ही बनाओ, परन्तु मेरे स्वभाव मे

---

१ फूहरि चलै तो नौ घर हालै।
(लेखक का निजी सग्रह)

२ फूहरी ना जागै छिटिकि गइल घमवा।

३ बदरी बदरी भा भिनुसार।
फूहरी कहै अबै आधी रात।।

४ फूहरी ना जागी, निकरि आये घमवा।
जब जागी तब मुँह फैलाये।
खसम को कहे बेइमनवा।।"

५ सात घरी तक फूहरि सोवे।
लइ बढ़नी अँगना माँ रोवे।।

६ पुरुवां, पछुवा तें मोर भाय।
लइजा करकट अँगने बहाय।।

७ न दिन दिखे, न फूहरि पिस्से।

८ "साँझे ते परि रहती खाट।
परी भडेसरि बाराबाट।
घर-आँगन सब घिन घिन होय।
घग्घा गहरे देव डुबोय।।"
रा० न० त्रि०—घाघ और भड्डरी

९ मोर पिया चाहे जेतना। मै ओतनी का ओतना।।

कोई परिवतन नही आ सकता।"[१] इस कथन से उसकी हठधर्मिता का पता चलता है। वह अपनी सास से कहती है कि 'तुम चाहे जितना भी डाँटो, मै तो मोटा आटा ही पीसूगी और मोटा ही खाऊँगी। मैं सोलह दिना मे सोलह वस्त्र—साडी को पहिन कर फाड डालूँगी। तुम्हारा मन हो तो मुझे अपने घर मे रखो अथवा मत रखो।"

(४) फूहड की असावधानता

फूहड स्त्री अत्यन्त असावधान रहती है। कौन-सी वस्तु घर मे कहा रखी है, इसका उसे पता नही रहता। किंबहुना, उसने अपने पुत्र को घर मे कहा सुला दिया है इसका भी पता उसे नही रहता और पुत्र के न मिलने पर गाव-घर मे गोहार लगाती फिरती है।[३] बगल मे सोये हुए लडके को खोजने के लिए वह सारे गाव मे ढिंढोरा पीटती फिरती है।[४]

कभी-कभी गर्मी के दिनो मे गाव मे आग लग जाती है जिससे सारा गाव ही जल जाता है। इस भीषण अग्निकाण्ड को शान्त करने के लिए उसे बुझाने के लिए, गाव के समस्त नर-नारी अपने प्राणो की बाजी लगा देते है। परन्तु फूहड स्त्री को इसका पता ही नही चलता। वह कहती है कि कही कपडा जलने की गध आ रही हे।

उसे अपने शरीर के शृगार करने की इच्छा तो होती है परन्तु उसे इसका ढग ही नही मालूम। उसे प्रसाधन करने का भी ठीक-ठीक ज्ञान नही होता वह सिन्दूर लगाने के स्थान पर अपनी माग मे इट को तोडकर उसका चूरा (चूण) लगाती है।[७] वह कभी-कभी इतनी शीघ्रता मे रहती है कि विवाह के अवसर पर भी वह माँग के स्थान मे अपनी कनपटी मे सिन्दूर लगा लेती है।[८] अवधी मे भी इसी प्रकार की एक लोकोक्ति पायी जाती है। वह इतनी असावधान है कि घर मे कजरौटा के रहते हुए भी कभी काजल नही पारती।[१०]

(५) फूहड स्त्री के द्वारा भोजन बनाना

फूहड स्त्री के काम करने का कोई निश्चित समय नही होता। वह अपने स्वतन्त्र मन के अनुसार काय करती है। वह समय (टाइम) के बन्धनो से परे होती है। कभी तो वह सूर्योदय के पश्चात भी कुम्भकर्णी निद्रा मे सोयी रहती है और कभी रात्रि के पिछले पहर मे उस समय भोजन बनाना प्रारम्भ कर देती है जब कि सारा गाँव गहरी नीद मे सोया रहता है।[११] इसी प्रकार रात मे जब सब लोग सोने चलते है तब वह रोटी पोने चलती है।[१२]

इसके भोजन बनाने का तरीका इतना गलत होता है, इसकी पाक-प्रक्रिया इतनी अव्यवस्थित रहती है कि भगवान ही उसको पार लगावे।[१३]

---

१ मार मार हिकनी। म जितनी क तितनी।
२ अर्रा पीसबि, दर्रा खाब।
सुन स्वामी सुन सासु रे॥
सोरह दिन माँ सोरह चीरबि
मन चाहे तो राखु रे॥
३ कथरी माँ लरिका, गाँव माँ गोहार।
४ बगल माँ छोरा, गाँव माँ ढिंढोरा॥
५ सगरे गाँव जलिगा।
फूहरि कहेन कहूँ लत्ता गधान॥
६ सहूर हइये नाँ, हुसुन इतना बडा।
७ फूहरी करे सिगार, माँग ईंटा से फोरे।
८ हडबडी मे बिआह, कनपटी मे सेनुर॥
९ लबलबी का विवाह, कनपटी माँ सेनुर।
१० काजर हइये नाँ, कजरौटा नौ ठे।
११ सगरे गाँव सोवे, फूहरी तब रोटिया पोवै।
१२ दुनिया चली सोने, फूहरी चली पोवै॥
१३ फूहरी करे बइठी रोसइया।
पार लगावे, गोसँइयाँ॥

फूहड़ स्त्री जब भात बनाने लगती है तब उसकी प्रक्रिया का सम्यक् ज्ञान न होने के कारण वह भात को गीला बना देती है। जब वह आटा सानने लगती है तब आटा भी गीला हो जाता है। वह अपने पति को 'दहिजरऊ' (दाढ़ी जार) गाली देती हुई कहती है कि जब वह नीचे आयेगा तब रो-रो कर इसी गीले भात को खायेगा क्योंकि भोजन बनाना मेरे बस का काम नहीं है।[१] सचमुच ही ऐसी फूहड़ स्त्री के प्रति पति का तो भोजन के समय रोना, रात दिन ही रोना आता होगा।

फूहड़ स्त्री के द्वारा बनाया गया 'लपटा' न खाते बनता है और न उसे फेंकते ही बनता है।[२] उस स्त्री के द्वारा बनायी गयी दाल भी, भात और लपटा की ही भाँति अखाद्य होती है। वह दाल बनाते समय बटलाही के ढक्कन का ध्यान ही नहीं रखती। इसलिए उसमें मक्खियाँ और फूहरी के सिर के बाल गिरते रहते हैं। इस प्रकार इस स्त्री के द्वारा, बिना मन से बनाया गया भोजन, नितान्त अस्वादु तथा अखाद्य होता है।

(६) फूहड़ की भोजन भट्टता

यह स्त्री यद्यपि भोजन बनाने में तो निपुण नहीं होती परन्तु भोजन करने में अत्यन्त दक्ष होती है। वह जल्दी जल्दी रोटी बनाती है और भोजन बनाते समय गप गप खाने लगती है।[४] हाँड़ी में रखे गये शाक को खाने के लिए उसका जी तरसता रहता है।[५] उसने सात सेर की सात रोटियाँ बनायी परन्तु नौ सेर की एक ही लिट्टी बनायी। पति तो सातों रोटियाँ खा गया परन्तु गर्भवती होने के कारण नौ सेर की इसने केवल एक ही लिट्टी खायी।[६]

नारी—कर्कशा के रूप में

कर्कशा स्त्री बड़ी ही कठोर, कटुभाषिणी, भयंकर और भीषण होती है। यह अपने व्यवहार से परिवार के सभी लोगों को कष्ट पहुँचाती है। अतः घर का कोई भी प्राणी इससे प्रसन्न नहीं रहता। 'कर्कश' का शाब्दिक अर्थ ही कठोर, शुष्क तथा कठिन होता है। अतः कर्कशा स्त्री का इन गुणों से युक्त होना स्वाभाविक है। परिवार के अन्य सदस्यों की तो बात दूर रही, ऐसी कर्कशा स्त्री का पति भी उससे डरता है। उसे सदा यह भय बना रहता है कि क्रोध में आकर वह मेरे ऊपर ही आक्रमण न कर दे। अतः ऐसी भयंकर स्त्री से सभी लोग थर थर काँपते रहते हैं।

कर्कशा स्त्री फूहड़ भी होती है। उसे न तो भोजन बनाने का ढंग मालूम होता है और न उसे बनाने की इच्छा रहती है। वैधव्य भारतीय स्त्रियों के लिए अभिशाप माना जाता है। यह उनके जीवन का सबसे बड़ा दुख है। परन्तु यह कर्कशा नित्य सूर्य के सामने बैठकर उनसे प्रार्थना करती है कि कब मैं 'राँड़' (विधवा) हो जाऊँगी।

इससे अधिक दुष्टा स्त्री की कल्पना करना भी कठिन है। सचमुच ही वह पति बड़ा ही अभागा होगा जिसे ऐसी कर्कशा स्त्री को पत्नी के रूप में पाने का सौभाग्य प्राप्त हो।

कर्कशा स्त्री की विशेषताएँ

(१) कटुभाषिणी—कर्कशा स्त्री में अनेक विशेषताएँ पायी जाती हैं जिनमें कटुभाषण सबसे प्रधान है। आदर्श पत्नी का लक्षण बतलाते हुए संस्कृत के किसी कवि ने उसे "प्रिया च भार्या, प्रियवादिनी च" बतलाया है। आशय यह है कि

१ भतवा रीन्हें लिट पिट होय,
रोटिया पोवें गिल पिट होय।
अइहैं वहिजरू खइहें रोय,
हमरे बूते यहौ न होय॥

२. फुहरी क लपटा।
न खात माँ न फेंके माँ॥

३ फूहरी राँधेन दाल, आधा माछी आधा बाल।

४ लप लप पोवैं, गप गप खाय।
फूहरी जनम के होय बलाय॥

५ हँड़िया मे साग बा।
मोरा जियरा लाग बा॥

६ सात सेरे का सात पकायो; नौ सेरे के एक।
वा वहिजरवा सातो खायगा, मैं लरिकउरी एक॥

स्त्री सुन्दर तथा मधुर होनी चाहिए तथा इसके साथ ही उसे मृदुभाषिणी होना अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु ककशा स्त्री इसके ठीक विपरीत अत्यन्त कटुभाषिणी होती है। वह जब भी बोलती है तब अपने ककश स्वर से कठोर वचनो को ही बोलती है। उसकी वाणी बाण के समान श्रोताओ के हृदय को विदीण कर देती है।

साहित्य मे स्त्रियो को उनकी मधुर वाणी के कारण "कोकिल बैनी" या 'पिक बैनी" कहा गया है। परन्तु ककशा की बोली की रुक्षता तथा कठोरता को सुनकर उसे 'काक बैनी' अथवा 'खरबैनी' की उपमा दी जाय तो कुछ अत्युक्ति नही होगी।

(२) **कलहप्रियता**—ककशा स्त्री अत्यन्त कलह-प्रिय होती है अर्थात् वह अतिशय झगडालू होती है। परिवार की स्त्रियो के अतिरिक्त पुरुषो से भी झगडा या तकरार करने के लिए वह सदा तैयार रहती है। वह स्वय झगडा आरम्भ करती है तथा सबसे पहले रोने भी लगती है।[१] उसके झगडालू स्वभाव के कारण उसका पति भी उससे सदा डरता रहता है। वह बाहर तो बहादुर बनता है परन्तु अपनी ककशा पत्नी के सामने वह बेचारा "गीदडदास" बन जाता है।[२] कठोर तथा कलहप्रिय अपनी स्त्री के समक्ष उसकी सारी बहादुरी मिट्टी मे मिल जाती है।

ककशा नारी बडी अविनीत तथा कठोर होती है। वह अपने पति को यह आदेश देने मे तनिक भी नही झिझकती कि "भोजन बनाने के लिए पडोसी के घर से आग ले आओ। बाजार से तरकारी खरीद लाओ। मेरे बच्चे को खेलाओ और उसे बाग मे ले जाकर घुमाओ।"[३] वह हाथ मे छडी लेकर सदा खडी रहती है और पति को मारने की धमकी देती है।[४]

(३) **बातूनी तथा बतकट**

ऐसी ककशा स्त्री के सामने बेचारा निरीह पति भीगी बिल्ली बना रहता है। अपनी स्त्री के कटु, अशिष्ट तथा निलज्ज व्यवहार को देखते हुए भी उसे कभी उसको डॉटने की हिम्मत नही होती। परन्तु यदि कदाचित साहस बटोर कर उसे पीटने का दु साहस भी करता है तब उसके डर के मारे उसके पास तक नही जाता और झूठमूठ घर के दरवाजे को पीटने लगता है।[५]

ककशा स्त्री प्राय 'बतकट' हुआ करती है अर्थात् दो व्यक्तियो के आपस मे बाते करते समय, यह उनकी बातो को बीच मे ही काट देती है। लोक कवि घाघ ने 'बतकट जोय' की बडी निन्दा की है और उसे अत्यन्त दु खदायिनी कहा है।[६] अत ऐसी स्त्री को घाघ के आदेशानुसार गहरे पानी मे डुबो देना चाहिए।[७]

ककशा स्त्री बातूनी भी बहुत होती है। वह बिना सिर-पैर के, व्यथ मे ही, घटो तक बाते करती रहती है। बात करने मे वह सबसे आगे ही पायी जाती है।[८] एक लोकोक्ति मे ऐसी स्त्री को 'मुँहजोर भार्या' कहा गया है तथा इसकी निन्दा की

---

१ **लडे बराबर, रोवे दूनी।**

२ **बाहर बाबू सूरमा, घर मे गीदडदास।**

३ **आगि लावो, सागलावो, लरिका खेलाय लावो, बाग मे घुमाय लावो।**

४ **छडी लीन्हे खडी रहे।**
मरद के ऊपर चढ़ी रहे।।
लेखक का निजी सग्रह

५. **मेर गइले मेहरी, ठेंठावे लगले डेहरी।**

६ **नसकट खटिया, 'बतकट जोय।'**
जो पहिलवठी बिटिया होय।।
पातर कृषी, बौरहा भाय।
घाघ कहै दु ख कहा समाय।।

७ **नारि करकसा, कटहा चोर (घोर)।**
हाकिम हुइकै, खाय अँकोर।
कपटी मित्र, पुत्र होय चोर।
घग्घा इनके गहिरे बोर।।

८. **तू डार डार, मैं पात पात।**

गई है। जिस पुरुष को ऐसी गृहिणी "सौभाग्य" से प्राप्त हो जाय उसका शरीर बिना लकड़ी और आग के ही दिन-रात जला करता है।[1]

(४) सतत कष्टदायिनी

कर्कशा स्त्री परिवार के सदस्यों के लिए सतत कष्टदायिनी होती है। किम्बहुना, वह अपने पति के लिए भी सिर दर्द बनी रहती है। झगड़ालू होने के कारण वह स्वयं आग लगाकर दूर हट जाती है।[2] ऐसी स्त्री पति के लिए जीवित मृत है। घाघ ने लिखा है कि ऐसी स्त्री के बराबर संसार में कोई दूसरी विपत्ति नहीं है।[3]

(५) कर्कशा की सामूहिक विशेषता

भोजपुरी के एक लोक-गीत में कर्कशा स्त्री के गुणों अथवा अवगुणों का एक साथ ही बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया गया है। इस सम्पूर्ण गीत को उद्धृत करने का लोभ मैं संवरण नहीं कर सकता। इस पर कुछ टीका टिप्पणी करना व्यर्थ है।[4]

गीत

धनि धनि रे पुरुष तोर भागि, करकसा नारि मिली।
सात घरी दिन रोय के जागी, लिहिन बढ़निया उठाय॥
निहुरे निहुरे अँगना बटोरे, घर भर को गरिआय।
करकसा नारि मिली।

बखरी पर से कौवा रोवे, पहुना अइले तीन।
आव पाहुन घर माँ बइठ, कडा लाऊ बीन॥
करकसा नारि मिली॥२॥

हँडिया भरि के अदहन बिहली,
चाउर मेरवली तीन।
कठवति भरि के माँड़ पसवली,
पिअ हिलोर हिलोर॥
करकसा नारि मिली॥३॥

सात सेर के सात पकवली,
नव सेर का एक।
तू दहिजरऊ सातो खइल,
हम कुलवन्ती एक॥
करकसा नारि मिली॥४॥

डेहरी बइठे तेल लगावे,
सेंदुर भरावे माँगि।
आँचर पसारि के सुरुज मनावे,
कब होइबों मैं राँडि॥
करकसा नारि मिली॥५॥

---

१ कृषी विपक्षा, मुहजोर भार्या।
बधू विरोधी, बिना बुद्धि राजा॥
दुहिता दरिद्री, पुत्र कुमार्गी।
बिना अग्नि-काष्ठ दहते शरीरम॥

२ आगि लगाई, करकसा दूर खड़ी।

३ दुष्ट भार्या, मित्र सठ, उत्तरदायक भृत्य।
सर्पवास जेहि घर मा, मरल सो जीवित मृत्यु॥

४ डा० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोक-गीत भाग १ पृ० ७०-७१ (भूमिका)

ककशा के समान दुष्ट, कटुभाषिणी तथा दुव्यवहार करने वाली कोई अन्य स्त्री नही हो सकती। किम्बहुना यह अपने पति से भी अशिष्ट आचरण करती है। उसे देखकर प्रेम करन के विपरीत वह खाव-खाव कर उसे काटन क लिए दौड़ता है। ऐसी ककशा स्त्री का व्यवहार कितना कठोर तथा भयकर हाता है उसका वणन हिन्दी के किसी कवि न बडा ही सुन्दर किया है जिसे पढकर इनके वास्तविक स्वरूप का परिचय मिलता है। वास्तव मे ऐसी स्त्रिया कसाई के समान कठोर और राक्षसी के समान भयकर हाती है। वास्तव मे जिस पुरुष का भाग्य फूट जाता है और जो अत्यन्त अभागा और कमहीन (हतभाग्य) होता है उसे ही ऐसी स्त्री (मेहरारू) स पाला पडता है।[१]

नारी—वेश्या के रूप मे

भोजपुरी समाज मे वेश्याएँ अब हेय दष्टि से देखी जाती है। परन्तु कभी एक जमाना था जब य समाज म आदर का पात्र समझी जाती थी। कोई भी भोजपुरी उत्सव इनके अभाव मे सूना मालूम होता था। वेश्या के नाच-गान के बिना किसी भोजपुरी विवाह के सकुशल सम्पन्न होने की कल्पना भी नही की जा सकती थी। बारात मे वर और समधी क पश्चात् यदि किसी का आदर या सन्मान किया जाता था तो वेश्या का ही।

भोजपुरी मे वेश्या को 'रडी' कहते है। इन्हे 'पतुरिया' भी कहा जाता है। कुछ लोग इन्ह 'तवाइफ' नाम से भी अभिहित करते है। सस्कृत मे ये वार-वनिता के नाम से प्रसिद्ध हे। इनकी जीविका रूप अर्थात सौन्दय के बल पर चलती है। अत ये 'रूपाजीवा' की सज्ञा से भी विख्यात है। इन्ह 'नगर-वधू' की भी सज्ञा प्राप्त है। वैशाली की नगर-वधू आम्रपाली को कौन नही जानता, जिसे भगवान बुद्ध ने उपदेश दिया था। इस प्रकार विभिन्न नामो से प्रसिद्ध ये वेश्याएँ समाज का एक विशिष्ट अग मानी जाती है। एक जमाना था जब ये सभ्यता तथा तहजीब की सरक्षिका समझी जाती थी तथा नवाबो एव धनी घरो के नवयुवक इनसे 'तहजीब' सीखने के लिए इनके 'कोठो' पर जाया करते थे।

वेश्याओ की विशेषताएँ

(१) रूपाजीवा के रूप मे

जैसा कि पहिले लिखा गया है वेश्याओ को सस्कृत मे 'रूपाजीवा' कहा जाता है। इस शब्द से इनके स्वरूप तथा पेशा पर प्रचुर प्रकाश पडता है। वेश्याएँ अपनी श्रृगारप्रियता और बाहरी रूप विन्यास तथा चटक-मटक से मनुष्यो—विशेषकर युवको—का अपनी ओर आकृष्ट करती है। इनके लिए शरीर से सुन्दर तथा देह से स्वच्छ तथा आकषक होना अनिवाय है। अन्यथा इनका पेशा ही नही चल सकता। इसीलिए घाघ ने स्पष्ट ही लिखा है कि मौन रहने वाला अर्थात शास्त्राथ मे चुप बैठने वाला पण्डित तथा मलिन अर्थात् गदी रहने वाली वेश्या इन दोनो का ही नाश निश्चित है।[२] यदि वेश्या की आखे सुन्दर और आकषक न हो तथा गदगी से भरी हो तो वह नष्ट हो जाती है।[३] गन्दी रहने वाली वेश्या कभी युवको का आकृष्ट नही कर सकती।[४]

(२) धन के प्रति लोभ

वेश्या को किसी पुरुष से वास्तविक प्रेम नही होता। वह कामुक पुरुषो से धन ऐंठने के लिए कृत्रिम प्रेम का ढोग करती है। वह वास्तव मे प्रेम नही करती बल्कि प्रेम का आडम्बर दिखलाती है। जिस व्यक्ति के गाँठ मे पैदा होता है उसी का

---

१ 'खसम को देखे खाँव, खाँव कर धावती॥
ऐसी 'करकशा' ये कसाइन कुलच्छनी है,
करम के फूटै घर ऐसी नारि आवती॥"

२ पण्डित चुप चुप, बेसवा मईल।
घाघ कहे दूनो घर गईल॥

३ अँखिया लीबर बेसवा नासै।
घग्घा पैर बेवाई॥

४ पदनी पतुरिया, खोखना चोर।
चटनी पुरखिन, करै अँजोर॥

वह स्वागत करती है। उसके धन के आधार पर ही वह किसी से सहवास करती है।[1] परन्तु जिसके पास मे धन नही होता उससे वह बात तक नही करती। वह उसका नितान्त परित्याग कर देती है।[2] धनहीन, कामुक मनुष्य इसलिए वेश्या को देख कर रोने लगता है।[3]

(३) वेश्या का चारित्रिक पतन

अनेक पुरुषो से प्रतिदिन अनैतिक सम्पर्क रखने के कारण वेश्या का चारित्रिक पतन अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा होता है। परपुरुषो से धन खसोट कर वह अपने शरीर का विक्रय करती है।[4] यही उसकी प्रसन्नता का फल है। वह प्रतिदिन अनैतिक शरीर-व्यापार करते हुए अपना धर्म तथा सतीत्व नष्ट कर देती है। इसीलिए एक लोकोक्ति मे कहा गया है कि बनिया मित्र नही हो सकता और न वेश्या कभी सती या पवित्र चरित्रवाली हो सकती है। अत जो व्यक्ति वेश्या को सती कहता है और बनिया को मित्र मानता है वह निःसन्देह झूठा है।[5] वेश्या कभी सती हो ही नही सकती क्योकि वह अपने सतीत्व को बेचकर ही अपना पेशा कमाती है। इसलिए उसके पतिव्रता होने का कोई प्रश्न ही नही उठता। एक कहावत है कि "घोडा घास से प्रेम करे तो खाये क्या।" इसी प्रकार से यदि वेश्या अपने सतीत्व से प्रेम करने लगे तो उसका 'पेशा' कैसे चल सकता है।

(४) अविश्वास की खान

वेश्या की बातो पर कभी विश्वास नही किया जा सकता। चूकि उसका सभी क्रिया-कलाप धन के लोभ से प्रेरित होकर सचालित होता है अत चाँदी के कुछ टुकडो के लालच म वह झूठ-सच बातो का अम्बार लगा सकती है। वह असत्य का वह विशाल प्रासाद खडा कर सकती है जो देखने मे महान् दृष्टिगोचर होता है। परन्तु सत्य की निकष पर कसने पर वह क्षणभर मे भूमिसात् हो जाता है। इसीलिए नीतिकारो ने वेश्या की बातो पर कदापि विश्वास न करने के लिए डिण्डिम स्वर से घोषणा की है।

(५) शुद्ध तथा सात्विक प्रेम का अभाव

वेश्या के जीवन मे स्वाभाविक प्रेम का नितान्त अभाव पाया जाता है। वे धनवान् व्यक्ति से प्रेम करने का जो ढोग रचती है वह केवल आडम्बर मात्र है। वास्तविकता का उसमे तनिक लेश भी नही होता। अत जो कामुक तथा नवयुवक वेश्या के प्रेम पर विश्वास करते है उनके समान कोई दूसरा मूर्ख नही हो सकता। हमारे नीति ग्रन्थो मे तथा लोक-साहित्य मे ऐसी अनेक उक्तियाँ उपलब्ध होती है जिनमे वेश्याओ मे प्रेम के अभाव का वर्णन पाया जाता है। अत चतुर मनुष्यो को इनसे सावधान रहना चाहिए।

नारी—कन्या के रूप में

भोजपुरी समाज की तरह अवधी समाज म भी कन्या का जन्म अवाछित तथा अनभिलषित माना जाता है। परिवार मे वह धन-हानि, चिन्ता तथा अपमान का कारण समझी जाती है। घाघ और भड्डरी का कथन है कि रवि, गुरु और मगल का एक ही रेखा होने पर कृत्तिका, भरणी और आश्लेषा नक्षत्रों मे, द्वितीया, सप्तमी और अष्टमी तिथियो मे पुत्री का जन्म अत्यन्त अमगलकारी होता है। ऐसी स्थिति मे या तो उसकी मृत्यु हो जाती है अथवा वह अपनी माता की मृत्यु का कारण होती है।

---

१. जइसा साजन पाय, तइसी सेज डसाय।

२ धनहीन मनुष्य तजे गणिका।

३. गाँठी मे पइसे ना, पतुरिया के देखिके रोवाई छूटे।

४ वेश्या प्रसन्न स्वशरीरदानम्।

५ वनिता मित्र न; बेसवा सती।
कागा हस न; गदहा जती।।

६ बेसवा के सती कहै; औ महुआ के मीठा।
बनिया के मित्र कहै; उहै सार झूठा।।

पराये घर अथवा ससुराल मे जाकर वह धन तथा सम्पत्ति को नष्ट कर देती है। जो चमारिन स्त्री वच्ची का नाल काटने आती है उसके ज्येष्ठ पुत्र की मृत्यु हो जाती है। सूतिका-गृह का काय समाप्त हो जाने पर उसकी सेवा करने वाली नाईन (नाई की स्त्री) की जीविका नष्ट हो जाती है। विवाह के बाद वह शीघ्र ही विधवा हो जाती है।[१]

यदि किसी नवविवाहिता वधू की प्रथम सन्तान कन्या हो तो इससे कुसमय की सूचना मिलती है। घाघ ने कन्या के रूप मे पहिली सन्तान का उत्पन्न होना अत्यन्त कष्टदायक माना है और कहा है कि ऐसा दुख असहनीय है।[३] इसीलिए एक भी कन्या की उत्पत्ति अवाछनीय मानी जाती है।[४]

पुत्री जब युवती होने लगती है तब उसके विवाह की चिन्ता उसके पिता को सताने लगती है। इस चिन्ता के कारण उसको नीद नही आती ओर वह उसी प्रकार रात को जागता रहता है जिस प्रकार वह व्यक्ति जिसके घर मे साप का निवास होता है।[५] इस प्रकार इस लोकोक्ति मे किसी कन्या की उपमा साप से दी गई है। एक अवधी लोक-गीत मे कहा गया है कि जिसके घर मे कुँवारी कन्या पडी हुई है उसके पिता को भला नीद कैसे लग सकती है। सारी रात उसकी आखो से अश्रुओ की धारा प्रवाहित होती रहती है।[६]

पिता पुत्री की विवाह के लिए वर की खोज मे देश-विदेश मे घूमता है परन्तु कही भी उपयुक्त तथा योग्य वर उसको नही मिलता। अत वह दुखी होकर कहता है कि अब मेरी बेटी कुँवारी ही रह जायेगी।[७]

कन्या धन-हानि का प्रधान कारण मानी जाती है। अवधी की एक लोकोक्ति मे कहा गया है कि बकरी के द्वारा चरा हुआ वन और कन्या को दिया गया दान-दहेज से उजडा हुआ घर—दोनो ही पुन सुसम्पन्न नही हो सकते।[८] एक काश्मीरी लोकोक्ति मे भी इसी तथ्य का प्रतिपादन किया गया है।[९]

---

१ आप मरै कै माते खाय। धन छीजै जो पर घर जाय।
जौन चमाइन नरकटिया करै, जेठ पूत वाहू के मरै।
जौने नाउन सौर कमाय, वरिस बिना रोजी ते जाय।
ब्रह्मा, विष्णु उतरि जो आवैं, भाँवरि देत विधवा हुई जावे॥
देखिए—घाघ और भड्डरी की कहावतें। पृ० ७५, (वाणी वितान प्रकाशन, वाराणसी)

२ भैंस जो जनमे पडवा, बहू जो जनमे धीय।
समय कुलच्छन जानिये, कातिक बरसे मेह॥

३ नसकट खटिया, बतकट जोय।
जो पहिलउठी बिटिया होय॥
पातर कृषी बौरहा भाय।
घाघ कहै दुख कहाँ समाय॥

४ चलना भला न कोसका, दुहिता भली न एक।
माँगन भला न बाप तें, जो प्रभु राखे टेक॥

५ कि जागे बिटिया के बाप, कि जागे जेहिके घर साँप।

६ नीर चुवइ बाबा नीर चुवत है,
नीर चुवइ आधी राति।
वहिके पिता कइ नींद कइसे लागइ।
जेहि घर कन्या कुँवारि॥
डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—अवधी लोकगीत पृ० ३७।

७ पुरुब हेरेउँ, पछुआ मे हेरेउँ,
हेरेउँ दिल्ली, गुजरात।
तुमहि जोग वर कतहूँ न पावा,
अब बेटी रहउँ कुँवारि॥
श्रीमती विद्यापति कोकिल—सोहाग गीत पृ० ५३।

८ बकरा का चरा बन, औ बिटिया का चरा घर, फिर नाहीं पनपत।

९ मोहन कृष्ण दर—काश्मीर का लोक-साहित्य, पृ० २४४।

विवाह की कठिनता, दान-दहेज की भयंकर प्रथा और पुत्री के जन्म के प्रति घृणा तथा उदासीनता, इन सब कारणों से पुत्री का पिता तथा परिवार के अन्य सदस्य उसकी मृत्यु का प्रसन्न हृदय से स्वागत करते हैं। एक भोजपुरी लोकोक्ति में कहा गया है कि जिस व्यक्ति का दामाद मर जाता है वह अभागा है। परन्तु जिस व्यक्ति की पुत्री की मृत्यु हो जाती है वह अत्यन्त भाग्यशाली है।[1] लोक-कवि घाघ ने तो यहाँ तक कहा है कि यदि बिना ब्याही हुई (अविवाहिता) पुत्री मर जाय, और खेत में खड़ी ईख बिक जाय, तथा बिना युद्ध किए ही शत्रु का नाश हो जाय तो इससे अत्यन्त प्रसन्नता होती है। इतना अधिक सुख कहाँ समा सकता है।[2] एक दूसरी लोकोक्ति में यह कहा गया है बिटिया के मरने से तो क्षणिक दुःख होता है परन्तु उसके जीते रहने पर आजीवन दुःख सहना पड़ता है।[3]

कन्या और गाय दोनों को एक ही कोटि में रखा गया है। दोनों ही आजीवन पराश्रित रहकर कष्ट सहती हैं। अनेक दुःखों को झेलना पड़ता है।[4] गाय के समान कन्या को जिधर हाँक दिया जाय अर्थात् जहाँ भी उनका विवाह कर दिया जाय वहाँ वे बेचारी चली जाती है।[5] जब वर का पिता दहेज में हाथी, घोड़ा और पचास सोने के मोहरों की माँग करता है तब पुत्री का पिता अपनी गरीबी के कारण विवश होकर उसका विवाह किसी निर्धन व्यक्ति से कर देता है क्योंकि वह उतना अधिक दहेज देने में अपनी नितान्त असमर्थता प्रकट करता है।[6]

लोक-कवि घाघ का विचार है कि बेटी का विवाह करते समय वर का घर, उसकी आर्थिक परिस्थिति, सामाजिक प्रतिष्ठा आदि बातों पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर लेना अत्यन्त आवश्यक है। जो मनुष्य ऐसा नहीं करता वह कन्या के विवाह के पश्चात् छाती पीट कर रोता है।[7] अतः वर के साथ ही उसकी आर्थिक दशा पर ध्यान देना चाहिए।[8]

एक अवधी लोकोक्ति के अनुसार किसी कन्या में निम्नांकित चार गुणों का होना अत्यन्त आवश्यक माना जाता है।

(१) कन्या आलसी तथा सुस्त नहीं होनी चाहिए।

(२) उसे घरेलू काम-काज में निपुण तथा चुस्त होना चाहिए।

(३) कन्या में लज्जा की भावना घाघ के अनुसार आलसी तथा सुस्त स्वभाव वाली कन्या दुःख देने वाली होती है।[9]

---

१ दामाद मरे अभागा। बेटी मरे सोहागा।।
(लेखक का निजी संग्रह)

२. अन ब्याही बिटिया मरै; ठाढ़ी ऊख बिकाय।
बिन मारे बैरी मरै; ई सुख कहाँ समाय।।

३ बिटिया मरे घरी दुःख,
बिटिया जिये पर जनम भर दुःख।

४ सुता, गऊ दोऊ दीन हैं,
हरदम सहैं कलेस।

५ बिटिया के कउन, बिचारी के जहँ हाँकि देव, तहँ चली जाय।

६ "जे वर माँगै बेटी, घोड़ा औ हाथी,
माँगै मोहर पचास।
बे वर माँगै बेटी नौलख दायज,
मोरे बूते देइ न जाय।।"

७ परहथ बनिज, सँदेसे खेती,
बिन घर देखे, ब्याहे बेटी।
द्वार पराये गाड़े थाती,
ये चारिउ मिलि पीटैं छाती।।

८ घर देखु, वर देखु, दिआ के तर देखु।

९ ढीठ पतोहू, धिया गरियार,
खसम बेपीर न करै विचार।
घरे जलावन, अन्न होय,
घाघ कहै सो अभागी होय।।"
(त्रिपाठी—घाघ और भड्डरी)

अवश्य होनी चाहिए क्योकि निलज्ज कन्या अपने पिता आर माता को कलकित कर देती है।[1]

(४) कन्या के लिए सती-साध्वी होना अत्यन्त आवश्यक है। उसे दुराचरण से दूर रहना चाहिए। विवाहित हो जाने पर उसे पराये घर बार बार नही जाना चाहिए क्योकि इससे उसकी प्रतिष्ठा कम हो जाती है।

टिप्पणियाँ

इस ग्रन्थ मे आये हुए कठिन तथा पारिभाषिक शब्दो, प्रथाओ और परम्पराओ की व्याख्या।

१ **कुल्टुरा**—यह जमन भाषा का शब्द है जिसका अथ कल्चर अर्थात् सस्कृति होता है। यह लैटिन भाषा के 'कोलर' शब्द से निष्पन्न हुआ है।

२ **शिष्ट सस्कृति तथा लोक-सस्कृति मे प्रधान भेद यह है कि**—शिष्ट सस्कृति का स्रोत शास्त्र है परन्तु लोक-सस्कृति का उत्स लोक अर्थात् सामान्य जनता है।

३ **सरयूपारीण**—ब्राह्मणो की विभिन्न जातियो का नामकरण किसी नदी अथवा नगर या देश मे निवास करने के कारण हुआ है। कुछ नाम गोत्र सम्बन्धी भी है।

(क) सरयूपारीण—सरयू अर्थात् घाघरा नदी के किनारे निवास करने वाले ब्राह्मण।

(ख) सारस्वत—पजाब की सरस्वती (अब लुप्त) नदी के तट के निवासी।

(ग) कान्यकुब्ज—कन्नौज के निवासी।

(घ) गौड—गौड (बगाल) देश के निवासी

(ङ) सनाढ्य—यह नामकरण गोत्र के ऊपर आश्रित है।

(च) गौतम—
(छ) शाण्डिल्य—
(ज) गर्ग—
} ये तीनो ही नाम ऋषियो के गोत्र के अनुसार रखे गये है।

५ **पक्ति पावन ब्राह्मण**—इनका इतिहास बहुत प्राचीन है। काणे ने अपनी "धर्मशास्त्र का इतिहास" मे इनका विशेष वणन किया है। मिथिला मे 'श्रोत्रिय' ब्राह्मण तथा बगाल मे 'कुलीन' ब्राह्मण श्रेष्ठ माने जाते है। भोजपुरी प्रदेश मे इन ब्राह्मणो की भी गणना उसी कोटि मे की जाती है।

६ **तियाग**—श्राद्ध के अवसर पर एक कटोरी मे थोडा दूध रख दिया जाता है जिसे महाब्राह्मण के लिए पीना अत्यन्त आवश्यक माना जाता है। बिना इस दूध को पिये श्राद्ध कम पूण नही माना जाता। अतएव इसे पीने के लिए महाब्राह्मण मनमानी दक्षिणा माँगता है।

७ **करन्न**—यह ब्राह्मणो की ही उपजाति है जो इनके कर्मों के कारण निकृष्ट मानी जाती है। इस शब्द की उत्पत्ति सभवत 'कदन्न' शब्द से है क्योकि ये ब्राह्मण श्राद्ध मे अनाहूत आकर कोई भी अन्न खाने के लिए तैयार रहते हैं।

९ **दँवरी**—खलिहान मे रखे गये गेहूँ या चने के सूखे पौधो (डण्ठल) को बैलो के द्वारा उन्हे छोटे-छोटे टुकडो मे करवाना। इस काय मे आठ या दस बैलो को एक साथ जोत कर सूखे पौधो के ऊपर उन्हे चलाया जाता है। उनके पैरो से यह डण्ठल अनेक टुकडो मे खण्डित हो जाता है। इसी को दँवरी कहते हैं।

१२ **चमार**—गावो मे यह जाति अत्यन्त प्रसिद्ध तथा उपयोगी है। ब्रिग्स नामक विद्वान् ने 'दि चमास' नामक अपने ग्रन्थ मे इनका बडा ही विस्तृत तथा वैज्ञानिक वणन प्रस्तुत किया है।

---

१ **सासन का गरम, बनियाँ के नरम और लडकी के सरम।**

२ **हुकुमी पूत, धिया सतवार, बडे भागु से दे करतार॥**

३ **नासै बहू जो खिल खिल हँसै।**
नासै "सुवासिन" जो घर घर फिरै॥

(लेखक का निजी सग्रह।)

१९ **पँसगी**—जिस घर मे स्त्री बच्चा पैदा करती है उसे 'सूतिका' गृह' कहते है। उसी सूतिकागृह के द्वार पर कच्ची मिट्टी के बने पात्र मे—जिसे 'पवडी' कहा जाता है—आग सदा जलती रहती है जिसमे धूप, गुग्गुल आदि जलाया जाता है। जिससे बुरी आत्मायें (evil spirits) उस गृह के भीतर प्रवेश न कर सकें। इसी पात्र का 'पाँसगि' या 'पसगी' कहा जाता है।

१९ **ओछवानी**—यह किसमिस, काजू आदि सूखे फलो तथा अन्य पौष्टिक (जडी बूटी) पदार्थों को मिलाकर बनाया गया वह खाद्य पदार्थ (हलुआ) है जो सद्य प्रसूता स्त्री के शक्ति-वर्धन के लिए उसे खिलाया जाता है।

१९ **खुरखुडी**—भुट्टे की 'बालि' जिसमे से उसके दाने निकाल लिये गये है। यह निर्धन मनुष्यो के घरो मे इन्धन के रूप मे प्रयुक्त होती है।

१९ **छठी तथा बरही**—पुत्र जन्म के छ दिनो के बाद किया गया सस्कार छठी और १२ दिनो के बाद का सस्कार कम 'बरही' कहा जाता है। इस दिन पुत्र का नामकरण भी पुरोहित के द्वारा किया जाता है। परन्तु पुत्री के जन्म लेने पर ये सस्कार नही किये जाते।

२१ **उसिना**—चावल दो प्रकार का होता है—(१) उसिना तथा (२) अरवा। उसिना चावल, धान को पानी मे भिगाकर तथा आग मे उसे थोडा भून कर तैयार किया जाता है। इसीलिए इसे 'भुजिया' चावल भी कहा जाता है। पुराणपन्थी पण्डित लोग इस चावल को अपवित्र मानते है। अत इसे नही खाते। परन्तु भोजपुरी प्रदेश मे विशेषकर गाँवो मे सर्वसाधारण जनता इसी उसिना चावल को खाती है।

२१ **जीवित्पुत्रिका**—यह स्त्रियो का एक व्रत है जो एक विशेष मास मे किया जाता है। इसमे स्त्रियो के लिए अन्न के साथ ही जल ग्रहण करना भी निषिद्ध है। इसीलिए इसे "खरजीउतिया" कहा जाता है। पुत्र की मगलकामना के लिए यह व्रत प्राय सभी पुत्रवती स्त्रियो के द्वारा किया जाता है। देखिए—'व्रत-चन्द्रिका'।

२२ **आह्निक सूत्रावली**—यह एक धार्मिक ग्रन्थ है जिसमे दिन भर मे मनुष्यो के द्वारा किये जाने वाले उचित कार्यों का विधान पाया जाता है।

२२ **मुगरी**—काठ के एक ही टुकडे से बनी हुई प्राय एक हाथ लम्बी तथा मोटी वस्तु को 'मुँगरी' कहा जाता है। यह धान अथवा तेलहन आदि अन्य किसी सूखे अन्न को पीटने के काम मे लाई जाती है। यह कृषक का अनन्य साधन है।

२४ **सूर्यषष्ठी व्रत**—इसे छठी माता का व्रत भी कहा जाता है। यह व्रत प्राय पुत्रहीन स्त्रियो के द्वारा पुत्र प्राप्ति की कामना से कार्तिक शुक्ल षष्ठी के दिन किया जाता है। इस दिन स्त्रियाँ सूर्य की पक्वान्न (ठकुआ तथा अक्षरवटा) तथा फल से पूजा करती है। वे सप्तमी के प्रातःकाल सूर्योदय से पहिले किसी नदी या तालाब के जल मे खडी होकर सूर्योदय की प्रतीक्षा करती है तथा उनसे शीघ्र उदय लेने के लिए लोक-गीत गाकर प्रार्थना करती है। बिहार राज्य मे यह व्रत बडे ही उत्साह तथा वैभव के साथ मनाया जाता है।

२६ **सोहर**—पुत्र जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीत। पुत्री के जन्म पर ये गीत नही गाये जाते।

२७ **निरवाही के गीत**—खेत मे अन्न बोने पर कुछ दिनो के बाद उसमे घास-पात जम जाती है। इसी अवांछित घास को निकालने को 'निरवाही' कहते है। इस काम को 'सोहनी' भी कहा जाता है। अत इस अवसर पर जो गीत गाये जाते है उन्हे निरवाही या सोहनी के गीत कहा जाता है।

२७. **कुसुम देवी**—यह एक प्रसिद्ध लोक-गाथा है जिसमे कुसुमा देवी नामक किसी पतिव्रता स्त्री का मुगलो से पिण्ड छुडाकर अपने पातिव्रत धर्म की रक्षा का वर्णन किया गया है। (देखिए—रामनरेश त्रिपाठी—कविता कौमुदी भाग-५, ग्रामगीत)

२९ **बबुर**—एक कँटीला पेड जो प्राय खेतो मे अनायास ही पैदा हो जाता है। ऊँट इसकी पत्तियो को बडे शौक से खाता है। इस दोहे मे 'बबुर' के स्थान पर 'करील' पाठ भी पाया जाता है। यह काँटो से युक्त पत्रहीन वृक्ष व्रजमण्डल मे प्रचुरता से उपलब्ध होता है।

३०. **कोठिला**—गाँवो मे अन्न को सग्रहीत करने के लिए मिट्टी का बना हुआ विशाल भाण्ड जो प्राय छोटे घर के समान बडा तथा चारो ओर से बन्द रहता है।

३१. **लोलार्क कुण्ड**—काशी के भदैनी मुहल्ले मे स्थित एक कुण्ड है जिसमे स्नान करने से पुत्र-प्राप्ति की सभावना होती है।

३६ **परिछावन**—विवाह के लिए जाते हुए वर के, पत्थर के बने लोढे को सिर के चारों ओर घुमाना। इसे परिछावन कहा जाता है। यह कार्य विवाह के पश्चात् वर के घर लौटने के समय भी किया जाता है।

३६ **खोरिस**—विधवा, वन्ध्या अथवा किसी असहाय स्त्री के भरण-पोषण के लिए दी जाने वाली धनराशि।

३७ **सतनहयना**—यह एक अत्यत दुखदायी भोजपुरी प्रथा है जो पति की मृत्यु के सातवे दिन की जाती है। इस दिन उसकी विधवा पत्नी के माँग मे 'खली' मलकर उसके माग के सिन्दूर को धो दिया जाता है। फिर उसे स्नान कराया जाता है। यह बडा ही कष्टप्रद तथा हृदयबिदारक दृश्य होता है।

३८ **विधवा के अधिकार**—सन् १९५६ ई० मे प० जवाहरलाल नेहरू ने जो हिन्दू कोड बिल पास कराया उसके अनुसार विधवा को कुछ आर्थिक अधिकार अवश्य ही प्राप्त हुए है। अब वह अपने पति के धन की अधिकारिणी होने मे समर्थ है। अविवाहित कन्या को अब गोद भी लिया जा सकता है आदि—आदि। परन्तु ये सभी अधिकार कानून की पुस्तको मे ही अधिकाश रूप मे सुरक्षित है।

३८ **दाल मण्डी**—काशी मे चौक के पास एक कुप्रसिद्ध गली जिसमे प्राय वेश्याएँ ही निवास करती है।

३८ **लबर लच्छन**—शीघ्र ही बिना उचित विचार किये हुए, किसी काम को करने वाली मूर्खा स्त्री।

३९ **'साई'**—गाँवो मे किसी बाजे वाले, नाँचने वाले या गवैये को उचित समय पर आकर अपना काय सम्पादन करने के लिए जो अग्रिम धन-राशि (Advance money) दी जाती है उसे 'साई' कहते हैं। किसी वस्तु को क्रय करने के लिए भी यह अग्रिम मूल्य दिया जाता है।

३९ **पटरी खाना**—मेल होना। आपस मे प्रेम व्यवहार का होना।

३९ **पेडे कटहर ओठे तेल**—एक यह लोकोक्ति है जिसका अथ है किसी वस्तु के अभाव मे ही उसकी प्राप्ति की समावना कर तैयारी करने का उपक्रम करना।

४४ घृत, लवण, तैल, तण्डुल—

यह एक श्लोक का अश मात्र है जो गरीबी के दिनो मे पारिवारिक चिन्ता से ग्रस्त पुरुष के लिए कहा जाता है। पूरा श्लोक इस प्रकार है।

"नश्यति बुद्धिमतामपि बुद्धि
नष्टविभवस्य।
घृत-लवण-तल-तण्डुल,-
वस्त्रेन्धनचिन्तया सततम्।।"

५३ भाई और बहिन का पारस्परिक प्रेम—

लोकगीतो मे भाई और बहिन के सहज तथा अकृत्रिम प्रेम के सम्बन्ध मे सैकडो गीत या पद पाये जाते है। इन गीतो मे इन दोनो के पारस्परिक प्रेम का बडा ही स्वाभाविक वणन पाया जाता है। परन्तु यह कुछ कम आश्चर्य की बात नही है कि वैदिक तथा सस्कृत-साहित्य मे भाई तथा बहिन के प्रेम के वणन का सवथा अभाव ही उपलब्ध होता है। हाँ, वैदिक साहित्य मे यम और यमी के प्रेम का वर्णन अवश्य ही पाया जाता है परन्तु इस प्रेम को आदश कोटि मे नही परिगणित किया जा सकता। यह प्राय कुत्सित है। भ्रातृ-द्वितीया आदि अनेक त्योहार भ्रातृ-प्रेम के सवर्धन के सम्बन्ध मे मनाये जाते है परन्तु सस्कृत साहित्य मे इसका वर्णन क्यो नही है इसका कारण कुछ ज्ञात नही होता। सस्कृत के विद्वानो को इस विषय पर शोध करना चाहिए।

७२ **सौतिया डाह**—भोजपुरी समाज मे 'सौतिया डाह' का बीभत्स स्वरूप, देखने को मिलता है। कितनी ही स्त्रिया इस द्वेष या डाह के कारण विष खाकर मर जाती है अथवा कुएँ मे कूदकर अपने प्राणो का परित्याग कर देती है। आपस मे झगडा करने के कारण उनमे वैमनस्य की भावना अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची रहती है। एक गीत मे कोई स्त्री अपनी सौत के प्रति कह रही है कि उसको पटक कर उसकी छाती पर सडक बनाऊँ अथवा कुटवाऊँगी और उस पर प्रसन्न होकर चलूँगी। समवत यह सौतियाडाह की पराकाष्ठा समझनी चाहिए। भोजपुरी प्रदेश मे इस डाह के कारण अनेक अनर्थ प्रतिदिन होते है जिनका वणन लोक-गीतो मे किया गया है।

७४ **दिव्य की प्रथा**—इस प्रथा के शास्त्रीय तथा विशेष वणन के लिए देखिए—(१) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—हिन्दू विवाह की उत्पत्ति तथा विकास। (२) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—सम्मेलन पत्रिका—लोक-सस्कृति विशेषाक।

८७ **बारात का प्रस्थान**—इस शीषक के स्थान पर, बारात की तैयारी' शीषक समझना चाहिए क्योकि यथास्थान बारात के प्रस्थान का विशेष वर्णन दिया गया है।

९२ विवाह संस्कार के अवसर पर किए जाने वाले विविध विधि-विधानों के प्रामाणिक तथा विस्तृत वर्णन के लिए निम्नांकित ग्रन्थ पठनीय है—

डा० कृष्णदेव उपाध्याय—हिन्दू विवाह की उत्पत्ति तथा विकास।

९३ **गवना के गीत**—पुत्री की विदाई के अवसर पर गाये जाने वाले गीत बड़े ही मर्मस्पर्शी हैं। भोजपुरी के अतिरिक्त अवधी, ब्रज तथा पंजाबी आदि भाषाओं में जो विदाई के गीत गाये जाते हैं वे भी बड़े कारुणिक तथा हृदयविदारक हैं। पंजाबी, गुजराती तथा कश्मीरी बिदाई के गीतों के लिए देखिए—डा० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोक-गीत भाग १ पृ० ७६ (द्वि० सं०)।

१०० **मृत्यु संस्कार**—मृत्यु संस्कार में किये जाने वाले विभिन्न विधि-विधानों का वर्णन गृह्य-सूत्रों में पाया जाता है। मृत्यु के पश्चात् पापी मनुष्य की आत्मा किन-किन नरकों में जाती है और उसे कौन-कौन-सी भीषण यंत्रणाएँ दी जाती हैं इसका विस्तृत वर्णन 'गरुड पुराण' में उपलब्ध होता है। 'दाही' व्यक्ति को गरुडपुराण सुनाने की परम्परा भी पायी जाती है। कोई विद्वान् ब्राह्मण १० दिनों तक 'दाही' के समक्ष गरुडपुराण को पढ़कर सुनाता है।

१०१ **पर्दे की प्रथा**—आधुनिक युग में पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव के कारण पर्दे की इस दूषित प्रथा का धीरे-धीरे ह्रास हो रहा है। गावों में भले ही यह आज भी अपनी जीर्ण शीर्ण अवस्था में विद्यमान है। परन्तु नगरों में तो इसका अत्यन्त अभाव पाया जाता है। कुछ वर्षों पूर्व, गावों में गवना के समय, गर्मी की ऋतु में भी पालकी में बन्द, नयी वधू को ससुराल जाते हुए देखा जा सकता था। भीषण गर्मी के कारण कितनी बहुएँ पालकी में ही मूर्च्छित हो जाती थीं। आज भी यही परम्परा प्रचलित है परन्तु उसकी भीषणता कुछ कम हो गयी है। अब गांवों में भी बहू भसुर तथा ससुर के सामने आने लगी है, जो पहिले असंभव था।

१०५ तिलक का बाजार भाव—

आज भीषण मँहगाई के साथ ही विवाह के बाजार में वर का मूल्य भी बहुत ही अधिक बढ़ गया है। चावल, दाल आदि अन्य पदार्थों के साथ ही उसका भाव भी बहुत अधिक बढ़ गया है। इस पुस्तक के पृ० १०६ पर तिलक तथा दहेज के जो आंकड़े दिये गये हैं वे प्रायः १५ वर्ष पुराने हैं। इस बीच में विवाह योग्य वर के बाजार भाव में तिगुनी या चौगुनी वृद्धि हो गई है। अतः इन आंकड़ों में निम्नांकित संशोधन करना आवश्यक हो गया है।

योग्यता	तिलक की धन-राशि
आइ० एफ० एस०	५००,००० (पाँच लाख)
आइ० ए० एस०	४,००,००० (चार लाख)
आइ० पी० एस०	२,००,००० से ३,००,००० (दो से तीन लाख तक)
पी० सी० एस०	१,००,००० (एक लाख)
इंजीनियर	१,५००,०० (डेढ़ लाख)
डाक्टर	१,२५,००० (सवा लाख)
ओवरसियर	५०,००० (पचास हजार)
प्राध्यापक	४०,००० (चालीस हजार)
ग्रेजुएट शिक्षक	३०,००० (तीस हजार)
सामान्य शिक्षक	२०,००० (बीस हजार)
अति सामान्य योग्यता सम्पन्न	१५,००० से २०,००० तक (पन्द्रह से बीस हजार तक)

विवाह के बाजार में सबसे अधिक मूल्य उस व्यक्ति का है जो केन्द्रीय सरकार की केन्द्रीय सेवाओं में कार्यरत हो—जैसे आइ० एफ० एस० या आई० ए० एस०। इसके पश्चात डाक्टर तथा इंजीनियर का नम्बर आता है। इस बाजार में शिक्षक का मूल्य बहुत ही कम है, चाहे वह भले ही किसी कालेज या विश्वविद्यालय का प्राध्यापक ही क्यों न हो। जिस नौकरी में ऊपरी आमदनी, अधिक वेतन तथा शान समधिक है, उसी में कार्यरत व्यक्ति का बाजारू भाव अधिक आंका जाता है।

मैं समझता हूँ कि आजकल कोई भी विवाह—चाहे वह सामान्य वर से ही क्यों न किया जाय—बीस-पचीस हजार

रूपयो से कम मे सम्पन्न नही हो सकता। इसीलिए गरीब परिवार की शिक्षित तथा सुन्दर भी लडकियाँ प्राय अविवाहित रह जाती है।

१०८ **वृद्ध विवाह**—वृद्ध विवाह का बडा ही स्वाभाविक तथा सुन्दर चित्रण भोजपुरी के प्रसिद्ध नाटककार भिखारी ठाकुर ने अपने नाटको मे किया है। अनमेल विवाह का चित्रण भी उनके नाटको मे पाया जाता है।

११० **विधवा विवाह**—धर्मशास्त्रो मे विधवा विवाह का विधान पाया जाता है। अत जो लोग अशास्त्रीय मानकर इस विवाह की निन्दा करते है उन्हे निम्नलिखित पुस्तक ध्यान से पढनी चाहिए—

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—हिन्दू विवाह की उत्पत्ति तथा विकास।

विधवा विवाह न होने से आजकल हिन्दू समाज मे कितना अनाचार तथा व्यभिचार फैलता जा रहा है, यह प्रबुद्ध पाठको से छिपा नही है। अत हिन्दू समाज की बुराइयो को दूर करने के लिए इसका प्रचार अत्यन्त आवश्यक है।

१०७ **बाल विवाह**—आज से लगभग चालीस-पचास वर्ष पहिले भोजपुरी प्रदेश मे, बाल विवाह का प्रचुर प्रचार था। किम्बहुना तीन-चार वर्ष की लडकियो का भी विवाह उनकी अबोध अवस्था मे ही कर दिया जाता था। भारत सरकार ने कानून के द्वारा १८ वर्ष से कम आयु की लडकी तथा २१ वर्ष से कम आयु के लडको का विवाह निषिद्ध कर दिया है। यद्यपि इस कानून का पालन नियमित रूप से नही किया जा रहा है फिर भी बाल विवाहो की सख्या मे बहुत ही कमी आ गयी है। इसके प्रधान तीन कारण है—(१) आर्थिक समस्या, (२) सयुक्त परिवार का क्रमश विघटन, (३) शिक्षा का प्रचार।

आधुनिक काल मे शिक्षा के समधिक प्रचार के कारण, कोई भी व्यक्ति किसी अशिक्षित वर से अपनी कन्या का विवाह करना नही चाहता। जीविका के अभाव मे कोई भी व्यक्ति अपने परिवार के पालन-पोषण मे असमर्थ होता है। इस विचार से अब बहुत से नवयुवक नौकरी के अभाव मे विवाह करने से हिचकते है। सयुक्त परिवार मे न कमाने वाले व्यक्ति का भी गुजारा हो जाता था। परन्तु अब सयुक्त परिवार के विघटन के कारण प्रत्येक व्यक्ति को अपने परिवार का भार स्वय उठाना पडता है। अत बाल विवाह के अभाव का कारण प्रधान रूप से आर्थिक ही है

१२९ **सत्तू**—सत्तू भोजपुरी लोगो का अत्यन्त प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय भोजन है। वेदो मे भी सत्तू का उल्लेख पाया जाता है। ऋग्वेद मे लिखा है कि जिस प्रकार 'चालनि' (चलनी) से चाल कर या छानकर सत्तू को स्वच्छ तथा पवित्र किया जाता है उसी प्रकार विद्वान् मनुष्य वाणी का प्रयोग विचारपूर्वक किया करते हैं।

"सक्तुमिव तितउना पुनन्तो
यत्र धीरा वाचमक्रत।।
अत्रा सखाय सख्यानि जानते।
भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि।।" **(ऋग्वेद १०।७१।२)**

पाणिनि ने (जिनका समय ईसा पूर्व छठी शताब्दी माना जाता है) भी सत्तू शब्द का प्रयोग किया है तथा इसके विभिन्न प्रकार के प्रयोगो पर प्रकाश डाला है। महर्षि पतजलि ने तो अपने महाभाष्य मे "सक्तून पिब देवदत्त" का उल्लेख कर इसके प्रचुर प्रचार की ओर सकेत किया है। पतजलि के काल मे सत्तू का प्रयोग सामान्य जनता के द्वारा प्रचुर रूप मे किया जाता था। अन्यथा वे इसका उल्लेख इतने विस्तार से नही करते।

सत्तू का प्रयोग उस समय इतना अधिक था कि यह दुकानो पर बिका करता था। सामान्यतया व्रीहि (धान) यव और गोधूम (गेहूँ) को भाड मे भून कर तथा चक्की मे पीस कर सत्तू तैयार किया जाता था। चक्की (दृषद्) मे पीसे जाने के कारण यह दृषिद' कहा जाता था। तितउ (चालनि) से चाल कर इसे स्वच्छ करते थे। अधिकतर सत्तू यव (जौ) से ही बनाया जाता था। उस समय सत्तू मे पानी मिलाकर उसे पीने की प्रथा थी। 'सक्तूम् पिब देवदत्त' मे 'पिब' शब्द के प्रयोग से इस प्रथा की ओर सकेत मिलता है। इस प्रकार सत्तू तो पेय था ही परन्तु उसमे दही मिलाकर खाने की भी प्रथा प्रचलित थी। इसके फलस्वरूप उद सत्तू (उदक सक्तू) तथा दहिसक्तू इन दोनो ही शब्दो का प्रयोग महाभाष्य मे पाया जाता है।

वैदिक काल मे भी सक्तू खाने की परम्परा प्रचलित थी। दूध के साथ खाया जाने वाला सत्तू 'मन्थ' कहा जाता था। सत्तू खाने के तीन प्रकार व्यवहार मे लाये जाते थे —[1]

---

१ (क) प० बलदेव उपाध्याय—भारतीय साहित्य का अनुशीलन, पृ० ४९०।
(ख) लाट्यायन सूत्र भाष्य १।२।७-८।

(१) मधुमन्थ—मधु मे सानकर खाया जानेवाला सत्तू।
(२) दधिमन्थ—दही मिलाकर खाना।
(३) उदक मन्थ—पानी मिलाकर खाना।

आजकल भोजपुरी प्रदेश मे प्रधानतया सत्तू मे पानी मिलाकर खाने की प्रथा विद्यमान है जिसे लिवरी कहते है। कुछ लोग सत्तू की पिण्डी बनाकर भी उसे खाते है। गर्मी के दिनो मे उसमे दही भी मिलायी जाती है।

१७७ धोती—यह भोजपुरी प्रदेश के लोगो का अत्यन्त लोकप्रिय तथा प्रचलित अधोवस्त्र है। किसान, मजदूर तथा कामकाजी व्यक्ति इसी को पहिना करते है। पण्डित लोग, तथा प्राचीन सभ्यता के अभिमानी इसे बड़े ही आदर के साथ धारण करते है। कभी जमाना था जब धोती अत्यन्त सस्ते दामो मे मिलती थी। इसका मूल्य एक रुपया से अधिक नही होता था। यह खेतो मे काम करने वाले किसानो के लिए सुखद, सस्ती तथा आरामदह थी। उसका प्रयोग पहिनने के साथ ही चादर के रूप मे ओढने के लिए कर लिया जाता था। परन्तु आज अनेक कारणो से इसका प्रचलन धीरे-धीरे कम होता जा रहा है जिसके प्रधानतया दो कारण है—(१) महघता (२) फैशन से परे होना।

आजकल अन्य खाद्यान्नो तथा परिधान वस्त्रो की महँगाई के साथ ही, धोती का मूल्य भी बहुत ही अधिक हो गया है। सेनगुप्ता तथा नयनसुख नामक धोतियो बहुत ही महँगी है। धोती को केवल एक रुपया मे खरीद कर किसान अपना काम चला लेता था परन्तु आज ५०) या ६०) खर्च करना पड़ता है। पाश्चात्य शिक्षा के कारण नवयुवको मे धोती पहिनने का फैशन उठता जा रहा है। अत इसमे कुछ आश्चर्य नही कि आगामी २०-२५ वर्षों म धोती अतीत की वस्तु बन जायेगी।

१९९ आभूषण—भोजपुरी स्त्रियो मे पहिले गहना पहिनने का बड़ा ही अधिक प्रचार था। विवाह मे बहू के लिए सोना तथा चाँदी के गहनो को ले जाना अत्यन्त आवश्यक था। इसके अभाव म कभी-कभी कन्या तथा वर पक्ष वालो मे मार पीट भी हो जाती थी और विवाह नही होता था। भोजपुरी स्त्रियो के व्यक्तित्व का यदि विश्लेषण किया जाय तो उसका प्रतिशत प्राय निम्नाकित होगा।

(१) ७५ आभूषणप्रियता।
(२) २० वस्त्रप्रियता।
(३) ५ स्वच्छताप्रियता।

भोजपुरी स्त्रियाँ सिर के बालो से लेकर पैर की अँगुलियो तक मे आभूषणो को धारण करती है जिसका विशेष वर्णन इस पुस्तक (पृ० १८५-१९९) मे दिया गया है। इन समस्त आभूषणो की सख्या लगभग ६० है। सेना मे युद्ध करने वाला सिपाही जिस प्रकार विविध आयुधो से सुसज्जित रहता है (Armed to the teeth), उसी प्रकार विवाह के पश्चात् ससुराल जाने वाली वधू विभिन्न आभूषणो से सुशोभित रहती है। इन गहनो की अधिकता के भार से वह स्वय सीधी खडी भी नही रह सकती। यह शुभ लक्षण है कि स्त्री-समाज मे (अग्रेजी) शिक्षा के प्रचार से आभूषण के प्रति व्यामोह शिथिल होता जा रहा है। इसका दूसरा कारण सुवर्ण तथा रजत की महर्घता भी समझनी चाहिए।

२०७ गोदना—आज से २०-२५ वर्ष पहिले सधवा स्त्रियो के लिए गोदना गोदवाना अत्यन्त आवश्यक समझा जाता था। स्त्रियो मे यह लोक-विश्वास दृढ़ रूप से प्रचलित था कि बिना गोदना गोदवाये कोई भी स्त्री स्वर्ग नही जा सकती। अत अनेक कष्टो तथा यंत्रणाओ को सहते हुए भी प्रत्येक सधवा नवयुवती को गोदना का दारुण कष्ट भोगना पड़ता था। पुरानी स्त्रियां तो हाथो के अतिरिक्त अपनी छाती पर भी गोदना गोदवाती थी।

परन्तु पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव के कारण प्राचीन लोक-विश्वास मे कमी आ गई है। अब कोई भी शिक्षित बहू गोदना नही गोदवाती है। इस प्रकार 'गोदनहारी' का पेशा अब प्राय समाप्त हो गया है।

२०८ अलकरण तथा प्रसाधन

अब अनेक नवीन प्रसाधन के साधन उपलब्ध हो गये हैं। अत पुराने प्रसाधनो का प्रयोग धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। 'लिपस्टिक' तथा 'नल-पालिश' नये प्रसाधन हैं जिनका पहिले अभाव था। इनका स्त्री समाज मे अत्यधिक प्रचार है। महावर जो पैरो का सुन्दर लाल प्रसाधन था, अब अपना मुँह काला करके सदा के लिए चला गया। केश-पाश के निर्माण के अनेक प्रकार पाये जाते हैं। पहिले के जूड़ा (बाँधना) या एक वेणी ने अब द्विवेणी या त्रिवेणी का रूप धारण कर लिया है।

२१३ **मेहदी**—भोजपुरी प्रदेश मे पहिले स्त्रियो के हाथो मे मेहदी लगाई जाती थी। थोडी-थोडी दूरी पर स्थापित करने के कारण हाथो मे छोटी-छोटी बिन्दियाँ बन जाती थी। उस समय 'मेहदी लगाना' रस्म अदाई के लिए किया जाता था। परन्तु यह आज कला के रूप मे परिवर्तित हो गया है।

आजकल मेहदी के द्वारा स्त्रियो के हाथो मे स्वास्तिक का चित्र बनाया जाता है। प्रिय व्यक्ति का नाम लिखा जाता है। किम्बहुना देवी और देवताओ के चित्रो को भी उकेरा जाता है। इसके अतिरिक्त अनेक कलात्मक आकृतियो—जैसे किसी पक्षी या वृक्ष की डिजाइन का भी निर्माण किया जाता है।

पहिले मेहदी की हरी पत्तियो को 'सिलवट' पर पीस कर 'मेहदी' तैयार की जाती थी। जिसे चटकार बनाने के लिए सरसो का थोडा-सा तेल भी मिला दिया जाता था। इस प्रकार मेहदी को तैयार करने मे बडा परिश्रम करना पडता था। परन्तु आजकल बाजारो मे मेहदी का सूखा पाउडर बिक रहा है जिसे पानी मे घोलकर अति शीघ्र 'मेहदी' तैयार की जा सकती है। उज्जैन नगर (म० प्र०) के बाजारो मे सूखे पाउडर के रूप मे मेहदी प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध होती है।

२६६ **चिक्का**—गाँवो मे कबड्डी के साथ चिक्का खेलने की भी परम्परा थी। कबडडी के खेल ने तो अब अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर ली है परन्तु चिक्का के खेल का अब प्रचार बिल्कुल ही नही है। अब तो गाँव के लडके इसका नाम तक नही जानते। इसके खेलने की बात तो बहुत दूर रही।

चिक्का का खेल बडी कठिनता के साथ खेला जाता है। एक आयताकार क्षेत्र मे खिलाडी एक टाँग पर चलते हुए उसमे प्रवेश करता है और खेल कर वापस आ जाता है। कठिन खेल होने के कारण इसकी स्थिति अब प्राय नष्ट हो गई है।

गाँवो मे अब कबड्डी और गुल्ली-डण्डा के स्थान पर फुटबाल तथा क्रिकेट का प्रचार हो रहा है। छोटे-छोटे तथा गरीब बच्चे भी चमडे का फुटबाल न मिलने पर कपडे का गोला बाल बनाकर उससे ही अपनी इच्छा की पूर्ति करते है। इसी प्रकार क्रिकेट के बैट और हाकी की स्टिक के अभाव मे टेढी लकडी का प्रयोग करते हैं। यह कुछ आश्चर्य की बात नही है कि पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से कुछ भी वर्षों मे भोजपुरी खेलो का प्राय अत्यन्त अभाव हो जायेगा और उसका कोई नाम लेवा भी नही रहेगा।

भोजपुरी लोक-सस्कृति का बदलता स्वरूप—पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से भोजपुरी समाज पर सब से अधिक प्रभाव पडा है जिसका वणन यथास्थान किया जा चुका है। यहा केवल दो-तीन बातो का उल्लेख किया जाता है जो सबसे अधिक प्रभावित है।

(१) **वेशभूषा**—अग्रेजी शिक्षा के प्रचार से भोजपुरी लोगो की वेशभूषा मे सबसे अधिक परिवतन हुआ है। आज से पचास वष पहिले गाँव का किसान धोती और 'मिरजई' पहिनता था। पण्डित लोग धोती, बगलबन्दी पहिनते थे। गले मे चादर और सिर पर पगडी बाँधकर चलते थे। इनके दशन मात्र से यह पता चल जाता था कि यह ब्राह्मणत्व की प्रतिमूर्ति और सस्कृत भाषा का अगाध भाण्डार है। यद्यपि किसान की तो वेशभूषा प्राय थोडे परिवतन के साथ वही है परन्तु पण्डित समाज ने अपना काया-पलट कर दिया है। अब वे लोग भी 'बगलबन्दी' और 'मिरजई' के स्थान पर कुर्ता पहिनने लगे हैं। चादर तो अभी किसी प्रकार से बच गई है। परन्तु पगडी का सिर से सफाया हो गया है। अब शायद दो चार पण्डित भले ही पगडी धारण करते हो। परन्तु वे भी अपवादस्वरूप ही है। इसमे कोई आश्चय नही कि आगामी बीस-पचीस वर्षों मे पगडी किसी सग्रहालय की शोभा बढाने के लिए ही रह जायेगी।

पहिले मागलिक अवसरो—जैसे विवाह आदि—पर पीली धोती पहिनने की परम्परा थी। परन्तु आज विवाह करने के लिए जाने वाला दूल्हा भी पीली धोती पहिनना 'फैशन' के विपरीत मानता है और पैण्ट-बूट पहिन कर जाता है। कुछ वर काला 'शू' और काला 'सूट' पहिन कर वैवाहिक कृत्यो का सम्पादन करते है। ये इस बात की तनिक भी पर्वाह नही करते कि काला रग अमागलिक है और उसे शुभ अवसर पर नही पहिनना चाहिए।

गाँवो मे पहिले गाव के चमार के द्वारा बनाया गया जूता पहिना जाता था जिसे 'चमरौधा' कहा जाता था। परन्तु आज का किसान भी चमरौधा जूता पहिनना पसन्द नही करता फिर तो शिक्षित युवको की कथा ही दूर रही। बाटा के हवाई चप्पल ने 'चमरौधा' को ऐसा चपत मारा है कि उसकी हवाई गुम हो गई है। फलस्वरूप आज चमरौधा जूता दिखाई नही पडता। विवाह के अवसर पर वर के द्वारा जगरी का काम किया हुआ 'सलेमशाही' लाल जूता पहिना जाता था। परन्तु आज उसका स्थान 'फ्लेक्स' के काले 'शू' ने ले लिया है। अब 'जोडा और जामा' की चर्चा करना भी बेकार है क्योकि ये दोनो ही अब अतीत की वस्तु बन गये है।

भोजन—भोजन के पदार्थों तथा उसकी विधि मे भी बडा परिवतन हो गया है। भोजपुरी प्रदेश मे पहिले कोई अतिथि आता था तब उसके स्वागत मे उसे चीनी का रस पिलाया जाता था। गरीब आदमी इसके लिए गुड का भी प्रयोग

करते थे। परन्तु अब गाँवो मे भी 'चाय' का एकछत्र सामाज्य दिखाई पडता है। पहिले 'नाश्ता' करने या कराने की परम्परा नही थी। हा 'घर मिटाव' करने के लिए गुड तथा चना या जनेरा (मक्का) का भुजुना दे दिया जाता था। जाडे के दिनो म गन्ने का रस—जो 'कचरस' कहा जाता था—भी प्रयाग मे लाया जाता था।

किसी श्रेष्ठ अभ्यागत या सम्मान्य सम्बन्धी—जैसे समधी आदि के आने पर उन्हे धान का भात और चने की दाल खाने के लिए दी जाती थी। परन्तु आज उसका स्थान पूडी और कचौडी ने ले लिया है। यद्यपि विवाह के अवसर पर बारातियो को पूडी खिलाने की प्रथा थी और आज भी है परन्तु उसका आकार-प्रकार बहुत ही बडा होता था।

शाको मे टमाटर का प्रयोग नही होता था। इसे 'विदेशी भण्टा' कहकर लोग इसका व्यवहार नही करते थे। परन्तु आज शाको म टमाटर का समधिक प्रयोग किया जा रहा है। भोजन मे यह 'सलाद' बनाने का सर्वोत्तम साधन है।

भाषा—भोजपुरी देश मे सवत्र जनता भोजपुरी भाषा का ही प्रयोग करती थी और आज भी करती है। किम्बहुना कुछ पण्डित लोग सस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी बोल चाल मे भोजपुरी का ही व्यवहार करते थे। इतना ही नही, बलिया जिला के निवासी स्वनामधन्य प० काशीनाथ शास्त्री महाभाष्य जैसे कठिन ग्रन्थ की व्याख्या अपने छात्रो के समक्ष, अपनी मातृभाषा भोजपुरी मे ही किया करते थे। महामहोपाध्याय प० रामावतार शर्मा भी दैनिक व्यवहार मे भोजपुरी का ही प्रयोग किया करते थे। पुराने कागजात भी भोजपुरी मे ही लिखे जाते थे।

परन्तु आज इस परिस्थिति मे बडा ही परिवर्तन हो गया है। पण्डित लोगो ने इसका प्राय परित्याग कर दिया है। आज का, अग्रेजी शिक्षा मे दीक्षित नवयुवक, भोजपुरी बोलने मे अपना अपमान समझता है तथा उसकी उपेक्षा ही नही बल्कि उससे घृणा करने लगा है। अज्ञान के कारण वह गलत अग्रेजी भले ही बोले परन्तु शुद्ध भोजपुरी बोलने मे उसे लज्जा का अनुभव होता है। आज "कानवेण्ट' स्कूलो मे पढने वाले बच्चे भोजपुरी के नाम से भी परिचित नही है। मातृभाषा की उपेक्षा ही नही बल्कि घृणा, किसी भी राष्ट्र के लिए चिन्ता का विषय है।

राष्ट्रीयता—किसी भी देश की राष्ट्रीयता के लिए निम्नाकित पाँच आवश्यक तत्त्व होते है—

(१) स्वभाषा (२) स्व वेशभूषा
(३) स्व देश (४) स्व सस्कार
(५) स्व सस्कृति।

इन पाँच 'स्व' की आधार शिला पर ही किसी राष्ट्र का राजप्रासाद अवस्थित होता है। अत इन पाँच तत्त्वो की रक्षा करना अत्यन्त आवश्यक है।

इस पुस्तक के १८वे अध्याय मे यह दिखलाने का प्रयास किया गया है कि पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से किस प्रकार भोजपुरी लोक सस्कृति मे क्रमश परिवर्तन हुआ है और आज भी हो रहा है। किसी भी देश या समाज के लिए परिवर्तन स्वागत की वस्तु है। उसे आदर के साथ अपनाना चाहिए। परन्तु यह परिवर्तन ऐसा नही होना चाहिए जिससे हम अपने स्वरूप को ही भूल जाय। अपना अस्तित्व ही भुला बैठे। भोजपुरी समाज मे जो परिवर्तन हो रहा है वह इसी खतरे की ओर सकेत है, शतसहस्रसहिता के रचयिता भगवान् व्यास के शब्दो मे थोडा परिवर्तन करके मेरा यही नम्र निवेदन है कि—

> स्वां प्रसूतिं, चरित्रं च,
> कुलमात्मानमेव च।
> स्वां च भाषां प्रयत्नेन,
> सस्कृतिं रक्षन् हि जीवति॥"



परिशिष्ट (२)

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

○○

(१) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोकगीत भाग १, २
(हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)

(२) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोकगीत भाग ३
(भोजपुरी अकादेमी, पटना १९८६)

(३) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन
(हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी सन् १९६१ ई०)

(४) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी और उसका साहित्य
(राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली)

(५) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी साहित्य का इतिहास
(लोक संस्कृति शोध संस्थान, काशी १९७१)

(६) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोकसंगीत
(लोक संस्कृति शोध संस्थान, काशी, १९८५ ई०)

(७) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोकगाथा
(भोजपुरी अकादेमी, पटना)

(८) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—हिन्दी प्रदेश के लोकगीत
(साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग)

(९) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास भाग १६
(हिन्दी का लोक-साहित्य) राहुल जी के साथ सम्पादित।

(१०) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—अवधी लोक-गीत भाग १
(साहित्य भवन लिमि० प्रयाग)

(११) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—लोक साहित्य की भूमिका
(साहित्य भवन लिमि० प्रयाग)

(१२) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—लोक-संस्कृति की रूपरेखा
(लोक-भारती प्रकाशन, १५ महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद)

(१३) दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह—भोजपुरी के कवि और काव्य
(बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, बिहार)

(१४) दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह—भोजपुरी लोक गीतों मे करुण-रस
(हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)

(१५) डब्लू० जी० आर्चर तथा संकटा प्रसाद
भोजपुरी ग्राम्य-गीत (लहेरियासराय, दरभंगा)

(१६) डॉ० श्रीधर मिश्र—भोजपुरी लोक-गीतो के विविध रूप
(हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद)

(१७) डा० श्रीधर मिश्र—भोजपुरी लोक-साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन
(हिन्दुस्तानी एकडेमी, इलाहाबाद)
(१८) राधावल्लभ शर्मा—भोजपुरी के संस्कार गीत
(बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना)
(१९) डॉ० सत्यव्रत सिन्हा—भोजपुरी लोक-गाथा
(हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग)
(२०) डॉ० शशिशेखर तिवारी—भोजपुरी लोकोक्तिया
(बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना)
(२१) डॉ० मुक्तेश्वर तिवारी—भोजपुरी लोकोक्तिया और मुहावरे
(२२) विजय नारायण सिंह—'विजय बलियाटिक'—भोजपुरी के संस्कार गीत
(२३) डॉ० कुबेर मिश्र—मारिशस के भोजपुरी लोकगीतो का विवेचनात्मक अध्ययन
(सजय बुक सेण्टर, वाराणसी)
(२४) डा० उदय नारायण तिवारी—भोजपुरी भाषा और साहित्य
(बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना)
(२५) डॉ० हीरालाल तिवारी—गंगाघाटी के लोक-गीत
(विश्वविद्यालय प्रकाशन, काशी)
(२६) डॉ० विद्या विन्दु सिंह—अवधी लोक-गीत समीक्षात्मक अध्ययन,
(परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, १९८३)
(२७) डॉ० सरोजिनी रोहतगी—अवधी का लोक-साहित्य
(नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली)
(२८) डॉ० इन्दुप्रकाश पाण्डेय—अवधी लोक-गीत और परम्परा
(रामनारायण लाल, इलाहाबाद)
(२९) डॉ० रामसुरेश त्रिपाठी—कनउजी लोक-साहित्य में समाज का प्रतिबिम्ब
(रूपायन प्रकाशन, नयी दिल्ली)
(३०) डा० रामस्वरूप श्रीवास्तव—बुन्देली लोक-साहित्य
(३१) डॉ० त्रिलोचन पाण्डेय—कुमाऊं का लोक-साहित्य (अल्मोड़ा)
(३२) डॉ० त्रिलोचन पाण्डेय—लोक-साहित्य का अध्ययन
(लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद)
(३३) डा० त्रिलोचन पाण्डेय—कुमाऊनी भाषा और उसका साहित्य
(हिन्दी संस्थान, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ)
(३४) डॉ० सत्येन्द्र—ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन (आगरा)
(३५) डॉ० सत्येन्द्र—लोक साहित्य विज्ञान
(३६) डॉ० सत्येन्द्र—हिन्दी के मध्यकालीन कवियों में लोकतत्त्व।
(३७) डॉ० शंकरलाल यादव—हरियाणा प्रदेश का लोक-साहित्य
(हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग)
(३८) डॉ० रविशंकर उपाध्याय—भोजपुरी लोक-गीतों का सांस्कृतिक अध्ययन
(लोक-संस्कृति-शोध संस्थान, वाराणसी' ८४)
,, ,, पदमावत का लोक सांस्कृतिक अध्ययन (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध)
(३९) डॉ० रवीन्द्र भ्रमर—मध्यकालीन भक्त साहित्य में लोक तत्व
,, ,, —जायसी में लोकतत्व
(४०) डॉ० मदन गोपाल गुप्त—मध्ययुगीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति
(४१) डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल—पृथिवी पुत्र (वाराणसी,)
,, ,, —पदमावत की टीका (चिरगांव, झांसी)

(४२) पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय—भारतीय साहित्य का अनुशीलन, वाराणसी
(४३) पद्मभूषण आचाय बलदेव उपाध्याय—भारतीय धम तथा दशन का अनुशीलन (वही, वाराणसी)
(४४) पद्मभूषण आचाय बलदेव उपाध्याय—सस्कृत साहित्य का इतिहास (शारदा मदिर, रवीन्द्रपुरी, वाराणसी)
(४५) पद्मभूषण आचाय बलदेव उपाध्याय—वैदिक साहित्य और सस्कृति
(४६) पद्मभूषण आचाय बलदेव उपाध्याय—भारतीय साहित्य मे श्री राधा (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना)
(४७) डॉ० हरिशकर उपाध्याय—बलिया जिला के भोजपुरी लोक-गीत, (वाराणसी सन् १९८८)

(ख) सस्कृत

(१) ऋग्वेद—(वैदिक सशोधन मण्डल पूना, भाग १-४, १९३३)
(२) अथववेद—एस० पी० पण्डित द्वारा सपादित (बम्बई, भाग १-४, १८९५)
(३) ब्लूम फील्ड—दि रिलिजन आफ दि वेद (दिल्ली १९७२)
(४) बुद्ध प्रकाश—दि ऋग्वेद एण्ड दि इण्डस वेली सिविलाइजेशन १९६७)
(५) राय गोविन्दचन्द्र—आर्नामिण्ट्स एण्ड जेवेलरी आफ वैदिक इण्डियन्स (काशी)
(६) मैकडोनल—वेदिक मैथालजी १८९७
(७) कीथ, ए०बी०—रिलिजन एण्ड फिलोसोफी आफ वेद एण्ड उपनिषद् (अमेरिका)
(८) वेलकर—मैजिशियन्स इन दि ऋग्वेद (लक्ष्मण स्वरूप स्मृति ग्रन्थ मे लेख १९५४)
(९) ब्लूम फील्ड—कौशिक सूत्र आफ अथववेद (दिल्ली)
(१०) मेहता, डी० डी० मेडिसिन इन दि वेदाज
(११) पण्डित, एम० पी०—स्टडीज इन तंत्र एण्ड वेदाज
(१२) शर्मा, जे० एस०—सोर्सेज आफ इण्डियन सिविजाइजेशन (दिल्ली १९७४)
(१३) देशमुख, वी० आर०—दि इण्डस सिविलाइजेशन इन दि ऋग्वेद, १९५४
(१४) दास, ए० सी०, ऋग्वेदिक कल्चर
(१५) शकरानन्द, एस०, ऋग्वेदिक कल्चर आफ दि प्रिहिस्टारिक इण्डस (भाग १-२, १९४३-४४)
(१६) शिन्दे—दि रिलिजन एण्ड फिलोसोफी आफ अथववेद (पूना १९५२)

(ग) अग्रेजी ग्रन्थ

(१) डॉ० सर जार्ज अब्राहिम ग्रियसन—दि ले आफ आल्हा (आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लण्डन)
(२) सर जाज अब्राहिम ग्रियर्सन—सम बिहारी फोक साग्स (जे० आर० ए० एस० भाग १६ (१८८४)
(३) डॉ० सर जाज अब्राहिम ग्रियर्सन—सम भोजपुरी फोक साग्स (जे० आर० ए० एस० भाग १८, (१८८६)
(४) डॉ० सर जार्ज अब्राहिम ग्रियसन—बिहार पीजेण्ट लाइफ (बिहार सरकार, द्वि० स० पटना)
(५) सर जेम्स फ्रेजर—दि गोल्डनबाऊ भाग १-१२
(६) सर जेम्स फ्रेजर—फोकलोर इन ओल्ड टेस्टामेण्ट
(७) विलियम क्रुक—दि पापुलर रिलिजन एण्ड फोकलोर आफ नादर्न इण्डिया भाग १ तथा २ (नयी दिल्ली)

(८) विलियम क्रुक—ट्राइब्स एण्ड कास्टस आफ नार्थ वरटन प्राविन्स
(गवर्नमेण्ट आफ यू० पी०, इलाहाबाद)
(९) चिमरुटा मायर—इंगलिश फाकलोर
(१०) टायलर—प्रिमिटिव कलचर भाग १ और २
(१२) डा० कृष्णदेव उपाध्याय तथा शंकरसेन गुप्त—स्टडीज इन इण्डियन फाक कलचर
(इण्डियन पब्लिकेशन्स, कलकत्ता)
(१३) डॉ० एस० पी० विद्यार्थी तथा प० गणेश चौबे—बिहार इन फाकलोर स्टडी
(इण्डियन पब्लिकेशन्स, कलकत्ता)
(१४) सोफिया बर्न—ए हैण्डबुक आफ फाकलोर (लण्डन, १९१४ ई०)
(१५) मारिस वायमन—मैजिक (लण्डन, १९६०)
(१६) हेनरी ह्वाइट हेड—दि विलेज गाड्स आफ सदर्न इंडिया।
(१७) डा० वासुदेवशरण अग्रवाल—एंशेण्ट इण्डियन फाक कल्ट्स (१९७०)
(१८) डा० छन्दा चक्रवर्ती—कामन लाइफ इन दि ऋग्वेद एण्ड अथर्ववेद।
(१९) मरिया लीच—डिक्शनरी आफ फाकलोर, माइथालाजी एण्ड लीजण्ड्स (भाग १-२)
(२०) थर्स्टन—ओमेन्स एण्ड सुपरस्टिशन्स आफ सदर्न इण्डिया (बम्बई)
(२१) ए० एल० बशम—दि वण्डर दैट वाज इण्डिया (१९६७)
(२२) के० टी० शाह—दि वण्डर दैट वाज इण्ड
(२३) एटकिन्सन (इ० टी०)—हिमालयन गजटियर भाग १-३, (प्रयाग, १९८२)
(२४) ब्लैक (जी० वी०) फाक मिडिसिन (फाकलोर सोसाइटी, लण्डन १८८३)
(२५) बुकानन, एफ० एच०—इस्टन इण्डिया (भाग १-३, लण्डन १८३३ ई०)
(२६) कानवे, एम० डी०—डेमानलाजी एण्ड डेमन लोर (भाग १-२ लण्डन, १८७९)
(२७) काक्स, जी० डब्लू—मैथोलाजी आफ आयन नेशन्स (दो भाग, लण्डन)
(२८) डायर, टी० एफ० टी०—पापुलर कस्टम्स (लण्डन १८७६ ई०)

भोजपुरी लोक-साहित्य संबंधी पठनीय सामग्री

(क) लोक गीत-संग्रह

(१) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोकगीत भाग १ (तृ० सं० १९८९ ई०)
(२) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोकगीत भाग २ (प्रकाशक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)
(३) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोकगीत भाग ३ (भोजपुरी अकादमी, पटना ८६)
(४) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—हिन्दी प्रदेश के लोकगीत (साहित्य भवन लिमि प्रयाग)
(५) दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह—भोजपुरी लोकगीतों में करुण रस (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)
(६) आर्चर तथा संकटाप्रसाद—भोजपुरी ग्राम्य-गीत (बिहार रिसर्च सोसाइटी, पटना)
(७) राधावल्लभ शर्मा—भोजपुरी संस्कार गीत (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना)
(८) विजयनारायण सिंह 'विजय बलियाटिक'—भोजपुरी संस्कार-गीत (भो० सं०, वाराणसी)
(९) डा० श्रीधर मिश्र—भोजपुरी लोक-गीतों के विविध रूप
(१०) डा० हरिशंकर उपाध्याय—बलिया जनपद के भोजपुरी लोक-गीत

(ख) आलोचनात्मक ग्रन्थ

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—लोक-साहित्य की भूमिका (साहित्य भवन प्रा० लिमि०, प्रयाग)

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—लोक-सस्कृति की रुपरेखा (लोक भारती प्रकाशन, प्रयाग, १९८८)

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोक सस्कृति (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग १९९०)

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी और उसका साहित्य (राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली)

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी साहित्य का इतिहास (भारतीय लोक सस्कृति शोध सस्थान, वाराणसी, सन् १९७८ ई०)

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन (हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी सन १९६०)

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भारतीय लोक-विश्वास

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोक-सगीत (भा० लो० स० शो० स०, वाराणसी १९८६)

डॉ० श्रीधर मिश्र—भोजपुरी लोक साहित्य का सास्कृतिक अध्ययन (हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग)

डॉ० रविशकर उपाध्याय—भोजपुरी लोकगीतो का सास्कृतिक अध्ययन (भारतीय लोक सस्कृति शोध सस्थान, वाराणसी, १९८५ ई०)

(ग) भोजपुरी-भाषा सबधी ग्रन्थ

डॉ० उदयनारायण तिवारी—भोजपुरी भाषा और साहित्य (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना)

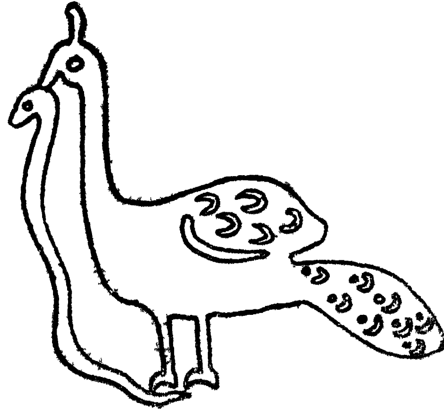
डॉ० विश्वनाथ प्रसाद—भोजपुरी फॉनेटिक्स (लण्डन विश्वविद्यालय—शोध-प्रबन्ध)

डॉ० रसिक बिहारी ओझा 'निर्भीक'—भोजपुरी शब्दानुशासन (जमशेदपुर)

रासबिहारी पाण्डेय—भोजपुरी भाषा का इतिहास (लोक-साहित्य सगम, भोजपुर, बिहार, सन् १९८७ ई०)

भोजपुरी भाषा का व्याकरण—प० रास बिहारी शर्मा

डॉ० रविशकर उपाध्याय—भोजपुरी भाषा एक अध्ययन

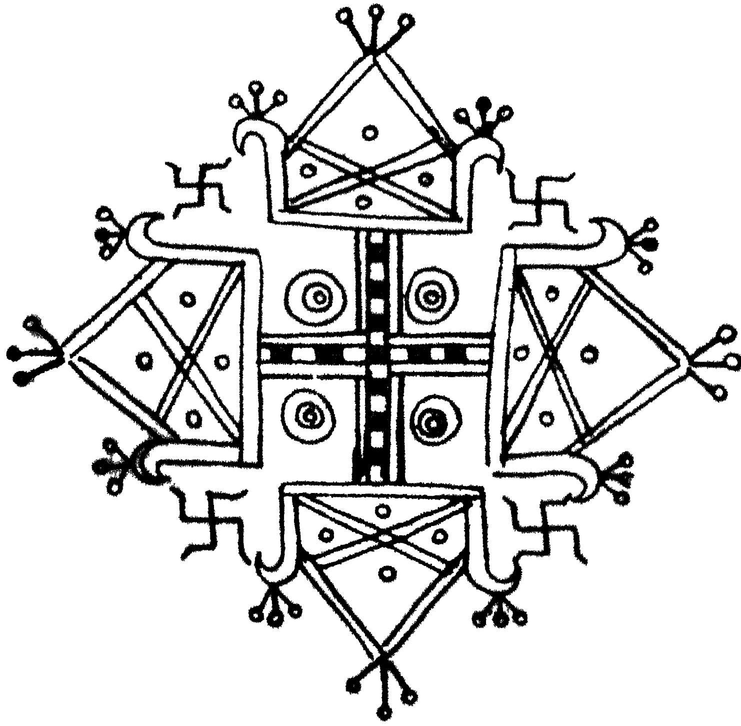


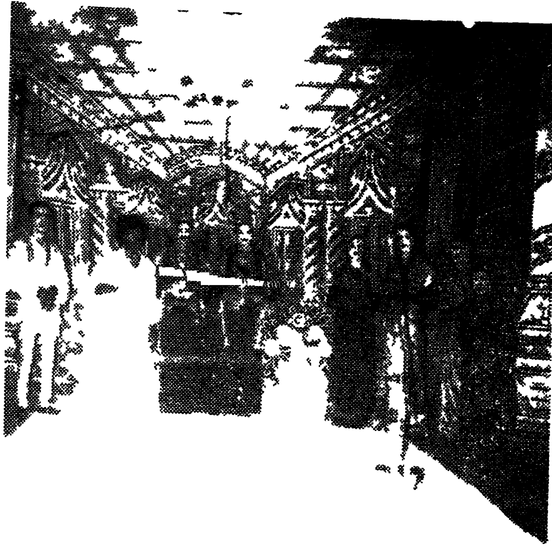
परिशिष्ट (३)

अनुक्रमणिका

००







रामलीला का एक दृश्य



नवरात्र मे पशु बलि का दृश्य



मट्टी का बतन बनाती हुई महिला



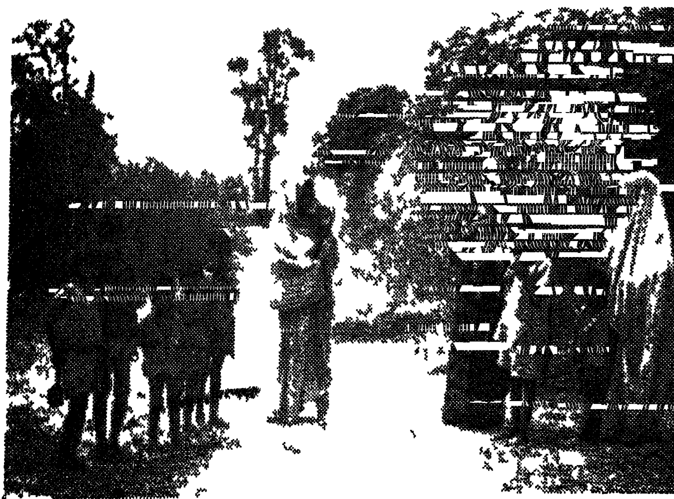
गामुखी जल पात्र



चरागाह का एक दृश्य



पौत्र के साथ खाना बनाती हुई वृद्धा



भोजपुरी क्षेत्र की महिलाएँ और बच्चे



मट्टी का बतन बनाती हुई महिला



गोमुखी जल पात्र



चरागाह का एक दृश्य



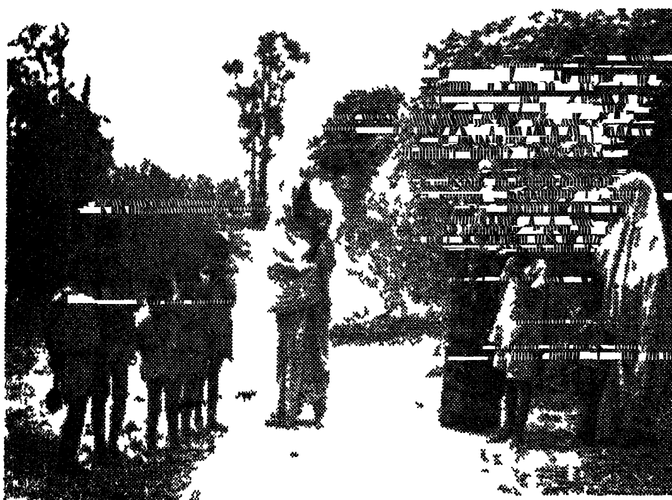
ससुर के द्वारा अपनी सवहि का कन्या निरीक्षण अथवा आभूषण वस्त्र प्रदान करना



गौना के बाद वर घोडी पर और वहू के पैदल चलने का दृश्य



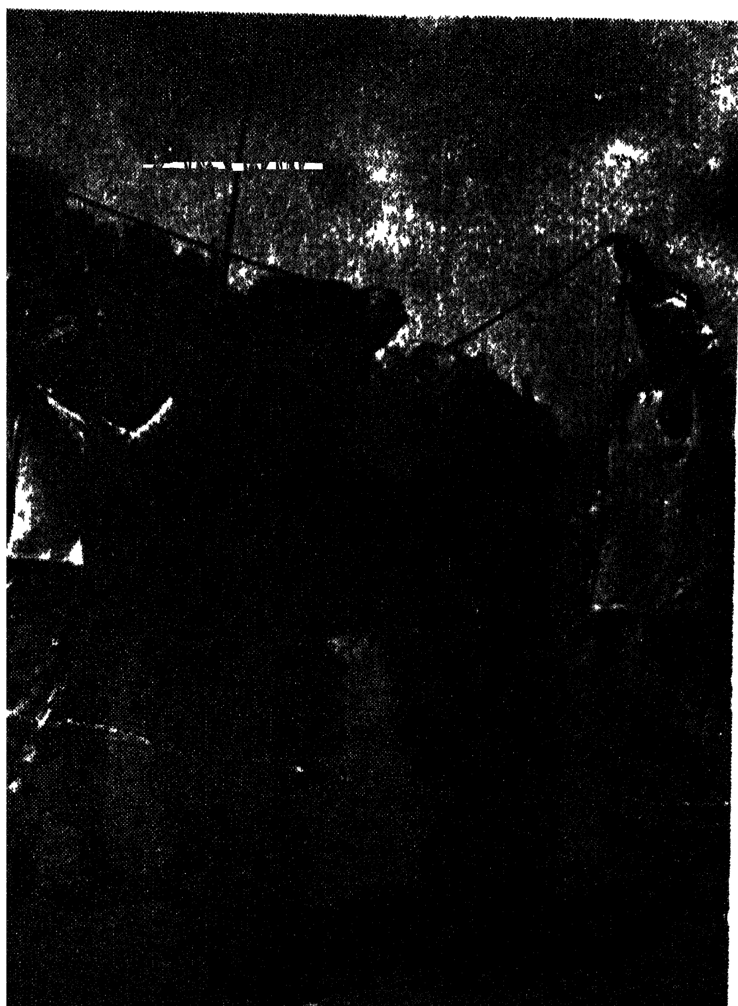
पौत्र के साथ खाना बनानी हुई वृद्धा



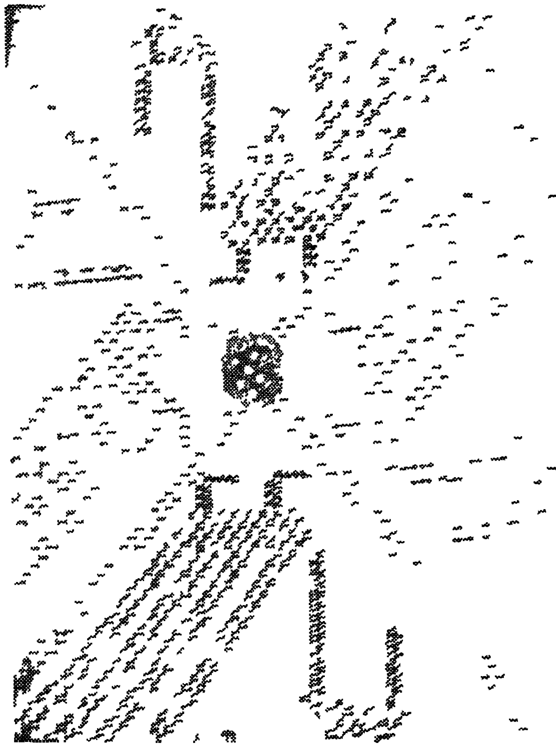
भोजपुरी क्षेत्र की महिलाएँ और बच्चे



एक भोजपुरी भक्त



भालुओं के नाच का एक दृश्य



गेहूँ के डठल से बना पखा



कपडो पर बनने वाली डिजाइन (झोला कुरसिया)

